श्री लक्ष्मण स्वरूप हिन्दी ग्रन्थमाला–३

व्रजभाषा और व्रजबुलि साहित्य

(तुलनात्मक अध्ययन)

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पीएच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० श्रीमती कणिका तोमर, एम० ए०, एम० एड०, पीएच० डी०,
अध्यापिका, हिंदी भवन
विश्वभारती, शान्तिनिकेतन।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय
१९६४

मूल्य { पूर्ण कपड़े की जिल्द ९)
कागज की जिल्द ८)

मुद्रक
लक्ष्मीदास
बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस
वाराणसी—५ (भारत)

श्रद्धेय सुधीदा

तथा

श्रद्धेया स्वप्नादी को

सादर समर्पित ।

प्रस्तुत प्रबंध में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के वैष्णव साहित्य को भिन्न भिन्न पहलुओं से समझने की चेष्टा की गई है। "ब्रजबुलि" उस काव्य भाषा का नाम है जिसमें पूर्वी प्रदेशों जैसे बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा नेपाल में मुख्य रूप से कृष्ण-लीला का वर्णन किया गया है। इसकी विवेचना "ब्रजबुलि" के उद्भव और विकास वाले अध्याय में की गई है। ब्रजभाषा की नाई यह किसी अंचल विशेष में बोली जाने वाली भाषा नहीं है। ब्रजभाषा और ब्रजबुलि में रचित साहित्य अत्यन्त विशाल है। सैकड़ों वर्षों तक भक्त-कविगण अपनी रचनाओं द्वारा अपने प्रेमाराध्य को अपनी भक्ति निवेदित करते रहे हैं और भारतीय जन समाज को अनुप्रेरित करते रहे हैं। भारतीय जनचित्त उससे अभिभूत रहा है। प्रस्तुत प्रबंध में इस प्रेरणा के मूल उत्स के उद्घाटन की चेष्टा की गई है। तुलनात्मक दृष्टि से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के वैष्णव-साहित्य के अध्ययन से यह समझा जा सकता है कि उस मूल प्रेरणा ने विभिन्न स्थानों में कौन-सा रूप ग्रहण किया और उस रूप ग्रहण करने के पीछे कौन सी शक्ति कार्य करती रही है। दोनों का पारस्परिक क्या संबंध रहा है और दोनों एक दूसरे से किस प्रकार प्रभावित होते रहे हैं या प्रभावित करते रहे हैं। एक सीमित क्षेत्र में अपने आप को निबद्ध कर लेने पर सम्पूर्ण को समझना या उसका मूल्यांकन करना संभव नहीं हो पाता।

यह बात बड़ी अद्भुत-सी लगती है कि ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति की धारा ने समस्त भारतवर्ष को इतने प्रबल वेग से आलोड़ित कर दिया। भारतीय साहित्य और संस्कृति के अध्येताओं ने इसे लक्ष्य किया है। यह भक्ति की धारा दक्षिण से आई और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के कारण इसने देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न स्वरूप ग्रहण किया मध्ययुग में यह धारा साहित्य के माध्यम से और भी स्पष्ट होकर दिखाई पड़ी। समसामयिक साहित्यों ब्रजभाषा, बंगला, गुजराती मराठी उड़ीसा, आसामी—के अनुशीलन से ऐसा जान पड़ता है कि समूचा भारत एक ही साधना एक ही भावना, एक ही विचार धारा एक ही विश्वास के सूत्र में गाढ़ भाव से गुम्फित है। भारत का मध्य

कालीन साहित्य वस्तुतः एक ही है और वह है वैष्णव-साहित्य। अन विभिन्न बोलियो और देश के विभिन्न भागो के साहित्य का व्यष्टि रूप से परीक्षण उस विशाल साहित्य के यथार्थ स्वरूप का परिचय नही देगी। इसलिये अगर हमे उसके यथार्थ मूल्याकन की आवश्यकता है तो उसे समष्टि में देखना होगा।

यह सम्पूर्ण वैष्णव-साहित्य एक विशेष दृष्टिभगी से लिखा गया है और इसे समझने के लिये उस "दृष्टिभगी" को ध्यान मे रखना आवश्यक है। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व भगवान् का ऐश्वर्य-रूप, सर्वशक्तिमान रूप ही प्रधान था। धर्म की ग्लानि देखकर धर्म के अभ्युत्थान के लिये भगवान् अवतार धारण करते है। इसी रूप को ध्यान मे रखकर भक्त उनके साथ अपना संबध जोडता है। यह सबध जैसे भक्त को बाध्य होकर जोटना पडता है, क्योकि भगवान् सर्वशक्तिमान है और वह अक्षम। भक्ति-आन्दोलन ने जैसे इस सबध के पीछे जो एक बाध्यता की भावना थी उसे उड़ा दिया। इस भक्ति से प्रेरित होकर भगवान् के साथ आप सबध स्थापित करना चाहता है, लेकिन जानता नही कि क्यो ? बस इतना ही भर वह जानता है कि बिना उसके वह रह नही सकता, बिना उसके वह अपूर्ण है। यह अहैतुकी सबध स्थापित कर वह चरम परितृप्ति का अनुभव करता है। वह भीतर ही भीतर इस सबध-स्थापना के लिये व्याकुल रहता है। ससार के सभी सबध उसे बधन से प्रतीत होते है।

"वैष्णव धर्म का मूल तत्त्व" शीर्षक अपने एक लेख में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने वैष्णव-भक्तो की दृष्टिभगी का बडे सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण किया है। यह लेख विश्वभारती पत्रिका (हिन्दी), जनवरी-मार्च १९४५ ई० के अक में प्रकाशित हुआ है। उसमें बतलाया गया है कि भक्त समझता है कि "जिस व्याकुलता से मै उन्हें चाहता हूँ ठीक वैसी ही व्याकुलता लेकर वे भी मुझे चाहते है। इसीलिये तो वे मुझे इस प्रकार सब ओर से अपनी ही तरफ आकर्षित किया करते है। विश्व जगत् में सर्वत्र उनकी बासुरी मेरा ही नाम पुकारती हुई बज रही है।......इसीलिये इस ससार की सभी सुन्दर वस्तुएँ मुझे अपने ही से दूर खीच ले जाती है और जहाँ ले जाकर उत्तीर्ण करती है वही मेरे वे परम बन्धु ओठो पर मुस्कान लिए बैठे हुए हैं। हम चाहे जिसे भी क्यो न चाहे वस्तुत चाहते उन्ही को है। सब प्रकार के प्यार-दुलार का अर्थ ईश्वर को ही न्यूनाधिक परिमाण में-जाने अथवा अनजाने-हृदय मे उपलब्ध करना है।.... आनन्द उसके सिवा और कही नही। जल-थल-आकाश, फल-फूल-शस्य, पिता-

पुत्र भ्राता, पत्नी-कन्या माता में वही आनन्द रूप एकमात्र विराजमान ह। जीवन में जो हमारा परमप्रिय ह, वही हमारा परमेश्वर हैं। जहाँ वे असीम ह और म ससीम, वे स्रष्टा हैं, मैं सृष्ट, वे ईश्वर ह, म दीन, वहीं उनम और मुझमें अनन्त व्यवधान हैं। वहा किसी भी तरह उनका ओर छोर पाना सभव नही। किन्तु वहाँ वे मेरे ही लिए सुदर होकर, प्रिय होकर मेरे ही पुत्र-वधु अथवा प्रेमी बनकर मुझे मधुर भाव से दर्शन देते ह, वहीं वे मेरे समकक्ष होकर मानो मेरे ही प्रेमपाश में पकडाई दे जाते हैं। उस समय वे मथुरा का राजत्व त्याग, बाँसुरिया हाथ में लिए, वृदावन के गोप बालकों में आकर खडे होते ह। इसलिये भक्त पुकार कर कहता है

। तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानिय जो भाव।

वास्तव में भक्तो के इस दृष्टिकोण को ध्यान म रखे बिना भक्ति-काव्य के मम को समझना कठिन है।

प्रस्तुत प्रबध में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के कृष्ण काव्य का समझने तथा कृष्णभक्ति शाखा के विभिन्न सम्प्रदायो के दृष्टिकोणो को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रस्तुत प्रबध दस अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में वैष्णव भाव धारा को समझने की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। वैष्णव धम साधना के क्रमिक विकास, भक्ति तथा भगवान् के अवतार लेने सबधी तथ्यो पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही यह भी समझने की चेष्टा की गई ह कि यह धम-साधना किस प्रकार से साहित्य और शिल्प में प्रतिफलित हुई है। राधा-कृष्ण सबधी कथा ने किस प्रकार से साहित्य और शिल्प को अनुप्राणित किया ह इसका परिचय दिया गया है। ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी के पूव ब्रजभाषा तथा ब्रजबुलि मे कृष्ण-काव्य का स्वरूप कैसा था इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। साहित्य पर वल्लभाचाय और चैतन्य का प्रभाव कितना और किस रूप में पडा इसे समझने के लिए सूर-पूव ब्रजभाषा और चैतन्य पूव बगीय वैष्णव काव्य का परिचय दिया गया है। इस सबध में सूर-पूव ब्रजभाषा के कई कवियो जैसे बजू बावरा, नरहरि तथा विष्णुदास की रचनाओ की विवेचना इस अध्याय में की गई ह। इन कवियो की चर्चा हिंदी साहित्य के इतिहासो में नहीं के बराबर ही हुई ह। चण्डीदास के पदो पर कुछ विस्तार से लिखा गया ह चूकि हिन्दी के पाठको का उनसे बहुत कम परिचय है।

दूसरे अध्याय में व्रजभाषा की भाषागत विशेषताओं तथा उसके उद्भव और क्रमिक विकास को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। अभी तक इस प्रकार से उसे क्रमबद्ध रूप में रखने के प्रयत्न का अभाव ही रहा है।

तीसरे अध्याय में वैष्णवता के प्रभाव से व्रजभाषा साहित्य में होने वाले परिवर्तनों की विवेचना की गई है। किस प्रकार से भाव और शैली के परिवर्तनों में इसका हाथ रहा है इस पर प्रकाश डाला गया है। मध्य युग के साहित्य का धर्म से अत्यधिक सबंध रहा है। व्रजभाषा के भक्ति-साहित्य के बनने और विकसित होने में धर्म का ही हाथ रहा है। इस अध्याय में उसे समझने की चेष्टा की गई है। धर्म और साहित्य का योग इस काल में किस राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति में सम्पन्न हुआ उसका भी परिचय दिया गया है।

राधा-कृष्ण की लीला पर आधारित ईसवी सन् की सोलहवी तथा बाद की शताब्दियो में जिस साहित्य की रचना हुई उसका अध्ययन करने पर यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त भक्त-कवियो ने लीला के किसी एक विशेष अग पर बल दिया है तो दूसरे सप्रदाय के कवियो ने किसी अन्य अंग पर। इस प्रकार की विभिन्नता और वैचित्र्य के पीछे उन सम्प्रदायो की साधन-पद्धति, मान्यताओ आदि का हाथ रहा है अतएव चतुर्थ अध्याय मे वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय तथा सखी सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित दर्शन और सिद्धान्त की विवेचना की गई है।

पाचवे अध्याय में व्रजभाषा के भक्त-कवियो की रचनाओ, जन्मवृत्तान्त तथा काव्य के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख कवियो के अलावा अन्य कृष्ण-सप्रदाय के कवियो का भी समावेश है, साथ ही ऐसे कुछ कवियो तथा उनकी रचनाओ का उल्लेख किया गया है जिन्होने कृष्ण-सप्रदायमुक्त न होकर भी राधाकृष्ण पर व्रजभाषा में भक्ति विषयक रचनाएँ की। वल्लभ शाखा के कवि दामोदर हरसानी तथा गदाधर द्विवेदी की रचनाओ का बहुत ही कम उल्लेख हुआ है। हरसानी की तो कुछ रचनाए व्रजभारती पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख कवि परशु राम की रचनाओ पर भी अभी तक बहुत कम सामग्री प्रकाश में आई है। परशराम रचित 'परशुराम सागर' की हस्तलिखित प्रति का, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है, उपयोग किया गया है। इसी

प्रकार से निम्बार्क सम्प्रदाय के हरिव्यास की रचनाओ के सबध में भी हिन्दी साहित्य में बहुत कम आलोचना हुई ह। प० बल्देव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'भागवत सम्प्रदाय' में थोडा कुछ परिचय दिया है। हरिव्यास की रचना 'महावाणी' अत्यन्त महत्त्व की हैं। महावाणी' का उपयोग इस अध्याय में किया गया है। इसी प्रकार से सखी-सम्प्रदाय के भी बहुत से भक्त-कवियो की रचनाएँ तथा जीवनी बहुत कम प्रकाश में आई ह। सखी-सम्प्रदाय के कई कवियो की रचनाए तो पहली बार इस अध्याय के द्वारा प्रकाश में आ रही हैं। इन कविया म बिहारनि दास, नागरी दास, (उन नागरी दास के भिन्न जा राजा थे), सरसदास नवलदास, श्रीकृष्णदास, नरहरिदास तथा रसिकदास आदि हैं। खोज रिपोर्टों में कही-कही इनमें से कुछ के पद मिल जाते हैं। इन कवियो की वाणियो के सग्रह की हस्तलिखित प्रति का उपयोग इस अध्याय म किया गया है। गदाधर भटट की, जो वास्तव में चैतन्य सप्रदाय में अन्तर्भुक्त थ रचनाओ का भी विवेचन इस अध्याय में किया गया है। चैतन्य सप्रदाय के और भी कई भक्त-कवि हो गए है जिन्हाने ब्रजभाषा में पद रचना की ह। इससे एक बात का पता अवश्य चल जाता ह कि चैतन्य और वल्लभ सम्प्रदाय का एक दूसर पर अवश्य प्रभाव पडा होगा।

छठें अध्याय में ब्रजबुलि के उद्भव और विकास की विवेचना की गई है। ब्रजबुलि की रचनाए नेपाल बगाल आसाम और उडीसा में मिलती ह। उनके सबध में इस अध्याय में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई ह। ब्रजबुलि के व्याकरण क सबध में कुछ विशेष जानकारी हिन्दी ग्रन्था से प्राप्त नही होती अतएव इस अध्याय में कुछ विस्तार से उनकी चर्चा की गई है। इसी कारण ब्रजभाषा की अपेक्षा ब्रजबुलि के व्याकरण का परिचय अधिक दिया गया है।

सातवें अध्याय में बगाल में वैष्णवता के प्रभाव पर विचार किया गया ह। किस प्रकार से वैष्णव धम ने साहित्य को प्रभावित किया तथा किन परिस्थितियो में उसका प्रसार हुआ इन बातो की कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया गया है। इस्लाम धम तथा अचल के अन्य धम और सप्रदाया का प्रभाव किन किन रूपा में पडा इसकी चर्चा इस अध्याय में की गई है। तत्कालीन राजनतिक आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था का भी परिचय दिया गया ह।

जिस प्रकार स ब्रजभाषा के कवियो की रचनाओ को समझने क लिये विभिन्न वैष्णव सप्रदाया की चर्चा चौथ अध्याय में की गई है उसी प्रकार से

आठवें अध्याय में चैतन्य प्रवर्तित गौडीय वैष्णव मत के दर्शन और सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न किया गया है। 'अचिन्त्य भेदाभेद', माया तत्त्व, रागानुगा भक्ति आदि पर इस अध्याय में विचार किया गया है।

नवें अध्याय मे ब्रजबुलि के पद कर्ताओं की रचनाओं तथा जीवनवृत्त पर प्रकाश डाला गया है।

अन्तिम अर्थात् दसवें अध्याय में सिद्धान्त और साधना, पदावली, भाषा तथा छन्द और अलकार की दृष्टि से ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य पर तुलनात्मक रूप से विचार किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध की सामग्री का सकलन कई स्थानो से किया गया है। उन स्थानो और उनके अधिकारियो एव कर्मचारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की लायब्रेरी से मैंने बहुत लाभ उठाया है। ब्रजभाषा के कवियों की हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे सभा की लायब्रेरी मे मिली। इसी प्रकार से विश्वभारती शान्तिनिकेतन में सुरक्षित दो हस्तलिखित पद-सग्रह ग्रन्थ एव फुटकलपदों की हस्तलिखित प्रतियो से ब्रजबुलि के कुछ पदो के आकलन में सहायता मिली है। कलकत्ता की नेशनल लायब्रेरी तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी में भी ब्रजबुलि सबधी बहुत सी सामग्री मिली।

इस प्रबंध के प्रस्तुत करने की प्रेरणा गुरुवर आचार्य डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी से मिली। उनके सुझाव तथा पथ-प्रदर्शन से लाभ उठाने का सतत प्रयत्न किया है। महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज का आशीर्वाद भी प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला है। सपूर्ण प्रबंध की रूप रेखा तथा मतो के सिद्धान्त और साधन-पद्धति सबधी बहुत-सी जानकारी उनके द्वारा प्राप्त हुई है। उनके आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य बराबर प्राप्त होता रहे यही प्रार्थना है। ब्रजबुलि के सबध में डा० सुकुमार सेन, श्री तपन मोहन चटर्जी, विश्वभारती के अध्यापक प० निताई विनोद गोस्वामी तथा अध्यापक डॉ० श्री पचानन मण्डल से अत्यधिक प्रोत्साहन मिला है। डॉ० पंचानन मण्डल ने नाना भाव से इस प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में सहायता पहुँचायी है। स्वर्गीय डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची (भूतपूर्व वाइस चान्सलर विश्वभारती विश्वविद्यालय) ने नेपाल के नाटको के सबध में सामग्री देकर अमूल्य सहायता पहुँचाई है। सभी के प्रति मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

गुरुवर डॉ० जगन्नाथ प्रसाद जी शर्मा ने प्रस्तुत कृति को काशी हिन्दू विश्व विद्यालय की ओर से प्रकाशित होने वाली ग्रन्थमाला में प्रकाशित करने की व्यवस्था की उसके लिए मैं अत्यंत आभारी हूँ। विश्वविद्यालय मुद्रणालय के अधिकारियों ने जिस तत्परता से कृति को छापा है इसके लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

नामानुक्रमणिका तैयार करने में रिसर्च स्कालर कुमारी चंचल वर्मा, एम० ए० और श्री देवनाथ चतुर्वेदी, एम० ए० ने सहायता की है। उनका धन्यवाद देती हूँ। मेरी असावधानी के कारण छपाई में कुछ अशुद्धियाँ रह गई है। सहृदय पाठक क्षमा करेंगे।

हिंदी भवन, शान्ति निकेतन
४-३-१९६४

कणिका तोमर

संक्षिप्त विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
आमुख	१–६
विस्तृत विषय-सूची	९–२५
पहला अध्याय—पृष्ठ भूमि	१–१५०
(१) वैष्णव धर्म का संक्षिप्त विवरण	३–५७
(क) वैष्णव साधना का इतिहास	३–३६
(ख) वैष्णव साधना भक्ति साधना है	३६–५१
(ग) भगवान् का अवतरण	५१–५७
(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप	५७–१०१
(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव काव्य साहित्य	१०१–१५०
(क) सूर से पूर्व ब्रजभाषा का वैष्णव काव्य साहित्य	१०१–११७
(ख) चैतन्य से पूर्व का बंगीय वैष्णव काव्य साहित्य	११८–१५०
दूसरा अध्याय—ब्रजभाषा का उद्भव और विकास	१५१–१७६
तीसरा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव	१७७–१८९
चौथा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य के विभिन्न सम्प्रदायों के दर्शन और सिद्धान्त	१९१–२३८
(क) वल्लभ सम्प्रदाय	१९१–२२९
(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय	२२९–२३०
(ग) सखी सम्प्रदाय	२३०–२३३
(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय	२३३–२३८
पाँचवा अध्याय—ब्रजभाषा साहित्य	२३९–३८०
(क) वल्लभ सम्प्रदाय के कवि	२३९–३०१
(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि	३०१–३४२
(ग) सखी सम्प्रदाय के कवि	३२४–३४८

विपय . पृष्ट सख्या

(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि ... ३४८–३६५
(ङ) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि .. ३६६–३६९
(च) कुछ अन्य कवि ३६९–३८०

छठा अध्याय—व्रजबुलि का उद्भव और विकास .. ३८१–४४०
(क) नैपाल ३९८–४०९
(ख) वगाल ४०९–४१८
(ग) आसाम ४१८–४२७
(घ) उड़ीसा ४२७–४४०

सातवा अध्याय—बंगला साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव .. ४४१–४५८

आठवा अध्याय—चैतन्य सम्प्रदाय के दर्शन और सिद्धान्त .. ४५९–४८९

नौवा अध्याय—बंगाल का व्रजबुलि साहित्य .. ४९०–५८६

दसवा अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन ५८७–६२९
(क) भक्ति और साधना ५८७–६०६
(ख) पदावली ६०६–६१८
(ग) भाषा ६१८–६२५
(घ) छन्द और अलकार ६२५–६२९

× × × ×

सहायक ग्रन्थो की सूची : ६३०–६५३
हिन्दी ६३०–६३९
हिन्दी पत्रिकाए और अभिनन्दन ग्रन्थ ... ६३९–६४०
हिन्दी अप्रकाशित ग्रन्थ और खोज रिपोर्ट .. ६४०–६४२
वगला, आसामी, उडिया ६४३–६४५
वगला पत्रिकाएँ ६४६
वगला अप्रकाशित ग्रन्थ ६४६
सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश ६४६–६५०
अग्रेजी ६५१–६५३
अग्रेजी पत्रिकाएँ ६५३

विस्तृत विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
पहला अध्याय पृष्ठभूमि	१–१५०
(१) वैष्णव धर्म का संक्षिप्त विवरण	३–५७
(क) वैष्णव साधना का इतिहास वैष्णव धर्म का ब्रजभाषा और ब्रजबुलि से सम्बन्ध–वैष्णव धर्म का स्वरूप–वैष्णव साधना के विकासक्रम का त्रिविध वर्गीकरण–वैष्णव धर्म की प्राचीन संज्ञा 'पांचरात्र मत'–पांचरात्र साहित्य–पांचरात्र-सिद्धांत का विभाजन–परमतत्त्व वासुदेव–शक्ति और शक्तिमान शक्ति–तत्त्व–सृष्टि तत्त्व–षड्गुण पांचरात्र मत में लीलावाद–जीव के द्विविध भेद–पांच-रात्र–साहित्य में राधाकृष्ण–पांचरात्र मत का साधन पक्ष–पांचरात्र मत में भक्ति की प्रधानता–वैष्णव धर्म की दूसरी प्राचीन संज्ञा 'भागवत धर्म'–शिला-लेख और प्राचीन लेखों में भागवत धर्म का उल्लेख–गुप्त-नरेश और वैष्णव धर्म–आलवार सन्तों की भावधारा–द्वादश आलवार सन्त–आलवार सन्तों का साहित्य–आलवारों की भक्तिमयी साधना–आलवारों की विशेषताएँ–दाक्षिणात्य आचार्यों की भावधारा–नाथमुनि परम्परानुसार सर्वप्रथम गण्य–यामुनमुनि (९१६ १०४० सन् ईसवी) श्रीसम्प्रदाय या विशिष्टा द्वैतवाद श्रीरामानुजाचार्य (१०१७ ११३७ सन् ईसवी)–उपास्य-स्वरूप–भक्ति और प्रपत्ति की प्रधानता–ईश्वर का स्वरूप–सृष्टि भगवान् की लीला है–चित् का स्वरूप प्रकार–अचित् का स्वरूप–भक्ति के साधन–भक्ति ही एक मात्र लक्ष्य–भक्ति का सार, प्रपत्ति–प्रपत्ति के भेद–जीव और भगवान् का संबंध–जीव में दास्यभाव–श्रीवैष्णवों के दो दल–ब्रह्म सम्प्रदाय या द्वैतवाद मध्वाचार्य (११९७	३–३६

विषय : पृष्ठ-संख्या

१२७६ सन् ईसवी)—ऐतिहासिक महत्त्व—श्रिया की दो अवस्थाएँ—परमात्मा— लक्ष्मी— उपास्यदेव— जीव-जगत्— पंचविध भेद या प्रपच—मोक्षलाभ—मुक्ति मे आनन्द भोग तारतम्य—मुक्ति के प्रकार—माधवमत का गौडीय सम्प्रदाय मे सम्बन्ध—हंस या सनकादि सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत —निम्बार्काचार्य—निम्बार्क का आविर्भाव काल—द्वैताद्वैत मत की प्राचीनता—ब्रह्म—उपास्य—स्वरूप—चित—अचित्—युगल—स्वरूप उपास्य—परामुक्ति और गोलोक रुद्र सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैतवाद (विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य) . सिद्धान्त—पक्ष अस्पष्ट—वल्लभाचार्य (१४७८-१५३० सन् ईसवी)—गौडीय सम्प्रदाय या अचिन्त्यभेदाभेद (श्री चैतन्य १४८६-१५३४ सन् ईसवी) गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय—उपासना-पद्धति का वल्लभ और निम्बार्क से साम्य—अन्य प्रमुख सम्प्रदाय—राधावल्लभीय सम्प्रदाय (हितहरिवंश) —प्रवर्तक—राधा का प्राधान्य-सखी सम्प्रदाय (स्वामी हरिदास) . प्रवर्तक ।

(ख) वैष्णव साधना भक्ति साधना है : वैष्णव धर्म और भक्ति—भक्ति की विभिन्न व्याख्याएँ—जीव और भगवान् का सम्बन्ध—साधना से यथार्थ ज्ञान—भक्ति का स्वरूप गुणमयी और निर्गुणा भक्ति—निर्गुणा भक्ति के दो प्रकार—भक्ति की पुष्टि योग्यता—भाव भेद से, भक्ति—रस से पाँच भेद— (१) शान्त भक्तिरस. शान्ति रति का स्वरूप—दो प्रकार के भेद—शान्तभाव के भक्त की विशेषता—वैष्णव मत मे शान्ता रति का निम्नतम स्तर—(२) दास्य भक्ति रस · प्रीति—रति का स्वरूप—दो भेद भगवद्दासो के प्रकार—सेवा—कर्म और दास्य—भक्ति का स्वरूप— (३) सख्य भक्ति रस —सख्य रति का स्वरूप-शान्ति—प्रीति की तुलना में श्रेष्ठता—सख्य भक्तो के प्रकार—रस—तारतम्य— (४) वत्सल भक्ति रस. वात्सल्य—रति का स्वरूप—वात्सल्य भक्ति का स्वरूप ३६–५१

विषय	पृष्ठ-संख्या
(५) मधुर भक्ति रस मधुरा–रति का स्वरूप–त्रिविध मधुरा–रति–मधुरा–रति स्वकीय और परकीय–शृंगार रस द्विविध–विप्रलम्भ और सम्भोग के प्रकार माधुर्य–भक्ति की सर्वश्रेष्ठता।	
(ग) भगवान् का अवतरण परतत्व का द्विविध स्वरूप अवतार भेद–अवतार का प्रयोजन–स्वयं रूप के अवतरण का प्रयोजन–लीला–द्विविध लीला–लीला वैविध्य अवतरण द्वारा भगवन्–मानव–सुलभ भावों के आलम्बन।	५१–५७
(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप– कृष्ण का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप–कृष्ण के लीला नायक रूप का प्राधान्य–गोपाल कृष्ण का आभीर जाति से सम्बन्ध–तामिल साहित्य में 'कृष्ण'–मायोन और कृष्ण कुड्कुट्ट नृत्य–श्रीकृष्ण के अन्य–नृत्य–कुरुन्द वृक्ष का उखाडना–वृक्ष वशीकरण प्रथा–आलवारों की वाणी में श्रीकृष्ण प्रियतमा प्रधान गोपी–नप्पिनाइ–दोल उत्सव कवियों द्वारा राधा-कृष्ण-कथा का ग्रहण–काव्य में प्रचलित राधा-कृष्ण-कथा का वैष्णव धर्म में ग्रहण–हरि वंश में कृष्ण-कथा विष्णुपुराण में कृष्ण-कथा–श्रीमद् भागवत में कृष्ण लीला का पूर्ण विकास–श्रीमदभागवत में गोपियों की प्रेमलीला–पुराणों में राधा का उल्लेख साहित्य में राधा कृष्ण कथा का प्राचीनतम प्राप्त उल्लेख वेणी-संहार में मानिनी राधा का उल्लेख बाल चरित में व्रज कथा–ध्वन्यालोक' में राधा-कृष्ण संबंधी श्लोक–कवीन्द्रवचनसमुच्चय' में उद्धतराधा सम्बन्धी श्लोक–नल चम्पू में राधा कृष्ण का उल्लेख–ताम्रपत्रों में राधा कृष्ण का–उल्लेख अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्य में श्रीकृष्ण लीला रूपों का दर्शन हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के उदाहरणों में राधा कृष्ण का उल्लेख–संदेश रासक में गोपालिका दशावतार–चरित–दशावतार चरितों में कृष्ण का पराक्रमी स्वरूप–	५७ १०१

विषय : पृष्ठ-संख्या

वाक्पति शिला लेख—सदुक्तिकर्णामृत' में कृष्ण लीला गोपी सदेश विषयक श्लोक—गीतगोविन्द—कृष्ण-कर्णामृत—सर्वस्व—प्रस्तारलिपि में कृष्ण का उल्लेख—प्राकृत पिंगल—प्राकृत कल्पतरु—लोक भाषाओं में राधाकृष्ण लीला विषयक काव्य—ग्रन्थ—वैष्णव—काव्य में विरह-पक्ष की प्रधानता—राधाकृष्ण—कथा के लौकिक तथा पारलौकिक रूप का पृथक्करण—गौड़ीय वैष्णव धर्म में मधुर रस की लीलाओं का प्राधान्य—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के मुख्य प्रचारक—वैष्णव कवियों की वाणी में राधाकृष्ण—कथा का विस्तार—मिलन—विरह के नवीन प्रसंग—गोविन्दलीलामृत में राधाकृष्ण की अष्टकालीय लीला—गौड़ीय संप्रदाय में परकीया भाव की सर्व श्रेष्ठता—वल्लभ सम्प्रदाय में बाल—कृष्ण—श्रीकृष्ण के शौर्य पक्ष की क्रमश क्षीणता—श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी मूर्तियाँ—भारत से बाहर के देशों में कृष्ण—लीला के चिह्नावशेष—चैतन्य—चरितामृत में श्रीकृष्ण—लीला विषयक मूर्तियों का उल्लेख—चित्रकला में श्रीकृष्ण—लीलाएँ।

(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव-काव्य साहित्य १०१-१५०

(क) सूर से पूर्व व्रजभाषा का वैष्णव काव्य साहित्य : १०१-११७

गोस्वामी विष्णुदास—विष्णुदास का पद—साहित्य—बैजू बावरा—बैजू बावरा के पद—नरहरि—हुमायूँ, शेरशाह, अकबर के दरबारी कवि—रुक्मिणी मंगल—नरहरि के भक्ति विषयक स्फुट पद—निम्बार्क सम्प्रदायी कवि तथा उनकी रचनाएँ—श्रीभट्ट रचित युगल—शतक—हरिव्यास रचित 'महावाणी'—परशुराम रचित 'परशुराम सागर'।

(ख) चैतन्य से पूर्व का बंगीय वैष्णव काव्य साहित्य : ११८-१५०

मलाधर वसु—श्रीकृष्ण-विजय—श्रीकृष्ण कीर्तन-श्रीकृष्ण कीर्तन में वर्णित लीलाएँ—श्रीकृष्ण कीर्तन के पद—चण्डीदास और गीतगोविन्द की राधा—चण्डीदास के

विषय | पृष्ठ-सख्या

कुछ पद–मैथिल कवि विद्यापति को बगालियो का अपनाना–चण्डीदास और विद्यापति–विद्यापति की विशेषताएँ–विद्यापति के कुछ पद।

दूसरा अध्याय—ब्रजभाषा का उद्भव और विकास– १५१–१७६

काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा–ब्रजभाषा साहित्य की व्यापकता–सन ईसवी की १६ वीं शताब्दी की छिटपुट रचनाएँ–'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग–पिंगल–पुरानी ब्रजभाषा का नाम–परिनिष्ठित अपभ्रश–अवहट्ट–अवहट्ट–उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा–अवहट्ट पर प्रात विशेष की छाप–पूर्वी और पश्चिमी अवहट्ट–पूर्वी अवहट्ट की रचनाएँ–पश्चिमी–अवहट्ट की रचनाएँ ब्रजभाषा की भाषा सबधी कुछ विशेषताएँ–प्राचीन काव्य भाषा का रूपान्तर–आधुनिक भारतीय भाषाओ का उदय–परवर्ती अपभ्रश में ब्रजभाषा का पूर्व रूप–प्राकृत पगल में ब्रजभाषा की क्रियाओ, सज्ञाओं के प्रयोग–पृथ्वीराज रासो और 'ढोला मारू रा दूहा' में ब्रजभाषा का विकसित रूप–अमीर खुसरो की रचनाओ में ब्रजभाषा–सन् ईसवी की १५ वी शताब्दी तक ब्रजभाषा की रचनाओ का प्रभाव–कबीर की रचनाएँ–ब्रजभाषा साहित्य का आरम्भ और वल्लभ सम्प्रदाय–रामानन्द वल्लभाचार्य और अष्टछाप के कवि–वृन्दावन में महाप्रभु चैतन्य के शिष्य–कृष्ण भक्ति और ब्रजभाषा साहित्य–तुलसीदास की रचनाएँ और नाभादास का भक्तमाल–नरोत्तमदास का सुदामा चरित तथा बादशाह अकबर की रचनाएँ–'रीतिकाल' का साहित्य–' रीतिकाल के प्रमुख कवि–भारतेन्दु की रचनाएँ–ब्रजभाषा के गद्य साहित्य का विकास–ब्रजभाषा में लिखित टीका–ग्रथ–ब्रजभाषा के नाटक–ब्रजभाषा के लीला सबधी भक्त कवियो के नाटक।

विषय : पृष्ठ-संख्या

तीसरा अध्याय—व्रजभाषा साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव : १७७-१८९

व्रजभाषा साहित्य और भक्ति आन्दोलन—तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति—धार्मिक आन्दोलन—भक्ति आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव—तत्सम शब्दो का प्रयोग—भक्ति काल के पूर्व का साहित्य—सूरदास के पहले की रचनाएँ—व्रजभाषा साहित्य में लीला वर्णन—लीलागान की परपरा—मधुर रस की भक्ति और व्रजभाषा साहित्य—गेय पदो की परम्परा—काव्यत्व और भक्ति का योग—कृष्ण-भक्त कवि और नायिका-भेद—भक्ति आन्दोलन और ईसाई धर्म—मधुर रस की भक्ति और महायान—व्रजभाषा की रचनाओ मे कृष्ण-रास—भक्तिकाल के चरित—काव्य ।

चौथा अध्याय—व्रजभाषा साहित्य के विभिन्न संप्रदायो के दर्शन और सिद्धान्त ... १९१-२३८

(क) वल्लभ सम्प्रदाय : वल्लभ—मत के प्रर्वतक श्रीवल्लभाचार्य—वल्लभ—मत की अन्य सज्ञाएँ—वल्लभाचार्य का साधन—पक्ष 'पुष्टि-मार्ग'—वल्लभ सम्प्रदाय मे ब्रह्म या श्रीकृष्ण : ब्रह्म का स्वरूप—ब्रह्म की लीला सृष्टि का कारण—ब्रह्म के आविर्भाव—तिरोभाव की अवस्था—ब्रह्म के तीन प्रकार—भगवान की शक्ति—माया—रसरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म—लीला के लिये श्रीकृष्ण का परिकरो के साथ अवतरण—कृष्ण अवतार के दो रूप—वल्लभ सम्प्रदाय में राधा . राधा-स्वरूप—राधा स्वमिनी और स्वकीया—वल्लभ संप्रदाय में गोपी गोपी-स्वरूप—गोपियाँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्ति—सर्वात्मभाव और उसके पाच सोपान—गोपियाँ सर्वात्मभाव का पूर्ण प्रतीक—गोपियाँ सर्वश्रेष्ठ भक्त—गोपी आत्मा और श्रीकृष्ण परमात्मा—गोपियो के तीन प्रकार—'अन्यपूर्वा', 'अनन्यपूर्वा', सामान्या'—अष्ट सखा-सखी—वल्लभ सम्प्रदाय में जीव : जीव का स्वरूप—माया का जीव पर प्रभाव— १९१-२२९

विषय | पृष्ठ-संख्या

भगवान के अनुग्रह से जीव का ब्रह्मभाव—जीव के प्रमुख तीन प्रकार—पुष्टि जीव—मर्यादा जीव—प्रवाही जीव—मुख्य तीन प्रकार के जीवों का भेद-उपभेद—जीवों के वर्गीकरण की विशेषता—जीव का ब्रह्मभाव—वल्लभ सम्प्रदाय में जगत जगत् ब्रह्म का अविकृत परिणाम—ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान कारण—ब्रह्म-कृत 'जगत' और जीव-कृत ससार—जगत् और ससार में भेद—भगवान की भक्ति और कृपा से ससार की निवृत्ति—विद्या द्वारा अविद्या का उपशमन—जीव की चरम फल प्राप्ति 'ब्रह्मभाव'—वल्लभ सम्प्रदाय में भक्ति का स्वरूप माहात्म्य ज्ञान और प्रेम ही भक्ति है—पुष्टि मार्ग—मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति—भगवान् के अनुग्रह का तात्पर्य—लीला सवभावेन भगवान् का भजन—नवधा भक्ति तथा दसवी प्रेम लक्षणा भक्ति—दसधा भक्ति और अष्टछाप के कवि—प्रेम की तीन अवस्थाएँ—दीक्षा और ब्रह्म सबध—सम्प्रदाय के सेव्य रूप—प्रपत्ति—वल्लभ-सम्प्रदाय की विशेषताएँ—वल्लभ सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव—

(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय—युगल-सरकार की उपासना और इस सम्प्रदाय के कवि—निम्बार्क सम्प्रदायों में श्रीराधा की प्रधानता— | २२९-२३०

(ग) सखी सम्प्रदाय स्वामी हरिदास—सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक—भक्तमाल में वर्णित हरिदास जी का परिचय—हरिदास जी के चमत्कारों से सम्बंधित कहानियाँ—टट्टी सस्थान के महन्त—सखी सम्प्रदाय में गोपी भाव से उपासना | २३० २३३

(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय प्रवर्तक—राधातत्व की प्रधानता—सम्प्रदाय में श्रीराधा का स्थान—युगल किशोर रूप और नित्य विहार लीला—जीव वास्तव में प्रेमरूपा गोपी है—'हित' प्रेम ही परमात्मा—ब्रजभाषा और सम्प्रदाय के भक्त कवि। | २३३ २३८

विषय : पृष्ठ-संख्या

पांचवा अध्याय— ब्रजभाषा-साहित्य

ब्रजभाषा-साहित्य और विभिन्न सम्प्रदाय २३९-३८०

(क) वल्लभ-संप्रदाय के कवि : सूरदास—सूरदास पर वल्लभाचार्य का प्रभाव—वल्लभाचार्य का प्रथम दर्शन—सूरदास की जन्मभूमि—सूरदास की जन्मतिथि—जीवन-वृत्त—दीक्षा सूरदास के विभिन्न नाम—क्या सूरदास अन्धे थे ?—प्रेम का स्वरूप—भक्तमाल मे सूरदास का परिचय—लीला का स्वरूप—वात्सल्य का चित्रण—बाल-लीला—सयोग वर्णन—वियोग वर्णन—भ्रमरगीत—सूरदास की रचनाएँ—परमानन्ददास—परमानन्ददास का परिचय भक्तमाल में—'सारग' छाप—भक्तमाल मे वर्णित—चार परमानंद—जन्मतिथि—व्याह का प्रसग—प्रयाग में परमानन्ददास—दीक्षा—रचनाएँ—दास्य-भाव—बाल-लीला—विरह के पद—संयोग के पद-कृष्णदास-जीवन वृत्त—भक्तमाल में उल्लेख वार्ता का विवरण—रूप माधुरी के पद—खडिता नायिका—रचनाएँ—कुभनदास—भजनानदी कुभनदास—कुभनदास के पदो में मधुर रस की प्रधानता—प्रीति ही एकमात्र काव्य—कीर्तन की रचनाएँ—परम सतोषी कुम्भनदास—जन्म और मृत्यु—तिथि—नददास—नंददास का जीवन वृत्त और भक्तमाल—रचनाएँ—कोमल कान्त पदावली—नंददास की गोपियाँ तथा भ्रमरगीत—विरह की विशेषता—सयोग-शृगार के वर्णन—जीवन वृत्त—पूर्वानुराग के पद—छीत स्वामी जीवन वृत्त—दीक्षा—काव्य की विशेषता—गोविन्द स्वामी संगीतज्ञ—दीक्षा तथा जन्म और मृत्यु की तिथियाँ—जीनव वृत्त—रचनाएँ बाल—लीला—मधुर रस के पद—चतुर्भुजदास सम्प्रदाय मे विशिष्ट स्थान—जीवन—वृत्त—रचनाएँ—बाल—लीला—रूपासक्ति और संयोग वर्णन—दामोदरदास हरसानी : वल्लभ सप्रदाय में इनका स्थान—जीवन—वृत्त—गोस्वामी विट्ठलनाथ और दामोरदास—उनके कुछ पद—रसखानि २३९-३०१

विषय — पृष्ठ-संख्या

जीवन-वृत्त, जन्म तिथि, वंश परिचय-रचनाएँ-आस करन भक्तमाल में वर्णित आसकरण जी का वृत्त-जीवन वृत्त और पद-गदाधर दास द्विवेदी रचनाएँ-जीवन-वृत्त-गदाधर नाम के और अन्य भक्त-दीक्षा-इनके काव्य का वैशिष्ट्य-पद-नागरीदास जीवन वृत्त-नागरीदास की भक्ति-रचनाएँ-सूफी प्रभाव और अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग-राधाकृष्ण-लीला-व्रजभूमि से प्रेम-इश्क चमन।

(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्टजी-भक्तमाल में श्रीभट्टजी का वृत्तान्त-युगल शतक-युगल मूर्ति का सरस वर्णन-चमत्कार की कहानियाँ-श्रीभट्टजी के गुरु-पद-संयोग-शृंगार-मान-रूपासक्ति-हरिव्यासजी हरिव्यासजी का निम्बार्क सम्प्रदाय में महत्व-भक्तमाल में वर्णित जीवन-वृत्त-हरिव्यासजी का काल शिष्य सम्प्रदाय-महावाणी-पदों की सरसता-रूपासक्ति-प्रेम की तन्मयता-नित्यलीला-महावाणी की कुंजी-श्रीपरशुरामाचार्य-वंश परिचय-काल-मृत्यु-तिथि, जीवन-वृत्त-सलीमशाह चिश्ती भक्तमाल में वर्णित इनका वृत्त-हरिव्यास छब्बीसी में इनका परिचय-रचनाएँ-रचनाओं की विशेषता-पद-रूपासक्ति-गोपियों का विरह-वर्णन-घनानन्द जीवन वृत्त-काव्य की विशेषता-विरह के पद-भक्ति-रसिक गोविन्द रचनाएँ-वंश परिचय, गुरु और सम्प्रदाय-रचना काल-काव्यत्व। — ३०१-३२४

(ग) सखी सम्प्रदाय के कवि स्वामी हरिदास हस्तलिखित प्रति के कुछ पद-रूपासक्ति-हिंडोरा-मान-बिहारिनि दास पदों की हस्तलिखित प्रति-सिद्धान्त के पद-भक्ति की महिमा-लीलाविषयक पद-युगलरूप-माधुरी-नागरीदासजी गुरु-कुण्डलियाँ-रचनाएँ-सरसदास-जी परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद-सिद्धान्त के पद-नवल्दास रचना-युगल छवि का वर्णन-मिश्रबन्धु विनोद में इनका परिचय-श्रीकृष्णदासजी नागरीदास — ३२४-३४८

विषय : पृष्ठ-संख्या

के शिष्य–वृन्दावन का वर्णन–भक्ति–नरहरिदास : सखी सम्प्रदाय में स्थान–सिद्धान्त के पद–रूपासक्ति–रसिकदास जी . सिद्धान्त के पद–काव्यत्व–सागी–किशोरीदासजी (ललित किशोरी) · सिद्धान्त के पद–गुरु–परिचय–जीवन वृत्त–'उज्ज्वल सिंगार रस' के पद–रूपासक्ति–लीला के पद–भक्ति–'ललितमाधुरी' के पद-भगवत रसिक · काल और गुरु परिचय–जनाभवत भाव–रचनाएँ–भगवद्भक्ति का रस–वृन्दावन–सिद्धान्त के पद–सहचरिशरण गुरु परिचय तथा रचनाएँ–इनके काव्य की विशेषता–रूपासक्ति।

(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि : हितहरिवंश उपासना में श्रीराधा की प्रधानता–भक्तमाल में वर्णित उनका परिचय–जीवन वृत्त–भगवत्प्रेम का सरस वर्णन–रूपासक्ति–रचनाएँ–हरिराम शुक्ल 'व्यास' . इनकी भक्ति का स्वरूप और जीवन वृत्त–वृन्दावन तथा भक्तो का महत्व–भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय–रचनाएँ–सयोग वर्णन–व्रज के प्रति भक्ति–ध्रुवदास . रचनाएँ–गुरु–परिचय–माधुर्य-भाव–वृन्दावन–रूपासक्ति–प्रेम-वर्णन–चाचा हित वृन्दावनदास 'चाचा' शब्द का प्रयोग–काल निर्णय–जीवन वृत्त–रचनाएँ–प्रेम का स्वाभाविक चित्रण–बाललीला–वृन्दावन की शोभा–छद्म-लीला का वर्णन–हठी · गुरु–राधा सुधा शतक–श्रीराधा की भक्ति–रूपासक्ति–वृन्दावन के प्रति आसक्ति–अलबेली अली : सम्प्रदाय और गुरु–परिचय–संस्कृत की रचना–गुरु भक्ति–लीला के पद– ३४८-३६५

(ङ) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि : गदाधर भट्ट का जीवन वृत्त–भक्तमाल में इनका परिचय–रचनाएँ–प्रियादास और चैतन्य के प्रति उनकी भक्ति– ३६६-३६९

(च) कुछ अन्य कवि : तुलसीदास श्रीकृष्ण गीतावली–बाल-लीला–गोपी विरह–उद्धव और गोपियाँ–विहारी : ३६९-३८०

विषय पृष्ठ-संख्या

दोहो की विशेषता–कुछ दोहे–देव काव्य की विशेषता–कुछ पद–गुणमजरीदास जीवन वृत्त–चैतन्य महाप्रभु के प्रति भक्ति–रूपासक्ति–नारायण स्वामी जीवन वृत्त और रचनाएँ–विरह के पद–निगुण–सगुण और अभेद–सत्यनारायण कविरत्न' जीवन वृत्त–भ्रमर दूत–

छठा अध्याय—ब्रजबुलि का उदभव और विकास ३८१ ४४०

ब्रजबुलि–'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग–ब्रजबुलि और ब्रजमडल–ब्रजबुलि के उदभव सम्बन्धी ग्रियसन का मत–ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दीनेशचन्द्र सेन का मत–ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में प्रभेद–ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० सुकुमार सेन का मत–वैष्णव पदावली का वर्ण्य-विषय–अवहट्ट और आधुनिक लोक भाषाएँ–अवहट्ट में वर्णित राधा-कृष्ण लीला–चर्यागीति में वष्णव पदो के प्रेमरस का आभास–उमापति ओझा की रचनाएँ–ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० सुकुमार सेन के मत की आलोचना–ब्रजबुलि का व्याकरण और भाषागत विशेषताएँ। ३९८ ४०८

(क) नेपाल नेपाल के पदावली साहित्य का विकास ऐतिहासिक पष्ठभूमि पर आधारित–हरिसिंह देव तथा नेपाल–मोरग का नाटयगीति और पदावली साहित्य–नेपाल के मल्ल राजा जयस्थिति का धर्म शास्त्र सपादन करवाना–जयस्थिति के सभाकवि के पुत्र मणिक के दो नाटक 'अभिनव राघवानन्द' और 'भैरवानन्द'–नेपाल में ब्रजबुलि रचना का आरम्भ–पाडव विजय नाटक–विद्या विलाप नाटक–नेपाल के नाटकों में केवल गीत–कृष्ण-लीला विषयक नाटक में गेय पद–नेपाली भाषा की रचनाओं में बगला का मिश्रण–हरगौरी विवाह नाटक तथा कुजविहारी नाटक–मल्यगन्धिनी तथा मदनचरित नाटक–कवीन्द्र प्रतापमल्ल देव की रचनाएँ–गीत दिगम्बर, हरकेलि तथा चतुरग तरगिणी नाटक–

विषय : पृष्ठ-संख्या

गोपीचन्द्र नाटक और हरिश्चन्द्र नाटक—श्रीनिवास मल्ल का व्रजबुलि का पद—अश्वमेध नाटक और मदालसाहरण नाटक—भूपतिन्द्र मल्ल की रचनाएँ—भाषा संगीत में व्रजबुलि के पद—रणजीत मल्ल की रचनाएँ—रामचरित्र और माधवकाय कन्दला—रणजीत मल्ल रचित नाटक—नाटकों में व्रजबुलि ।

(ख) बंगाल . व्रजबुलि की व्यापकता—बंगाल में व्रजबुलि का प्राचीनतम उदाहरण—'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' में व्रजबुलि—व्रजबुलि पर मैथिल का प्रभाव—गोविन्ददास कविराज और व्रजबुलि—सत्रहवीं शताब्दी के बाद का व्रजबुलि साहित्य—सत्रहवीं शताब्दी—उन्नीसवीं शताब्दी में व्रजबुलि साहित्य—परवर्ती काल के व्रजबुलि के कुछ पद । ४०९-४१८

(ग) आसाम : शंकरदेव और असमिया संस्कृति—आसाम का वैष्णव साहित्य—आसाम में व्रजबुलि साहित्य का प्रवर्तन—असामी साहित्य और व्रजबुलि—आसामी व्रजबुलि और व्रजभाषा—असमिया व्रजबुलि पर व्रजभाषा साहित्य का प्रभाव—आसाम के बड़गीत—आसामी के नाटक—आसामी नाटकों की भाषा—आसामी व्रजबुलि का गद्य—पौराणिक निबंध—आसामी तथा बंगाल के व्रजबुलि साहित्य में प्रभेद । ४१८-४२७

(घ) उड़ीसा उड़ीसा में वैष्णव धर्म—उड़ीसा में व्रजबुलि साहित्य—राय—रामानन्देरभणितायुक्त पदावली—सोलहवीं शताब्दी में उड़ीसा के व्रजबुलि के कवि—वृद्ध चम्पति राय और दामोदर चम्पति राय—सत्रहवीं शताब्दी के तीन प्रमुख कवि—उड़ीसा का व्रजबुलि साहित्य बहुत कुछ अनुपलब्ध—पंच सखा—बलराम दास—जगन्नाथदास—अच्युतानन्द—यशोवन्त मल्लिक—अनन्तदास—व्रजबुलि साहित्य को पंचसखाओं की देन । ४२७-४४०

सातवां अध्याय—बंगला-साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव : ४४१-४५८

चैतन्य का युगान्तरवादी प्रभाव—वैष्णव

विषय पृष्ठ-सख्या

भाव धारा का व्यापक प्रभाव—साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव—बगाल में वैष्णवता—बगाल के वष्णव सेन राजा—तत्कालीन साहित्य की दो धाराएँ—राधा के विकास में शाक्त धम का प्रभाव—गीत गोविन्द की राधा—बडु चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीतन—मालाधर वसु का 'श्रीकृष्णविजय'—चतन्य पूव श्रीकृष्ण का स्वरूप—चतन्य की समसामयिक राजनतिक परिस्थिति—इस्लाम का प्रभाव—तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति—नवयुग का उदय—चैतन्य-पूव मधुर रस की साधना—प्रेम रस के आदि प्रचारक—माधवेन्द्रपुरी—नवद्वीप का वष्णव समाज—गौडीय वैष्णव काव्य साहित्य और गाथा सप्त सती—वष्णव सहजिया मत और गौडीय वैष्णव साधना—सहजियामत और चतन्य चरितामृत'—सहजमत की देहाश्रित प्रेम साधना—सहज भावना अतमुख ह—सहजिया मत का प्रेम तत्व—चैतन्य साधना और सहजिया साधना का अतर।

आठवा अध्याय—चतन्य सम्प्रदाय के दशन और सिद्धात-सिद्धान्त ४५९ ४८९

गौडीय दशन और सिद्धान्त गौडीय वष्णव मत क प्रवत्तक—गौडीय वैष्णव मत का स्वावलम्बन—चतन्य और अचिन्त्य भेदाभेदवाद—चतन्य सम्प्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण एक ही तत्व ब्रह्म 'परमात्मा 'भगवान —श्री कृष्ण ही परब्रह्म—श्रीकृष्ण का स्वरूप—श्रीकृष्ण सगुण एव निगुण—श्रीकृष्ण में विरुद्ध धम—श्रीकृष्ण लीलामय—नरलीला—श्रेष्ठलीला—श्रीकृष्ण में माधुय की प्रधानता—श्रीकृष्ण का ऐश्वय माधुय के आधीन श्रीकृष्ण रसिक शिरोमणि—श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता—भगवान् श्रीकृष्ण—करुणामय—भक्तवत्सल—चतन्य सम्प्रदाय में शक्ति या राधा श्री कृष्ण की मुख्य शक्तियाँ—स्वरूप शक्ति के तीन प्रकार—श्रीराधा

विषय : पृष्ठ-संख्या

का स्वरूप—कृष्ण राधा के वशवर्ती—राधा मूल कान्ता शक्ति—राधा—लीला रस आस्वादन का आधार—प्रेम का स्वरूप तथा राधाकृष्ण की युगल उपासना—चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीगौराग (महाप्रभु चैतन्य) श्रीगौराग के रूप मे राधा-कृष्ण का मिलन-नवद्वीप-लीला—गौर-लीला का उद्देश्य—श्रीकृष्ण और गौराग में अभिन्नत्व—चैतन्य सम्प्रदाय में गोपी गोपी का स्वरूप—गोपी प्रेम—गोपी प्रेम की विशुद्धता—गोपियो के प्रकार—सेवा भेद से दो प्रकार की गोपियाँ—चैतन्य सम्प्रदाय मे जीव : जीव भगवान् की शक्ति—ब्रह्म-जीव मे भेदाभेद सबध—जीव तटस्थ शक्ति—जीव के प्रकार नित्यमुक्त जीव—भगवत् कृपा से भक्ति प्राप्ति—बद्ध जीव—जीव की माया—निवृत्ति के उपाय—चैतन्य सप्रदाय में जगत् ' ससार का स्वरूप—मुक्त भक्त और बद्ध जीव के जगत् में अन्तर—गौडीय वैष्णव सप्रदाय में भक्ति का स्वरूप—भक्ति की विशेषता—गौडीय—वैष्णवाचार्यो द्वारा भक्ति रस साहित्य में ग्रहण—जीव की प्रेम-सेवा और भक्तिमयी साधना—प्रेम पचम पुरुषार्थ—प्रेम का क्रमिक विकास—साधुसग और भजन—निष्ठा, रुचि, आसक्ति, रति और प्रेम भक्ति के तीन स्वरूप—साधन भक्ति के चौसठ अग—साधन भक्ति के प्रकार—रागात्मिका—भक्ति—रागात्मिका भक्ति के दो प्रकार—रागानुगा भक्ति—रागानुगा भक्ति रागात्मिका का साधन—रागानुगा भक्ति के भेद उपभेद—रागानुगा के साधन दो प्रकार—मधुर भाव की सेवा श्रेष्ठतम—वैधी और रागानुगा मे अन्तर—साधन भक्ति का सार कृष्ण स्मृति—भाव—भक्ति—भाव—भक्ति का स्वरूप—भगवत् कृपा से भाव—उत्पत्ति—भाव के पाच प्रकार—रागमार्ग का भक्त—प्रेम भक्ति का स्वरूप—प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव—स्नेह और उसके प्रकार—मान और उसका स्वरूप—

विषय पृष्ठ-सख्या

मान और प्रणय का सबध–प्रणय की परिणति राग में–अनुराग का स्वरूप–भाव और महाभाव–भक्तो के प्रेम की श्रेणियाँ–महाभाव के दो प्रकार–चरम-साध्य महा भाव–गौडीय वैष्णव–धर्म की विशेषताएँ ।

नवा अध्याय बगाल का ब्रजबुलि–साहित्य ४९० ५८६

ब्रजबुलि की दीर्घकालीन परम्परा–ब्रजबुलि और ब्रजभाषा–यशोराज खान जीवन वृत्त–यशोराज खान का एक खडित पद–एक और पद–ब्रजबुलि पद का प्राचीनतम उदाहरण–रामानन्द राय जीवन वृत्त–चैतन्य देव के साथ साक्षात्कार–चैतन्य को सुनाया जाने वाला पद–युगल स्वरूप सबध पद–ब्रजभाषा का प्रभाव–राम राय कौन ? चैतन्य देव के स्नेहाधीन–वासुदेव घोष जीवन वृत्त रचनाएँ–नागरी भाव के पद– गौराग विषयक पदो का वैशिष्ट्य–रामानन्द वसु जीवन वृत्त–पद–रचनाएँ–वृन्दावनदास जीवन वृत्त–रचनाएँ–पद–माधवदास जीवन वृत्त और रचनाएँ–पद–पुरुषोत्तमदास जीवन वृत्त और रचनाएँ–पद–ज्ञानदास जीवन वृत्त–काव्य का वैशिष्ट्य–मुग्धावस्था का प्रेम–रूपानुराग–राधा का मान–चैतन्य सबधी पद–रचनाएँ–अनन्तदास जीवन वृत्त और रचनाएँ–कृष्ण के रूप लावण्य का वर्णन–बलरामदास जीवन वृत्त–रचनाएँ–राधा के विरह में कृष्ण की अवस्था–रास लीला–चैतन्य सबधी पद–काव्य का वैशिष्ट्य–गोविन्द दास कविराज जीवन वृत्त–रचना वैशिष्ट्य–कृष्ण के रूप का वर्णन–लज्जा–वर्णन–राधा का श्याममय रूप–अभिसार–मुरलि–वादन–कृष्ण के रूप का वर्णन–कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना–वियोग की अवस्था की कामना–अलकार की छटा–चैतन्य वन्दना–रचनाएँ–कविशेखर राय जीव वृत्त रचनाएँ–निशाभिसार–रचना कौशल में विद्यापति से साम्य–वर्षा ऋतु में

विषय : पृष्ठ-संख्या

विरहिणी की दशा—इनकी रचनाओं में विद्यापति की रचनाओं का भ्रम—चैतन्य—स्तुति—कविरंजन, कविशेखर, विद्यापति—राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीडा—रचनाएँ—वल्लभ-दास वल्लभ—छाप—जीवन वृत्त—युगल स्वरूप—कवि वल्लभ जीवन वृत्त प्रेम प्रगाढता—विद्यापति के पदो से साम्य—राधावल्लभदास : जीवन वृत्त—रचनाएँ—प्रथम दर्शनजन्य प्रेम—दूती द्वारा श्रीकृष्ण के रूप—गुण—प्रेम का बखान—रचनाएँ—प्रसाददास . जीवन वृत्त रचनाएँ—कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन—रूप सौन्दर्य—धरणी : पदकल्पतरु धरणी के पद—राधा का कामदेव को दोषी बनाना—किशोरदास जीवन वृत्त एव रचनाएँ—अभिसार—रचनाएँ—नृप वैद्यनाथ प्रथम मिलन—विद्यापति से साम्य—घनश्याम दास जीवन वृत्त—नरहरिदास के पदो का मिश्रण—रचनाएँ—बारहमासा—वक्रोक्ति अलकार का चमत्कार—वर्षा की अधेरी रात मे राधा की दशा—सुन्दर दास · जीवन वृत्त एव रचनाएं—बलराम का रूप सौन्दर्य—जगदानन्ददास . जीवन वृत्त—पद—राधा की कमनीय शोभा—रचनाएँ—गोपालदास : जीवन वृत्त—रचनाएँ—अभिसार—खण्डिता—रचनाएँ—तरुणो—रचनाएँ और जीवन वृत्त—खण्डिता प्रेमदास : जीवन वृत्त—रचनाएँ—पद घनरामदास . वैशिष्ट्य—रचनाएँ घनश्याम दास नाम के और कवि—रचनाएँ—घनश्यामदास का परिचय—वात्सल्य—राधामोहन ठाकुर : जीवन वृत्त—स्वकीया—परकीयावाद का सैद्धान्तिक विरोध—रचनाएँ—पदो का वैशिष्ट्य—श्रीकृष्ण वन्दना।

दसवां अध्याय—तुलनात्मक अध्ययन : ५८७-६२१

(क) भक्ति और साधना . भक्ति के आश्रय-वल्लभ और चैतन्य—सम्प्रदाय—वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायो में साम्य गौडीय वैष्णव मत—वल्लभ की पुष्टि भक्ति—निम्बार्क, राधावल्लभी और सखी-सम्प्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय ५८७-६०६

विषय पृष्ठ-संख्या

में राधा-तत्व-चैतन्य सम्प्रदाय में परकीया भाव-वल्लभ सम्प्रदाय की मधुर और सख्यभक्ति सखी और मंजरी-द्वादश गोपाल पंच सखा और पंच तत्व-वल्लभ-भगवान् के अवतार-चैतन्य-पूर्ण अवतार-चैतन्य-एक ही देह में राधा और कृष्ण-भगवान् की लीला-संयोग-वियोग-लीला-वर्णन में भिन्नता-वल्लभ सम्प्रदायी कवियों की विशिष्टता-वल्लभ-सम्प्रदाय में परकीया भाव-निम्बार्क सम्प्रदाय में मधुर रस की प्रधानता-सखी और राधावल्लभीय सम्प्रदाय में युगल लीला-गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में रस का विवेचन-गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में नाम-संकीर्त्तन का महत्व-चैतन्य सम्प्रदाय में साधन भक्ति-वल्लभ सम्प्रदाय में सेवा का प्राधान्य।

(ख) पदावली बंगाल का पदावली-साहित्य-महाजन पदावली-राधा-कृष्ण लीला का लौकिक रूप में वर्णन-वैष्णव-पदावली में धर्म की अनुप्रेरणा-पदावली में मधुर रस का प्राधान्य-आसाम, उडीसा और नेपाल में ब्रजबुलि के पद-पदकल्पतरु के आधार पर वर्ण्य विषयों की सूची-ब्रजभाषा के वर्ण्य-विषय-विनय के पद-दास्य भक्ति के पद-साख्य रस के पद-जन्म संबंधी पद-बाल लीला-वात्सल्य-रस का पद-शृंगार के पद-ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में वर्णित विभिन्न लीलाएँ-भ्रमरगीत की परम्परा-लीला-वर्णन द्वारा भक्ति-निवेदन। ६०६-६१८

(ग) भाषा—ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के शब्द-बंगला की वैष्णव-पदावली में ब्रजभाषा के पद-ब्रजबुलि की भाषागत विशेषताएँ और ब्रजभाषा-ब्रजबुलि के कुछ शब्द। ६१८-६२५

(घ) छन्द और अलंकार—बंगाल की वैष्णव पदावली के छन्द-बंगला की पदावली और ब्रजभाषा के पदों में अलंकार-ब्रजभाषा के पदों के छन्द। ६२५-६२९

पहला अध्याय

पृष्ठभूमि

(१) वैष्णव धर्म का संक्षिप्त विवरण—

(क) वैष्णव साधना का इतिहास

(ख) वैष्णव साधना भक्ति साधना है

(ग) भगवान का अवतरण

(२) साहित्य तथा शिल्प में राधा कृष्ण-कथा का स्वरूप—

(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव काव्य-साहित्य—

(क) सूर से पूर्व ब्रजभाषा का वैष्णव-काव्य-साहित्य

(ख) चैतन्य से पूर्व का बंगीय वैष्णव-काव्य-साहित्य

वैष्णव साधना का इतिहास

वैष्णव धर्म का ब्रजभाषा और ब्रजबुलि से सबन्ध

मध्ययुग का समस्त भारतीय साहित्य अगर हम कुछ अपवादो को छोड दे तो पाएंगे कि वह प्रमुख रूप से वैष्णव साहित्य ही है। भारत के मध्य कालीन साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह रही है कि धर्म ने अपने आपको प्रकाशित करने के लिये साहित्य को बडे अदभुत ढग से अपनाया। साहित्य और धर्म का यह एकीकरण आश्चर्य चकित करने वाला है। उस काल की एक विचित्र बात यह भी देखने को मिलती है कि सच्चा वैष्णव भक्त ही अच्छा और सच्चा कवि बन सका। यह भक्ति-साहित्य ज्ञान, भक्ति और रस की त्रिवेणी का अपूर्व एव अद्वितीय सगम है। ससार इस साहित्य को पाकर धन्य हो उठा।

वैष्णव-साधना, प्रेम और भक्ति की साधना है। मध्ययुग के वैष्णव साहित्य का अधिकाश भाग कृष्ण को आश्रय कर रचित हुआ है। भक्ति की वेगवती धारा जो दक्षिण से आई उसने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया। कृष्ण-काव्य के आधार कृष्ण तथा उनकी विभिन्न लीलाएँ ही है लेकिन इस काव्य ने देश के विभिन्न भागो में सामाजिक आदि कई कारणो से थोडा भिन्न स्वरूप लिया। यही कारण है कि ब्रज प्रान्त में वल्लभ-सप्रदाय का प्राधान्य रहा तो बगाल प्रान्त में चैतन्य सप्रदाय ने आधिपत्य जमाया।

ब्रजभाषा-साहित्य का चरम उत्कर्ष वल्लभ-सप्रदाय के अष्टछाप के कवियो में देखने को मिलता है और उनमें भी सूरदास प्रधान है। सूरदास के प्राधान्य और उनकी लोकप्रियता के मूल में उनकी असाधारण साधारण शैली तथा कवित्व शक्ति थी। इसमें कोई सन्देह नही कि अष्टछाप के भक्त-कवियो की रचनाओ का माधुर्य तथा उनकी भाव प्रवणता अपने आप में अपूर्व है फिर भी अन्य वैष्णव-सप्रदाय जैसे निम्बार्क, राधावल्लभी, सखी सप्रदाय आदि के भक्त-कवियो की इधर प्रकाश में आने वाली रचनाए कम सुन्दर अथवा ललित नहीं हैं। इन रचनाओ में भी वही भक्त-हृदय की आतुरता, भगवान की रूप-माधुरी और लीला-माधुरी के हमें दर्शन होते है।

व्रजबुलि-साहित्य ईसवी सन् की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बंगाल में पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्त कवियों द्वारा ही इस साहित्य का पोषण एवं संवर्द्धन हुआ। इस प्रकार से व्रजभाषा और व्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन से यह सहज ही समझा जा सकता है कि इन दोनों के मूल में धर्म और दर्शन का ही हाथ रहा है। अतएव यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि इन दोनों साहित्यों के उचित मूल्यांकन तथा रसास्वादन के लिए यह आवश्यक है कि उन दार्शनिक तत्वों और सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त कर लिया जाय जिनसे इन साहित्यों को प्रधान रूप से प्रेरणा मिलती रही है। इसका अर्थ यह है कि वैष्णव-धर्म के स्वरूप तथा उसके क्रमिक विकास को हम समझने की चेष्टा करें।

वैष्णव धर्म का स्वरूप

वैष्णव-धर्म की अन्यतम विशिष्टता उसकी भक्तिमयी साधना है। विष्णु परक होने के कारण यह धर्म वैष्णव-धर्म कहलाया। विष्णु और उनकी स्व-स्वरूपा लक्ष्मी इस धर्म के केन्द्र में है। विष्णु, सभी वैष्णव सम्प्रदायों के परम उपास्य हैं। सभी वैष्णव सम्प्रदाय अपने मत को श्रुति-सम्मत मानते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि विष्णु, वेदों के एक प्रधान देवता है लेकिन जो भक्ति का स्वरूप मध्ययुग में देखने को मिलता है उसे वेदों में ढूंढना व्यर्थ है। जिस वैष्णव-धर्म का परिचय हम उस युग में पाते हैं वह विष्णु तथा भक्ति के क्रम-विकास के साथ नाना भावधाराओं और तत्वों के समावेश से काल-क्रम में संगठित एवं सुव्यवस्थित हुआ। वैष्णवों की इस भक्तिमयी साधना का पहले पहल दर्शन हमें महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्यान के 'पांचरात्र मत' में होता है।

वैष्णव साधना के विकास क्रम का त्रिविध वर्गीकरण

वैष्णव साधना के क्रम-विकास को समझने के लिये निम्नलिखित तीन भावधाराओं का संक्षेप में अध्ययन कर लेना आवश्यक है. (१) प्राचीन पाँचरात्र मत तथा भागवत की भावधारा (२) आलवार सन्तों की भावधारा (३) दार्शनिक आचार्यों की भावधारा। ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी के बाद जो नये सम्प्रदाय विकसित हुए, वे चार प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों में ही अन्तर्भुक्त हैं इसलिए इनकी अलग से यहाँ चर्चा नहीं की जा रही है।

वैष्णव धर्म की प्राचीन सज्ञा 'पाचरात्र मत'

वैष्णव धम की प्राचीन सना 'पाचरात्र मत' है। इस मत का निरूपण महाभारत के शान्तिपव के नारायणीयोपाख्यान में किया गया है। महर्षि नारद इस पाचरात्र मत के उद्घाटन करने वाले तथा प्रमुख उपासक माने जाते हैं। इस मत में भक्ति की प्रधानता है। नारद और शाण्डिल्य दोनो का सबन्ध पाचरात्र मत से अत्यन्त घनिष्ठ रहा है। ये दोना ही भक्ति-सूत्रो के रचयिता है। 'शाण्डिल्य सहिता' का उल्लेख बहुत से प्राचीन ग्रथो में पाचरात्र सहिता के रूप में मिलता है। नारद पाचरात्र अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारद, पाचरात्र मतावलम्बी थे। इन दोना के सबन्ध में कुछ इस तरह की बाता का उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि भक्ति आन्दोलन का सबन्ध अवदिक विचारधारा से रहा है। कहा जाता है कि शाण्डिल्य ऋषि को वेदो में परम श्रेयस नही मिला और उन्हें पाचरात्र के आश्रय से परम तृप्ति हुई। इसी प्रकार नारद के सबन्ध में विचित्र कहानी कही जाती है। ऊपर महाभारत के जिस शान्तिपव का उल्लेख किया गया है उसके अध्ययन से पता चलता है कि जब नारद को पाचरात्र मत के रहस्या को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई तब वे श्वेतद्वीप में गए। वहाँ के निवासी नारायण के एकान्त उपासक थे। उनका रग श्वेत था और व दिव्य प्रभा पुज से प्रकाशित हो रहे थे। नारद ने नारायण की प्राथना की और नारायण ने उनपर अनुग्रह कर पाचरात्र मत का रहस्य प्रकट किया। महाभारत के अनुसार नारद जी इस मत के प्रधान प्रचारक कहे गये है। उपनिषद् में 'एकायन विद्या' से परम भागवत नारद जी का सबन्ध बताया गया है। पाचरात्र मत को 'एकायन सप्रदाय' भी कहा गया है। क्याकि इस मत का सबन्ध वेद की 'एकायन शाखा' से भी है।[१] पाचरात्र मत की सना 'पाचरात्र' कसे हुई इसकी नाना प्रकार की व्याख्याए पाचरात्र के विभिन्न ग्रथो में मिलती है[२] लेकिन इसका सन्तोष-जनक उत्तर कही नही मिलता। श्रीमदभगवद्गीता में प्रतिपादित सिद्धान्त 'सवधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज' ही इस मत का मूल सिद्धान्त है। इस सप्रदाय में समस्त सासारिक वस्तुओ का परित्याग कर एक ही पर पूण रूप से आश्रित रहना बताया गया है।

---

[१] एष एकायनो वेद प्रख्यात सवतो भुवि। ईश्वर सहिता १।४३।

[२] श्रेडर—इट्रोडक्शन टु दि पाचरात्र एण्ड दि अहिर्बुध्न्य सहिता पृ० २४–२५।

पांचरात्र साहित्य

लेकिन एक बात यहाँ ध्यान देने की है, पांचरात्र साहित्य अत्यन्त विस्तृत है इसलिये उसमें सर्वत्र एक ही भाव का मिलना संभव नहीं। श्रेडर ने पांचरात्र साहित्य पर बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। साधारणत पुराने ग्रन्थो में १०८ पाचरात्र संहिताओं का उल्लेख मिलता है लेकिन श्रेडर ने जो नामावली प्रकाशित की है उनमें २१० नाम मिलते हैं, फिर भी नामावली संपूर्ण है ऐसा नही कहा जा सकता। पांचरात्र शास्त्र को आगम साहित्य कहते हैं। उसके ग्रन्थ 'संहिता' और 'तन्त्र' कहलाते हैं।

पांचरात्र सिद्धान्त का विभाजन

पाचरात्र सिद्धान्तो का विभाजन मूलत: दो भागो में किया जा सकता है: (१) सृष्टि विषयक (२) साधना संबन्धी। यहाँ पर पाचरात्र मत के व्यापक सिद्धान्तों पर थोड़ा-सा प्रकाश डालना समीचीन होगा।

परमतत्व वासुदेव

इस मत के अनुसार भगवान वासुदेव ही परमतत्व, परम देवता हैं। ये अनादि, अनन्त, परब्रह्म हैं। यही ऋग्वेद में वर्णित परम पुरुष हैं। ये सर्व शक्तिमान, षड्गुण सम्पन्न, अजर, ध्रुव हैं। ये जगत् के कारण आधार और प्रमाण हैं। ये सर्वभूतो के आवास-स्थल, सबको अपने में समाहित किये हुए हैं। वे निर्विकार क्षोभ रहित तरंगो से हीन प्रशान्त महासागर के समान हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नही कर सकते। वे अप्राकृत गुणास्पद हैं।[१] इसी लिये वे निर्गुण हैं। वे परमात्मा[२], वासुदेव,[३] सर्वप्रकृति[४] और प्रधान[५] हैं। वासुदेव ब्रह्म ही 'शक्ति' कहलाते हैं जब निर्गुण ब्रह्म 'जगत् प्रकृति भाव' ग्रहण करता है।[६] यह वासुदेव ही विष्णु हैं।

---

[१] अप्राकृत गुणस्पर्शमप्राकृतगुणास्पदम्—अहिर्बुधन्य संहिता, २।२४।
[२] पारम्येणात्मभावित्वात् परमात्मा प्रकीर्तित, वही २।२७।
[३] समस्त भूतवासित्वाद्वासुदेव प्रकीर्तित, वही २।२८।
[४] सर्वप्रकृतिशक्तित्वात् सर्वप्रकृतिरीरित, वही २।३०।
[५] प्रधीयमान कार्यत्वात् प्रधान परिगीयते, वही २।३०।
[६] जगत् प्रकृति भावो य सा शक्ति परिकीर्तिता, वही २।५७।

शक्ति और शक्तिमान

भक्तिमार्ग में शक्ति और शक्तिमान की सत्ता स्वीकार करनी पडती है। इन दोनो की सत्ता का स्वीकार किए बिना भक्ति नही रह सकती। ईश्वर जीव तथा जगत् के पारस्परिक सबध का तभी तक महत्व ह जब तक कि शक्ति की सत्ता है। भक्ति और धर्म का उत्स यही है। यही कारण है कि वष्णव शैव और शक्ति आगमों म शक्ति की सत्ता स्वीकार की गयी है। पाचरात्र के अद्वतवाद में शक्ति और शक्तिमान का समन्वय है।

सष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के सकल्प का परिणाम ह। ब्रह्म न बहुस्याम का सकल्प किया[१] और यह सकल्प उनका स्वरूप दशन है, यहा ईक्षण है।[२] इसके पूव परम पुरुष आत्म समाहित थे, स्वशक्ति परिबृहित थे। स्वरूप दर्शन या ईक्षण स उनमें सृष्टि करने की इच्छा जगी। ब्रह्म की शक्ति या गुण ही ब्रह्म का स्वरूप है।[3] शक्तिमान से शक्ति की सत्ता का अभेद ह। दोना को अलग कर नही देखा जा सकता। यह शक्ति तत्त्व अचिन्त्य ह। सूक्ष्म अवस्था में प्रत्येक शक्ति अपनी आश्रय-वस्तु या भाव की अनुगामिनी ह अतएव परब्रह्म के स्वरूप में शक्ति पृथक रूप में नही दीखती। शक्ति का उसकी बाह्य क्रिया द्वारा ही देखा या समझा जा सकता है। अतएव शक्ति क सबध में न यही कहा जा सकता ह कि ऐसी ह और न यही कि ऐसी नही ह। उसक सबध में कुछ भी कहना कठिन ह।[४] भगवान् परब्रह्म की यह अचिन्त्य शक्ति ब्रह्म के सवभावाभावानुगा सवकायकरी और स्वरूप में ब्रह्म मे अपृथक स्थिता ह। यह ब्रह्म के साथ उसी प्रकार से अभिन्न है जिस प्रकार से चद्र-ज्योत्स्ना, सूय रश्मि, अग्नि-स्फुलिंग तथा सागर-तरग।[५]

---

[१] अहिर्बुध्न्य संहिता २।७।६२।

[२] यत्तत् प्रेक्षणमित्युक्त दशन तत् प्रगीयत, वही २।८।

[३] स्वरूप ब्रह्मणस्तच्च गुणश्च परिगीयते वही २।५७।

[४] शक्तय सवभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिता।
स्वरूपे नव दृश्यन्ते दृश्यन्त कायतस्तु ता॥
सूक्ष्मावस्था हि सा तेषा सवभावानुगामिना।
इदन्तया विधातु सा न निषेद्धु च शक्यते॥ वही ३।२ ३।

[५] सवभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधिन।
भावाभावानुगा तस्य सवकायकरा विभा॥ वही ३।५।

शक्ति-तत्व

वासुदेव में प्रथम सकल्प स्पन्दन ही स्वरूपा-सुप्ता शक्ति मे इच्छा-ज्ञान और क्रियात्मिका की जागृति का कारण हुआ। विष्णु स्वरूप मे लीन अपृथक शक्ति उस समय स्वतत्र भी हुई और यही विष्णु-तदात्मिका शक्ति जो 'स्वातन्त्र्य रूपा' या 'स्वतत्र शक्ति' कहलाती है विश्व-सृष्टि के कार्य में लगी। सृष्टि-कार्य क्षेत्र में वह स्वतत्र है। यह स्वेच्छा से सृष्टि-स्थिति विलय करती रहती है। यह आनन्दा, नित्या और पूर्णा है। नाना रूपो, गुणो और कार्यो के फलस्वरूप यही शक्ति नाना नामो से अभिहित की जाती है। लक्ष्मी, श्री, पद्मा, कमला, गौरी, अदिति, गायत्री, प्रकृति, माता, शिवा, तारा, शान्ता, मोहिनी, इडा, रति, सरस्वती, महामाया आदि उसी के नाम है। सर्वांग-सम्पूर्णा भावाभावनुगामिनी विष्णु की यह दिव्य शक्ति ही नारायणी है।[1]

सृष्टि तत्व

महाप्रलयावस्था में परब्रह्म नारायण 'प्रसुप्ताखिलकार्य' (जिसमे सभी कार्य प्रसुप्त हो) रूप में और 'सर्ववास' रूप में विराज करते हैं। षड्गुण पूर्ण रूप से उनमें स्तिमित रहते है। उस काल में परब्रह्म की आत्मभूता शक्ति स्तैमित्य रूपा और शून्यत्वरूपिणी रहती है।[2] इस शक्ति का सृष्टि के लिये प्रथम उन्मेष उसका लक्ष्मी-रूप है। शक्ति उन्मेष के दो प्रकार है—क्रिया और भूति। क्रिया शक्ति, विश्व की प्राण रूपा शक्ति[3] है और जगत्भूति शक्ति का प्रपच रूप है। भूति और क्रियाशक्तियो को विष्णु का भाव्य भावक रूप भी कहा जा सकता है। विष्णु की जगत् प्रपचकारिणी शक्ति ही उनकी त्रिगुणात्मिका शक्ति है। शक्ति द्वारा विष्णु की जो सृष्टि है वह दो प्रकार की है—शुद्ध सृष्टि और शुद्धेतर सृष्टि। शुद्ध सृष्टि, विष्णु की गुणोन्मेष दशा है, अर्थात् महाप्रलय की अवस्था में ब्रह्म की निस्तरग सत्ता के बीच गुण समूहो का प्रथम उन्मेष। शुद्धेतरा सृष्टि, प्रजा सृष्टि है। शुद्ध सृष्टि मे क्रम से चार स्तर है जिसे पाचरात्र मे चतुर्व्यूह कहा गया है। एक-एक व्यूह भगवान् के एक-एक प्रकाश के स्तर है। चतुर्व्यूह का क्रमश नाम है—वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। यह प्रकाश एक के बाद दूसरा,

---

[1] अहिर्बुध्न्य सहिता, ३।२४।

[2] वही, ५।२-३।

[3] वही, ३।२८,८।२९-३२।

दूसरे के बाद तीसरा इसी क्रम से एक दीपक से दूसरा तथा दूसरे से तीसरे को जलाने के सदृश है।

चतुर्व्यूह

वासुदेव तत्व, विष्णु शक्ति की प्रथमावस्था है। यह विष्णु शक्ति सब कुछ करती है इसलिये विश्व प्रकृति कहलाती ह, अतएव भगवान वासुदेव ही परमा प्रकृति ह। इसमें त्रिगुणा का उत्पत्ति नही होती। सृष्टि का इच्छा से जब सब शक्तिमान वासुदेव अपने का विभक्त कर लेते ह तो यह अपने में अपना विभक्त रूप ही सकषण है। यह सष्टि की भ्रूणावस्था है जैसे सूर्योदय के ठीक पूर्व की प्रभा दिगमडल में फल जाती है। इसमें चित अचित में कोई भेद नही रहता। इस सकषण व्यूह से प्रद्युम्न व्यह की उत्पत्ति होती है। इसमें प्रकृति, पुरुष विभाजित हो जाते ह और त्रिगुणात्मक प्रकृति का उदभव होता ह। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध व्यह की उत्पत्ति हुई। प्रद्युम्न के आरभ किए हुए सष्टि के काय का अनिरुद्ध पूरा करता है।

षड्गुण

ज्ञान, ऐश्वय शक्ति, बल, वीय तज ये षड्गुण भगवान् के ह। भगवान् प्रकृति के गुणत्रय से रहित ह फिर भी षडगुणा वाले होने स वे नित्य सगुण हैं। भगवान इस जगत् के उपादान और निमित्त कारण दाना ही ह। इन षडगुणा में ज्ञान, ऐश्वय शक्ति, 'विश्राम भूमि' और बल, वीय, तेज 'श्रम भूमि' कहलाते ह। इन गुण-समुदाया का सम्मिलित रूप ही भगवान् तथा लक्ष्मी का स्वरूप है।

पांचरात्र मत मे लीलावाद

वष्णवा का विश्वास है कि यह सष्टि, विष्णु का लीला स्वरूप ह। महा-प्रलय के समय परब्रह्म विष्णु अकेले थे। अकेले रमण सभव न हो सकने के कारण सनातन विष्णु ने लीला के लिये सष्टि की रचना की। पाचरात्र मत में इसी लीलावाद को स्वीकार किया गया ह। पहले सवग देवो के नामरूप की सष्टि की और लीला के उपकरण स्वरूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति की सष्टि कर जनार्दन उसा के साथ रमण करने लगे। कल्पावसान में लीला रस के लिये उत्सुक होकर भगवान पुरुषोत्तम ने जगत्-सृष्टि की इच्छा की। इस व्यक्त क्रीडा में ही सष्टि रूपा प्रकृति के द्वारा ईश्वर पूण आनन्द का उपभोग कर रहे ह। प्रकृति के ऊध्व में वकुठधाम अवस्थित है। यह परम-पुरुष की क्रीडाभूमि ह।

जीव के द्विविध भेद

परव्योम में दो प्रकार के जीवों-नित्य और मुक्त-का वास है। नित्य जीव सदा मुक्त हैं। वे सांसारिकता से परे, सर्वज्ञ और भगवान के सेवक हैं। भगवान् की सेवा का अनादिकाल से उन्हें अधिकार है। भगवान् के पार्षदगण, नित्य जीव हैं। मुक्त जीव, पार्षद गण और अधिकार मण्डली से बाहर हैं। इनका एकमात्र ध्येय भगवान् की सेवा है। उन्हें प्राकृत शरीर तो नहीं प्राप्त है फिर भी अप्राकृत शरीर धारण कर वे जगत् में विचरण कर सकते हैं परन्तु जगत् के कार्यों में दखल नहीं दे सकते।

पांचरात्र साहित्य में राधाकृष्ण

साधारणत पाचरात्र में विष्णु और लक्ष्मी की उपासना का ही वर्णन है। फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता कि उसमें राधाकृष्ण या वृन्दावन-लीला का उल्लेख है ही नहीं। नारद-पाचरात्र में राधा का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ का ज्ञानामृत सार अश प्रकाशित हुआ है। डॉ० आर० जी० भण्डारकर ने नारद-पाचरात्र की प्राचीनता में सदेह प्रकट किया है। श्रेडर ने भी उन्ही का अनुसरण किया है। इस सबध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज का मत उल्लेख योग्य है। उनका कहना है कि "नारद-पाचरात्र अत्यन्त अर्वाचीन है, ऐसा अनुमान करने का कोई विशेष कारण नही है। चैतन्यदेव ने दक्षिण देश से जिस ब्रह्मसहिता का सग्रह किया था वह निस्सन्देह प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है। उसमें भी वृन्दावन तत्व ही प्रधान रूप से अगीकृत हुआ है। काशी सस्कृत कालेज के पुस्तकालय में सनतकुमार संहिता की जो पाण्डुलिपि है वह पाचरात्र सहिता होने पर भी राधाकृष्ण तत्व का प्रतिपादन करने वाली है। अतएव ऐसा नही कहा जा सकता कि पाचरात्र सम्प्रदाय में राधाकृष्ण का स्थान नही। मेरा विश्वास है कि प्राचीन समय में भागवत सम्प्रदाय ने राधाकृष्ण और वृन्दावन की महिमा को विशेष रूप से प्रचारित किया था, जब यह सम्प्रदाय पाचरात्र के साथ मिल गया तभी से इस साकर्य का आविर्भाव हुआ"।[१]

पांचरात्र मत का साधना पक्ष

पाचरात्र रहस्य नामक ग्रन्थ के अनुसार भगवान् पाँच प्रकार के रूप धारण करते है। ये पाँच रूप, अर्चा, विभव, व्यूह, सूक्ष्म तथा अन्तर्यामी है।

---

[१] गौडीय वैष्णव दर्शन, पृ० ३०, उत्तरा, प्रथम वर्ष आश्विन ज्येष्ठ १३३२–१३३३ बगीय सं०।

उपासक की प्रवृत्ति तथा भाव के अनुसार ही भगवान इनमें से कोई रूप धारण करते है। इन पचविध मूर्तिया की उपासना क्रमश भक्ति का रूप ले लेती ह लेकिन यह भगवान के अनुग्रह से ही सभव हो पाता ह। उपासना द्वारा जीव के सासारिक बधन शिथिल होते ह। भक्ति के द्वारा जब भगवान प्रसन्न होते ह तब जीव की अविद्या आदि का विनाश हो जाता ह और उसके जो स्वाभाविक सवज्ञत्वादि कल्याणकारी गुण ह उनपर से जसे पर्दा हट जाता है। यह मुक्तजीव ईश्वर का अगभूत होकर ईश्वर के साथ परमानन्द का उपभोग करने लगता ह। भगवान् की कृपा से ही भवबधन से छुटकारा सभव ह यही पाचरात्र का साधना-पथ ह।

पाँचरात्र मत मे भक्ति की प्रधानता

पाचरात्र मत में भक्ति की प्रधानता है। शकराचाय ने इसे अवदिक कहा ह। 'ब्रह्म सूत्र भाष्य'[1] में इसकी आलोचना की गई ह। इसी आधार पर बहुत लोग पाचरात्र मत को अवदिक कहते हैं। वास्तव में इसे सम्पूण अवदिक मानने का कोई आधार नही ह। यह सभव ह कि तत्कालीन विचार-धाराओ का कुछ अश पाचरात्र मत में प्रविष्ट हो गया हो। उस समय धम तथा दशन शैव, शाक्त, साख्य, योग आदि विभिन्न शाखाओ में विभक्त था।

वैष्णव धर्म की दूसरी प्राचीन सज्ञा—भागवत धर्म

वैष्णव धम की दूसरी प्राचीन सज्ञा भागवत धम है। पाचरात्र मत की साधना-पद्धति से इसकी साधना-पद्धति में साम्य है। इसी एकरूपता के कारण पडितो का अनुमान है कि भागवत धम, पाचरात्र मत का ही विकसित रूप है। मूल में दोनो में कुछ पार्थक्य था लेकिन काल क्रम से दोनो सप्रदाय एक ही में मिल गये। श्री जीव गोस्वामी ने श्रीमदभागवत की टीका और 'षट सदर्भ' में भागवत मत पर प्रकाश डाला ह और पाचरात्र मत से इसका समन्वय किया ह। भागवत धम प्रपत्ति प्रधान था। ऐकान्तिक भाव से एक ही लक्ष्य के प्रति आत्म-समपण इस धम की विशेषता ह। श्रीमद्भगवत् गीता में इसी की चरम परिणति देखने को मिलती है।

शिलालेख और प्राचीन लेखों में भागवत-धर्म का उल्लेख

बेसनगर के शिलालेख से जो ईसा पूव दूसरी शती का ह, भागवत धम के

[1] २।२।४२ ४५।

अत्यन्त व्यवस्थित रूप में प्रचार होने का पता चलता है कि उस काल में 'वासुदेव' देवताओ के भी देवता माने जाते थे और उनके अनुयायी 'भागवत' कहलाते थे। इस शिलालेख मे भागवत धर्म के औदार्य, व्यापकता तथा प्राचीनता का पता चलता है। इस शिलालेख में कहा गया है कि देवाधिदेव वासुदेव की प्रतिष्ठा में हेलियोडोरस ने गरुड स्तम्भ का निर्माण किया। हेलियोडोरस तक्षशिला का निवासी 'दिय' का पुत्र था। वह राजा नागभद्र के दरबार में अन्तलिकित (इंडो-बैक्ट्रियन राजा एण्टिअलकिडाम) का राजदूत था। भागवत-धर्म भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रदेश में फैला हुआ था और यूनानियो ने इसे भी स्वीकार कर लिया था।

भागवत-धर्म सम्बन्धी कुछ बातो का पता यूनानी यात्रियो के विवरणो से चलता है। मेगस्थनीज. जो ई० पू० चौथी शताब्दी में भारत आया था, ने अन्य स्थानो के साथ शूरसेन का भी उल्लेख किया है। मेगस्थनीज़ के इस विवरण को यूनानी लेखक एरियन (ई० सन् की दूसरी शताब्दी) ने अपनी पुस्तक मे उद्धृत किया है। उसने लिखा है· "शौरसेन (शूरसेन) के लोग 'हेराक्लीज़' को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते है। शौरसेन के लोगो के दो बडे शहर मेथोरा[1] (मथुरा) और क्लीसोबोरा (केशवपुरा) है। उनके राज्य में जोबरेस नाम की एक नदी बहती है, जिसमें नावें चल सकती है।" आधुनिक विद्वान् हेराक्लीज़ को हरिकुल या श्रीकृष्ण मानते है। 'जोबरेस'[2] यमुना नदी है। इससे पता चलता है कि ईसवी पूर्व की चौथी शताब्दी में भागवत्-धर्म का प्रचार था और उसका महत्त्व का स्थान था जो विदेशी यात्रियो का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हो सका। भागवत्-धर्म के अनुयायियो के उपास्य देव वासुदेव थे।

गुप्त नरेश और वैष्णव-धर्म

वैष्णव धर्म के इतिहास में ईसवी सन् की चौथी और पाँचवीं शताब्दी बडे ही महत्व की है। इन्हें वैष्णव-धर्म का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। गुप्त वंश के प्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त ने भी (ईसवी सन् ४००–४६४) मुद्राओ पर परम भागवत अंकित कराकर

---

[1] टालमी ने 'मोदुरा' (मथुरा) को देवताओ का नगर कहा है।

[2] प्रथम शताब्दी के यूनानी लेखक प्लिनी ने भी मथुरा और केशवपुरा के बीच से बहने वाली 'जोमनेस' (यमुना) का उल्लेख किया है।

वैष्णव धम को राजधम जैसा कर दिया। इसका फल यह हुआ कि राज्याश्रय पाकर वैष्णव धम अत्यन्त फूला फला और इसका खूब प्रसार हुआ लेकिन गुप्त साम्राज्य के ध्वस होने के साथ ही वैष्णव धम का प्रभाव भी कम होता गया।

आलवार सन्तों की भाव धारा

वैष्णव भक्ति की दृष्टि से आलवार सन्तो का स्थान बडे ही महत्व का है। गुप्तों के बाद वैष्णव भक्ति का उत्थान इन्ही के द्वारा हुआ। तामिल देश के प्राचीन वैष्णव सन्तो को आलवार कहते है। 'आल्वार' शब्द का अथ भगवद्भक्ति या भगवद् प्रेम में तल्लीन रहने वाला मनुष्य है।

द्वादश आलवार सन्त

आल्वारो की सख्या तो अगणित है लेकिन वैष्णव साहित्य में बारह आलवारो का परिचय मिलता है। इन बारह आलवारो में पोयूग आलवार (सरो योगी) पूदत्ताल्वार (भूत योगी) और पेयाल्वार (महत् योगी) अत्यन्त प्राचीन तथा आदि भक्त माने जाते हैं। अन्य नौ आलवारो के नाम या है तिरुमडिस आलवार (भक्तिसार), पेरियालवार (विष्णुचित्त), आण्डाल (विष्णुचित्त द्वारा पालिता), तिरुमगै आल्वार (नील्न् या परकाल) नम्मा लवार (शठकोप) मधुर कवि (वास्तविक नाम ज्ञात नही), तोण्डरडिप्पोलि (विप्रनारायण), तिरुप्पन (मुनिवाहन), तथा कुल्शेखरालवार।

इन आल्वारो के काल को लेकर विद्वानो में बहुत मतभेद है। वैसे अधिकाश विद्वान् इनका समय ईसवी सन की सातवी शताब्दी तक मानते हैं। ये आलवार मद्रास प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानो के रहने वाले थे। उनमें सात ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, दो शूद्र और एक पानर जाति के थे।[1]

आलवार सन्तों का साहित्य

पोयूगे आलवार, पूदत्तालवार और पेयाल्वार रचित लगभग ३०० भजन मिल्ते हैं। इन तीनो के तीन शतक 'तिरुवन्दादि' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वेणवा छन्द में ये रचे गये है। इन तीनो का भावसौष्ठव और अर्थ-गाम्भीय

---

[1] सर सुब्रमन्य आयर लेक्चस आन, दि हिस्ट्री आफ दि श्री वैष्णवास इलिवडे बाइ टी० ए० गोपीनाथ राव, पृ० २।

इन्हें उच्चकोटि के काव्य के पदपर आसीन कर देते है। भक्त लोग इसे ऋग्वेद का सार मानते है।

कहा जाता है कि तिरुमडिसै आल्वार प्रकाण्ड पण्डित थे। जब इनके पदो और इनके पाण्डित्य की प्रसिद्धि बढने लगी तो इन्हे अत्यन्त विरक्ति हुई और इन्होने अपनी समस्त रचनाओ को कावेरी नदी में बहा दिया। भाग्य से दो पुस्तकें किनारे लगी इसलिए बच गई, शेष समाप्त हो गई।

पेरियाल्वार का काल ईसवी सन् की छठी शताब्दी मानते है। ये अत्यन्त निष्ठावान ब्रह्मचारी थे। इनकी रचनाओ में वात्सल्य रस की प्रधानता है। कृष्ण के बाल-रूप और बाल-लीला का अत्यन्त सुन्दर चित्रण इनके काव्य मे मिलता है। निम्नलिखित उदाहरणो[1] से इनके वर्णनों का सौष्ठव देखा जा सकता है। माता यशोदा, बालकृष्ण के रूप पर मुग्ध है। कृष्ण के अभी एक ही दाँत निकला है और उनकी मधुर हँसी चित्त को आकर्षित कर रही है। उस छवि को निरख माता यशोदा अपने-आप को भूल गई। भक्त कवि के शब्दो में 'कान्हा की घुघराली काली लटें उसके प्रवाल जैसे होठो से लग-लग कर अलग हो जाती है मानो भौंरे लाल-कमल का मधुपान कर रहे है।' कान्हा के जन्म के बाद यशोदा के घर में कुछ भी सुरक्षित नही रहता, न घी, न दूध न दही, न मक्खन। कान्हा, पड़ोस के बच्चो से झगडा करता है और चुपके से घर में आ जाता है। पड़ोसिनें अपने रोते बच्चो के साथ यशोदा को आ घेरती है और शिकायत करती है। यशोदा परेशान हो रही है और कृष्ण को इसमें पूरा रस मिल रहा है। वह आनन्द लेता हुआ हँस रहा है।' इस प्रकार के अनेक चित्र भक्त कवि ने अंकित किए है।

यमुना के तट पर वंशी बजाते हुए कृष्ण का अपूर्व चित्र भक्त-हृदय को अभिभूत किये हुए है। कृष्ण का "बायाँ चिबुक बाँयें कन्धे से लग रहा है। दोनो हाथो की कोमल उँगलियाँ वशी पर चल रही है। भौहें बंकिम है। लाल कमल पर मँडराने वाले भौंरो की नाईं घने, घुघराले, काले केशो की लटें मुख पर लोट रही है और मेघ के समान साँवला कान्हा वशी बजा रहा है। वशी की उस तान से मोहित हो हिरण चरना भूल गये है। उनके मुँह से आधी चरी घास धीरे-धीरे गिर रही है।"

---

[1] विभिन्न आलवार सन्त कवियो के पदो के उदाहरण पूर्ण सोम सुन्दरम् के लिखे ग्रन्थ 'तमिल और उसका साहित्य' में उद्धृत है।

पेरियाल्वार का प्रभाव आण्डाल की काव्य-कला पर पड़ा है। कहते हैं कि आण्डाल इनकी पोष्यपुत्री थी। ये सोलह वर्ष तक क्वारी रही और फिर अपने प्रियतम विष्णु के साथ सशरीर सायुज्य को प्राप्त हो गई। मधुर रस से ओतप्रोत उनकी कविताएँ 'नाच्चियार तिरुमोलि' के नाम से विख्यात हैं। इनकी रचनाओं में उत्कृष्ट शृङ्गार रस की अपूर्व माधुरी है। वैष्णव सिद्धान्ताचार्यों ने आण्डाल की इन रस सिक्त रचनाओं में गूढ़ अर्थ देखा है। उन कविताओं में भक्त हृदय की आकुलता और उच्छ्वास है। जो हो, आण्डाल की इन रचनाओं के महत्त्व का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में रामानुजाचार्य ने इनसे प्रेरणा ग्रहण की थी।

आण्डाल रसीले-छबीले की रूप-माधुरी पर न्योछावर है। वह वृन्दावन की एक गोपी बन कृष्ण की लीला-संगिनी बन जाती है। कृष्ण के मुग्ध करने वाले उत्पात आरम्भ होते हैं। आण्डाल अन्य गोपियों के साथ घरौंदे बनाती है, कृष्ण तोड़ फोड़ कर भाग जाता है। चीर हरण कर जल क्रीडा करने वाली गोपियों को कंकड़-पत्थर मारता है। आण्डाल स्वप्नाविष्ट इन लीलाओं में मग्न है। स्वप्न भंग होता है। वह अपने को अपनी कुटिया में अकेली पाती है। बाहर निकल काले मेघों को देखती है। उन्हें सम्बोधन कर कहती है, नीले कालीन की तरह आकाश में बिछे हुए काले मेघो, मुक्ता-निधि बरसाने वाले दानियो ! तुम्हीं बताओ सुन्दर साँवरे ने क्या कर दिया है ? हृदय में कामाग्नि जल रही है, बाहर मलय-पवन के रूप में अग्नि बरस रही है। आधी रात के समय में दोनों ओर से झुलस रही हूँ। मेरी दशा पर तनिक तरस तो खाओ।' वर्षा होती है, पेड़-पौधे लहलहा उठते हैं। सारी प्रकृति उत्फुल्ल है। रंग बिरंगे फूलों पर इन्द्रधनुष के रंगोंवाली तितलियाँ मँडरा रही हैं। विरहिणी आण्डाल के लिए यह स्थिति असह्य है। उसे लगता है जैसे प्रकृति उसकी दयनीय दशा पर हँसी उड़ा रही है। लहलहाते हाथी भी मस्ती में आकर आपस में खेल रहे हैं। उपवन में फूलों से लदी जूही की लताएँ धवल हँसी हँस रही हैं और कह रही हैं 'हमसे अब तुम नहीं बच सकती। सखी, उस निष्ठुर ने मेरी ऐसी दशा कर दी है, किससे फरियाद करूँ।

आण्डाल मर्यादाशील कुल-कन्या है। वह साँवले के प्रेम में आत्म विभोर है। उसके साथ स्वप्न में उसका विवाह सम्पन्न होता है। वह सपने में आकर

विधिपूर्वक उसे स्वीकार करता है। इस विवाह का सुंदर वर्णन आण्डाल ने अपनी दस कविताओं में किया है। पेरियालवार, जिन्होंने आण्डाल का पालन-पोषण किया था, इस प्रसंग में कहते हैं, "मेरी इकलौती चिड़िया। मैंने श्री के समान उसका पालन किया था। लेकिन मद भरे अरुण नेत्रों वाला माधव उसे हर ले गया"।

आलवार सन्तों में तिरुमंगै की कहानी अद्भुत है। कहते हैं कि वे एक छोटे-से राजा थे। जाति के क्षत्रिय थे। इनकी भक्ति 'आक्रमणात्मक' थी। इन्होंने अपने राज्य का त्याग कर दिया था और अपने चार साथियों के साथ डाका डाला करते और उस धन से मंदिर बनवाते तथा विष्णु भक्तों की सहायता करते। इस प्रकार की अद्भुत कहानियाँ उनके नाम के साथ जुड़ गई हैं। अतएव उनके वास्तविक व्यक्तित्व और प्रतिभा का ठीक-ठीक पता लगाना कठिन हो जाता है।

तिरुमंगै तमिल और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। वे एक सहृदय कवि और प्रकृति के प्रेमी थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने तामिल की प्राय सभी काव्य-शैलियों का उपयोग किया है। उनकी रचनाओं में मधुर और दास्य भाव समान रूप से मिलते हैं। उनकी काव्य-रचना की प्रतिभा का कितना समादर हुआ इसका पता इसी बात से चल जाता है कि वे 'नालु कविप्पेरुमाल' (काव्याचार्य) कहे जाते हैं।

तिरुमंगै आलवार ने विष्णु के दसों अवतारों की स्तुति की है लेकिन रामावतार ने उन्हें अधिक मुग्ध किया है। रामावतार के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है, "तुम्हारी इसी भक्त वत्सलता पर मुग्ध होकर मैं तुम्हारी शरण में आया हूं।"

नम्मालवार का काल ईसवी सन् की नवीं शताब्दी है। ये आत्मज्ञानी थे। कहते हैं कि विष्णु-मंदिर के प्रांगण में एक इमली के पेड़ के सूराख में बैठकर इन्होंने तपस्या की थी। आज भी तिरु नगरी के विष्णु-मंदिर में एक पुराना इमली का पेड़ है जिसे नम्मालवार के तपस्या करने का स्थान बताया जाता है। आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन इन्होंने अपनी कविता में किया है। आलवार सन्त-कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि इन्हींको मिली। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी उनकी रचनाएं उत्कृष्ट हैं। उनकी भाषा-शैली मुग्ध करने वाली है: माधुर्य रस से भरी इनकी रचनाओं की एक विशेषता लक्ष्य करने योग्य है. इनमें कभी ये प्रेमिका रूप में और कभी प्रेमिका की मा के

रूप में अपने को उपस्थित करते ह। साधना-माग पर चलने वाले जीव के क्रमिक विकास का सुदर वणन इनकी कविताओं में प्रबन्ध-काव्य का सा आनन्द देता ह।

नम्माल्वार की प्रेमिका प्रारम्भ में प्रियतम विष्णु को अपने से दूर और भिन्न समझती हैं, बाह्य जगत भी उसे वसा ही प्रतीत होता ह। लकिन प्रेमानुभूति की तीव्रता के साथ वह बाह्य जगत की वस्तुओं को अपने प्रेम में सहायक समझने लगती ह। कोयल भ्रमर बगुला हस के द्वारा वह प्रियतम क पास सदेश भेजती हैं। उसे बाद में लगता हैं कि सष्टि की सभी वस्तुए उसी की तरह प्रियतम के साथ एकाकार होने को लालायित ह। सागर, मेघ वायु पक्षी भ्रमर सभीमें वह अपनी छाया देखने लगती ह। ये सभी उसी प्रेमी की ओर उन्मुख ह। प्रेम की अनुभूति जब और तीव्र होती है तो प्रेमिका को लगता ह जैसे प्रियतम उसके हृदय के भीतर स्थित है।

केरल राज्य के सत नरेश कुलशेखराल्वार तमिल आल्वार सन्तो में कालक्रम से अतिम ह। उनका काल ईसवी सन की दसवी शताब्दी माना जाता है। वे राम के भक्त थे, वैसे कृष्ण को लेकर भी उन्होने कइ सुन्दर कविताए रची ह। वे अत्यन्त भावुक थे कृष्ण के वियोग में दवकी के करुण विलाप का अत्यन्त मार्मिक वणन उन्होंने उपस्थित किया हैं। सस्कृत में उन्होने एक स्तुति ग्रन्थ मुकुन्दमाला[१] की रचना की ह। ये सस्कृत के अच्छे विद्वान और सुकवि थे। इनके स्तोत्र ग्रन्थ वैष्णव भक्तो को अत्यन्त प्रिय हैं। उनमें भावो की सुकुमारता और भाषा की मधुरिमा है।

इन आलवार सन्तो की स्तुतियो का सग्रह 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' (चार सहस्र पद्यात्मक) के नाम स विख्यात ह। इनमें भक्ति ज्ञान, प्रेम आनन्द सौन्दय से ओतप्रोत अध्यात्मज्ञान है। यह तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध ह। य रचनाए तमिल भाषा में ह।

आलवारों की भक्तिमयी साधना

आल्वार भगवद्भक्त मस्त जीव थे। अपनी मस्ती में वे भगवान की स्तुति के पदो को लोगो के बीच गाते फिरते थे। आजकल के साधु सन्यासियो

[१] इस ग्रन्थ के दो सस्करण मिलते हैं। इसकी बहुत सी प्राचीन टीकाए उपलब्ध ह। यह ग्रन्थ एक प्राचीन टीका के साथ अन्नमलाई विश्व-विद्यालय स प्रकाशित हुआ हैं।

की तरह ये भी कीर्त्तन किया करते थे। उनमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं थी। उनकी दृष्टि में भगवान् के दरबार में सभी समान हैं। ब्राह्मण, शूद्र, स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक भक्तिमग्न हृदय को लेकर भगवान् के दरबार में सहज ही स्थान पा सकते हैं। वहाँ जाति-पाँति, ऊँच-नीच का भाव नहीं है। विष्णु भगवान् के ये भक्त सच्चे उपासक थे। उनमें किसी ने राम को आराध्य देव माना है और किसी ने कृष्ण को[1]। प्रपत्ति और विशुद्ध भक्ति का ही इन्होंने सहारा लिया था।

आलवारों की विशेषताएं

आलवार अत्यन्त लोकप्रिय हुए। अपनी मातृभाषा के द्वारा उन्होंने भक्ति का प्रचार किया और इसलिये वे सहज ही में जनचित्त को आकृष्ट कर सके। जाति-पाँति के भेद को इन्होंने स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार से निम्नस्तर के लोगों को भी ऊपर उठने का अवसर सुलभ कराया। भक्ति पर सब का समान अधिकार है, इस चरम सत्य से इन्होंने लोगों को अवगत कराया। ज्ञान की शुष्कता को दूर कर उन्होंने भक्ति की सरसता से लोगों के हृदय को आप्लावित कर दिया।

दार्शनिक आचार्यों की भावधारा

भक्ति-आन्दोलन को विशिष्टता प्रदान करने का श्रेय जिन लोगों को है वे आचार्य नाम से विख्यात हुए। आलवारों की भक्तिमयी भावना के उपरात इन आचार्यों ने इस आन्दोलन को शास्त्रीय रूप दिया। ये आचार्य संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्होंने आलवारों की रसमयी भक्ति के साथ वेद प्रतिपादित ज्ञान और कर्म का समन्वय किया। इन आचार्यों के प्रस्थानत्रयी-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता-को आधार मानकर विभिन्न दार्शनिक मतों की स्थापना की। अपने मतों की पुष्टि के लिये उन्होंने भाष्य-ग्रन्थों के अलावा सैद्धान्तिक ग्रन्थों की भी रचना की। इन आचार्यों के सामने शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन सबसे प्रमुख समस्या थी। यह समस्या न आलवारों के सामने थी और न पांचरात्र मत मानने वालों के सामने। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त मत का प्रतिपादन किया और जगत् को मायाजनित कह असत्य और प्रपंचमय सिद्ध किया। मायावाद के साथ भक्ति का समन्वय संभव नहीं इसलिये मायावाद का खंडन इन आचार्यों के लिये आवश्यक

---

[1] भण्डारकर—वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम्स पृ० ५०।

था। इसके बिना भक्ति की सुदृढ़ प्रतिष्ठा नहीं हो सकती थी। शंकराचार्य के प्रभाव से लोग ज्ञान मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए और भक्ति का मार्ग शिथिल पड़ने लगा। आचार्यों ने इस मायावाद का भरपूर खंडन किया और शुष्क अद्वैतवाद के स्थान पर भक्तिमूलक भागवत धर्म को श्रेष्ठ बताया।

नाथमुनि-परम्परानुसार सर्व प्रथम गण्य

नाथमुनि आचार्य का समय सन् ८२४ ई० से सन् ९२४ ई० तक माना जाता है। परम्परा के अनुसार इन्हें प्रथम मानते हैं। इन्हें प्राचीन भी माना जाता है और गौरव का स्थान भी इन्हें प्राप्त है। 'प्रबन्धम' का सम्पादन इन्होंने ही किया था। आलवारों के पद प्रायः लुप्त हो चले थे। नाथमुनि ने उनका उद्धार किया और क्रम के अनुसार एक एक सहस्र की संख्या वाले चार भागों को चार ग्रन्थों का रूप दिया। कहा जा सकता है कि प्राचीन वैष्णव धर्म की इन्होंने फिर से प्राण प्रतिष्ठा की। विशिष्टाद्वैत दर्शन का सूत्रपात इन्होंने ही किया, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

यामुन मुनि (९१६–१०४० ई०)

यामुन मुनि नाथमुनि के पौत्र थे। ये बहुत बड़े पंडित हुए। पितामह के समान ही इन्होंने भी आलवार काव्य का प्रचार और प्रसार किया। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'सिद्धित्रय' में शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन किया।[1] अपने दूसरे ग्रन्थ 'आगम प्रमाण' द्वारा भागवत धर्म का प्रतिपादन तथा 'गीतार्थ-संग्रह' में श्रीमदभगवदगीता का भक्तिपरक सारांश दिया।[1] यामुनाचार्य की पौत्री के पुत्र रामानुजाचार्य थे।

श्री सम्प्रदाय या विशिष्टाद्वैतवाद

श्री रामानुजाचार्य (१०१७–११३७ ई०)

रामानुजाचार्य के नाम के साथ श्री–सम्प्रदाय या विशिष्टाद्वैतवाद का नाम जुड़ा हुआ है लेकिन ये आदि प्रवर्तक नहीं थे। विष्णुपुराण, शारीरक सूत्र, महाभारत आदि में इस मत का प्रतिपादन किया गया है। बोधायन के वृत्तिग्रन्थ में भी इसपर विचार किया गया है। टंक, द्रविड़ आदि आचार्यों ने द्रविड़ भाष्य में इसका सारांश दिया है। श्री पराकुश मुनि ने अपने द्रविडो-

[1] राय चौधरी अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट पृ० ११४।

पनिषद् में बीस से भी अधिक गाथाओं में इसका प्रवर्त्तन किया है, नाथमुनि और यामुन मुनि के सबन्ध में हम देख ही चुके है कि उन्होंने भिन्न भिन्न ग्रन्थो मे इसका निरूपण किया है, इसे श्री-सम्प्रदाय क्यों कहते है इसके संबंध में यह कहानी प्रचलित है कि भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी के निकट इस धर्म का रहस्योद्घाटन किया था। यही कारण है कि यह 'श्री-सम्प्रदाय' कहलाता है और भक्तगण 'श्री वैष्णव' कहलाते है।

उपास्य स्वरूप

इस सम्प्रदाय के उपास्य देवता वैकुण्ठपति विष्णु और लक्ष्मी है। लेकिन इस सप्रदाय मे दोनो के अवतारो को अलग-अलग या साथ उपास्य देवता के रूप मे ग्रहण किया गया है। जैसे नारायण या लक्ष्मी-नारायण, राम, सीता, सीताराम, कृष्ण रुक्मिणी आदि[१]। इस प्रकार से इस सम्प्रदाय की भिन्न-भिन्न शाखाएँ हो गई है।

भक्ति या प्रपत्ति की प्रधानता

रामानुज ने वैष्णवधर्म को जो रूप दिया उसमे भक्ति तथा प्रपत्ति की ही प्रधानता थी लेकिन सिद्धान्त-पक्ष के वैशिष्ट्य के कारण यह 'विशिष्टाद्वैत' कहलाया। श्री सम्प्रदाय में चित्, अचित् और ईश्वर ये तीन मूल तत्त्व है। रामानुज ने इन तीनो के बीच के सबध को 'अपृथक सिद्ध' कहा है इसका कारण यह है कि चिदचिद् की ईश्वर से स्वतन्त्र सत्ता नही है। ये पृथक् रूप से असिद्ध है लेकिन ईश्वर की सत्ता स्वतत्र रूप से सिद्ध है। दोनो के सबध को स्पष्ट करने के लिए कहा जाता है कि मिट्टी के साथ घडे का जो सम्बन्ध है, आत्मा का शरीर के साथ जो सम्बन्ध है वही ईश्वर का चिदचिद् के साथ सम्बन्ध है। ईश्वर को विशेष्य या अगी तथा चिदचिद् को विशेषण या अग कहा गया है। ईश्वर नियामक है और जीव-जगत् नियाम्य। अगभूत चिदचिद् की अगीभूत ईश्वर से स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण ब्रह्म अद्वैत है। इसी विलक्षणता के कारण यह सम्प्रदाय 'विशिष्टाद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर मूल तत्व है तथा आत्मा और जड का आश्रय स्वरूप है। ईश्वर से अलग उनकी सत्ता नही। चित्, अचित्, ईश्वर के शरीर है और ईश्वर

---

[१] विलसन हिन्दू रेलिजन्स, पृ० १८।

दोनों की आत्मा। वह आत्मा की भी आत्मा है। ईश्वर अनन्त ज्ञान, अनन्त कल्याणगुण मण्डित, आनन्द स्वरूप सृष्टि का विधाता भक्तों का आश्रयदाता, कर्म फलदायक तथा विकारादि दोषों से रहित है। वह भुवन मोहन, अतीव सुन्दर है। उसका सौन्दर्य सब कुछ के प्रति वैराग्य उत्पन्न कर देता है। नित्य मुक्त उसी का आस्वादन करते हैं। धर्म की स्थापना के लिए तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वह पंचविध अवतार लेता है। (१) पर या वासुदेव (२) व्यूह या संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध (३) विभव या प्रादुर्भाव (४) अन्तर्यामी (५) अर्चावतार।

सृष्टि भगवान् की लीला है

सृष्टि, भगवान की लीला से उत्पन्न होती है और इसका प्रयोजन भी लीला ही है। सृष्ट पदार्थों के साथ लीला कर भगवान को आनन्द की प्राप्ति होती है। ईश्वर के दो प्रकार हैं—कारणावस्थ ब्रह्म तथा कार्यावस्थ ब्रह्म। जीव और जगत, प्रलयकाल में सूक्ष्म रूप से भगवान में अवस्थान करते हैं, इसीलिये वह 'कारण ब्रह्म' कहलाता है। सृष्टि काल में यही ब्रह्म, जीव और जगत् के रूप में अवतरित होते हैं। सृष्टि काल में चिदचिद् स्थूल रूप ग्रहण करते हैं। इस अवस्था में चिदचिद विशिष्ट ईश्वर 'कार्य-ब्रह्म' कहलाता है।

चित् का स्वरूप

चित तत्त्व आत्मा है। यह स्वयप्रकाश, आनन्दरूप, नित्य, अणु अव्यक्त या अतीन्द्रिय, अचिन्त्य, निरवयव सर्वदा एकरूप और निर्विकार है। ज्ञान स्वरूप होने पर भी आत्मा ज्ञान का आश्रय है। ज्ञान सर्वत्र व्यापक है अतएव अणु होने पर भी उसके भोग में बाधा नहीं। ज्ञान की व्याप्ति के द्वारा एक आत्मा एक ही समय बहुत से शरीर धारण कर सकती है। जीव का कर्त्तव्य ईश्वराधीन है। उसकी मूल स्वतन्त्र शक्ति, ईश्वर प्रदत्त है। जीव के प्रयत्न के अनुसार भगवान उसे कर्म विशेष में प्रेरित करते हैं। वास्तव में यह अनुमादकर्त्ता मात्र है, वैसे निरपेक्ष रूप से भगवान् जीव को प्रवर्तित करते हैं। ईश्वर के अधीन उसकी शक्ति है इसलिये जीव के लिए भगवद दास्य या कैंकर्य ही यथार्थ स्वातन्त्र्य या परम पुरुषार्थ है।

प्रकार

आत्माएँ तीन प्रकार की हैं—बद्ध, मुक्त और नित्य। ये भिन्न प्रकार की आत्माएं असंख्य हैं। आत्मा जब प्रकृति के संसर्ग में आती है तब उसमें

अविद्या, कर्म, वासना और रुचि की उत्पत्ति होती है। अगर अचित् से चित् का सबन्ध न रहे तो अविद्या दूर हो जाती है। ज्ञान नित्य, अजड, द्रव्यात्मक और आनन्द रूप है लेकिन उसमें सकोच-विकास होता है। यह इन्द्रियो के द्वार पर फैला हुआ विषय ग्रहण करता है। आत्मा स्व-प्रकाश है और ज्ञान पर-प्रकाशक। मुक्त अवस्था में ज्ञान पूर्ण विकसित और विभु है लेकिन बद्धावस्था मे सकोच के कारण यह परिछिन्न है। यह क्रिया और ज्ञान का आश्रय होने के कारण द्रव्यात्मक है। देहात्म भ्रम ही प्रतिकूल ज्ञान और दुःख का कारण है वैसे प्रकृति की वस्तुए ईश्वरात्मक होने के कारण स्वभावत. अनुकूल हैं। प्रतिकूल भाव उपाधि के सिवा कुछ नही।

अचित् का स्वरूप

ज्ञान-शून्य वस्तु अचित् या जड-तत्त्व कहलाती है। रामानुज के मतानुसार शुद्ध सत्त्व, मिश्र सत्त्व और काल ये तीन जड पदार्थ हैं। शुद्ध सत्त्व का रजोगुण और तमोगुण से सबन्ध नही। यह नित्य है, निर्मल है तथा ज्ञान और आनन्द को उत्पन्न करता है। शुद्ध सत्त्व ही नित्यधाम में वैकुण्ठधाम, विमान, गोपुरादि का आकार धारण करता है। लेकिन यह आकार-धारण कर्म निरपेक्ष है और भगवदिच्छा से ही सभव हो पाता है, इसका स्वरूप निर्देश कठिन है। यह अनन्त तेजोमय अद्भुत पदार्थ है। ईश्वर और नित्य मुक्त इसकी सीमा नही पाते। मिश्र सत्त्व, रज और तमोमिश्र है। प्रकृति, माया, अविद्या, इसी का नामान्तर है। यह ज्ञान विरोधी है। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत सब प्रकार के प्रलय काल के अधीन हैं। लीलाविभूति में ईश्वर कालाधीन होकर कार्य करता है, किन्तु नित्य विभूति मे काल का अस्तित्व रहने पर भी स्वातत्र्य नही है।

भक्ति के साधन

भक्ति के साधनो में प्रधान रूप से विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष का उल्लेख मिलता है। आहार शुद्धि को 'विवेक' तथा बाह्य विषयों में अनासक्ति को 'विमोक' कहा गया है। 'क्रिया' से मतलब शक्ति के अनुसार पचमहायज्ञ का अनुष्ठान है। चित्त की ऐकान्तिक प्रसन्नता को अनवसाद कहा गया है और अति सन्तोष का अभाव अनुद्धर्ष है। रामानुज के अनुसार कर्म के अनुष्ठान से चित्त की शुद्धि होती है और भक्ति या ब्रह्मज्ञान का उदय होता है। लेकिन पुण्य-पाप दोनो ही ज्ञानोत्पत्ति के

विरोधी हैं इनसे वचने का कहा गया ह। कहा जाता है कि इनसे रजोगुण और तमागुण की वृद्धि होती ह।

भक्ति ही एक मात्र लक्ष्य

श्री वैष्णव, भक्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। वे ज्ञान और कर्म को सहायक मानते ह। जीव पर माया का प्रभाव अत्यन्त प्रवल है क्योंकि जीव में अज्ञानवश बहिर्मुखी भाव बना रहता ह। इसीलिये उसे कर्मो फल भोगना पडता ह और बार बार जन्म ग्रहण करना पडता है। इससे उद्धार पाने का एकमात्र उपाय भगवान् की ओर अभिमुखता ह। इसी अभिमुखता का भक्ति कहते हैं। भगवान के प्रति विमुखता के कारण ही जीव माया की ओर प्रधावित होता है।

भक्ति का सार प्रपत्ति

भक्ति का सार प्रपत्ति है। अहं का त्याग कर सभी धर्मों का परित्याग कर एक मात्र भगवान के चरणो में अपने को समर्पित करना ही प्रपत्ति का स्वरूप ह। जो असमर्थ ह, जिनमें कोई योग्यता नहीं, तथा जो शूद्र वर्ग के ह उनके लिये श्री सम्प्रदाय में प्रपत्ति की व्यवस्था की गई हैं।[1] भगवान पर ही अपना सब भार डाल देना, सब प्रकार से अपने आपको भगवान् के आश्रित, कर देना मोक्ष का साधन माना गया ह। बहुत से शास्त्रों से प्रमाण देकर रामानुज मतावलम्वियो ने प्रपत्ति की सार्थकता सिद्ध की ह।

प्रपत्ति के भेद

प्रपत्ति के दो भेद माने गए ह (१) आर्त (२) दृप्त। आर्त प्रपत्ति वह ह जिसमें भक्तका भगवान् की अहेतुक कृपा प्राप्त होती ह और गुरु का उसे आश्रय मिलता हैं। वह शास्त्रो का अभ्यास और श्रवण करता ह और उसे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती ह। उसे देहादि सम्बन्ध असह्य प्रतीत होते ह और भगवदनुभव में वे सम्बन्ध उसे बाधा देने वाले प्रतीत होते ह। उनका त्याग कर भगवदनुभव के अनुकूल रूप और देहादि को बाधक वह भगवान् के अनुसंधान में ही लगा रहता ह। (२) दृप्त प्रपत्ति में भक्त जन्म मरण दुःख सुख, स्वर्ग-नरक के बन्धन से छुटकारा पाने के लिए अपने को अकिंचन समझ भगवान् पर अपना समस्त भार छोड देते ह। वे सब प्रकार से उनका वरण

[1] गोपीनाथ राव, हिस्ट्री आफ श्री वष्णवाज, पृ० २९।

करते है। भगवान् के साथ वे अगागी पिता-पुत्र, भर्ता-भार्या, नियन्ता-नियम्य, शरीरी-शरीर, धारक-धार्य, रक्षक-रक्ष्य, भोक्ता-भोग्य आदि नित्य-सम्बन्ध का अनुसन्धान करते हैं।

जीव और भगवान् का सम्बन्ध

जीव और भगवान् का सम्बन्ध नित्य है। इस नित्य-सम्बन्ध का आविष्कार ही साधना का लक्ष्य है। जीव और भगवान् में अगागी भाव है। जीव सदा भगवदाश्रित है। यह आश्रित भाव ही दास्य या कैंकर्य है इसका पूर्ण विकास मोक्ष है। भक्त, इस भगवदानुभूति या मोक्ष की कामना किया करते है। इस अवस्था मे मुक्त पुरुष का भगवान् के साथ कोई भेद नही रहता। उसमे ज्ञान, आनन्द आदि गुण पूर्ण रूप से विकसित रहते है। लेकिन भगवान् के साथ अभेद होने पर जीव-भाव चिर दिन अक्षुण्ण बना रहता है अतएव ईश्वरत्व लाभ करने पर भी भगवान् की अधीनता का भाव उसमे बना रहता है। भक्त 'कैवल्य' नही चाहते क्योकि उसमे आत्मानुभव होता है, भगवत्-स्फूर्ति नही होती अतएव आनन्द का विकास नहीं होता।

जीव मे दास्य भाव

जीव मे दास्य भावमूलक भक्ति नित्य है। प्रकृति-सम्बन्ध से उसमें जो कृत्रिम अभिमान का उदय होता है वह ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से तिरोहित हो जाता है और विशुद्ध दास्य-भाव का उदय होता है। मुक्ति मे भक्त लोग अहं का विनाश नही मानते अतएव वे भक्ति की कामना करते है जिसमे दास्य-भाव से उत्पन्न परमानन्द का अनुभव वे बराबर करते रहे। हनुमान की उक्ति मे हम यही पाते है।

भवबन्धच्छिदे तस्मै, प्रार्थयामि न मुक्तये।
'भवान् प्रभुरहं दास' इति यत्र विलुप्यते ॥

श्री वैष्णवो के दो दल

रामानुज की मृत्यु के डेढ सौ वर्षो के भीतर ही श्री वैष्णवो के दो दल हो गये (१) टेकलइ (दक्षिण पथ), (२) वडकलइ (उत्तर पथ)। प्रपत्ति और कृपा को लेकर इन दोनो शाखाओ मे मतभेद है। टेकलइ, शरणागति को ही मोक्ष का उपाय मानते है और कर्म के अनुष्ठान को वाछनीय नही मानते। वडकलइ, प्रपत्ति मे भी कर्म का अनुष्ठान आवश्यक मानते

है। वडकलई कैवल्यमुक्ति को स्थायी नहीं मानते और टेंकलई उसे नित्यावस्था मानते हैं। वडकलई, नारायण के समान श्री के मोक्षदान सामर्थ्य पर विश्वास करते हैं। टेंकलई इसे नहीं मानते, उनका कहना है कि श्री, मध्यवर्तिनी होकर जीव को भगवान् के कृपापात्र होने में सहायक होती है। इस प्रकार से दोनों दलों में और कई मतभेद हो गए हैं।

ब्रह्म सम्प्रदाय या द्वैतवाद (मध्वाचार्य ११९७–१२७६ ई०)

ब्रह्म-सम्प्रदाय के आदि गुरु विष्णु के प्रधान भक्त ब्रह्मा माने जाते हैं। इस मत के प्रधान आचार्य मध्वाचार्य या आनन्दतीर्थ थे जो वायु के अवतार माने गये हैं। यह सम्प्रदाय द्वैतवादी या भेदवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

ऐतिहासिक महत्त्व

जिन दिनों शंकर मत और भक्तिवाद का प्रबल संघर्ष चल रहा था उसी काल में कर्नाटक तथा महाराष्ट्र प्रान्त के दक्षिणी भाग में माध्वमत का उदय हुआ।[1] मध्वाचार्य ने अद्वैत वेदान्त का प्रबल विरोध किया। विशिष्टाद्वैत पर शंकर के अद्वैत का कुछ प्रभाव था लेकिन मध्वाचार्य ने जिस द्वैतवाद[2] का प्रवर्तन किया उसे सब प्रकार से उन्होंने अद्वैत भावना से मुक्त करने की चेष्टा की।

क्रिया की दो अवस्थाएँ

माध्व मत में क्रिया की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं (१) अव्यक्त या शक्ति अवस्था, (२) व्यक्त अवस्था। सृष्टि के समय जो क्रिया अभिव्यक्त होती है कालान्तर में वह शक्ति रूप में अवस्थित रहती है। जब ईश्वर, सृष्टि की रचना नहीं भी करते हैं तब भी यह क्रिया उनमें विद्यमान रहती है। कर्म के नित्य अनित्य दो भेद माने गये हैं। नित्यकर्म, ईश्वरादि चेतन

[1] ग्रियर्सन तथा भंडारकर ने मध्वाचार्य का जन्म काल सन् ११९७ ई० माना है तथा मध्वाचार्य के 'महाभारत-तात्पर्य निर्णय' के अनुसार सन् ११९९ ई० है। हाल ही में कुम्भम में मिले ताम्र पत्र के आधार पर उसके सम्पादक कृष्ण शास्त्री ने उनका जन्मकाल सन् १२३८ ई० माना है, लेकिन यह मत सर्वमान्य नहीं है।

[2] सांख्य के द्वैतवाद से यह भिन्न है।

का स्वरूपभूत है जैसे सृष्टि संहारादि के कर्म। अनित्य वस्तु के सहारे जिस क्रिया का उदय होता है वह अनित्य है। संसारी जीवों में चिन्तन आदि की क्रियाएँ अनित्य हैं। इनकी समाप्ति मुक्ति से होती है।

परमात्मा

अनन्त गुणों वाला परमात्मा ही विष्णु स्वरूप सर्वोच्चतत्व है। उसके अनन्त रूप हैं। सूर्य, चन्द्र, वरुण आदि वेद प्रतिपादित देवता उसी शक्ति के विलास मात्र हैं। परमात्मा, सृष्टि संबंधी आठ प्रकार के कार्य निरन्तर कर रहा है। ये कार्य सृष्टि, स्थिति, संहार, नियमन, अज्ञान या आवरण, ज्ञान, बद्ध और मोक्ष हैं। वह नित्य मुक्त है। विद्या, अविद्या, त्रिगुण, देहोत्पत्ति, सुख-दुःख सभी उसके इच्छा मूलक हैं। परमात्मा, सर्वज्ञत्व, अनन्त शक्तिमतत्व आदि अपरिमित अप्राकृत गुणों का निधान है।

लक्ष्मी

लक्ष्मी भी नित्यमुक्त और गुणयुक्त है। वे परमात्मा से भिन्न, पर एकमात्र परमात्मा के ही अधीन हैं। वे आप्त काम हैं फिर भी भगवान् की उपासना में सर्वदा लगी रहती हैं।

उपास्य देव

इस सम्प्रदाय में प्रथम विष्णु ही उपास्य देव थे। लेकिन बाद में राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार माने गए। माध्व सम्प्रदाय में कृष्ण और राम उपासना की दो पृथक् शाखाएं हो गईं[1]।

जीव

जीव, भगवान् का भिन्नांश है और यह भिन्नता अक्षुण्ण बनी रहती है। यही कारण है कि अनन्त काल तक जीव भगवान् की महिमा का अनुभव करता रहता है। जीव, अल्प ज्ञान और अल्प शक्ति वाला है। भगवान् का वह सेवक है। भगवान् से ही वह शक्ति पाता है। भगवान् को छोड़ कर उसमें स्वतः कार्य सम्पादन की क्षमता नहीं है। अनादि काल से वह माया से आबद्ध है इसीलिये अज्ञान, दुःख और मोहादि से संयुक्त वह संसारी है। प्रत्येक जीव अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रहता है। वह परस्पर भिन्न है साथ ही परमात्मा

---

[1] पाण्डेय रामावतार शर्मा भारतीय ईश्वरवाद पृ० ४६८।

से भी भिन्न हैं। यह भेद स्वभावसिद्ध और नित्य हैं। ससारी और मुक्त दशा दोनो में ही पार्थक्य का तारतम्य बना रहता है। विशिष्टाद्वैतवादी मुक्तावस्था में इस तारतम्य को नही स्वीकार करते। जीव के गुणगत भेद, उत्तम मध्यम और अधम हैं। उत्तम वह है जिसने सब प्रकार से भगवान के पद का आश्रय ले लिया हो और जिसके मन में सब वस्तुओ के प्रति वैराग्य हो गया हो। जिसमें काम है वह मध्यम और भगवान् में भक्तिभाव रखते हुए जो अध्ययनशील है वह अधम अधिकारी है।

जगत्

मध्वाचार्य जगत को माया नही मानते। वे इसे सत्य मानते है। भगवान् नित्य और सत्य है अतएव मध्वमत के अनुसार उसके सत्य सकल्प द्वारा निर्मित ससार असत्य नही हो सकता। फिर भी वह जड और अ-स्वतन्त्र है यद्यपि उसका अस्तित्व सत्य है। परमात्मा उसका नियामक है। पूरी तरह से वह परमात्मा के अधीन है।

पञ्चविध भेद या प्रपञ्च

इन पदार्थों या तत्वो के बीच मध्वाचार्य पचविध भेद मानते है। इस भेद को ही 'प्रपच' कहा गया है। ये पाच यो हैं (१) ईश्वर का जीव से भेद (२) ईश्वर का जड से भेद (३) जीव का जड से भेद (४) एक जीव का अन्य जीव से परस्पर भेद (५) एक जड पदार्थ का अन्य जड पदार्थ से भेद[1]। बिना तात्विक भेद ज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं। अभेद ज्ञान ही बन्धन है। भगवान के सभी गुण सत्य है। जीव, ईश्वरादि भेद भी सत्य हैं। जगत् भी सत्य है और पचभेद युक्त जगत का प्रवाह भी सत्य है।

मोक्ष लाभ

माध्वमत में मोक्षलाभ का क्रम इस प्रकार है[2]। भगवान के अनुग्रह से अपरोक्षज्ञान या भगवद् दर्शन होता है। इस ज्ञान के फलस्वरूप भगवान के अनन्त, कल्याण गुणराशि का ज्ञान होता है और उनके प्रति अनन्य प्रेम

---

[1] जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा। जीव भेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा। मिथश्च जडभेदोऽयं प्रपचो भेद पचक। सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात्-तत्वनिर्णय।

[2] महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के गौडीय वैष्णव दर्शन के आधार पर।

प्रवाह उत्पन्न होता है। इस प्रेम के उदय से भक्त अपने आप तथा अपने सगे-सम्बन्धियों को भूल जाता है, यह 'परम भक्ति' है। इसी से भगवान् का अत्यन्त प्रसाद और परम-अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे मुक्ति लाभ होता है। भगवद्दर्शन से सत्वादि गुण, कर्म, आत्म-सम्श्लिष्ट प्रवृत्ति तथा सूक्ष्म देह नष्ट होते हैं। लेकिन प्रारब्धकर्म जब तक बना रहता है वे बार बार आविर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं। अज्ञान का आश्रय जीव ही है, अन्त करण नही। जीव स्वप्रकाश है परन्तु ईश्वरेच्छा से वह अविद्या से आवृत हो सकता है। आत्मज्ञान के उदय होने से जीव में बहुगुणों का आविर्भाव होता है जिससे मोक्ष का जन्म होता है।

मुक्ति मे आनन्द भोग-तारतम्य

प्रलय काल में सभी जीव भगवान् के उदर में प्रविष्ट हो जाते हैं। उस समय विषय भोग नही होता, यह विषय भोग नवीन सृष्टि के समय जब फिर से बहिर्गति होती है तब होता है। प्रलय काल में केवल स्वरूपानुभूति ही होती है। जो मुक्त पुरुष है उनके ज्ञान और आनन्द में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होता चाहे सृष्टि की अवस्था हो या प्रलय की। माध्व मत के अनुयायी मानते है कि मुक्ति में स्वकीय योग्यता के अनुसार जीव में आनन्द भोग होता है तथा जीव मात्र के आनन्द में साम्य नही होता। इसीलिए भोग में भी तारतम्य होता है क्योंकि जीवों की योग्यता में तारतम्य है।

मुक्ति के प्रकार

मुक्ति चार प्रकार की है - सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य। सायुज्य मुक्ति में भगवान् में प्रविष्ट होकर भगवद्देह द्वारा भोग साधन होता है। मुक्त जीव, अनित्य देह को त्याग चिन्मय देह और चिन्मय इन्द्रिय युक्त हो भगवद्देह में प्रविष्ट होता है और वह भगवान् के अनुग्रह से जैसे उन्हीके पैरो चलता है, उन्ही की दृष्टि से देखता है।

आदत्त हरिहस्तेन हरिदृष्ट्यैव पश्यति।
गच्छेच्च हरिपादेन मुक्तस्यैपास्थिति भवेत् ॥

इसके अधिकारी देवता लोग है। ब्रह्मा का भोग परमात्मा के शरीर से ही निष्पन्न होता है। प्रलय काल में तो सभी को भगवद्देह में प्रविष्ट होना पड़ता है लेकिन अन्य समय मुक्त लोग स्वेच्छानुसार स्वरूप में प्रविष्ट हो सकते हैं और बाहर आ सकते हैं। परमात्मा में प्रविष्ट होने पर भी जीव परमात्मा

के आनन्द का भोग नहीं कर सकता वह स्वरूपानन्द का ही भोग करता है। परमात्मा, जीव भोग्य आनन्द का भी भोक्ता है। जीव और परमात्मा में यही पार्थक्य है। सालोक्य मुक्ति में मुक्त लोग भगवद्लोक में जिस किसी भी स्थान पर रहकर इच्छानुरूप भोग सम्पादन करते हैं। कोई वहीं मुक्ति लाभ कर अवस्थान करते हैं और कोई-कोई अन्तरिक्ष अथवा स्वर्ग में, महदादि लोक या क्षीरोद समुद्र में अवस्थान करते हैं। सामीप्य और सारूप्य भोग में भी ऐसा ही होता है। मुक्त पुरुषों के भोग स्थान का अन्त नहीं है। विद्वानों का कहना है कि माध्व मत भक्ति की दृष्टि से अत्यन्त तर्क सगत है।

माध्व मत का गौडीय सम्प्रदाय से सम्बन्ध

माध्वमत का प्रचार दक्षिण भारत में और विशेषत कर्नाटक और महाराष्ट्र अचल में ही था। कई शताब्दियों के बाद इसका प्रचार उत्तर भारत में और विशेषरूप से बगाल में हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय माध्वमत की शाखा से ही सम्बद्ध है। दोनों सम्प्रदायों में दार्शनिक दृष्टि से अन्तर है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों का सबध स्थापित किया जाता है। मध्वाचार्य की गुरु-परम्परा में ईश्वरपुरी तथा केशवभारती का नाम मिलता है। ये दोनों चैतन्य देव के क्रमश दीक्षा और सन्यास गुरु थे।

हंस या सनकादि सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत (निंबार्काचार्य)

दर्शन की दृष्टि से वैष्णव-सम्प्रदायों में द्वैताद्वैत मत को महत्व का स्थान प्राप्त है। इसके ऐतिहासिक प्रतिनिधि आचार्य निम्बार्क हैं। इन्हें भगवान के सुदर्शनचक्र का अवतार मानते हैं। इस सम्प्रदाय के हंस सम्प्रदाय, सनकादि सम्प्रदाय आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। हंसावतार भगवान इसके सर्वप्रथम उपदेष्टा माने जाते हैं। इनके शिष्य सनकादि थे। सनकादि ने महर्षि नारद को इसका उपदेश दिया और महर्षि नारद से निंबार्क को यह प्राप्त हुआ।

निंबार्क का आविर्भाव काल

निंबार्क के आविर्भाव काल को लेकर नाना प्रकार के मत हैं। निंबार्क सम्प्रदाय के अनुयायियों का कहना है कि निंबार्क का प्राकट्य द्वापर में हुआ। कुछ विद्वान् इसे प्राचीनतम वैष्णव सम्प्रदाय मानते हैं और अन्य कुछ इसको गद्य की पाँचवीं शताब्दी बताते हैं।[1] निंबार्क ने ब्रह्मसूत्र का जो भाष्य

[1] क्षिति मोहन सेन भारतीय मध्य युगे साधनार धारा पृ० ३४।

किया है उसमे शकर के मायावाद का खडन नही मिलता इसने बहुतो का अनुमान है कि वे शकर के पूर्ववर्ती है। लेकिन निम्वार्क के वाद ही उनके प्रधान शिष्य श्री निवास ने शकर के 'प्रतिविम्व वाद' का उल्लेख किया है। 'माध्व-मुख-मर्दन' नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ अभी हाल ही में मिला है जिसे निवार्क रचित माना जाता है। अगर यह सही हो तो निवार्क, मध्वाचार्य के वाद अर्थात् इसवी सन् की तेरहवी शताब्दी में हुए।[1] गुरु-परम्परा की छानवीन कर भण्डारकर ने इनका समय सन् ११६२ ई० के आस-पास माना है।

द्वैताद्वैत मत की प्राचीनता

द्वैताद्वैत मत का उल्लेख वहुत पहले से मिलने लगता है। प्राचीन आचार्यो में किसी-न-किसी रूप मे सभवत इसका प्रचार था। निवार्क के पहले भास्करा-चार्य ने इसका समर्थन किया है। ब्रह्मसूत्र मे ओडुलोमि नामक आचार्य का उल्लेख मिलता है जो भेदाभेदी थे। ओडुलोमि के अनुसार ब्रह्म और जीव में अवस्था विशेष से भिन्नत्व तथा अभिन्नत्व है। ससार दशा में एकात्म ब्रह्म के साथ नानात्मक जीव का सर्वथा अन्तर है लेकिन मुक्ति दशा में चैतन्यात्मक होने से जीव और ब्रह्म अभिन्न है।[2] निम्वार्क भेदाभेद को स्वाभाविक मानते है। उनके मतानुसार वद्ध और मुक्त दोनो ही अवस्था में यह वर्तमान रहता है। जीव ब्रह्म से अवस्था भेद से भिन्न तथा अभिन्न है। ईश्वर, जीव, जगत के स्वरूप के सबन्ध मे इस मत की स्थापनाएँ वहुत दूर तक रामानुज के मत का अनुकरण करती है। उपास्यदेव को लेकर दोनो मे भेद है। रामानुज सप्रदाय में उपास्य देव नारायण और लक्ष्मी है। निम्वार्क सप्रदाय में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी ह्लादिनी शक्ति राधा आराध्य है। इस भिन्नता के कारण दोनो की साधना-पद्धति में भी भिन्नता आ गई है।

ब्रह्म

जगत् कर्त्तत्वादि गुणो के आश्रय श्रीकृष्ण ही पर-ब्रह्म है। वे दोषरहित, कल्याण-गुणाकर, सत्य-ज्ञान स्वरूप, अनन्त, सच्चिदानन्द विग्रह है। उनके स्वरूप के समान ही उनका शरीर अनन्त असख्य गुणो का आश्रय है। वे

---

[1] रमा चौधरी · डाक्ट्रिन्स आफ निम्वार्क एण्ड हिज फालोअर्स, पृ० १५।
[2] ब्रह्मसूत्र · १।४।२१।

सवशक्तिमान हैं। एकरस हैं। उनका शरीर परम सौंदय, लावण्य और सुकुमारता से नित्य विभूषित है। भगवान भक्तवत्सल कमफलदाता ह। वे मुक्त-गम्य और योगिया के ध्यान के विषय ह।

चित और अचित दोना ही तत्त्व ब्रह्मात्मक हैं लेकिन ब्रह्म इनसे नित्य-विलक्षण हैं। अणु और अल्पज्ञ जीव बद्धावस्था में भी ब्रह्मांश होने के कारण ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी अभिन्न ह। वृक्ष से पत्र, प्रदीप से प्रभा गुणी से गुण और प्राण से इन्द्रिय पथक् रूप से न रह सकते ह और न काय करने में समथ हो सकते हैं। इसी प्रकार मुक्ति में भी पथक स्थिति नही रहने से अभेदत्व के रहत हुए भी भेद ह। मुक्तावस्था में प्रत्येक आत्मा यह अनुभव करता है कि वह परमात्मा से अविभक्त ह। परमात्मा जीव का स्वाशी और जीव उसका स्वांश है। इसीलिये जीव स्वभावत ईश्वरात्मक और अविभाज्य है। स्वरूपत दोना में स्वाभाविक विभाग है लेकिन दोना में स्वाभाविक अविभाग भी वतमान है। अतएव जीव और ब्रह्म का परस्पर सबध विभाग सहिष्णु-अविभाग' है।

ब्रह्म ही जगत के उपादान और निमित्त हैं। वे ही कृतिमान (कर्त्ता) और वही कृति के विषय' (कम) ह इसीलिये वे अभिन्न निमित्तापादन हैं। जीव अनादि कम सस्कार के वशीभूत ह।

परमात्मा, सवज्ञ, सवशक्तिमान और अच्युत विभव हैं। वे 'स्वात्मक और स्वाधिष्ठित' अपनी शक्ति को विक्षिप्त करक जगत आकार में अपनी आत्मा को परिणत करत ह। उनमें स्वभावसिद्ध अनन्त शक्ति ह। इन शक्तिया के विक्षेप से सष्टि आदि व्यापार सम्पन्न होते ह। ये निर्विकार और अच्युत रहने पर भी जगत् का प्रसवादि काय कर सकत ह, यही उनका वशिष्ट्य ह।

उपास्य स्वरूप

निम्बाक मत में युगल रूप की उपासना होती है। श्रीकृष्ण की बायीं ओर राधा सवदा विराजमान हैं। ये कल्याण मूर्ति ह फलदायिनी ह और सब इच्छाओ का पूरी करने वाली ह।

चित्

चित तत्त्व ही जीवात्मा ह। यह नित्य ज्ञान का आश्रय ह और ज्ञान स्वरूप है। यह दह आदि जडपदाथ से पृथक है। भगवान इसमें व्याप्त ह।

इसकी अन्तरात्मा भगवान् है। यह सर्वदा भगवान् के अधीन है। ईश्वर इसका प्रेरक है। जीव तीन प्रकार के हैं : नित्य, मुक्त और बद्ध। नित्य जीव सदा ही संसार दुःख से मुक्त हैं। वह स्वभावतः भगवदनुभाविन हैं। वह भगवान् के स्वरूप, गुणादि विषयों का आनन्द अनुभव करता रहता है। मुक्त जीव वे हैं जो अविद्या से उत्पन्न बन्धन को छिन्न कर उन्मुक्त हो जाते हैं। मुक्त जीव दो प्रकार के हैं नित्य मुक्त और दूसरे वे हैं जो सत्कर्मों द्वारा पूर्व जन्म के कर्मों का भोग सम्पन्न कर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, नित्य मुक्त गरुड़, विष्वक्सेन, भगवान् के नानाविध आभूषण और वर्णा आदि हैं। बन्धन से मुक्त होकर जीव ज्योति-स्वरूप परमात्मा को पाकर अपने यथार्थ स्वरूप में आविर्भूत होते हैं और फिर संसार में लौटकर नहीं आते। इन मुक्तों में कुछ तो स्वरूप ज्ञान मात्र से तृप्ति लाभ करते हैं और कुछ ईश्वर सादृश्य प्राप्त करते हैं। जो भगवत् साम्य प्राप्त करते हैं वे नित्य जीवों के समान भगवान् के समान ही गुणशाली होते हैं। आत्मा के समान यह देह भी नित्य है। जीव का नित्य देह बन्धनावस्था में आवृत रहता है। भगवान् के अनुग्रह से जब वह प्रकृति संबन्ध से मुक्त होता है तब उसका अपने नित्य-सिद्धदेह से योग होता है। बद्ध जीव वे हैं जो अनादि कर्मजन्य देहादि में आत्मा और आत्मीय रूप से अभिमान करते हैं। इनमें भी अवस्था का तारतम्य है। इनमें कोई बुभुक्षु जीव है और कोई मुमुक्षु जीव।

अचित्

अचित् तत्त्व तीन प्रकार का है—प्राकृत, अप्राकृत और काल। यह कारण रूप से नित्य, कार्य रूप से अनित्य है। अचित् की सत्ता भगवत् सापेक्ष है। इसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। अर्थात् तत्व का अप्राकृत अंश विशुद्ध सत्व है। यह अचेतन तो है लेकिन प्रकृति और काल से बिल्कुल भिन्न है। परमपद, विष्णुपद, परमव्योम आदि इसके नामान्तर हैं। यह कालातीत होने के कारण परिणामादि विकार-शून्य है। काल, नित्य विभु है। लेकिन ज्ञानमात्र में काल बोध रहता है। यह भगवान् के अधीन है। यह सृष्टि आदि का सहकारी है और प्राकृत वस्तु मात्र का नियामक है।

युगल-स्वरूप-उपास्य

इस सम्प्रदाय में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा की युगल उपासना का प्रतिपादन किया गया है। भगवान के माधुर्य पक्ष और उनकी प्रेम शक्तिरूपिणी श्रीराधा की उपासना पर निम्बार्क ने जोर दिया

था। निम्वार्क मत के अनुसार भेदा भेद आश्रय श्रीकृष्ण ही वेदान्त के विषय हैं और भक्ति ही मोक्ष का साधन है। लगता है जैसे निम्वार्क मत की सर्वेश्वरी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा ने गौडीय वष्णव सम्प्रदाय को खूब प्रभावित किया।

परामुक्ति और गोलोक

जीव सदगुरु का आश्रय लेकर साधन मार्ग पर अग्रसर होता है। साधना के मार्ग-क्रम, ज्ञान, ध्यान और प्रपत्ति है। इनका अनुसरण कर जीव भगवान् की अहैतुक कृपा प्राप्त कर परामुक्ति लाभ करता है। ये साधक वैकुण्ठ के बदले गोलोक की ही कामना करते है। वे वकुण्ठ से गोलोक का स्थान ऊँचा मानते है। गोलोक में भगवान नररूप से द्विभुज आकार में लीला करते हैं जब कि वकुण्ठ में भगवान् के इश्वरीय रूप की लीला चलती रहती है।

रुद्र सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैतवाद (विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य)

सिद्धान्त पक्ष अस्पष्ट

रुद्र सम्प्रदाय के सस्थापक विष्णुस्वामी माने जाते हैं। लेकिन यह सम्प्रदाय बहुत पहले ही लुप्त हो गया था और विष्णुस्वामी की कोई प्रामाणिक रचना भी उपलब्ध नही अतएव इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में बहुत कुछ पता नही चलता। कहते हैं कि इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त विष्णुस्वामी की शिष्य परपरा से प्राप्त हुए। रुद्रदेव ने वालखिल्य ऋषि को इसका उपदेश किया था और फिर वही उपदेश शिष्य-परपरा से विष्णुस्वामी तक पहुँचा। कहते हैं कि वल्लभाचार्य, विष्णु स्वामी को परपरा में पडते है लेकिन इसका कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी के सिद्धान्त को ही नये सिरे से वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत के नाम से प्रचारित किया लेकिन विष्णुस्वामी के सिद्धान्तो का अल्पाश में जो कुछ भी पता चलता है उससे लगता है कि दोनो में यथेष्ट पार्थक्य है। श्रीधरी टीका से विष्णुस्वामी के कुछ सिद्धान्तो का आभास मिलता है। उसके अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है और वे अपनी आह्लादिनी सवित' के द्वारा आश्लिष्ट है तथा माया उन्ही के अधीन रहती है। नृसिंह रूप को इन्होने ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोग उन्हें नृसिंह तथा गोपाल दोनो का उपासक मानते हैं।

वल्लभाचार्य (१४७८–१५३० ई०)

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, शंकराचार्य के मत का विरोधी है। इसमें ज्ञान का स्थान गौण है। भक्ति को इसमे प्रधान माना गया है। बाल-गोपाल उनके उपास्य हैं। बाद मे चलकर लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रूप की उपासना भी वल्लभ-सम्प्रदाय मे आ गई। भगवान् की वृन्दावन-लीला और नित्य-लीला इस सम्प्रदाय के आचार्यों को मान्य हुई। कहते हैं कि परवर्ती काल में वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने इस सम्प्रदाय में मधुर भाव की भावना को सन्निविष्ट किया। वैसे इस बात के भी प्रमाण मिलते है कि वल्लभाचार्य को भी मधुर रस की भक्ति अमान्य नही थी। वल्लभ-दर्शन, उपासना तथा साधना के सम्बन्ध में आगे चलकर विस्तृत आलोचना की जायगी।

गौड़ीय-सम्प्रदाय या अचिन्त्य भेदाभेद (श्री चैतन्य १४८६–१५३४ ई०)

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय

गौडीय-वैष्णव-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री चैतन्य थे। गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का विश्वास है कि राधाभावद्युतिमण्डित कृष्ण ही श्री गौराग (चैतन्य महाप्रभु) के रूप मे अवतरित हुए। यह सम्प्रदाय वल्लभ-सम्प्रदाय का समसामयिक है। प्राचीन परम्परागत चार वैष्णव सम्प्रदायो में इसकी गणना नही होती। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय का संबंध माध्व मत से जोडा जाता है यद्यपि दर्शन, सिद्धान्त और साधना की दृष्टि मे दोनो में पार्थक्य है, दोनो के साथ ऐतिहासिक संबंध स्थापित किया जाता है। ईश्वरपुरी और केशवभारती जो चैतन्य के दीक्षा और सन्यास गुरु थे, माध्व की गुरुपरम्परा में पडते हैं। इसे कहाँ तक विश्वसनीय माना जा सकता है, कहना कठिन है लेकिन इस प्रकार से माध्व सम्प्रदाय के साथ संबंध जोड़ने से गौड़ीय वैष्णव-संप्रदाय की नीति दृढ हो गई और उसका महत्व बढ़ गया।

उपासना पद्धति का वल्लभ और निम्बार्क से साम्य

इस सम्प्रदाय मे मधुर रस की भक्ति का ही प्राधान्य है। युगल रूप की उपासना ही इसके मूल मे है। राधाकृष्ण इस सम्प्रदाय के उपास्य है। इस दृष्टि से इस सम्प्रदाय का साम्य निम्बार्क और वल्लभसम्प्रदाय से अधिक है माध्व संप्रदाय से नही। नित्य वृन्दावन तथा गोलोक धाम की नित्य-लीला का रसास्वादन भक्त का एकमात्र लक्ष्य है। शृंगार रस की प्रधानता के

कारण कुछ लोग राधावल्लभीय तथा सखी-सम्प्रदाय को गौडीय सम्प्रदाय की शाखा विशेष मानते ह लेकिन इस बात को लेकर पूरा मतभेद है। गौडीय सम्प्रदाय की विशेष रूप से चर्चा आगे मिलेगी।

अन्य प्रमुख सम्प्रदाय (राधावल्लभीय सम्प्रदाय–हित हरिवंश)

प्रवर्तक

हितहरिवंश, राधावल्लभीय सप्रदाय के प्रवतक ह। इस सम्प्रदाय की सीमा ब्रजमण्डल तक ही रही। इस सम्प्रदाय का आविर्भाव काल ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी माना जा सकता ह।

राधा का प्राधान्य

इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना होती ह। युगल जोडी की प्रेम-लीलाओ का मनन और चिन्तन तथा स्वरूप की पूजा ही इस सम्प्रदाय में एक मात्र साधना बताया गया ह। इसी के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होती है। इस मत में राधा को प्रधान्य मिला है। मधुर रस की उपासना ही इस सम्प्रदाय के भक्तो का एकमात्र लक्ष्य है। इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त पक्ष किसी ठोस दार्शनिक मतवाद पर आधारित नही है। बहुत लोगो ने इस सम्प्रदाय को चतन्य[१] अथवा निम्बार्क[२] सम्प्रदाय की शाखा माना है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो आदि का परिचय आगे दिया जायगा।

सखी सम्प्रदाय (स्वामी हरिदास)

प्रवर्तक

सखी-सम्प्रदाय के प्रवतक स्वामी हरिदास थे। यह वल्लभसप्रदाय का लगभग समकालीन है। इसका प्रचार ब्रज में उस काल में हो रहा था। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास पहले निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे बाद में गोपी भाव को ही भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन मानकर इन्होने इस स्वतन्त्र मत को चलाया।

सखी-सप्रदाय में श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य ह। सखी भाव से युगल-

---

[१] अक्षयकुमार दत्त भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय पृ० २२६।

[२] ग्रियसन भक्ति माग इन्सायक्लोपेडिया आफ रेलिजन्स एण्ड एथिक्स, पृ० ५४६।

स्वरूप की उपासना तथा सेवा ही इस सम्प्रदाय के भक्तो की साधना का एकमात्र लक्ष्य है। इस सम्प्रदाय वाले किसी दार्शनिक तत्वविवेचन के चक्कर मे नही पडे। इस सम्प्रदाय की विशेष जानकारी हम आगे चलकर प्राप्त करेंगे।

ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी मे गौडीय सम्प्रदाय, वल्लभ-सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सप्रदाय और सखी-सम्प्रदाय वृन्दावन में खूब फूले फले। ये सम्प्रदाय अत्यन्त लोकप्रिय हुए और इनका प्रभाव समाज और साहित्य पर गहरा और व्यापक रूप से पडा। इनके स्थायी प्रभाव का प्रमाण हमें आज भी मिलता है। ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के साहित्यो के मूल में इन्हीं संप्रदायों की प्रेरणा थी। इन सम्प्रदायो की चर्चा बाद मे भी की जाएगी।

०

(ख) वैष्णव-साधना भक्ति-साधना है

वैष्णव धर्म और भक्ति

भारतवर्ष मे नाना धर्मों के आश्रय में विभिन्न साधना प्रणालियो का उद्भव, विकास और प्रसार हुआ। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त आदि सप्रदायों ने कर्म, ध्यान, ज्ञान, योग आदि की ही प्रधानता स्वीकार की, भक्ति उनके लिए गौण थी। इसके प्रतिकूल वैष्णव सम्प्रदायियो को भक्ति ही प्रधान रूप से मान्य हुई, उनकी दृष्टि में ज्ञान तथा कर्म हेय तो नही परन्तु उन्होने भक्ति के सहकारी के रूप में ही इन्हे ग्रहण किया। वैष्णव मतानुसार कर्म से चित्त की शुद्धि होती है तथा ज्ञान से आत्म-साक्षात्कार। पर भगवान् की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही सभव है और वही एकमात्र साधन है। इस भक्ति भाव को चरम उत्कर्ष पर पहुचाना वैष्णव धर्म की अन्यतम विशेषता है। वस्तुत गौडीय वैष्णव आचार्यों द्वारा इस भक्ति भाव का पूर्ण विकास तथा प्रसार हुआ। इन्होने भक्ति को केवल भाव से रस तक ही नही पहुंचाया प्रत्युत् उसे सब रसो में श्रेष्ठ या प्रधानतम सिद्ध किया और उसे "मधुरभाव" या "मधुररस" की सज्ञा मे प्रचारित किया। किसी भी सम्प्रदाय का मेरुदण्ड उसकी साधनापद्धति ही है. वैष्णव सम्प्रदाय भी भक्ति साधना के अपूर्व वैशिष्ट्य के कारण ही जगत् में ख्यात और इतना लोकप्रिय हुआ।

भक्ति की विभिन्न व्याख्याएँ

भक्त का भगवान् से रागात्मक सम्बन्ध स्थापन ही भक्ति है। शाडिल्य के अनुसार भक्ति का लक्षण है "सा परानुरक्तिरीश्वरे[1]"—ईश्वर में परम अनुराग ही भक्ति है। जिसके द्वारा भगवान् की कृपा आकृष्ट होती है और समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है, वही भक्ति है। देवर्षि नारद ने सरल और स्पष्ट शब्दों में भक्ति की व्याख्या की—"सा त्वस्मिन परमप्रेम रूपा[2]"—उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है। ज्ञान-कर्म भूलकर, वासना-कामना भूलकर, सुखदुःख भूलकर, धर्म-अधर्म भूलकर, धन ऐश्वर्य भूलकर स्त्री-पुत्र, यहाँ तक कि 'स्व' को भी भूलकर भगवान् की ऐकान्तिक अनुरक्ति ही भक्ति है। भक्तप्रवर प्रह्लाद ने भगवान् से याचना की थी—"अविवेकियों की इन्द्रिय विषय में जैसी प्रबल आसक्ति है हे भगवान् तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में भी उसी प्रकार की आसक्ति कभी न नष्ट हो[3]।" महात्मा तुलसी की भी तो यही कामना थी—

> कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
> तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम[4]॥

तात्पर्य यह है कि फल-हेतु विचार शून्य होकर भगवान के प्रति सहज प्रेम ही प्रकृत भक्ति है। ऐसी भक्ति जिसे प्राप्त हुई है वही सच्चा भक्त है। भक्त भगवान में आत्म विस्मृत हो जाता है। समस्त इन्द्रियों की शक्ति के साथ मन के तद्गत भाव को भक्ति कहा जा सकता है। भक्ति इच्छा शक्ति की ऐकान्तिक स्वमुखी वृत्ति है। इच्छाशक्ति की प्रबल प्रेरणा से ही भगवान् स्वरूप धारण करते हैं। जैसे समुद्र का जल अत्यन्त शीत के कारण जमकर बर्फ हो जाता है, तद्रूप निराकार, निर्विकार, अनन्त, चिन्मय भगवान भक्त की तीव्र इच्छा शक्ति के कारण ही चिद्घन होकर प्रकाशित होते हैं, जगन्मय मन-मोहन रूप में आकर प्रकट होते हैं।

---

[1] शांडिल्य-सूत्र, संख्या २।

[2] नारद भक्ति-सूत्र २।

[3] या प्रीतिरविवेकिना विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरत सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥ —विष्णु पुराण

[4] रामचरितमानस—उत्तरकाण्ड १३० (ख)

जीव और भगवान् का सम्बन्ध

वैष्णव मत का यह मौलिक सिद्धान्त है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म, सर्वशक्ति-सम्पन्न, विभु, अशी तथा स्वामी है। जीव मात्र उनके अधीन, दास, अणु तथा अश रूप है। जीव का अणुत्व किसी भी दशा में लुप्त होने का नही। ससारी दशा में तो वह नाना प्रपचो, बन्धनो में जकडा हुआ ससार चक्र मे भ्रमता ही रहता है, किन्तु इस जीवन के पश्चात्, मुक्त होने पर भी, जीव का अणुत्व स्वभाव बना ही रहता है। यहा भक्तिवादी वैष्णवो का ज्ञानवादियो से स्पष्ट मत पार्थक्य है। शैव, शाक्तमत जीव मे अणुभाव को स्वीकार नही करते, मोक्ष दशा मे जीव ईश्वर के रूप में मिलकर ईश्वरमय हो जाता है, उसका पृथक् अस्तित्व शेष नही रहता। पर भक्ति के पूर्ण रसास्वादन के लिए वैष्णवो को यह कदापि मान्य नही। उनके मतानुसार जीव में दासता, अधीनता, अणुत्व के सकोच की भावना सदा सर्वदा विद्यमान रहती है। भले ही मोक्ष दशा में उसे परम पद की ही प्राप्ति क्यो न हो जाए। साधना मे जीव का जीवरूप बने रहने में ही सार्थकता है। अणु यदि विभु में अपनी सत्ता का लय कर दे तो फिर भक्ति कैसी और किसकी? इस अध्याय के पूर्वांग मे हमने देखा है कि विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो के सिद्धान्त पक्ष में ब्रह्म और जीव के अभेदत्व सम्बन्ध के बीच भी किसी न किसी प्रकार से जीव के भेदत्व की प्रतिपादना हुई ही है।

साधना से यथार्थ ज्ञान

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भक्ति ही भगवदाराधना का प्राण है। भक्ति के साधना-क्रम मे जब साधक उच्च स्तर पर पहुँच जाता है तो उसके हृदय में यह अनुभूति होती है कि जीवात्मा परमात्मा का भिन्न विकास मात्र है और यह जगत् भगवान् का ही विस्तार है[1]। अतएव जीव मात्र ही भगवान् का स्वजन है इसलिए भगवद्-भक्ति जीव का स्वाभाविक धर्म है। मायावरण ने आत्मा का स्वरूप और तदीय स्वाभाविक धर्म आवरित रहने के कारण जीव विभ्रान्त होकर आवागमन के चक्र में घूम रहा है। संसार के प्रपचो में आबद्ध मानव के मन में सदा अतृप्ति, असतोष बना ही रहता है। समस्त भौतिक सुखों को प्राप्त कर चुकने के पश्चात् भी कुछ अनजानी

---

[1] विस्तार सर्व्वभूतस्य विष्णोर्व्विश्वमिदं जगत्।
द्रष्टव्यमात्मवत् तस्माद् भेदेन विचक्षणै ॥ —विष्णु पुराण

"चाह सदा सर्वदा उसके मन को अशान्त, विक्षुब्ध किए रहती है, तभी तो मानव पूर्ण सुखी नहीं हो पाता। वस्तुतः अंशी परब्रह्म से बिछुड़ा हुआ अंश रूप जीव सदा उसके सामीप्य की आकांक्षा करता है, साक्षात्कार चाहता है जिसकी शीतल छत्र छाया में वह अपने मन की खोई हुई शान्ति, आत्मा के विलुप्त आराम, प्राणों के विस्मृत सुख को पुनः प्राप्त कर सके। अंशी, स्वामी का विस्मरण उसके अचेतन मन में सजग होकर उसे नित्यप्रति अपूर्णत्व की अस्थिरता से चंचल बनाए हुए है। मन के इस क्षोभ और ग्लानि का सहज उपचार वैष्णव पथ की सानुराग भक्ति में ही पाया जा सकता है। भगवान् की जो भक्ति जीव को नित्य निरंतर अनंत उन्नति के मार्ग पर, पूर्ण मंगल और परमानन्द के पथ पर आकर्षित करती है, वही कृष्ण है और जिसके द्वारा हम उनकी ओर आकृष्ट होते हैं वह भक्ति है।

भक्ति का स्वरूप

ऐहिक और पारलौकिक भोग की लालसा का परिहार करते हुए, भगवान् में चित्त समर्पण करके, निरन्तर तद्भाव में भावाक्रान्त रहना ही भक्ति है। यह भक्ति क्रिया नैष्काम्य भाव से अभिहित है[१] इसलिए श्रेष्ठ भक्ति स्वरूपतः निर्गुणा है। किंतु जब प्रकृति के गुणत्रय का अवलम्बन लेकर प्रकाशित होती है तब सगुणा रूप से अभिहित होती है। पुरुष के गुणमय स्वभाव भेद से तन्निष्ठ भक्ति में भी भेद होता है अर्थात् सत्त्वादि गुण के तारतम्य में जिसका जैसा स्वभाव, उसकी भक्ति भी तदनुरूप होती है। यह गुणमयी भक्ति प्रधानतः तीन श्रेणी में विभक्त है—तामसी, राजसी और सात्त्विकी। यह त्रिविध गुणमयी भक्ति भी तीन-तीन अंशों में विभक्त होकर नवविधा भक्ति रूप से उल्लिखित है[२]। अपने-अपने उद्देश्य पूरणार्थ जो सकामा

[१] भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनामुष्मिन् मनःकल्पनमेव तदेव च नैष्काम्यमिति। —गोपाल तापनी।

[२] अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः॥
विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः॥
कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः॥
—श्रीमद्भागवत, ३।२९।८, ९, १०।

भक्ति है, वही सगुण है। जिस प्रकार पतितपावनी गंगा का जल प्रवाह समस्त बाधा विघ्न अतिक्रमण करके निरन्तर सनमुखों से धावित होकर महासमुद्र में सम्मिलित हो रहा है, उसी प्रकार जो चित्तवृत्ति ज्ञान-कर्मादि व्यवधान-समुदायों का अतिक्रमण करके और विविध फलाभिसन्धियों का विसर्जन करके स्वतः ही सर्व भूतान्तर्यामी भगवान् की ओर सर्वदा अभिमुख रहती है, वही निर्गुणा भक्ति है। इस भक्ति में किसी प्रकार की कैतव वांछा नहीं है, यह अतिशय निर्मल और सब भक्तियों में श्रेष्ठ है। ऐसे शुद्ध भक्तों से किसी प्रकार की कामना नहीं रहती, यहाँ तक कि सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य ये सब मुक्ति देना चाहने पर भी वे भगवान् की सेवा के अतिरिक्त और कुछ पाना नहीं चाहते। इस प्रकार की भक्ति को ही आत्यन्तिक कहा जा सकता है, इससे अधिक और कोई पुरुषार्थ नहीं है[1]।

गुणमयी और निर्गुणा भक्ति

अब तक जो भक्ति वर्णित हुई है वह प्रधानतः दो श्रेणी में विभक्त की जा सकती है—एक गुणमयी या गौणा अथवा अपरा, दूसरी निर्गुणा मुख्या अथवा परा। प्रथम गुणमयी सात्त्विकी भक्ति सत्त्वगुण से विच्युत होकर भक्त को निर्विशेष ब्रह्म—सुख का अनुभव कराती है और द्वितीय निर्गुणा भक्ति परिपाक दशा में प्रेम भक्ति नाम से अभिहित होकर भक्त को सच्चिदानन्दमय भगवद् रूप गुणलीला के माधुर्य रस का आस्वादन कराके चरितार्थ करती है। ब्रह्मसुखानुभव दशा के पूर्ववर्ती विभिन्न दशाओं में माया का अधिकार रहता है।

---

[1] मद्‌गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्व्व गुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहेतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥
सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।
—श्रीमद्‌भागवत, ३।२९।११–१४

निर्गुणा भक्ति के दो प्रकार

निर्गुणा भक्ति भी प्रधानत दो अशा में विभक्त है—एक प्रधानीभूता या ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा, दूसरी केवला या रागात्मिका[1]। कर्मादिमिश्रा सात्त्विकी भक्ति ही परिपाक दशा में सत्त्वगुण परिहार करके प्रधानीभूत निर्गुणा भक्ति में पर्यवसित होती ह। अतएव इसकी अपक्वदशा गुणमयी और परिपाक दशा निर्गुण्य है। केवला भक्ति ऐसी नहीं है यह आरम्भ से ही निर्गुणा है, इसकी अपक्वदशा रागानुगा और परिपक्व दशा रागात्मिका है। शान्तदास्यादि रस भेद से प्रधानीभूता भक्ति पाच श्रेणी में और केवला भक्ति चार श्रेणी में विभक्त ह। महिमा ज्ञान से प्रीति सकुचित होती ह इसलिए प्रथमा भक्ति की अपेक्षा द्वितीय भक्ति श्रेष्ठ और अधिक विशुद्ध है। प्रेम-सेवा की पूर्णतम आनन्दास्वादहेतु द्वितीय दास्यादि चतुर्विधा भक्ति में भी शृगाररसात्मक भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। यह व्रजस्थिता श्रीराधिकादि गोपिकाओ में नित्य विराजमान है।

भक्ति की पुष्टि योग्यता

सब प्रकार की भक्ति की पुष्टि-योग्यता एक सी नहीं। भक्ति के गुरुत्व और लघुत्व के अनुसार उसकी पुष्टता का भी तारतम्य होता ह। फिर भी निर्गुणा भक्ति ही परिपुष्ट होकर रति और प्रेम स्वरूप में पर्यवसित होने की योग्यता रखती ह। साधन भक्ति से रति के उदय होते ही भक्ति रति-लक्षणा होती ह फिर वह रति पक्वावस्था में प्रेम रूप स आत्मप्रकाश करने से ही वह प्रेम-लक्षणा हो जाती है। इस प्रेम लक्षणा भक्ति को ही प्रेम भक्ति कहते ह। अतएव गुणमयी भक्ति म निगुणा भक्ति के परिपक्व दशा तक भक्ति को साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति इन तीन श्रेणियो में विभक्त किया गया है। भक्ति के इस क्रमिक स्तर की विशद विवेचना 'गौडीय वष्णव-दर्शन' की साधना पद्धति की चर्चा के प्रसग में की जायगी।

भाव भेद से भक्ति रस के पांच भेद

भक्ति में केवल एक स्थायी भाव ह—वह ह श्रीकृष्ण विषयक रति या प्रेम। भक्तो क स्वभाव भेद स वह रति पाच प्रकार की मानी गई है—शान्ति, प्रीति, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इन पाच प्रकार की रति या

---

[1] चैतन्यचरितामृत, २।१९।१६५।

स्थायिभावों के अनुसार भक्ति रस क्रमशः पांच प्रकार का है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। ये पांचों रस क्रमशः भेद से श्रेष्ठतर होते जाते हैं। जैसे आकाशादि पूर्व पूर्व भूतों के गुण बाद के भूतों में पर्यवसित होते हैं, वैसे ही दास्य में शान्त, सख्य में शान्त और दास्य, वात्सल्य में शान्त, दास्य और सख्य, और मधुर में शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य—ये चार रस वर्तमान हैं[1]। शान्तादि रस क्रमिक रूप से अनुकूल होकर और पुष्ट होकर मधुर रस रूप में विद्यमान होता है। यह मधुर रति ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई है[2]। इन पांचों भक्ति रसों के स्थायिभाव इत्यादि का विवरण निम्नलिखित है—

(१) शान्त भक्ति रस

शान्ति-रति

स्वरूप

शान्ति का अर्थ शम है। मन की निर्विकल्पता या स्वात्मस्थिति को ही "शम" कहते हैं[3]। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण में निरन्तर अनुराग होना ही "शम" है। जहां भगवान् में प्रगाढ़ अनुरक्ति हो जाती है वहां स्वतः ही विषय-वासना से मन विरक्त हो जाता है, इस प्रकार निजानन्द में स्थित हुए मन के इस स्वभाव को "शम" कहते हैं। शमता-सम्पन्न व्यक्तियों के परमात्म बुद्धि से श्रीकृष्ण में ममतागन्धवर्जिता स्थायित्व-स्वरूप जो शुद्ध रति उत्पन्न होती है उसे 'शान्ति" कहते हैं[4]।

---

[1] गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाढे प्रति रसे।
शान्त दास्य सख्य वात्सल्येर गुण मधुरेते वैसे।
आकाशादिर गुण जेमन पर पर भूते।
दुइ तिन क्रमे बाढ़े पञ्च पृथिवीते।
—चैतन्य चरितामृत २।८।६७–६८

[2] परिपूर्ण कृष्णप्राप्ति एइ प्रेम हैते।
एइ प्रेमेरे वश कृष्ण कहे भागवते॥
—चैतन्य चरितामृत, २।८।६९

[3] भक्तिरसामृतसिन्धु—२।५।१३

[4] वही,—२।५।१४

दो प्रकार भेद

यह शान्ति रति समा और सान्द्रा भेद से दो प्रकार की होती है[१]। असम्प्रज्ञात नामक समाधि भगवत साक्षात्कार का नाम समा और सब प्रकार अविद्याध्वंसहेतु निर्विकल्प समाधि में भगवत साक्षात्कार होने पर सर्वतोरूप से भक्त हृदय में जो आनन्द आविर्भूत होता है वही सान्द्रा ह।

शान्त भाव के भक्त की विशेषता

जिसमें सुख नही, दुःख नही, द्वेष नही, मात्सर्य नही और सकल भूता में समभाव है, वही शान्त भाव सम्पन्न भक्त कहलाता है जैसे सनकादि ब्रह्मर्षि। इस प्रकार के योगी भक्ता का इसमें निर्विशेष ब्रह्मानद जातीय सुख की अनुभूति होती है, क्वचित भगवद गुणावली भी स्फूर्त होती है किन्तु इसमें आत्म दर्शन का सुख अत्यल्प ह इसके विपरीत सच्चिदानन्द विग्रह भगवत स्फूर्ति का सुख महान है। भगवान के गुणा का अनुभव होने पर भी शान्त भक्त को दास भक्ता के समान मनोनत्व (सौन्दय सुकुमारत्वादि) और लीला (गोवर्द्धनधारण, चातुर्य, भक्तवश्यता) आदि की माधुरी का अनुभव नही होता केवल लीला का दर्शन ही होता ह, यही तन उसका मर्यादा है।

वैष्णव मत मे शान्ता रति का निम्नतम स्तर

जहा तक जड जगत का सम्बन्ध है उसमें शान्ता रति' ही सर्वोत्कृष्ट है। पर वष्णवा के साधना क्रम में इसका स्थान सबसे नीचे माना गया ह क्योकि इस भक्ति में भगवान् के साथ भक्त के किसी प्रकार वयक्तिक सम्बन्ध की स्थापना सभव नही, यह केवल भक्त की भगवान् के प्रति अबाध गतिमय साधना है जिससे परमानन्द की प्राप्ति होती है।

(२) दास्य भक्ति रस

प्रीति-रति

स्वरूप

प्रीति या दास्य रति में भक्त ईश्वर को सदा स्वामी और स्वय का सेवक रूप से मानता है। भक्त ईश्वर का अनुग्राह्य और वे उसके आराध्य ह एस स्वरूप विशिष्ट रति को ही प्रीति" कहते है[२]।

[१] भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।१।२५। [२] वही २।५।२१

दो भेद

अनुग्राह्य व्यक्ति के दासत्व और लालत्व भेद से इस प्रीतिभक्तिरस के भी सम्भ्रम प्रीति और गौरवप्रीति दो भेद हो जाते हैं[१]। श्रीकृष्ण के दासों में श्रीकृष्ण के प्रति सम्भ्रम प्रधाना प्रीति पुष्ट होकर जो रस उत्पन्न होता है वह "सम्भ्रमप्रीत" के नाम से ख्यात है। इस भाव का भक्त भगवान् के सामने अपने को अत्यन्त दीन-हीन समझता है और सदा उनके अनुग्रह की ही आकांक्षा करता है। गौरवप्रीतिसम्पन्न भक्त भगवान् के द्वारा लाल्याभिमानी पुत्र या कनिष्ट भ्राता के समान सदा पालित तथा रक्षित होने की इच्छा रखता है।

भगवद्दासों के प्रकार

भगवान् के दास अविकृत, आश्रित, पारिषद और अनुग भेद से चतुर्विध हैं[२]। "अविकृत" दासों में ब्रह्मा, शिव इत्यादि मुख्य हैं। आश्रित शरण्य ज्ञानीचर और सेवानिष्ठ रूप से त्रिविध हैं[३]। भगवान् के शरण में आए हुए भक्त जैसे विभीषण, सुग्रीव आदि "शरण्य" के अन्तर्गत हैं। मोक्ष सुख को भी तिलाजलि देकर जिन्होंने केवल भगवान् का आश्रय ग्रहण किया वे "ज्ञानी" भक्त हैं जैसे सनक, शुकदेवादि। भुक्ति-मुक्ति की सकल स्पृहा छोड़कर "सेवानिष्ठ" भक्त का एकमात्र भगवद् सेवा ही जीवन का व्रत है जैसे हनुमान, पुण्डरीक आदि। "पारिषदों" में उद्धव, नन्द आदि का स्थान है। सर्वदा ही प्रभु की परिचर्या में आसक्त चित्त "अनुग" भक्त कहलाते हैं। अनुग के भी पुरस्थ और व्रजस्थ द्विविध भेद हैं[४]। सुचन्द्र, मण्डल आदि प्रथम और रक्तक, पत्रक, मधुव्रत, चन्द्रहास द्वितीय के उदाहरण हैं।

सेवा-कर्म और दास्य-भक्ति का स्वरूप

उपास्य की निरन्तर सेवा और उनके प्रीत्यर्थ कर्म इस भक्ति भाव के मुख्य कर्त्तव्य हैं। इस प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है कि उपासक के उपास्य ही सर्वस्व हो जाते हैं और उसका मन वाणी और शरीर सदा-सर्वदा

---

[१] भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।२।४

[२] वही, ३।२।१४

[३] वही, ३।२।१६

[४] वही, ३।२।२३

अनन्यभाव से भगवान् में और उन्ही के निमित्त सेवा धर्म करने में प्रवृत्त रहता है, उसकी प्रवृत्ति कदापि अन्यत्र नही उन्मुख होती। प्रभु से स्वार्थ सम्बन्धी किसी भी वस्तु की कामना न करना, यहा तक कि मोक्ष को भी उसके सामने तृणवत् समझना और मौरें के अनन्य अनुराग से निरन्तर चरण कमल के रस में लवलीन रहना। स्व-सुख के त्याग द्वारा स्वय कष्ट भोग कर भी सेवा रत रहना ही प्रीति भाव के भक्तों के लक्षण है। इस प्रकार की प्रीति रति भी रसमय है जिसके रसास्वादन से उपासक तृप्त रहता है किन्तु केवल रसास्वादन की तृप्ति ही उसका उद्देश्य नही प्रत्युत उपास्य की परितुष्टि ही उसकी तृप्ति का कारण है। सर्वशक्तिसम्पन्न आराध्य को किसी वस्तु का अभाव नही, तथापि भक्त की तृप्ति के लिए वे भक्त की सेवा सहर्ष स्वीकार करते है जिससे दोनो का सबध दृढ होता जाता है। इस "प्रीति रस" के कारण भक्त के चित्त में हीनता, दीनता, आधीनता तथा मर्यादा का भाव सदा बना रहता है इससे भक्त और भगवान् के बीच गौरव आदर तथा सभ्रम की एक निर्दिष्ट रेखा बना रहती है।

(३) सख्य भक्ति रस

सख्य रति

स्वरूप

इस सख्य भक्ति रस को 'प्रेया रस' भी कहते है। प्राय समवयस्क सखाद्वय में परस्पर जो सभ्रमहीन विश्रम्भ प्रधान (प्रगाढ विश्वासमय) रति होती है वही 'सख्य रति' कहलाती है इस प्रेया रस का "सख्य रति" ही स्थायी भाव है[१]। विश्रम्भ में सब सकोच रहित प्रगाढ विश्वास ही प्रमुख है। यह सख्य रति वृद्धिक्रम से सख्य, प्रणय, प्रेम, स्नेह, राग रूप से पचविध कहलाती है[२]।

शान्ति प्रीति की तुलना मे श्रेष्ठता

शान्ति प्रीति रति की तुलना में सख्य रति (प्रेयोरस) कही अधिक श्रेष्ठ है। सख्य भाव का साधना में समस्त कामना दूरीभूत होती है, आसक्ति की ज्वाला शान्त हो जाती है। सख्य भाव के भक्त, शात भाव के भक्त

---

[१] भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।३।५७

[२] वही, ३।३।५८

के समान भगवान् को महिमान्वित या दास्य भाव के भक्त के समान सम्भ्रम-युक्त नहीं मानते, उनके और भगवान् के बीच ऐसा समानता का भाव है जिसमे भगवान् के कन्धे पर चढ़ने, उन्हें अपनी जूठन खिलाने में भी किसी प्रकार सकोच नहीं। तभी तो श्रीमद्भागवत मे कहा गया है कि ज्ञानी व्यक्ति जिसे ब्रह्मसुखानुभूति में और भक्त जिसे सर्वोपास्यरूप में और मायाश्रित व्यक्ति जिसकी नरशिशु-ज्ञान से प्रतीति करते है, इस प्रकार माया मुग्ध गोप बालकों ने साधारण नर शिशु बोध से जिनके साथ क्रीडाएँ की थी निस्सन्देह वह उनके राशि-राशि पुण्यों का ही फल है[१]। सख्य भाव का भक्त अपने गोपनीयतम भावों को भी अति सहज, स्वच्छन्द रूप से भगवान् के सामने प्रकट करता है। किसी प्रकार का भेदभाव नहीं अत भक्त-भगवान् के बीच का व्यवधान मिटकर घनिष्ट सम्बन्ध की स्थापना होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि सख्य भाव में सेवा के लिए कोई स्थान ही नहीं, घनिष्टता के कारण सेवा का रूप और भी मधुर और गाढ होकर प्रकट होता है। प्रेम और माधुर्य की वृद्धि से त्याग भी भारी हो जाता है। सख्य भाव में सम्बन्ध की घनिष्टता के कारण यहीं से मधुर भाव का बीज-वपन हो जाता है।

सख्य भक्तों के प्रकार

सख्य भक्ति के प्रकार भेद से पुर सम्बन्धी और ब्रज सम्बन्धी दो प्रकार के भक्त माने गए है[२]। 'पुर सम्बन्धी" भक्त अर्जुन, भीम, द्रौपदी, श्रीदाम आदि है। और "ब्रज सम्बन्धी" भक्त क्षण मात्र कृष्ण के अदर्शन से अत्यन्त व्याकुल और दु खी हो उठते है। श्रीकृष्ण के साथ ये सतत विहार करते हैं और कृष्ण ही उनके जीवन स्वरूप है, ऐसे ब्रजवासी ही सर्वप्रधान भक्त है। ये चार प्रकार के है[३]—"सुहृत सखा" जो श्रीकृष्ण से वय में कुछ जेष्ठ होने के कारण वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण की रक्षा में दत्तचित्त रहते है जैसे सुभद्र, बलभद्र आदि। "सखा" श्रीकृष्ण से छोटे वय वाले जो सदा उनकी सेवा तथा सुख के ध्यान में दत्तचित्त रहते है जैसे वरुथप, मरन्द, मणिवन्ध, देवप्रस्थ आदि। 'प्रिय सखा' श्रीकृष्ण के समवयस्क, नि सकोची

---

[१] इत्थ सता ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्य गताना परदैवतेन।
मायाश्रिताना नरदारकेण साक विजह्रुनु कृतपुण्यपुजा ॥ १०।१२।११

[२] भक्तिरसामृतसिन्धु, ३।३।७

[३] भक्तिरसामृत सिन्धु, ३।३।११

और हिलमिल कर उनके साथ खेलने वाले सुदामा, श्रीदाम दाम आदि। "प्रियनम सखा' अत्यन्त अन्तरग जो गोपनीयतम रहस्य काय (प्रेयसी मिलन सहायता मे गुप्त काय विशेष) में नियुक्त रहते हैं जस सुबल, उज्ज्वल, अजुन गाप आदि।

रस-तारतम्य

श्रीकृष्ण और सखाओ समजातीय माधुयशाली यह प्रेयोरस अनिवचनीय चित्त चमत्कार पोषण करता है। शान्ति, प्रीति वात्सल्य में कृष्ण और भक्तों के पारस्परिक सम्बध में वैषम्य है। अतएव इन रसो में प्रेयोरस ही उत्तम है। भावोत्कष की दृष्टि से सख्य रति में एक अभाव यह है कि वह देश, काल और परिस्थितिजय बाधाओ के कारण उस तन्मयावस्था को प्राप्त नही हो पाती जिसमें पूण रग का स्थिति उत्पन्न हो सके। अतएव इस दृष्टि से वात्सल्य रति की ग्राह्यता और महनीयता अधिक ह।

(४) वात्सल भक्ति रस

वात्सल्य-रति

स्वरूप

गुरुत्वअभिमानमय रति वाले व्यक्ति हरि के पूज्य रूप से प्रसिद्ध ह। उनकी अनुग्रहमयी रति का नाम 'वात्सल्य" ह[१]। यशोदा, नन्द, देवकी आदि गुरुवर्गीय जन वात्सल्य भाव के भक्त हैं। उनके प्रेम में शुद्ध वात्सल्य मयी भक्ति का स्वरूप निहित ह। जसे अबोध सन्तान पर माता पिता की ममता रहती हैं, वे अत्यधिक प्रसन्नता से सन्तान के लिए नाना कष्ट, आपदाओं को झेलकर उसका लालन-पालन करते ह। बालक के मनोहारी रूप और बाल-चेष्टाओं की सरसता में ही उनका मन सवदा तन्मय रहता है। ठीक ऐसा ही भाव वात्सल्य भाव के भक्त का अपन उपास्य के प्रति रहता है। बाल-स्वरूप में बाल गोपाल कृष्ण ही उनके उपास्य देव ह जिनके मन मोहन स्वरूप और बाल-सुलभ क्रीडाओ में भक्त वात्सल्य भाव से भगवान् पर अपने को निछावर कर देता है इसी में उसके मन की पूण तृप्ति और परम शान्ति ह।

वात्सल्य भक्ति का स्वरूप

वल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना को ही सर्वाधिक -

---

[१] भक्ति रसामृत सिन्धु २।५।२१

महत्त्व दिया गया है। भक्त, वात्सल्य भावाधिक्य के कारण उपास्य की अत्यन्त त्याग और ममतापूर्ण सेवा में तत्पर रहता है। भक्त भगवान् की मनोमुग्धकारी बाल-क्रीडाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करता हुआ यशोदा के समान मातृ स्नेह में उत्फुल्लित रहता है। इस प्रकार की वात्सल्यमयी भक्ति में भगवान् का ऐश्वर्यभाव बिल्कुल दब-सा जाता है। अहर्निश बाल गोपाल का मंगल चिन्तन और तन्मयसेवा ही भक्त के जीवन का सार है। इस भाव की सबसे प्रमुख विशेषता यही है कि भक्त अपने स्नेह और सेवा का कुछ भी प्रतिदान नहीं चाहता। जैसे पुत्रवत्सला जननी का हृदय सन्तान-स्नेहातिशयता से सिक्त, ममता से ओतप्रोत रहता है, सन्तान के सुख-कल्याण के लिए वह अपने को मिटा कर ही सुखी और परम तृप्त रहती है, उसे स्नेह के प्रतिदान में क्या और कितना मिल रहा है इसकी रंच-मात्र चिन्ता नहीं। उसी प्रकार भगवान् का भक्त के प्रति जितना स्नेह, अनुग्रह है इसके लिए भक्त हृदय तनिक सशंकित अथवा सचेष्ट नहीं। देकर ही वह परम सुखी और सन्तुष्ट है, पाने की चिन्ता उसे नहीं। बाल-गोपाल को मातृवत् अहर्निशि पलकों में सहेजे हुए ही भक्त अपने जीवन को धन्य समझता है। वात्सल्य भाव की भक्ति में निष्कामता की पराकाष्ठा है, अन्य रसों की तुलना में यही उसका महत्त्व और गौरव है।

(५) मधुर भक्ति रस

मधुरा-रति

स्वरूप

आत्मोचित विभावादि द्वारा मधुरा रति जब सदाशय व्यक्तियों के हृदय में पुष्ट होती है तब उसे मधुर भक्ति रस कहते हैं[1]। मधुर रस का स्थायी भाव है 'प्रियता" या "मधुरा"। श्रीकृष्ण और व्रज सुन्दरियों का परस्पर जो स्मरण-दर्शनादि अष्टविध सम्भोग है, उसका आदिकारण जो गोपियों की रति है वही प्रियता है[2]। कान्त भाव से श्रीकृष्ण की उपासना ही मधुर भक्ति है।

त्रिविध मधुरा रति

मधुरा रति तीन प्रकार की है—साधारणी, समंजसा और समर्था[3]।

[1] भक्तिरसामृत सिन्धु, ३।५।१ [2] वही, ३।५।२५

[3] उज्ज्वलनीलमणि—स्थायिभाव प्रकरण, २०।

कुब्जा की रति "साधारणी' ह वह सम्भोगेच्छाजन्य या आत्मसुखेच्छाजन्य होने के कारण तिरस्कृत हुई। इसमें प्रेम की प्रगाढता का अभाव है, श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से ही साधारणी रति उत्पन्न होती है। सम्भोगेच्छा निदान स्वरूप साधारणी रति सम्भोगेच्छा के ह्रास के साथ ही ह्रास प्राप्त करती है। रुक्मिणी आदि द्वारका की महिषियों की रति समजसा' है, यह रति लोक धर्म की अपेक्षा रख कर विवाह विधि द्वारा बद्ध है। पत्नीत्वभिमान और श्रीकृष्णसुखेच्छा समजसा रति के मुख्य कारण ह, सम्भोगेच्छा उसमें गौण रूप से सन्निविष्ट है। समजसा रति स्वाभाविकी होने पर भी उसके प्रकटीकरण के लिए श्रीकृष्ण के गुणादि श्रवण की अपेक्षा है। गोपियों की रति "समर्था' है। श्रीकृष्ण-सुख ही समर्था रति का एकमात्र लक्ष्य है। इस रति के आविर्भाव के लिए रूपादि दर्शन या गुणादि श्रवण की अपेक्षा नही ह, यह स्वभावसिद्धा है। उनकी सम्भोगेच्छा कृष्ण-सुख के अनुकूल होने के कारण ही स्वीकृत है। गोपियों का तन मन श्रीकृष्ण प्रेम और सुख अनुकूल कार्यों में ही निरन्तर निमग्न ह। गोपियों का सुख कृष्ण सुख में अवसान प्राप्त करता ह। लज्जा, मान, कुल, शील, धर्म परित्याग करके, स्वजन, गृह, आत्मसुखचिन्तन विस्मृत होकर व्रजवनिताएँ तन मन से श्रीकृष्ण सुख सेवा रत हैं। असह्य कष्ट झेल कर भी वे केवल श्रीकृष्ण-सुख की ही वाछा करती ह। गोपियों की समर्था रति अतुलनीय है। इसलिए साधारणीरति को मणि-तुल्य समजसा रति को चिन्तामणि-तुल्य और समर्थारति को जगदुर्लभ कौस्तुभ के समान अनन्यलभ्या कहा गया है[१]।

मधुरा-रति स्वकीय और परकीय

मधुराख्य रति में नित्य रूप से स्वकीय और परकीय जाति भेद ह। जिसका जैसा नित्य भाव है तदनुरूप उसकी रुचि भजन और प्राप्ति ह। द्वारकादिधाम में रुक्मिणी सत्यभामा आदि शास्त्र विधि अनुसार विवाहिता महिषियाँ श्रीकृष्ण की स्वकीया ह और व्रजधाम में 'परोढा' श्रीराधिकादि व्रज रमणियाँ परकीया ह। स्वकीया भाव ही मूल कान्ताभाव है रसपोषक परकीया भाव कान्ताभाव का विलास-वैचित्र्य मात्र ह। परकीयाभाव में मिलन-हेतु बहुत बाधा विघ्नों के अतिक्रमण के कारण उत्कण्ठातिशय और प्रेमरस के उद्दीपन का अधिक अवसर मिलता है। परकीया के समान

---

[१] उज्ज्वलनीलमणि—स्थायिभाव प्रकरण, २१।

स्वकीया मे विचित्र-लीला-रसास्वादन-आनन्द नही है। परकीया भाव ही मधुरभाव की परमउत्कर्षावस्था है। ब्रजधाम के अतिरिक्त अन्य कही परकीया-लीला का अस्तित्व नही है। बहुत से आलोचक ब्रज के इस पुनीत परकीया भाव को भौतिक, स्थूल जगत के परदारत्व के अनुरूप मानकर इनकी कटु आलोचना करते हैं। वस्तुत. अपूर्व रस-वैचित्री-आस्वादन के लिए और कान्तारस-उल्लास और प्रेम उच्छ्वासाधिक्य के कारण ही स्वकीय कान्ता भाव मे परकीय भाव का आवरण मात्र डाला गया है, प्रकृततया वह स्वकीया भाव ही है। दूसरी बात—गोपियाँ यथार्थ में परस्त्री नही, वे स्वरूपत: श्रीकृष्ण की स्वकान्ता है। भगवान् श्रीकृष्ण बालक की स्वप्रतिबिम्ब के साथ क्रीडा के समान ही ब्रजसुन्दरियो के साथ लीलामय क्रीडा कर रहे हैं। जिस निज चिच्छक्ति द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्ण निरन्तर आनन्द का अनुभव करते रहते है, वह है ह्लादिनी शक्ति। श्री राधा इसी ह्लादिनी शक्ति की मूर्त विग्रहस्वरूपा है। अन्य ब्रज-रमणियाँ श्रीराधिका की कायव्यूह स्वरूपा है। अत अचिन्त्य शक्तिमान कृष्ण की विभिन्न शक्तियाँ उनकी स्व-शक्तियाँ ही है। शक्ति और शक्तिमान के अभेद के कारण परकीय भाव किसी प्रकार भी अमर्यादित नही। लीलामय श्रीकृष्ण की इच्छा से ही उनकी स्वरूपशक्ति की वृत्ति ने योगमाया के अभाव स्वरूप पति-पत्नी के भाव को आवृत्त कर रखा। और इस प्रकार स्वकीय कान्ता में परकीया-भाव का पोषण हुआ। अत स्वकीया के समान यह परकीया-लीला भी नित्य और गरिमामयी है।

शृंगार रस द्विविध

शोभनीय मधुर रस ही का नाम "शृगार या उज्ज्वल" रस है। अवस्था भेद से यह दो प्रकार का है—विप्रलम्भ और सम्भोग। रजित वस्तु में पुन. रग का पुटपाक देने से जैसी रग वृद्धि होती है, तद्रूप विरह द्वारा सम्भोग का रसोत्कर्ष होता है। विप्रलभ के विना सभोग की पुष्टि नही होती।

विप्रलंभ और संभोग के प्रकार

पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्र्य और प्रवास यह विप्रलभ के चार प्रकार है[1]। विप्रलम्भ रस स्वत सिद्ध नही, वह केवल सभोग रस की पुष्टि करता है। नित्यरस में भी कुछ विप्रलभ अवश्य अवस्थित रहेगा, नही तो विचित्र-लीला

---

[1] उज्ज्वलनीलमणि—शृगारभेद प्रकरण, ३।

सभव नही। सभोग की प्रगाढता के अनुसार सक्षिप्त सकीर्ण सम्पन्न और समृद्धिमान चतुर्विध है[1]।

माधुर्य भक्ति की सर्वश्रेष्ठता—

गौडीय वैष्णवो ने मधुर भक्ति को श्रेष्ठतम माना है। इस भाव में सकोच, मर्यादा, परत्व की भावनाएँ पूर्णतया लुप्त हो जाती है। "स्व" का अस्तित्व कृष्ण-सुख सेवा में विलीन हो जाता है। यह अनुराग लौकिक दाम्पत्यरति से सर्वथा पृथक है। इसमें किसी भी प्रकार के स्वार्थ, अहकार की गध नही है। जगत नियन्ता के प्रति यह अलौकिक प्रेम है। चिज्जगत में कृष्ण और तदीय विविध शक्ति का पुरुष प्रकृति भाव से सम्मेलन भी इसीलिए इतना पवित्र और पुनीत माना गया है। अतएव गौडीय वैष्णव रस सिद्धान्त में मधुररस को सर्वोपरि स्थान दिया गया और शान्त रस का सबसे निम्नस्तर पर रखा गया। सच्चिदानन्द कृष्ण के प्रति यह प्रेम बराबर आगे बढता हुआ स्नेह, मान, प्रणय, अनुराग की अवस्था का पार कर अन्त में "महाभाव" की चरम सीमा को पहुँच जाता है। यह इन्द्रियातीत भावमयी परिस्थिति है जो गौडीय वैष्णव भक्त के लिए चरम काम्य है।

भक्ति के मूल तत्त्वो का विवेचना से यह तो स्पष्ट है कि वैष्णव साधना पूर्णतया भक्ति पर ही आधारित है और गौडीय-वैष्णव आचार्यों के भक्ति विषयक सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा भक्ति का स्वरूप और भी सुस्पष्ट हो गया।

•

(ग) भगवान् का अवतरण

परतत्त्व का द्विविध स्वरूप

सच्चिदानन्द परम भगवान् के दो स्वरूप है। एक तो निर्विशेष, निर्गुण रूप जो देश काल के बधन से अपरिच्छिन्न, अनादि, अनन्त, अकल, अनीह, अगम, अगोचर, निराधार निर्विकार है, यही ज्ञानी का 'ब्रह्म' है। भगवान् के इस स्वरूप की अनुभूति केवल ज्ञानी भक्त को होती है यह अनुभव वाणी द्वारा अप्रकाश्य, मन द्वारा अगम बुद्धि द्वारा अग्राह्य है। जब यही अव्यक्त ब्रह्मानुभूति भाव रूप में भक्त के हृदय में प्रकट होकर स्थायित्व लाभ करती

[1] उज्ज्वलनीलमणि, प्रकरण ९९।

है तो सगुण, सविशेष भगवान् कहलाने लगती है, यही भगवान् का दूसरा रूप है। भक्त का भाव-गृहीत रूप इसी को कहा गया है[१]। भक्त के भाव-जगत की परिधि में बंधकर निराकार-साकार, निर्गुण-सगुण, अप्राकृत-प्राकृत, अगोचर-गोचर, अपार्थिव-पार्थिव, नारायण-नर या नरेतर जीव का रूप ग्रहण करके जगत् के बीच प्रकट होता है। यही भगवान् का अवतार ग्रहण करना या अवतरण कहलाता है। वैष्णव साधना भगवान् के इसी सगुण, अवतारी, स्वरूप को लेकर चली।

अवतार-भेद

भगवान् के अवतार असंख्य हैं—पुरुषावतार[२], गुणावतार[३], लीलावतार[४], मन्वन्तरावतार[५], युगावतार[६] और आवेशावतार[७]। जैसे क्षयहीन जलाशय से

---

[१] पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी "मध्यकालीन धर्म-साधना", पृ० ३।

[२] तस्यैव योहनु गुणभुग्बहुधैक एव, शुद्धोहप्यशुद्ध इव मूर्तिविभागभेदैः।
ज्ञानान्वित सकलसत्वविभूतिकर्त्ता तस्मै नतोहस्मि पुरुषाय सदाव्ययाय ॥
—विष्णुपुराण ६।८।५९

[३] सत्त्व रजस्तमऽति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्त
पर पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरि-विरिंचि-हरेति संज्ञा
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणास्यु ॥
—श्रीमद्भागवत, १।२।२३

[४] पच्चीस संख्यक यथा—चतु सन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण कपिल, दत्त या दत्तात्रेय, हयशीर्षा, हंस, ध्रुवप्रिय, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि।

[५] मन्वन्तरावतारोऽसौ प्राय शक्रारिहत्यया।
तत्सहायो मुकुन्दस्य प्रादुर्भाव सुरेषु य ॥
—श्रीलघुभागवतामृत (मन्वन्तरावतार-प्रकरण)

[६] कथ्यते वर्ण-नामभ्या शुक्ल सत्ययुगे हरि।
रक्त श्याम क्रमात् कृष्णस्त्रेताया द्वापरे कलौ ॥२५॥
—वही (युगावतार-प्रकरण)

[७] ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दन।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमा ॥१८॥

सहस्रो जलधारा निगत होती ह उसी प्रकार स्व प्रादुभूत शक्ति के आश्रय स्वरूप हरि के अवतार असख्य ह । अन्य अवतार तो अशावतार, भगवान की कला या विभूति स्वरूप ह, श्रीमद्भागवत ने प्रतिपादित किया कि "कृष्णस्तु भगवान् स्वय"[1] अतएव वही एकमात्र अशी ह । भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण स्वय रूप होने के कारण उसमें श्रीकृष्ण की गणना लीलावतार रूप से नहीं हुई ह, वे अवतारी है । श्रीकृष्णावतार दो मुख्य रूपा में प्रकट हुआ है—एक यदुकुल शिरोमणिवीर, दुष्ट-सहारी शक्तिशाली राजा, दूसरा गिरिधारी, गोपाल, गोपीजनवल्लभ, नन्द, यशोदा का लाडला सुत । प्राचीन ग्रथा में प्रथम रूप पर ही अधिक महत्त्व दिया गया पर धीरे धीरे साहित्य के बीच दूसरा रूप ही प्रधान होता गया । जिससे पहला रूप दब-सा गया ।

अवतार का प्रयोजन

अब प्रश्न उठता है कि भगवान् को अवतार लेने की क्या आवश्यकता आ पडी ? इसका उत्तर श्रीमद्भगवद्गीता में स्वय भगवान् ने श्रीमुख से मिलता ह "धम की स्थापना, साधुओ के परित्राण और दुष्टा के विनाश के लिए अवतार धारण करता हूँ[2] ।" प्राचीन साहित्य[3] और शिल्प में[4]

वैकुण्ठेऽपि यथा शेषो नारद सनकादय ।
अक्रूरदृष्टास्ते चामी दशम परिकीर्तिता ॥१९॥
—वही (आवेशावतार प्रकरण)

[1] "एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम ।'
—श्रीमद्भागवत १।३।२८

[2] यदा यदा हि धमस्य ग्लानिभवति भारत ।
अभ्युत्थानमधमस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धमसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥
—श्रीमद्भगवद्गीता ४।७-८

[3] अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित (१,५०), कालिदास क 'मेघदूत" (१५), महाभारत का सभा-पव (६८।४१-४२), हरिवश का विष्णु-पव (६-२५), विष्णु-पुराण, भागवत ।

[4] मन्दसोर मदिर के टूटे हुए दो द्वार-स्तभ प्राप्त हुए ह जिनमें गोवधन धारण, शकट भग, धेनुकवध और कालियदमन की लीलाएँ उत्कीण

दुष्ट-दलनकारी और भक्त-वत्सल रूप में ही कृष्ण के दर्शन होते है। क्रमशः पूर्व उल्लेखित कृष्ण के द्वितीय रूप की प्रधानता के कारण उनका दुष्ट-दमनकारी रूप दबता गया और लीलामय स्वरूप ही प्रमुख हो उठा। परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान वैष्णव भक्तो के अनुसार भगवान् लीला-विस्तार हेतु और निज भक्तो पर अनुग्रह करने की इच्छा से ही अवतरित होते हैं। उनके प्रकट होने का कारण श्रीलघुभागवतामृत में कहा गया है—"उनकी जन्मादि लीलाओ का उत्तम हेतु अपनी लीला कीर्ति का विस्तार तथा भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा ही है[1]।

स्वयं रूप के अवतरण का प्रयोजन-लीला

जब भगवान् अवतीर्ण होते है तब दुष्टो के दलन से भक्तो की रक्षा तो होती ही है और धर्म की सस्थापना भी स्वत ही हो जाती है। इससे यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इन कार्यो की सिद्धि के लिए मर्त्यलोक में भगवान् के स्वयं रूप में अवतरण की क्या आवश्यकता है, यह काम तो भगवान् के अशावतारी रूप द्वारा भी साध्य है वस्तुतः भगवान् में जो "रिरसा वृत्ति" अर्थात् रमण करने की इच्छा है उसी के फलस्वरूप सच्चिदानन्द भगवान् अपने आनन्द अश से सृष्टि का प्रसार करते है। यह सृजन व्यापार ही लीला-पुरुषोत्तम की अपूर्व लीला है। भगवान् इस लीला का विस्तार स्वान्त. सुखाय तथा भक्त हिताय करता है।

द्विविध लीला

"प्रकट" और अप्रकट भेद से लीला द्विविध है। श्रीकृष्ण स्वरूपभूत अनन्त प्रकाश और लीला द्वारा गोलोक में सर्वदा ही क्रीड़ारत है। भगवान् के सभी लीला-परिकर[2] इसमें नित्य विराजमान है। जड चक्षुओ के लिए

है। विद्वानो ने इसका निर्माण काल सन् ईस्वी की चौथी या पांचवी शताब्दी अनुमान किया है। चौथी शताब्दी (सभवत) की एक और गोवर्धनधारी मूर्ति मथुरा में प्राप्त हुई है। महाबलीपुरम में भी गोवर्धनधारी की उत्कीर्ण मूर्ति मिली है।

[1] स्वलीलाकीर्तिविस्ताराद् भक्तेष्वनुजिघृक्षुता।
अस्य जन्मादिलीलाना प्राकट्ये हेतुरुत्तमः ॥३८८॥

[2] ब्रजवासी, यादवगण, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेरतनय नलकूवर, मणिग्रीव आदि, देव, नारदादि मुनि, केशि आदि दानव, कालिय आदि नाग और शंखचूड आदि यक्ष सभी लीला-परिकर है।

यह नित्य-लीला अगोचर है इसी कारण यह "अप्रकट लीला" कही गई है, यह दिव्य-लीला "देव लीला" की सज्ञा से भी अभिहित है। सयोग से उस अनन्त प्रकाश में से किसी एक प्रकाश के द्वारा भगवान अपने सहचरो के साथ जगदन्तर में प्रादुर्भूत होकर लीला का विस्तार करते हैं। प्रपच गोचर होने के कारण यह लीला "प्रकट लीला" कही जाती है, भगवान् के नर-रूप में आविर्भूत होकर लीला रचना के कारण वह "नर लीला" है। इस प्रकट लीला में श्रीकृष्ण गोकुल, मथुरा और द्वारका में गमनागमन करते हैं। वृन्दावन ही प्रकट लीला का मुख्य क्षेत्र है मथुरा और द्वारका सहकारी हैं अतएव नर-लीला में उनका स्थान गौण है। कहा जाता है कि वृन्दावन में भगवान् का पूर्णतम, मथुरा में पूर्णतर और द्वारका में पूर्ण रूप में आविर्भाव होता है। भगवान् का नित्यधाम गोलोक ही वृन्दावन के रूप में प्रकट हुआ है। कृष्णलीला प्रकट और अप्रकट भेद से दो प्रकार की होने पर भी वस्तुत वह एक ही तत्त्व है। प्रकट व्रजलीला में भी नित्य और नैमित्तिक दो भेद हैं। व्रज में अष्टकालीन लीला नित्य होती रहती है, पूतनावधादि, दूर-प्रवासादि नैमित्तिक लीलाएँ हैं। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से गोलोक और वृन्दावन में कोई पार्थक्य नहीं तथापि वृन्दावन लीला का वैशिष्ट्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गोकुल में श्रीकृष्ण की माधुरी सर्वातिशायिनी है। श्रीकृष्ण का रूप माधुर्य, वेणु माधुर्य, प्रेम माधुर्य और लीला-माधुर्य इन चतुर्विध अपूर्व माधुर्यमय स्वरूप का एकमात्र व्रज में ही विकास हुआ। सम्मोहन तत्र में कहा है—"यद्यपि श्रीकृष्ण के सहस्रो उपादेय अवतार विद्यमान हैं, किन्तु उन सब अवतारो में बालत्व अति दुर्लभ है[१]।' व्रज में बाल रूप में अवतीर्ण होकर भगवान् ने नित्य नूतन विविध लीलाएँ की। अप्रकट लीला में जन्मादि लीला का अवसर न रहने के कारण अनादिकाल से भगवान् केवल नित्य किशोर रूप में ही लीला कर रहे हैं। प्रकट-लीला में जन्मादि ग्रहण करके बाल्य पौगण्ड और कैशोर वय के अनुरूप नाना मनोमुग्धकारी लीलाओ द्वारा अपने भक्तो के हृदय को आनन्द से अनुरजित किया। गोलोक की लीला देव-लीला है, उसमें विप्रलभ भाव नहीं, अत वहाँ न तो विरह की टीस है और न मिलनोत्कठा। वह लीला एकागी है। व्रज में नर-रूप में प्रकट होकर भगवान् ने जो नर लीला की उसमें सर्वांगीण माधुर्य का प्रस्फुटन

---

[१] सन्ति तस्य महाभागा अवतारा सहस्रश ।
तेषां मध्येऽवताराणां बालत्वमतिदुर्लभम् ॥ —सम्मोहन तत्र

हुआ। उस लीला का रसास्वादन देवताओं को भी अलभ्य है। उस सुखा-नुभूति के लिए वैकुण्ठस्थिता विष्णु-प्रिया लक्ष्मी का चित्त भी चंचल हो उठा था[1]। गोलोक की अपेक्षा गोकुल की महिमाधिक्य के कारण ब्रह्म-संहिता में [2]श्रीकृष्ण धाम गोलोक को गोकुल की विभूति स्वरूप माना गया है जहाँ माधुर्य-प्रकाश-देदीप्यमान है। मथुरा में भगवान् के माधुर्य तथा ऐश्वर्य दोनों पक्षों के दर्शन होते है, द्वारिका में केवल ऐश्वर्य का ही प्रकाश है।

लीला-वैविध्य

वस्तुत. भगवान् के रूप, गुण, धाम, लीला सभी नित्य और अनन्त है पर लीला-भेद से वह चतुर्लोकों (गोलोक, गोकुल, मथुरा, द्वारका) में भिन्न रूपों में प्रकट हुआ है। भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न अवतार ग्रहण करके भगवान् ने विविध लीलाएँ की। अवतारों की विभिन्न लीलाओं के कारण ही भगवान् की शास्वत नित्य लीला का इतना प्रसार हो सका। ये अवतार लीला-प्रचारक है। भक्ति के उत्कर्ष के लिए भगवान् के साथ जीव का वैयक्तिक सम्बन्ध अपेक्षित है। अवतार उस सम्बन्ध के लिए उपयुक्त सामग्री प्रदान करता है।

अवतरण द्वारा भगवान् मानव-सुलभ भावों के आलम्बन

भगवान् का अवतरित होकर नर-लीला करने के पीछे एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य निहित है। सत्य का वही पक्ष मानव के उपयोगी हो सकता है जिसे वह अनुभूतिगम्य बना सके। निस्सन्देह भगवान् के विराट्, शास्वत रूप की महिमा अपरम्पार है, वह देव-लीला भी सहस्रो बार वन्दनीय है। आनन्द ही आनन्द की प्राप्ति का मानव स्वप्न देख सकता है, कामना कर सकता है पर उसे वास्तव में पा नही सकता। मनुष्य सीमाओं में बंधा

---

[1] श्री प्रेक्ष्य कृष्णसौन्दर्य तत्र लुब्धा ततस्तप।
कुर्व्वतीं प्राह ता कृष्ण किन्ते तपसि कारणम्॥
विजहीर्वे त्वया गोष्ठे गोपीरूपेति साब्रवीत्।
तद्दुर्लभमिति प्रोक्ता लक्ष्मीस्त पुनरब्रवीत्॥
स्वर्णरेखेव ते नाथ! वस्तुभिच्छामि वक्षसि।
एवमस्त्विति सा तस्य तद्रूपा वक्षसि स्थिता॥ —पद्मपुराण

[2] ५।४३,५।५६–५७।

हुआ प्राणी है, उसकी इन्द्रियों की अनुभूतियों की सीमा के बीच देशकाल से परिच्छिन्न मन की आशा-आकांक्षाओं के घेरे में भगवान जब नर रूप में अवतरित होते हैं तो वह उन्हें सत्य, यथार्थ रूप में मान पाता है। समस्त प्रकार के मानव भाव-जनित आशा-आनन्द, आशंका, अधीरता, निराशा व्याकुलता द्वारा भगवान की प्राप्ति मनुष्य जीवन का चरम प्राप्तव्य है। यहाँ भगवान् जन-साधारण के सुख-दुःख के समभागी होकर उसी के स्वजन रूप में बसते हैं। यहाँ वे माता के प्राण, पिता के नयन-तारे, स्वजनों के आनन्द-वर्द्धक, दुष्ट-दलनकारी, भक्त प्रतिपालक, धर्म-संस्थापक और सबसे बढ़कर गोपियों के जीवनाधार, प्रेमाश्रय, प्रियतम हैं—सब प्रकार के मानव-सुलभ भावों के आश्रय। वैष्णव आचार्यों ने इस महासत्य की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर ढंग से की है। इसी मानवत्व के कारण ही भगवान की प्रकटलीला का इतना उत्कर्ष है जिसके सामने देव-लीला भी श्री-हीन है।

●

(२) साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप

पूर्व अध्याय में हमने व्रजभाषा और व्रजबुलि साहित्य की धार्मिक पृष्ठ-भूमि के रूप में वैष्णव धर्म और उसमें अन्तर्भुक्त मुख्य सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अध्याय में दोनों साहित्यों की साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप में राधा-कृष्ण-कथा के स्वरूप पर विचार करने जा रहे हैं जिससे विषय-वस्तु का रूप स्पष्ट हो जाय।

कृष्ण का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप—अति प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में विष्णु की उपासना का पता चलता है। नारायण, वासुदेव और श्रीकृष्ण के रूप में विष्णु ही प्रकट हुए[१]। वैष्णवों के परम आराध्य के इन विभिन्न रूपों में प्रकट होने तथा इन विभिन्न रूपों में विकसित होने के पीछे नाना प्रकार की परिस्थितियों का हाथ रहा है। कृष्ण का ऐश्वर्य रूप ही पहले

[१] विष्णु के इस विकास क्रम की विस्तृत चर्चा भंडारकर ने 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टमस" में की है और रायचौधरी की 'अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट' तथा गोस्वामी की "दि भक्ति कल्ट इन ऐंशेंट इंडिया' में थोड़ी बहुत हुई है।

प्रधान था। प्राचीन साहित्य की छानबीन करने वाले अध्येताओं के लिये इस स्वरूप का परिचय पाना कुछ कठिन नहीं है। गीता में भगवान् के अवतार का कारण बतलाया गया है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

इससे सहज ही पता चलता है कि भक्तों के परित्राण, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की संस्थापना के हेतु ही कृष्ण का अवतार होता है। इसमें कृष्ण के परम ऐश्वर्यशाली और देवत्व रूप की ही प्रधानता है। इस रूप की प्रधानता के मूल में वेद, उपनिषद् और तंत्रों का प्रभाव रहा है। महाभारत में कृष्ण के इसी रूप का परिचय मिलता है। महाभारत में भगवान् कृष्ण परम ऐश्वर्यशाली, पराक्रमी और नीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे भक्तों के लिये सब कुछ करने को तैयार है अगर भक्त अर्जुन की नाईं सम्पूर्ण रूप से अपने आपको उनके चरणों में निवेदित कर दे। इस प्रकार से ऐकान्तिक भक्ति का विकास महाभारत के समय से होने लगा। इस भक्ति में कृष्ण को ही एकमात्र आश्रय मानना और उनकी ही कृपा पर निर्भर करना भक्त का परम धर्म माना गया है[1]।

कृष्ण के लीला-नायक रूप का प्राधान्य—गोपाल-कृष्ण के साथ कृष्ण का लीला-नायक रूप प्रधान हो उठा। गोपाल कृष्ण का विकास परवर्ती काल का विकास है। कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में कृष्ण का माधुर्य पक्ष प्रबल हो उठा। उनकी मधुर रस की लीलाएँ प्रधान रूप से भक्तों के आकर्षण का विषय रही हैं। उसके बाद बाल-लीला आदि के वर्णन हैं।

गोपाल कृष्ण का आभीर जाति से संबंध—गोपाल कृष्ण की भावना का परिचय बाद में मिलने लगता है। विद्वानों का अनुमान है कि आभीर जाति से गोपाल कृष्ण का गहरा संबंध है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आभीरों का राज्याधिकार इस भावना के प्रसार और विकास का कारण है और संभवतः ईसवी सन् की पहली से तृतीय शताब्दी के बीच इस भावना से भारतीय जनता का परिचय हुआ। महाभारत में आभीर जाति का उल्लेख अवश्य है लेकिन उससे इतना ही पता चलता है कि वह इधर-उधर घूमनेवाली गोपाल जाति है। आभीरों के संबंध में समुद्रगुप्त के ईसवी सन्

---

[1] सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। —१८।६६

३६० के प्रयाग वाले स्तम्भ लेख से यह पता चलता है कि वे अत्यन्त शक्तिशाली थे और सम्पूर्ण राजस्थान पर उनका अधिकार हो गया था[१]। ये आभीर गोपाल कृष्ण के उपासक थे। पडितो का अनुमान है कि आभीर जाति में ही व्रज की गोपागनाओ और नटवर, चपल, किशोर कृष्ण की विविध प्रेम लीलाओ का प्रचलन लोकगीतो के रूप में रहा होगा और इन लोकगीतो के माध्यम से ही इनका प्रचार भारत के अन्य प्रान्तो में हुआ होगा। कृष्ण की इन शृगार प्रधान लीलाओ की ओर जन चित्त का आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। इसका फल यह हुआ कि कृष्ण का परम ऐश्वयशाली स्वरूप और उनके देवत्व का अभी तक जो गुणगान होता था उसके स्थान पर उनकी इन मनोहारी और सरस लीलाओ ने अधिकार जमा लिया। वसे इस परिवत्तन के साथ ही गोपाल कृष्ण के पराक्रम का उल्लेख भी साहित्य में यदा-कदा मिल जाया करता है। गोपाल कृष्ण की पराक्रमशीलता का वणन अश्वघोष के 'बुद्धचरित' में मिलता है, जिसे विद्वान लोग सबसे पहला मानते है

ख्यातानि कर्माणि च यानि शौरे शूरादयस्तेष्वबला बभूवु[२]।

'सूरवशी कृष्ण के जो विख्यात कम ह उनकी तुलना में शूर व्यक्ति भी निबल हो गए' ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के बाद से भारतीय साहित्य में गोपाल कृष्ण का उल्लेख प्रचुरता से मिलने लगता ह। कालिदास ने भी "गोप वेषस्य विष्णो' लिखा[३] ह।

तामिल साहित्य में "कृष्ण—तामिल साहित्य में गोपाल कृष्ण की कथाओ के विभिन्न रूपो का प्रवेश बहुत पहले से हो गया था। ईसवी सन् के प्रारम्भ से ही तामिल साहित्य में इन कथाओ का परिचय मिलने लगता है। तामिल के सुप्रसिद्ध काव्य 'मदुरइक्काचि'[४] में कृष्ण के जन्मोत्सव[५] का उल्लेख मिलता ह। पुराने समय में तामिल प्रदेश के चरागाह प्रान्त (मुल्लइ) के

[१] हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी साहित्य की भूमिका", पृ० २४।

[२] ११५०

[३] मेघदूत—पूवमेघ, १५।

[४] माँगुडी मरुदणार द्वारा रचित वृहत् तामिल काव्य ह। इसका सकलन, सगम रचना पत्तुप्पाट्टु (१० काव्य-ग्रन्थो का सकलन-ग्रन्थ है) में हुआ ह। पाण्डयन राज्य का इसमें विशद वणन हुआ है।

[५] २१५९०–५९२।

गोपाल-देवता मायोन या मायावन (श्यामवर्ण) थे[१]। मायोन या मायावन में विष्णु और कृष्ण एक हो गए है। उत्तर भारत की परपरा में कृष्ण श्यामवर्ण है। मायोन या मायावन के स्वरूप का वर्णन "विष्णु" जैसा है उनके कार्य कृष्ण के समान[२]। अधिकाश स्थलो पर मायावान या विष्णु के नाम के साथ कृष्ण की ही लीलाएँ जुडी हुई है।

मायोन और कृष्ण—मायोन या मायावन के संबध में तामिल साहित्य में जो कुछ मिलता है उससे इस बात मे सन्देह नही रह जाता कि वास्तव में मायोन और कृष्ण एक ही है। मायोन या मायावन का परिचय गोपालो के मुखिया के रूप में मिलता है। वे ग्वाल-बाल और बालाओ के साथी है। वे गायो को वन में चराने के लिये ले जाते है। उन्हें चरती हुई छोड स्वय मधुर बाँसुरी तन्मय होकर बजाते और चराचर को मुग्ध करते है। मायोन गोपियो के साथ नृत्य में भी कृष्ण से पीछे नही रहते। अपने अग्रज बलराम और प्रियतमा नाप्पिनाई के साथ मायोन के "कुरवइकुट्टु[३]" नृत्य करने का भी उल्लेख मिलता है[४]।

कुरवइकुट्टु नृत्य—"शिलप्पाधिकारम्[५]" में "कुरवइकुट्टु" का एक और प्रकार का उल्लेख मिलता है। कहते है कि राजा पाण्डयन ने कोवलण को

---

[१] रामचन्द दीक्षितार—"कृष्ण इन अर्ली तामिल लिटरेचर," पृ० २६८।

[२] "शिलप्पाधिकारम्"—मदुरइक्काण्डम अध्याय १७, पृ० २३७।

[३] विद्वानो का मत है कि कुरवइकुट्टु नृत्य ही रास-क्रीडा है।

[४] "शिलप्पाधिकारम्" अध्याय १७, पृ० २२९, २३४।

[५] शिलप्पाधिकारम् तामिल महाकाव्य है। कुछ बातो में इसकी तुलना रामायण और महाभारत से हो सकती है। इसके तीन मुख्य अंग है—साहित्य, सगीत और नाटक। तीनो ही अपने में पूर्ण है। इसमें कई सुन्दर गेय-पद (इशइपाट्ट अर्थात् लिरिक) है। इस काव्य से प्राचीन तामिलो के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। इसके रचनाकाल के सबध में विद्वानो का अनुमान है कि यह ईसापूर्व ५०० से ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के बीच किसी समय की रचना है। इतने बडे महाकाव्य में कांची के प्रसिद्ध पल्लव राजाओ (सबसे प्राचीन राजा, ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी में हुए) का कोई उल्लेख नही मिलने के कारण विद्वानो ने इसके रचनाकाल के सबध में ऐसा निर्णय किया है।

चोरी के अपराध में मृत्युदण्ड दिया। कोवलण निरपराध था। मृत्युदण्ड के बाद से ग्वालों की बस्ती में नाना प्रकार के अमंगल सूचक लक्षण दीख पड़ने लगे। इस संकट से बचने के लिये गोपवधुओं ने कृष्ण से प्रार्थना करते हुए कुरवइकुट्टु नृत्य किया[1]। यह नृत्य अभी भी दक्षिण में प्रचलित है। इस नृत्य में रास के समान सात या नौ स्त्रियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाचती हैं। वे नृत्य के साथ-साथ कृष्ण-स्तुतिपरक गीत भी गाती जाती हैं[2]।

श्रीकृष्ण के अन्य नृत्य—अदियारक्कुलार[3] ने श्रीकृष्ण के दस प्रकार के नृत्यों[4] का उल्लेख किया है। जिनमें से तीन—अल्लियावुट्टु मल्लाडल, कुडक्कुट्टु—का वर्णन शिल्प्पाधिकार में किया है।

(१) अल्लियम नृत्य—कंस-दमन के पश्चात् श्यामवर्ण विष्णु (कृष्ण) ने यह नृत्य किया था।

(२) मल्लु नृत्य—विष्णु (कृष्ण) ने बाणासुर दैत्य को मारकर यह नृत्य किया था।

(३) कुडम नृत्य[5]—विष्णु (कृष्ण) ने बाणासुर को मारने के बाद अनिरुद्ध को बन्धन से मुक्त कर विजयोल्लास में शोणितपुर (बाणासुर के राज्य) में लम्बे लम्बे डग भरते हुए यह नृत्य किया था[6]।

कुरुन्द वृक्ष का उखाड़ना—उपर्युक्त तीनों नृत्यों में कृष्ण के पराक्रम और बलशाली रूप का ही चित्रण हुआ है। कृष्ण के और भी अन्य प्रसंग आए हैं जिनसे उनके शौर्य पर प्रकाश पड़ता है। शिल्प्पाधिकारम् में उनके कुरुन्द वृक्ष के उखाड़ने का भी प्रसंग आया है[7]। यह यमलार्जुन उद्धार की

---

[1] मधुरइक्काण्डम् अध्याय १७, पृ० २२९।

[2] रामचन्द्र दीक्षितार, स्टडीज इन तामिल लिटरेचर पृ० २९३।

[3] शिलप्पाधिकारम के टीकाकार।

[4] प्राचीन समय में ये नृत्य ग्वालों के बीच प्रचलित थे जो बाद में कृष्ण के साथ जोड़ दिए गए ('स्टडीस इन तामिल लिटरेचर पृ० २९३)।

[5] कृष्ण की बाल्य क्रीडाओं की स्मृति में आज भी यह नृत्य उरियडि-उत्सव में होता है। शिलप्पाधिकारम् अध्याय ६, पाद टीका संख्या २, पृ० १२५।

[6] वही, अध्याय ६ पृ० १२४-२५।

[7] वही, अध्याय १७, पृ० २३२।

ही कथा है। इस प्रकार से यह सहज ही देखा जा सकता है कि तामिल-साहित्य में कृष्ण के मधुर पक्ष का ही चित्रण नहीं मिलता बल्कि उनके शौर्य रूप का भी चित्रण मिलता है।

वृष-वशीकरण प्रथा—तामिल देश में एक प्राचीन प्रथा वृष-वशीकरण की थी। कृष्ण चरित में इस प्रथा का भी उल्लेख हुआ है। वृष-वशीकरण प्रथा कन्याओं की विवाह-सबंधी एक सामाजिक प्रथा थी। क्वारी कन्याएँ, साँड़ों के रखने की जगह से कुछ सांढ चुन ले जातीं और उनका लालन-पालन करतीं। कुछ दिनों बाद ये पुष्ट और बलशाली सांढ युद्ध कर छोड़ दिए जाते। विवाहेच्छुक युवक उन्हें वश में करने की चेष्टा करते। उन युवकों में जो श्रेष्ठ वीर घोषित किया जाता उसे कन्याएँ वरण करतीं। दक्षिण के आयरों में यह विवाह की एक प्राचीन प्रथा थी[1]। शिलप्पाधिकारम् में कृष्ण के सांढो पर विजय प्राप्त कर क्वारी कन्याओं से विवाह का उल्लेख मिलता है[3]। "शिलप्पाधिकारम्" के कई शताब्दी बाद रचे गए आलवार के ग्रन्थों में भी इस प्रथा की चर्चा है। नग्नजित की कन्या नग्नजिती (नाप्पिनाइ) का व्याह कृष्ण के साथ इसी प्रकार सपन्न हुआ था[2]। यह प्रथा आज भी दक्षिण में कुछ अशो में अवशेष रह गई है वैसे विवाह के साथ उसका कोई भी सबंध नही रह गया है।

आलवारो की वाणी में श्रीकृष्ण-प्रियतमा प्रधान गोपी नाप्पिनाइ—जो वर्णन आलवारो के साहित्य में मिलते है उनमें नाप्पिनाइ श्रीकृष्ण की वृन्दावन-लीला की संगिनी है। श्रीकृष्ण, विष्णु के अवतार के रूप में वर्णित हैं और नाप्पिनाइ उनकी प्रियतमा प्रधान गोपी के रूप में वर्णित है और वे लक्ष्मी की अवतार मानी गई है[3]। इन वर्णनो के आधार पर विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि नाप्पिनाइ ही राधा है[4]।

दोल-उत्सव—दोल-उत्सव बगाल में होली-उत्सव को कहते हैं लेकिन दक्षिण का यह दोल-उत्सव, होली उत्सव से भिन्न है। यह उत्सव क्वारी कन्याओं द्वारा तामिल देश में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था। एक ओर

---

[1] वही, अध्याय १७, पादटीका, पृ० २३०।

[2] रामचन्द्र दीक्षितार · "कृष्ण इन अर्ली तामिल लिटरेचर", पृ० २७१।

[3] हूपर : हीम्स आफ दि आलवार्स ग्रन्थ मे कवियित्री आण्डाल का पद।

[4] शशिभूषण दासगुप्त "श्री राधार क्रमविकास दर्शने—ओ-साहित्ये, पृ० ११३।

उत्सव में कन्याएँ प्रत्यूष काल में यमुना में स्नान करती और प्रार्थना करती हुई कृष्ण को पति रूप में पाने की कामना करती। यह मारगलि-नोणवु का मनाना कहा जाता था। उपर्युक्त दोल उत्सव के पीछे एक कहानी जुड़ गई है। कहा जाता है कि कृष्ण के नर रूप में अवतार लेने के बाद एक बार पृथ्वी पर वृष्टि का अत्यन्त अभाव हो गया। उस समय गोपियों ने कृष्ण से प्रार्थना की थी। मारगलि-नोणवु का मनाना श्रीमद्भागवत (१०।२२) में वर्णित कात्यायनी व्रत की कथा है। गोपियों ने देवी कात्यायनी की पूजा कृष्ण को पति रूप में पाने के लिये की थी। तामिलों में कात्यायनी ने नोणवु का रूप ग्रहण किया।

उपर्युक्त विवरण से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि गोपाल कृष्ण की मधुर रस की लीलाओं से तामिल देश का परिचय ईसवी सन की प्रथम शताब्दी से ही हो गया था। तामिल-देश में गोपाल-कृष्ण की लोकप्रियता का परिचय तत्कालीन साहित्य और उत्सवों से मिलता है। आराध्य रूप में गोपाल-कृष्ण की प्रतिष्ठा वहाँ उस काल में हो गई थी और वे वहाँ के साहित्यिक और सामाजिक जीवन में पूर्णतया घुलमिल गए थे।

कवियों द्वारा राधाकृष्ण-कथा का ग्रहण—राधा-कृष्ण की मधुर रस की लीलाओं ने जनचित्त को अत्यधिक आकृष्ट किया और कलात्मक सृष्टि की वे उपजीव्य बनीं। कवियों, मूर्तिकारों, चित्रकारों ने इन लीलाओं का आश्रय ग्रहण कर अपूर्व रस की सृष्टि की है। रसविदग्ध कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है और उनके द्वारा ही राधा-कृष्ण की प्रेमकथा का व्यापक रूप से प्रसार तथा प्रचार हुआ। प्राचीन संस्कृत श्लोकों, प्राकृत-गाथाओं और अपभ्रंश-दोहों में इस अपूर्व माधुरी को रूप देने की चेष्टा की गई है। उन कवियों की दृष्टि शृंगार प्रधान ही थी और उनकी रचनाओं में काम रस का ही प्राधान्य रहा। राधा-कृष्ण के प्रति उन कवियों ने जो स्थान-स्थान पर संभ्रम और सम्मानसूचक भाव का प्रदर्शन किया है उसके मूल में उन कवियों के देवता विषयक सहज संस्कार थे। वैसे साधारणतः उन कवियों ने राधा-कृष्ण को अपनी प्रेम-कथा के लिये आलंबन विभाव के रूप में ही ग्रहण किया। इन कवियों का ध्यान प्रेम-लीलाओं के बाद बाल-लीलाओं की ओर भी गया है।

काव्य में प्रचलित राधाकृष्ण-कथा का वैष्णव धर्म में ग्रहण—वैष्णव धर्म का जब और जहाँ प्रभाव विस्तार हुआ वहाँ उसके प्रवर्तकों ने राधा-कृष्ण-

कथा आवश्यकतानुसार अपनायी। लेकिन धर्म के क्षेत्र में आकर उस कथा का जो लौकिक रूप-रंग था वह बदल गया और दर्शन तथा धर्म के प्रभाव से वह कुछ और ही दीखने लगा। भक्त कवियों ने राधाकृष्ण की प्रचलित लोक-कथा को लोकोत्तर रूप प्रदान किया। श्रीकृष्ण की लोकोत्तर लीला इस लोक प्रचलित प्रेम-कथा के सम्मिश्रण से अत्यन्त मधुर और स्निग्ध बनकर लोक-जीवन के अत्यन्त निकट आ गई। भक्त कवियों के हाथों मानवीय प्रेम भक्ति से स्निग्ध होकर महान् और मंगलमय बना। इस प्रकार में जो सामान्य काव्य-रस था वह भगवदुन्मुख होकर लोकोत्तरता को प्राप्त हुआ।

हरिवंश में कृष्णकथा—श्रीकृष्ण की व्रज-लीलाओं ने पौराणिक साहित्य में अत्यन्त मधुर रूप ग्रहण किया और उनका अत्यधिक विस्तार हुआ। सबसे पहले "हरिवंश" में व्रज-लीला का सुव्यवस्थित वर्णन हुआ है। "हरिवंश" में कृष्ण का दुष्ट-दमनकारी, पराक्रमी रूप ही अधिक स्थान पाए हुए है। कृष्ण के इस स्वरूप का, विस्तार से बीस अध्यायों[1] में वर्णन हुआ है। उसमें वर्णित घटनाएँ ये हैं गोवर्धनोद्धार, शकट-भंग, पूतना-वध, दामबन्ध, यमलार्जुन भंग, वृकदर्शन, वृन्दावन-प्रवेश, कालिय दमन, धेनुक वध, प्रलम्ब वध, वृषभासुर वध, केशि वध, गोविन्दाभिषेक आदि। हल्लीसक-क्रीडा (रास-क्रीडा) का संक्षेप में वर्णन केवल बीसवें अध्याय में मिलता है।

विष्णु पुराण में कृष्णकथा—विष्णु पुराण में हरिवंश की घटनाओं को दोहराया भर गया है। वैसे इसमें गर्ग द्वारा नाम-संस्कार[2] और गोप-बालाओं के कृष्ण-प्रेम[3] के प्रसंग का विस्तार है। विष्णुपुराण में गोपियों के वियोग का वर्णन भी आया है जब कृष्ण मथुरा चले जाते है। यह एक मौलिक वस्तु थी। वियोगपक्ष का प्राधान्य बाद में चलकर बहुत हुआ। विष्णुपुराण में एक विशेष गोपी[4] का भी प्रथम बार उल्लेख मिलता है लेकिन उसके नाम की कोई भी चर्चा नहीं है। हल्लीस क्रीडा (रास-क्रीडा) का जो वर्णन विष्णु-पुराण में मिलता है उसका हरिवंश के वर्णन के साथ बहुत अधिक साम्य है, यहां तक कि एक पद[5] दोनों में समान वर्णन रूप से मिलता है।

---

[1] विष्णु-वर्णन, ६—२५ अध्याय।
[2] ५।५।
[3] ५।१३।
[4] ५।१३।२९—४०।
[5] हरिवंश—२।२०।२४, विष्णु-पुराण—५।१३।५७।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण-लीला का पूर्ण विकास—परवर्ती युग अर्थात मध्य युग में श्रीमदभागवत का समादर विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों में हुआ। गोपियों और कृष्ण के प्रेम की कथा का पूर्ण विस्तार और परिमार्जन भागवत में हुआ। वैष्णव धर्म के इतिहास में श्रीमद्भागवत का एक विशिष्ट स्थान है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों का, यह ग्रन्थ, आधार रहा है। चैतन्य और वल्लभ सम्प्रदाय तो पूर्ण रूप से भागवत पर ही आधारित हुए। इस महत्व के ग्रंथ में कृष्ण की लीलाओं का विशद वर्णन अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और भव्य है लेकिन गोपी लीला के वर्णन में राधा का कहीं नाम नहीं आया है।

श्रीमद्भागवत में गोपियों की प्रेम-लीला का सुन्दर, मनोहारी चित्रण भागवत के अन्तर्गत "रास पंचाध्यायी" में किया गया है। इन पाँच अध्यायों में गोपियों और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं द्वारा जीव और ब्रह्म के मधुर प्रेम का सरस रूप में वर्णन है। 'रास पंचाध्यायी' को भागवत का सार कहा गया है। उसमें जिस उदात्त प्रेम का चित्रण और काम्य है। भागवत में और भी नये नये प्रसंगों की अवतारणा की गई है। इन प्रसंगों में प्रमुख उनकी बाल-लीला का वर्णन है जो बाद में चलकर भक्तों और कवियों का प्रिय विषय बन गया। इसमें कृष्ण के ऐश्वर्य रूप का चित्रण उनके नाना असुरों के वध के द्वारा प्रस्तुत किया गया है जैसे तृणावर्त मोक्ष, वत्सवक-वध दावाग्नि-पान, व्योमासुर-वध आदि। बाल-लीला में जो वात्सल्य भाव देखने को मिलता है उसका पहले के साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता। भागवत में ही सर्वप्रथम वात्सल्य भाव के दर्शन होते हैं।

पुराणों में राधा का उल्लेख—हम यह देख चुके हैं कि भागवत परवर्ती काल के वैष्णव-सम्प्रदायों में अत्यधिक समादृत हुआ। इस संबंध में पद्म पुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों पुराणों में राधा और कृष्ण का प्रेम-कथा का वर्णन मिलता है। लेकिन इन दोनों पुराणों के काल को लेकर विद्वानों में पूरा मतभेद है। इन दोनों का समय निर्धारण करना कठिन है। ऐसा अनुमान है कि ईसवी सन् की छठी से आठवीं शताब्दी के बीच किसी समय पद्मपुराण की रचना हुई होगी। ब्रह्म-वैवर्तपुराण को ईसवी सन् की सोलहवीं या और भी बाद की रचना मानते हैं। चाहे जो हो, इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि पद्मपुराण में जिस प्रकार से राधा कृष्ण की प्रेम-कथा का वर्णन है उससे लगता है कि राधा-कृष्ण की लीलाओं का विकास एवं प्रसार पद्मपुराण की रचना के पहले

होता है कि इस "सत्तसई" के संकलन के पहले ही राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का परिचय जनसाधारण को हो गया था। केवल परिचय ही नही बल्कि कहा जा सकता है कि उसका प्रचार लोगो मे बडे विस्तार के साथ हो गया था। इन पदो से दूसरी बात यह मालूम होती है कि उस काल तक राधा की प्रतिष्ठा कृष्ण की प्रमुख प्रेयसी के रूप मे हो चुकी थी। "गाहा सत्तसई" के निम्नलिखित पद से इस सकलन की रचनाओ के स्वरूप का पता चल जाता है। कोई गोपी कृष्ण से इस बात की शिकायत कर रही है कि राधा के मुख मे लगी हुई गोरज को मुख-मारुत से पोछकर वे अन्य गोपियो और नारियो का गौरव घटा रहे है -

मुहमारुएण तं कह्न गोरअं राहिआएं अवणेन्तो।
एताणं वलवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि[1]॥

एक दूसरे पद से कृष्ण के रसराज रूप का परिचय मिलता है। इसमे कहा गया है कि जब यशोदा ने इस प्रकार कहा कि "दामोदर अभी भी बालक ही है" तो कृष्ण के मुख की ओर देखकर गोपिया छिपी हँसी हँस रही थी।

अज्जवि बालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिअ जसोआए।
कह्नमुहपेसिअच्छं णिहुव हररिअं वअवहूहिं[2]॥

वेणीसंहार में मानिनी राधा का उल्लेख : "गाहा सत्तसई" के अलावा अन्य काव्य-ग्रन्थो में भी राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के वर्णन मिलते है लेकिन मध्य-युग के भक्त-कवियो की रचनाओ मे उसका जैसा विस्तार देखने को मिलता है वैसा उन रचनाओ में देखने को नही मिलता। प्रसगवश ही यदा-कदा राधा-कृष्ण-लीला से सबधित श्लोक उद्धृत किए गए है। इस तरह के श्लोक "ध्वन्यालोक", "काव्य-प्रकाश" आदि में पाए जाते है। इसी प्रकार से कुछ सकलन-ग्रन्थो में भी ये श्लोक देखने को मिल जाते है, जैसे "कवीन्द्रवचन समुच्चय" तथा "सदुक्तिकर्णामृत" को देखने से पता चल जाता है। कवि भट्टनारायण के "वेणी-सहार" नाटक के नान्दी श्लोक में राधा-कृष्ण-लीला का जो रूप देखने को मिलता है उससे पता चलता है कि उस काल तक आते-आते राधा-कृष्ण की कथा लौकिक कथा से ऊपर उठकर अलौकिक रूप धारण कर चुकी थी। नान्दी श्लोक के रूप में इस कथा का उपयोग इसी बात का सकेत करता है। इस श्लोक को आलकारिक वामन के अलकार-ग्रन्थ में उद्धृत किया गया। इसका मतलब यह है कि "वेणी संहार" नाटक ईसवी

---

[1] १।२९ [2] २।१२।

सन् की आठवी शताब्दी से पूर्व की ही रचना है। "वेणी सहार' के इस श्लोक में कहा गया है कि कालिन्दी के पुलिन पर रास के रस को छोड कर जाती हुई, केलिकुपिता अश्रु विसर्जन करती हुई श्रीराधा के चरणो में श्रीकृष्ण ने जो अनुनय विनय किया था, वह तुम्हारी रक्षा करे। राधिका उस समय प्रसन्न दृष्टि से कृष्ण को देख रही थी।

बालचरित में व्रज-कथा कहा जाता है कि "बाल चरित' भास का लिखा हुआ नाटक है। इस नाटक में व्रज-कथा का वर्णन है। त्रिवेन्द्रम् से प्राप्त नाटको में यह भी एक है। इस नाटक की व्रज-कथा के वर्णन को सर्वप्रथम लौकिक साहित्यिक प्रयास कहा जा सकता है।

ध्वन्यालोक में राधा-कृष्ण-सबधी श्लोक "ध्वन्यालोक" में राधा के विरह को अभिव्यजित करने वाला जो श्लोक मिलता है उसमें राधा की विरह कातरता का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण है। मधुरिपु कृष्ण द्वारवती चले गये है। राधा ने इन्ही के वस्त्र का अपने शरीर में लपेट लिया है और कालिन्दी-तट के कुजो की वजुल लताओ से लिपट कर वाष्प गदगद स्वर में गीत गाया है जिसे सुनकर यमुना के जलचरो ने भी उत्कठित होकर कूजन करना प्रारभ कर दिया है। ध्वन्यालोक में उद्धृत दूसरे श्लोक में दूर प्रवास गत कृष्ण की मनोदशा का चित्रण है। वृन्दावन से आये हुए सखा से कृष्ण पूछ रहे है कि हे भद्र! यमुना तीर के जो लता-कुज गोपवधुओ के विलास में सुहृत्स्वरूप थे, राधा की निभृत क्रीडाओ के जो साक्षी थे, उनकी कुशल तो है? नीली नोकें वाले पल्लव तो अब पक ही गये होंगी क्योंकि विलास शय्या की रचना में उपयोग करने के लिये अब कोई उन्हें तोडता ही न होगा—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहः साक्षिणा।
क्षेमं भद्र कलिन्दराजतनयातीरे लतावेश्मनाम् ॥
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनविधिच्छेदोपयोगेऽधुना।
ते जाने जरठी भवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः ॥

यह श्लोक "कवीन्द्रवचनसमुच्चय" में भी उद्धृत किया गया है। ऊपर ध्वन्यालोक के जिस श्लोक का उल्लेख है जिसमें राधा के विरह का चित्रण है इसका और कई ग्रन्थो में उपयोग किया गया है। कुन्तक के वक्रोक्ति जीवित" तथा सदुक्तिकर्णामृत" में इस श्लोक को उद्धृत किया गया है लेकिन रचयिता का नाम दोनो में से किसी में भी नही है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन' में भी इसका पाठान्तर मिलता है।

कवीन्द्र वचन समुच्चय में उद्धृत राधा-कृष्ण संबंधी श्लोक : "कवीन्द्रवचन समुच्चय" मे राधा-कृष्ण-लीला विषयक श्लोकों की थोड़ी सी चर्चा अपेक्षित है। यह संकलन-ग्रन्थ, ईसवी सन् की दसवी शताब्दी का है। इस ग्रन्थ मे राधा-कृष्ण विषयक सात श्लोक उद्धृत हैं। संकलनकर्ता का नाम नही दिया हुआ है। वैसे ये श्लोक पुराने होंगे और परम्परा से प्राप्त हुये होंगे ऐसा अनुमान करना गलत नही होगा। इन श्लोकों मे जैसा वर्णन आया है उसकी स्पष्ट छाप मध्ययुगीन वैष्णव-काव्य में देखने को मिलती है। एक श्लोक में राधा की दूती के वचन उद्धृत है। कृष्ण को ढूंढने के लिये राधा ने दूती को भेजा है। जितने भी संभव स्थान हो सकते थे वहां दूती उन्हें खोजने गई है लेकिन उन्हें पा नही सकी है। हारकर दूती लौटती है और राधा से कहती है कि "हे सखी, मैंने कृष्ण को रात भर खोजा, पर वह कहीं नही मिले। "यहां होंगे, वहां होंगे" इस प्रकार सोचते-सोचते ढूंढती रही। निश्चय ही उन्होंने किसी दूसरी रमणी से अभिसार किया है। भाण्डीर के तले, गोवर्द्धन की तटभूमि में यमुना के तीर पर, वेतस कुञ्ज में, कहीं भी कृष्ण नही मिले[1]।" इसकी स्पष्ट छाया ज्ञानशेखर के निम्नलिखित पद में है :—

जिति कुंजर गति मंथर चलत सो वर नारी।
वंशी जावट-तट वनहि वन फेरी॥
मदन कुंजे श्याम कुण्ड-राधाकुण्ड तीरे।
द्वादश वन हेरत सघन शैलहुं किनारे॥

एक दूसरे श्लोक मे गोचारण के बाद लौटते हुये कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये मंगल-कामना की गई है। "दिवस के अवसान मे मन्द-मन्द स्वर में वेणु बजाते हुए, गोधूलि से धूसर मोर-मुकुट को सिर पर धारण किये हुये, म्लान वनमाला से सुशोभित हरि गोकुल को लौटते समय श्रान्त होते हुये भी अतिशय सुन्दर लग रहे थे। गोपियों के नयनों के उत्सव-स्वरूप वे केशव तुम्हारा कल्याण करें।"

मन्द क्वाणितवेणुरह्नि शिथिले (सं)वर्तयन् गोकुलं
वर्हापीडकमुत्तमागरचित गोधूलिधूम्रं दधत्।
म्लायन्त्या वनमालया परिगतः श्रान्तोऽपि रम्याकृति-
र्गोपस्त्रीनयनोत्सवो वितरतु श्रेयोसि वः केशवः[2]॥

---

[1] कवीन्द्रवचन समुच्चय, ३४।
[2] वही, २२।

नल चम्पू में राधा-कृष्ण का उल्लेख 'नल चम्पू' काव्य, ईसवी सन की दसवीं शताब्दी की रचना है। इसके रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ने नल-दमयन्ती के वर्णन के प्रसंग में कुछ दो अर्थों वाले श्लोकों में राधा-कृष्ण का वर्णन किया है।

ताम्रपत्रों में राधा कृष्ण का उल्लेख ईसवी सन् की नवीं शताब्दी तथा दसवीं शताब्दी के दो ताम्रपत्रों में कृष्ण और गोपियों का उल्लेख है। वनमाल्वम देव के खुदवाए हुए एक ताम्रपत्र पर कृष्ण के संबंध में जो कहा गया है उसका सारांश निम्नलिखित है "गोपियों द्वारा जिनका मानस तृप्त हुआ है ऐसे विष्णु का वक्ष परित्याग करके यावतीय नारियों के देह-सौन्दर्य का आहरण करके उन्होंने जन्म लिया था।" वनमाल्वमदेव का काल ईसवी सन् की नवीं शताब्दी का मध्य है। ये कामरूप के राजा हजरवमदेव के पुत्र थे। दूसरा ताम्रपत्र महाराज भोजवर्म्मदेव का मिलता है। पूर्वी बंगाल के ढाका जिले में यह मिला है। इसमें लोक-मंगल के लिये कृष्ण के अवतार लेने का उल्लेख है। उस ताम्रपत्र में खुदे श्लोक का तात्पर्य यह है कि वे पूजनीय पुरुष (अर्थात् हरि) जगत् में भूमिभारोद्धारकारी अंशावतार रूप में गोपी शतकेलिकार और महाभारत नाटक के सूत्रधार कृष्ण रूप से अवतीर्ण हुए थे।

वाकपति शिलालेख[1] में जिस प्रकार से कृष्ण-वन्दना की गई है उसमें राधा के प्रति कृष्ण के प्रगाढ प्रेम की अभिव्यंजना होती है। यह शिलालेख अनुमानतः ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का है। इस शिलालेख में कहा गया है कि 'लक्ष्मी के वदनेन्दु द्वारा जो सुखी नहीं, वारिधि के वारि द्वारा जो प्रशमित नहीं, अपने नाभिसरसीपद्म द्वारा भी जिसे शान्ति नहीं प्राप्त होती जो शेषनाग के सहस्र फणों की मधुर साँस द्वारा भी आश्वासित नहीं ऐसे मुररिपु का राधा विरहातुर कम्पित वपु तुम लोगों की रक्षा करे।'

यल्लक्ष्मीवदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्द्रितम्वारिधे
र्वारा यन्न निजेन नाभिसरसीपद्मेन शान्तिंगतम्।
यच्छेषाहिफणासहस्रमधुरश्वासेनचाश्वासित
तद्राधाविरहातुरं मुररिपोर्व्वेल्लद्वपुः पातु वः॥

सदुक्तिकर्णामृत में कृष्ण-लीला 'सदुक्तिकर्णामृत' में कई ऐसे श्लोक संग्रहीत हैं जिनसे यह पता चलता है कि राधा की श्रेष्ठता का उत्तरोत्तर विकास होता गया। वाकपति शिलालेख में ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी

[1] इंडियन एंटीक्वेरी (१८७७ ई०) पृ० ५१।

की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। और उसके बाद की शताब्दियों में राधा-कृष्ण की लीला में राधा के प्राधान्य का पता "सदुक्तिकर्णामृत" के श्लोकों से चल जाता है। इस ग्रन्थ में कृष्ण की लीलाओं का भी वर्णन है। यह संकलित ग्रंथ बंगाल के सेन राजाओं के काल का है। इस ग्रंथ में जयदेव, उमापतिधर, धोयी, गोवर्द्धनाचार्य, शरण आदि प्रमुख कवियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है। ये कवि राजा लक्ष्मण सेन के दरबार के थे। इनके श्रीकृष्ण-लीला-विषयक श्लोकों से उस काल में राधा-कृष्ण की कथा के विकास और स्वरूप का परिचय मिलता है। इनकी रचनाओं का प्रभाव पूरा-पूरा भविष्य के वैष्णव कवियों पर पड़ता है। इस ग्रंथ के कुछ श्लोकों की चर्चा करने से राधा के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जाता है। यह ग्रंथ ईसवी सन् की बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी का है।

एक श्लोक में कहा गया है कि कृष्ण, गोवर्द्धन धारण किये हुये हैं, सब गोपियों के साथ राधा भी कृष्ण की ओर देख रही है। गोपियां, राधा को संबोधन कर कहती हैं, "राधे, तुम कृष्ण के दृष्टिपथ से बहुत दूर चली जाओ, तुम्हारे प्रति आसक्त दृष्टि से कृष्ण के हाथ शिथिल न हो जायं, किन्तु गोपियों की कही हुई "राधा को दृष्टि से दूर हटाने" की बात मन में चिन्ता करके गिरिधारण के श्रम से कृष्ण दीर्घ श्वास छोड़ने लगे।"

दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरेर्गोवर्धनं बिभ्रत-
स्त्वय्यासक्तदृशः कृशोदरि करः स्रस्तोऽस्य मा भूदिति।
गोपीनामितिजल्पितं कलयतो राधा-निरोधाश्रयं
श्वासाः शैलभरश्रमभ्रमकराः कृष्णस्य पुष्णन्तु वः[१] ॥

इसी प्रकार से एक श्लोक में लक्ष्मी अथवा रुक्मिणी से भी राधा के प्रेम को श्रेष्ठ व्यंजित किया गया है। उसमें कहा गया है "मैंने जलमग्न अवस्था में कामदेव के भय से आली का आलिंगन कर लिया था। आज तुमने किससे यह मिथ्या बात कह दी? राधे! तुम व्यर्थ कुपित हो रही हो।" शार्ङ्गधर विष्णु को स्वप्न में इस प्रकार बोलते हुये सुनकर लक्ष्मी ने बहाने से उनका जो कण्ठग्रह शिथिल कर दिया था, वह तुम्हारी रक्षा करे[२]। इस श्लोक में भी रचयिता का नाम नहीं है। "पद्यावली" में यह

[१] गोवर्द्धनोद्धार ४, रचयिता का नाम नहीं, यही श्लोक "पद्यावली" में (श्री गोवर्द्धनोद्धारणम्, २६७) शुभाग के नाम से उद्धृत है।

[२] सदुक्तिकर्णामृत—कृष्णस्वप्नायितम्, ५।

उमापति घर के नाम से मिलता है और उसमें "कमला' के स्थान पर रुक्मिणी ' का नाम लिया गया है।

सदुक्तिकर्णामृत के श्लोकों में राधा कृष्ण-लीला के जो वर्णन हैं उनमें मधुर काव्य रस का सुर ही प्रधान है। धर्म या गंभीर स्वर धीमा सा है। इन श्लोकों के विभिन्न रचयिताओं पर राज दरबार का प्रभाव पूर्ण मात्रा में है। उनका लक्ष्य इन रचनाओं द्वारा अपने आश्रयदाता महाराज की तुष्टि करना प्रतीत होता है। कहा जाता है कि बंगाल के सेन राजा वैष्णव थे।

गोपी सन्देश विषयक श्लोक सदुक्तिकर्णामृत ' में गोपीसन्देश के नाम से जो अनेक श्लोक उद्धृत हैं उनमें भाव भाषा रस के चमत्कार का उत्कर्ष देखने को मिलता है। गोपीसन्देश विषयक श्लोकों के साथ परवर्तीकाल के और मुख्य रूप से ब्रजभाषा के कवियों (सूरदास, नन्ददास) के 'भ्रमरगीत ' के प्रसंग के पदों के साथ साम्य है। इन श्लोकों में एक-दो श्लोकों का देखने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक श्लोक में राधा तथा अन्य गोपियां विगत दिनों का स्मरण कराने वाली वस्तुओं की याद दिलाते हुये संदेश भेजती हैं। कृष्ण, द्वारवती चले गये हैं। गोपियों को आशा है कि उन वस्तुओं की याद कर वे लौट आयेंगे। गोपियां कहती हैं 'गोवर्धनगिरि की वे सब कन्दरायें, यमुना का वह तीर, वे चेष्टारस, वह भाण्डीर वनस्पति, वे तुम्हारे सहचरवृन्द, वह तुम्हारा गोष्ठ का आंगन— हे द्वारवती भुजंग वे सब भूल से भी याद नहीं आते क्या ?" हरि के हृदय में ब्रजवधू सन्देश रूप यह दु:सह शल्य तुम लोगों की रक्षा करे[1]।

वीर सरस्वती कृत गोपी-सन्देश का व्यंजना-सौन्दर्य अपूर्व है —

मथुरापथिक मुरारेरुद्गेयं द्वारि वल्लवीवचनम्।
पुनरपि यमुनासलिले कालियगरलानलो ज्वलति ॥[2]

अर्थात् हे मथुरापथिक, मुरारी के द्वार पर तुम इस गोपीवचन को अवश्य ही गाकर सुनना—'पुनः उस यमुना के जल में कालियगरलानल (कालिय गरल के समान विरहानल) जल रहा है।"

---

[1] सदुक्तिकर्णामृत ' गोपीसन्देश, १, पद्यावली-व्रजदेवीना सन्देश, ३७५।
[2] वही गोपीसन्देश ५।

'सदुक्तिकर्णामृत" में वात्सल्य रस के श्लोक भी पाये जाते हैं। एक श्लोक में कहा गया है कि गोपगण जाकर नन्द बाबा से कहते हैं कि "कृष्ण हमे न तो कालिन्दी के पुलिन पर दिखाई दिये, न पर्वत के नीचे मैदान में मिले, और न ही राधा के पिता के प्रागण मे मिले"—उनके ऐसा कहने पर नन्द बाबा विस्मित हो गये, तभी जो हरि हसते हुये घर से बाहर निकल आये, वे तुम्हारी रक्षा करें[1]। यह श्लोक उमापतिधर का है। उसी प्रकार से अभिनन्द कवि के श्लोक मे भी वात्सल्य-रस तथा वैष्णवता का प्रभाव देखने को मिलता है। इस श्लोक मे कहा गया है "हे वत्स, पर्वत कन्दराओं और गोचारण भूमि में विचरण करते हुये यदि सामने कोई हिंसक पशु देखो तब पुराण पुरुष नारायण का ध्यान करना"—यशोदा के कहने पर मुरारि कृष्ण का स्मित हास्य, फड़कते हुये ओठो के गाढ पीडन द्वारा एक अव्यक्त भाव की व्यजना कर उठा, वह सब जगत् की रक्षा करे[2]।

गीतगोविन्द—

इन विभिन्न सकलन ग्रन्थो में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का उल्लेख प्रकीर्ण श्लोको के रूप में यत्र तत्र बिखरा हुआ मिलता है। सर्व प्रथम १२वी शताब्दी मे जयदेव ने ही गीत-गोविन्द में राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं को सुव्यवस्थित, सम्पूर्ण तथा सुन्दर काव्य का रूप दिया। सस्कृत के सुमधुर गीति काव्य "गीतगोविन्द" में चौबीस सस्कृत पद श्रीकृष्ण की शृगारिक लीलाओ के कुछ अल्प-विस्तृत प्रसगो के आधार पर ग्रथित होकर उपस्थित हुए हैं। काव्य-रस की दृष्टि से विवेचना करने पर गीतगोविन्द के पद स्पष्ट ही पूर्ववर्ती राधाकृष्णलीला-सम्वलित साहित्यधारा के प्रसारमात्र प्रतीत होते हैं पर साथ ही वैष्णवता की प्रगाढ छाप इस काव्य में सुस्पष्ट है। यदि इस काव्य को सुसम्बद्ध वैष्णव साहित्य का मूल उदगम स्रोत मानें तो अनुचित न होगा। इस ग्रन्थ रचना द्वारा किसी दार्शनिक मतवाद की स्थापना कवि का ध्येय नही प्रत्युत आद्यन्त काव्य परिशीलन से यही प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण के लीला-मण्डल से दूर रह कर लीला-दर्शन, लीला-आस्वादन, लीला-गान ही एकमात्र कवि को अभिप्रेत है। इसी लीला-प्राधान्य के कारण ही ३०० वर्ष बाद आविर्भावित श्रीचैतन्य

---

[1] वही, कृष्णकौमारम्, ४।

[2] वही, कृष्ण स्वप्नायितम्, १।

महाप्रभु भी इस काव्य से इतने अनुप्राणित हुए कि इन गीतों के श्रवण से वे सुध बुध खो बैठते थे[१]।

'गीत-गोविन्द' के साधारण पाठकों के लिए इस भावस्था की अनुभूति संभव नहीं क्योंकि इन लोकोत्तर लीलाओं के आस्वादन के लिए प्रवृत्तियों की विशेष प्रकार की जागरूकता अपेक्षित है इस विशिष्ट चेतना का ही नाम तन्मयावस्था है। सर्वसाधारण के लिए यह अतीन्द्रिय उच्चस्थिति अनुभव गम्य नहीं है। इसीलिए इस काव्य के अधिकारी की मीमांसा करते हुए प्रारम्भ में कवि ने स्वयं कहा है —

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्[२]॥

यदि हरि-स्मरण से मन सरस होता हो और विलास कला समूह में कौतूहल हो तब जयदेव भारती के मधुर कोमल और कान्त पदावली का श्रवण करो।

स्वरूप शक्ति राधा के साथ कृष्ण की लोकोत्तर लीलाओं का आस्वादन ही वैष्णवों के जीवन की चरम आकांक्षा है। इसी परम ध्येय को लेकर ही जयदेव ने "गीतगोविन्द" की रचना की—

"राधामाधवयोर्जयंति यमुनाकूले रहः केलयः।"

यमुना तट पर होने वाली राधा माधव की एकान्त लीलाओं की जय हो।

लीला प्राधान्य ही "गीतगोविन्द" काव्य की एकमात्र विशिष्टता होने के कारण कवि ने प्रार्थना की —

---

[१] शुनि स्वरूपगोसाँइ तबे मधुर करिया।
गीतगोविन्देर पद गाय प्रभुके शुनाया॥
स्वरूपगोसाँइ जबे एइ पद गाइला।
उठि प्रेमावेशे प्रभु नाचिते लागिला॥
× × ×
एइ पद पुनःपुनः कराय गायन।
पुनःपुनः आस्वादये करये नर्तन॥—श्रीचैतन्यचरितामृत, अन्त्य-लीला
१५ परिच्छेद, ७२—७६।

[२] गीतगोविन्द—१।३।

भणति कवि जयदेवे विरहविलसितेन।
मनसि रभस-विभवे हरिरुदयतु सुकृतेन॥

कवि जयदेव भणित हरि का यह विरह-विलास जिनके मन का वैभव स्वरूप है, उन पुण्यवानों के हृदय में हरि उदित हों।

"गीतगोविन्द" की रचना द्वारा जयदेव ने राधा-कृष्ण की अनेकों क्रीड़ा-कलाओं को एक सम्पूर्ण काव्य के धाराप्रवाह में उपस्थित किया। इस काव्य में केवल तीन ही पात्र हैं—नायक कृष्ण, नायिका राधा और कीड़ा सहचरी सखियां। वास्तव में "गीतगोविन्द" व्रजरस का सुधासिन्धु है। भावउत्कर्ष, भाषा-माधुर्य और छन्द-लालित्य के परिचायक दो चार पद उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किए जाते हैं।

क्रीड़ामत्त कृष्ण को कुछ दूरी से दिखाकर सखी श्रीराधा से कहती है—

चन्दनचर्चितनीलकलेवर पीतवसनवनमाली।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली॥
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे[1]।

पीतवसन-परिहित वनमाली नील कलेवर (शुभ्र) चन्दन से अनुलिप्त है। उनकी क्रीड़ामत्तता के कारण मणिमय कुण्डल हिल रहा है और उन कुण्डलच्छटा में ईषत हास्योज्जवल कपोलयुगल शोभित हुआ है। विलास मत्त मुग्धवधुओं को लेकर हरि केलि विलास में रत हुए हैं।

राधा सखी से कृष्ण से मिलन कराने के लिए अनुनय करती है :—

निभृत निकुज गृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम्।
चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसरसेन हसन्तम्॥
सखि हे केशिमथनमुदारम्।
रमय मया सह मदन मनोरथ भावितया सविकारम्[2]॥

मेरे रजनी में निभृत निकुज गृह में उपस्थित होने पर जो वहां छिपे रहते है, और चकित होकर जब मैं चारों और निहारती हूँ तब देखकर अतिशय रतिरस में हस उठते है, मेरी विलास कामना जिनके चित्त को लालसायुक्त करती है, सखि, उस उदार केशिमथन के साथ मेरा मिलन करा दो।

---

[1] गीतगोविन्द—१।४०।

[2] गीतगोविन्द—२।११

मानिनी राधा का मान भजन करते हुए कृष्ण कह रहे हैं —
त्वमसि मम भूषण त्वमसि मम जीवनम त्वमसि मम भवजलधिरत्नम ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी तत्र मम हृदयमतियत्नम[1] ॥

तुम्ही मेरे भूषण हो, तुम्ही मेरे जीवन हो, तुम्ही मेरे ससार सागर के रत्न स्वरूप हो, हृदय केवल यही कामना करता है कि तुम मेरे प्रति चिर अनुकूल रहना ।

पहले से आती आई राधा कृष्ण की नित्य-लीला जो श्रीमद्भागवत और पुराणो का वर्ण्य विषय रही "गीतगोविन्द" के रासलीला प्रसग द्वारा कवि ने भगवान के उसी ऐश्वर्य प्रधान रूप को परम माधुर्यमय लीलाकारी स्वरूप में दिखाया जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण और श्रीराधा लोक-जीवन के अत्यधिक निकट आ गए। कही-कही तो कृष्ण राधा इतना अधिक लौकिक नायक नायिका-से प्रतीत होने लगते है कि उनके देवत्व प्रधान चरित्र में भी सन्देह होने लगता है। काव्य की विशुद्धता की रक्षा के साथ रस की पूर्ण व्यजना ही कवि की अतुलनीय शक्ति का परिचायक है। लोकोत्तर वृन्दा-वनीय-लीला का प्रतिबिम्बित रूप है लौकिक प्रेम-लीला, मर्त्य प्रेम के बीच से जिस अमर्त्य प्रेम का साक्षात्कार कवि ने भाव और भाषा के उज्ज्वल गीतिमय शब्द चित्र के द्वारा कराया वह अवश्य ही स्तुत्य है। मानव प्रेम के श्रेष्ठ, सार्थक और सुन्दरतम परिणति रूप परम स्निग्ध भगवत प्रेम के रसास्वादन द्वारा कवि की साधना चरितार्थ हुई। केवल धर्मग्रन्थ ही नहीं काव्य की दृष्टि से भी गीत-गोविन्द का उत्कर्ष अद्वितीय है। भाव-सौन्दर्य, भाषा-माधुर्य, छन्द लालित्य की प्रचुरता में 'गीतगोविन्द' निस्सन्देह सस्कृत साहित्य में अतुलनीय है और रहेगा।

कृष्ण-कर्णामृत—

राधा-कृष्ण कथा की धारावाहिकता में लीलाशुक बिल्वमगल रचित 'कृष्ण-कर्णामृत' का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण का देव प्रधान चरित ही प्रबल होकर प्रकट हुआ है। इसके रचना-काल के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है अत १० वी १४ वीं शताब्दी के बीच का समय इसका रचना का काल माना जाता है। कृष्ण-कर्णामृत का एक पद (१०६ सख्यक) सदुक्तिकर्णामृत (१२ वीं १३ वीं शताब्दी में सकलित) में (१।५८।५)

[1] वही—४।१२।

उद्धृत है, अतएव इसी प्रमाण के आधार पर यदि "कृष्णकर्णामृत" का रचना-काल भी "गीतगोविन्द" के रचनाकाल का समसामयिक द्वादश शताब्दी मान लें तो अनुचित न होगा। इस काव्य की रचना दक्षिण में हुई ऐसा विद्वान् लोग मानते है, महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव अपने दक्षिण भ्रमण के समय "कृष्ण-कर्णामृत" काव्य और "ब्रह्म-सहिता" को "महारत्न" समान मानकर वहाँ से अत्यन्त आदर तथा प्रेम के साथ ले आए[१]। वे निरन्तर इस ग्रन्थ-रत्न का आस्वादन करते रहते थे[२]।

भाव, भाषा, छन्द के माधुर्य मे तो "कृष्णकर्णामृत" अद्वितीय है ही पर धर्मानुराग की प्रबलता ही इसकी प्रमुख विशेषता है। "कृष्णकर्णामृत" वृन्दावनीय सुधारस का अक्षय निर्झर स्वरूप है। इस काव्य के अवलोकन मे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके रचयिता सच्चे वैष्णव भक्त थे, लीला-प्रसार तथा लीला-आस्वादन के लिए ही इन्होंने इस काव्य की रचना की। इस प्रसग मे बिल्वमगल का "लीलाशुक" विशेष ध्यान देने योग्य है। मधुर वृन्दावनीय लीला को दूर के कदम्ब वृक्ष से दर्शन और आस्वादन करना और शुक के समान मधुर काव्य-काकली मे उसी के माधुर्य का वर्णन करना ही भक्त कवि का यथार्थ परिचय है। दो-एक श्लोको की उद्धृति से ही भक्त कवि की भाव-धारा का स्पष्ट परिचय मिल जाएगा—

> अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
> अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि[३]॥

हे हरि! हे अनाथबन्धु! हे करुणा के एकमात्र सिन्धु! हा! हा! तुम्हारे दर्शन के बिना इन अधन्य दिवसो को कैसे विताऊँ?

और—

> हे देव! हे दयित! हे भुवनैकबन्धो!
> हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणैकसिन्धो।
> हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम!
> हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे[४]॥

हे देव! हे प्रियतम! हे भुवनैकबन्धो! हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणैकसिन्धो! हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम! हा! हा!, कब तुम्हारे चरण मेरे नयनगोचर होगे?।

---

[१] चैतन्य-चरितामृत, मध्य, ९ प०। [२] वही, मध्य १।

[३] लीला शुक्ल ७।४१ [४] वही ६।४०

यानि तच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धन्यात्मना
ये वा शैशवचापलव्यतिकरा राधावरोधोन्मुखा ।
ये वा भावितवेणुगीतगतयो लीला मुखाम्भोरुहे
धारावाहिकया वहन्तु हृदये तान्येव तान्येव मे[1] ॥

तुम्हारे जो सब चरितामृत धन्यात्माओं (सौभाग्यवान पुण्यात्माओं) की रसना द्वारा लेहन योग्य हैं, राधा के अवरोध (राधा का विभिन्न प्रकार से अवरुद्ध करने के लिए) में उन्मुख तुम्हारी जो सब शैशव चापल्य-प्रसूत चेष्टाएं हैं एवं तुम्हारे मुखपद्म से निकली हुई भावद्यबल वेणुगीन गति समूह की लीलाएं—वे सब धारावाहिक रूप से मेरे हृदय में प्रवाहित होती हैं। उक्त श्लोक के 'राधावरोधोन्मुख शैशव चापल्यहेतु चेष्टा समूह' द्वारा परवर्ती काल के विस्तृत रूप से वर्णित दानलीला, नौका-लीला का ही आभास मिलता है।

भगवान ने लीला-शुक से पूछा—'तुमने अर्थ, धर्म काम, मोक्ष इन चतुर्वर्ग फलों को छोड़कर तथा मेरी प्राप्ति की इच्छा का भी तिलांजलि देकर एकमात्र भक्ति की ही याचना क्यों की ? लीलाशुक ने उत्तर दिया —

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा यदि स्याद्दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्त्तिः ।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान् धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥

'यदि तुम में मेरी निश्चला भक्ति हो और दैववश तुम्हारी 'दिव्य किशोरमूर्त्ति' मेरे सामने प्रत्यक्ष हो जाए, तो मुक्ति स्वयमेव हाथ जोड़कर मेरी सेवा में उपस्थित रहेगी और धर्मार्थ-काम-मोक्ष सब समय आज्ञापालन के लिए तत्पर रहेंगे।'

सच्चे वैष्णव के लिए यह 'निष्काम भक्ति' ही चरम निधि है। यही उसके जीवन का ध्येय, साधनाओं का साध्य है तब फिर और किसी वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा उसमें शेष नहीं रह जाती।

'कृष्णकर्णामृत' ग्रन्थ में आदि से अन्त तक आध्यात्मिक आकांक्षा जैसी प्रबल दिखाई पड़ती है उसकी तुलना में 'गीत गोविन्द' का आध्यात्म पक्ष महत्त्वहीन है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'गीतगोविन्द' में 'हरि स्मरणे सरस मन' की अपेक्षा 'विलास कलासु कुतूहलम्' का पक्ष ही प्रबल हो उठा है। जयदेव के पूर्ववर्ती युग के रस विदग्ध कवियों ने प्रेम लीलाओं के वर्णन में जो निपुणता दिखलाई, जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' काव्य में राधा-कृष्ण का अवलम्ब

[1] वही ९।१०६।

ले उसी विलास-कला के कौतूहल और वर्णन निपुणता का परिचय किया है। 'कृष्णकर्णामृत' के रचना-वैशिष्टय का कारण उनका स्थानगत तथा धर्मगत प्रभाव अनुमित होता है। १३ वी शताब्दी तक वैष्णव धर्म दक्षिण में पर्याप्त प्रसिद्धि तथा प्रचार पा चुका था, इसकी आलोचना तो पिछले अध्याय में की जा चुकी है। यदि दक्षिण प्रान्त मे समृद्धिशाली विभिन्न वैष्णव-धर्म ग्रन्थो ने परम वैष्णव भावुक भक्त को इस प्रकार अनुपम भक्ति-काव्य-सृजन के लिए प्रेरणा दी हो तो आश्चर्य ही क्या। आलवार भक्तो की मधुर रसनिक्त साधना की चर्चा पहले की जा चुकी है। 'कृष्णकर्णामृत' काव्य ने परवर्ती काल के गौडीय वैष्णव धर्म और साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। श्रीचैतन्य ने शिक्षा-सिद्धान्तो के लिए दक्षिण से लाए हुए इन दोनो ग्रन्थो ही का अवलम्ब लिया, भजन शिक्षा के लिए 'कृष्णकर्णामृत' और तत्व शिक्षा के लिए 'ब्रह्मसहिता' ही उन्हे मान्य हुई।

सर्वय-प्रस्तरलिपि में कृष्ण का उल्लेख—

सन् ईसवी १३ वी शताब्दी के अन्तिम दिनो में सर्वय-प्रस्तरलिपि में कृष्ण 'राधाधव' रुप से वर्णित हुए है[1]।

अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्य में श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन

अपभ्रश साहित्य के प्रबन्ध काव्य रचयिता प्रसिद्ध पुष्पदंत कवि ने महा-पुराण[2] की रचना की। कवि पुष्पदत का रचनाकाल १० वी शताब्दी है। महापुराण में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ वर्णित हुई है। जैसे—बाललीला, पूतना-लीला, ओखल-बन्धन, गोवर्धन-धारण, कालिय-दमन आदि। उदाहरण के लिए दो-एक लीलाओ का यहा विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

कृष्ण की बाल-लीला :—

दुवई—धूलीधूसरेण वरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा ॥
कीलारसवसेण गोवालयगोवीहिययहारिणा ॥६॥

रगतेण रमतरमतें मथउ धरिउ भमतु अणतें
मदिरउ तोडिवि आविहउ अद्धविरोलिउ दहिउ पलोहिउ।
का वि गोवि गोविंदहुलग्गी एण महारी मंथणि भग्गी।

---

[1] दी इण्डियन एन्टिक्वेरी, १८९३, पृ० ८२।

[2] माणिकचन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थ माला बबई डाक्टर पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

एयहिं मोल्लु दउ आलिंगणु ण ता मा मल्लहु मे प्रगणु ।
काहिं वि गोविहि पडुरु चेलउ हरितणुतेए जायउ कालउ
मूट जलेण काइ पक्खालइ णियजडत्तु सहियहिं दक्खालइ ।
थणरसिच्छिरु छायावतउ मायहिं समुहु परिधावतउ ।
महिससिलवउ हरिणा धरियउ ण करणिबधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहणहत्यु समीरइ मुइ मुइ माहव कीलिउ पूरइ ।
कत्यइ अगणभवणालुद्धउ वाल्वच्छु वालेण णिरुद्धउ ।
गुजाहलंदुयरइयपओए मेल्लाविउ दुक्खेंहिं जसोए ।
कत्यइ लाणियपिंडु णिरिक्खिउ कण्हें कसहु ण जसु भक्खिउ ।

घत्ता—पसरियकरयलेहिं सद्दरिहिं सुहसुहकारिणिहिं ।
भछिइ णियडि थिए घरयम्मु ण लग्गइ णारिहिं ॥६[1]॥

घूलि धूसरित श्रेष्ठ मुक्त बाणो से तृणावत को मारने वाले, क्रीडारस में वशीभूत, गोपाल्य, गोपिया के हृदय का हरण करने वाले "प्रेम राग से रंजित रमण करने वाले मुरारी ने अनन्त भ्रमण करने वाले (अनवरत घूमने वाले) मथानी का पकडा। जजीर को ताड दिया, अद्ध विलोए हुए दधि का पलोट दिया। कोई गोपी गोविन्द से उलझी। इसने मेरे दधि भाड को तोडा है। इसका मोल आलिगन दा, नही तो मेरे घर का आगन छाडा। किसी गोपी का पाडुर (पीला) वस्त्र हरि के शरीर से लगने से काला हो गया है। (वह) मूर्खा जल से काइ प्रक्षालन करती है (और) अपनी मूखता सखिया को दिखला रही है। दुग्ध के स्वाद की इच्छा वाला क्षुधावान (बच्चा) भैंस के सामने दौडता है। भस के बच्चे को हरि ने पकडा। उनके हाथ में बँधा हुआ (उनके द्वारा पकडा हुआ बच्चा) छूटता नही है। गोपाल (अपने) हाथ बढाकर दोहन करते है। आनन्दित हो होकर माधव क्रीडा से परिपूर्ण होते है। कही अपने अगा (के सौन्दय) से भुवन का क्षुब्ध करते है। गाय के बछडे को कृष्ण रोकते है। गुजा निर्मित कन्दुक के प्रयोग से यशोदा को दुग्ध देते है। कही नवनीत के पिण्ड को निरखते है और कृष्ण कस के यश की तरह उसका भक्षण करते है। हाथ पसारते है और सुन्दर सुख देने वाली किलकारी करते है। कृष्ण के निकट रहनेवाला स्त्रिया का घर के काम में चित्त नहीं लगता।

[1] महापुराण—णारायणबालकीलावण्णण पचासीमो सधि, पृ० ६४–६५।

अपभ्रंश काव्य प्रेम-सिंचित वीर काव्य है। यदि उसमें प्रेम की दमक है तो तलवार की चमक भी कम नही है। अत यहा कृष्ण केवल रसिक-नायक ही नही वीर नायक भी है। गोपियो के साथ छककर प्रेम-क्रीड़ाएँ की, साथ ही दुष्ट-दलन, भक्त-पालन से भी मुह नही मोडा। कंस के बढ़ते हुए पाप तथा अत्याचार को कृष्ण ने पूतना (तथा अन्य छद्मवेशी राक्षसो) के वध द्वारा रोका—

दुवई—कहियं देवयाहि जो णदणिहेलणि वसइ बालओ।
सो पइं नृव ण भंति कं दिवनु वि मारइ मच्छराउओ ॥६॥

जाणिइ अरिवरि ता तहि अवसरि।
कंसास्से मायवेसें।
बल मायाविणि वाइय जोइणि।
वच्छरवाउलु गय त गोउलु।
जयसिरितण्हहु णदमहु कण्हहु।
पासि पवण्णी झ त्ति णिसण्णी।
फभणइ पूयण हे महुसूयण।
पियगरुडद्धय आउ थणद्धय।
दुद्धरसिल्लउ पियहि थणुल्लउ।
त आयण्णिवि चवड मण्णिवि।
चुयपयपंडुरि वयणु पओहरि
हरिणा णिहियउ राहु गहियउ।
ण ससिमंडलु सोहइ थणयलु
सुरहियपरिमलु ण णीलुप्पलु।
सियमलनुथरि विभिउ मणि हरि।
कडुए खीरें जाणिय वीरें।
जणणि ण मेरी विप्पियगारी।
जीविग्रहारिणि रक्खसि वइरिणि।
अज्जु जि मारमि पलउ समारमि
इय चिंतंतें रोमु वहंतें।
माणमहंतें मिडडि करते।
लच्छीकंतें देवि अणतें।
दर्तोहि पीडिय मुट्ठिइ ताडिय।

दिट्ठिइ तज्जिय	थामें णिज्जिय ।
अणु विण मुक्की	णहहि विलुक्का ।
खलहि रसतहि	सुण्णु हसतहि ।
भीमें बालें	कयकल्लोलें ।
लोहिउ सोसिउ	पलु आवरिसिउ ।
दाणवसारी	भणइ भडारी ।
हियरुहिरासव	मुइ मुइ केसव ।
णदाणदण	मेल्लि जणद्दण ।
कसु ण सवमि	रोसु ण दावमि ।
जहि तुहु अच्छहि	कील समिच्छहि ।
तहि णउ पइसमि	छलु ण गवेसमि ।

घत्ता—इय रुयति कलुणु कह कह व गोविदें मुक्की ।
गय देवय कहि मि पुणु णदणिवासि ण ढुक्की ॥९[1]॥

'उस देव (ज्योतिषा) ने कहा कि नन्द के घर में बालक रहता है। वह तुमको राजा नही समझता, कुछ दिनो में तुम्हारा सबसे बडा शत्रु होगा और (तुम्हें) मार डालेगा। इसलिये श्रेष्ठ शत्रु जानकर उस अवसर पर कस के आदेश से (पूतना ने) माया का वेश धारण किया। बलशालिनी, मायाविनी योगिनी दौडी। बछडे के समान शब्द करती हुई वह गोकुल गई। जयश्री की तृष्णा (कामना) करने वाले, नवम नारायण कृष्ण के पास झट पहुँची। पूतना ने कहा हे मधुसूदन, प्रिय गरुडध्वज, हे पुत्र आओ। दुग्धयुक्त स्तन को हरि ने पकडा (जैसे) राहु ने ग्रस लिया हो। मानो स्तन पर शशि मडल शोभित है। सुरभित परिमल से युक्त (मानो) नीलोत्पल हो। श्वेत कलश के ऊपर हरि मणि (नील मणि) बिम्बित हो रहा है। कडुआ दुग्ध वीर (कृष्ण) ने जाना। यह मेरी जननी नही है यह अनिष्टकारिणी है। जीव (प्राण) का हरण करने वाली है राक्षसी वरिणी है। अभी मारूगा, पल भर में समाप्त करुगा। इस प्रकार चिन्ता करते हुए रोष प्रकट करते हुए मान का धारण करते हुए लक्ष्मीकान्त, अनन्त देव ने दात से पीडित किया, मुट्ठी से प्रहार किया, दृष्टि से धमकाया बल से पराजित किया। पल भर भी उसे मुक्ति नहीं (मिली), नभ की ओर देखती है, दुष्ट वचन बोलती है और थूक को हसती है। अत्यन्त बलशाली बालक

[1] महापुराण—णारायणबालकीलावण्णण पचासीमो सधि, पृ० ६६–६८।

अवश्य है। अतएव इन दोहों के संबंध में इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व ही रचे गए होंगे। एक दोहे में कहा गया है कि हरि प्रांगण में नचाये गए। लोग विस्मय में पड़ गये। इस समय राधा के पयोधरों को जो रुचे वह हो।

हरि नच्चाविउ पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ।
एम्वहिं राह-पओहरहं जं भावइ तं होउ[1] ॥

संदेशरासक में गोपालिका अद्दहमाण के संदेशरासक में एक दोहा आया है जिसमें गोपालिका के रुदन से नायिका की विरहावस्था की उपमा दी गई है। इससे आभीर जाति के संघटन का पता चलता है और समाज पर उसके प्रभाव को देखा जा सकता है। नायिका अपनी विरह दशा की उपमा देती हुयी कहती है कि वह विरह के साथ संघर्ष करने में असमर्थ है। (चोरों द्वारा हरी जाती हुई गायों को) गोपालिका की तरह घना पराये ग्वालियों द्वारा घुमाई जाकर रो रही है।

दशावतार-चरित

नवीं-दसवीं शताब्दी के बाद से साहित्य में 'दशावतार चरित" नाम से अनेक काव्य लिखे जाने लगे। क्षेमेन्द्र कवि ने ११ वीं शताब्दी के मध्य भाग में "दशावतार चरित" नामक एक सुन्दर काव्य की रचना की। जयदेव ने भी गीत-गोविन्द में दशावतार की वन्दना की है[2]। पृथ्वीराज रासो में एक "दशम" है जो वस्तुतः दशावतार चरित है। इन पुस्तकों में दस अवतारों की स्तुति और चरित लिखे जाते हैं परन्तु प्रधानता राम और कृष्ण अवतारों की ही होती है[3]। क्षेमेन्द्र के दशावतार चरित में कृष्णावतार का प्रसंग ही करीब-करीब पुस्तक के आधे भाग को घेरे हुए है। यह काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है, जिसकी शैली में गीत-गोविन्द के पूर्व रूप का आभास मिलता है। रचना शैली के उदाहरण के लिए यहाँ एक श्लोक उद्धृत है।—

ललित-विलास कला-सुख-खेलन—
ललना-लोभन-शोभन-यौवन—
मानित-नव-मदने।

---

[1] हेमचन्द्र, "प्राकृत व्याकरण" ८।४–४२०।
[2] दशावतारचरित १।१।१–११।
[3] प० हजारीप्रसाद द्विवेदी · मध्यकालीन धर्म-साधना पृ० १२०।

अलि-कुल-कोकिल-कुवलय-कज्जल—
काल-कलिन्द-सुता इव लज्जल
कालिय-कुल दमने ॥
केशि किशोर-महासुर-मारण—
दारुण-गोकुल दुरित विदारण—
गोवर्द्धन धारणे ।
कस्य न नयन-युग रति-सज्जे
मज्जति मनसिज-तरल-तरंगे वर रमणि रमणे[1] ॥

श्रीकृष्ण ललित विलास-कला सुख में क्रीडा करने वाले हैं। उनका सुहावना यौवन ललनाओं को लुभाने वाला है। उनमें नवीन कामदेव का आविर्भाव हुआ है। वे कृष्ण भ्रमर-समूह, कोकिला, कुवलय के समान श्यामवर्ण, काल की सुता यमुना तथा कालिंदी की सुता नागिनियों की भांति लज्जित कालिय-कुल का दमन करने वाले हैं। किशोर केशि महासुर के वे संहारक हैं। गोवर्द्धन धारण द्वारा उन्होंने गोकुल की दारुण विपत्ति का हरण किया था। वर रमणियों के साथ रमण करने वाले वे हरि किसके नयनों को रति से सज्जित नहीं करते हैं? उन नेत्रों का कामदेव की तरल-तरंगों में निमज्जित कर देते हैं।

दशावतार-चरितों में कृष्ण का पराक्रमी स्वरूप

भगवान् के अवतरण के सम्बन्ध में यहां एक बात विशेष ध्यान देने की है जब भी संसार में पाप, अत्याचार प्रचण्ड रूप से बढ़ता है, भगवान् आवश्यकतानुसार विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं। दुष्टों के दलन से पाप विनाश द्वारा धर्म की स्थापना और भक्तों का पालन तथा रक्षा ही भगवान् के अवतार लेने का मुख्य कारण है। इसकी चर्चा पिछले अध्याय में विस्तृत रूप से की जा चुकी है। दुष्टों अत्याचारियों आततायियों से जूझने के लिए अवतारों में शक्ति पक्ष की प्रबलता ही अपेक्षित थी। यही कारण है कि भगवान् के सभी अवतारों में पराक्रम शक्ति शौर्य का ही प्राबल्य था केवल कृष्णावतार में ही माधुर्य पक्ष की प्रधानता ने पराक्रम पक्ष को ढांक-सा लिया, पर आवश्यकता पड़ने पर रसिक शिरोमणि कृष्ण अपार वीरत्व प्रदान में भी चूके नहीं। इन 'दशावतार चरितों' में अवतारों के दुष्ट दलन और आततायी-दमन पक्ष ही प्रधान रूप से प्रस्फुटित हुआ।

[1] दशावतारचरित ८।१७३।

जो कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट ही है कि उस समय के विकासमान साहित्य की धारा में श्रीकृष्ण की शृंगारी-लीलाओं का ही प्राचुर्य था।

प्राकृत-पिंगल—

सन् ईसवी की चतुर्दश शताब्दी के लगभग संकलित 'प्राकृति-पिंगल' के दो-एक पद्यों में राधाकृष्ण की ब्रजलीला का उल्लेख मिलता है। 'प्राकृत-पिंगल' के प्रथम अध्याय में आशीर्वाद-पुष्पिका में कृष्ण-वन्दना विषयक एक पद्य मिलता है :—

जिणि कस विणासिअ किति पआसिअ
मुट्ठिअरिट्ठि विणास करे
गिरि हत्थ धरे।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ
कालिअ-कुल सं-हार करे
जस भुअण भरे।
चानूर विहण्डिअ णिअ-कुल मण्डिअ
राहा-मुहमहु पाण करे
जणि भमर परे।
सो तुम्ह णाराअण विप्प-पराअण
चित्तह चिन्तिअ देउ वरा
भव-भीइ-हरा[1]।

जिन्होंने कस के विनाश द्वारा कीर्त्ति प्रकाशित की थी, मुष्टिक-अरिष्ट का विनाश किया था, हाथ पर गिरि धारण किया था, यमलार्ज्जुन भग किया था, पद-तिरस्कार से कलियकुल का संहार किया था, उस यश से भुवन भर गया था, चाणुर के खण्डन से निज कुल का मडन किया था, भ्रमरवर के समान राधा-मुखमधु का पान किया था, वे विप्रपरायण नारायण तुम्हारे चित्त में चिन्तित होकर भवभीतिहरण का वरदान दें। राधाकृष्ण की नौका-लीला का उल्लेख सर्व प्रथम 'प्राकृत-पिंगल' के निम्नोद्धृत पद्य में मिलता है; यह राधा की उक्ति प्रतीत होती है :—

अरेरे वाहहि काणह णाव छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ जो चाहहि सो लेहि[2]॥

[1] प्रा० पैं० २०७ [2] वही ९।

हे कृष्ण! नाव खेओ चचल डगमग की कुगति मुझे न दो। तुम इस नदी का पार करा दो फिर कुछ चाहो लो।

परवर्तीकाल में गौडीय वैष्णव सम्प्रदायमुक्त पद रचयिताओ ने नौका लीला विषयक बहु-सख्यक पद रचे जिससे बगाल में नौका लीला को प्रमुख स्थान मिला।

प्राकृतकल्पतरु—

राम शर्मा के 'प्राकृतकल्पतरु के अपभ्रशस्तवक के उदाहरणा में राधा कृष्ण की प्रेम क्रीडा विषयक कविता की दो एक पक्तिया उद्धत हुई है[1]। उदाहरणार्थ—

कीलन्तु म मोहइ कन्हु एसु कीलन्तु आलिगइ कन्हु गोवी[2]।

क्रीडा करता हुआ यह कृष्ण मुझे मोह रहा है क्रीडा करता हुआ कृष्ण गोपी का आलिगन कर रहा है। अथवा क्रीडा करती हुई गोपी कृष्ण का आलिगन कर रही है।

राहीउ बालाओ[3] जुआनु कन्हु।

राधिका बाला है और कृष्ण युवा है।

लोक भाषाओं में राधा-कृष्ण लीला विषयक काव्य ग्रन्थ—

१४ वी शताब्दी तक तो सस्कृत प्राकृत अपभ्रश में ही राधाकृष्ण-लीला विषयक कविताए रचित होती रहा पर १४ वी शताब्दी के अन्तिम दिनो से जब लोक भाषाए स्वतत्र रूप से विकसित होने लगी तब उन लोक भाषाओ में भी राधाकृष्ण लीला विषयक काव्यो की रचना आरम्भ हुई। १६ वी शताब्दी के आते आते राधाकृष्ण लीला विषयक काव्यो, नाटको, पदो का ढेर लग गया।

वैष्णव-काव्य मे विरह-पक्ष की प्रधानता—

हम पहले देख चुके है कि वैष्णव-कविता का बाहरी ढाचा लौकिक प्रेम विषयक कविता का ही था। लेकिन लौकिक प्रेम विषयक होने पर भी उसमें एक दीप्ति और एक विशेष आकर्षण था। इसका कारण यह था कि उसमें कवि-कल्पना के साथ आध्यात्मिक तत्व का सयोग हो गया था।

[1] इडियन ऐटिक्वेरी १९२२ ग्रियर्सन—'दी अपभ्रश स्तवकस् आफ राम शर्मा'।

[2] ग्रियर्सन का पाठ 'गोरी' ठीक नहीं प्रतीत होता।

[3] ग्रियर्सन का पाठ 'जुअम्बे' ठीक नहीं लगता।

वैष्णव साहित्य का शृंगार-वर्णन भारतीय परपरा के अनुमार है। भारतीय काव्य-साहित्य और रति-शास्त्र उसके भी आधार रहे है इसीलिये लौकिक प्रेम के नायक, नायिका, उनके प्रणयकलह, मिलन-विरह आदि को हम वैष्णव-साहित्य मे पाते है लेकिन आध्यात्मिकता के सयोग ने उसमे निखार लाकर उसे एक अपूर्व महिमा प्रदान की। लौकिक प्रेम-माहित्य में दैहिक मुखोपभोग तथा सयोग-पक्ष की प्रधानता है और इसीलिये उसका स्वरूप स्थूल, जड़वत् हो गया है। वैष्णव-साहित्य में विरह पक्ष की प्रधानता है। यह भगवत् प्रेम लोकोत्तर और दिव्य है। उसमे प्रेम के उज्ज्वलतम आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है।

राधाकृष्ण-कथा के लौकिक तथा पारलौकिक रूप का पृथक्करण—

आरम्भ में तो प्राचीन काव्य-साहित्य के शृंगार प्रवाह के साथ ही वैष्णव-साहित्य की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही थी। प्राचीन काव्य-सग्रह ग्रन्थो-हाल की 'गाथा-मप्तशती' से लेकर 'कविन्द्रवचनसमुच्चय', 'मुभाषितावली', 'सदुक्तिकर्णामृत', 'मूक्तिमुक्तावली', 'शार्ङ्गधर-पद्धित', 'सूक्ति-रत्नहार'—के शृगार विपयक पद्यो से भाव विपयक कविताओ के मिलान से पूर्व काव्य-धारा की क्रम परिणति स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। वहुत वाद मे अर्थात् १६ वी शताब्दी में विशेपत गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियो ने दोनो साहित्यो के वीच पार्थक्य की एक सुस्पष्ट रेखा खीच दी।

गौड़ीय वैष्णव धर्म में मधुर रस की लीलाओं का प्राधान्य—

गौडीय वैष्णव धर्म मे मधुर रस की लीला का ही प्राधान्य है। अतएव श्रीराधाकृष्ण की विभिन्न लीलाओ का दर्शन, आस्वादन और जयगान ही इन भक्तो का एकमात्र चरम साध्य है। लीलामय भगवान् की लीला का वैशिष्ट्य सवसे अधिक मधुर स्वरूप मे ही खुल-खिल सकता था यही कारण है कि गौडीय वैष्णव धर्म ने भगवान् के केवल माधुर्य पक्ष साथ ही मधुर-रस की क्रीडाओ पर इतना जोर दिया। वगाल मे गौडीय वैष्णव-धर्म के पूर्व वौद्ध-साधना की प्रवलता के कारण ही यह भूमि इस मधुर भाव की उपासना के लिए इसी तरह इतनी उपयुक्त सिद्ध हुई जिससे प्रेम भक्ति की अपूर्व वेल यहाँ खूव लहलहाई।

गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के मुख्य प्रचारक—

श्री चैतन्य प्रवर्तित-गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारको में श्रीनित्यानन्द और अद्वैताचार्य के वाद पट् गोस्वामी-श्रीरूप गोस्वामी, सनातन

गोस्वामी, रघुनाथदास गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोपाल भट्ट, जीव गोस्वामी-का स्थान है। ये सब गोस्वामी वृन्दावन में ही रहते थे, इन्ही आचार्यों की प्रतिष्ठा के कारण ही वृन्दावन को इतना गौरव प्राप्त हुआ। इन षट गोस्वामियो के लिये भगवान की लीला का प्रचार ही प्रधान लक्ष्य था। अतएव उन्होने लीला सम्बन्धी बहुत ग्रन्थों की रचना की। ये केवल धर्म प्रचारक और रचयिता ही न थे प्रत्युत प्रकाण्ड दार्शनिक भी थे। इन्ही के स्तुत्य प्रयास के कारण दर्शन के गम्भीर तत्व साहित्य के माध्यम से अभिनव रूप में प्रस्फुटित हुए।

वैष्णव कवियों की वाणी मे राधाकृष्ण कथा का विस्तार—

सभी गौडीय-वैष्णव रचयिताओ ने राधाकृष्ण प्रेम को ही अपने काव्य तथा प्रकीर्ण पदो का वर्ण्य विषय बनाया। अतएव उस कथा को नूतन और आकर्षक बनाए रखने के लिए उसमें नए तत्वो के समावेश की बहुत आवश्यकता थी, समय के साथ ही साथ राधा-कृष्ण की लीलाओ में भी विस्तार होता चला। जयदेव के पूर्ववर्ती राधा कृष्ण विषयक पदो में जिन लीलाओ का आभास मिलता है जयदेव ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा द्वारा 'गीतगोविन्द' में उनका बहुत कुछ विस्तार किया। वही लीलाएँ विद्यापति चण्डीदास में विभिन्न रूपो में पल्लवित हो उठी। चण्डीदास ने दान-लीला[१],

---

[१] दान-लीला का प्रसंग इस प्रकार है—

कृष्ण राधा के प्रेम में आत्मविभोर हैं परन्तु राधा कृष्ण को प्रेम देने से अनिच्छुक अथवा भयभीता हैं। मिलन का कोई अन्य अवसर सुलभ न पा मथुरा जाने वाले मार्ग अथवा गोवर्द्धनपर्वत पर (कुछ लोगो का मत) कृष्ण राधा से मिलने वाले के लिए खड़े होते है। उधर राधा अपनी सखियों सहित दूध-दही बेचने के लिए मथुरा अथवा किसी उत्सव के उपलक्ष में गोवर्द्धन पर्वत पर दूध चढाने के लिए (अन्य मतानुसार) जाती है। तब दान मांगने के छल से कृष्ण पथ अवरोध करते हैं। कुछ देर तक वाक्-युद्ध चलता रहता है। अन्त में अनिच्छापूर्वक राधा आत्म-समर्पण कर ही देती है।

दान प्रसंग के मूल रूप में किसी प्रकार की वासना का लगाव नही था कृष्ण तथा ग्वाल-बालो का दूध-दही ले जाती हुई गोप बालाओ के खाद्यपेय पदार्थों के ही प्रति सहज बाल सुलभ लोभ था गोपवधुओ की प्राप्ति से, प्रेम-तृप्ति का लक्ष्य नही था। 'वृन्दावनदास के चैतन्य भागवत और माधव भट्ट के दान लीला काव्य से इसका

गौड़ीय सम्प्रदाय में परकीया भाव की सर्वश्रेष्ठता—

यह बात विशेष ध्यान देने की है कि गौड़ीय-वैष्णवों ने मधुर रस की यथा सम्भव पुष्टि के लिए ही राधा-कृष्ण कथा में नई घटनाओं की योजना की। गौड़ीय-वैष्णवों द्वारा 'परकीयावाद' की स्थापना के पीछे भी इसी ध्येय की प्रेरणा थी। परकीया प्रेम में स्वकीया की तुलना में अधिक त्याग कष्ट सहिष्णुता, अधीरता होने के कारण कृष्ण भक्ति के लिए श्री चैतन्यदेव को परकीया-प्रेम ही आदर्श प्रतीत हुआ। अतएव कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य-चरितामृत' में परकीया भाव की भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। पर उत्तर-भारत के वैष्णवों (वल्लभ-सम्प्रदायी) को यह भाव किसी प्रकार भी मान्य नहीं था, उन्होंने इस मत का प्रचण्ड रूप से विरोध तथा खण्डन किया।

वल्लभ-संप्रदाय में बाल-कृष्ण—

१६ वीं शताब्दी में उत्तरप्रदेश में गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का समसामयिक वल्लभाचार्य प्रवर्तित वल्लभ-सम्प्रदाय जोर पकड़ रहा था। वल्लभाचार्य ने 'बालकृष्ण' की उपासना का ही प्रचार किया था। तत्कालीन वल्लभ-सम्प्रदायी विशेषत अष्टछाप कवियों—सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कृष्णदास कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी—के बाल-कृष्ण सम्बन्धी बाल-लीलाओं के पद भारतीय साहित्य में अतुलनीय हैं। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य के पुत्र आचार्य विठ्ठलनाथ ने 'वल्लभ-सम्प्रदाय' में युगल स्वरूप की उपासना को प्रवर्तित किया। सभव है, विठ्ठलनाथ इस विषय में चैतन्य सम्प्रदाय से प्रभावित हुए हों। किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में राधिका सर्वत्र स्वकीया 'स्वामिनी' रूप से ही विराजित हैं, गौड़ीय वैष्णवों का परकीया तत्व इन्हें मान्य न हुआ।

श्रीकृष्ण के शौर्य-पक्ष की क्रमशः क्षीणता—

सम्पूर्ण धारा प्रवाह को लक्ष्य में रखते हुए विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुत आरम्भ में श्रीकृष्ण की ऐश्वर्य गरिमा से पूर्ण देव रूप की ही प्रधानता थी, क्रमश. काव्य-साहित्य के प्रभाव से राधा-कृष्ण कथा में मधुर और वात्सल्य पक्ष ही प्रबल हो उठा। उसमें भी माधुर्य के सर्वव्यापी प्रसार के कारण ही श्रीकृष्ण की पराक्रम-शीलता और शौर्य के पक्ष की पूर्ण अवहेलना हुई। आगे चलकर इसका परिणाम बहुत ही बुरा हुआ। माधुर्य-भाव

प्रधान कृष्ण भक्ति में ऐश्वय-बोध के लिये काई स्थान नही था, जिससे दास्य भावना बिल्कुल दब-सी गई। जिसके फलस्वरूप कृष्ण भक्ति में क्रमश आदर्श और पवित्रता की भावना का अभाव होता गया जिससे जनता भक्ति के निमल आध्यात्मिक पक्ष को भूल कर भौतिकता की ओर बढ चली। उस समय के शक्तिहीन राजाओ और विलासी बादशाहो की प्रवत्ति ने उस साहित्य को और भी उत्तेजित किया। फलस्वरूप कुत्सित शृगारी साहित्य को प्रोत्साहन मिलने लगा। कृष्ण चरित में सब रसो की सामग्री रहते हुए भी कविगण उसका उपभोग नही कर सके, या कहना चाहिए कि उस भाव धारा का मोडने की शक्ति उनमें नही थी। उन कवियो की विकृत भावना को फारसी काव्यधारा से भी भरपूर खुराक मिलती रही। जिससे राधा कृष्ण कथा से देवत्व की पवित्र भावना लुप्त हो चली और राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो मात्र रह गया।

साहित्य चर्चा के साथ ही यदि शिल्प में विकसित राधाकृष्ण कथा के स्वरूप पर विचार न किया जाए तो प्रसग अधूरा ही रह जाएगा। राधा कृष्ण का मूर्ति-कला तथा चित्रकला पर प्रभाव साहित्य की तुलना में कुछ कम महत्व का नही।

श्रीकृष्ण लीला सम्बधी मूर्त्तिया—

श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी मूर्तिया की चित्रो से पहले उपलब्धि के कारण शिल्प की चर्चा मूर्त्तिया से ही आरम्भ की जाएगी। पुरातत्व विदो का कहना है कि प्रथम अथवा द्वितीय सन् ईसवी से पूव श्रीकृष्ण-कथा से सम्बन्धित कोई भी मूर्ति उपलब्ध नहीं, उसके पहले की मूर्त्तिया विष्णु मूर्त्ति हैं। सव प्रथम मथुरा में श्रीकृष्ण जन्म सम्बन्धी उभारदार मूर्त्ति (रिलीफ) का एक खड प्राप्त हुआ। रायबहादुर दयाराम सहानी ने उसका समय प्रथम से द्वितीय सन ईसवी के बीच का अनुमान किया है[1]। चौथी सन् ईसवी के बाद से श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी मूर्त्तिया पर्याप्त मात्रा में गढी जाने लगी, ऐसा उपलब्ध सामग्री के आधार पर विद्वानो का अनुमान है। मन्दोर में दो भग्न द्वार-स्तम्भ प्राप्त हुए हैं जिनमें गोवद्धन धारण नवनीत चौर्य, शकट भग धेनुक-वध और कालियदमन की लीलाएँ उत्कीर्ण है, विद्वानो ने इनका निर्माणकाल चौथी या पाचवी सन् ईसवी माना है। मथुरा में गोवद्धनधारी

[1] आर्कआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १९२५–१९२६।

कृष्ण की वलुआ पत्थर की एक सुन्दर कलापूर्ण मूर्त्ति प्राप्त हुई है, सभवत· यह चौथी सन् ईसवी की है। महावलीपुरम् मे भी गोवर्द्धनवारी श्रीकृष्ण की एक सुन्दर उत्कीर्ण मूर्त्ति मिली है। गोवर्द्धनवारी कृष्ण की एक मूर्त्ति काशी के एक टीले मे पाई गई थी, अव सारनाथ के सग्रहालय में सुरक्षित रखी हुई है। इसमें भी कृष्ण का अकन वड़ा उदात्त और ओजपूर्ण हुआ है। वे गोवर्द्धन-पर्वत को सहज में 'कंदुक-इव' घारण किए, तने हुए दृढ़ता से खडे है[१]। इन उपलव्घ मूर्त्तियो से ऐसा अनुमान होता है कि श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन-वारण की लीला ही उस समय सर्वाविक लोकप्रिय रही होगी, साथ ही यहा यह वात विशेष घ्यान देने की है कि साहित्य के समान शिल्प भी इसी की साक्षी देता है कि आरम्भ में श्रीकृष्ण के पराक्रम की ही चर्चा प्रवान थी।

वादामी गुफा के श्रीकृष्ण-लीला विपयक उत्कीर्ण भीति-चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका समय विद्वानो ने छठी से मातवी शती सन् ईसवी के वीच का अनुमित किया है[२]।

वंगाल के राजशाही जिले के पहाडपुर की खुदाई में कृष्णलीला की अनेक मूर्त्तिया निकली है जो एक से एक सुन्दर और सजीव है· वेनुक-वघ और कृष्ण का किसी गोपी के साथ प्रेमालाप की मूर्त्ति ही इनके दो विशिष्ट उदाहरण कहे जा सकते है। इनका निर्माण काल ७ वी शती सन् ईसवी माना गया है[3]। गोपी मूर्त्ति के सम्वन्व में श्री सुनीतिकुमार चटर्जी का अनुमान है कि श्रीकृष्ण के साथ अन्य स्त्री मूर्त्ति रावा ही होगी। पर 'भक्तिरत्नाकर' और प्रेम-विलास' काव्य से इस मान्यता के विरुद्ध साक्ष्य मिलता है, इन ग्रन्थो के अनुसार नित्यानन्द प्रभु की स्त्री जाह्नवी देवी जव वृन्दावन गईं तो वे इस वात से अत्यन्त दु खी हुईं कि श्रीकृष्ण के साथ रावा-मूर्त्ति की

---

[१] श्रीरायकृष्णदास 'भारतीय मूर्त्ति-कला' पृ० ९९।

[२] द्रप्टव्य—आर० डी० वैनर्जी वास रिलीफ आफ वादामी, आर्केओलाजिकल सर्वे आफ इडिया मेमोयर, जी० सी० चन्द्रास नोट एण्ड प्लेट इन दी आर्केओलाजिकल सर्वे आफ इडिया एनुअल रिपोर्ट, १९२८–२९।

[3] द्रप्टव्य—'नोट्स ऑन दी पहारपुर रिलीफ्स'—के० एन० दीक्षित, आर्केओलाजिकल सर्वे आफ इडिया एनुअल रिपोर्ट, १९२६–२७।

उपासना क्या नही होती। अतएव यहा से लौटते ही मूर्तिकार नयान भाष्कर से कुछ राधा-मूर्त्तिया बनवाकर जाह्नवी दवी ने वृदावन भेजी। जीव-गोस्वामी के आदेशानुसार ये मूर्त्तिया कृष्ण पारवस्थिता की गइ और तभी से युगल स्वरूप की उपासना होने लगी। तब से बगाल में विष्णु या बाल गोपाल की मूर्तियो के अतिरिक्त अकेली कृष्ण मूर्ति की पूजा नही हाती[1]।

भारत से बाहर के देशों मे कृष्ण लीला के चिह्नावशेष—

भारत से बाहर अकारवाट के मन्दिर में शिलापट्टा पर उत्कीण कृष्ण लीला के चित्र सजीवता के कारण विशेष उल्लेखनीय ह। अकोरवाट का प्राचीन नाम यशोदाघरपुर था, यह कबोडिया देश की पुरानी राजधानी थी। १२ वा शती के आरम्भ (लगभग ११२५ ई०) में सम्राट सूय वमन द्वारा बनवाए गए विशाल मन्दिर के शिलापटटा पर रामायण और महाभारत के बहुत से दश्य उत्कीण हाने के कारण ये अत्यन्त महत्वपूण हैं। मन्दिर के मडप के दक्षिणी-पश्चिमी कोने में कृष्ण की बाललीला के कई दश्य उत्कीण है उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) यमलाजुन उद्धार—चकित यशोदा के सामने बालकृष्ण घिसटत हुए देख रह ह। पीछे दो गोपिया खडी हैं। उनके पीछे बाइ ओर यमलार्जुन वृक्ष और उनस उत्पन्न कुबेर के दो पुत्र नलकूवर और मणिग्रीव बने हैं।

(२) गावद्धनधारी कृष्ण—यह दृश्य बडा प्रभावोत्पादक है। कृष्ण की मूर्त्ति सबसे बटी ह। बीच में खडे हुए व दाहिने हाथ के ऊपर पवत उठा रहे ह, बाएँ हाथ में एक माडदार छडी है। उनके समीप एक सखा ह। नीचे दो पक्तियो में ग्वाल-बाल और गाय-बछड़े अत्यन्त चकित मुद्रा में भक्ति भाव स कृष्ण की ओर देख रहे ह। और कुछ उन्हें प्रणाम कर रहे ह।

(३) एक ही शिलापटट पर उत्कीण दो दश्यो में एक दावानल आचमन का है और दूसरे में कृष्ण प्रलबासुर का वध कर रहे ह। कृष्ण का रूप चतुभुज है। हिरन-बाघ आदि जगली जीव घबरा कर भाग रह ह आग की लपटें बढ़ रहीं हैं, कृष्ण अविचल भाव से अग्नि की आर देख रह हैं।

(४) इद्र के लिए जो भोज्य-पदाथ लाए गए थे, उन्हें कृष्ण चतुमुखी रूप स प्रकट होकर खा रहे ह। ग्वाल बाल भक्ति भाव से उन्हें प्रणाम कर रहे हैं[2]।

---

[1] श्रासुकुमार सन हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर' प० ४८०–४८१।

[2] पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ 'अकोरवाट के मन्दिर में कृष्णलीला के दृश्य'—श्रीवासुदव शरण अग्रवाल पृ० ७९९।

यहा यह बात विशेष ध्यान देने की है कि अंकोरवाट के मन्दिर में उत्कीर्ण कृष्ण-लीला के दृश्य इस तथ्य की गवाही देते हैं कि उस समय कृष्ण-लीलाएँ इतनी सर्वप्रिय थी कि उनका प्रसार तथा प्रचार भारत ही नही भारत से बाहर के देशो मे भी काफी हो चुका था। तभी तो अंकोरवाट के मन्दिर मे इतने सजीव और सुन्दर श्रीकृष्ण लीलाओ के दृश्य उत्कीर्ण होने सभव हुए। उन शिलापट्टो पर उत्कीर्ण श्रीकृष्ण-लीला के चित्रो मे कृष्ण के वीर देवत्व प्रधान पक्ष की ही प्रमुखता है।

चैतन्य-चरितामृत में श्रीकृष्ण-लीला विषयक मूर्तियों का उल्लेख—

श्रीकृष्ण लीला विषयक मूर्तिया १६ वी शताब्दी तक गढी जाती रही, इसका प्रमाण 'चैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थ से मिलता है। महाप्रभु चैतन्यदेव के गौड के पास कानाइर नाटशाला ग्राम में श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी कुछ उत्कीर्ण चित्र देखने का उल्लेख है[1]।

अब भी न जाने कितनी ही श्रीकृष्ण लीला-विषयक सुन्दर मूर्तिया धरती के गहन-गर्भ में छिपी पड़ी है जिनका पुरातत्व वेत्ताओ तक को कुछ पता नहीं।

चित्रकला मे श्रीकृष्ण-लीलाएँ—

१५ वी शताब्दी में साहित्य के साथ ही चित्रो में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओ की बडी माग हुई। यह स्वाभाविक ही था क्योकि भक्तो को स्तुति साहित्य के साथ ही अपने इष्टदेव की विविध लीला सम्बन्धी चित्रों की बडी आवश्यकता थी। जैनेतर सचित्र ग्रन्थों में बाल-गोपाल स्तुति की एक प्रति बोस्टन सग्रहालय में, दूसरी गुजरात के श्री भोगीलाल जयचन्द्र साडेसरा के सग्रह में है। यह चित्र १५ वी शती के राजस्थानी चित्र शैली में अकित है ऐसा विद्वानो का मत है। राजस्थानी चित्रशैली में श्रीकृष्ण लीलाओ की प्रमुखता है।

१६ वी शताब्दी में वैष्णव पुनरुत्थान के कारण व्रज में श्रीकृष्ण लीलाओ के चित्र खूब रचे गए। श्री रायकृष्णदास जी का अनुमान है कि श्रीकृष्ण के रसीले मोहक स्वरूप के चित्रण मे ही सबसे पहले कटावदार आंखो का आलेखन हुआ होगा। आज भी नाथद्वारा के चित्रों में यह विशेषता विशेष

---

[1] प्राते चलि आइला प्रभु कानाइर-नाटशाला।
देखिल सकल तांहा कृष्ण-चरित्र-लीला॥ —२।१।२१३।

रूप में देखी जाती है। ये चित्रकार वल्लभ सम्प्रदायी हैं, नाथद्वारा के पहले इनका मुख्य केन्द्र व्रज था।

१७ वी शताब्दी में अकबर की शान्तिप्रिय नीति के फलस्वरूप सम्पूर्ण देशभर में नवचेतना का आलोक-सा फल गया। सास्कृतिक पुनरुत्थान में चित्रकला की ओर भी लोग प्रवृत्त हुए। मूर्तिकला का अन्त १२ वी शताब्दी में ही हो गया था, फिर उसका पुनरुत्थान न हो सका। इसका एकमात्र कारण तत्कालीन शासको की नीति ही थी, वे हिन्दू देव-देवी की मूर्तियां तथा मंदिरो को सहन नही कर सकते थे। सौभाग्य से शासको का चित्रकला के प्रति यह भाव नही था प्रत्युत मुसलमान शासको (बाद के कई) की ओर से इसे प्रेरणा मिली, जिससे चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। १७ वी शताब्दी में चित्रो के उत्थान काल में राधा-कृष्ण लीला विषयक चित्रो में काफी पुष्टता आई।

बुन्देला उत्थान के कारण बुन्देलखण्ड में भी हिन्दू-संस्कृति को नया जीवन मिला। वहा भी राजस्थानी शैली में कृष्ण-लीला के बहुत चित्र बने पर उन चित्रो में कला की बारीकी और सौन्दर्य का अभाव रहा। विद्वानो ने इनका समय १६४० सन् ईसवी अनुमान किया है।

महाराज वीरसिंह देव के ओडछा और दतिया के महलो में काश्मीर शैली के कृष्ण-लीला विषयक भीति चित्र बने है। ऐसा मालूम होता है कि अपने प्रासादो को अलकृत करने के लिए महाराज ने काश्मीर से कारीगर बुलवाए थे।

१८ वी शताब्दी तक राजस्थानी शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। इन चित्रो का विषय मुख्यत श्रीकृष्ण लीलाए और केशव और बिहारी के ग्रथो पर आधारित नायिका भेद था। इस युग में इन विषयो के अनेक सचित्र ग्रन्थ भी बने। इस समय मेवाड राजस्थानी शैली का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। मेवाड शैली में कुछ बडी चित्रमालाएँ प्राप्त है जिनमें एक कृष्ण-लीला सबधी चित्रमाला बहुत बडे आकार में है, इसका चित्रण अत्यन्त सुंदर है। सूरसागर पर आधारित शायद एकमात्र चित्रमाला भी इसी शैली में है।

राजस्थानी शैली का एक मुख्य केन्द्र जयपुर भी था। वहा के इस समय के रास-मडल और गोवर्द्धन धारण के चित्र बडे सुदर और सजीव हैं। जोधपुर, कोटा, बूदी और नाथद्वारा में भी श्रीकृष्ण लीला विषयक सुन्दर चित्र बने।

दतिया के राजा शत्रुजीत (१७६१–१८०१ ई०) के समय बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक विकास पूर्णता पर पहुँचा। उस समय देव के 'अष्टयाम' 'बिहारी-सतसई, और मतिराम के 'रसराज' की पूरी चित्रावली और धार्मिक चित्र बडी सख्या मे तैयार हुए।

उस समय राजस्थानी शैली राष्ट्र शैली थी। इन चित्रो के विषय मुख्यत गीतगोविन्द, भागवत, महाभारत, रामायण, रागमाला एवं नायिका भेद है। १८ वी शती का मध्य इस शैली का उत्कर्ष काल है, जिसके मुख्य उदाहरणो मे से १६३० ई० के मानकू चित्रकार की बनाई 'गीतगोविन्द' चित्रावली है जो आजकल लाहौर सग्रहालय में सुरक्षित रखी हुई है।

पहाड़ी शैली में भावना और वास्तविकता का सुन्दर मेल रहता है। पहाडी शैली के उत्कृष्ट नमूने के रूप मे कृष्ण का कालिय-दमन संबधी एक चित्र भारत कला-भवन सग्रह, बनारस में सुरक्षित रखा है। अत्यन्त पराक्रम से किशोर कृष्ण ने दुर्दान्त कालिय को दबा रखा है और सहज भाव से उस पर नाच रहे हैं। नृत्य में गति है। उनके पैरो से दबकर कालिय पिसा जा रहा है। नाग-बालाएँ उसकी प्राण-भिक्षा माग रही है। घटना की भीषणता से भयभीत और कालिय के विष से प्रभावित ग्वाल वृन्द तथा गायें तट पर मूर्छित पड़ी है।

कृष्ण-लीला में गीतिकाव्यात्मक दृश्य भी दीखते है साथ ही ग्राम-जीवन का भी सरस चित्रण हुआ है। पहाडी शैली ने पौराणिक-साहित्य, ऐतिहासिक-गाथा, लोक-कथा तथा हिन्दी की प्रमुख रचनाओ से विषय चुने। उनकी प्रत्येक रेखा में जीवन, स्पन्दन और प्रवाह रहता है, इनमें अत्यधिक मौलिकता है। अजन्ता के बाद पहाडी शैली में ही भारतीय कला का अत्यन्त उत्कर्ष दिखता है।

कागडा के राजा ससार चन्द्र (१७७४–१८२३ ई०) का समय पहाड़ी कला का स्वर्णयुग है। १८२८ ई० मे ससार चन्द्र की दो कन्याओ के गढवाल नरेश से विवाह के अवसर पर काँगड़ा के चित्र और चित्रकार भी दहेज मे आए। दहेज में आए हुए चित्रो में 'गीतगोविन्द' और बिहारी चित्रावली बडी ही सुन्दर और कोमल है[1]।

---

[1] श्रीराय कृष्णदास. 'भारत की चित्रकला' के आधार पर चित्रकला में श्रीकृष्ण लीलाओ का विवरण दिया गया है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि चित्रों की विषय-वस्तु पूर्णतया साहित्य पर आधारित होने के कारण चित्र-कला में श्रीकृष्ण का शृंगारी, रसिक रूप ही अपेक्षाकृत अधिक निखरा।

•

(३) वल्लभ और चैतन्य से पूर्व का वैष्णव-काव्य साहित्य

(क) सूर से पूर्व ब्रजभाषा का वैष्णव काव्य साहित्य—

पिछले अध्याय में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य की क्रमान्विति के बीच राधा-कृष्ण-कथा के स्वरूप पर विचार किया। अब इस अध्याय में पहले वल्लभ से पूर्व के ब्रजभाषा तथा बाद में चैतन्य-पूर्व बंगीय वैष्णव-साहित्य विषयक आलोचना संक्षेप में प्रस्तुत की जाएगी।

प्राचीन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में ढूँढने पर कृष्ण-लीला विषयक पदसाहित्य का पता मिलना सरल है पर ब्रजभाषा में सूर से पूर्व के श्रीकृष्ण लीला विषयक काव्य-साहित्य की प्राप्ति कठिन ही है। उसका एकमात्र कारण यही है कि सूर की असाधारण काव्य प्रतिभा की उमड़ती वेगवती धारा ने परम्परा की क्षीणधारा को आत्मसात् कर लिया फिर क्रमशः साहित्य के इतिहास से उसकी अवस्थिति के चिह्न भी धुल गए। आज बहुत छान बीन के बाद साहित्य के किसी कोने से उस विच्छिन्न सूत्र की कोई एक टूटी कड़ी हाथ लग जाता है जिसके सहारे परम्परा-सूत्र को सुशृंखलित रूप में जोड़कर उपस्थित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः यहाँ उन दो चार उपलब्ध टूटी कड़ियों को विच्छिन्न रूप में ही उपस्थित किया जा रहा है।

गोस्वामी विष्णुदास—

गोस्वामी विष्णुदास डूंगरेन्द्रसिंह तोमर (सन ईसवी १४२४–१४५५) के समकालीन थे। इनका रचनाकाल सन् १४३५ ई० के लगभग माना जाता है[१]। विष्णुदास ने रुक्मिणी-मंगल की रचना की जिसमें प्रचुर परिमाण में उनके पद मिलते हैं। रागरागिनियों में बंधे हुए ये पद मध्यदेश के १५ वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक की पद-परम्परा के विकास के सुन्दर नमूने हैं।

---

[१] हरिहरनिवास द्विवेदी 'मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी)', पृ० ७८।

गेयपद-रचयिता के अतिरिक्त हिन्दी प्रबन्ध काव्यों के भी विष्णुदास १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के बहुत बड़े रचयिताओं में से हैं। बड़े खेद का विषय है कि यद्यपि विष्णुदास के ग्रन्थों का पता खोज रिपोर्ट में सन १९१२ में ही लग गया था परन्तु इनका उल्लेख हिन्दी के किसी साहित्य-इतिहास में नहीं मिलता। विष्णुदास ने 'रुक्मिणीमंगल' के गेयपदों के अतिरिक्त महाभारत कथा, स्वर्गारोहण कथा, और मकरध्वज कथा ग्रन्थ लिखे हैं। इनके तीन ग्रंथ दतिया के राजकीय पुस्तकालय में हैं और दो सरस संग्रह ग्वालियर के श्री भा० रा० भालेराव जी के संग्रह में पड़े हैं[1]। विष्णुदास के सम्बन्ध में कुछ उल्टा-सीधा उल्लेख मिश्रबंधु विनोद में अवश्य मिलता है[2]। यद्यपि विष्णुदास गायक और कथावाचक मात्र थे पर संसार का उन्होंने पैनी दृष्टि से निरीक्षण किया था इसका प्रमाण उनके ग्रन्थ में पाए हुए वर्णनों में मिलता है। उन्होंने दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि उस समय उस भाषा का सूत्रपात कर दिया जिसमें आगे हिन्दी के अनेक महाकाव्य लिखे गए।

विष्णुदास का पद-साहित्य—

'रुक्मिणीमंगल' से कुछ पद उदाहरण स्वरूप नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

राग गौरी

गुण गाऊँ गोपाल के चरण कमल चित लाय।
मन इच्छा पूरण करो जो हरि होय सहाय॥
भीषम नृप की लाडली कृष्ण ब्रह्म अवतार।
जिनकी अस्तुति कहत हौं सुनि लीजो नरनार॥

श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाहोपरान्त विदाई का वर्णन :—

रागनी पूर्वी दोहा

विदा होय घनश्याम जू तिलक करे कुल नारि।
तात मात रुकमन मिली अखियन आंसू डारि।
मोहन रुकमिन ले चले पहुंचे द्वारका जाए।
मोतियन चौक पुराय के कियो आरती माय।
आज बधाई बाजे माई वसुदेव के दरबार।
मनमोहन प्रभु व्याह कर आए पुरी द्वारका राजै।

---

[1] हरिहरनिवास द्विवेदी : 'मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी)' पृ० १३६।
[2] प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, स० १९८६ वि०, पृ० २४१–२४२।

अति आनन्द भयो ह नगर में घर घर मगल गाई।
अगन तन में भूषन पहिरे सब मिलि करत समाज।
बाजे बाजत कानन सुनियत नौबत घन ज्यू बाज।
नर नारिन मिलि देत बधाई सुख उपजे दुख भाग।
नाचत गावत मृदग बाज रग बसाबत आज।
विष्णुदास प्रभु की ऊपर कोटिक मन्मथ लाज।

कृष्ण रुक्मिणी के साथ विलास में मग्न ह —

पद

मोहन महलन करत विलास।
कनक मदिर में केलि करत ह और कोऊ नहिं पास।
रुकमिन चरन सिराव पिय के पूजी मन की आस।
जो चाहो सो अबे पावो हरि पत देवकी साय।
तुम बिन और न कोऊ मेरो धरणि पताल अकास।
निस दिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास।
घट घट व्यापक अतरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास।
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दास[1]।

इन पदो को देखने से स्पष्ट जान पडता ह कि ये पद और इनकी प्रवाह मयी भाषा आगे क वष्णव-काव्य की सभावनाए अपने में छिपाए हुए थी।

बैजू बावरा—

गान प्रवीण बैजू बावरा की जीवनी अभी तक प्रकाश में नहीं आई। इनके सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ तो प्रचलित हैं पर प्रामाणिक सामग्री का अत्यन्त अभाव है।

बजू बावरे का असली नाम वृजलाल था। ये एक साधु थे और वृन्दावन में यमुना क किनारे रह कर भक्ति में तल्लीन रहते थे। इनकी तल्लीनता के कारण ही लोग इन्हें बावरा कहा करते थे[2]।

बजू बावरा क समय के सम्बन्ध में कई जनश्रुतिया हैं। एक क अनुसार

[1] गडवापुर, जिला सीतापुर क प० गणपतलाल दूबे की प्रति से (खोज रिपोर्ट १९२६–२८, पृ० ७५९–७६०)।

[2] नर्मदेश्वर चतुर्वेदी 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाए पृ० १५०।

अमीर खुसरो से होड़ लेने वाले संगीतज्ञ गोपाल नामक बैजूबावरा के शिष्य थे, यदि इसे ठीक माना जाए तो बैजू बावरा का समय १३ वी-१४ वी शताब्दी ठहरता है। दूसरी इन्हें तानसेन का प्रतिद्वन्दी और गुरुभाई मानती है, इसके अनुसार बैजू बावरा अकबर कालीन हुए। 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बैजू बावरा का समय तानसेन से कुछ पूर्व माना है[1]। तीसरे मत के अनुसार यह समय पहले और दूसरे के बीच में पडता है।

बैजू बावरा की जीवनी विषयक अन्य उपलब्ध सामग्री द्वारा भी तीसरे मत का ही समर्थन होता है। घटना इस प्रकार है—हुमायू ने गुजरात को विजय कर लेने के बाद चापानेर नामक नगर में कत्लेआम की आज्ञा जारी कर दी। उस आज्ञानुसार सेनाधिकारियो की पकड में सबसे प्रथम जो व्यक्ति आया वह गानयोगी बैजू बावरा ही था। वह तो अपनी सिद्धावस्था के कारण पकडे जाने पर भी निर्विकार ही रहा। किन्तु पकडने वाला सेना-धिकारी उसकी असाधारण कला से परिचित था। उसके प्राण हरण करने मे उस अधिकारी को अतिशय दु ख हो रहा था। अन किसी प्रकार साहस बटोर कर वह बैजू बावरा को साथ लेकर बादशाह के सामने उपस्थित हुआ और उनसे यह कह उसे प्राणदान देने की याचना की कि 'हुजूर! ऐसा गुणी गायक फिर पैदा नही होगा।' हुमायू ने यह सुन कर बैजू बावरा से कुछ गाकर सुनाने को कहा। बैजू बावरे का दिव्य संगीत जितनी देर तक चलता रहा, तब तक बादशाह की आखो के आसू थमे नहीं। अत्यधिक प्रभावित होकर बादशाद ने बैजू बावरे से इच्छानुसार कुछ माग लेने का अनुनय किया। सब प्रकार से नि स्पृह बैजू बावरे ने और कुछ न माग कर केवल कत्ले आम बन्द करा देने की याचना की। बादशाह ने तत्काल तदनुसार आज्ञा दे दी। बादशाह के कुछ और मांग लेने का आग्रह करने पर बैजू बावरे ने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह एव उनके अन्य अधिकारियो को कारागार से मुक्त कर देने की माग की। हुमायू ने वह माग भी तत्काल पूरी की। इस पर उनके कुछ सिपहसलार बिगडे कि एक पागल के कहने से दुश्मन को कैद से छोड दिया जाना कहा तक उचित है। किन्तु हुमायू ने कहा कि—'इस समय यदि बैजू बावरा गुजरात का तख्त भी माग लेता तो मैं सहर्ष दे

[1] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० १६८।

देता। क्योंकि उसने अपने गायन द्वारा मुझे जो आनन्द दिया है, वैसा आनन्द मुझे दिल्ली का तख्त मिलने पर भी नहीं मिला था[1]।'

उक्त घटना से सिद्ध होता है कि हुमायूं के समय में ही बैजू बावरा प्रौढ रहे होंगे। अत अकबर के समय में जब तानसेन की प्रसिद्धि हुई तब यदि बैजू बावरा रहे भी होंगे तो अतिशय वृद्ध होंगे, तानसेन के समवयस्क या छोटे तो नहीं हो होंगे।

बैजू बावरा के पद—

बैजू बावरा का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में नहीं मिलता, केवल रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास[2] में बैजू का एक पद उद्धृत हुआ है। बैजू बावरे के पद गीतों के सकलन-ग्रन्थों में सगृहीत है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से ये पद कुछ सगीत शास्त्र विषयक तथा अधिकाश अवतारों की स्तुति सम्बन्धी हैं उनमें से भी श्रीकृष्ण विषयक पद ही सख्या में अधिक है। मन की उमग, मस्ती की धुन में मस्त बैजू ने समय समय पर जिन प्रकीर्ण पदों की रचना की उनमें उसके भक्त हृदय की ही झलक मिलती है। यहाँ श्रीकृष्ण सम्बन्धी कुछ पदों को उद्धृत किया जा रहा है —

ब्रज में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया —

जयतश्री-ताल चौताल

ऐरी अब आनन्द भयोरी ब्रज में श्रीकृष्ण जनम लियो आज।
शुभ घरी शुभ दिन शुभ ही महूरत प्रगट भए ब्रजराज॥
ब्रह्मा वेद पढ़त महादेव दर्शन आए नाचत गोपी
ग्वाल नारद वीण बजाए स्वर साज।
बैजू नन्द महोत्सव देख मगन भए पूजे मन इच्छा सुर नर मुनि काज॥[3]

नन्द के आगन में कृष्ण के दर्शनाभिलाषियों की भीड़ लग गई —

आगन भीर भई ब्रजपति के आज नन्द महोत्सव आनन्द भयो।
हरद दूब दधि अक्षत रोरी ले छिरकत परस्पर गावत मगल चार नयो॥

---

[1] मिराते सिकन्दरी में यह घटना वर्णित है। प० ओकारनाथ ठाकुर ने इसका अनुवाद साबरमती आश्रम में देखा था। उन्हीं से यह सूचना मिली है।

[2] पृ० १६८, सशोधित और प्रवर्द्धित सस्करण, स० २००३ वि०।

[3] रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग) १, पृ० २५७।

ब्रह्मा ईश नारद सुर नर मुनि हरषित बिमानन पुष्प बरन रंग टयो।
धन धन बैजू सन्तन हित प्रगट नन्द जसोदए सुत जो दयो[1] ॥

प्रथम दर्शन मात्र में कृष्ण की मन मोहिनी माधुरी मूर्ति ने राधा या किसी गोपी को आत्मविस्मृत कर दिया, उसी दशा और उस अपूर्व रूप का वर्णन वह सखी से कर रही है —

भैरव-चौताल

आज सखी लखी मनमोहिनी मूरत माधुरी सुन्दर चतुर सुजन कान्ह।
सीस मुकुट श्रवण कुंडल घुंघवारी अलक झलक
चलन चाल ठुनक ठुनक अधरन मुरली बजाई तान ॥
भूली सुध बुध सब गृह काज डार दियो बिसरि गयो
खान पान लखि मन मोहन चतुर सुजान।
बैजू बावरी रावरी कर जोरी मोही
न सुहात आन त्याग दई कुलकान[2] ॥

प्रथम दर्शन ने मन पर जो जादू डाला उसके परिणामस्वरूप तन-मन उसी क्षण से 'उसी का' हो गया, अब स्थिति यह है कि जागते-सोते, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष में केवल 'वही माधुरी मूरत' —

आज सपने में साँवरी सलोनी मूरत देखी नैनन करी सोंनों बात।
तब ते मैं बहुत सुख पायो जागत भई परभात ॥
मधुर वचन बोल मदन मंत्र पढ डारी
उन बिन छिन पल कछु न सोहात।
बैजू के ब्रज की नारी जन्त्र तन्त्र लिखि सारी
कल न परत गात सब दिन रात[3] ॥

रूप-दर्शन से तो गोपियों के मन-नयन बिक ही चुके थे अब मुरली की तान ने मन पर और जुलुम ढाया। अबला गोपिया तो गोपिया, इन्द्रियजीत मुनि, जड-चेतन सब मुरली की दिव्य स्वर लहरी से मन्त्र-मग्ध थे —

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तें गोपी रीझि रही रस तानन सों।
सुध बुध सब बिसराई धुनसुन मन मोहे मगन भई देखत हरि आनन ॥

---

[1] रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), ३, पृ० २५७–२५८।
[2] वही, १, पृ० ७१।
[3] वही, २, पृ० ७१।

जीव जन्तु पशु पच्छी सुर नर मुनि मोहे हरे सब के प्रानन।
बजू बनवारी बसी अधरधरी वृन्दावनचन्द बस किए सुनत ही कानन[1] ॥

रास करने समय के कृष्ण के अदभुत रूप और उसके प्रभाव का वर्णन एक गोपी अपनी सखी से कर रही है —

मूलतानी धनाश्री

कुजन मध रच्यो रास अदभुत गत लिए गोपाल
कुडल की झलक देख कोटि मदन ठठक्यो।
अधर तो सुरग रग बासुरी सुहाय सग टेडी छवि
देख देख मेरो मन अटक्यो ॥
एरी अब देखो जाय ऐसे सा कहा बसाय
अलपन की गत निरख शेष नाग सटक्यो।
निरतत सगीतरी ततततथेई ततततथेई त्रिभगी
अगो रगी चाल देख इन्द्रधनुष पटक्यो ॥
रुनक झुनक नूपुर ठुनक रुन झुन रुन झननननननन
सननननन बाजे बाजे मन्द मुख सों मटक्यो।
रासविलास सुख को रास भनत बजू सुन गोपाल
यह स्वरूप दरस परस वृन्दावन का सटक्यो[2] ॥

राधा ने मान किया है, किसी तरह दाल गलती न देख कृष्ण ने राधा की सखी का अपनी ओर मिला लिया, सखी बीच में पडकर दोनो में समझौता कराना चाहती है —

भीमपलासी-चौताल

बोलीयो न डोलीयो ले आऊहू प्यारी को
सुनोहो सुघरवर अब ही में जाऊहू।
माननी मनाय के तिहारे पास ल्याय के
मधुर बुलाय के तो चरण गहाऊहू ॥
सुनरी सुन्दर नारि काहे करत एती रा
मदन डारत मार चलत पन सुझाऊहू।
मेरी सीख मान कर मान न करो तुम ऐसे
बजू प्रभु प्यारे सो बहिया गहाऊहू[3] ॥

---

[1] रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), ६, पृ० ४६।

[2] वही, ५७, पृ० २१५।

[3] वही, २ पृ० २१६।

राधा मान न करें तो क्या करें, बेचारी प्रतीक्षा में पलक-पावड़े बिछाए बैठी की बैठी ही रह जाती है उधर रसिक शिरोमणि नन्दलाल अपनी 'ढरकौही बानि' से बाज नहीं आते —

जयतश्री-ताल चौताल

मेरे नहीं आए हो नन्दलला जाओ क्यों न तिनके
ग्रह जिनके रस बस भए रहे सुख पाई रैन जागे।
धन धन भाग सुहागनि सरस सुन्दर तिया रग
अंग अभूषण रग देखि ब्रजभूप प्रेम पागे॥
तुम हो गोपाल जू बाल जाति अहीर बेपीर
परनारिन सों हिल चितरी तुमरे नैना लागे।
बैजू प्रभु निडर ढीट लंगर ढगर उगर घर घर
फिरत छैल लागे जावक चिह्न रस चाखे मदन तें
मुख सदन देखो बदन ढीले आगे॥[1]

कृष्ण मथुरा चले गए, गोकुल में घना अन्धकार छा गया। राधा के प्राण कृष्ण के सानिध्य के लिए तड़प रहे हैं :—

मूलतानी—ताल धमार

प्यारे बिन भर आए दोऊ नैन।
जब तें श्याम गवन कीनो गोकुल तें नाहीं परत री चैन॥
लगे न भूख प्यास न निद्रा मुख आवत नहीं बैन।
बैजू प्रभु कोई आन मिलावै वाको बलिहार चरन रैन॥[2]

हरि के गुण असीम, अपरम्पार हैं, विह्वल भक्त हृदय गा उठता है —

टोड़ी—चौताल

बरणन को कर सकत हरि के गुणानुवाद
शेष सहस्र शुक पावत नाहीं पार।
सनक सनन्दन सनातन सननकुमार
ब्रह्मा शिव व्यास बारद नारद हाहाहुहु गान्धर्व
गावत नित नित नाम सार॥

---

[1] रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), १४, पृ० २५९।
[2] वही, १, पृ० २२३।

सुर नर मुनि सब रच गए पच गए
वाको मरम भेद कोउ ना जानत अपरम्पार ।
बजू बावरे प्रभु भक्तवत्सल ह सब जग के करतार ॥[1]

नरहरि-हुमायूं, शेरशाह, अकबर के दरबारी कवि—

मुगल बादशाहा में अधिकांश साहित्यिक, कला प्रेमी और सहृदय थे। बहुत से कवि और कलाकार राजाश्रय में पलते थे। अकबर की साहित्यिक उदारता तो प्रसिद्ध ही है, उस मर्मज्ञ ने मुसलमान हिन्दू कवि-कलाकार को समान रूप से सम्मान दिया था। पर अकबर के पूर्व भी दिल्ली-दरबार के कुछ शासकों ने हिन्दी कवियों को अपनाकर अपनी साहित्यिक उदारता का परिचय दिया था। हुमायू के दरबार में कुछ हिन्दू-कवियों को भी राजाश्रय मिला हुआ था, जिनमें नरहरि मुख्य थे। नरहरि की रचनाओं में हुमायू की वीरता तथा उनकी विषम परिस्थिति सम्बन्धी कई छन्द उपलब्ध होते ह जिससे हुमायू की राज्यकालीन परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है जिससे लगता ह कवि ने आखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है। किंवदन्तियों और नरहरि के वंशजों में प्रचलित विश्वास से भी यही ज्ञात होता है कि वे हुमायू के दरबार में थे।[2] हुमायू के दरबार में एक हिन्दी कवि छेम का भी उल्लेख मिलता है।[3] शेरशाह ने भी हिन्दी कवियों को उचित मान दिया था।

---

[1] रागकल्पद्रुम (प्रथम भाग), ७९ पृ० १२२ तुलनीय, रसखानि का पद-
गावैं गुनी गनिका गन्धर्व और सारद सेस सबै गुन गाव।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पाव ॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगाव।
ताहि अहीर की छोहरियां, छछिया भरि छाछ पै नाच नचाव ॥१॥
सेस महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रटें, पचि हारे तऊ पुनि पार न पाव।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचाव ॥२॥

[2] कवि लिखि बनी सुकवि भये नरहरि सुभाग्य घर।
शाह हिमाऊं निकट रह सुन्दरसु सुनीति घर ॥
असनी-चरित्र लालजी, पृष्ठ० २,३।

[3] मिश्रबन्धु विनोद भा० १, पृ० २९७ कवि संख्या १८५, मुगल बादशाहों की हिन्दी, पृ० ७।

वह एक साहित्यिक मर्मज्ञ और सहृदय शासक था, नरहरि उनके दरबार में भी उपस्थित थे। नरहरि रचित शेरशाह सम्बन्धी बहुत से छन्द मिलते हैं जिसमें शेरशाह की वीरता, ऐश्वर्य, सहृदयता आदि का वर्णन है।[1] नरहरि, अकबर के दरबार में भी रहे। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में यह वयोवृद्ध थे।[2]

मध्यकाल भक्ति का युग था। दरबार का शृंगारिक और विलासमय वातावरण होते हुए भी युग के आग्रह से अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों ने राधाकृष्ण, राम, शिव तथा अन्य देवता विषयक भक्ति के पद लिखे, जिनमें उनकी ईश्वर-भक्ति और तन्मयता की झलक मिलती है। नरहरि के भक्ति सम्बन्धी छद बहुत थोड़े ही प्राप्त हैं फिर भी ये कवि की भक्ति भावना के द्योतक हैं।

रुक्मिणी-मंगल—

नरहरि की "रुक्मिणी-मगल ही एक छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध होती है। इसमे कवि ने कृष्ण और कुन्दनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के गंधर्व-विवाह का वर्णन किया है। सर्व प्रथम कुन्दनपुर के राजा भीषमराउ का परिचय, उसकी कन्या रुक्मिणी का यौवनावस्था का वर्णन, पुरोहित को लगन लेकर भेजना, जरासिन्धु, शिशुपाल आदि राजाओं का स्वयवर मे आने तथा रुक्मिणी का गुप्त रूप से पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास परिणय-सदेश आदि के वर्णन दिये गये हैं। अन्त मे कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण और उनके द्वारा जरासिन्धु, शिशुपाल तथा अन्य राजाओं की पराजय और कृष्ण का रुक्मिणी के साथ गधर्व विवाह दिखाकर कवि ने ग्रन्थ के पाठ करने का महत्त्व बताया है।

अभी तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित ही था। डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल ने अपनी "पुस्तक "अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि" के परिशिष्ट भाग में इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। उदाहरण के लिए उसमें से दो एक छन्द यहा उद्धृत किए जा रहे है।

रुक्मिणी आसन्न विपत्ति देख कृष्ण को सदेश भेजती है—

मरइ की लाज उपाइ मनहि मन कलपइ
जल आंवा के आगि हृदे अति तलफइ
कर मीजे पछिताइ बहुत दुख पावइ
विपति मोरि इह जाइ को प्रभुहि सुनावइ

---

[1] अकबरी दरबर के हिन्दी-कवि, पृष्ठ २८।
[2] वही पृ० ५४।

छंद

विपति इह मो कहि सुनाव ताप दुख जो म शहो
है निकट लगन निदश प्रीतम दुरा कठिन कासो कहों
तजि लाज एक उपाइ अजहु करो जो विधि बनि आवई
लिखि देए ताशु शदेश नरहरि प्रभुहि जाइ सुनावई

बठि एकातहि रुकुमिनि विप्र बोलऐउ
देव न मान निहोर शदेश बुझाऐउ
जदुपति कह कर मुदरी पाती दी हेउ
शजल नऐन पशु लगि शो विनती की हेउ
चले विप्र वर वो शगुन शुभ पाऐउ
हृद घरेउ हरि ध्यान द्वारिका आऐउ
कनक रतन मनि मदिर विप्र भुलानेउ
आपन जीवन जन्म सुफल करि मानेउ
आऐउ शींह दुआर तो प्रभुहि जनाऐउ
कुदनपुर शो विप्र लिखा ल आएउ
शुनि पाती तब जदुपति निकट बुलाऐउ
बुझि कुशल दम धोख शो नित बठाऐउ
तबहि ज पाती दीन शो बात जनाएउ ।।

छंद

हिय विचारे मुख निहोर शकुचि मन ही मे रह
दुख शुख जो मिलन विओग अब दहु विप्र मोशो का कह ।
द्विज कहा शन बुझाय सुन्दर पाइ पति शुख पाइआ ।
जनु रग पाऐउ रतन रुकुमनि प्रगट जदुपति आइआ ।
सुनि रुक्मिनि क विपती श्रीपानिधि आइआ
पाइ लागि जनु रक परम निधि पाइआ
नगर लोग नर नारि सोहे छन आइआ
देखि रूप बलि जाहि परम सुख पाइआ
हरि रुकुमिनि व ब्याह सो विधिहि मनाइआ
नृप भीखम तब शुनउ की जदुपति आइआ
आऐउ भीखम निकट दो माथ नवाइआ
रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीहेउ
मोर जन्म हरि आइ कीतारथ कीहेउ

रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ
कहेउ मरम सब भेद गोन्विदहि तोखेउ
हरि पुनि कीन्ह शंतोख बहुत गुख मानेउ
जराशिवु शिशुपाल काल वश जानेउ ॥...

मंगल

...चढ़ी शो मंदिर वार हनहि छन निरखइ
विथुरी जुथ मृगी जनु चहु दिशि चितवइ

छंद

चितवै शो जहं तहं स्रोगी जनु तनु काम छवि बहु शोहई
मंजीर नूपुर कलित कंकन देखि मुनि मन मोहई
शब शखी लोहैं शो कनक थार विलोकि अति सुख पाइआ
वर वेल नरहरि रुकुमिनी के मनहि मन अति भाइआ ॥

मंगल

शोहैं अलक वदन पर नह शुति ठारइ
नरहरि प्रान नाथ को पंथ निहारइ
लोग कहैं चलु वेगि विलंब न लाइआ
इह गति देखि धुजा तब पट तर पाइआ
धुजहि के शाय गयो मन तुरति शिधाऐउ
इत डांडी उत अंबर फरकि जनाऐउ
रहैं न पावैं रुकमिनी चलैं न पार ही
कहां रहे करतार सो हृदे विचारही
तेहि छन शारगपानि सो आइ तुलानेउ
हरि पुनि देखी रुकिमिनी अति हरखानेउ
देखेउ तन की हेतु एक करि मानेउ
गहि रुकिमिनी की बाह शो रथहि बैठाऐउ
जनु त्रिभुवन की शोभा जदुपति पाऐउ

छंद

पायो जो शोभ शंतोख मन माह अतिहि शब देखहि खरी
जनु जुथ जंबुक मध्य नरहरि शिव आपन बलि हरी
गशि दूरि तजे शो तिमिर पशरै अंधु धुवन सुझई
लै चले रथहि चढाइ रुकमिनी एक ऐकइ बुझई ॥...

मगल

जादव के सग चले प्रभु चेटक लाऐउ
हरि रुकमनि ल सग द्वारिका आऐउ
कीन्हो गध्रव ब्याह् शुजग जग छाऐउ
महापातु कवि नरहरि मगल गाऐउ
जो यह मगल गाव गाइ सुनायइ
ब्याह् काज कल्यान परम पद पावइ
रुकुमिनि हरन शुन जो हृदे विचारइ
आप तर भव शागर पुल निस्तारइ

नरहरि के काव्य में हिन्दी के प्राचीन रूप का अधिक प्रयोग है।

नरहरि के भक्ति विषयक स्फुट पद—

नरहरि की भक्ति सम्बन्धी फुटकल रचनाओ में राधा-कृष्ण का रूप सौदय तथा गोपी विरह और सीय-स्वयवर वर्णित ह। इतना अवश्य है कि नरहरि की रचनाओ में भक्ति रस का वह पुष्ट रूप नही मिलता जो उनके समसामयिक सूर आदि भक्त कवियों की रचनाओं में पाया जाता ह। पर नरहरि ने परम्परा के भक्ति भाव का उसी रूप में ग्रहण किया, इसका परिचय उनके भक्ति विषयक पदा में मिलता ह।

निम्नोद्धत पद में कवि ने भगवान् के आर्त-जन रक्षक रूप को दिखाया ह –
चोटी गहि द्रौपदी निमोरिवे को ठाढ़ो कीन्हों
कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिह
लनि पाये उसासि न दुसासनि प दीन हव पुकारो कहूँ दीनबन्धु हरिह
गुरुजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिहैं
ऐसे में अनाथनि को कौन सुध लह मोरपक्ष धरिह सो मोर पक्ष धरिह[1]।

भगवान का नाम-जप भक्त का एक महज अवलम्ब है —
माधव केशव कृष्ण विष्णु बकुठ दमोदर
हरि मुकुद गोविन्द अमर अविगच्छ अगोचर
नारायण नरसिंह सत्य विटठल बल गजन

[1] "अकबरी दरबार के हिन्दी कवि नरहरि के विविध विषयक फुटकर छन्द (परिशिष्ट) छन्द सख्या १२९।

प्रभु मुरारि वनवारि गोपि जीवन जनरंजन
सारंग शख गद चक्रधर पढ़त गुनत संकटहरण
जय रामचंद्र भगवंत हित कहि नरहरि तक्यो शरण[1] ॥

नरहरि की भक्ति-भावना तत्कालीन पद्धति के अनुसार ईश्वर की वन्दना करके उनके पराक्रम और गुणो के रूप मे व्यक्त हुई है। राधाकृष्ण के सयोग-विलास का नरहरि रचित केवल एक ही पद मिलता है—

करत विनोद स्याम स्यामा संग दऊ मन मुदित रूप गुन भाजन
अग अंग प्रति रंग रंग यह छवि उप्पम घन विदु विराजन[2]

कवि ने विरह के अन्तर्गत "वारहमासा" का क्रमवद्ध वर्णन किया है। वारहो महीनो मे विरह की विविध अवस्थाओ का विवेचन हुआ है। प्रिय के विना सव "सुखद वस्तुए किस प्रकार दु खद हो जाती है फागुन के चित्रण के साथ इसका वर्णन किया है .—

रास विलार वसु सुर पूरित षेल्लत फिरत नृपति प्रजटागुन
वाजहि पंच सद्द वहु भातिन सज्जन समीप सुषि न सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूर्जाहि सव जग मुदित मोर परमागुन
वे जदुनन्दन भेंग सषा सव पिय विन वृथा फागु भई फागुन[3] ॥

यद्यपि नरहरि की रचनाओ में न तो भाव-उत्कर्ष की विशेपता है और न भापा का सौन्दर्य फिर भी व्रजभाषा के प्रारम्भिक पद-साहित्य के कारण उनका व्रजभापा-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व अवश्य है।

निम्बार्क सम्प्रदायी कवि तथा उनकी रचनायें—

निम्वार्क सम्प्रदायी अपने सम्प्रदाय को चारो वैष्णव सम्प्रदायो मे प्राचीनतम वताते है। इस प्रकार उनके अनुसार सम्प्रदाय के आरम्भिक व्रजभाषा के काव्य-ग्रन्थो-युगल-शतक (श्री भट्ट), महावाणी (हरिव्यास), परशुराम सागर (परशुराम)—का रचनाकाल सूर से पूर्व ठहरता है। पर प्रामाणिकता के अभाव मे विद्वान् लोग इस साप्रदायिक मान्यता से एकमत नही हो सके है।

---

[1] वही, छद स० ११७।

[2] अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, पृ० १८४।

[3] अकवरी दरवार के हिन्दी कवि—वारहमासा (परिशिष्ट), छ.स. १११।

श्रीभट्ट रचित युगल-शतक—

निम्बार्क सम्प्रदायियों में सब प्रथम श्रीभट्ट देवाचार्य ने व्रजभाषा में काव्य रचना की इसलिए इनका "युगल शतक" सम्प्रदाय में आदि वाणी के नाम से विख्यात है। 'युगल शतक' की प्रतियों के अन्त में यह दोहा मिलता है—

नयन बान पुनिराम शशि गनो अंकगति वाम।
युगल शतक पूरन भयो संवत अति अभिराम॥

इससे यह निश्चित होता है कि 'युगल शतक' की रचना सं० १३५२ में हुई थी। श्री भट्ट जी के समय का प्रमुख आधार यही दोहा माना जाता है। इस प्रकार सम्प्रदाय में श्री भट्ट जी का समय आरम्भिक चौदहवीं शताब्दी से अन्तिम चौदहवीं शताब्दी तक का अनुमान किया जाता है। पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित युगल शतक' की प्रति में इस ग्रन्थ का रचनाकाल विषयक दोहा कुछ दूसरे रूप में मिलता है—

'नयन बाण पुनि राग शनि'

'राम' के स्थान पर इसमें 'राग' पाठ मिलता है जिसके अनुसार 'युगल शतक' का रचनाकाल सं० १६५२ ठहरता है। 'राग' पाठ के सम्बन्ध में निम्बार्क सम्प्रदाय वालों का कहना है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अन्वेषकों ने मु० नानपारा जिला बहराइच के निम्बार्क पुस्तकालय की पुस्तक से प्रतिलिपि करते समय असावधानी और विचार वितर्क न करने के कारण भ्रान्त पाठ लिख लिया इसी कारण काल सम्बन्धी इन भ्रान्त अनुमानों की सृष्टि हुई। सम्प्रदाय के अनुयायियों ने नानपारा की पुस्तक देखी तो पता चला कि वह अक्षर अस्पष्ट है जिससे 'राम' और 'राग' दोनों ही शब्दों का भान होता है।[1] निम्बार्क सम्प्रदाय वालों का इस विषय में और भी कहना है कि खोज रिपोर्ट में भी भट्ट परशुराम आदि के विषय में जो जानकारी मिलती है वह लिखने वाला का सम्प्रदाय की परम्परा को न जानने के कारण उल्टी-सीधी है।

जो कुछ भी हो समय सम्बन्धी इस वितण्डावाद के आधार पर कोई निश्चित निर्णय देना अत्यन्त कठिन है। संभव है यह ग्रन्थ इतना प्राचीन न हो केवल सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए ही सम्प्रदाय वालों ने इसे इतना प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा की हो पर फिर भी इतना तो कहना

---

[1] व्रजभाषा आदि वाणी 'श्रीयुगल-शतक' की भूमिका, पृ० ९।

ही पड़ता है कि सम्प्रदाय की परम्परा का अपना महत्त्व अवश्य है जिसे यो ही उडाया नही जा सकता। यह भी असभव नही कि श्रीभट् के मूल ग्रन्थ में बाद की शिष्य-परम्परा द्वारा बहुत-सा अश प्रक्षिप्त किया गया हो जिससे भाषा और काव्यत्व की दृष्टि से यह रचना १४ वी शताब्दी की-सी पुरानी नही जान पडती। इस ग्रथ की प्राचीनता विषयक अन्य कोई पुष्ट प्रामाणिक विवरण अभी उपलब्ध नही है, सभी मान्यताएँ अनुमान पर ही आधारित है। अन्य दोनो व्रजभाषा ग्रन्थो के रचना काल के सम्बन्ध में भी प्रामाणिकता के अभाव में इसी प्रकार का मतभेद प्रश्रय पा रहा है।

हरिव्यास रचित 'महावाणी'

श्री हरिव्यास देवाचार्य आचार्य श्री भट्ट जी के शिष्य थे। संस्कृत में इनके कई ग्रन्थ है पर व्रजभापा मे केवल एक ही ग्रन्थ महावाणी है, इसे युगल-शतक का भाष्य कहा जाता है। श्री हरिव्यास के आविर्भाव-तिरोभाव का समय अभी निश्चित ज्ञात नही। सम्प्रदाय वाले मानते है कि हरिव्यास देव जी का जन्म चौदहवी शताब्दी के आरम्भ मे मथुरा में हुआ था।[१] काशी सरस्वती भवन (पुस्तकालय) मे पुस्तक 'श्रीनृसिह परिचर्य्या' है जिसके अन्त में लिखा है कि इस पुस्तक को वि० स० १५२५ में श्रीहरिव्यास देव जी ने अपने हाथ से लिखी थी।[२] इसके अनुसार हरिव्यास जी वि० स० १५२५ तक विद्यमान थे। 'मिश्रबन्धु विनोद' ने इसके सम्बन्ध मे खूब गडबड़ी की है।[3] हिन्दी के कुछ साहित्यिको ने भी ओरछा वाले हरिराम शुक्ल 'व्यास' एव आलोच्य हरिव्यास जी को एक ही व्यक्ति मानकर भारी भूल की है।[४] ठोस प्रमाण के विना कुछ भी निश्चित रूप से कहा या माना नही जा सकता।

परशुराम रचित 'परशुराम सागर'—

सम्प्रदाय मे प्रचलित है कि जयपुर राज्य के अन्तर्गत १५ वी शताब्दी भाद्रपद कृष्ण ५ को परशुराम जी का जन्म हुआ था। १५ वर्ष की अवस्था मे ही इनपर वैराग्य का रग चढ चुका था अत हरिभक्ति से प्रेरित हो उस समय के

---

[१] महावाणी-निवेदन, महावाणी-प्रणेता-परिचय।

[२] महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज की नोट बुक से उद्धृत।

[3] प्रथम भाग, तृतीय सस्करण, स० १९८६ वि०, पृ० ३९१ (१९७।१)।

[४] व्रजमाधुरीसार-हरिराम व्यास, पृ० ११६।

सुप्रसिद्ध महात्मा हरिव्यास देवाचार्य के पास मंत्र से दीक्षित हुए।[१] श्री हरिव्यास देव जी के १२ प्रधान शिष्य हुए, जिनकी परम्परा विशेष रूप से चली। जिनमें से कई एक परम्पराएँ आज लुप्त-सी हो गई हैं। तथापि ८।९ परम्पराओं के मठमंदिर अभी विद्यमान हैं। इनमें श्री परशुराम देवाचार्य द्वारा संस्थापित व पुस्करक्षेत्रस्थ श्री निम्बार्काचार्य पीठ (परशुरामपुरी सलेमाबाद, कृष्णगढ़ स्टेट) सर्व पूज्य जगद्गुरु पीठ माना जाता है। जोधपुर स्टेट की तवारीख के अनुसार[२] वर्तमान आचार्य पीठ का विक्रम की १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पुनरुद्धार एवं निर्माण हुआ है। उस आचार्य पीठस्थ 'श्रीसर्वेश्वर जी' की अत्यन्त सूक्ष्म प्रतिमा सनकादियों की सेव्य प्रतिमा मानी जाती है अर्थात् अति प्राचीन है इस बात को कई एक पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार कर रहे हैं।[३] इस ग्रंथ में लेखन काल संवत् १६७७ विक्रमी अंकित है पर कई इसे स्वयं परशुराम जी का लिखा नहीं मानते।[४]

जो कुछ भी हो सौभाग्य से यदि उक्त तीनों काव्य-ग्रन्थों की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पुष्ट प्रमाण मिल जाएँ तो सूर-पूर्व ब्रजभाषा की विलुप्त प्रौढ़ परम्परा का सूत्र हाथ लग जाए जिससे प्राचीन ब्रज-साहित्य का काफी अंश जो गहन अंधकार में छिपा पड़ा है, वह प्रकाश में आ जाए। इन ग्रंथों तथा उनके पदों की विस्तृत आलोचना आगे ब्रज भाषा के निम्बार्क सम्प्रदायी कवियों के अध्याय में की जाएगी।

---

[१] उदय (मासिक पत्र), वर्ष ४ जनवरी, फरवरी, मार्च १९४२ (संख्या १ ३) 'परशुराम-सागर' ग्रंथ प्रणेता का जीवन चरित्र, पृ० १३।

[२] 'जैजहलारा भाटी सरदारन की तवारीख संवत १५१५ पन्द्रह सौ पन्द्रह की साल अजुनजीरा बेटा सावन्तसिंह जी कुंवर पदे था, सु जमुना जीर तट मायें सा० (स्वामी) परशुराम जी कण्ठी बांधी तहां गाव सलेमाबाद ताम्बा-पत्तर सासण करा दियो ने बादशाही नौ मुहरो कराय दियो। 'इसके अनुसार श्री परशुराम जी सं० १५१५ में विद्यमान थे।

[३] डा० हण्टर लिखित इंपीरियल-गजेटियर आफ इण्डिया भा० ८, पृ० २२३।

[४] उदय (मासिक पत्र) वर्ष ४ जनवरी, फरवरी, मार्च १९४२, संपा० 'वियोगी विश्वेश्वर (अपनी बात) पृ० ८।

(ख) चैतन्य से पूर्व का वंगीय वैष्णव काव्य-साहित्यः

बंगाल के वैष्णव-धर्म की चर्चा करते समय सर्व प्रथम श्री चैतन्य महाप्रभु का ही स्मरण हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि श्री चैतन्य के अद्भुत व्यक्तित्व और अपूर्व भगवदनुरागी चरित्र का प्रभाव, साथ ही उनके प्रकाण्ड विद्वान और प्रमुख दार्शनिक अनुयायियों की सतत चेष्टा का ही परिणाम था जिससे गौड़ीय-वैष्णव धर्म और उसके साहित्य का सर्वव्यापी स्थायी प्रचार तथा प्रसार हुआ। पर इसका मतलब यह नहीं कि वैष्णव धर्म का आरम्भ भी बंगाल में महाप्रभु के ही हाथों हुआ। चैतन्य देव के आविर्भाव के बहुत पहले ही से बंगाल में वैष्णवसाहित्य की रचना होती जा रही थी, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। निस्सन्देह श्री चैतन्य के विशेष दार्शनिक मतवाद के वारि-सिंचन द्वारा ही बंगाल में अंकुरित वैष्णव-धर्म पल्लवित और पुष्पित हुआ।

मालाधर वसु—

१५ वीं शताब्दी में माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी, अद्वैताचार्य तथा श्रीनिवास आदि कई भक्तों ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का अरुणोदय सूचित किया था, 'श्रीकृष्णविजय' के रचयिता कवि मालाधर वसु भी उनमें से एक हैं। इस काव्य की रचना १४७३-७४ सन् ईसवी में आरम्भ होकर १४८०-८१ सन् ईसवी में समाप्त होती है। बंगाल की श्रीकृष्णचरित विषयक रचनाओं में यह प्राचीनतम है। महाप्रभु ने इस गीतिकाव्य के रसास्वादन के पश्चात् ग्रंथ और ग्रन्थकार के सम्बन्ध में कहा है—

> गुणराजखान कैल श्रीकृष्णविजय।
> ताहा एक वाक्य तांर आछे प्रेममय।
> 'नन्दनन्दन कृष्ण-मोर प्राणनाथ।'
> एइ वाक्ये विकाइनु तांर वंशेर हात॥[1]

(गुणराज खान ने श्रीकृष्णविजय की रचना की। उसमें उनका एक प्रेममय वाक्य है "नन्दनन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ", इसी वाक्य के पीछे मैं उनके वंश के हाथ बिक गया।)

महाप्रभु के निम्नोद्धृत कथन में तो उनके अनुराग की पराकाष्ठा ही है।—

---

[1] चैतन्यचरितामृत, मध्य १५-९९-१००।

प्रभु कहे-कुलीनग्रामेर जे हय कुक्कुर। सेह मोर प्रिय अन्यजन बहु दूर॥
कुलीनग्रामेर भाग्य कहने ना जाय। शूकर चराय डोम सेहो कृष्ण गाय[1]॥
(प्रभु कहते हैं—कुलीन ग्राम का कुत्ता भी मुझे प्रिय है, और लोग बहुत दूर है। कुलीन ग्राम का भाग्य वर्णनातीत है, (जो) डोम सूअर चराता है वह भी कृष्ण (गुण) गाता है।)

श्रीकृष्ण विजय—

गीति-काव्य "श्रीकृष्णविजय" श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद है। किन्तु यह अक्षरशः अनुवाद नहीं, यथा स्थान कवि ने महाभारत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त्त या भविष्य पुराण से भी सहायता ली है। बहुत से स्थलों पर भगवान् के ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप के वर्णन का बाहुल्य है। लोक में श्रीकृष्णकथा का प्रसार ही ग्रन्थ रचना का ध्येय है[2]। रचना में काव्य-कला-कौशल नहीं, भक्त हृदय का तीव्र और सीधा हृदयोदगार है। लाक्-स्पष्ट अलंकार आदि का लदाव नहीं, सरलता ही इसका प्राण है—

अल्प धन-लोभ लोके एडाइते पारे।
कानु हेन धन सखि! छाडि दिव कारे[3]॥

(अल्पधन के लोभ अवज्ञा कर सकते हैं (पर) कानु ऐसे (अमूल्य) धन को सखी किसके पास छोड़ूं।)

वर्णनात्मक काव्य के कारण पयार छन्द की ही बहुलता है कहीं-कहीं दीर्घ त्रिपदी भी है। गीति-काव्य के कारण सर्वत्र राग रागिनियों का ही उल्लेख है काव्य अध्यायों के अनुसार विभक्त नहीं, राग रागिनी के विभाग से गीत विभक्त है।

---

[1] चैतन्यचरितामृत—१।१०।८०-८१।

[2] संसार-सागर लोक तरिते तारण।
भागवत अवतरि हितेर कारण॥
भागवत शुनि आमि पण्डितर मुखे।
लौकिके कहिये सार बुझ महासुखे॥
भागवत-अर्थ जत पयारे बांधिया।
लोक निस्तारिते जाइ पांचाली रचिया॥
—श्रीकृष्णविजय प्रथम गीत, १४-१६।

[3] श्रीकृष्णविजय—३९ वां गीत, ६४।

इस काव्य में कृष्ण के शौर्य-पक्ष के साथ ही प्रेम-पक्ष भी खूब निखरा है। 'भागवत' के कृष्ण गोपियो को प्रेम देकर अनुगृहीत करते है पर 'श्रीकृष्ण-विजय' के कृष्ण यदि प्रेम देकर कृतार्थ है तो प्रेम पाकर भी उतने ही प्रमुदित है।

वगाल के प्रथम वैष्णव काव्य 'श्रीकृष्णविजय' से ही प्रेम के माधुर्यपक्ष का नव विकास आरम्भ होता है। आगे चलकर वही प्रेम श्रीचैतन्य प्रवर्त्तित गौडीय वैष्णव-धर्म तथा साहित्य के बीच पूर्ण परिणति को प्राप्त करता है। 'प्रेम-माहात्म्य, आराध्य-आराधक का ऐकान्तिक चित्त सयोग 'श्रीकृष्णविजय' का अभिनव विषय है। प्रेमाभक्ति में 'श्रीकृष्णविजय' भागवत से कुछ आगे ही बढ़ गया है।

श्रीकृष्णकीर्त्तन—

वगभाषा के दूसरे प्रसिद्ध वैष्णव-काव्य चण्डीदास रचित 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानो में विशेष मतभेद है। चण्डीदास रचित 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' और चण्डीदास पदावली मे भाव तथा भाषागत पार्थक्य है। इन दोनो के रचयिताओ के एक होने में सन्देह उपस्थित किया जाता है। सदेह निवृत्ति के लिए अभी तक भिन्न चण्डीदास सम्बन्धी पर्याप्त पुष्ट प्रमाण नही मिल सके है। अतएव यहा केवल इतना ही कहना उचित होगा कि 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' काव्य के रचयिता चण्डीदास थे, पदकर्त्ता चण्डीदास ने राधाकृष्ण लीला-विषयक पदावली की रचना की। उपरोक्त दोनो चण्डीदास एक ही थे अथवा नही, चण्डीदास का निवास स्थान कहा था, उनकी जीवनी विषयक अन्यान्य चर्चा वितण्डावाद का विषय होने के कारण यहा स्थगित रखना ही उचित होगा। इतना अवश्य है कि चण्डीदास का 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' और चण्डीदास की पदावली दोनो ही विद्वानो द्वारा प्राक् चैतन्य कालीन वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत मान्य है, वस इतना ही तथ्य हमारे वैष्णव-काव्य-सम्बन्धी प्रसग के लिए आवश्यक है।

श्रीकृष्णकीर्त्तन में वर्णित लीलाएं—

'श्रीकृष्णकीर्त्तन' 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर रचित गीति-नाट्य श्रेणी का गीति-काव्य है। श्रीकृष्ण की किशोर कालीन भिन्न लीलाए ही इस काव्य के वर्ण्य विषय है, यथा—जन्मखण्ड, ताम्बूलखण्ड, दानखण्ड, नौकाखण्ड, भारखण्ड, छत्रखण्ड, वृन्दावनखण्ड, कालियदमनखड, यमुनाखड, हारखड, वाणखण्ड, वशीखण्ड, राधाविरह खण्ड। इन लीलाओ में दान-लीला का प्रसग वहुत विस्तार

से उल्लेखित हुआ, दानखण्ड की पदसंख्या सम्पूर्ण काव्य की पदसंख्या की एक चौथाई से भी अधिक है। श्रीकृष्णकीर्तन में जिस रूप में राधाकृष्ण की लीलाएं वर्णित हुई हैं वह अन्य किसी भी पुराण में नहीं मिलती, हाँ, बंगाल में इस प्रकार की बहुत सी कहानियां उस समय अवश्य प्रचलित थी। ग्रंथ रचयिता ने श्रीमद्भागवत के कालियदमन वस्त्रहरण और रासादि की परम्परा का पालन नहीं किया है। श्रीकृष्ण के 'स्वयं दौत्य' वर्णन में चण्डीदास की कल्पनाशक्ति का विलक्षण परिचय मिलता है। राधा से मिलने के लिए कृष्ण को न जाने कितने ही विचित्र स्वांग रचने पड़ते है, जैसे—वैद्य, सपेरा, जादूगर, चमारी, योगिन, नाइन, मालिन आदि।

श्रीकृष्णकीर्त्तन के पद—

काव्य में आरम्भ से अन्त तक पदों की समष्टि है, बीच-बीच में संस्कृत श्लोक के द्वारा कथा का क्रम जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ—

भाटिआली राग-एकताली

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा राधिकाधिमती सती।

येषमानतनुस्तन्वी जगाद जरतीमिदं।

घतवधि बुधे बडायि पसार साजिला गो विके जाइतेँ मथुरा नगरी।

आचले धरिआँ मोक काह्नार्थि रहाए गो बोले तोएँ कौन्ती कली चुरी॥[1]

अधिकांश पद श्रीकृष्ण, राधा और बडाई (दूती, राधा की फूफेरी सास) के उक्ति प्रत्युक्ति के रूप में है।

कथा के बीच-बीच में काव्य रचयिता स्मरण दिलाता चलता है कि नन्द नंदन कृष्ण ही परब्रह्म हैं। तभी तो दूती बडाई या परकीया राधा को कृष्ण में आत्म-समर्पण की शिक्षा लांछनीय नहीं वांछनीय ही है। बडाई राधा को बार-बार यही समझाती है —

जे देव स्मरणे पाप विमोचने देखिल हय मुकती

से देव सने नेहा बाढ़ाइलें हए विष्णुपुरे स्थिती।[2]

(जिस देव के स्मरण से पाप नष्ट होते हैं और दर्शन से मुक्ति मिलती है। उस देव से स्नेह बढ़ाने पर विष्णुलोक में स्थान मिलता है।)

उस सर्व शक्तिमान के लिए राधा को मोहना तो क्या बड़ी बात है, अपनी इच्छानुकूल समस्त जगत् को सम्मोहित कर सकते है —

[1] श्रीकृष्णकीर्तन-नौका खंड १, पृ० १२४।

[2] वही, ताम्बूलखंड, ७, पृ० ८।

बजा रहा है। उसके चरणों में मैंने कौन-सा अपराध किया जिससे नेत्र झड़ी लगा कर बरस रहे हैं। वंशी के स्वर से मैंने अपने प्राण खो दिए। अथवा क्या मेरे मन को आकुल करने के लिए ही नन्द-नन्दन सुस्वर वंशी बजा रहा है। पक्षी नहीं हूं कि उड़कर उसके पास जा पहुंचूं। धरती को विदीर्ण कर दो तो मैं उसमें प्रविष्ट होकर छिप बैठूं। जब वन दावाग्नि में जलता है तो सारा जगत जान जाता है लेकिन मेरा मन कुम्हार के आवा की तरह भीतर ही भीतर जलता है मेरा अन्तर कृष्ण की अभिलाषा से सूखा जा रहा है। नत मस्तक हो वासन्ती देवी (चण्डीदास की उपास्या) की वन्दना कर चण्डीदास ने गाया।)

कृष्ण स्मरण से राधा अत्यन्त व्याकुल हो रही है—

रामगिरीराग ॥ आठताला ॥
प्राण व्याकुल भेल वाशीर नादे।
एबें आसिआ काहूनांय दरशन नां दे ॥
आम्हा उपेखिआ गेला नान्देर नन्दन।
ताहात मजिल चित ना जाए धरण ॥ध्रु॥
बड़ार बौहारी आम्हे बड़ार झी।
काह्नु विणि मोर रूप जौवने की ॥
मन्द पवन वहे कालिनी नइतीरे।
काहूनांय साअरी मोर चित नहे थीरे ॥[1]

(वंशी के स्वर से मन आकुल हो रहा है। अब तक कृष्ण ने आकर दर्शन नहीं दिया। नन्दनन्दन मेरी उपेक्षा करके चला गया। उसमें मेरा डूबा हुआ चित्त धारण करना (सम्हालना) कठिन हो रहा है। मैं बड़े आदमी की स्त्री और बड़े आदमी की ही बेटी हूं पर कान्ह के बिना मेरा रूप-यौवन सभी व्यर्थ हैं। कालिन्दी नदी के किनारे मन्द पवन बह रहा है कन्हाई का स्मरण कर मेरा मन स्थिर नहीं है।)

यह व्याकुलता वंशी बजाने वाले श्रीकृष्ण के लिये है जो परब्रह्म है—

उतरली हृयिली राही वाशीर नादे।
विरहे विकली हआ गोआलिनी कान्दे ॥१॥
श्रीनन्दनन्दन गोविन्द हे।
अनाथी नारीक सग ने। ध्रु॥[2]

---

[1] श्रीकृष्णकीर्तन—वंशीखंड पृ० १२०।

[2] श्री कृष्णकीर्तन-वंशीखंड, पृ० १२२।

(राइ (राधा) वंशी ध्वनि से तू उतावली हो उठी है। विरह में आकुल होकर ग्वालिनी से रो रही है। श्री नन्दनन्दन! हे गोविन्द! अनाथ नारी को अपने साथ ले।)

कृष्ण-दर्शन से वंचित हो वियोगिनी राधा कभी जोगिन बनकर देश-देशान्तर में निकल पड़ने को सोचती है तो कभी विषपान से प्राण ही त्यागने का संकल्प कर लेती है —

धानुषीराग ॥एकताली॥

ए धन जौवन बड़ायि सबई आसार।
छिन्डिआ पेलाइबो गजमुकुतार हार॥
मुछिआं पेलयिबो मोये सिसेर सिन्दूर।
बाहुर वलया मो करियों शंखचूर॥१॥
मुन्डिआ पेलाइबो केश जाइबो सागर।
जोगिनीरूप धरी लइबो देशान्तर॥
जवें काछून ना मिलिहे करमेर फले।
हाथे तुलिआ मो खाइबो गरले॥२॥
माथे शंभु सम खोपा शिसते सिन्दूर।
एहा देखि केहूने काहून गेलान्त विदूर॥[1]...

(हे बड़ायि! ये धन-यौवन सभी असार हैं। मैं गजमुक्ता की माला तोड़ फेकूँगी। माँग का सिन्दूर पोंछ डालूँगी। हाथ के कंकण को मैं शंखचूर्ण के समान करूँगी। केश मुड़ाकर सागर के किनारे जाऊँगी। योगिनी का वेश बनाकर देशान्तर को निकल पड़ूँगी। यदि कृष्ण कर्म फल के कारण न मिलें तो अपने ही हाथों विषपान करूँगी। सिर पर शंभु के समान जूड़ा, माँग में सिन्दूर देख कर भी कान्ह क्यों दूर चले गए।)

किसी प्रकार बड़ायि की चेष्टा से कृष्ण से राधा का साक्षात्कार होता है। अब राधा ने कृष्ण के स्वरूप को पहचान लिया अतः अत्यन्त दीनता से पिछले अपराधों के लिए जगन्नाथ से क्षमा माँगती है और सान्निध्य के लिए प्रार्थना करती है—

विभासराग ॥ एकताली

विरहे विकल गोसायि तोम्हे वनमाली।
जवें आछिलाहों आम्हे आतिशय बाली॥१॥

---

[1] श्रीकृष्णकीर्त्तन-राधाविरह, पृ० १३२।

पान फुल ना लइला माइलो तोर दूती ।
सेहो दोष खण्ड मोर मदनमुरती ॥२॥
बारें बारें तोक जत बुयिलों आहंकारे ।
सेहो दोष खण्ड मोर देव गदाधरे ॥४॥
आर दुख दिलो तोक वहाविलों भार ।
सेहो दोष जगन्नाथ खण्डह आम्हार ॥६॥
नाशुणिलों तोर बोल लआ जाइतें पाणी ।
सेहो दोष खण्ड मोर देव चक्रपाणी ॥७॥
अनाथी नारीक कत थाके अभिमान ।
आलिंगन दिआ कान्ह राखह पराण ॥८॥
नाहि उपेखिह मोरे नान्दर नन्दन ॥[1]

(हे गोसाइं वनमाली ! तुम्हारे विरह में अत्यन्त व्याकुल हूँ। जब तुम (मेरे पास) आए मैं निरी बालिका थी। पान फूल न लेकर तुम्हारी दूती को मार भगाया था। हे मदन मूर्त्ति मेरे उस दोष को खण्डित करो (भूल जाओ)। बारबार अहंकार के कारण तुम्हारा जो प्रत्याख्यान किया था, हे देव गदाधर ! मेरे उस अपराध का भी मार्जन करो। (मैंने) तुम्हें और भी दुःख दिए भार वहन कराया। हे जगन्नाथ ! मेरे उस दोष का भी परिहार करो। जल भरने जाते समय तुम्हारी बात नहीं मानी, हे देव चक्रपाणि !, मेरे उस दोष का भी निराकरण करो। अनाथ नारी का कितना अभिमान रह सकता है। आलिंगन देकर (हे) कान्ह ! इन प्राणों को रखो। नन्दनन्दन मेरी उपेक्षा न करो।)

कृष्ण ने उत्तर में कहा—'मैं हरि, नारायण, मुकुन्द, मुरारि, युग-युग में विभिन्न अवतार ग्रहण करके लीलाएं करता आया हूँ, मैं परदारा-ग्रहण जैसा महापाप कैसे कर सकता हूँ ? तुम घर लौट जाओ।' सब कामनाओं के साध्य शिरोमणि परब्रह्म को एक बार पाकर पुनः खोने की मूर्खता कौन कर सकता है तभी तो राधा कहती है—

श्रीराग

नाना तपफले तोम्हा मोरे दिल विधी ।
आरे घर जाइते मोके बोल गुणनिधी ॥

---

[1] श्रीकृष्णकीर्त्तन—राधाविरह पृ० १४० ।

तोम्हे जबे जोगी हैला सकल तेजियाँ ।
थाकिब जोगिनी हयाँ तोहाक सेविया ॥१॥
ना जाइबो पर आर तोम्हाक छाड़िया ।
बड़ दुःख पाइलों तोर विरहे पुड़िया ।...
हेन मने परिभाव जगत-ईशर
आम्हाक पराणे माइले कि लाभ तोम्हार ॥ध्रु॥ ..
आनुगती भकती आनाथि आम्हि नारी ।
तभों केह्ले आम्हा परिहर मुरारि ॥[1]

(मुझे बहुत तपफल से विधि ने तुम्हें दिया। हे गुणनिधि ! मुझे घर जाने को क्यो कहते हो । तुम जब सब त्याग कर (मेरे लिए) योगी हो गए मैं तुम्हारी सेवा करते हुए योगिनी बन कर ही रहूगी । अब तुम्हें छोड़कर घर नहीं जाऊगी । तुम्हारे विरह में जलते हुए बहुत दु ख पाया । हे जगदीश्वर ! भला सोचो तो जरा, मुझे प्राणो से मार कर तुम्हारा क्या लाभ ? मैं तुम्हारी अनुगता, भक्तिन, अनाथनारी हू, हे मुरारि ! फिर मुझे क्यो छोड़ते हो ।)

सच्चे वैष्णव भक्त के लिए राधा प्रेम ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य और आदर्श है । "श्रीकृष्ण कीर्तन" के रचयिता ने अपनी परम आराध्या राधा के चरित्र के विकास और परिणति मे जिस चातुर्य और कौशल का परिचय दिया है वह अवश्य ही स्तुत्य है । बडाई केवल तटस्थ दूती मात्र नही, वह हृदय से राधा की मगलाकाक्षिणी है, उसने अपने मर्म की बात प्रकट कर दी—"आसि जाइ करि मोर आकुल पराण" । बडाई ने परब्रह्म कृष्ण के स्वरूप को राधा से पहले ही पहचान लिया था तभी तो कृष्ण से राधा के मिलन के लिए वह इतनी आतुर थी । भगवान को रसमय, प्रेममय, आनन्दमय रूप में जानना ही जीव के अनुभव की चरम सीमा है । श्रुति का "आनन्द ब्रह्म", "मधु ब्रह्म", "अमृत ब्रह्म", "रसो वै स" आदि महावाक्य उसी स्वरूप के परिचायक है । उस परम पुरुष के प्रेमानन्द रसामृत लाभ के लिए "श्रीकृष्ण कीर्तन" काव्य अत्यन्त उपादेय है ।

चण्डीदास और गीतगोविन्द की राधा

प्राक् चैतन्य-युग के प्रेमभक्ति-शास्त्र के रससिद्ध वैष्णव कवि, महादार्शनिक चण्डीदास ने राधाकृष्ण लीला विषयक सुमधुर पदावली की रचना की। पदावली रचना में चण्डीदास को गीतगोविन्द से यथेष्ट प्रेरणा मिली इसमें तो

[1] श्रीकृष्णकीर्त्तन—राधाविरह, पृ० १४३ ।

कोई सन्देह नहीं। परन्तु चण्डीदास की राधा का प्रेम "गीतगोविन्द" की राधा के प्रेम से कहीं अधिक गम्भीर और उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ है। "गीतगोविन्द" की राधा का प्रेम वायु-सचालित वीचिक्षुब्ध-समुद्र की ऊपरी तरंग के समान है जो सम्भोगेच्छा के ज्वार में इतना प्रबल होकर प्रकट हुआ पर चण्डीदास की राधा का प्रेम समुद्र की सतह के समान मन्दा प्रशान्त और पूर्ण है।

चण्डीदास के कुछ पद

चण्डीदास की राधा अभी पूर्वराग की ही स्थिति में है, केवल "श्याम-नाम" श्रवण से ही उनकी दशा विचित्र हो रही है

कामोद

सइ केबा सुनाइल श्याम नाम।
  काणेर भितर दिया, मरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण।
  ना जानि कतेक मधु श्याम नामे आछे गो,
वदन छाडिते नाहि पारे।
  जपिते जपिते नाम अवश करिल गो,
कमने पाइब सइ तारे॥
  नाम परतापे जार ऐछन करिल गो,
अंगेर परशे किबा हय।
  जेखाने बसति तार नयने देखिया गो,
जुवती धरम कछे रय॥
  पासरिते करि मने पासरा न जाए गो,
कि करिब कि हबे उपाय।
  कहे द्विज चण्डीदासे कुलवती कुल नाशे,
आपनार जौवन जाँचाय॥[1]

(सखि! किसने "श्याम" नाम सुनाया? कानों में से होकर वह मर्म में प्रवेश कर गया और मेरे प्राणों को आकुल कर दिया। नहीं जानती कि "श्याम" नाम में कितना मधु है जिसे मुख छोड नहीं पाता। नाम जपते जपते उसने अंग का परवश कर दिया, उसे कैसे पाया जाए? जिसके नाम

[1] चण्डीदास पदावली—नायिका का पूर्वराग, १।

के प्रताप ने ऐसा किया (उसके) अंग के स्पर्श से (मालूम नहीं) क्या होगा ? जहाँ उसका वास है, (उसे) नयनों से देख कर युवती धर्म कैसे रह सकता है। (उसे) भूलने को सोचती हूँ, भूला नहीं जाता, क्या करूँ, क्या उपाय है। द्विज चण्डीदास कहते हैं कुलवती (स्त्री) कुल नष्ट करके अपने यौवन को जाचती है।)

यह स्थिति प्रेम की उच्च भाव दशा की परिचायक है। इस प्रेम की लोकोत्तरता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। चण्डीदास की राधा के प्रेम में हृदय-पक्ष की प्रधानता के कारण यह अत्यधिक गाढ़-गम्भीर, तन्मय और मर्म-स्पर्शिनी है। इन गुणों में अन्य कोई वैष्णव कवि चण्डीदास की बराबरी न कर सका।

राधा जिस ओर दृष्टि फेरती है, प्रेमाधिक्य के कारण सब कुछ श्याममय ही दिखता है, वे अपनी मर्म-व्यथा को कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त कर रही हैं.—

धानशी—

काहारे कहिब मनेर मरम केबा जाबे परतीत।
हियार माझारे मरम वेदना सदाई चमके-चीत॥
गुरुजन आगे दाडाइते नारि सदा छल छल आँखि।
पुलके आकुल दिक नेहारिते सब श्याममय देखि॥
सखीर सहिते जलेरे जाइते से कथा कहिबार नय।
जमुनार जल करे झलमल ताहे कि पराण रय॥
कुलेर धरम राखिते नारिनु कहिलाम सबार आगे।
कहे चण्डीदासे श्याम सुनागर सदाई हियाय जागे॥[1]

(मन के मर्म को किससे कहूँ, कौन विश्वास करेगा। (मेरे) हृदय में मर्म-वेदना है (जिससे) चित्त सदा ही चौंकता रहता है। गुरुजनों के आगे खड़ी नहीं हो पाती (क्योंकि) आँखें सर्वदा छलछलायी रहती हैं। पुलक से आकुल जिधर देखती हूँ सब श्याममय ही दिखता है। सखी के साथ जल भरने को जाते हुए की बात कहने की नहीं, यमुना का जल झलमलाता है उससे क्या प्राण (स्थिर) रह सकते हैं। (मैं) कुल-धर्म न रख सकी (इससे) तुम्हारे सामने कहा। चण्डीदास कहते हैं कि श्याम सुनागर सदा ही हृदय में विराजित हैं।)

कृष्ण ध्यान-रता राधिका की भावमग्न दशा का अपूर्व चित्रण है —

---

[1] चण्डीदास पदावली—अनुराग (अपने प्रति), १३६।

सिन्धुड़ा—

राधार कि हलो अन्तरे व्यथा।
बसिया बिरले थाकये एकले,
ना शुने काहार कथा।
सदाई धेयाने चाहे मेघ पाने,
ना चले नयनेर तारा।
विरति आहारे राङ्गा बास परे,
जेमत जोगिनि पारा॥
एलाइया वेणी फुलेर गाथनी,
देखये खसाये चुलि।
हसित बयाने चाहे मेघपाने,
कि कहे दुहात तुलि॥
एक दिठ करि मयूर मयूरी,
कण्ठ करे निरीखणे।
चण्डीदास कय, नव परिचय
कालिया बंधुर सने॥[१]

(राधा के अन्तर में कौन-सी व्यथा हुई? वह एकान्त में अकेली बैठी रहती है किसी की बात नहीं सुनती। सदा ध्यान मग्न रहती है, मेघ की ओर देखती रहती है, नयनों के तारे नहीं चलते (पुतली स्थिर रहती है)। आहार में विरक्ति है, लाल (गेरुआ) वस्त्र पहनती है योगिनी के जैसी बनी हुई है। वेणी को शिथिल कर, फूलों की गाथनि (ग्रंथि) को खोल कर केशों को देखती है। स्मित मुख से मेघ की ओर ताकती है और दोनों हाथों को ऊपर उठा कर न जाने क्या कहती है। एकटक मोर मोरनी के कण्ठ (नीले रंग) का निरीक्षण करती रहती है। चण्डीदास कहते हैं कि काले बंधु (प्रियतम कृष्ण) के साथ नया परिचय हुआ है।) और—(सखी की उक्ति)

धानशी—

घरर बाहिरे दण्डे शत बार तिले तिले एसे जाय।
मन उचाटन निश्वास सघन कदम्ब काननें चाय॥
राई एमन केनेबा हलो।
गुरु दुरजन भय नाहि मन कोथा बा कि देव पाइल॥

---

[१] चण्डीदास पदावली—नायिका का पूर्वराग १।

सदाइ चंचल वसन अंचल सम्वरण नाहि करे।
वसि थाकि थाकि उठये चमकि भूषण खसाये परे॥
वयसे किशोरी राजार कुमारी ताहे कुलवधू बाला।
कि वा अभिलाषे बाडाय लालसे ना बुझि ताहार छला॥
ताहार चरिते हेन बुझि चिते हात बाड़ाइले चांदे।
चण्डीदास भणे करि अनुमाने ठेकेछे कालिया फांदे॥[1]

(घर के बाहर, दण्ड भर में सौ-सौ बार, तिल-तिल आती-जाती रहती है। मन उचटा रहता है, दीर्घ श्वास भरती रहती है, कदम्ब-कानन की ओर देखती रहती है। राइ! ऐसा (न जाने) क्यो हुआ? गुरुजन-दुर्जन किसी का भी भय (उसके) मन में नही है, (पता नहीं) कहा, क्या देव लगा। सर्वदा चंचल (रहती) है, वस्त्र-चचल सम्हालती नही। बैठे-बैठे (अचानक) चौंक उठती है, गहने (शरीर से) खिसक कर गिर पडते है। किशोरी वय की राजा की बेटी, ऊपर से कुलवधू स्त्री है। (न जाने) किस अभिलाषा से लालसा बढाई, तुम्हारे इस रहस्य को (मैं) समझती नहीं। तुम्हारे चरित्र (भाव भगी) को देखकर ऐसा मन में सोचती हू कि तुमने चाद के लिए हाथ बढाया है। चण्डीदास कहते है, अनुमान होता है कि काले (कृष्ण) के फन्दे में पड गई है।)

राधा बेचारी भी करे तो क्या करें, मन तो मन उनकी समस्त इन्द्रिया ही कृष्णमय हो गई है, लाख प्रयत्न करने पर भी वे इन्द्रियों को कृष्ण-विमुख नही कर पा रही है :—

गान्धार

जत निवारिये ताय निवार ना जाय रे।
आन पथे जाइ से कानु पथे धाय रे॥
ए छार रसना मोर हइल कि वाम रे।
जार नाम नाहि लइ लयतार नाम रे॥
ए छार नासिका मुइ कत करु बन्ध।
तबु त दारुण नासा पाय तार गन्ध॥
से ना कथा ना शुनिब करि अनुमान।
परसंगे शुनिते आपनि जाय काण॥
धिक रहुं ए छार इन्द्रिय मोर सब।
सदा से कालिया कानु हम अनुभव॥[2] .....

[1] चण्डीदास पदावली-नायिका का पूर्वराग, ८।
[2] चण्डीदास पदावली—अनुराग-आत्मप्रति, १४२।

(जितना भी उसे रोकती हू वह रोका नही जाता। दूसरे मार्ग पर चलते हुए वे (चरण) कानु पथ पर ही दौड पडते ह। मेरी यह अभागी जीभ (मेरे लिए) कसी विपरीत हो गई, जिसका नाम (म) नही लेती यह (जीभ) उसी का नाम लेती है। इस अभागी नाक को मैं कितना ही बन्द करती हू फिर भी (यह) नाक श्याम का तीव्र गध पाती ही ह। जिस बात को न सुनने का निश्चय किया है, (उसका) प्रसग सुनते पर कान अपने आप उधर चले जाते हैं। (इन्हें) धिक्कार ह मेरी सभी इद्रिया अभागी हैं, इन्हें सदा काले कानु का ही अनुभव होता रहता ह।)

और भी तो लोग थे, कृष्ण के प्रेम उनकी बासुरी की तान में वे सभी सुध बुध क्यो नहीं बिसरा बठे ? इसका उत्तर राधा स्वय ही दे देती है —

'सबार बाशी काने बाजे,
बाशी बाजे आमार हियार माझे।"

(सबके लिए तो कानो में वशी बजती है (पर) मेरे लिए (तो) मेरे हृदय मे वशी बजती ह।)

सबकी अनुभूति से उनकी अनुभूति ही भिन्न ह इसी कारण उसका परिणाम भी निराला ही है।

स्वजन परिजन, अडोसी-पड़ोसी राधा के पर-पुरुष के प्रति प्रेमासक्ति के कारण उसकी घोर निन्दा कर रहे ह। पर कृष्ण प्रेम-दीवानी राधा को अपवाद के लिए रत्त मात्र ग्लानि अथवा क्लेश नही क्योकि —

सुहइ

बधु तुमि से आमार प्राण।
देह मन आदि तोहारे सपेछि कुल शील जाति मान ॥
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया जोगीर आराध्य धन।
गोप गोयालिनी हाम अति हीना ना जानि भजन पूजन ॥
पिरीति रसते, ढालि तनु मन दियाछि तोमार पाय।
तुमि मोर पति तुमि मोर गति मन नाहि आन भाय।
कलकी बलिया डाके सब लोके- ताहाते नाहिक दुख।
तोमार लागिया कलकेर हार गलाय परिते सुख ॥
सती वा असती तोमाते विदित भाल मन्द नाहि जानि।
कहे चण्डीदास पाप पुण्य सम तोहारि चरण खानि ॥[1]

[1] चण्डीदास पदावली—भाव सम्मिलन, १८५।

(बंधु (प्रियतम)! तुम्ही मेरे प्राण हो। देह-मन-कुल-शील-जाति-मान आदि सभी तुम्हे सौंपा है। हे काले! तुम अखिल के नाथ, योगी के आराध्य धन हो। हम गोप-गोयालिनी अत्यन्त दीन है, भजन-पूजन नही जानते। पीरित (प्रीति) रस में तन-मन ढाल कर तुम्हारे पैरो में सौंपा है। तुम मेरे पति, तुम मेरे गति हो, मन को और दूसरा नही भाता। सब लोग "कलंकी" कहते है, (मुझे) इसका दुःख नहीं। तुम्हारे लिए गले में कलक का हार पहनने मे (भी) सुख है। मै सती हूं अथवा असती यह तुम जानते हो, अच्छा-बुरा नही जानती। चण्डीदास कहते है, तुम्हारे चरणो में पाप-पुण्य सभी बराबर (माना) है।)

और—

तोमारइ गरवे गरविनी हाम, रूपसी तोमार रूपे।

(तुम्हारे गर्व से ही मै गर्विता, तुम्हारे रूप से ही रूपसी हू।)

फिर भला उन्हें दीन-दुनिया की क्या परवाह होती। चण्डीदास की राधा भगवत् प्रेम की प्रतीक है। साधक जब साधना की उच्च स्थिति में पहुंच जाता है तब इन्द्रियो की चहल-पहल, ठेला-रेला सब शान्त हो जाता है। साधक अन्तर में ही अपने आराध्य को ऐकान्तिक रूप से पा लेता है, इप्सित में ही उसकी समस्त कामनाए अन्तर्हित हो जाती है। राधा इसी भाव-दशा का वर्णन कर रही है :—

मरम ना जाने धरम बाखाने, एधन आछये जारा।
काज नाहि सखि, तादेर कथाय, बाहिरे रहुन तारा॥
आमार बाहिर दुआरे कपाट लेगेछे,
भितर दुआर खोला।

(मर्म न जानकर जो धर्म बखानते है, सखि! ऐसे लोगो की बात से काम नही, वे बाहर ही रहें। मेरे तो बाहर के द्वार के पट बन्द है, भीतर का द्वार खुला है।)

इस अपूर्व प्रेम का चण्डीदास ने 'पीरित' नामकरण किया। 'पिरित' की गूढता को एकमात्र सच्चा साधक ही हृदयंगम कर सकता है। चण्डीदास का कहना है इस 'पिरित के लिए जिसने अपार, दुःख, कष्ट न सहा बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेकर भी वह समस्त सुखो से वंचित रहा—

सइ पिरीति ना जाने जारा।
ए तिन भुवने जनमे जनमे
कि सुख जानये तारा

(सखि ! जो पीरिति नही जानते। इन तीनो भुवनो में जन्म ले ले कर भी उन्होंने क्या सुख जाना।)

इतना अपार कष्ट सहने के बाद, सवस्व समपण के पश्चात भी राधा क्या देखती है—उनका प्राणप्रिय उन्ही के सामने से, उन्ही के आगन को पार करता हुआ किसी अन्य रमणी के पास प्रणय-केलि के लिए जा रहा है। कस अधीर प्राणो को सम्हालें—

सइ केमने धरिब हिया।

आमार बधुया आन बाडी जाय आमार आंगिणा दिया॥[1]

(सखि ! कसे प्राणो को रखू। मेरा बधुआ (प्रियतम) मेरे ही आगन से होकर दूसरे के घर जाता है।)

फिर भी प्रिय निर्दोष है, ऐसा सोचना स्वाभाविक ही ह। राधा सोचती है उनका प्रिय तो ऐसा नही था। 'निश्चय ही किसी स्त्री ने उस पर जादू-टोना किया है जिससे मेरा सरल स्वभाव प्रिय ऐसा वदल गया' —

ए हेन बधुरे मोर जे जन भागाए।

हाम नारी अबलार बध लागे ताए॥

(मेरे ऐसे बधु का मन जो (मेरी ओर से) खट्टा करे, हम नारी अबला वध (का पाप) उसे लगेगा।)

इतने बडे अक्षम्य अपराध के लिए इतना ही दण्ड तो काफी नही। दुख और क्रोध से सन्तप्त राधा अभिशाप देती हैं "जिसने इस प्रचण्ड यातना कि अग्नि में मुझे तिल तिल कर जलाया है भगवान् उसे भी यही गति दे"—

आमार पराण जेमति करिछे सेमति हउक से।

(मेरे प्राणो को (उसने) जैसा किया ह वैसा ही वह भी हो।)

इस असह्य पीडा से मुक्ति पाने के लिए राधा कामना करती हैं —

विधि जदि शुनित मरण हइत घुचित सकल दुख।

(विधि यदि सुनता (और) मरण होता (तो) सब दुखो से पीछा छटता।)

मर कर इस अपार दुख से मुक्ति तो अवश्य मिलेगी किन्तु प्रिय को भी तो एक बार इस दुख की अनुभूति होनी चाहिए जिससे वह समझ सके किस अपार-असह्य वदना के कारण राधा ने प्राण त्यागे—

---

[1] कुछ पदावली सग्रहो में यह पद ज्ञानदास की छाप से मिलता ह।

वंधु कि आर वलिव तोरे।
आपना खाइया पिरीति करिनु
रहिले नारिनु घरे॥
कामना करिया सागरे मरिव
साधिव मनेर साधा।
मरिया हइव श्रीनन्देर नन्दन,
तोमारे करिव राधा॥
पीरित करिया छाड़िया जाइव,
रहिव कदम्व-तले।
त्रिभंग हइया मुरली पूरिव
जखन जाइवे जले॥
मुरली शुनिया मुरछा हइवे
सहजे कुलेर वाला।
चण्डीदास कय तवेसे जानिवे
पीरिति केमन ज्वाला॥[1]

(वंधु (प्रियतम) तुम्हें और क्या कहूँ। अपने को खाकर (नष्ट करके मैंने) प्रीत की, घर में न रह सकी। कामना करके सागर में मरूँगी (और) मन की साध पूरी करूँगी। मरकर श्रीनन्दनन्दन होऊँगी और तुम्हें राधा वनाऊँगी। (पहले) पीरित करके (फिर) छोड़ आऊँगी। कदम्व के नीचे रहूँगी। त्रिभग होकर वाँसुरी वजाऊँगी। जव (तुम) पानी भरने जाओगे (तुम) सहज कुल-वाला मुरली सुनकर मूर्छित होओगे, चण्डीदास कहते हैं तव जानोगे पीरित कैसी जलन है।)

राधा की यह करुण स्थिति चण्डीदास की दृष्टि में सच्चे प्रेम की परीक्षा का क्षण, परख की कसौटी है अतएव यह आनन्दमय है —

चण्डीदास कय एमति नहिले पिरितेर किवा सुख।
(चण्डीदास कहते हैं, ऐसा न होने से पीरित का क्या सुख।)

"पीरिति" कठोर साधना का धन है। इतने अल्प मे विचलित होने से परम सिद्धि की कैसे प्राप्ति होगी। दुख के पत्थर पर घिसने से ही पीरिति-

[1] चण्डीदास पदावली (वगीय साहित्य परिषद् से प्रकाशित), ३७। कुछ पदावली-संग्रहो में ज्ञानदास की छाप से मिलता है।

चन्दन की सुगंधि चारो ओर प्रसारित होगी। केवल असह्य दुख सहते हुए ही यदि 'पीरित' प्राप्त हो जाती तब भी गनीमत थी पर यहाँ तो —

पिरिति लागिया पराण छाडिले पीरिति मिलये तथा।

(पीरित के लिए प्राण छोडने पर पीरित की प्राप्ति होती ह।)

ऐहिक जीवन में प्राणा से बढकर और कुछ नही, उन्हीं प्राणा के पूर्ण समपण से ही पीरित धन की प्राप्ति हो सकती है। पिरिति" के लिए सब सुख-लालसा, इंद्रिय चरितार्थता और स्वाथ का परित्याग और सर्वोपरि आत्मा-बलिदान की आवश्यकता है पिरिति इन तीन अक्षरो में ही चण्डीदास का सवस्व समाया हुआ ह, यही उनके जीवन का चरम सार ह —

पीरिति बलिया ए तिन आखर ए तिन भुवन सार।[1]

(पीरित तीन अक्षरो का (शब्द) ह यही तीनो भुवना का सार है।) इस जग से निराली पिरित' का स्वरूप भी विचित्र ही ह—'नितुइ नूतन' तिले तिले नूतन होय' की दशा के साथ ही 'तिले तिले बाढि जाए इस बढने की भी कोइ सीमा नही —

ठाँयि नाहि पाय तथापि बाडय परिमाणे नाहि आर।

(स्थान नही मिलता फिर भी बढता ह (इसके) परिणाम का आरपार नही।)

इस 'पिरिति, का न आदि है और न अन्त, यह अपरिमेय ह। इस 'पिरिति' के लिए कवि का उचित उपमा ही नही मिलती यह लोकोत्तर प्रेम लौकिक वस्तुआ की सीमा में कैसे समा सकता ह, यह अनन्योपमा है अपना उपमान स्वय है।

एमन पिरीति कभु देखि नाइ शुनि।
पराणे पराण बाधा आपनि आपनि॥

दुहु कोरे दुहु कादे विच्छेद भाविया।
आध तिल ना देखिले जाय ये मरिया॥

जल बिनु मीन जनु कबहु ना जीये।
मानुष एमन प्रेम कोथा ना शुनिये॥

भानु कमल बलि, सेहि हेन नहे।
हिमे कमल मरे, भानु सुखे रहे॥

---

[1] तुलनीय-कबीर की पंक्ति—'ढाई अक्षर प्रेम का पढे सु पण्डित होय।'

चातक जलद कहि, से नहे तुलना।
समय नहिले से ना देय एक कणा॥
कुसुमे मधुप कहि, सेह नहे तुल।
ना आइले भ्रमर आपनि ना जाय फुल॥
कि छार चकोर चांद, दुहुं सम नहे।
त्रिभुवने हेन नाहि चण्डीदास कहे॥[1]

(ऐसी पीरित न कभी देखी न सुनी। प्राणों से प्राण अपने आप ही बंधे हुए हैं। दोनों परस्पर की गोद में रहकर भी 'वियुक्त हैं' ऐसा सोचकर रोते हैं। तिल (क्षण) भर के लिये न देखने पर मरे जाते हैं। जल के बिना मछली जैसे कभी भी नही जीती है। मनुष्य ने ऐसे प्रेम के विषय में कहीं नहीं सुना (होगा)। भानु-कमल कहें तो वह भी ऐसे नहीं। पाले से कमल मरता है (पर) भानु सुख से रहता है। चातक-बादल कहें तो उसकी तुलना भी (ठीक) नहीं। समय न होने पर वह (जल का) एक कण भी नहीं देता। कुसुम-मधुप कहें तो उसकी भी तुलना (ठीक) नहीं। भ्रमर के न आने पर फूल स्वयं (उसके पास) नहीं जाता। अभागे चकोर-चांद ये दोनों भी उसके समान नहीं। चण्डीदास कहते हैं, त्रिभुवन में ऐसा कहीं भी नहीं।)

इस 'पिरित' की अनुभूति भी विचित्र है। 'पराणे पराण, गाढ प्रेम डोर से बंधा हुआ है, फिर भी 'दुहु कोरे दुहु कांदे विच्छेद भाविया।' यह दशा प्रेम की चरम परिणति की परिचायक है। मिलन में भी विरह का भाव, यही 'प्रेम-वैचित्र्य' (प्रेम-विपरीतता) कहलाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है, जब लट्टू बहुत जोर से घूमता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह बिल्कुल स्थिर है, वैसे ही प्रेम की अत्यन्त उत्कर्ष अवस्था में इस विचित्र भाव दशा की अनुभूति होती है।

सचमुच यह 'पिरिति' विचित्र ही है। कभी तो पूर्ण रूप से पाकर भी न पाने की व्याकुलता सताती है और कभी वियोग में ही संयोग सुख की अनुभूति होने लगती है।

कृष्ण मथुरा चले गए हैं यहां से पुन लौटकर नही आते। पर राधा एक क्षण के लिए भी प्रिय को भूल नही पाती ध्यान की अत्यन्त तन्मयावस्था के फलस्वरूप कल्पना में ही प्रिय को प्रत्यक्ष पाने की सुख-भ्रान्ति में राधा का मन उल्लास से नाच उठता है —

---

[1] चण्डीदास पदावली-संभोग मिलन, ७३।

बहुदिन परे बधुया एले ।
देखा ना हइत पराण गेले ।
एतेक सहिल अबला बले ।
फाटिया जाइत पाषाण हले ॥
दुखिनीर दिन दुखेते गेल ।
मथुरा नगरे छिले त भाल ॥
ए-सब दुःख किछु ना गणि ।
तोमार कुशले कुशल मानि ॥
सब दुःख आजि गेल ह दूरे ।
हारान रतन पाइलाम कोरे ॥
(एखन) कोकिल आसिया करुक गान ।
भ्रमरा धरुक ताहार तान ॥
मलय पवन बहुक मन्द ।
गगने उदय हउक चन्द ॥
बाशुली-आदेशे कहे चण्डीदास ।
दुःख दूरे गेल सुख विलासे ॥[1]

(बहुत दिनो के बाद वधुआ (प्रियतम ! तुम) आए। प्राण चले जाने पर मुलाकात न होती। अबला थी इसीलिए इतना सहा पाषाण होने पर (अब तक) विदीर्ण हो चुका होता दुखिनी के दिन दुःख में बीते मथुरा नगर में तुम तो अच्छे थे न ? इन सब दुःखो को कुछ (भी) नही गिनती हूँ। आज सब दुःख दूर हुए, खोया रतन क्रोड मे मिला। (भले ही) अब कोकिल आकर गान करे, भौंरा अपना तान अलापे, मलय पवन मन्द बहे आकाश में चन्दा उदित हो। बाशुली (चण्डीदास की उपास्या) के आदेश से चण्डीदास कहते हैं, सुख विलास में दुःख दूर गया।)

कितनी मार्मिक व्यंजना है—कोमलहृदया होने के कारण ही राधा इतना सह पा रही हैं, पाषाणवत हृदय होता तो कब का विदीर्ण हो गया होता, कोमल सब प्रकार चुपचाप सहता जाता है पर पाषाण आघात का प्रतिघात करते जाता है इसीलिए तो विदीर्ण हो जाता है।

विरहावस्था में भी मिलन की इस आनन्दानुभूति, भावोल्लास का खगेन्द्र नाथ मित्र महाशय ने भाव-सम्मेलन नामकरण किया। मनोविज्ञान में भी

[1] वैष्णव-पदावली (चयन)—मिलन और भाव सम्मेलन, ३।

यह स्थिति मान्य है, ध्यान की अत्यधिक तन्मयता मे कभी-कभी एक प्रकार की भ्रान्ति हो जाया करती है जिसे "हैलुसिनेशन्" कहते हैं।

चण्डीदास का रसादर्श बहुत उच्च स्तर का है। स्वरूप में अरूप, सीमा में असीम लीला का आभास इन पक्तियो मे कितने स्पष्ट रूप मे प्रस्फुटित हुआ है :—

ए देहे से देहे एकइ रूप। तवे से जानिवे रसेरइ कूप।
ए बीजे से बीजे एकता हवे। तवे से प्रेमेर सन्धान पावे॥

(यह देह और वह देह जब एक रूप होगे तभी रस-कूप (के मर्म) को जान सकेंगे। इस बीज और उस बीज में एकता होने पर तभी प्रेम का पता मिलेगा।)

जेमति दीपिका उजरे अधिका भितरे अनल शिखा।
पतंग देखिया पड़ये घुरिया पुड़िया मरये पाखा॥
जगत घुरिया तेमति पड़िया कामानले पुड़ि मरे।
रसज्ञ जे जन से करये पान विष छाड़ि अमृतेरे॥

(जैसे दीपक भीतर अनल शिखा को लेकर अधिक प्रज्वलित होता है। पतग उसके चारो ओर घूमते हुए पख जलाकर मर जाता है। वैसे ही जगत् में भ्रमते हुए (मनुष्य) कामानल में पड़कर जल मरता है। जो रसज्ञ है वे विष छोडकर अमृत का पान करते हैं।)

चण्डीदास की "पिरित" जैसी व्यापक कल्पना, ऊंचा भावादर्श और प्रगाढ अनुभूति वैष्णव-साहित्य मे "दुर्लभ ही है। रस-मर्मज्ञ, साधक चण्डीदास के हृदय की भगवद् प्राप्ति की आकुलता, प्रेम-भक्ति की एकनिष्ठ शाश्वत आकाक्षा ही उनके प्रत्येक पद में गम्भीर रूप से अनुस्यूत है। प्रेम-भक्ति का यह उच्चतम आदर्श प्रेम-पथ के पथिक के लिए चिरदिन पाथेय बना रहेगा :—

ओ दुटि चरण पराणे धरिया, नयन मुदिया थाकि।

(उन दोनो चरणो को हृदय पर रख कर, नयनो को मूदे रहती हू।)

और—

वंधु कि आर वलिव आमि।
मरणे जीवने जनमे जनमे प्राणनाथ हैय तुमि॥
तोमार चरणे आमार पराणे बांधिल प्रेमेर फांसि।

ए कुले ओकुले दुकुले गोकुले आपना बलिब काय ।
शीतल बलिया शरण लइनु ओ दुटि कमल पाय ।।[1]

(बंधु (प्रियतम) ! मैं और क्या कहूँ ?—मरण-जीवन, जन्म-जन्म में तुम्हीं प्राणनाथ होओ। तुम्हारे चरण और अपने प्राणों को प्रेम के फंदे से बाँधा है। सब समर्पित करके एक मन (एकनिष्ठ) होकर निश्चयपूर्वक (मैं) तुम्हारी दासी बनी। इस कुल, उस कुल दोनों कुलों तथा गोकुल में (अब) मैं अपना किसे कहूँ। उन दोनों चरण कमलों को शीतल जान कर मैंने शरण ली।)

चण्डीदास केवल मात्र कवि ही नहीं, प्रत्युत रसों के साधक, वैरागी, परम भागवत थे। 'ऐकान्तिक भक्ति साधना' एकमात्र सच्चे वैष्णव साधकों से ही बन पड़ी उसमें चण्डीदास अग्रगण्य हैं।

मैथिल कवि विद्यापति को बंगालियों का अपनाना—

सुप्रतिष्ठित वैष्णव-कवियों में से विद्यापति भी एक हैं। ये मिथिला के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वैष्णव भावधारा से ही अनुप्राणित होकर विद्यापति ने राधाकृष्ण लीला विषयक मधुर रससिक्त पदावली की रचना की। विद्यापति के पदों के अपूर्व माधुर्य से बंगाल का चित्त इतना मुग्ध हुआ कि बहुत दिनों तक बंगाल विद्यापति को बंगाली कवि ही मानता रहा इसका प्रधान कारण था बंगला साहित्य की ब्रजबुलि से विद्यापति की भाषा की समता। बंगीय वैष्णव-साहित्य में विद्यापति के पद इतने घुलमिल गए कि सत्य के उद्घाटन के बाद भी बंगाल से उनका सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कठिन ही नहीं असंभव हो गया। अतएव बंगीय वैष्णव-साहित्य के बीच ही विद्यापति के पदों का मूल्यांकन करना उचित होगा।

चण्डीदास और विद्यापति—

चण्डीदास और विद्यापति के काव्य में भाव साम्य होने पर भी राधा चित्रण, काव्य-कुशलता कवि प्रतिभा में इनों गुरु स्थानीय वैष्णव कवियों में पर्याप्त पार्थक्य है। यदि चण्डीदास के काव्य में भाव गाम्भीर्य का प्राधान्य है तो विद्यापति के पद में भाषा चमत्कार और छन्द विन्यास का प्राचुर्य है। चण्डीदास के काव्य को यदि भाव रत्नाकर कहें तो विद्यापति के काव्य को भाषा का ताजमहल कहना होगा। अतएव चण्डीदास और विद्यापति को यदि एक दूसरे का परिपूरक कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

---

[1] चण्डीदास पदावली—भावसम्मिलन १८४।

विद्यापति की विशेषता-

विद्यापति में निस्सन्देह असाधारण पांडित्य है। संस्कृत और प्राकृत के भाव, भाषा, शब्द, अलंकार और छन्द के अगाध भण्डार से विद्यापति ने बड़े कौशल के साथ रत्न-चयन द्वारा श्री राधा की वय सन्धि, सौन्दर्य और प्रेम-प्रसंग का अपूर्व चित्र उपस्थित किया।

विद्यापति के कुछ पद—

राधा वय सन्धि की अवस्था को प्राप्त होती हैं, शैशव और यौवन के सन्धि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन विद्यापति ने किया है :—

संसव जौवन दरसन भेल।
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल॥
मदन क भाव पहिल परचार।
भिन जन देल भिन्न अधिकार॥
कटि क गौरव पाओल नितम्ब।
एक क तीन अओक अवलम्ब॥
प्रगट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रगट अब तन्हि लेल॥
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचन क धैरज पदतल जाव॥
नव कवि सेखर कि कहइत पार।
भिन-भिन राज भिन्न बेवहार॥[1]

और—

खने खन नयन कोन अनुसरई।
खने खन बसन धूलि तनु भरई॥
खने खन दसन-छटा छुटहास।
खने खन अधर आगे गहु वास॥

---

[1] विद्यापति की पदावली-वय सन्धि, ६। तुलनीय राजशेखर का श्लोक—

पद्मा मुक्तास्तरलगतय सश्रिता लोचनाभ्या
श्रोणीविम्व त्यजति तनुता सेवते मध्यभाग।
धत्ते वक्ष कुचसचिवतामद्वितीय च वक्तृ
तद्गात्राणा गुण-विनिमय कल्पितो यौवनेन॥

सदुक्तिकर्णामृत, २।२।४।

चउकि चलए खने खन चलु मन्द।
मन्मथ पाठ पहिल अनुबंध॥
हिरदय-मुकुल हेरि हेरि थोर।
खने आंचर दए खने होय भोर॥
बाला सैसव तारुन भेंट।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ॥
विद्यापति कह सुन वर कान।
तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान॥[1]

राधा के कमनीय रूप का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है —

चांद-सार लए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोर।
अमिय धोय आंचर धनि पोछलि
दह दिसि भेल उजोरे॥
कामिनि कोने गढ़ली।
रूप सरूप मोयँ कहइत असंभव
लोचन लागि रही॥
गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए
माझ-खानि खीनि निमाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि
त्रिवलि लता उरझाई॥
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक
ई सब बचन सरूपे।
रूपनरायन ई रस जानथि
सिवसिंघ मिथिला भूप॥[2]

कृष्ण ने अपरूप सुन्दरी राधा को मार्ग पर जाते देखा —

पथ गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि
रहल कुमुद निधि साधा॥

---

[1] विद्यापति की पदावली-वय संधि, ९।
[2] वही, नखशिख, १४।

ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम
वंक निहारइ थोरा।
जनि सृखल में खगवर वांधल
दीठि नुकाएल मोरा॥
आव वदन-ससि विहसि देखाओलि
आध पहिलि निज वाहू।
किछु एक भाग वलाहक झांपल
किछूक गरासल राहू॥[1]

राधा की अपार सौन्दर्यराशि के सम्पर्क मे ही समस्त प्रकृति सौन्दर्यशालिनी हो रही है :—

जहाँ-जहाँ पग युग धरई। तहि-तहि सरोरुह झरई॥
जहाँ-जहाँ झलकत अंग। तहि-तहि विजुरि तरंग॥
कि हेरल अपरुव गोरि। पइठल हिय मधि मोरि॥
जहाँ-जहाँ नयन विकास। तहि-तहि कमल प्रकास॥
जहाँ लहु हास संचार। तहि तहि अमिय-विकार॥
जहाँ-जहाँ कुटिल कटाख। ततहि मदन-सर लाख॥
हेरइत से धनि थोर। अब तिन भुवन अगोर॥
पुनु किए दरसन पाव। अब मोहे इत दु'ख जाव॥
विद्यापति कह जानि। तुअ गुन देहब आनि॥[2]

यह रूप निश्चय ही लोकोत्तर है।

अलकारो का निपुण प्रयोग विद्यापति की प्रतिभा की एक प्रमुख विशेषता है। राधा के नयनो के सौन्दर्य वर्णन में तो विद्यापति ने उपमा, उत्प्रेक्षा की सेना ही प्रस्तुत कर दी है, सभी एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं :—

नयन-नलिनि दओ अंजन रंजइ
भौंह विभंग-विलासा।
चकित चकोर-जोर विधि वांधल
केवल कारल पासा॥
चंचल लोचन वांक निहारए अंजन शोभा पाय।
जनि इन्दीवर पवन-पेलल अरि भरे उलटाय॥

---

[1] विद्यापति की पदावली—प्रेम-प्रसग, ३४।
[2] वही, ३५।

लोचन जनु थिर भृंग आकार।
मधु मातल किये उडइ ना पार॥
भाणुक भंगिम थोरि-जनु।
काजरे साजल मदन धनु॥
भौंह सुरखलि आलि।
पंकज मधु पिवि मधुकर रे
उडय पसारल पाखि॥
सुंदर वदन चारु अरु लोचन
काजर रंजित भेला।
कनक-कमल माझ काल भुजंगिनि
स्रीयुत खंजन खेला॥

सद्यस्नाता राधिका के नेत्रों की शोभा —

नीर निरंजन लोचन राता।
सिंदुर मंडित जनि पंकज-पाता॥

राधा-कृष्ण के प्रेम की प्रगाढ़ता को भी कवि ने उपमा के द्वारा ही समझाया है —

टूटइते नहि टूटे प्रेम अदभूत।
जसन बाढ़ए मृणालक सूत॥

निम्नोद्धृत पद स्पष्ट ही 'गीत-गोविन्द' के निश्चयालंकार के प्रसिद्ध श्लोक[1] के अनुकरण पर रचित है —

कत न वेदन मोहि देसि मदना।
हर नहि बला मोहि जुवति जना॥
विभुति भूषन नहि चानन क रेनू।
बघछाल नहि मोरा नेतक बसनू॥
नहि मोरा जटाभार चिकुर क बेनी।
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क स्रेनी॥

---

[1] हृदि बिसलताहारो नायं भुजंगमनायकः।
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः॥
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि।
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि॥ —३।११

कछने जायब जमुनातीर ।
कछे नेहारब कुंज कुटीर ॥
सहचरी सये जाहा कयल फुल-खेरी ।
कछने जीयब ताहि नेहारि ।

कृष्ण ने शीघ्र लौटने का वचन दिया था, उनकी प्रतीक्षा में राधा ने —

नखर खोयायलु दिवस लिखि लिखि ।
नयन अंधायलु पिया पथ पेखि ॥[1]

कृष्ण के विरह में राधा "विनु सिनेहे बरइ जनि दीव' की सी दशा में कष्ट झेलते हुए, दुःख सहते हुए श्रीहीन हो रही है। इसका वर्णन कवि ने किस चातुर्य के साथ किया है।—

सरदक ससधर मुखरुचि सोपल्ब
हरिन के लोचन लीला ।
केसपास लए चमरि के सोपलक
पाए मनोभव पीला ॥
माधव, जानल न जिवति राही ।
जतवा जकर ले ले छलि सुंदरि
से सब सोपलक ताही ॥
दसन-दसा दालिम के सोपल्क
बंधु अधर रुचि देली ।
देह दसा सौदामिनि सोंपलक
काजर सनि सखि मेली ॥
भौंहक- भंग अनंग-चाप दिहु
कोकिल के दिहु बानी ।
केवल देह नेह अछ लओले
एतवा अएलहुं जानी ॥
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति
चित झलह जनु आने ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने ॥[2]

---

[1] तुलनीय—जे महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण ।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥
—हेमचन्द्र (प्राकृत व्याकरण)

[2] विद्यापति की पदावली विरह, २१३ ।

दुखिनी राधा के निरन्तर आंसू बहाने से और एक नई विपत्ति आ धमकी—

विपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात।
विरहिन—नयन विहल विहि रे
अविरल वरिसात॥[1]...

निरन्तर बहती हुई आंसू की धारा तो अब और भी बलवती और वेगवती हो गई :—

लोचन नीर तटिनि निरमाने।
करए कलामुखि तथिहि सनाने॥
सरस मृनाल करइ जपमाली।
अहनिस जप हरि नाम तोहारी॥
वृन्दावन कान्हु धनि तप करई।
हृदय-वेदि मदनानल वरई॥
जिव कर समिध समर कर आगी।
करति होम वध होएवह भागी॥
चिकुर वरहि रे समरि का लेअई।
फल उपहार पयोधर देअई॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारी।
तुअ पथ हेरइत अछि वर नारी॥[2]

पथ निहारते, प्रतीक्षा करते हुए राधा की दशा अत्यन्त दयनीय हो रही है। वे सोचती हैं राज-काज, सुख-ऐश्वर्य में कृष्ण को अवकाश ही कहाँ जो राधा की सुध लें। इस अपार दुःख, असह्य पीड़ा की अनुभूति निर्मोही कृष्ण को एकबार अवश्य करवानी चाहिए, उसका एक ही उपाय है :—

हम सागरे त्यजब पराण। आन जनमे होयब कान॥
कानु होयब जब राधा। तब जानब विरहक-बाधा॥[3]

धीरे धीरे राधा की दशा अत्यन्त शोचनीय होती जाती है। विरह ने राधा को शिशिर मथिता पद्मिनी के समान मलिन और निश्चेष्ट बना दिया है। अब

---

[1] विद्यापति की पदावली—विरह, २०७।
[2] वही, २०९।
[3] चण्डीदास की राधा के समान ही कामना है—सागरे जाइब कामना करिब......

ता नौबत यहा तक आ पहुची कि वे चेतन हैं अथवा अचेतन यहा तक समझ में नही आता —

चेतन मुरछन बुझई न पारि।
अनुखन घोर विरह ज्वर जारि॥

और कुछ दिना के बाद तो स्थिति इतनी मार्मिक हो जाती है कि निरन्तर कृष्ण ध्यान रता राधा आत्मबोध भी खो बठती ह और राधा से माधव बन जाती है यह तन्मयता की पराकाष्ठा है —

अनुखन माधव माधव सुमरइत
सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि विसरल
अपने गुन लुबुधाई॥
माधव, अपरूब तोहर सिनेह।
अपने बिरह अपन तनु जरजर
जिवइत भेलि सदेह॥[1]

साधक की साधना की भी यही चरमावस्था ह जब भक्त आत्म-बोधहीन होकर भगवान् से अभिन्न हो जाय कृष्ण न आते हों तो न आए, अब राधा ने अपनी कल्पना में, भावाधिक्य की भान्ति में कृष्ण का प्रत्यक्षवत पा लिया उनके विरह जनित दुखों क्लेशा की समाप्ति हुई, राधा अत्यन्त प्रफुल्लित ह —

आजु रजनि हाम भागे पोहायलु
पेखलु पिया-मुख—चंदा।
जीवन जौवन सफल करि मानलु
दश दिश भेल निरदन्दा॥
आजु मनु गेह गेह करि मानलु
आजु मझु देह भेल देहा।
आजु विहि मोहे अनुकूल होयल
टटल सबहु सन्देहा॥
सोइ कोकिल अब लाख लाख डाकउ
लाख उदय करु चन्दा।
पांच बाण अब लाख बाण हउ
मलय पवन बहु मन्दा॥

---

[1] विद्यापति की पदावली विरह, २१६।

अवहुन जवहुं मोहे परि होयत
तवहुं मानव निज देहा ।
विद्यापति कह अलप भागि नह
धनि धनि तुया नव नेहा ॥[1]

वैष्णव साहित्य में माथुर के बाद "भाव-सम्मेलन" नामक नूतन अध्याय की परिकल्पना द्वारा चण्डीदास और विद्यापति ने पूजा-गृह में ऐसा होमानल प्रज्वलित कर रखा जो कभी बुझने का नहीं। प्रेम-वैचित्र्य विषयक विद्यापति का निम्नोद्‌धृत पद पदावली साहित्य में कौस्तुभ-मणि तुल्य है —

सखि, कि पुछसि अनुभव मोय।
से हो पिरित अनुराग बखानिए
तिल तिल नूतन होय॥
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधु बोल स्रवनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल॥
कत मधु-जामिनि रभस गमाओल
न बूझल कइसन केल॥
लाख लाख जुग हिय हिय राखल
तइओ हिय जुड़ल न गेल॥
कत विदगध जन रस अनुमोदई
अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुडाएत
लाखे न मिलल एक॥[2]

प्रेम-वैचित्र्य का यही अद्‌भुत वैशिष्ट्य है कि प्रेम-परिपाक के चरमोत्कर्ष के कारण मिलनोत्कण्ठा इतनी अधिक बढ जाती है जो अविच्छिन्न मिलन से भी मिलन-स्पृहा कभी प्रशमित नहीं होती और इसी कारण प्रेम की अनुभूति नित्य नवीन ही बनी रहती है।

---

[1] पदकल्पतरु, १९९६।

[2] विद्यापति की पदावली—भावोल्लास, २२७।
तुलनीय—यदपि परस्परमिलन हरिगोपीनां चिरान्न विच्छिन्नम्।
तदपि न तृष्णा शान्ता स्वाप्निकमाने यथा पिपासूनाम्॥
—गोपाल-चम्पू-पूर्वार्ध, ३३।४।

विद्यापति ने अब तक तो राधाकृष्ण के लीला विलास का ही वर्णन किया, अन्त में कवि भगवान् श्रीकृष्ण में आत्म समर्पण करते हुए कहता है —

माधव, बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु
दय जनि छाडबि मोय।
गनइत दोसर गुन लेस न पाओबि
जब तुहु करबि बिचार।
तुहु जगत जगनाथ कहाओसि
जग बाहिर न इ छार॥
किए मानुस पशु पखि भए जनमिए
अथवा कीट पतंग।
करम बिपाक गतागत पुनु पुनु
मति रह तुअ परसंग॥
भनइ विद्यापति अतिसय कातर
तरइत इह भव सिन्धु।
तुअ पद-पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दिनबंधु॥[१]

क्षण भंगुर भौतिक वस्तुओं के भोग के अनन्तर निराशा और ग्लानि ही हाथ लगती है। विद्यापति सचेत हुए हैं अतः अब वे जगतारण दीन दयालु माधव पर ही अपने जीवन को तारने का भार सौंप कर निश्चिन्त होते हैं —

तातल सकत बारि बिन्दु सम
सुत मित रमनि-समाज।
तोहे बिसारि मन ताहे समरपिनु
अब मझु हब कोन काज॥
माधव, हम परिनाम निरासा।
तुहु जगतारन दीन दयामय
अतए तोहर बिसयासा।
आध जनम हम नींद गमायनु
जरा सिसु कत दिन गेला।
निधुवन रमनि रभस रंग मातनु
तोहे भजब कोन बेला॥

[१] विद्यापति की पदावली प्रार्थना और नचारी, २५२।

कत चतुरानन मरि मरि जाओत
न तुअ आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत
सागर लहरि समाना ॥
भनइ विद्यापति सेष समन भय
तुय विनु गति नहि आरा।
आदि अनादि नाथ कहाओसि अब
तारन भार तोहारा ॥[1]

विद्यापति ने काव्य के आरम्भिक अध्यायो में राधा की वय सन्धि, सौन्दर्य, अनुराग, अभिसार, मिलन, मान में संस्कृत अलकार शास्त्र का ही मुख्य रूप से अनुगमन किया जिससे उन वर्णनो में विलास का पक्ष ही अत्यधिक प्रबल हो उठा है पर क्रमश. विरह, भाव-सम्मेलन, प्रार्थना के पदो मे वैष्णव भाव और स्वर ही प्रधान होते गये।

सूर्य के साथ उषाकाल का जो योग है, वही योग इन प्राक् चैतन्ययुगीय वैष्णव काव्य रचयिताओ के साथ श्रीचैतन्य का है। ये वैष्णव-काव्य चैतन्य देव के अरुणोदय के सूचक थे। चैतन्य युग से पूर्व बगाल प्रान्त में श्रीकृष्ण लीला विषयक सस्कृत के प्रकीर्ण श्लोक, पद तथा काव्य पर्याप्त मात्रा में रचे जा चुके थे अवश्य; पर यह तो निश्चित ही है कि श्रीचैतन्य प्रचारित प्रेमधर्म के प्रचार से वैष्णव-साहित्य ने जैसी विस्तृति और प्रचार पाया, उसका यह रूप पहले न था। वंगला के वैष्णव-साहित्य में राधा को प्रधानता मिलने लगी थी पर उसकी पूर्ण परिणति श्रीचैतन्य में ही आकर हुई, कहना यो चाहिए कि श्रीचैतन्य द्वारा ही राधा भाव की प्राण-प्रतिष्ठा हुई। बगाल की प्राचीन वैष्णवीय भक्ति धारा चैतन्य-युग में आकर विशिष्ट स्वरूप ग्रहण करती है।

---

[1] विद्यापति की पदावली—प्रार्थना और नचारी, २५३।

दूसरा अध्याय

ब्रजभाषा का उद्भव और विकास

पिछले पृष्ठों में हम वैष्णव धर्म के स्वरूप, राधा कृष्ण-कथा का विकास तथा मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के पूर्व के वैष्णव काव्य-साहित्य की चर्चा करते रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय में ब्रजभाषा के उदभव और विकास पर विचार करेंगे।

काव्य भाषा के रूप मे ब्रजभाषा—

काल और क्षेत्र की दष्टि से ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास अत्यन्त महत्व का है। काव्य भाषा के रूप में इसका व्यवहार बहुत पहले से होता आ रहा है। साहित्य की सष्टि के लिये इस भाषा का प्रयोग एक बहुत बडे भूभाग में दीर्घकाल से होता रहा है। कहा जा सकता है कि काव्य भाषा के रूप में इसका प्रचार समस्त उत्तरी भारत में था।[1] ब्रजभाषा १२०० से १८५० ई० तक के सुदीर्घ काल के अधिकांश भाग में सारे उत्तरी भारत, मध्य भारत तथा राजपूताना, और कुछ हद तक पंजाब की भी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही।[2]

ब्रजभाषा-साहित्य की व्यापकता—

वास्तव में आधुनिक हिन्दी के प्रसार और उसमें साहित्य रचना के पूर्व उत्तरी भारत में ब्रजभाषा का ही बोलबाला था। सन ईसवी की सोलहवीं शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की अठारहवीं शताब्दी तक का काल प्रमुख रूप से ब्रजभाषा साहित्य का काल है। इस प्रकार से इन शताब्दियों का हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रधानतया ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास है। सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य भक्त कवियों की रचना ब्रजभाषा साहित्य की अपूर्व निधि है। तुलसीदास ने यद्यपि 'रामचरितमानस" की रचना अवधी भाषा में की है लेकिन उनकी कई श्रेष्ठ रचनाएं जैसे, कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका ब्रजभाषा की ही रचनाएं है। उनकी अवधी में भी ब्रजभाषा का मिश्रण है, जो कि स्वाभाविक ही है। अष्टछाप के भक्त कवियों के अलावा अन्य सैकड़ों कवियों की रचनाओं से ब्रजभाषा का साहित्य अलंकृत हुआ है।

---

[1] रामचन्द्र शुक्ल बुद्ध चरित की भूमिका, पृ० ४ तथा प्रभुदयाल मीतल ब्रजभारती (फाल्गुन स० २००० विक्रमाब्द), पृ० ६।

[2] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८९।

रीतिकाल के कवियों में बिहारी, मतिराम, घनानन्द, रसखान, देव, सेनापति तथा पद्माकर आदि ने ब्रजभाषा-काव्य को अत्यन्त समृद्ध किया है। ब्रजभाषा-साहित्य प्रमुख रूप से भक्ति और शृंगार की रचनाओं का भंडार है। वैसे अन्य विषयों की ओर भी ब्रजभाषा के कवियों का ध्यान गया है। ज्ञान, वैराग्य, नीति, ज्योतिष आदि का भी समावेश इस साहित्य में है। अपभ्रंशों से जन्म लेनेवाली अन्य उत्तरभारत की भाषाओं के साहित्य से ब्रजभाषा का साहित्य अधिक समृद्ध है परिमाण की दृष्टि से भी और काव्यत्व की दृष्टि से भी।

सन् ईसवी की १६ वीं शताब्दी की छिटफुट रचनाएँ—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी से तो ब्रजभाषा का काव्य-भाषा के रूप में पूर्ण अधिकार हो गया था, लेकिन उसके बहुत पहले ही पुराने कवियों ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की थी जिसका पता छिटफुट इधर-उधर की रचनाओं में मिल जाता है। लेकिन यह सही है कि पहले की वैसी कोई बड़ी रचना प्राप्त नहीं होती जिसमें केवल ब्रजभाषा को ही अपनाया गया हो। बाद में चलकर वैष्णव कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा में अपने साहित्य का निर्माण किया। ब्रजभाषा-साहित्य के सृजन और प्रसार में वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का बहुत बड़ा हाथ है। वल्लभ-सम्प्रदाय का जहाँ-जहाँ प्रभाव था वहाँ ब्रजभाषा साहित्य श्रद्धा और समादर पाता रहा। धार्मिक क्षेत्र से निकलकर अपने माधुर्य गुण के कारण इस साहित्य और भाषा ने जाति-धर्म निर्विशेष जन-साधारण से लेकर राजा-महाराजाओं और मुसलमान बादशाहों तक अपना प्रभाव विस्तार किया।

"ब्रजभाषा" शब्द का प्रयोग—

"ब्रजभाषा" शब्द का प्रयोग बहुत हाल से होने लगा है। बहुत दिनों तक यह विश्वास किया जाता रहा है कि "ब्रजभाषा" शब्द का उल्लेख सन् ईसवी की अठारहवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता।[1] भिखारीदास के "काव्य निर्णय" में ब्रजभाषा शब्द का प्रयोग मिलता है।[2] इसी प्रकार से लल्लू लाल ने भी "राजनीति" में इसका प्रयोग किया है।[3] ब्रजप्रदेश की भाषा के रूप

---

[1] वीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, पृ० १७।

[2] वही, (पादटिप्पणी—२) "ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय।"

[3] वही।

में 'पिंगल", "भाखा" नाम से इसका परिचय मिलता रहा है। मोतीलाल मेनारिया ने दिखलाया है कि "व्रजभाषा" शब्द का प्रयोग 'भिखारीदास" से पहले मिलता है।[1] श्री मेनारिया ने गोपाल कृत रसविलास[2] (स० १६६४) से निम्नलिखित उद्धरण दिया है —

मरुभाषा निरमल तजी, करि व्रजभाषा चोज।
अब गुपाल या तें तह, सरस अनोपम मोज॥

इसी प्रकार समरथ कृत रसिकप्रिया की टीका (स० १७५५) में भी "व्रजभाषा" शब्द का प्रयोग ही नहीं है, बल्कि उसे "सुरभाषा' से भी 'अधिक' कहा गया है क्योंकि व्रज भूपन' (कृष्ण) की भाषा थी।

'सुरभाषा तें अधिक है व्रजभाषा सो हेत।
व्रजभूपन जाको सदा, मुख भूपन करि लेत॥"[3]

इन उद्धरणों से पता चलता है कि "व्रजभाषा" शब्द का प्रयोग सन ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने लगा था।

'पिंगल' पुरानी व्रजभाषा का नाम—

प्राचीन व्रजभाषा के लिये "पिंगल" शब्द का प्रयोग होता रहा है। कहते हैं कि पिंगल छंद के आचार्य थे और साधारणतः पिंगल छन्द-शास्त्र के लिये व्यवहृत होता है। संभवतः "प्राकृत पैंगलम" के बाद "पिंगल" शब्द भाषा के लिये रूढ़ हो गया था। तेसीतोरी ने "प्राकृत पैंगलम" की भाषा को "पिंगल अपभ्रंश" कहा है।[4] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने प्राचीन व्रजभाषा या "पिंगल" की चर्चा करते हुए बतलाया है कि राज्याश्रय पाकर यह भाषा उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग की साहित्य भाषा हो गई थी। उन्होंने इसे शौरसेनी अपभ्रंश का कनिष्ठ रूप कहा है जिसका पता राजस्थान में सन ईसवी की बारहवीं शती में चलता है। यह "अवहट्ट" या पिंगल के

[1] राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ० १०।

[2] अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति (संवत १७४९), पद्य ४५।

[3] दानसागर भंडार, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति (स० १७९९) पद्य १७ (राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १० पर उद्धृत)।

[4] इंडियन एंटीक्वेरी, १९१४, पृ० २२।

नाम से सुपरिचित थी[1]। डा० ग्रियर्सन ने इस काल की इस साहित्य-भाषा का जिक्र करते हुए बतलाया है[2] कि स्थान-विशेष के अपभ्रंशो की रचनाएँ जब अधिक लोकप्रिय हुई और उनकी एक विशेष परम्परा सुप्रतिष्ठित हो गई तब एक विशेष अपभ्रंश के रूप में साहित्य-रचना के लिये उनका प्रवर्तन हुआ। काव्य-भाषा के रूप में इस अपभ्रंश ने उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग पर अधिकार जमा लिया। इसे बहुत लोगो ने शौरसेनी अपभ्रंश कहा है। इसे ग्रियर्सन ने साहित्यिक अपभ्रंश माना है जो उस बड़े भूभाग में सर्व-मान्य हो गया था लेकिन वे इसे शौरसेनी प्राकृत का उत्तर विकारी नहीं मानते।[3]

परिनिष्ठित अपभ्रंश—

शूरसेन प्रदेश—ब्रजमडल—के शौरसेनी अपभ्रंश मे पिंगल या ब्रजभाषा उत्पन्न हुई। शौरसेनी अपभ्रंश परिनिष्ठित अपभ्रंश थी। हेमचन्द्राचार्य ने इसी परिनिष्ठित अपभ्रंश का व्याकरण लिखा है। यह काव्य-भाषा सन् ईसवी की नवी शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की बारहवी शताब्दी तक पश्चिम पजाब, गुजरात, राजस्थान से लेकर पूर्व में आसाम, बगाल और मिथिला तक प्रचलित थी। स्थान-विशेष में थोडा इसका रूप-परिवर्तन भी दीख पडता है। इसमें प्रान्त विशेष के शब्दो का समावेश होना स्वाभाविक ही था। यह शिष्ट समाज की भाषा हो गई थी और राजदरबारो मे इसका खूब सम्मान था। यह इतनी व्यापक हुई कि सिद्ध महात्माओ ने भी अपनी रचनाओ के लिए इसका आश्रय लिया। एक प्रकार से उत्तर भारत की यह राष्ट्रभाषा-सी हो गई थी। लेकिन इसके बाद की शताब्दियो में धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन होता गया फिर भी सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी तक कम या बेशी परिवर्तनो के साथ यह साहित्य की भाषा बनी रही। फिर भी अपभ्रंश की विभिन्न बोलियो का विकास होता रहा और सन् ईसवी की पद्रहवी शताब्दी तक आते आते उनमें से कई बोलियो में साहित्य की रचना होने लगी। परवर्त्ती अपभ्रंश को "अवहट्ठ" कहा गया है।

---

[1] ओरिजिन एन्ड डेवलपमेन्ट आफ बैंगाली लैंग्वेज, पृ० ६४।

[2] लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इडिया, जिल्द १, भाग १, पृ० १२४।

[3] वही पृ० १२५ (पाद-टिप्पणी)।

अवहट्ट—

"अवहट्ठ" को परिनिष्ठित अपभ्रंश और आज की विकसित भिन्न प्रदेशों की बोलियों के बीच की कड़ी कह सकते हैं। वैसे यह कहना कठिन है कि परवर्ती अपभ्रंश कब और कहाँ समाप्त हुई और पुरानी हिंदी का कहाँ आरम्भ हुआ[१]। "अवहट्ठ' वास्तव में उस भाषा का रूप था जो काल क्रम से परिनिष्ठित अपभ्रंश के विकास स्वरूप अपना स्थान बना चुकी थी। परिनिष्ठित अपभ्रंश से यह भिन्न हो चुकी थी, लेकिन इसके मूल में पश्चिम अपभ्रंश की प्रवृत्तियाँ ही क्रियाशील थी। 'अवहट्ठ" शब्द का पहला प्रयोग अब्दुल रहमान के 'संदेशरासक" में मिलता है जो संभवतः बारहवीं शताब्दी या उससे भी थोड़ा पहले का काव्य है। फिर ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर में मिलता है। वर्णरत्नाकर सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी की रचना है। विद्यापति ने भी 'कीर्तिलता' में 'अवहट्ठ' का प्रयोग किया है —

"देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
त तसन जम्पओ अवहट्ठा॥

प्राकृत पैंगलम्' के टीकाकार वंशीधर ने 'प्राकृत पैंगलम' की भाषा को अवहट्ठ" कहा है[२]। अद्दहमाण ने भी अवहट्ठ" का प्रयोग किया है[३]।

अवहट्ट उत्तरभारत की सामान्य काव्य-भाषा—

इस प्रकार से हम देखते हैं कि अवहट्ठ का प्रयोग पूर्वी और पश्चिमी दोनों भाग के कवियों ने किया है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तर भारत में यह काव्य भाषा थी जिसका आश्रय भिन्न भिन्न अंचलों के कवियों ने लिया है। भले ही भिन्न भिन्न अंचलों के शब्द और प्रयोग उसमें आ गए हों फिर भी भाषा प्रायः समान ही थी। इस प्रकार से व्यापक होने के कारण इसके कई रूप वर्तमान हैं। जिस अंचल के कवि ने इसका उपयोग किया है, उसने अपने अंचल की वाणी की विशेषताओं तथा शब्दों का उसमें समावेश किया है। भाषा की दृष्टि से यह सामान्य काव्य भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश से अलग हो गई थी। 'अवहट्ठ काल में

[१] चन्द्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिन्दी, पृ० ११।

[२] प्राकृत पैंगलम् पृ० ३।

[३] सन्देशरासक १ ६।

परसर्गों का प्रयोग अधिक बढ गया वैसे यह प्रवृत्ति अपभ्रंग काल मे ही प्रारम्भ हो गई थी। सर्वनामो और क्रियापदो में बहुत सी नवीनताएँ परिलक्षित होने लगी।

अवहट्ठ पर प्रान्त विशेष की छाप—

अवहट्ठ की व्यापकता को स्वीकार करते हुए डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है, "ब्रजबुलि इस बात का द्योतक है कि एक बनावटी भाषा भी दूसरे प्रात में काव्य-भाषा के रूप में किस प्रकार ग्रहण की जा सकती है और इसी से इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार शौरसेनी अपभ्रंश या अवहट्ठ मध्यदेश के अलावा बंगाल आदि में छाया हुआ था[1]।" जहाँ तक पश्चिमी प्रान्तों, राजस्थान आदि का प्रश्न है, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने कहा[2] है कि राजस्थान में अवहट्ठ "पिंगल" नाम से परिचित था। इस प्रकार से हम देखते हैं कि एक काल में "अवहट्ठ" उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा थी। लेकिन इस बात को स्वीकार कर लेने पर भी कि "अवहट्ठ" एक सामान्य काव्य-भाषा के रूप में प्रचलित था, यह मानना होगा कि प्रान्त विशेष की छाप उसपर अवश्य रही है। यही कारण है कि शिवनन्दन ठाकुर, डा० उमेश मिश्र आदि ने कीर्त्तिलता की भाषा को शौरसेनी अपभ्रंश नही माना है[3]। साथ ही परवर्ती अपभ्रंश में विभिन्न प्रान्तीय बोलियो की कुछ विशेषता को देखकर उन बोलियो का उस परवर्ती अपभ्रंश से विकसित होने की बात कही जाती है। लेकिन अधिकांश विद्वान् अवहट्ठ का मूल शौर-सेनी अपभ्रंश में खोजते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इस सम्बन्ध में कहना है[4], 'प्राचीन आर्यभाषा की भिन्न-भिन्न स्थानो की बोलियो को थोड़ा बहुत समेट कर, पर पश्चिमोत्तर की "भाषा" का ढाचा आधारवत् रखकर जिस प्रकार संस्कृत खडी हुई, उसी प्रकार पीछे से यह काव्य-भाषा भी पछाही बोली (ब्रज से लेकर मारवाड और गुजरात तक की) का आधार रखकर, और बोलियों को भी थोडा बहुत समेटती हुई चली और बहुत दिनो

---

[1] ओरिजिन एन्ड डेवलेपमेन्ट आफ बेंगाली लैंग्वेज, पृ० १०४ (कीर्त्ति-लता और अवहट्ठ भाषा, पृ० १२ पर उद्धृत।)

[2] वही, पृ० ११४।

[3] कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ० १।

[4] बुद्ध चरित की भूमिका, पृ० १।

तक केवल अपभ्रंश या भाषा ही कहलाती रही।" इसी प्रकार से चंद्रधर शर्मा गुलेरी का कहना है[1] कि 'जैसे-जैसे ब्रजभाषा के सब सामान्य भाषापद पर आरूढ़ होने पर उसका प्रयोग प्रत्येक प्रान्त के निवासी करने लगे और अपने प्रान्त के प्रयोग जाने-अनजाने उसमें रख चले पर रूढ़ि ब्रजभाषा ही रही, वैसी ही स्थिति अपभ्रंश की भी थी।"

पूर्वी और पश्चिमी अवहट्ठ—

मोटे तौर पर अवहट्ठ के दो भेद किए जा सकते हैं—(१) पूर्वी अवहट्ठ और (२) पश्चिमी अवहट्ठ। इस भेद का आधार पश्चिमी तथा पूर्वी प्रान्तों के प्रयोग विशेष हैं। हम ऊपर देख चुके हैं कि सामान्य काव्य-भाषा में स्थानीय शब्दों का प्रयोग होता रहा है लेकिन यह भी सत्य है कि इन दो भागों को स्वीकार कर लेने पर भी दोनों अवहट्ठों के रूप और प्रयोग दोनों अवहट्ठों की रचनाओं में मिलते हैं। पूर्वी अवहट्ठ की रचनाओं में पश्चिमी अवहट्ठ के प्रयोग तथा पश्चिमी अवहट्ठ की रचनाओं में पूर्वी अवहट्ठ के प्रयोग मिलते हैं। पूर्वी अवहट्ठ की रचनाएँ मिथिला, नेपाल आसाम, बंगाल तथा उड़ीसा में मिलती हैं। इनकी चर्चा हमने 'ब्रजबुलि साहित्य के उद्भव और विकास' वाले अध्याय में की है। पूर्वी अवहट्ठ की प्रमुख रचनाओं में विद्यापति की 'कीर्तिलता', ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर' तथा दामोदर पण्डित का "उक्ति व्यक्ति प्रकरण' आदि हैं 'प्राकृत पैंगलम' में भी कुछ पूर्वी प्रयोग पाए जाते हैं। पश्चिमी अवहट्ठ की विशेषताएँ सदेश रासक, पुरातन प्रबन्ध, प्राकृत पैंगलम्, रणमल्ल छंद, पृथ्वीराज रासा, सूरपूर्व ब्रजभाषा, पुरानी राजस्थानी और गुर्जर काव्य संग्रह की रचनाओं आदि में पायी जाती हैं।

पूर्वी अवहट्ठ की रचनाएँ—

पूर्वी भारत की उस काल की रचनाएं अधिक प्राचीन और प्रामाणिक हैं। अभी तक उस काल की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं उनमें "वर्ण-रत्नाकर' अधिक महत्त्व का है। यह उपलब्ध रचनाओं में प्राचीनतम तथा प्रामाणिक है। इसी के समान 'कीर्तिलता" का भी महत्त्व है। "वर्ण रत्नाकर" गद्य में है, वैसे उस गद्य में प्रौढ़ता नहीं है। "वर्णरत्नाकर' सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल की रचना है।

---

[1] पुरानी हिन्दी, वक्तव्य पृ० १।

वैसे सुनीतिकुमार चटर्जी ने "टीका सर्वस्व" ग्रन्थ का जिक्र किया है[१]। यह सन् ११५९ ई० की रचना है। वंगला भाषा के "ध्वनि-विचार" की दृष्टि से सुनीति वावू ने इसे महत्त्वपूर्ण माना है। "वर्णरत्नाकर" भी मैथिली के "ध्वनि-विचार" की दृष्टि से महत्त्व रखता है वर्णरत्नाकर अथवा कीर्त्तिलता में पदो मे तुकान्त का प्रयोग मिलता है और कभी-कभी वाक्य के अन्त मे भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते है। तत्सम शब्दो का प्रयोग उस काल में उतनी वहुलता से नही हुआ है जितना कि वाद में देखने को मिलता है। वर्णरत्नाकर की भाषा वगला और अवधी दोनो से मिलती-जुलती है। इसमें कीर्त्तिलता की अपेक्षा तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक है। "क्ष" के लिये "ख", "व" के लिये "व" तथा "ड" के लिये "ल" का प्रयोग मिलता है। "कीर्त्तिलता" मे गद्य-पद्य दोनो है। यह "वर्णरत्नाकर" से लगभग एक शताब्दी वाद की रचना है। कीर्त्तिलता की भाषा मे अव्यवस्था और अनिश्चितता के दर्शन होते है। यह उस काल की भाषा सवधी अनस्थैर्य का परिचय देने वाला है।

पश्चिमी अवहट्ठ की रचनाएँ—

पश्चिमी अवहट्ठ या पूर्वी अवहट्ठ की चर्चा करते समय यह कहना अप्रासगिक नही होगा कि यह विभाजन क्षेत्रीय विशेषताओ के आधार पर किया जाता है और यह भेद पूर्ववर्ती अपभ्रश पर भी लागू होता है। यह प्रवृत्ति पहले से ही रही है। पश्चिमी अवहट्ठ की विशेषताओ का अध्ययन प्राकृत पैगलम्, पृथ्वीराज रासो आदि को ध्यान मे रखकर किया जाता है। "प्राकृत पैगलम्" में छन्दो के लक्षण और उदाहरण सगृहीत है। यह ग्रन्थ सभवत सन् ईसवी की चौदहवी शताब्दी का है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इसका रचनाकाल सन् ९०० ई० से लेकर सन् १४०० ई० के वीच मे मानते है। उनके मतानुसार इसके अधिकाश पद्य शौरसेनी अपभ्रश या "अवहट्ठ" के है[२]। तेसीतोरी के मत से इसकी भाषा सन् ईसवी की दसवी से लेकर सन् ईसवी वारहवी शताब्दी की भाषा के स्वरूप का परिचय देती है।[३] "पृथ्वीराज रासो" से भी इस काल की भाषा की विशेषताओ पर प्रकाश

---

[१] ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेट आफ वेगाली लैंग्वेज, पृ० १०९, ११०, ११२।

[२] वही, पृ० ६४।

[३] इडियन ऐण्टीक्वेरी (१९१४), पृ० २२।

पड़ता है। लेकिन इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसके काल आदि को लेकर बहुत ही मतभेद है। फिर भी रासा में ऐसे बहुत से छन्द हैं जिनसे तत्कालीन ब्रजभाषा के स्वरूप का परिचय मिल सकता है।

"ब्रजभाषा" की भाषा सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ—

इसके पहले कि हम ब्रजभाषा-साहित्य के क्रमिक विकास पर विचार करें 'ब्रजभाषा" की भाषा-सबधी कुछ विशेषताओ की मोटे तौर पर कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना समाचीन होगा।

(१) प्राचीन ब्रजभाषा में सज्ञाए स्वरान्त होती है। जैसे सौहि, मायौ आदि।

(२) ओकारान्त सज्ञाए ब्रज की एक प्रमुख विशेषता है।[1] डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने बतलाया है कि खडी बोली के पुलिंग सज्ञा शब्द 'आकारान्त" होते हैं वहा ब्रजभाषा में साधारण सज्ञा शब्द और विशेषण ओकारान्त या "ओ-कारान्त' होते है।[2] ब्रजभाषा के पुलिंग शब्दो के अन्त में प्राय ओ' जोडते है।[3] इसी प्रकार से केलाग ने भी कहा है[4] कि ब्रजभाषा में पदान्त का "आ" विशेषणो और क्रियाओ में प्राय 'ओ हो जाता है। "आ' कारान्त के स्थान पर 'ओ कारान्त का प्रयोग सूरदास के बाद प्राय ही देखने को मिलता है।

(३) प्राचीन ब्रजभाषा में "ण' के स्थान पर 'न", 'व" के स्थान पर 'ब" और न' के स्थान पर "ल" का प्रयोग मिलता है।

(४) ब्रजभाषा में द्वित्वो का अभाव है। यह प्रवृत्ति कोमलता के अनुरोध से सभवत ब्रजभाषा में दीख पडती है जैसे 'कहिज्जइ' का 'कहीजे' दृश्यते का 'दीसइ' आदि।

(५) पिंगल में ड और 'ल' अगर किसी शब्द के अन्तिम अक्षर हो तो प्राय वे "र" हो जाते है, जैसे 'पनाले" का 'पनार', भिडे' का "भिरे" आदि। क्ष' को पिंगल में 'छ' कर देते है जैसे 'क्षिति का 'छिति" "क्षमा का 'छमा"।

---

[1] धीरेन्द्रवर्मा ब्रजभाषा पृ० ५७।
[2] भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८४।
[3] मिर्जा खाँ का ग्रामर आफ ब्रजभाखा (जियाउद्दीन) पृ० ४७।
[4] ग्रामर आफ दि हिन्दी लैंग्वेज, पृ० १२८।

(६) पुल्लिग सज्ञा शब्दो के समान विशेषण, आकारान्त साधारण क्रियाएं, भूतकालिक कृदन्त तथा सबध कारक के सर्वनाम और परसर्ग, ओ-कारान्त होते हैं। जैसे गयो, देनो, मेरो, आछो, आदि।

(७) अनुस्वार के ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति भी ब्रजभाषा में पाई जाती है, जैसे "पक्ति" का "पाँत"।

(८) प्राचीन ब्रजभाषा में बहुवचन बनाने के लिये "न" का प्रयोग करते थे। उसके पूर्व का स्वर अगर दीर्घ हो तो वह ह्रस्व हो जाता है, वैसे कभी-कभी ह्रस्व, दीर्घ भी हो जाता है। मूल शब्द अगर इ, ई में अत होते हो तो प्रत्यय लगाने के पहले "य" जोड़ा जाता है। वैसे "न" के स्थान पर 'नि' और 'नु' का भी प्रयोग करते हैं।

(९) सबोधन बहुवचन के लिये व्यजनान्त सज्ञाओं मे 'औ' जोड़ते है लेकिन अगर सज्ञाएँ स्वर में अन्त होती हो तो 'औ' जोडने के पहले ई और ऊ को ह्रस्व कर देते है। आ, ए या जो अन्त में हो तो उनके स्थान पर 'औ' जोड़ते है। जैसे ब्राह्मनौ, बहुओ, भइओ।

(१०) ब्रजभाषा के प्राचीन लेखको ने 'हौं' का प्रयोग समान रूप से किया है वैसे 'मे' का भी प्रयोग प्राचीन ब्रजभाषा में मिलता है। इनके अलावा हो, हुँ तथा मे का भी प्रयोग देखने को मिलता है।

(११) प्राचीन ब्रज मे सबध वाचक सर्वनाम के नियमित रूप जो, जै, जा, जिन मिलते है।

(१२) जाहि, जिहि का प्रयोग सभी कारको मे बिना परसर्ग के होता है।

(१३) ब्रजभाषा-समूह में विभिन्न सर्वनामो के तिर्यक् रूप ता, वा, या, जा, का, साधित है, जबकि खडी बोली-समूह मे वे 'तिस' उस, जिस, किस आदि को लेकर बनते है[1]। खडी बोली में जिसने, उसको, किसने आदि बनते है और ब्रजभाषा मे वानै, जाको आदि।

(१४) पिंगल में निर्विभक्तिक पद प्राय कम देखने को मिलते है।

(१५) ब्रजभाषा की असमापिका क्रियाओ की विशेषता सयुक्त पूर्वकालिक

---

[1] भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १८४।

क्रियाओं के प्रयोग में है। जसे, भई जुरी क खरी, इसमें पूर्वकालिक क्रिया के साथ कृ धातु का पूर्वकालिक रूप देखने को मिलता है।

(१६) 'हो' धातु का व्रजभाषा में 'हुतो' और 'हुतो' या 'हो' होता है, वसे चलती बोली में हुतो और हुते, का हो' और 'है रूप प्राय देखने का मिलता है।

(१७) आज्ञा और विधि में व्रजभाषा धातु में 'इयो लगता है। जैसे जाइयो, रहियो आदि।

(१८) अधिकरण का चिह्न प का प्रयोग करण और आपादान के अर्थ में भी ब्रजभाषा में मिलता है जसे 'तू अलि ! काँप कहत बनाय।'

प्राचीन काव्य भाषा का रूपान्तर—

हम यह देख चुके हैं कि काव्य भाषा के रूप में एक ऐसी भाषा का व्यवहार था जो प्राय समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थी तथा उस काव्य भाषा में ब्रजभाषा के पूर्व रूप को ढूँढ़ा जा सकता है। इसका ढाँचा मुख्य रूप से पश्चिमी था, वस क्षेत्रीय भाषाओं का रंग इसमें कभी-कभी इतना गाढ़ा हो गया है कि एक ही उदाहरण में कोई गुजराती में पूर्व रूप ढूँढ़ता है तो कोई राजस्थानी के। इसी प्रकार से 'बौद्ध गान और दोहा' के प्रकाशित होने पर किसी ने उसमें बंगला का पूर्व रूप ढूढा तो किसी ने उड़िया या असमिया अथवा मथिली का, यद्यपि वह उपभ्रंश की रचनाओं का संग्रह है। इस काव्यभाषा में किस तरह परिवर्तन हुए और किस समय से क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हुआ इसकी निश्चित तिथि बतलाना कठिन है। गुलेरी जी ने इसे ही लक्ष्य करके कहा है कि अपभ्रंश कहाँ समाप्त होता है और पुरानी हिन्दी कहाँ आरम्भ होती है, इसका निर्णय करना कठिन है, किन्तु रोचक और बड़े महत्त्व का है। इन दो भाषाओं में समय और देश के विषय में स्पष्ट रेखा नहीं खींचा जा सकती[१]।'

आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय—

इस काव्य भाषा के काल को लेकर नाना प्रकार के मतभेद हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की रचनाएं सन् ग्यारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी में मिलने लगती हैं। इसका मतलब यह है कि इसके पूर्व ही अपभ्रंश का

[१] पुरानी हिन्दी, पृ० ११।

काल समाप्त हो जाता है। तगारे ने अपभ्रंश का अंतिम काल १२०० ई० माना है[1]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी मे ही 'हिन्दी की काव्य-भाषा के पूर्व रूप' को देखा है[2]। गुलेरी जी का कहना है कि 'विक्रम की सातवी शताब्दी से ग्यारहवी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी मे परिणत हो गई[3]।' डा० तेसीतोरी इन व्यापक काव्य-भाषा को स्वीकार करते हुए अपभ्रंश और पिंगल अपभ्रंश में भेद करते है। पिंगल अपभ्रंश का काल तेसीतोरी ने सन् ईसवी की दसवी शताब्दी से सन् ईसवी की बारहवी शताब्दी तक के काल को माना है[4]।

परवर्ती अपभ्रंश में व्रजभाषा का पूर्व रूप—

व्रजभाषा के पूर्वरूप को परवर्ती अपभ्रंश की रचनाओ में हम देख पाते है। इन रचनाओं में गद्य का अभाव है। अधिकांश रचनाएँ पद्य मे है। इन रचनाओ मे आने वाली आधुनिक आर्य भाषाओं का आभास मिलने लगता है, 'पुरातन प्रबन्ध', 'प्रबन्ध चिन्तामणि', 'प्राकृत पैंगलम्' आदि में बहुत से ऐसे पद्य आए है, जिनमे भाषा के बदलते हुए रूप पर प्रकाश पडता है। हेमचन्द्र के व्याकरण में निम्नलिखित दोहा आया है —

> बाह विछोडवि जाहि तुहुं, हउं तेवईं को दोसु।
> हियअट्ठिअ जइ नीसरहि, जाणउं मुंज सरोसु॥

गुलेरी जी इस दोहे को सं० ११९९ से पहले की रचना मानते है[5]। 'पुरातन प्रबध' में ऐसे छन्द है जो हिन्दी के निकट है। जैसे —

> चारि पाय विचि डुडुगुसु डुडुगुसु। जाइ जाइ पुणु रुड्डुघुसु रुड्डुघुसु॥
> आगलि पाछलि पूंछे हलावइ। अंधारउं फिरि मूला चावइ॥[6]

---

[1] हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, पृ० ४।

[2] बुद्ध-चरित की भूमिका, पृ० ६।

[3] पुरानी हिन्दी, पृ० ८।

[4] नोट्स आन ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी 'इंडियन ऐण्टिक्वेरी (१९१४-१६ ई०)।

[5] पुरानी हिन्दी, पृ० ४५।

[6] पुरातन प्रबन्ध सग्रह, पृ० १०, पद्याक ८।

मुनि जिन विजय जी का अनुमान है कि इन छन्दों का सकलन जिस प्रति में हुआ है उसका काल सन १४४३ ई० से पहले का है।[1]

नीचे हम 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के पद्यों को लेकर देखने की चेष्टा कर रहे हैं कि उनमें ब्रजभाषा के पूर्व रूपों का परिचय हमें किस प्रकार से मिल रहा है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' जैन आचार्य मेरुतुंग ने सकलित की है। इसका संग्रहकाल सन १३०४ ई० है।

अम्मणिओ संदेसडओ तारय कन्ह कहिज्ज।
का दालिदिहि डुब्बिउ वलिबंधणह मुहिज्ज॥

इसमें 'सदेसडओ' ब्रजभाषा के 'सदेसड़ो' का पूर्व रूप है तथा 'डुब्बउ' ब्रजभाषा के 'डूब्या' का। एक दूसरे पद्य में ब्रजभाषा के 'ओ' कारान्त विशेषण का पूर्व रूप देखने को मिलता है —

राणा सव्वे वाणिया जसवु वडडउ सेठि।
काहू वणिजहु माण्डीयउ अम्मीणा गढ हेठि॥

वडडउ (वडडो—वडा) जैसे विशेषण शब्दों का प्रचलन उस समय हो गया था। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के सकलित पद्य कितने पुराने हैं, इसका ठीक ठीक ब्यौरा बताना कठिन है फिर भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के मत से 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के रचनाकाल से वे पचास-साठ वर्ष पहले के भी हो सकते हैं अथवा 'ऐसे घिसे सिक्के यदि सौ दो सौ वर्ष पुराने भी हों तो आश्चर्य नही'[2]।

निम्नलिखित पद में ब्रजभाषा की क्रिया के भूतकाल का रूप दीख पड़ता है

झाली तुट्टी किं न मुउ किं हुयउ छार पुंज।
हिंडइ दोरी बंधीयउ जिमि मकड तिम मुंज॥

'हुयउ' 'हुओ' का तथा 'बंधीयउ', 'बंध्यो' का पूर्व रूप है।

प्राकृत पैंगलम् में ब्रजभाषा की क्रियाओं, संज्ञाओं के प्रयोग—

"प्राकृत पैंगलम" में बहुत से ऐसे पद्य आए हैं, जिनमें ब्रजभाषा के रूप प्रकट होने लगे हैं। "प्राकृत पैंगलम" सन इसवी की तेरहवीं, चौदहवीं

---

[1] पुरातन प्रबन्ध प्रस्ताविक वक्तव्य पृ० ११।

[2] पुरानी हिन्दी, पृ० २२।

शताब्दी का सग्रह-ग्रन्थ है। इसमें छदो के लक्षण व उदाहरण दिए हुए है। यह ग्रन्थ कई दृष्टियो से अपना महत्त्व रखता है। इसका प्रकाशन सन् १८९४ ई० में "प्राकृतपिंगल सूत्राणि" के नाम से निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से हुआ था। बाद में चलकर इसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में "रायल एशियाटिक सोसाइटी" की ओर से हुआ, जिसका सपादन श्री चद्रमोहन घोष ने किया है। यह ग्रन्थ अत्यन्त ही लोकप्रिय हुआ। डा० तेसीतोरी ने इसकी भाषा के सम्बन्ध में बतलाया है कि इसकी भाषा ईसवी सन् की बारहवी शताब्दी के पहले की नही है।[1] वैसे डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या इसका रचना-काल सन् ९००–१४०० ई० के बीच मानते है।[2]

"प्राकृत पैंगलम्" के नीचे उद्धृत पदों में ब्रजभाषा की क्रियाओ, सर्वनामों तथा सज्ञाओ और परसर्गों आदि के प्रयोग मिलते है।

(क) हहो हजे काहा किज्जउ आओ पाउस कीलताए।[3]

(ख) अहिगण पापगणो धुअ पचकले पिगले कहिओ।[4]

(ग) परिखम्म मआलु मइदो दडो मक्कलु मअणु मरट्ठो।
वासठो कंठो मोरो ववो भमरो मिण मरट्ठो॥[5]

(घ) कप्पिअ मेच्छ सरीर पेच्छइ वअणाइ तुमह धुअ हम्मीरो॥[6]
(ब्रजभाषा का 'तुमहि")

(ङ) संभुहि सउ भण भिग गण चउआलीस मुणेहु।[7]
(ब्रजभाषा का 'सौं)

(च) वुहअण मण सुहइ जु जिम ससि रअणि सोहए।[8]
(ब्रजभाषा का 'जु')

---

[1] नोट्स आन ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी, "इडियन ऐण्टीक्वैरी, १९१४, भूमिका, पृ० २३।
[2] ओरिजिन एण्ड डैवलेपमेण्ट आफ बेंगाली लैंग्वेज, पृ० ६४।
[3] ५।१६।४। [4] २४।५।
[5] १९३।४।
[6] १२७।४।
[7] १९२।२
[8] २६३।३।

पृथ्वीराज रासो और 'ढोला मारूरा दूहा' में ब्रजभाषा का विकसित रूप—

"पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता और रचनाकाल को लेकर काफी मतभेद है फिर भी उसके कुछ अंश को तो प्रामाणिक और पुराना स्वीकार करने के पक्ष में बहुत लोग हैं। पृथ्वीराज रासो की भाषा, ब्रजभाषा के विकास को समझने में अत्यधिक सहायक होगी। ढोला मारू रा दूहा ब्रजभाषा के विकास को समझने के लिए और भी अधिक महत्त्व का है। इसकी भाषा का कबीर की भाषा से अत्यधिक साम्य है। 'ढोला' की भाषा का श्री सूर्यकरण पारीक सन् ईसवी की तेरहवीं से सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच की मानते हैं।[1] इसकी भाषा को वे उस साहित्यिक भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाला मानते हैं जो उत्तर भारत में गुजरात से अंतर्वेद तक व्यवहार में आती थी।[2] काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'ढोला मारू रा दूहा' के संपादक भी इसकी भाषा को ब्रजभाषा मानते हैं। उनका कहना है कि 'ढोला की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है परन्तु यहाँ पर यह न भूलना चाहिये कि उस समय राजस्थान एवं ब्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को ब्रजभाषा भी वैसे ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी।[3]

अमीर खुसरो की रचनाओं में ब्रजभाषा—

अमीर खुसरो की रचनाओं में ब्रजभाषा का पूरा ढाँचा देखने को मिलता है। अमीर खुसरो का काल सन १२५५ ई० से सन १३२४ ई० तक का है। अमीर खुसरो के निम्नलिखित पद्य को देखने से लगता है कि उन्होंने परम्परागत काव्य भाषा (ब्रजभाषा) को अपनाया है।

"अति सुंदर जग चाहै जाको। मैं भी देख भुलानी वाको।
देख रूप आया जो टोना। ए सखि! साजन, न सखि! सोना॥

सन् ईसवी की १५वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा की रचनाओं का प्रभाव—

अभी तक हमने जिन रचनाओं या कवियों का उल्लेख किया उसे देखकर

---

[1] हिंदुस्तानी, एप्रिल १९३६ ई०, पृ० ३०१।

[2] वही, पृ० ३०१।

[3] "ढोला मारू रा दूहा, भूमिका, १६७–१६८।

यह सहज ही समझा जा सकता है कि इस काल में ऐसी कोई रचना नही मिलती जो सम्पूर्ण रूप में ब्रजभाषा-साहित्य की सीमा के भीतर निबद्ध की जा सके। कम-से-कम अभी तक उस काल की ऐसी कोई भी रचना उपलब्ध नही जिसे विशुद्ध ब्रजभाषा साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सके। सन् ईसवी की पन्द्रहवी शताब्दी तक यह बात दृष्टिगोचर होती है। 'प्राचीन ब्रजभाषा पर प्रकाश डालने वाले किसी महत्त्वपूर्ण शिलालेख अथवा ताम्रपत्र के लेख का भी पता अब तक नही चला है'।[1]

कबीर की रचनाएँ—

वास्तव में ब्रजभाषा-साहित्य का प्रारम्भ सन् ईसवी की सोलहवी शताब्दी से मानना चाहिये। सन् ईसवी की पन्द्रहवी शताब्दी में कबीर का नाम उल्लेख योग्य है, लेकिन कबीर की रचनाएँ ब्रजभाषा में नही लिखी गई है। उनमें पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, अवधी ब्रज आदि मिश्रित है। इसीलिए बहुत लोगो ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कडी' भाषा कहा है।

ब्रजभाषा साहित्य का प्रारम्भ और वल्लभ संप्रदाय—

डा० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ सन् १५१९ ई० से मानते है।[2] महाप्रभु वल्लभाचार्य ने गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के मदिर को पूरा होने पर मदिर में कीर्त्तन की व्यवस्था की। भगवान के विग्रह के सम्मुख विकसित रूप से कीर्त्तन करने वाले गायको को रखा जो पद की रचना करते और उसी का गान करते। डा० दीनदयाल गुप्त के मत से वल्लभाचार्य सवत् १५४९ में ब्रज गए और वहा श्रीनाथजी का मदिर बनवाया।[3] उसके सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत मुझे अधिक यथार्थ प्रतीत होता है। उनके मतानुसार 'सवत् १५५६ वैशाख सुदी ३ आदित्यवार को गोवर्द्धन में श्रीनाथ जी के विशाल मदिर की नीव रखी गई थी। यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है।[4]' ब्रजभाषा के विकास और उत्कर्ष-साधन मे कृष्ण भक्ति का बहुत बड़ा हाथ है। वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यो ने कृष्ण-भक्ति में विभोर हो पदो की रचना की और

---

[1] डा० धीरेन्द्र वर्मा, 'ब्रजभाषा' पृ० २०।

[2] ब्रजभाषा, पृ० २१।

[3] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ७१।

[4] ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ११।

ब्रजभाषा-साहित्य प्रकारान्तर से समृद्ध हुआ। इन भक्तों के गीतों में एक अपूर्व माधुर्य और काव्योत्कर्ष है। इन सभी गुणों के कारण ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

रामानन्द, वल्लभाचार्य और अष्टछाप के कवि—

सन् ईसवी की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उत्तरी भारत हिन्दू धर्म तथा अन्यान्य भारतीय धर्मों और धर्म साधनाओं के अलावा इस्लाम धर्म के सम्पर्क में आया। इस नये धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव भले ही हिन्दू धर्म और समाज पर न पड़ा हो लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इसने अवश्य ही अपना प्रभाव डाला। उत्तरी भारत को अत्यधिक प्रभावित करने वाली भक्ति की धारा दक्षिण से आई। इस भक्ति की धारा ने जैसे उत्तर भारत की जनता में नए प्राण का संचार किया। उस काल के दो आचार्यों रामानन्द (सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी) और महाप्रभु वल्लभाचार्य (सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी)—ने भक्ति की प्रबल धारा बहा दी। रामानन्द के शिष्यों में राम के उपासक भक्त थे। राम के उपासकों में दो प्रकार के भक्त थे। एक तो निर्गुण भाव से उपासना करने वाले और दूसरे सगुण भक्ति को अपनाने वाले जिन्होंने राम को अवतार माना। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया। कृष्ण भक्ति का प्रचार महाप्रभु के नाम के साथ जुड़ा हुआ है। इन्होंने भगवान की लीला को ही आश्रय किया और भगवान के साथ भक्त के निकट-सम्बन्ध की भावना की पुष्टि की। वल्लभाचार्य का प्रभाव ब्रज, राजस्थान, गुजरात तक बढ़ा। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने ब्रजभाषा-साहित्य को विशिष्टता प्रदान की। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की। इनमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य तथा चार विट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनके नाम यों हैं—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी। इनकी चर्चा आगे अन्य अध्याय में की गई है।

अष्टछाप के इन कवियों का ध्यान बराबर लीलागान की ओर रहा। भगवान् की रूप माधुरी से छके हुए ये भक्त-कवि गान करते रहे और प्रकारान्तर से ब्रज-साहित्य को समृद्ध करते रहे।

वृन्दावन में महाप्रभु चैतन्य के शिष्य—

वल्लभाचार्य के समय में ही चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों ने वृन्दावन को अपना क्षेत्र बनाया। चैतन्य सम्प्रदाय में मधुर भाव की भक्ति का प्राधान्य

है। गोपी भाव से भी ये भगवान् को भजते है। इस सप्रदाय मे परकीया भाव को ही प्रभुसत्ता दी गई है। वृन्दावन मे वास करने वाले महाप्रभु चैतन्य देव के शिष्यो मे रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी वहुत वडे शास्त्रज्ञ थे। उन्होने भक्ति आदि के सवन्ध मे एक क्रमवद्ध दर्शन का प्रवर्तन किया। भागवत पुराण इनका उपजीव्य है। इस सप्रदाय का प्रभाव भी व्रजभापा के भक्त कवियो पर पडा।

कृष्ण भक्ति और व्रजभापा साहित्य—

सन् ईसवी की पन्द्रहवी शताब्दी मे जो कृष्ण भक्ति का प्रवर्तन और प्रसार हुआ, उसने वडे व्यापक भाव से अपना प्रभाव-विस्तार किया और व्रजभूमि कृष्ण भक्तो का केन्द्र वनी। यह भक्ति की धारा आने वाली कई शताब्दियो तक काव्य रचना को प्रेरणा देती रही। इन भक्त कवियो में वल्लभ सप्रदाय के भक्तो का स्थान काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इन्होने एक अपूर्व साहित्य की सृष्टि की और व्रजभाषा काव्य को एक अभिनव माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया। उपर्युक्त दो सप्रदायो के अलावा गोस्वामी हित-हरिवंश द्वारा प्रवर्तित 'राधावल्लभी सप्रदाय' और गोस्वामी हरिदास द्वारा पोषित 'टट्टी सप्रदाय' का भी महत्त्व व्रजभापा-साहित्य की दृष्टि से उल्लेख योग्य है। इन दोनो सम्प्रदायो के भक्तो और उनके शिष्यो ने व्रजभाषा मे काव्य-रचना की। यह परम्परा वहुत दिनो तक चलती रही। इसी के साथ 'सखी सम्प्रदाय' का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के भक्तो में सखी भाव की साधना है। सन् ईसवी की सत्रहवी शताब्दी के वाद के भक्ति साहित्य मे सखी भाव की प्रधानता दीख पडती है। इन सम्प्रदायो के व्रजभापा के भक्त-कवियो की चर्चा अन्यत्र की गई है।

तुलसीदास की रचनाएँ और नाभादास का भक्तमाल—

सन् ईसवी की सोलहवी शताब्दी के भक्त कवियो में मीरा का नाम सुप्रसिद्ध है। उनकी रचनाओ मे व्रजभाषा का पुट है वैसे उनके गीतो की भाषा मुख्य रूप से राजस्थानी-गुजराती का मिश्रण है। वृन्दावन के कृष्ण भक्तो मे उनका नाम बडे समादर के साथ लिया जाता है। व्रजभाषा के कवियो में तुलसीदास, नाभादास और नरोत्तमदास के भी नाम लिये जा सकते है। तुलसीदास की व्रजभापा की रचनाओ मे अवधी का कुछ न कुछ प्रभाव दीख जाता है। नाभादास का 'भक्तमाल' भी व्रजभापा में ही लिखा गया है। भक्तो की जीवनी पद्य में लिखी गई है। काव्य की दृष्टि से 'भक्त-

माल' का महत्त्व नही है, लकिन भक्तो के जीवन पर प्रकाश डालने वाला यह ग्रन्थ भक्तो के सम्बध में जानकारी प्राप्त करने का एक बहुत बडा साधन माना गया ह।

नरोत्तमदास का सुदामाचरित तथा बादशाह अकबर की रचनाएँ—

सन् ईसवी की सोलहवी शताब्दी के ही नरोत्तमदास का 'सुदामाचरित' ब्रजभाषा के काव्य-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। ब्रजभाषा में लिखित यह एक अत्यन्त ही सुदर खण्ड काव्य है। ब्रजभाषा काव्य का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि राजाओ और बादशाहो के दरबार में भी उसका समादर हुआ। स्वय अकबर के नाम स भी ब्रजभाषा में लिखित दोहो के उद्धरण इधर-उधर देखने का मिल जाते ह। जसे नीचे का एक दोहा —

> जाको जस ह जगत में, जगत सराहै जाहि।
> ताको जनम सफल ह, कहत अकबर साहि॥[1]

रीतिकाल का साहित्य—

ब्रजभाषा-साहित्य का सन ईसवी की पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की सतरहवी शताब्दी तक का काल भक्ति से ओतप्रोत है। पहले की ऐहिकता परक कविताओ को भी इसने अपने रग में रग लिया लेकिन भक्ति का यह वग और प्राण सचार करने वाली प्रेरणा धीरे धीरे क्षीण होती गइ और उनके स्थान पर ऐहिकता-परक शृगारी मनोवृत्ति ने अपना अधिकार जमा लिया। सन् ईसवी की सतरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस प्रवृत्ति ने अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। सन् ईसवी की उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इसका पूरा आधिपत्य रहा। सस्कृत ग्रन्थो के आधार पर अथवा उनस प्रेरणा ग्रहण कर तत्कालीन कवियो ने लक्षण ग्रन्थ लिखे। नायिका भेद पर पुस्तकें लिखी गई। राधा कृष्ण, गोपियो आदि का नाम ये कवि बीच-बीच में लिया करते थे, लकिन उनके काव्य की मूल प्रेरणा शृगारिकता ही थी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में यह काल 'रीतिकाल' के नाम से सुपरिचित ह। इस काल की कविता का प्रधान लक्ष्य चित्त विनोदन ही रहा।

रीतिकाल के प्रमुख कवि—

'भक्त-माल' के भक्त कवियो के बाद ब्रजभाषा के कवियो में सवप्रथम

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी, भाग १ छठा सस्करण, पृ० ४८–४९।

केशवदास का नाम महत्त्व का है। उन्होंने अलंकार और रस की विवेचना सुन्दर ढंग से की है। छन्दो के अद्भुत प्रयोग इन्होने किये है। रीतिकाल के प्रमुख कवियो में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, देव, बिहारी, सेनापति, घनानन्द आदि है। सन् ईसवी की अठारहवी शताब्दी के अन्त तक छन्द, अलकार, रस सबन्धी न जाने कितने ग्रन्थो की रचना रीतिकाल के कवियो ने की। उस समय की यह एक मुख्य प्रवृत्ति थी। कवि को लगता था, जैसे अलकार, रस आदि के सबन्ध में उसने अगर कोई ग्रन्थ नही लिखा तो जैसे कुछ नही किया। रीतिकालीन कवियो में होते हुए भी 'भूषण' ने वीर रस की कविताएँ लिखी है। वैसे ही शिवाजी और महाराज छत्रसाल के आश्रित थे, इसलिये उनके काव्य में उनकी प्रशसा में बहुत कुछ लिखा गया। फिर भी उनकी विशिष्टता इस बात में है कि उनकी कविता मे हिन्दू राष्ट्रीयता को ध्यान में रखा गया है। यद्यपि अपने काव्य में भूषण ने परम्परागत रूढियो का पालन किया है। फिर भी उसमें प्राण है और समाज को अनुप्राणित करने की उसमें शक्ति है। विहारी की 'सतसई' का अपना एक विशेष स्थान है। लोकप्रियता की दृष्टि मे विहारी अन्यतम है। इस दृष्टि से रीतिकाल के कवियो में विहारी के बाद पद्माकर का स्थान है। रसखान भी इसी काल में हुए। लेकिन उनका अपना एक अलग स्थान है। वे भक्त-कवि थे। वे कृष्णभक्त थे। रीतिकाल के कवियो ने व्रजभाषा को सुकुमारता और माधुर्य तो प्रदान अवश्य किया लेकिन लोक जीवन से विच्छिन्न होने के कारण उसमें तेज का अभाव ही रहा। वह केवल दरबार में ही पलती रही। धीरे-धीरे समय का परिवर्तन होता गया। नाना प्रकार के राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल हुए। रीतिकालीन मनोवृत्ति भी बदली और समाज में नई-नई प्रवृत्तियो का उदय हुआ।

भारतेन्दु की रचनाएँ—

व्रजभाषा साहित्य की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जगन्नाथदास रत्नाकर का उल्लेख आवश्यक है। भारतेन्दु के पहले से व्रजभाषा-काव्य में नई प्रवृत्तियो के दर्शन होने लगते है। लेकिन साहित्य की दृष्टि से उनमे वैसा कुछ वैशिष्ट्य नही है। नवीन युग के उदय के पहले तक व्रजभाषा के कवि व्रजभाषा-काव्य की पुरानी परम्परा का पालन करते रहे। उस काल में फुटकल शृगारी पद्य थोड़ा-बहुत-प्रबन्ध-काव्य, कथात्मक प्रबन्ध, नाना प्रकार के फुटकल वर्णन, जैसे, दानलीला, मानलीला, नौका-विहार, नख-शिख,

षट्ऋतु आदि के परम्परामुक्त वर्णन, नीति के फुटकल पद्य तथा उपदेशात्मक पद्य लिखे गए हैं। कुछ ऐसे भी कवि थे जिन्होंने भक्तिमूलक कविताएँ भी लिखी थी। लेकिन यह सब कुछ निष्प्राण और निस्तेज था। भारतेन्दु का आगमन ब्रजभाषा-साहित्य के लिये एक बहुत बड़ी घटना थी। भारतेन्दु ने साहित्य में एक नया प्राण फूंक दिया। भाव और भाषा की दृष्टि से उन्होंने ब्रजभाषा-काव्य का परिष्कार किया। कृष्णभक्त कवियों की तरह उन्होंने कृष्ण की लीला विहार आदि का वर्णन किया। उनके सरस कवित्त और सवैयों में उनकी भक्ति के दर्शन होते हैं। ये कवित्त और सवैये उस काल में अत्यन्त ही लोकप्रिय थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जिससे उनके भक्त हृदय का पता चलता है।

वह सुन्दर रूप विलोकि सखी, मन हाथ ते मेरे भग्यौ सो भग्यौ।
चित माधुरी मूरति देखत ही, 'हरिचंद' जू जाय पग्यौ सो पग्यौ।
मोंहि औरन सो कछु काम नहीं, अब तो जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ।
रंग दूसरो और चढ़गो नहीं, अलि, सांवरो रंग रग्यौ सो रग्यौ॥

इसी प्रकार एक अन्य पद्य में 'चन्द्रावली' के रूप में हरिश्चन्द्र का भक्त-हृदय ही जैसे कह उठता है।

सखी, ये नैना बहुत बुरे।
तब तें भये पराये हरि सो जब तें जाइ जुरे।
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाडि, ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यो बरज्यौ पै ये नाहिं, हठ सों तनिक मुरे।
अमृत भरे देखत कमलन-से, विष के बुते छुरे॥

उस पियारे की याद कुछ ऐसी सर्वग्रासिनी है कि संसार के सभी काम, सभी सम्बन्ध, नाना प्रकार की कामनाएँ और सुख की आकांक्षा बराबर के लिये समाप्त हो जाती है।

पियारे, क्यों तुम आवत याद?
छूटत सकल काज जग के, सब मिटत भोग के स्वाद॥

× × × ×

तुम जग के सब कामन के अरि, हम यह निहचै जान।
'हरिचंद' तौ क्यों सब तुम्हरे प्रेमहिं जग में सान॥

हरिश्चन्द्र कृष्ण भक्त थे, वैसे अन्य सम्प्रदायो या देवताओ के प्रति उनकी द्वेष-बुद्धि नही थी। 'वियोगी हरि' जी के अनुसार वे 'वल्लभ कुल के अनन्य वैष्णव थे।'[1]

हम तो मोल लिये या घर के।
दास-दास श्री वल्लभ-कुल के, चाकर राधावर के॥
माता श्री राधिका, पिता हरि, बंधु दास गुनकर के।
'हरिचंद' तुम्हरे ही कहावत, नहि विधि के, नहि हर के॥

भारतेन्दु ने कविता के लिये ब्रजभाषा को अपनाया और गद्य के लिये खड़ी बोली को। भाषा की दृष्टि से उन्होने काव्य-भाषा का संस्कार किया। चलते शब्दो का प्रयोग उन्होने अपनी रचनाओ में किया है। हरिश्चन्द्र के समय तक आते-आते ब्रजभाषा के कवियो में भाषा-सम्बन्धी कई दोष आ गए थे। जैसे, तोड-मरोड़ कर भाषा के विकृत रूप का मनमाना प्रयोग तथा बहुत पहले से आते हुए शब्दो का प्रयोग जो उस समय की लोक-भाषा में अप्रचलित हो गए थे। भारतेन्दु ने इन सभी दोषों को दूर किया।

'रत्नाकर' की रचनाएँ—

ब्रजभाषा—काव्य की परम्परा बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' तक आकर समाप्त हो जाती है। 'रत्नाकर' जी ब्रजभाषा के अनन्य उपासक थे और अन्त तक ब्रजभाषा में ही लिखते रहे, यद्यपि उस समय तक 'खडी बोली' ने 'ब्रजभाषा' का पूरा-पूरा स्थान ले लिया था। सन् ईसवी की बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे ही 'खडी बोली' का व्यवहार होने लगा था और उत्तरोत्तर वह बढता ही गया तथा उसके साथ ही साथ ब्रजभाषा का प्रभाव क्रमश कम होता जा रहा था। 'रत्नाकर' जी ने भी परम्परा का निर्वाह किया है, लेकिन उनकी शैली में मौलिकता है। उनकी भाषा में ओज, प्रसाद गुणो का समावेश है। उन्होने अपनी कविताओ में भाषा की विशुद्धता पर पूरा ध्यान रखा, साथ ही इस बात को भी उन्होने आँखो मे ओझल नही होने दिया कि भाषा की सरसता खंडित न हो। इनके तीन प्रवन्धकाव्य अत्यन्त सुन्दर है: हरिश्चन्द्र' 'गगावतरण' और 'उद्धवशतक'। शृगार और वीर रस की फुटकल रचनाएँ भी उन्होने की है। 'उद्धव शतक' में गोपियो के विरह का सुन्दर वर्णन है। 'उद्धव शतक' से कुछ पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं:

[1] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण, स० २००६), पृ० ३१७।

मोर के पखौवनि को मुकुट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि मडित धराइ करिहै कहा।
कहै 'रतनाकर' त्यों माखन-सनेही बिन
षट रस व्यजन चबाइ करिहै कहा॥
गोपी ग्वाल बालनि कौं झोकि बिरहानल में,
हरि सुर-वृन्द की बलाइ करिहै कहा।
प्यारो नाम गोविन्द गुपाल को बिहाइ हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहै कहा॥

एक दूसरे पद में गोपियो की आतुरता का कितना स्वाभाविक वर्णन है
भेजे मन भावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज गावनि में पावन जब लगीं।
कहै 'रतनाकर' गुवालिनि की झौरि झौरि,
दौरि-दौरि नद-पौरि आवन तब लगीं॥
उझकि-उझकि पद कजनि के पजनि प,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छब लगीं।
हमकौं लिख्यो है कहा हमकौं लिख्यो है कहा,
हमकौं लिख्यो है कहा कहन सब लगीं॥

ब्रजभाषा-काव्य की पिछली कई शताब्दियो के इतिहास पर हम विचार करते रहे हैं। वास्तव में ब्रजभाषा के पद्य साहित्य के परिमाण और वैशिष्ट्य की दृष्टि से यह विवेचना अत्यन्त सक्षिप्त है वसे उसका विशद विवेचन भी यहाँ अभिप्रेत नही है। सक्षिप्त होने पर भी इस विवेचन से ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य के क्रमिक विकास पर थोडा बहुत प्रकाश पडता है। ब्रजभाषा पद्य के बाद थोडे में इसके गद्य की चर्चा कर लेना भी समीचीन होगा।

ब्रजभाषा के गद्य साहित्य का विकास—

ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य की अपेक्षा उसका गद्य साहित्य अत्यन्त अविकसित और अल्प परिमाण है। 'वर्णरत्नाकर' और 'कीर्तिलता' में मथिली गद्य के नमूने देखने को मिल जाते है। उनमें भोजपुरी आदि पूर्वी भाषाओं के प्रयोग भी मिल जाते है। प्राचीन गद्य के जो नमूने इन दोनो ग्रन्थो में मिलते हैं उनकी बात अगर छोड दें तो ब्रजभाषा गद्य का नमूना विक्रमीय सवत् १४०० के लगभग गोरखपथी ग्रन्थो में मिलता है। एक ग्रन्थ में निम्नलिखित गद्य का नमूना मिलता है

"मै जु हौं गोरिप सो मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौ।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत मे यह निश्चित रूप से विक्रमीय संवत् १४०० के आसपास के व्रजभाषा गद्य का नमूना है[1]। लेकिन डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इसमें संदेह प्रकट किया है। उनका मत है कि यह ग्रन्थ बहुत बाद का लिखा हुआ है[2]। व्रजभाषा गद्य का अन्य कोई ग्रन्थ इसके बहुत काल बाद तक नही मिलता। हमको इस अर्थ तक नहीं मिला है। उपर्युक्त गोरखपंथी ग्रन्थ के बाद दूसरी पुस्तक जो मिलती है, वह है विट्ठलनाथ लिखित "शृंगार रस मंडन।" इस ग्रन्थ की भाषा अव्यवस्थित है। विट्ठलनाथ, महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र थे। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों ने व्रजभाषा गद्य मे कई भक्तो की "वार्ताएँ" लिखी है। इन ग्रन्थो मे व्रजभाषा-गद्य के सुन्दर नमूने देखने को मिलते है। उनमें प्रथम 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता" है। यह संभवतः विक्रमीय संवत् की सतरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना है। इसके और बाद की लिखी हुई दूसरी पुस्तक "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" है। इन दोनो पुस्तको की भाषा अत्यन्त व्यवस्थित और शैली रोचक है। इन ग्रन्थो मे जिन भक्तो की "वार्ताएँ" लिखी हुई है, उनका चरित्र बड़ी स्पष्टता के साथ हमारी आंखो के सामने आ जाता है। इनसे लिखने वालो की निपुणता का परिचय मिलता है।

व्रजभाषा में लिखित टीका ग्रन्थ—

व्रजभाषा के गद्य मे लिखित कुछ टीका ग्रन्थ और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ भी है। साहित्य की दृष्टि से उनका विशेष कुछ महत्त्व नही है। इन टीका ग्रन्थो में कुछ के नाम यो है हरिचरनदास लिखित विहारी सतसई की टीका (१७७७ ई०), कवि प्रिया की टीका (१७७८ ई०), अयोध्या के महंत बाबा रामचरन की रामचरितमानस की टीका (१७८४–१७८७ ई०), लल्लू लाल की विहारी सतसई की लाल चन्द्रिका नामक टीका (१८१८ ई०), सूरदास के दृष्टकूट की टीका (१८४७ ई०) आदि।[3] स्वतंत्र गद्य ग्रन्थो में निम्न-लिखित ग्रन्थो के नाम उल्लेखयोग्य है।

डाकौर के प्रियादास की सेवक-चंद्रिका (१७७९ ई०), हित-रूप किशोरी-लाल के एक शिष्य की लिखी हुई श्री नवनीत जी की सेवा-निधि (१७९५ ई०)

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०३।
[2] हिन्दी साहित्य, पृ० ३६४।
[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य, पृ० ३६६।

लल्लूलाल जी की राजनीतिक (हितोपदेश) का अनुवाद (१८०९ ई०) आदि ।[1] इनके अलावा नाभादास जी का अष्टयाम' (संवत् १९६०), नासिकेतोपाख्यान (सं० १९८०), संवत १८५२ की "आईन अकबरी की भाषा वचनिका" का भी उल्लेख किया जा सकता है[2]' ।

ब्रजभाषा गद्य में इन टीकाओं की परम्परा सन् इसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक पूरी मात्रा में रही । कुछ टीकाएँ बाद की भी मिल जाती है । इतना सही है कि ब्रजभाषा गद्य का उतना विकास नहीं हुआ कि यह बाद में गद्य साहित्य का वाहन बने । उसका स्थान 'खड़ी बोली" ने ले लिया । सन ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सदासुख लाल लल्लूलाल आदि ने जो गद्य लिखा उसमें भी ब्रजभाषा का प्रभाव है । लल्लूलाल की भाषा में तो ब्रजभाषा का पूरा पूरा प्रभाव है । सदासुखलाल की भाषा में भी ब्रज भाषा का प्रभाव पड़ा है वैसे उन्होंने भरसक उससे बचने की कोशिश की है ।

ब्रजभाषा के नाटक—

साधारणत ब्रजभाषा के नाटकों का प्रारम्भ सन् ईसवी की सतरहवीं शताब्दी से मानते हैं । आचार्य रामचंद्र शुक्ल आनंद रघुनंदन' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते है ।[3] वास्तव में यह ब्रजभाषा में लिखा हुआ है । इसके लिखने वाले रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह थे । उनका राज्य काल संवत १८७० से लेकर १९११ तक का है । बाबू श्यामसुन्दर दास किसी प्रकार से 'आनंद रघुनन्दन' को नाटक की कोटि में रखने को तैयार है ।[4] डा० दशरथ ओझा गयसुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते है और हिंदी नाटक की उत्पत्ति का काल तेरहवीं शताब्दी संवत १२८९ वि० मानते है ।[5] डा० ओझा रासक' और 'रास' को हिन्दी नाटकों का पूर्व रूप मानते है ।[6] ब्रजभाषा में रास की परम्परा वैष्णव धर्म के प्रचार और प्रसार

[1] हिन्दी साहित्य (द्विवेदी), पृ० ३६६ ।
[2] रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०५ ।
[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२५ ।
[4] रूपक रहस्य पृ० ३८ ।
[5] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ० ९३ ।
[6] वही, पृ० ८७ ।

के साथ प्रारम्भ हुई। डा० ओझा ने लिखा है कि सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी में हित हरिवंश जी, श्री वल्लभाचार्य जी तथा गदाधर भट्ट जी तथा अन्य आचार्य महात्माओं ने व्रजभाषा में सर्वप्रथम कृष्णरास मण्डल रचाया जिसमें नृत्य, संगीत और नाट्य को भी स्थान मिला।[1]

व्रजभाषा के लीला संबन्धी भक्त कवियों के नाटक—

कहते हैं कि व्रजभाषा के प्रारम्भिक लीला-संबन्धी नाटक के रचयिता नन्ददास जी थे[2]। नन्ददास रचित 'स्यामसगाई' में नन्ददास की भाषा और उनकी शैली अत्यन्त रोचक है। इस प्रकार के साहित्य की रचना करने वाले भक्तकवि ध्रुवदास, चाचा वृन्दावन दास आदि हैं। ध्रुवदास की 'ब्यालीस लीला' की अप्रकाशित प्रति से डा० दशरथ ओझा ने 'हिन्दी नाटक' (पृ० ११६) में कुछ उद्धरण दिए हैं, उनसे ध्रुवदास (रचनाकाल सं० १६६० से १७००) की भाषा का कुछ परिचय मिल जाता है। जैसे निम्नलिखित दोहा :-

> दान दान तुम कहत हौ, सुन्यो न कबहुँ कान।
> इहिठा विन कुंजेश्वरी, नहिं काहु को कान॥

चाचा वृंदावन के बाद व्रजवासी दास की रचनाओं में नाटक के प्रति उनकी अभिरुचि का पता चलता है। उन्होंने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का अनुवाद गद्य-पद्य मय भाषा मे किया है, वैसे व्रजवासीदास की भाषा में पहले की स्थापनाओं की अपेक्षा तत्सम शब्द अधिक मिलते हैं। डा० श्यामसुन्दरदास नेवाज कवि कृत शकुन्तला, हृदयराम कृत हनुमन्नाटक और व्रजवासीलाल कृत प्रबोध चन्द्रोदय को नाटक मानने को तैयार नहीं, क्योंकि उनमें नाटक के नियमों का पालन नहीं किया गया है[2]। भले ही वे नाटक-रचना के सभी सिद्धान्तों पर खरे न उतरे, लेकिन हैं वे नाटक ही। इन सभी नाटकों में व्रजभाषा का प्रयोग है। नाटकों में व्रजभाषा का कम या बेशी प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल तक होता रहा।

---

[1] हिन्दी नाटक०, पृ० ९९–१००।
[2] वही, पृ० १०५।

तीसरा अध्याय

ब्रजभाषा साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव

ब्रजभाषा साहित्य के उद्भव और विकास के क्रमिक इतिहास को देखते हुए हमने लक्ष्य किया है कि भक्ति-आन्दोलन से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ है। इस अध्याय में भक्ति से अनुप्राणित ब्रजभाषा साहित्य के नवोत्थान पर विचार करेंगे।

ब्रजभाषा साहित्य और भक्ति-आन्दोलन—

ब्रजभाषा-साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी से होता है। सूरदास की प्रौढ रचना इस दृष्टि से प्रथम मानी जा सकती है। कम से कम अभी तक ब्रजभाषा का जो साहित्य सूरदास से पूर्व का है उसमें यह बात नहीं पाई जाती जो सूर की रचनाओं में है। लेकिन सूरदास की रचनाओं को देखकर सहसा यह मन में आता है कि उन रचनाओं के पीछे कोई ऐसी परम्परा, चाहे मौखिक ही हो, अवश्य रही होगी जिसकी परिणति उस रूप में हुई।[1] भाषा का चमत्कार भावों की अभूतपूर्व अभिव्यंजना तथा भक्ति का चरम निदर्शन जिस प्रकार से सूरदास की रचनाओं में पाया जाता है, उसे देखकर पाठक केवल अभिभूत ही नहीं होता, बल्कि उसे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। वास्तव में ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और प्रभावोत्पादकता विद्वानों को आश्चर्य में डाल देती है। *पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद के साहित्य के मूल में यही भक्ति-आन्दोलन है।* भक्ति की धारा ने तत्कालीन भारतीय समाज को उत्तर से दक्षिण तक आप्लावित कर दिया था। इसे देखकर यूरोपीय विद्वानों ने आश्चर्य प्रकट किया है और इसके कारण भी ढूंढ़ने की उन्होंने चेष्टा की है। डा० ग्रियर्सन ने इस आन्दोलन की व्यापकता और क्षिप्रता को लक्ष्य करते हुए कहा है कि सन् ईसवी की पन्द्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों के भारतीय धार्मिक साहित्य को जो पढ़ेगा, वह पुरानी और नयी (भावनाओं) के बीच के व्यवधान को लक्ष्य किए बिना नहीं रह सकता। हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सम्मुख पाते हैं जिसे भारतवर्ष ने पहले कभी नहीं देखा है। यह बौद्ध

[1] रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी शब्द सागर (आठवां भाग), पृ० १०४।

धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज तक वर्तमान है। अब धर्म केवल ज्ञान के लिये नही रह गया था, बल्कि रस का विषय हो गया था।[१]

व्रजभाषा-साहित्य पर वैष्णवता ने अपने आप को कई रूपो में प्रकट किया। भाव, भाषा तथा शैली तीनो में पहले की अपेक्षा एक बडा परिवर्तन दीख पडता है। इन तीनो पर अलग-अलग हम थोडे में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। लेकिन इसके लिये सबसे पहले तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्था की जानकारी प्राप्त कर लेना हमारे इस अध्ययन के लिये सुविधाजनक होगा।

तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति—

ईसवी सन् की दसवी शताब्दी से भारतीय जनता को इस्लाम का परिचय मिलने लगा था। मुसलमानो के आक्रमण के समय भारतवर्ष की राजनैतिक अवस्था विशृखल थी। दिल्ली का प्रभुत्व नाममात्र को था। हिन्दू राजा आपस मे ही लडते रहे और अपने छोटे से दायरे में राज्य-विस्तार के स्वप्न देखते रहे। केन्द्रीय शक्ति के कमजोर होने तथा हिन्दू राजाओ के आपसी वैर के कारण उत्तर भारत के हिन्दू राज्य ईसवी सन् की दसवी से लेकर चौदहवी शताब्दी के बीच प्राय नष्ट हो गए और मुसलमानो का प्रभुत्व उनके स्थान पर हो गया। मुसलमानो के आक्रमण के साथ-साथ उनका धर्ममत भी इस देश मे आया। इस धर्म मत का परिचय हिन्दू समाज के भीतर कई प्रकार का परिवर्तन ला देने वाला सिद्ध हुआ। जाति-पाति की कठोरता इसके बाद हिन्दू समाज मे अत्यधिक देखने को मिलती है। सभवत अपनी आत्म रक्षा की भावना से यह समाज अपने में अधिक से अधिक सिमटता गया और जाति-पाति के नाना सामाजिक बधनो को स्वीकार कर लिया। दूसरी ओर एक अन्य प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। जो लोग हिन्दू समाज में निम्न वर्ग के समझे जाते थे तथा जो लोग उपेक्षित थे, वे नए धर्म मत की ओर झुके। इस्लाम धर्म मे उन्हे अपने लिये एक त्राण का रास्ता नजर आया। सामाजिक समानता उन्हे इस्लाम धर्म मे प्राप्त होती दीख पड़ी। इसलिए ये जातियाँ धीरे-धीरे मुसलमान बनती गई। समस्त हिन्दू समाज मे किसी भी प्रकार का उत्साह उस काल मे नही दीख पडता। इस प्रकार से राजनैतिक और

[१] ग्रियर्सन · इन्सायक्लोपिडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स, पृ० ५४८।

सामाजिक क्षेत्र में ह्रास, पराजय सकीर्णता तथा रूढिवादिता का व्यापक प्रभाव उस समय उत्तरी भारत में दीख पडता है। अतएव चिन्ता-स्वातन्त्र्य का भी उस काल में लोप हो गया।

धार्मिक आन्दोलन—

धार्मिक क्षेत्र में इसलाम धर्म को वह सफलता नही मिली जैसी कि ईरान, अफगानिस्तान आदि देशो में इसे मिल चुकी थी। अप्रत्यक्ष रूप से इस धर्म ने अपना कुछ प्रभाव यहा की सस्कृति पर अवश्य डाला। उस काल मे सूफी कवियो ने अवश्य ही हिन्दू धर्म और इस्लाम की कुछ बातो में समानता दिखलाकर दोनो सम्प्रदायो को निकट लाने की चेष्टा की। उन्होने 'अद्वैतवाद' में इस्लाम के एकेश्वरवाद को ढढा। इस्लाम धर्म जब इस देश में आया तब भारतवर्ष में जैन बौद्ध शैव और वैष्णव मत के अनुयायी थे। उस समय तन्त्र मन्त्र, जादू-टोना तथा नाना प्रकार की चमत्कार की कहानियो का पूरा प्रभाव था। नाथ पथी, सिद्ध, योगी आदि समाज में बहुत आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इन लोगो ने हिन्दू धर्म के बाह्याचारो तथा रूढि वादिता पर करारी चोट की है। ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में सपूर्ण भारतवर्ष में शैव मत का प्राबल्य था।[1] उत्तर में नाथमत के रूप में इसका परिचय हम पाते है। पूर्वी भारत में वज्रयान का प्रभाव था, जिसके फल स्वरूप इस अचल में तन्त्र-मन्त्र आदि का पूरा प्रसार था। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दिखलाया है कि सेन राजाओ के प्रभाव से उडीसा होता हुआ वैष्णव धर्म दक्षिण भारत से बगाल आदि पूर्वी प्रान्तो में प्रविष्ट हुआ।[2] दक्षिण के वैष्णव धर्म ने उडीसा बगाल आदि पूर्वी प्रान्त में एक नया रूप ग्रहण किया। शिव और विष्णु का मिश्र रूप उडीसा के प्रद्युम्नेश्वर के मन्दिर में दीख पडता है। विद्यापति ने भी शिव और विष्णु के रूप का वर्णन किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' नामक पुस्तक में इसपर पूरा प्रकाश डाला है। शकराचार्य के बाद रामानुज, निम्बार्क, मध्व आदि आचार्यों का प्रभाव धीरे धीरे रूप ग्रहण कर रहा था। सन ईसवी की पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी में दक्षिण के भक्ति-आन्दोलन ने पूरे वेग से समस्त उत्तर भारत पर आधिपत्य जमा लिया।

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ३८।
[2] वहीं, पृ० ३९।

भक्ति-आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव—

उपर्युक्त राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव ब्रजभाषा साहित्य पर पडा। साहित्य के क्षेत्र मे अपभ्रश का वोलवाला था। उस समय के पद्य की भाषा अपभ्रश की रूढियो से जकडी हुई थी। छन्द, अलकार, प्रकाशन-भगी सभी परम्परा-मुक्त थे। भक्ति-आन्दोलन ने जैसे सब कुछ को वदल दिया और जो साहित्य की भाषा में उस समय सस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। सूरदास तथा उनके वाद के कवियो मे तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक से अधिक बढता गया। इस प्रकार से तत्सम शब्दो के प्रयोग से भाषा का रूप वदलता गया। भक्ति-आन्दोलन ने लौकिक भाषा के साथ शास्त्र का जैसे गठवचन करा दिया। तुलसीदास आदि भक्ति साहित्य के कवियो ने भक्ति के जन-आन्दोलन को शास्त्रानुगामी बना दिया। शकराचार्य के मत की प्रतिष्ठा तथा कृष्णभक्त कवियो मे श्रीमद्भागवत का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रूप से पड़ने के कारण भक्त कवियो मे तत्सम या अर्द्ध तत्सम शब्दो के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक दीख पडती है। इसके पहले के ब्राह्मणेतर धर्म के अनुयायी कवियो मे तत्सम शब्दो के वहिष्कार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यही कारण है कि अपभ्रंग-काल की प्राचीन हिन्दी में तत्सम शब्दो का अभाव है।

तत्सम शब्दों का प्रयोग—

वैसे तत्सम शब्दो के प्रयोग के प्रमाण सन् ईसवी की नवी-दसवी शताब्दी से ही मिलने लगते है।[1] उद्योतन सूरि (७७८ ई०) तथा राजशेखर (सन् ईसवी की दसवी शताब्दी) ने इस वात को स्वीकार किया है कि सस्कृत के मिश्रण से अपभ्रश मे लालित्य आ जाता है।[2] "युक्ति-व्यक्ति प्रकरण" (सन् ईसवी की बारहवी शताब्दी) में तत्सम शब्दो के प्रयोग मिलते है। इस ग्रन्थ की भाषा तत्कालीन वनारस की भाषा का परिचय देती है। एक वात और भी ध्यान देने योग्य है कि तत्सम शब्दो का प्रयोग चौदहवी, पन्द्रहवी शताब्दी के गद्य मे पद्य की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह जान पडता है कि पद्य की भाषा काव्य-रूढियो और परम्परा से चले आते

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० १७।
[2] नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रश का योग, पृ० ७४।

हुए प्रयोगों से अपने को स्वतन्त्र नहीं कर पाती थी। गद्य में लेकिन ऐसी बात नहीं मिलती। पूर्वी अंचल के तीन ग्रन्थ जो अभी तक मिले हैं और जिनसे तत्कालीन भाषा का कुछ परिचय प्राप्त किया जा सकता है वे हैं "उक्ति व्यक्ति प्रकरण", "ज्योतिरीश्वर का 'वर्ण रत्नाकर'" (सन् १५०० ई०) और विद्यापति की "कीर्तिलता।" इनमें तत्सम शब्दों का प्रयोग प्राचुर्य से हुआ है। चन्द्रधर शर्मा ने तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर निर्देश करते हुए बतलाया है कि 'विक्रम की सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई।[1]" उन्होंने आगे चलकर यह भी बतलाया है कि 'इसने केवल प्राकृत ही के तद्भव और तत्सम पद नहीं लिये, किन्तु घनवती अपुत्रा मौसी से भी कई तत्सम पद लिये।[2]' तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती ही गई और भक्ति आन्दोलन ने इसको और भी गति दी। बहुत लोग इसे मुसलमानी शासन की प्रतिक्रिया मानते हैं। लेकिन महापंडित राहुल साकृत्यायन इससे सहमत नहीं।[3] उनके विचार में समय की माँग ऐसी थी कि लोगों ने तत्सम का पल्ला पकड़ा। समाज का विकास हो रहा था और नए-नए भावों को रूप देने के लिये उसे शब्दों की आवश्यकता की पूर्ति संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपना कर की।[4]

भक्ति-काल के पूर्व का इतिहास—

ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की तीन शताब्दियों में काव्य का यह उत्कर्ष नहीं दीख पड़ता जो भक्ति-काल में देखने को मिलता है। इस काल में मुख्यतया सिद्धों की रहस्यात्मक रचनाएँ तथा दरबारी कवियों की वीर तथा शृङ्गार रस की कविताओं के दर्शन होते हैं। उस काल के मुक्तक काव्य में कृत्रिमता है और साथ ही वह अलंकृत करने की प्रवृत्ति से बोझिल हो उठा है। इस प्रकार के दरबारी काव्य दोनों प्रकार के हैं फुटकर तथा प्रबन्ध-काव्य। फुटकल काव्य में ऐहिक जीवन के वीर शृंगार रस आदि के वर्णन हैं। कहने के ढंग में इन मुक्तक काव्यों में चमत्कार है। कथन की भंगिमा में एक वैशिष्ट्य है। फिर भी ये वर्णन परम्परा-मुक्त

[1] पुरानी हिन्दी पृ० ८।
[2] वही, पृ० ८–९।
[3] हिन्दी काव्य धारा पृ० १०।
[4] वही, पृ० ११।

है। इनमें पुरानी काव्य-रूढ़ियों का पालन है। प्रबन्ध-काव्य राजस्तुति परक हैं। राजस्तुति परक चरित-काव्यों में चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा या सामन्त के जीवन, प्रेम, युद्ध आदि को लेकर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किए हैं। उस काल की रहस्यात्मक रचनाओं में नाथ-सिद्धों तथा जैन मुनियों के उपदेश तथा हठयोग आदि का प्रचार किया गया है। इन रहस्यात्मक रचनाओं का उद्देश्य काव्य का प्रणयन नहीं था बल्कि विभिन्न साधनाओं की महिमा को प्रकाश करना था। अतएव इन रचनाओं में काव्य की बारीकियों को ढूँढना गलत होगा। वैसे इन रचनाओं का महत्त्व तत्कालीन भाषा और समाज के अध्ययन की दृष्टि से बहुत अधिक है। इससे भी अधिक इन रचनाओं का मूल्य इस बात में है कि इनके द्वारा भविष्य के भक्ति-आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो गया। इन रचनाओं में रूढ़िवादिता तथा हिन्दू समाज में फैले नाना प्रकार के कुसंस्कारों पर करारी चोट की गई है। इस प्रकार से इन रचनाओं ने जन-चित्त को उदार बना दिया और उस बात के लिये प्रस्तुत कर दिया कि वे भक्ति-आन्दोलन को, जो मूलतः लौकिक था, सहज भाव से ग्रहण कर सकें।

सूरदास के पहले की रचनाएँ—

सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा-प्रदेश की किसी विशेष रचना का ठीक पता नहीं चलता, जिससे यह अनुमान किया जा सके कि सूरदास से पूर्व ब्रजभाषा साहित्य की स्थिति क्या थी। उस काल की जो भी रचनाएँ उत्तर भारत में मिलती हैं उनकी प्रकृति पर अगर ध्यान दें तो हम पाते हैं—कि पूर्वी प्रदेशों और पश्चिमी प्रदेशों की रचनाओं में प्रभेद है। पूर्वी प्रदेशों की रचनाएँ रहस्यात्मक साधनाओं का परिचय देने वाली हैं और पश्चिमी प्रदेशों की रचनाएँ ऐहिकता परक शृंगार और वीर रस की हैं। इनके बाद का भक्ति-साहित्य अपूर्व है। उस साहित्य में एक ऐसी व्यापकता और उदारता है कि उसने पूर्वी और पश्चिमी प्रान्तों की उपर्युक्त प्रवृत्तियों को अपने में समाहित कर लिया। सन् ईसवी की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में एक प्रकार के और काव्य की रचना हुई जिसे हम सूफी-साहित्य कहते हैं। यह साहित्य अवधी भाषा में ही लिखित मिलता है।

ब्रजभाषा-साहित्य में लीला वर्णन—

सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी का ब्रज-भाषा-साहित्य भगवान् की विभिन्न लीलाओं के वर्णनों से भरा हुआ है। इस काल का भक्त-कवि

भगवान की लीला का वर्णन, उनका गुणानुवाद, उनका स्मरण केवल इसी उद्देश्य से करता है कि उसे भगवान का अनुग्रह प्राप्त हो उनकी भक्ति का वह अधिकारी हो। इस काल में भगवान केवल भक्तों का त्राण करने और दुष्टों का दलन करने के लिये ही अवतार नहीं लेते बल्कि भक्तों को अपनी लीला द्वारा सुख देने, कृतकृत्य करने के लिये लेते हैं। इन अवतारों के सहारे भक्त नाना रूप में भगवान् के साथ अपना संबंध स्थापित करते हैं। उनके साथ उनका वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार के भक्तों में राम भक्त और कृष्ण भक्त कवियों ने अपूर्व साहित्य की सृष्टि की।

लीलागान की परम्परा—

लीलागान की परम्परा सूरदास से पूर्व की ही है। सूरदास से पहले के तीन भक्त-कवि जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास का नाम इस सम्बन्ध में लिया जा सकता है। जयदेव का गीतगोविन्द संभवत संस्कृत में लिखे जाने के कारण अधिक व्यापक हुआ। कहते हैं जयदेव जयपुर और वृन्दावन भी आए थे।[1] सूरदास पर गीतगोविन्द का प्रभाव पड़ा था, इसका प्रमाण सूरसागर से मिल जाता है। 'सूरसागर' के निम्नलिखित पद से इस बात की पुष्टि हो जाती है —

गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
पौन झकझोर चपला चमकि चहूँ ओर।
सुवन तन चित नंद डरत भारी॥
कह्यो वृषभानु की कुवरि सो बोलि कै
राधिका कान्ह घर लिये जा री।
दोउ घर जाहु संग नभ भयो
स्याम रंग कुंवर गह्यो वृषभान वारी।
गये बन ओर नवल नंदकिशोर
नवल राधा नये कुंज भारी॥
अंग पुलकित भये मदन तिन तन
जये सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी॥[2]

इस पद की तुलना "गीतगोविन्द" की निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती है —

[1] परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत सन्त परम्परा पृ० ९७।
[2] सूरसागर, पद संख्या १३०२।

मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुना कूले रहः केलयः ॥[1]

चडीदास और विद्यापति का प्रभाव सूरदास पर संभवत प्रत्यक्ष नही पड़ा है। भागवत्-पुराण मे भगवान् की लीलाओ का वर्णन है। उसका भी आश्रय कवियो ने लिया। वैसे गीतगोविन्द की लीला भिन्न प्रकृति की है। सभवत भागवत-पुराण से भिन्न कोई लीला गान की लौकिक परम्परा थी। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लीलागान का पूरा प्रचार किया है।

मधुर रस की भक्ति और व्रजभाषा-साहित्य—

सूरदास तथा अन्य ब्रजभाषा के भक्त-कवियो ने मधुर रस की भक्ति पर ज़ोर दिया है। मधुर रस की इस प्रकार की भक्ति का परिचय पश्चिमी प्रान्तो की रचनाओ में नही मिलता। सूरदास से पहले पूर्वी प्रान्तो में इस तरह की प्रौढ रचनाये मिलती है। उनका प्रत्यक्ष प्रभाव सूरदास पर पड़ा या नही कहना कठिन है। लेकिन इतना सही है कि चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन आए थे तथा वृन्दावन उनके अनुयायियो का एक बहुत बडा केन्द्र था। रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी और सनातन गोस्वामी, महाप्रभु चैतन्य के प्रमुख शिष्यो मे थे जिन्होने मधुररस की शास्त्रीय आलोचना की थी। सन् ईस्वी की सोलहवी शताब्दी के श्री चैतन्य के दीक्षा प्राप्त एक दक्षिणी ब्राह्मण गदाधरभट्ट का भी नाम इस प्रसग मे लिया जा सकता है। ये सस्कृत के एक बहुत बड़े पडित थे, लेकिन ब्रजभाषा मे सुन्दर कविता लिखा करते थे[2]। श्रीनाथ जी के मदिर मे बगाली ब्राह्मणो के पुजारी होने के भी प्रमाण मिलते है। इन सब प्रमाणो के आधार पर यह अनुमान करना अनुचित नही होगा कि गौड़ीय वैष्णव सप्रदाय की मधुर भक्ति का प्रभाव ब्रजभाषा के वैष्णव कवियो पर पडा। वैसे परम्परा तथा वातावरण के अनुकूल सूरदास आदि ने राधा का चित्रण स्वकीया के रूप में किया है, जबकि गौडीय वैष्णव सप्रदाय में वे परकीया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है[2] कि 'ग्यारहवीं से

---

[1] गीतगोविन्द—१।१।

[2] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० २००।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक उत्तर भारत के जनसाधारण में एक साधना विकसित होती जा रही थी। पन्द्रहवीं शताब्दी में वह एकाएक फूट उठी।

गेय-पदों की परम्परा—

ब्रजभाषा में गेय पदो का बाहुल्य है। गेयता पर इस साहित्य में जोर दिया गया है। सूरदास ने राग रागिनियो के आधार पर पद रचना की है। यह परम्परा बाद के भक्त-कवियो तक चलती रही। श्रीनाथ जी के मंदिर में एक ऐसे भक्त गायक को बराबर नियुक्त किया जाता था। अष्टछाप के कवियो में अधिकांश ऐसे थे जो पद रचना कर श्रीनाथ जी के सामने गाया करते थे। गेय पदो की परम्परा पुरानी है। सूरदास के बहुत पहले से ही इस परम्परा का पता चलता है। बौद्ध सिद्धो के गेय पदो का पता बहुत पहले से चलने लगता है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि जयदेव (बारहवीं शताब्दी) के पहले से ही उडीसा और बगाल में कृष्ण-लीला गान करने की प्रथा वर्तमान थी। इन पदो में मात्रिक छन्दो का व्यवहार है। जयदेव के सरस पदो के समान गेय पदो की सूचना भी इधर मिलने लगी है। पश्चिमी भारत में निर्मित मानसोल्लास ग्रन्थ के तीसरे भाग में ऐसे गेय पद पाए गए है[1]। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। ग्रन्थ के इस तीसरे भाग में अपभ्रंश के कुछ नारायण गीत भी है डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का अनुमान है कि "गुप्तकाल में जो शृंगार रस के नारायण गीत गाए जाते थे, उनकी भाषा उस समय की बोलचाल की भाषा रही होगी[2]।" सूरदास के पहले लोक भाषा में गेय पदो की रचना करने वाले कवियो में विद्यापति और चडीदास का नाम लिया जा सकता है।

काव्यत्व और भक्ति का योग—

कृष्ण भक्त कवियो ने राधा, कृष्ण तथा गोपियो की लीला के वर्णन में शृंगार की विभिन्न चेष्टाओं एव मनोदशाओ का सविस्तार वर्णन किया है। सयोग और विप्रलभ शृंगार दोनो का पूर्ण रूप से वर्णन इस काल में कृष्ण काव्य में मिलता है। नायक-नायिका का वर्गीकरण, रसो का विवेचन इस

---

[1] अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (चौतीसवाँ अधिवेशन इन्दौर का भाषण हिन्दी पर वैष्णव धर्म का प्रभाव।

[2] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी) की भूमिका, पृ० ९।

काल की एक प्रमुख विशेषता है। लेकिन सबसे बडी बात यह है कि इस काल के कवियो ने काव्यत्व और भक्ति का सुन्दर संयोग कराया। भक्त कवियो के लिए भक्ति का ही महत्त्व था और कविता उनके लिये साधन मात्र थी। लेकिन यह बात बाद के ब्रजभाषा के कवियो में नही रही। रीतिकाल के कवियो के लिए भक्ति प्रधान नही रह गई, वैसे वे राधा-कृष्ण का नाम अवश्य बीच-बीच में ले लेते है। रीतिकालीन कवियो में शृंगार की प्रधानता, दरबारीपन आदि ही प्रमुख रूप मे देखने को मिलते हैं।

कृष्ण-भक्त कवि और नायिका भेद—

ब्रजभाषा के भक्त कवियो में नंददास ने नायिका-भेद पर पुस्तक लिखी है। इसमें उदाहरण के लिये राधा-माधव की लीलाओं का वर्णन किया गया है। नायिका-भेद सम्बन्धी ब्रजभाषा की सबसे पुरानी पुस्तक कृपाराम की 'हित तरंगिणी' कही जाती है। इसकी रचना सन् १५४१ ईसवी की है।[2] इसके पहले की ब्रजभाषा की कोई पुस्तकें अभी तक ऐसी नही मिली है, जिसमें नायिका-भेद पर प्रकाश डाला गया हो। नायिका-भेद और रसो के सांगोपांग विवेचन की पुस्तक बंगाल में सर्वप्रथम रूपगोस्वामी की लिखी 'उज्ज्वल नीलमणि' है। रूपगोस्वामी महाप्रभु चैतन्य के प्रमुख शिष्य थे। उन्होंने यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा। गौडीय वैष्णव संप्रदाय में यह ग्रन्थ अत्यन्त समादर पाए हुए है। 'उज्ज्वल रस' ही 'मधुर रस' है। इस सम्प्रदाय मे मधुर रस की भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भक्ति रस की जो व्याख्या इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है, वह नवीन ढंग की है, फिर लगता है कि इस विषय की चर्चा पहले से ही चली आ रही होगी। इस ग्रन्थ का भले ही सीधा प्रभाव ब्रजभाषा के कवियो पर न पडा हो, लेकिन इतना मानने में संकोच नही हो सकता कि इस ग्रन्थ का कुछ प्रभाव अवश्य पडा होगा। चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य गौडीय भक्तो से वृन्दावन मे रहने वाले भक्तो का परिचय था। इस सम्प्रदाय के बहुत से भक्त परवर्ती काल में ब्रजभाषा के कवि भी हुए।

भक्ति आन्दोलन और ईसाई धर्म—

वैष्णव-भक्ति और विशेष रूप से कृष्ण भक्ति में शृंगार की प्रधानता का

---

[1] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी) की भूमिका पृ० १०।

[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य, पृ० २९५।

कारण ढूटना कुछ कठिन नही जान पडता। कुछ यूरोपीय विद्वान भक्ति का सम्बन्ध ईसाई धम से जोडते हैं।[1] उनके अनुसार भगवान् और भक्त के बीच वयक्तिक रागात्मक सम्बन्ध ईसाई धम से ही हिंदू धम में आया।[1] ईसाई धम के साथ वष्णव धम की समानता का उल्लेख हापकिन्स ने भी किया है।[2] कृष्ण के साथ क्राइस्ट का सम्बन्ध भी जोडने का प्रयत्न यूरोपीय विद्वानो ने किया ह[3]। इस प्रकार से यूरोपीय विद्वानों ने वष्णव भक्ति, भक्ति का आदश, नाम सकीतन आदि का ईसाईमत की देन बतलाया है। यूरोपीय विद्वानो को भारतीय परम्परा और विचारधारा का उतना परिचय नही था, सभवत इसीलिये कुछ समानताओ का देख कर उन्होने ऐसे निष्कष निकाले है। उनके विचारो का सुन्दर ढग से प्रत्याख्यान डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'सूर साहित्य' में किया है।

मधुर रस की भक्ति और महायान—

भक्ति के सम्बन्ध में यूरोपीय और भारतीय विद्वानो ने काफी छानबीन की ह। भक्ति पर महायान का प्रभाव बहुत लोग स्वीकार करते ह। डा० सेन का कहना है कि वष्णव भक्ति के विकास में महायान का हाथ है।[5] सकीतन की प्रथा भी महायानियो में ह। बौद्ध धम का ह्रास जब हुआ तब उसके नाना सप्रदाय और उप-सप्रदाय हो गए। उनमें से बहुत से पथ वष्णव सम्प्रदायो में अन्तर्भुक्त हो गए। सहजिया मत के बहुत से अनुयायी जो प्रेमसाधना और परकीया प्रेम को मानने वाले थे नित्यानद के साथ हो गए। ये नित्यानद बाद में चलकर महाप्रभु चतन्य के साथ हो गए। इसके फलस्वरूप गौडीय वैष्णव मत का एक विचित्र ढग से विकास हुआ। सन् ईसवी की

[1] कनेडी जनरल रायल एशियाटिक सोसायटी (१९०१) पृ० ९५१ तथा ग्रियसन इनसायक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स (खड २) पृ० ५५०।

[2] दी रिलीजन्स आफ इंडिया पृ० ३८९।

[3] हापकिन्स इंडिया, ओल्ड एण्ड न्यू पृ० १६७।

[4] ग्रियसन माडन हिंदुइज्म एण्ड नेस्टोरियन्स (जनरल रायल एशियाटिक सोसायटी)।

[5] डी० सी० सेन बगाली लग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ० ४०१।

[6] वही, पृ० ४०३।

ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी के मंदिरों पर अंकित, अश्लील मूर्तियाँ उस काल की मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। उड़ीसा में पुरी तथा कोणार्क के मन्दिरों में भी इस प्रकार की मूर्तियाँ अंकित हैं। मधुर रस की भक्ति के उद्भव को समझने में ये सभी बातें सहायता करती हैं।

व्रजभाषा की रचनाओं में कृष्ण-रास—

इस काल में कृष्ण-रास का भी प्रणयन हुआ।[1] नंददास ने रासलीला-संबंधी व्रजभाषा-नाटक लिखे हैं। इन रासों के नायक श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्-भागवत में कृष्ण लीला के रास का वर्णन है। व्रजभाषा में रासलीला की परम्परा उसी समय प्रारम्भ हुई जब वैष्णव धर्म की चर्चा सर्वत्र हो रही थी। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा कृष्णलीला का यह रूप वृन्दावन तक पहुँच गया था।[1] इस रास का उल्लेख भोज के 'सरस्वती कंठाभरण' में है

मंडलेन तु यत्स्त्रीणा नृत्यं हल्लीसक तु तत्।
तत्र नेता भवेदेको गोपस्त्रीणां हरिर्यथा ॥२।१५६॥

हल्लीसक नाम के इस मंडल नृत्य को गोपाल गूजरी नृत्य या रास भी कहते थे।[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि 'कम से कम हल्लीसक रास या तालक और लकुट रासों के गोपाल गूजरी नृत्यों के साथ गाए जाने वाले जो नृत्य थे, वे देशी भाषा में ही थे।[3] इससे यह अनुमान करना कठिन नहीं होगा कि देशी भाषा में रासों का प्रारम्भ बहुत पहले से हो गया था। जैन-रास भी कृष्ण-रास की तरह प्रचलित थे। जैन-रासों के नायक जैनी साधु, दानी सेठ आदि होते थे और उनमें तीर्थंकर के चरित्र का प्रदर्शन किया जाता था।[4] सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण-रास की परम्परा खूब जोरों से चली जो आज भी वर्त्तमान है।

भक्ति-काल के चरित-काव्य—

भक्ति-काल के चरित-काव्य, पहले के चरित-काव्यों से भिन्न थे। पहले के चरित-काव्यों में चरित नायक कवि का आश्रयदाता राजा होता था, जिसके

---

[1] डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० ९७-९८।
[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल मध्यदेशीयभाषा (ग्वालियरी), भूमिका, पृ० ७।
[3] वही, पृ० ९।
[4] डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० १०५।

युद्ध विवाह आदि के वर्णन उसमें भरे रहते थे। ऐहिकता परक इन चरित काव्यों में वीर और शृंगार का प्राधान्य रहता था। भक्त-कवियों ने भगवान् की लीला का वर्णन ही अपने चरित-काव्यों में किया। अपने उपास्य के ऐश्वर्य शील और सुन्दर रूपों का वर्णन कर भक्त आनन्द पाता था। इस प्रकार के काव्य की रचना का उद्देश्य भगवान् का गुणानुवाद था वैसे ब्रजभाषा में मुक्तक काव्य का ही बाहुल्य है। भक्त कवियों ने ब्रजभाषा-काव्य के लिए पद सवैया और कवित्त को अपनाया। इन छंदों का सहारा लेकर अपनी भक्ति का निवेदन करते हुए इन भक्त कवियों ने जो रस माधुरी बहाई, वह अपूर्व है। ब्रजभाषा-साहित्य इन भक्त-कवियों की रचनाओं के कारण अमर रहेगा।

चौथा अध्याय

ब्रजभाषा साहित्य के निभिन्न सम्प्रदायों के दर्शन और सिद्धान्त

(क) वल्लभ सम्प्रदाय—

१५ वी १६ वी शताब्दी में वैष्णव समृद्ध युग के प्रभाव स्वरूप ब्रजभाषा साहित्य का जो पूर्ण कायापलट हुआ पिछले अध्याय में उसका विस्तार से विचार हो चुका। वस्तुत ब्रजभाषा साहित्य का मेरुदण्ड वल्लभाचार्य प्रवर्तित वल्लभीय-दर्शन और सिद्धान्त ही है। अतएव ब्रजभाषा के कवियों तथा उनके काव्य ग्रन्थों के विस्तृत परिचय से पहले साहित्य की पीठिका स्वरूप वल्लभीय-दर्शन की रूपरेखा समझना आवश्यक है इस ज्ञान के अभाव में साहित्यालोचना एकांगी होगी। एक बात और—ब्रजभाषा-साहित्य को समृद्ध और सम्पन्न करने में ब्रज के निम्बार्क सम्प्रदाय राधा वल्लभीय सम्प्रदाय तथा सखी-सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध ब्रजभाषा-कवियों की मधुर रससिक्त ललित रचनाओं का महत्व भी कुछ कम नहीं है। अत उक्त तीनों सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की चर्चा भी संक्षेप में इसी अध्याय में की जाएगी।

वल्लभ मत के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य—

वैष्णव धर्म के माननीय प्रवर्तकों में से वल्लभाचार्य अन्यतम है। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी प्रवर्त्तित प्राचीन रुद्र सम्प्रदाय की १५ वी शताब्दी में वल्लभाचार्य ने पुन प्रतिष्ठा की। विष्णुस्वामी का आचार्य रूप से केवल अभिधान ही अवशिष्ट है, इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणों का सर्वथा अभाव ही है अत इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अत्यन्त कठिन है। पहले कहा जा चुका है कि "श्रीधरी टीका" में विष्णु स्वामी के आभासित सिद्धान्तों और वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में पर्याप्त भेद है। और जो कुछ भी हो पर यह तो निर्विवाद ही है कि वल्लभाचार्य द्वारा 'वल्लभ सम्प्रदाय' प्रवर्तित हुआ, चाहे वह विष्णु स्वामी के रुद्र-सम्प्रदाय का प्रसार हो अथवा स्वतंत्र सम्प्रदाय, यह दूसरी बात है।

वल्लभ-मत की अन्य संज्ञाएँ—

शकराचार्य के "कैवलाद्वैत" या "मायावाद" के खडन तथा विरोध में ही वल्लभाचार्य ने "शुद्धाद्वैतवादी" दर्शन की स्थापना की। वल्लभीय सिद्धान्तानुसार ब्रह्म माया से सर्वथा निर्लिप्त अत्यन्त विशुद्ध है, शकर से अपने मत की भिन्नता दिखाने के लिए वल्लभ ने "अद्वैत" से पूर्व "शुद्ध" विशेषण के योग से इसे "शुद्धाद्वैत" नाम दिया। शकर के मत मे शुद्ध ब्रह्म निर्गुण, निवर्मक, निरजन और केवल मात्र ज्ञेय है, सगुणत्व, सर्वशक्तित्व, कर्तृत्व आदि गुण माया आच्छादित ब्रह्म के हैं। ब्रह्म की अनिर्वचनीय माया ही सम्पूर्ण प्रपच का कारण है, माया-रचित होने के कारण ही सृष्टि की अनेकरूपता और अनेक जीवत्व मिथ्या, मायिक तथा आभास मात्र हैं, केवल एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। इसके विपरीत वल्लभ ने जगत् को ब्रह्म का विकार रहित परिणाम माना, इसी कारण वल्लभ-सम्प्रदाय को "अविकृत-परिणामवादी" भी कहते हैं। वल्लभ के दर्शन मे "ब्रह्म" अत्यन्त पुष्ट है, जीव जगत् सब ब्रह्ममय हैं, अतएव इन दोनो की सत्ता भी सत्य है, ब्रह्म-पक्ष की प्रधानता के कारण वल्लभ-सम्प्रदाय "ब्रह्मवादी" कहलाया।

वल्लभाचार्य का साधन-पक्ष "पुष्टि-मार्ग"—

वल्लभाचार्य का साधन-पक्ष "पुष्टि-मार्ग" कहलाता है। यह श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तो की उगली पकड़ कर चलने वाला मार्ग है। "पुष्टि" शब्द भी भागवत से ही उधार लिया हुआ है, "पुष्टि" का अर्थ भगवान् का अनुग्रह, अनुकम्पा, कृपा है।[1] पुष्टि का प्रधान साधन है भक्ति और प्रपत्ति। यह भक्ति भी परम भक्तवत्सल भगवान् के अनुग्रह से ही साध्य है।[2] अतएव स्नेह पूर्वक भगवान् की सेवा तथा पुष्टि-जन्य प्रेम ही इस सम्प्रदाय की साध्य वस्तु है। यही कारण है कि इस सम्प्रदाय में उपास्य स्वरूप बाल-कृष्ण की सेवा-पद्धति का जैसा विस्तृत और व्यवस्थित विधान हुआ है, वह अन्य सम्प्रदायो में दुर्लभ ही है। वल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग का ही विशेष प्रकार से प्रचार किया। अब वल्लभीय दर्शन, सिद्धान्त और साधना-पद्धति पर विचार किया जाएगा।

---

[1] "पोषण तदनुग्रह ।" —श्रीमद्भागवत, २।१०।४।

[2] पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैकसाध्य.। —अणुभाष्य, ४।४।९।

वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण—

ब्रह्म का स्वरूप—वल्लभ मत में माया से रहित "विशुद्ध" ब्रह्म[1] को जगत् का कारण माना गया है[2]। ब्रह्म ही एकमात्र जगत की सत्ता होने के कारण सब कुछ ब्रह्ममय है[3] और नाम रूप गुण भेद से वही जीव-जगत रूप में प्रकट हुआ[4]। इस ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानन्दमय है, वह व्यापक, अनश्वर, सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र, सर्वज्ञ और गुणों (प्राकृतिक) से रहित है।[5] वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के निराकार-साकार दोनों स्वरूप ही माने हैं उनके अनुसार ब्रह्म सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मों का आश्रय है। कहने का मतलब यह है

---

[1] "हो प्रभु सुद्ध तत्वमय रूप, एक रूप पुनि नित्य अनूप।"
—नन्ददास (शुक्ल), २७ वां अ० पृ० ३१५।

[2] मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥
—शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, २८।

[3] आगे कृष्ण, पाछे कृष्ण, इत कृष्ण, उत कृष्ण,
जित देखौं तित कृष्ण मई। —छीतस्वामी (पद संग्रह), ११५।
पुनि प्रणऊं परमानम जाई,
घट घट, विघट पूरि रह्यो माई।—नन्ददास (शुक्ल) रूपमंजरी पृ० १।

[4] नाम रूप गुन भेद ज, सोई प्रकट सब ठौर।
ता बिन तत्व जु आन कछु यह सो अति बड बौर।
—मानमंजरी, परमंजरी बल्देवदास करसनदास, पृ० ६९।
तुमही जीवन तुमही जीव, सब ठां तुम काउ अवर न बीच।
—नन्ददास (शुक्ल) दसवां अध्याय, पृ० २४१।

[5] सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम्।
सर्वशक्तिस्वतन्त्रं च सर्वज्ञं गुणवर्जितम्॥
—तत्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ प्र० पृ० २२१।
परमहंस तुम सबो ईस,
तुम अच्युत अविगत अविनासी परमानन्द सदा सुखरासी।
—सूरसागर दशमस्कन्ध, उत्तरार्द्ध ० प्र० पृ०५९४।

[6] विरुद्धसर्वधर्माणामाश्रयं युक्त्यगोचरम्।
—तत्त्वार्थदीपनिबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण पृ० २४६।

कि ब्रह्म निर्गुण (प्राकृत गुणों से रहित) होते हुए सगुण (दिव्य गुणों से युक्त) भी है[1]। इसके साथ ही वह सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद से रहित अद्वैत है[2]। चेतन-सृष्टि (सजातीय) उससे अलग नहीं, जड-सृष्टि (विजातीय) भी उससे अभिन्न है और अन्तर्यामी (स्वगत) रूप भी वही है। थोड़े में यह कह सकते है कि वल्लभ मतानुसार ब्रह्म "अणोरणीयान्" तथा "महतो महीयान्" है अर्थात् वह सर्वभाव धारण में समर्थ होता है।

ब्रह्म की लीला-सृष्टि का कारण—

अद्वैत, अखण्ड, अविभक्त ब्रह्म "बहु" होने की इच्छा से अनन्त रूपों मे प्रकट होना है।[3] ब्रह्म की "एक" से "बहु" होने की इच्छा से या सकल्प[4] ही इस सृष्टि का कारण है अत भगवान् स्वरूपत एक होकर भी विभिन्न प्रकार की सृष्टि रचते है। कभी तो स्वयं ही प्रपच रूप धारण करके साक्षात् रूप से सृष्टि रचते है, कभी परम्परा द्वारा अर्थात् पुरुष-ब्रह्म आदि

---

[1] वेद उपनिषद् यश कहै निर्गुनहि बतावै,
सोइ सगुन होय नन्द की दावरी बधावै।
—सूरसागर, वें० प्रे०, प्रथम स्कन्ध, पृ० २।

हसत गोपाल नन्द के आगे नन्दस्वरूप न जाने,
निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला ताहिव सुन करि माने।
—परमानददास-पद-सग्रह (श्रीदीनदयालु गुप्त स०) १७।

[2] सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जितम्।
—तत्वदीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ० २२१।

[3] 'हरि अनन्त अरु एक"
—नददास, अनेकार्थमजरी, पचमजरी, बलदेवदास, पृ० १४३।
सदा एक रस एक अखडित आदि अनादि अनूप।

× ×

सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि माया सब विधिकाल,
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब है अश गुपाल॥
—सूर-सारावली, वें० प्रस०, पृ० ३८।

[4] एकोऽहं बहुस्याम्। —तैत्तिरीय उपनिषद् २।६।

द्वारा सृष्टि करवाते हैं।[१] तो कभी ऐन्द्रजालिक के समान मायिक सृष्टि करते हैं। मायिक सृष्टि के अतिरिक्त अन्य सभी सृष्टि में भगवान प्रविष्ट रहते हैं।

ब्रह्म के आविर्भाव तिरोभाव की अवस्था—

ब्रह्म में जो आविर्भाव तिरोभाव की शक्ति है, उसी के कारण वह एक से अनेक में प्रसारित होकर सृष्टि रचना है[२] फिर प्रलय काल में अपने को समेट कर बहु से एक हो जाता है। भगवद्गीता में भी भगवान् ने बारबार इसी बात को दोहराया है कि मैं ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा नाश का कारण हूँ[३]। ब्रह्म ही से सभी वस्तुओं का आविर्भाव और उसी में उनका तिरोभाव होता रहता है।[४] वस्तुतः जगत् में कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता उनका केवल रूपान्तर होता है। एक रूप से दूसरे रूप में परिणति ही वल्लभ मतानुसार आविर्भाव तिरोभाव है उनके दार्शनिक सिद्धान्त में यह विशेष महत्व रखता है।

ब्रह्म के तीन प्रकार—

तारतम्य और बोधगम्यता की दृष्टि से ब्रह्म तीन प्रकार का माना गया है—१–परब्रह्म-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, २–अक्षरब्रह्म और ३–अन्तर्यामी रूप[५]। असल में अक्षर-ब्रह्म और अन्तर्यामी रूप पुरुषोत्तम-ब्रह्म के ही स्थिति भेद हैं।

पुरुषोत्तम परब्रह्म अप्राकृत रूप-गुणों से युक्त निज लोक में एक रस आनन्द में मग्न रहता है।[६] इसी ब्रह्म को लीला के लिए सृष्टि रचने की

---

[१] पुराण और पांचरात्र में इसी प्रकार सृष्टि वर्णित है।

[२] आविर्भावतिरोभावैर्मोहो बहुरूपतः।
—तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ७६।

[३] १०।८, १०।३४।

[४] आविर्भावतिरोभावौ पदार्थानां वास्तवः।
—तत्वदीप निबन्ध।

[५] अन्तर्याम्यक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदास्त्रयो परे।
—तत्वदीप निबन्ध सर्वनिर्णय प्रकरण ११९ पृ० ३१५।

[६] अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनाशी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निजलोक विलासी।
—सूर-सारावली, वे० प्रे० पृ० २।

इच्छा हुई और उसने "एक" से "बहु" में अपने स्वरूप का विस्तार किया[1]। वही अक्षर-ब्रह्म बना और उसी से विविध रूप-नामात्मक सृष्टि की उत्पत्ति हुई। जिस समय अक्षर-ब्रह्म इस जगत को धारण करता है उस समय वह विष्णु स्वरूप हो जाता है, जिसमें सत्वगुण की प्रधानता है, ब्रह्मा का स्वरूप रजोगुणमय है और रुद्र का स्वरूप तमोगुण प्रधान है। ये तीनों स्वरूप अक्षर-ब्रह्म के ही गुणावतार हैं।[2] अक्षर-ब्रह्म का स्वरूप परब्रह्म के समान सच्चिदानन्दमय ही है। पर वह है गणितानन्द। सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के सत् और चिद् दो धर्म जीव में प्रकट हुए, जड़ सृष्टि में केवल सत्त्व ही का आविर्भाव है। ब्रह्म का आनन्दांश अन्तर्यामी रूप से प्रत्येक जीव में अवस्थित है, जैसे जीव अनन्य हैं वैसे अन्तर्यामी भी अनन्य हैं।

भगवान् की शक्ति-माया—

पहले ही कहा जा चुका है कि यह जगत् परब्रह्म की स्वेच्छा से किया गया लीला-विलास है। भगवान की यह इच्छाशक्ति वल्लभ-मत में माया है। भगवान् की अनन्त अचिंत्य शक्तियों में से माया भी एक है, अतएव शंकर के मत के समान माया की सत्ता यहाँ झूठी नहीं मानी गई। ब्रह्म के समान ही

---

[1] खेलत-खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रकट कियो है हरी-पुरुष अवतार।
—सूरसारावली, वें० प्रे०, पृ० २।

[2] जगत्तु त्रिविध प्रोक्त ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः।
देवतारूपवत् प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः॥
—सिद्धान्त मुक्तावलि (षोडश ग्रन्थ संग्रह) १०।
स्वभावकर्मकालाश्च रुद्रो ब्रह्मा हरिस्तथा।
—तत्वदीप-निबन्ध, सर्वनिर्णय प्रकरण, ११९।
विष्णुरुद्र विधि एकहि रूप, इन्हें जान मत भिन्न स्वरूप।
—सूरसागर, चतुर्थस्कन्ध वें० प्रे०, पृ० ४६।
परम पुरुष सबहिन के कारन, प्रतिपालत तारत संघारन
—नंददास (शुक्ल) दशम स्कन्ध, दशम अ०, पृ० २४१।
ब्रह्म-रूप उतपति करो, रुद्र-रूप संहार।
विष्णु-रूप रक्षा करो, सो मैं हो नन्द-कुमार।
—कुंभनदास (पद संग्रह), २२, पृ० १४।

उसके नाम, रूप, गुण, कर्म सभी नित्य और चिन्मय हैं। अंशी जीव-जगत् परब्रह्म के अंश हैं, इसलिए जीव, जगत् माया सभी की सत्ता सत्य है। तथा ब्रह्म के साथ उनका 'अद्वैत' सम्बन्ध है।

रसरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म—

वल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म माने गये हैं।[1] श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान ने श्रीमुख से अक्षर से परे अपने 'पुरुषोत्तम स्वरूप का वर्णन किया है[2]। पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्ण अप्राकृत षड्गुणा—ऐश्वर्य वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य से पूर्ण है।[3] पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्ण परमानन्द तथा रस स्वरूप हैं।[4] परब्रह्म श्रीकृष्ण जैसे रस-स्वरूप हैं, वैसे ही सब रसों के भोक्ता भी हैं। रसमय आनन्दाकार पुरुषोत्तम,

---

[1] परब्रह्म तु कृष्णोहि सच्चिदानदकं बृहत।
—सिद्धान्त मुक्तावली (षोडशग्रन्थसंग्रह) ३

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे
रूपनामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यत।
—तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, १।

अपने अंस आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप।
—सूरसारावली सूरसागर, वे० प्रे०, पृ० ६।

प्रकट ब्रह्म-घनीभूत पून की पकरि अंगुरिया ल्याये।
—नंददास-ग्रन्थावली ४२, पृ० ३३९।

मोहन नंदराय कुमार।
प्रकट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हेत अवतार।
—परमानन्द पद संग्रह (दीनदयाल गुप्त संग्रह) ३

[2] यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम
—अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम।—१५।१८।

[3] षट् गुन अवतार धरत नागाइन जाई
गयवो आश्रय अवधि भूप नन्दनन्द साई।
—नंददास (शुक्ल) सिद्धान्तपंचाध्यायी, पृ० १८३।

[4] नमो नमो आनन्दघन सुन्दर नन्दकुमार।
रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार।
—वही, रसमंजरी, पृ० ३९।

परब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियो के प्रसार से अपने लोक मे नित्य-लीला मे मग्न रहते है।[1] वल्लभ-मत में यह लोक विष्णु के वैकुण्ठ से भी ऊपर अवस्थित है, अत इसकी महत्ता वैकुण्ठादि लोको से कही अधिक है।[2]

लीला के लिए श्रीकृष्ण का परिकरों के साथ अवतरण—

अखिल रसामृत मूर्ति आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भक्तों को असीम-रस-माधुर्य का आस्वादन कराने के लिए नर-रूप में लोक के बीच अवतरित होते हैं। भगवान् का अवतरण भी लीला-हेतु है[3]। परब्रह्म श्रीकृष्ण अकेले ही ससार में अवतार नही लेते वरन् क्रीडा के लिए समस्त लीला परिकरो और अपने लोक (अक्षर-धाम) के साथ अवतरित होते हैं। तव उनका लोक (अक्षर धाम) ही गोकुल तथा स्वभूत आनन्द प्रसारिणी शक्तिया ही श्रीस्वामिनी, चन्द्रावली, यमुना आदि के रूप में प्रकट होती है। यह समस्त लीला नित्य रूप से चलती रहती है। ब्रह्म मायातीत है अत उसका अवतार भी चाहे किसी रूप मे हो माया से निर्लिप्त है। कहना न होगा कि उसका लीलाधाम भी माया के स्पर्श से अछूता है। व्रजभूमि रस-रूप भगवान् के

---

[1] अवगति आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निजलोक विलासी।
जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहाँ कुज-लता विस्तार।
तह विहरत प्रिय-प्रीतम दोऊ निगम भृगु गुजार॥
—(सूर-सारावली) वें० प्रे०, पृ० २।

[2] प्रकृतिकालाद्यतीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्रीगोकुल एव सन्तीति शेष ।
—अणुभाष्य, ४।२।१५।

अस अद्भुत गोपाल वाल, सव काल वसत जहा।
याही तै वैकुण्ठ-विभौ कुठित लागत तहां।
—नन्ददास (शुक्ल) रासपचाध्यायी, पृ० १५९।

[3] ब्रह्म अगोचर मन, वानी ते अगम अनन्त प्रभाव।
भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला ससार।
—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वैं० प्रे०, पृ० ३९।

आनद की निधि नन्दकुमार।
परब्रह्म भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार।
—परमानन्ददास-पद सग्रह (दीनदयाल गुप्त-सग्रह) १२६।

लीलाधाम गौलोक का अवतार होने के कारण पुष्टि भक्तों ने उसे इस जगत से परे का लोक माना है। वल्लभ-मत की साधना में इसी अगणितानन्द रसमय पूर्ण पुरुषोत्तम के सामीप्य तथा उसकी नित्य-लीला में प्रवेश करने का अर्थात अंश-जीव का अंशी-परमात्मा से मिलने का साधन बताया गया है।

कृष्ण अवतार के दो रूप—

वल्लभ सम्प्रदाय के उपास्य देव सगुण रस रूप पुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं। परब्रह्म, श्रीकृष्ण ने लोक रंजनकारी अनेक रसमय लीलाएं कीं। वल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण अवतार के दो रूप माने गए हैं—मथुरा, द्वारिका, कुरुक्षेत्र वाला भगवान् का ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप जिस रूप में उन्होंने व्रज के अनेक दुष्टों का संहार किया, यह देवकीनन्दन वासुदेव का धर्म-संस्थापक स्वरूप है, दूसरा यशोदा नन्द के रिझावनहार, ग्वाल-बालों के बाल-सुलभ क्रीड़ा के सहचर, गोपियों के साथ क्रीड़ामत्त रसिक राज कृष्ण का रूप पूर्ण रसात्मक है। वल्लभ भक्तों को प्रेमाभक्ति के अवलम्ब के लिए बाल, पौगंड और किशोर लीलाधारी रसमय कृष्ण ही उपयुक्त जान पड़े।

वल्लभ सम्प्रदाय में राधा—

राधा स्वरूप—

राधा कृष्ण की लीला तथा कृष्ण भक्तों की मधुर रस की भक्ति को समझने के लिए यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि कृष्ण भक्तों के लिए राधा क्या है और कृष्ण के साथ उनका किस प्रकार का सम्बन्ध है। इन प्रश्नों का शास्त्रीय और दार्शनिक विवेचन ही "राधातत्व" है। रसरूप भगवान अपनी आनन्दांश शक्तियों का प्रसार कर अपने आप रमते हैं। अपने आनन्द के लिए ही अपनी शक्तियों का वे प्रसार करते हैं। ये शक्तियां अनन्त हैं लेकिन भगवान से भिन्न नहीं हैं। इन शक्तियों में बारह प्रमुख हैं। ये बारह शक्तियां श्री, पुष्टि गिरा कान्त्या आदि हैं। ये ही शक्तियाँ भगवान की नर-लीला की संगिनी हैं। जब भगवान् पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं तब ये श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, यमुना आदि के रूप में प्रकट होती हैं। वैसे इन शक्तियों के साथ गौलोक में भगवान् की नित्य लीला चलती रहती है।[1] इन शक्तियों में जो इस जगत् में प्रकट होती हैं

[1] जहाँ वृन्दावन आदि अजिर जहाँ कुंज-लता विस्तार।
तहं विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार।

राधा रस की सिद्ध-शक्ति स्वामिनी स्वरूपा हैं[1]। वे रस की आदि-शक्ति हैं तथा सर्वानन्द की पूर्ण सिद्ध-शक्ति स्वरूपा हैं।[2] भगवान् पूर्ण रस-शक्ति स्वरूपा राधा ही के वश मे रहते हैं।[3] उनके साथ उनकी नित्य लीला चलती रहती है उनके साथ क्रीडा करते हुए वे आत्मानन्द में मग्न रहते हैं। ये शक्ति अन स्वरूपा हैं और श्री श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं।[4]

जिस तरह से भगवान् की रस-सिद्ध आदि-शक्ति राधा है उसी प्रकार से गोपियाँ उस रस-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कृष्ण अगर चाँद है तो राधा चाँदनी है और चाँदनी को प्रसार देने वाली किरणों जैसी गोपियाँ हैं। इससे यह समझा जा सकता है कि वास्तव में भगवान् अपने आनन्द के लिए ही अपने आनन्दांश का प्रसार इन रस-शक्तियों के रूप में करते हैं और उनका इन शक्तियों में रमना अपने आप मे रमना है।

राधा स्वामिनी और स्वकीया—

वल्लभाचार्य ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और 'त्रिविध नामावली' में राधा का उल्लेख किया है पर उनका उल्लेख स्वामिनी रूप से नहीं किया है, विद्वानों का अनुमान है कि वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीराधा को स्वामिनी पद पर

जहाँ गोवर्द्धन पर्वत मनिमय, सघन कदरा सार।
गोपिन मडल मध्य विराजत निसि दिन करत विहार।
—सूर-सारावली, सूरसागर, वें० प्रेस, पृ० २।

[1] जग नायक जगदीश पियारी जगत जननि जगरानी।
—सूरसागर दशम स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३४५।

[2] भगतनि को गति भक्तन की पति श्रीराधा पद मगल दानी,
असरण सरनी, भव भय हरनी वेद पुरान बखानी। ·····
कृष्ण भक्ति दीजै श्रीराधे, सूरदास बलिहारी।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३४६।

[3] मोहन को मन यो बस कीनो ज्यो चकई सग डोर।
—नददासग्रन्थावली, ५६, पृ० ३३५।

रस ही में वश कीने कुँवर कन्हाई।
—चतुर्भुजदास-पदसग्रह (दीनदयालगुप्त का सग्रह) ११९।

[4] प्रगटे पुरुषोत्तम श्री राधा द्वे विध रूप बनाई री।
—छीतस्वामी (जीवनी और पद सग्रह) मगलाचरण २।

प्रतिष्ठित करने वाले विट्ठलनाथ ही हैं। उन्होंने राधा-स्तुति विषयक दो ग्रन्थ स्वामिन्याष्टक तथा 'स्वामिनी स्तोत्र' भी लिखे। विट्ठलनाथ जी के समय से ही सम्प्रदाय में राधा का महत्व बढ़ा और वे परब्रह्म श्रीकृष्ण की 'सबभवन समर्थरूपा' प्रमुख शक्ति रूपा मानी गई। सम्प्रदाय में राधा की प्रतिष्ठा में गोस्वामी विट्ठलनाथ पर पूर्ववर्ती वैष्णव कवि जयदेव विद्यापति तथा श्री चैतन्यदेव तथा उनके वृन्दावनस्थित शिष्यों का प्रभाव मानना अनुचित न होगा। वल्लभ मत में स्वामिनी राधा स्वकीया मानी गई हैं।[1]

वल्लभ सम्प्रदाय में गोपी—

गोपी-स्वरूप—

'एकोऽहं बहुस्याम' अर्थात "मैं एक हूँ अनेक हो जाऊं" सच्चिदानन्द परब्रह्म की यही इच्छा सृष्टि के मूल में है। परब्रह्म की इसी इच्छा शक्ति के फलस्वरूप अक्षर ब्रह्म के सत चित, आनन्द से सृष्टि के भिन्न भिन्न रूपों और शक्तियों की सृष्टि हुई। सत का प्रकाश जगत के रूप में हुआ और चिद रूप, देवता-जीव आदि सृष्ट हुए। गोप-गोपी गोलोक आदि आनन्द रूप शक्तियों की उत्पत्ति स्वयं आनन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम" रूप से हुई।

---

[1] जाको व्यास वर्णित रास,
है गन्धर्व विवाह चित दे सुनो विविध विलास।
कियो प्रथम कुमारि यह व्रत धरयो हृदय निवास,
नन्द सुत पति देव देवी पूज मन की आस।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे० पृ० ३४८।

दूलह गिरिधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी जू।
ब्याह भयो मोहन को जबही यशोमति देत बधाई।
चिरजीवो भूतल यह जोरी नंददास बलि जाई।
—नन्ददास (शुक्ल), परिशिष्ट ३७ पृ० ३७४–७५।

कीरति बोलि सब ब्रज-नारी ब्याह के गीत गवाए।
रैति असीस सब मिलि जुवती-जुवत बसो ब्रज राई।
चिरजीवो वृषभान-सुता अरु स्यामसुंदर सुखदाई।
—कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह) स्याम-सगाई १०, पृ० ७।

वल्लभ दर्शन के अनुसार गोपिया शुद्ध प्रेममय रस-शक्ति स्वरूपा है।[1] इनके बिना पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का रस-रूप अपूर्ण है। ये गोपियाँ भगवान् की नित्य लीला की सहचरी है। तथा उनकी आनन्द प्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति है।[2] इस प्रकार से भगवान् और गोपियां अभिन्न है, उनमें अभेद है। गोपिया धर्म है और श्रीकृष्ण धर्मी।

गोपियां रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्ति—

वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों के लिए ब्रज की गोपिकाएँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियों के प्रतीक है।[3] भजनानन्द से सर्वेन्द्रियान्वाद्य रस की अनुभूति अर्थात् रसात्मकपुरुषोत्तमस्वरूप के सौन्दर्य की अनुभूति दिव्य स्त्री देह द्वारा ही सभव है, पुरुष देह द्वारा नहीं। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम-पुरुष-स्वरूप तो है ही, साथ ही वे सदानन्द-स्त्रीपुरुषमय-द्विविध रसात्मक स्वरूप भी है।[4] अत केवल ब्रजगोपिया ही द्विविध रस का पान करने मे समर्थ है। इस रसपान के साथ ब्रह्मानन्द की कोई तुलना ही नही हो सकती, यह परम अनुभूति है। इसीलिए श्रीवल्लभाचार्य ने रासलीला के पांच अध्यायो को फल-प्रकरण के अन्तर्गत माना है अर्थात् चरम फल प्राप्ति इसी लीला में होती है।

---

[1] सुद्ध प्रेममय रूप, पचभौतिक तें न्यारी।
तिनहि कहा कोऊ गहै जोति सी जग उजियारी।
—नन्ददास (शुक्ल), रासपचाध्यायी प्रथम खंड अध्याय, पृ० १६०।

[2] गोपी प्रेम की ध्वजा,
जिन जगदीश किये वश अपने उर धरि श्याम भुजा।
सिव विरच प्रससा कीनी, ऊधो संत सराहीं।
धन्य भाग गोकुल की वनिता अति पुनीत मुख माही।...
—परमानन्ददास-पद-सग्रह (दीनदयालगुप्त संग्रह), २७९।

[3] धन्य कहत भई ताहि, नाहि कछु मन में कोपी।
निरमत्सर जे सत, तिन की चूडामनि गोपी।।
—नददास (शुक्ल), रासपचाध्यायी, द्वितीय अध्याय, पृ० १७०।

[4] द्वै तनु जीव एक हम तुम दोऊ सुख कारन उपजायो।
ब्रह्म रूप द्वितीया नहि कोई तब मन त्रिया जनायो।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० २६२।

सर्वात्मभाव और उसके पांच सोपान—

स्त्री का भाव और देह (न्त्रिय देह) धारण करने वाले भक्त में ही भगवान् अपना रसात्मक स्वरूप प्रतिष्ठित कर सकते हैं अन्यथा नहीं। रासलीला के पांच अध्यायों में इसी सर्वात्मभाव-संपादन के पांच सोपान वर्णित हैं। यथा—

(१) आत्मानन्द द्वारा लिंग शरीर का जीवन-दान, यह स्वरूपस्थिति हुई।
(२) मानसीलीला, जब कि भक्त के मन में भगवत्सम्बन्ध रहता है।
(३) वाणी और प्राणबल द्वारा लीला।
(४) इन्द्रियों द्वारा लीला।
(५) शरीर लीला, इस अवस्था में भगवान् का रसात्मक स्वरूप पूर्ण रूप से भक्त में प्रतिष्ठित होता है।

गोपियां सर्वात्मभाव का पूर्ण प्रतीक—

"सर्वात्मभाव' का अर्थ है कि भगवान भक्त के अन्तर और बाह्य दोनों में उपस्थित हैं। उस अवस्था में भक्त का अपना पृथक् स्वरूप लय को प्राप्त हो जाता है। उस सर्वात्मभाव का पूर्ण प्रतीक हैं गोपियाँ जिन्होंने चरम भजनानन्द की अनुभूति पाई थी। हरि जीवात्मा में तभी तक रमण करते हैं जब तक कि आन्तरिक शरणागति रहती है। शरणागति की न्यूनता होने ही भगवान् बाह्यतः तिरोहित हो जाते हैं किन्तु पुनः शरणागति की पूर्णता लाने के लिए भक्त के अन्तःकरण के साथ सम्बन्ध बनाए रखते हैं। भगवान के वेणुनाद से जीवों के पूर्वदेहादिप्रपंचों का लय होता है। इस फलात्मक निरोध कहते हैं। इससे अलौकिक देह मिलती है जिसके द्वारा रासलीला में प्रवेश किया जा सकता है। इसी लीला में पूर्ण स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है।

गोपियां सर्वश्रेष्ठ भक्त—

गोपियों और भगवान् का भजन—भगवान् का एकमात्र ऐसा सम्बन्ध है जिसमें दोनों पूर्ण रूप से एक दूसरे का भजन कर सकते हैं। उन दोनों का यह परस्पर भजन विषयवत् नहीं है इसमें काम भाव को स्थान नहीं। इसमें केवल भावप्रधान रसरीति से ही परस्पर भजन होता है। इस प्रकार से गोपियों को ही पूर्ण फल प्राप्ति होती है और वे ही सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।[1] अतः आनन्दांश की प्राप्ति का अभिलाषी भक्त गोपी स्वरूप बनने की कामना करता है।

---

[1] भागवत के दशम स्कन्ध की सुबोधिनी टीका के आधार पर लिखित।

गोपी आत्मा और श्रीकृष्ण परमात्मा—

कृष्णलीला को प्रतीक रूप मानने वालो के लिए गोपी (राधा) आत्मा और श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। अतः परमात्मा से मिलने के लिए यह आत्मा सदा व्याकुल रहती है। निकुंज लीला मे श्रीकृष्ण मिलन ही आत्मा का परमात्मा से मिलन, भक्त की साधना का चरम साध्य है।

गोपियों के तीन प्रकार—'अन्य पूर्वा', 'अनन्यपूर्वा', 'सामान्या'—

वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्ति की भिन्न-भिन्न कोटियो की दृष्टि से गोपियो के भेद किए गए है। भक्ति की चरमावस्था तथा उच्चतम कोटि की प्रतीक वे गोपियाँ थी जो विवाहिता तो थी परन्तु कृष्ण के प्रति उनकी परम आसक्ति थी। यह परकीया-भाव की भक्ति है और भक्त इसे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। परकीया-भाव की इस भक्ति में सब कुछ को आप्लावित कर देने वाला अनुराग था। इस कोटि में जिन गोपियो को रखा गया है, वे 'अन्यपूर्वा' कहलाती है। इनके लिए लोक-लाज, कुल-मर्यादा, समाज के सभी बन्धन नगण्य हैं, उनके लिए इनका कोई अर्थ नहीं।[१] समाज के लिए भले ही इस अनन्य प्रेम, रस सब कुछ को आत्मसात् करने वाली आसक्ति का रूप गर्हित माना जाता हो लेकिन भक्तो के लिये यही सब कुछ है तथा इससे बढकर काम्य और कुछ नही।

गोपियो की एक दूसरी कोटि है जो 'अनन्य पूर्वा' कहलाती है। ये 'अनन्य पूर्वा' गोपिकाएँ भी दो भागो में विभक्त की जाती है। एक में तो वे गोपिकाएँ है जो कुमारिकाएँ है और जो कृष्ण को पति रूप मे पाने के

---

[१] कहत व्रज नागरी।

हम अहीरि गृहनारि लोक लज्जा के जेरो।
तादिन हम भई बावरी, दियो कण्ठ ते हार।
तब ते घर घेरा चल्यो, स्याम तुम्हारो जार।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वैं० प्रे० पृ० २५३।

धर्म कर्म लोक लाज सुत पति तजि बाई,
चत्रभुज प्रभु गिरिवर मैं जाचे गी माई।

—चतुर्भुजदास—पद-संग्रह (दीनदयाल गुप्त का संग्रह) ५८ (अ)

लिए नाना प्रकार के व्रत, पूजा उपासना आदि करती है।[1] ये गोपिकाएँ कृष्ण के ध्यान में ही अविवाहिता रहकर समस्त जीवन बिता देती है। 'अन्य पूर्वा' का दूसरा भेद वह है जिसमें गोपिकाएँ कृष्ण की परिणीता हैं कृष्ण उनके पति हैं। ये अन्य पूर्वा स्वकीया हैं। ये समाज के बन्धन को स्वीकार करती हैं लेकिन उनकी एक यह विशेषता रही है कि पूर्व राग की उत्कट अवस्था में समाज के बन्धनों को ठुकरा कर वे कृष्ण से जा मिली थी। चूंकि भगवान के प्रेम के लिए उन्होंने समाज के बन्धनों को 'ना कर दिया था इसलिए भक्तों के लिए इनका भी बहुत बड़ा महत्व है वैसे 'अन्य पूर्वा' की दृष्टि से इनका स्थान नीचे है।

तीसरे प्रकार की गोपिकाएँ वे हैं जिनका कृष्ण में वात्सल्य भाव है। ये गोपियां यशोदा की तरह कृष्ण के लिए प्रेम की आतुरता का अनुभव करती है। ये 'सामान्या' कही गई है और इनका स्थान अन्य पूर्वाओं से भी नीचे का है। भक्ति के मार्ग में वल्लभ सम्प्रदाय वाले इन्हें तीसरी कोटि में रखते हैं और इसे पहली सीढ़ी मानते हैं। यही कारण है कि वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरों में बाल भाव से ही भगवान की सेवा विधि का आयोजन होता है।

इस प्रकार से गोपिकाओं के तीन भेद अन्यपूर्वा अनन्य पूर्वा और सामान्या वल्लभ-सम्प्रदाय में गृहीत हैं।

अष्ट सखा सखी—

वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत सखा भाव से भक्ति करने वाले भक्त आठ प्रकार के माने गये हैं। इसी तरह से मधुर भक्ति करने वाले भक्त सखी भाव से भक्ति करते हैं। इनके भी आठ प्रकार कहे गये हैं। अष्ट सखाओं के बारे में कहा जाता है कि इनमें दोनों रूपों का समावेश है। दिन के समय ये सखा, गोचारण आदि में कृष्ण के सखा रूप में विद्यमान रहते हैं और रात्रि में सखी भाव से उनका अनुरंजन करते हैं। ब्रज-लीला में इन सखियों का अपना स्थान है।

---

[1] महादेव पूजनि मन बच क्रम करि सूर स्याम की आस।
—सूरसागर दशम स्कन्ध वे० प्रे०, पृ० १९६।
जल प्रवेश करि मज्जन लागीं प्रथम हेम के मास।
हमारे प्रीतम होय नंद सुत तब टान्यो इह आस।
—परमानन्ददास—पद-संग्रह (दीनदयाल गुप्त का संग्रह) ९१।

अनन्य भक्त गोपियों ने सासारिक बन्धन को तृणवत् मान श्रीकृष्ण चरण में पूर्ण आत्मसर्पण किया। कृष्ण भी उस पवित्र प्रेम के वश हैं, इसलिए भक्तो के लिए वे आदर्श बनी।[1] वल्लभाचार्य ने गोपियो को गुरु मान कर उनके प्रेममूलक साधनो को ही पुष्टि भक्तो के लिये मुख्य साधन माना।

वल्लभ सम्प्रदाय में जीव-जीव का स्वरूप—

वल्लभ-मत में परब्रह्म ही रमण की इच्छा से 'एक' से बहु जीव रूप में प्रकट होता है। अत ब्रह्म और जीव में अशी-अश की अद्वैतता है। जब सच्चिदानन्द अक्षर-ब्रह्म जीव रूप ग्रहण करता है, तो उसमें आनन्दाश का तिरोभाव हो जाता है और उपनिषद् में दिए गए रूपक 'अग्नि से स्फुलिंग' के समान उसके चिद् अश से असख्य जीव उद्भूत होते है।[2] जीव चित्प्रधान ब्रह्माश होने के कारण नित्य और सनातन है। यद्यपि आकार में जीव अणु है और शरीर के अग विशेष में ही उसकी अवस्थिति है, पर स्वरूप तथा धर्म दोनो से ही वह चैतन्य है, इस चिन्मय गुण के व्यापकत्व के कारण अन्धकार में दीपालोक और गन्ध के समान सम्पूर्ण शरीर पर उसका गुण प्रसरित रहता है।[3] सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ अशी भगवान का अश होने के कारण जीव अल्पशक्ति और अल्पज्ञ है। भगवद्गीता में भी भगवान ने जीव की यही परिभाषा दी है।[4]

---

[1] प्रेम-मई तुम्हरी माया मो मोहिं मोहति है।
तुम जो करी सो कोउ न करै, सुनि नवल किसोरी।
लोक-भेद की सुदृढ सृखला तृन सम तोरी।
—नददास (शुक्ल), रासपचाध्यायी, चतुर्थ अ० पृ० १७५।

[2] विस्फुलिगा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गता। —अणुभाष्य, २।३।४३।
जीवस्य हि चैतन्य गुण स सर्वशरीरव्यापी-वही २।३।।२५,२६

[3] जीवस्त्वाराग्रमात्रो हि गन्धवदव्यतिरेकवान्।
व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्वेन युज्यते।
—तत्वदीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण ५७, पृ० १५६।
चेतन घट घट है या भाई, ज्यो घट घट रवि प्रभा समाई।
—सूरसागर, तृतीय स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ४३।

[4] ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन.।
मन षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ —भगवद्गीता, १५।७

माया का जीव पर प्रभाव—

वल्लभाचाय ने सृष्टि प्रसार के लिए ब्रह्म की शक्ति स्वरूपा माया के दो रूप माने ह—विद्या माया और अविद्या माया।[1] अविद्या माया ही जीव के ससार बधन का कारण है और विद्या माया जीव को इस ससार-बधन से मुक्त कराती है। ब्रह्म की शक्तिरूपिणा अविद्या माया ब्रह्म को व्याप नही सकती, जीव का दुबल देखकर उसे पूरी तरह घर दबाती ह। सवप्रथम ब्रह्म में जीव स्वरूप में परिणति क समय ही उसमें आनन्दाश का लोप हो जाता ह फिर भी ब्रह्मांश होने के कारण जीव में भगवदगुण ऐश्वय, वीय, यश, श्री, ज्ञान, वराग्य अश रूप में अवशिष्ट रहते ह। पर अविद्या माया के प्रभाव के कारण जीव में से भगवद्गुणा का तिरोभाव होने लगता ह जा जीव में सासारिक बधन और विपयय का कारण बनता है। ऐश्वय के तिरोभाव से जीव में दीनता और पराधीनता, वीय के तिराभाव से अनेक दुख यश के चले जाने से हीनता, श्री के छिपने से जम-मरण आदि अनेक दाष, ज्ञान के अभाव में देहात्म बुद्धि तथा अय पदार्थों में विपरीत बुद्धि का उदय और वैराग्य के न रहने स विषयासक्ति जगती है।[2] इस प्रकार अविद्या, माया और भ्रम के फन्दे में फँसा हुआ जीव अपने कर्मानुसार अनेक योनिया में भ्रमता फिरता है। भगवान स विमुख जीव अनेकानेक कष्ट भोगता रहता ह।

भगवान् के अनुग्रह से जीव का ब्रह्मभाव—

दयालु भगवान् जीव पर द्रवीभूत होते ह और भगवद् अनुग्रह से ही भक्ति और सेवा द्वारा जीव में तिराहित आनन्दाश का पुन आविर्भाव होने लगता ह।[3] क्रमश उसमें पूण सच्चिदानन्द का भाव प्रकट हो जाता है यही जीव का

---

[1] विद्याविद्ये हरे शक्ती माययव विनिर्मिते।
त जीवस्यव नायस्य दुखित्व चाप्यनीशता॥
—तत्वदीप निबन्ध शास्त्राथ प्रकरण, ३४।

[2] अणुभाष्य, ३।२।५।

[3] नमो नमो करुणानिधान,
चितवन कृपा कटाक्ष तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान।
मोह निशा को लेश रह्यो नहिं भयो विवेक विहान
आतम रूप सकल घट दरस्यो उदय कियो रवि ज्ञान।
—सूरसागर, द्वितीय स्कध, वें० प्रे०, पृ० ३८।

ब्रह्मसाम्य या ब्रह्मभाव है। अग्निव्याप्त लोहे के गोले से जैसे दाहकता आदि धर्म की अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही ब्रह्मभूत जीव के शरीर से जीवगत चिदानन्द का आविर्भाव होता है। तब जीव शरीर में न तो जड़ता का भाव ही रह जाता है और न तो त्रिगुणात्मिका गुण ही शेष रह जाते हैं। उस समय देही जीव कर्मों का भोक्ता नहीं रह जाता, जीव उस समस्त ब्रह्मरूप से प्रकाशित होता है। तिरोहित आनन्दों का प्रकट होना एकमात्र भगवान् की इच्छा पर ही निर्भर है, उनकी इच्छा स्वतन्त्र है। भगवान् जीव के प्रसुप्त और अव्यक्त आनन्दांश को उद्बुद्ध कर किसी को ब्रह्म-भाव देते हैं तो किसी को अक्षर-सायुज्य।

जीव के प्रमुख तीन प्रकार—

वल्लभ-मत में जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं (१) पुष्टि (२) मर्यादा और (३) प्रवाही। ये तीनों ही स्वभाव से पृथक् और इनका उद्भव और चरम लक्ष्य भी भिन्न-भिन्न हैं।[1] इस प्रकार पारस्परिक भेद को लिए हुए सभी भगवान् से ही उद्भूत हैं और जीवनारम्भ से जीवनान्त तक उनमें स्वभावभेद बना ही रहता है। प्रादुर्भाव के समय से ही जीव का स्वभाव साथ ही भाग्य भी निर्धारित रहता है। वल्लभ मतानुसार भगवान् ही जीव के स्वभाव का निर्णायक है, अत स्वभाव भेद के अनुसार कार्य करने के लिए जीव दोषी नहीं है।

पुष्टि जीव—

पुष्टि जीव पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंग से उत्पन्न[2] होने के कारण सर्वोत्तम और सर्वोच्च है। इनकी सृष्टि भगवान् की स्वरूप-सेवा के लिए हुई है।[3] ये अपने स्वभाव के कारण साधना के चरम लक्ष्य परब्रह्म श्रीकृष्ण सान्निध्य

---

[1] पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक्-पृथक्।
जीवदेहक्रियाभेदै प्रवाहेण फलेन च॥
—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद (षोडशग्रंथ संग्रह) १।

[2] पुष्टि कायेन निश्चय।
—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद वही, ९।

[3] भगवद् सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्।
—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद (षोडशग्रंथ संग्रह), १२।

और साहचय को प्राप्त कर लेते हैं। और भगवान् के लोक में लीला आस्वादन द्वारा पूर्ण आनन्द प्राप्त करते रहते हैं, यही उनकी मुक्ति है। पुष्टि जीव पूर्णतया भगवान् की कृपा पर ही आश्रित होने के कारण क्रमशः सच्ची भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं जो साधन और साध्य रूपा है। ये यथार्थ में भगवद् अनुग्रह पात्र हैं।

मर्यादा जीव—

दूसरे प्रकार के मर्यादा जीव भगवान् के वाच से उत्पन्न हुए[1]। ये विधि नियम को मान कर चलने के कारण पुष्टि जीव से पृथक् हैं। वेद प्रतिपादित विधि नियमों का अक्षरशः पालन करने के कारण ये वैदिक-जीव भी कहलाते हैं।[2] इन जीवों को पुरुषोत्तम की स्वरूप सेवा का अधिकार नहीं है। ये स्वर्गादि की कामना से प्रेरित होकर ही उत्साहपूर्वक कर्म करते रहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बहुत दिनों तक फल की वासना से किए गए कर्मों की ओर से इन मर्यादा जीवों का मन उचटने लगता है और तब वे स्वार्थ रहित फलासक्ति हीन कर्म की ओर उन्मुख होते हैं। इस प्रकार निष्काम भावना के कारण उनकी बुद्धि और मन का परिष्कार हो जाता है। यदि वे इसी प्रकार निरंतर इसी मार्ग पर चलते रहें तो अक्षर-धाम को प्राप्त करते हैं और फिर अक्षर ब्रह्म में अपनी सत्ता का लय कर देते हैं। यदि भगवान् चाहे तो अक्षर-सायुज्य से निकाल कर अपनी लीला का भागी बना सकता है पर अपने मूल स्वरूप में मर्यादा जीव होने के कारण इस विकास क्रम के लिये उन्हें विशेष भगवद् अनुग्रह की आवश्यकता है और तब ये मर्यादा जीव पुष्टि जीव की कोटि में आ जाते हैं।

प्रवाही जीव—

प्रवाही जीव भगवान् के मानस से आविर्भूत हुए।[3] ये संसार के प्रवाह में निरन्तर प्रवाहित होने वाले जीव हैं। स्वनिर्मित माया के संसार में आबद्ध स्वार्थ और ममत्व बुद्धि से प्रेरित होकर सांसारिक विषय-वासना का

---

[1] वचसा वदमाग हि।

—वही ९।

[2] वेदोक्त वदिकेऽपि च।

—पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद, १०।

[3] इच्छामात्रेण मनसा प्रवाह सृष्टवान् हरिः।

—पुष्टि प्रवाह-मर्यादा भेद (षोडश ग्रंथ सग्रह), ९।

भोग करते रहते हैं। अविद्या और मोह के कारण ही ये संसार चक्र में भ्रमते रहते हैं। प्रवाही जीवों को आसुरी सृष्टि भी कहते हैं, ये सबके द्वेषी, क्रूर और अधम जीव हैं।[1] प्रवाही जीवों के दो प्रकार हैं.—(१) अज्ञ तथा दुर्ज्ञ।[2] अज्ञ जीवों का यदि भाग्यवश अज्ञान छूट गया तो उद्धार होता है, पर दुर्ज्ञ जीव घोर आसुरी, दुष्ट प्रकृति के होते हैं जिनका इस संसार चक्र से कभी मोक्ष नही होता।

मुख्य तीन प्रकार के जीव के भेद-उपभेद—

उपरोक्त तीन प्रकार के जीवों के फिर बहुत से भेद-उपभेद हैं। अमिश्रित-शुद्ध-अनुग्रह पात्र शुद्ध-पुष्टि जीव कहलाते हैं। ये जीव पूर्णतया भगवद् अनुग्रह पर ही आश्रित रहते हैं, उन्हें स्व-सामर्थ्य की आवश्यकता नही रहती। भगवद् अनुग्रह के बिना अमूल्य वस्तुएँ भी उनके लिए निस्सार हैं। स्वर्ग भी उनके लिए तृणवत् है, यदि भगवान् उन्हें नरक में डालकर प्रसन्न है, तो वे वहाँ भी परम सुखी हैं, क्योंकि भगवान् सुख से ही वे सुखी हैं। आपत्तियो का पर्वत टूट पड़े, दुःख झड़ी लगाकर बरसने लगे, पर वे उसे भगवदिच्छा जानकर उस दयनीय दशा में भी सुखी और सन्तुष्ट रहेंगे। उनका भगवान् में यह दृढ विश्वास कभी अडिग होने का नहीं, उनकी यह बद्धमूल धारणा है कि भगवान् जो कुछ करता है उनके कल्याण के लिए ही करता है। भगवान् के प्रति उनकी भक्ति और निष्ठा शुद्ध निष्काम भाव की है, अत वे जीवों में श्रेष्ठतम हैं।

दूसरे प्रकार के जीव हैं पुष्टि-पुष्टि। प्रथम प्रकार से इन जीवो में यही भेद है कि यद्यपि इनके जीवन मे भी भगवद् अनुग्रह का बहुत बड़ा हाथ है पर ये पूर्णतया भगवान के पदाश्रय में अपने को डाल नही देते। वल्लभ मतानुसार इसीलिए उनमें एक प्रकार का अभाव बना रहता है, जिसके कारण जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति उन्हें नही हो पाती, अत. साधना के अन्त में उन्हें केवल पूर्ण ज्ञान की ही प्राप्ति होती है।

इसके बाद पुष्टि-मर्यादा वाले जीवो की श्रेणी है। ये अनुग्रह और विधि के बीच आबद्ध हैं। अतएव भक्ति और कर्म दोनो पर ही उनकी आस्था

---

[1] जीवास्ते ह्यासुरा सर्वे प्रवृत्ति चेति वर्णिता.।
तानह द्विपतो वाक्ययाद्भिन्ना जीवा प्रवाहिण ।
—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद, ११।

[2] ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदत.।
वही, २४।

रहती ह, इसी कारण जीवन के चरम प्राप्तव्य को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें क्रमश भगवद् गुणो का ज्ञान होने लगता ह पर भगवान् के सान्निध्य सुख से वे वचित ही रह जाते ह।

फिर है पुष्टि प्रवाह जीवो की श्रेणी। यद्यपि भगवान् का अनुग्रह उनमें रहता है पर वे तीर्थादि नाना धार्मिक क्रिया का अनुष्ठान करते रहते हैं।

अब है मर्यादा पुष्टि जीवो की श्रेणी। वे सासारिक क्रियाकर्मों के त्याग से भगवान् के ध्यान में निरत रहते है। भगवान् के अनुग्रह के कारण भक्ति का अश उनमें रहता ह।

इसके बाद है मर्यादा-मर्यादा श्रेणी। ये स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से धार्मिक कृत्य करते रहते है।

इसके बाद स्थान है मर्यादा प्रवाह जीवों का जो धार्मिक क्रियादि सासारिक सुख की प्राप्ति के लिए करते हैं।

फिर ह प्रवाह-पुष्टि जीवों की श्रेणी। भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने पर भी ससार में ही रत रहते ह।

प्रवाह-मर्यादा स्तर वाले जीव विभिन्न प्रकार के कर्मों में डूबे रहते ह।

सबसे अन्तिम हैं प्रवाह प्रवाह जीव। ये भगवद् अनुग्रह और विधि की सीमा से बाहर ही रहते ह। अत उनका स्वभाव, क्रियादि सभी आसुरी वृत्ति से प्रेरित है।

वल्लभ मतानुसार जीवो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हुआ —
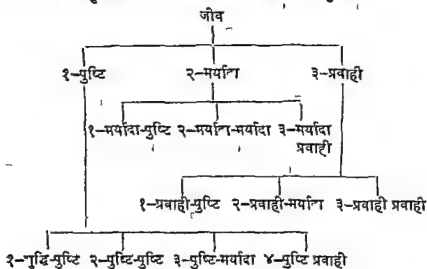
जीवों के वर्गीकरण की विशेषता—

वल्लभाचार्य ने इस वर्गीकरण द्वारा जगत् में आविर्भूत जीवों के स्वभाव भेद से जितने भी प्रकार सभव है—भगवद् अनुग्रह पात्र, विधि-नियम शासित, दोनो की सीमा से परे घोर संसारी—उन सभी का विवरण दिया है।

जीव का ब्रह्मभाव—

वल्लभ-मत में दुःख की पूर्ण निवृत्ति से नित्यानन्द की प्राप्ति मोक्ष मानी गई है। जीव के प्रकार, भावनाभेद, भगवत् कृपानुरूप मोक्ष की भी भिन्न अवस्थाएँ मानी गई है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य इन चार प्रकार की मुक्ति के साथ ही वल्लभ मत के एक और सायुज्य-अनुरूपा-मुक्ति-अवस्था मानी गई है, सब में से इसे श्रेष्ठतम कहा गया है। यह मुक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला में प्रविष्ट होकर उसका पूर्ण आनन्द लेना है। जीवन मुक्त अवस्था मे भी जीव भजनानन्द में लीन रहता है और फिर प्रभु कृपा से ही भगवान् की लीला का अनुभव करता है। यह मुक्ति स्वरूपानन्द कहलाती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में मोक्ष की उच्च अवस्था में भी जीव और ब्रह्म का तारतम्य बना रहता है, क्योकि अभेद होने से जीव को आनन्दानुभव नही हो सकता। इसलिए ब्रह्मभाव प्राप्त करके भी ब्रह्म से भेद रहे यही इस मत की श्रेष्ठ अवस्था है। ब्रह्म भाव को प्राप्त करने पर जीव में परब्रह्म के सब गुण आ जाते है केवल परब्रह्म की आधीनता के कारण उसमें कर्तृत्व भाव नही आता।

वल्लभ संप्रदाय में जगत्—

जगत-ब्रह्म का अविकृत परिणाम—

वल्लभ मत में सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के सत् अंश से जड जगत् अग्नि से चिन्गारी के समान उद्भुत हुआ[1], उसमें भगवान के चिद् और आनन्द अंश का तिरोभाव रहता है। ब्रह्म की इच्छा से ही संपूर्ण सृष्टि का विस्तार हुआ। अत भगवान् की कृति और स्वरूपात्मक होने के कारण यह जगत् सत्य है। जगत् रूप में परिणति से निर्गुण ब्रह्म किसी प्रकार विकार ग्रस्त नही होता, वह पहले ही जैसा शुद्ध निर्विकार बना रहता है।[2] जैसे कंकण,

[1] विस्फुलिंग इवाग्नेस्तु सदंशेन जडाऽपि।
—तत्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक ३२।

[2] ब्रह्म निरीह ज्योति अविकार, सत्तामात्र जगत्-आधार।
दशम स्कन्ध, तृतीय अध्याय (नन्ददास) पृ० २२१।

कुडल आदि विभिन्न गहना के रूप में परिणत सोने में कोई विकार नहीं आता और गलाने के वाद पुन खरा सोना ही वन जाता है, ठीक उसी प्रकार यह जगत् भी ब्रह्म का अविकृत परिणाम है।[1] प्रलय काल में यह पुन शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप में ही तिरोभाव हो जाता है। वल्लभ मत जगत् की उत्पत्ति के सबध में अविकृत परिणामभाव के सिद्धान्त को मानता है।

ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान कारण—

एकमात्र ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण ह।[2] जसे मकडी अपनी इच्छानुसार अपने मुख से तन्तु निकाल कर उसे जाले के रूप में बुन देती है और उसी में रमण करती है और फिर तन्तु को अपने ही मुख में समा लेती है। उसी प्रकार ब्रह्म भी लीला के लिए स्वेच्छा से इस जगत का प्रसार करता है और फिर लीला के वाद अपनी ही इच्छा से जगत् को समेट कर अपने में अन्तर्हित कर लेता है।

ब्रह्म-कृत 'जगत्' और जीव-कृत 'ससार'—

ब्रह्म अपनी माया शक्ति के प्रभाव से विभिन्न आकार ग्रहण करता है, वही ब्रह्म जगत (प्रपच) के रूप में भी प्रतिभासित होता है। वस्तुत माया निर्मित जगत् (प्रपच) भगवान् का ही आत्म रूप ह। इसी माया की अविद्या

---

[1] एकै वस्तु अनेक ह्वै जगमगात जगघाम।
जिमि कचन तें किंकिणी ककण कुडल नाम॥
—अनेकार्थ मजरी (नददास) दोहा २, पृ० ९८।

[2] जगत समवायि स्यात् तदेव च निमित्तकम्।
—तत्वदीप, निवध, शास्त्रार्थ प्रकरण पृ० २३३।

ननु ब्रह्म जगत्कारणमिति सिद्धम्। तच्च समवायि निमित्त चेति च कारणधम। एव हि कार्यं भवन्ति
—अणुभाष्य, ३ अध्याय, २ पाद १७ सूत्र पृ० ९१०।

प्रपञ्चो भगवत्कार्यास्तद्रूपो माययाभवत्।
तच्छक्त्याविद्यया त्वस्य जीव-ससार-उच्यते।
—तत्वदीप निवध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक २६ पृष्ठ ७५।

शक्ति के सहारे जीव ससार का निर्माण करता है।[1] 'मैं और मेरा' यही ससार का वास्तविक स्वरूप है। अज्ञान, भ्रम आदि शब्द ससार की विभिन्न सज्ञाएँ हैं।

जगत् और संसार में भेद—

जगत् (प्रपच) और ससार एक वस्तु नहीं है। जगत् ब्रह्मात्मक होने के कारण कभी अज्ञान कल्पित और भ्रात नहीं हो सकता। भगवान् रमणेच्छा और रसास्वादन के लिए ही प्रपच रूप से आविर्भूत होते हैं। जगत के अन्तर्गत जीव, जीव-कृत विभिन्न कर्म और उनके फल सभी भगवान् के विभिन्न रूप हैं। पर जब भगवत् सत्ता से पृथक् होकर जीव में अपने वास्तविक स्वरूप और स्वभाव की विस्मृति जगती है, तभी अज्ञान और भ्रमवश जीव अपने को ही सब कर्मो और फलो का भोक्ता समझने लगता है। इसीसे 'मैं' और 'मेरा' रूप भ्रान्तिजन्य ससार का उदय होता है।[2] यह ससार जीव की स्वार्थवृत्ति और अविद्याजन्य भ्रम का परिणाम है। भगवान् से स्वतंत्र कर्तृत्व ज्ञान और संपूर्ण संसार की स्थिति ही भ्रामक और मायिक है। सुख-दुख संसार के साथ लगे रहते हैं, जगत् के साथ नही। अविद्या के कारण ही जीव ससार-चक्र में अहता-ममता, राग-द्वेष, जन्म-मरण आदि विभिन्न दुःख-शोक से जकड़ा हुआ घूमता फिरता है।

भगवान् की भक्ति और कृपा से संसार की निवृत्ति—

भगवद् भक्ति और कृपा द्वारा जीव इस अविद्या से मुक्ति पाकर पुन अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है। तत्वज्ञान के आविर्भाव से जीव को सब कुछ ब्रह्ममय ज्ञात होने लगता है और यह इस मायिक ससार से निवृत्त हो जाता।[3] जीव के जीवन्मुक्ति के समय संसार की निवृत्ति हो जाती

---

[1] मिथ्या यह ससार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है देह कहो क्यो हरि बिसराया।
—सूरसागर, दशम स्कध, वें० प्रे०, पृ० १५८।

[2] नमो नमो करुणा निधान,
चितवत कृपा कटाक्ष तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान।
मोहनिशा को लेश रह्यो नहिं भयो विवेक विहान,
आतम रूप सकल घट दरस्यो उदय कियो रविज्ञान।
मैं मेरी अब रही न मेरे, छूट्यो देह अभिमान।...
—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वें० प्रे०, पृ० ३९।

[3] वही।

है, किन्तु ब्रह्मात्मक जगत् की निवृत्ति नहीं होती।[1] ब्रह्म के समान ही जगत की सत्ता नित्य और सत्य है, आविर्भाव और तिरोभाव उसकी केवल यही दो अवस्थाएँ हैं। जीव कितनी ही सख्या में मुक्त क्यो न हो जाएँ, पर जगत् या प्रपच का लोप नही होता। जगत् का आविर्भाव तिरोभाव तो केवल भगवदिच्छा पर निर्भर है। भगवान जब आत्मारामरूप से अपनी आत्मा में ही रमण करता है तब जगत उसी के स्वरूप में विलीन रहता है। ऐसी दशा में जीव विश्राम सुख का अनुभव करता है पर यह जीव की मुक्ति नहीं है।

विद्या द्वारा अविद्या का उपशमन—

विद्या के उदय से अविद्या की निवृत्ति होती है और अविद्या के विनाश से ससार से जीव की मुक्ति होती है। विद्या से अविद्या का विनाश होता अवश्य है, पर वह सम्यक् विनाश नही, इसी कारण यह मुक्ति यथार्थ मुक्ति नही है। समवायी के नाश से ही कार्य का सर्वथा विनाश होता है। विद्या सात्विक है, उसके द्वारा स्वजन्य माया का विनाश नहीं होता और जब तक माया है, सूक्ष्म रूप में अविद्या भी अवश्य वर्तमान रहती है। अत विद्या का परिणाम अविद्या का अभिभव मात्र है वास्तविक विनाश नही। अविद्या के कारण देह, इन्द्रिय आत्मा में जो भ्रान्ति उत्पन्न होती है, विद्या केवल उसी का उपशमन करती है इसलिए जन्म-मरणादि के दुख से उसे मुक्ति मिलती है। भ्रान्ति भले ही न रहे, पर देहादि की स्थिति जगत में होने के कारण उसके स्वरूप का लोप नही होता। यह स्थिति भी एक प्रकार का मोक्ष ही है इसे बन्ध निवृत्ति कहते हैं। वस्तुत जगतमायानिवृत्ति ही यथार्थ मुक्ति है विद्या से उसकी प्राप्ति सभव नही। वल्लभ मत में माया ही देह निर्माता है और माया में अविद्या की सूक्ष्म अवस्थिति के कारण देहादि की भ्राति न रहने पर भी जीव के अन्त करण में किंचित अविद्या का विकार रह ही जाता है।

जीव की चरम फल प्राप्ति 'ब्रह्मभाव'—

जीव में जब तक जीवत्व है तब तक शरीर के लय होने पर भी उनमें पुनरुद्भव की सभावना बनी ही रहती है। क्योंकि ऐसी दशा में देहादि केवल पचतत्व को प्राप्त होती हैं मूल कारण में विलीन नही होतीं। किन्तु जीव भाव की

---

[1] ससारस्य लयो मुक्तौ न प्रपचस्य कर्हिचित्।
कृष्णस्यात्मरतौ त्वस्य लय सर्वसुखावह॥
—तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक २७, पृ० ८४।

निवृत्ति से अर्थात् जीव ब्रह्मभूत होने या अक्षर ब्रह्म में लीन होने पर शरीर पूर्ण रूप से मूल कारण में लीन हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भक्तो का चरम फल यही है कि वह स्थूल लिंग-शरीर को छोड़ भगवत्लीलोपयोगी देह पाने के बाद ब्रह्म के साथ आनन्द रस ले।[1] पूर्ण पुरुषोत्तम के लोक में पहुँच कर पूर्ण पुरुषोत्तम की आनन्द लीलाओ का आनन्द विग्रह से अनुभव करना ही वल्लभ सप्रदायी भक्त का एक मात्र लक्ष्य है। जिस समय पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म अपनी लीला का संवरण करते है, उस समय लीला-मग्न जीव की पृथक् सत्ता नही रहती। परब्रह्म के आनन्दाश में उसकी सामुज्य मुक्ति हो जाती है।

वल्लभ संप्रदाय में भक्ति का स्वरूप—

माहात्म्य ज्ञान और प्रेम ही भक्ति है—

वल्लभाचार्य ने भक्ति विषयक कोई स्वतत्र ग्रथ की रचना नही की, परतु उनके विभिन्न ग्रन्थो में स्थान-स्थान पर भक्ति के स्वरूप का बहुत सुन्दर विवेचन हुआ है। अपने पूर्ववर्ती भक्तिशास्त्र के मुख्य प्रणेताओ की भक्ति-सबंधी मान्यताओं[2] का महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुन्दर समन्वय किया और भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की—"माहात्म्य ज्ञान के साथ भगवान् के प्रति सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है।" मुक्ति का इससे अधिक सरल उपाय

---

[1] अग्रे प्राप्या लौकिकदेहाद्भिन्ने स्थूलर्लिगशरीरे क्षपयित्वा दूरीकृत्य, जय भगवत्लीलोपयोगिदेहप्राप्त्यनन्तर भोगेन सम्पद्यते। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सहब्रह्मणा...।

—अणुभाष्य, ४।१।१९

[2] 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' —शाडिल्य, भक्ति सूत्र, २

सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। अमृत स्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किंचिद्वा छति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। —नारद-भक्ति-सूत्र २, ३, ४, ५।

देवाना गुणर्लिगानामानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसोवृत्ति स्वाभाविकी तु या॥
अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोश निगीर्णमनलो यथा॥

—श्रीमद्भागवत ३।२५।३२-३३।

नहीं है।"[1] इस प्रकार से वल्लभीय मत में माहात्म्य ज्ञान से ही भक्ति का उदय होता है। भगवान् में दृढ और गाढ स्नेह विशेष ही भक्ति है।

पुष्टि और भक्ति—

वल्लभाचार्य प्रवर्तित 'पुष्टि भक्ति' के नाम से सुपरिचित है। 'पुष्टि-भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। इसमें प्रेम के द्वारा ही सब कुछ संपन्न होने की बात कही जाती है, इसलिये इसे प्रेम लक्षणा भक्ति या रागात्मिका भक्ति कहते हैं। विशुद्ध प्रेम के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति सम्भव है, ऐसा मानकर इस सम्प्रदाय वाले इसी साधना का अवलंबन करते हैं। विशुद्ध प्रेम को वल्लभाचार्य 'विशुद्धपुष्टि' मानते हैं और गोपियों को विशुद्ध प्रेम का प्रतीक समझते हैं।[2] प्रेम-लक्षणा भक्ति को अष्टछाप के भक्त-कवियों ने बहुत बड़ा स्थान दिया है। सर्वत्र उनके पदों में भगवान् के प्रति इस मधुर प्रेम का वर्णन किया गया है।[3]

---

[1] माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोऽधिक ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यया ॥
—तत्त्वदीपनिबंध शास्त्राथ प्रकरण, श्लोक ४६।

[2] गोपी प्रेम की ध्वजा।
जिन जगदीश किये बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सिव विरंचि प्रसंसा कीनी ऊधो संत सराहिं
धन्य भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत मुख माहिं।
कहा विप्र घर जन्महिं पाये हरि सेवा विधि नाहिं
तेहि पुनीत दास परमानंद जे हरि सम्मुख जाहिं ॥
—परमानन्द, (अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५४१ पर उद्धत)

[3] प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होइ, नाथ कृपा करि दीजै सोइ।
और सकल हम देखीं जोइ तुम्हारी कृपा होइ सो होइ ॥
—सूरसागर, प्रथम स्कंध, राग बिलावल ४९१९।

नित्य आनन्द अखंड सम्प उदार।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परवार।
—नन्ददास (शुक्ल) सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ० १९१।

प्रीतम प्रीत ही तें पैये।
जदपि रूपगुन शील सुघरता इन बातनि न रिझये।

मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति—

वल्लभाचार्य भक्ति के दो भेद बतलाएँ है (१) मर्यादा भक्ति, (२) पुष्टि-भक्ति। मर्यादा-भक्ति में भगवान् मर्यादा के पालन करने वाले होते है तथा इस भक्ति में भक्त भजन, पूजन आदि साधनो का सहारा लेता है, विधि-निषेधो को मानकर चलता है। मर्यादा का पालन करता हुआ, साधन में लगा हुआ, साधक इस बात की आकाक्षा करता रहता है कि उसे सायुज्य की प्राप्ति हो। इस प्रकार से मर्यादा-भक्ति में फल की आकाक्षा बनी रहती है। मर्यादा-भक्ति को बहुत लोगो ने वैधी भक्ति भी कहा है। शास्त्र में बताए हुए नियमों और विधियो का पालन इस भक्ति का साधन है।[1] पुष्टि भक्ति में प्रेम ही प्रधान रहता है। यह निस्साधन भक्ति है। इसमें भक्त को किसी प्रकार की आकाक्षा नही रहती। इस भक्ति में भक्त भगवान् का प्रेम पाकर एक अपूर्व आनन्द और परम शान्ति का अनुभव करता है।

भगवान् के अनुग्रह से पुष्टिभक्ति की प्राप्ति—

वल्लभाचार्य ने बतलाया है कि पुष्टि-भक्ति या प्रेम-लक्षणा-भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है।[2] भगवान् की कृपा से यह स्वत उत्पन्न होती है। इसमें किसी साधन की अपेक्षा नही रहती। भगवान् जीवो पर दया कर अपने अनुग्रह की अभिव्यक्ति करते है। भक्त अगर चाहे कि अपने पुरुषार्थ अथवा किसी साधन का अवलम्बन लेकर इसे प्राप्त करे तो यह सभव नही। उसे भगवान् की दया पर ही इसके लिए निर्भर करना पडेगा। यह भी कहा गया है कि पुष्टिमार्गीय भक्त के सभी कार्यों का नियामक भगवान् का अनुग्रह ही है।[3] पुष्टि-भक्ति में भगवान् के साथ भक्त का अभेद-बोधन

सतकुल जनम करन सुभ लच्छन वेद पुरान पढैये,
'गोविन्द' प्रभु विना स्नेह सुवा लौं रसना कहा नचैये ॥
—गोविन्द स्वामी (पद सग्रह), ३४३।

[1] शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते।
इत्यसौ स्याद्विधिर्नित्य सर्ववर्णाश्रमादिषु।
—भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व भाग, लहरी २, श्लोक ४।

[2] 'पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैक साध्य।' —अणुभाष्य, चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ पाद, सूत्र ९ टीका।

[3] अनुग्रह पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।
सिद्धान्त मुक्तावली (षोडश ग्रथ), श्लोक १८।

सपन्न होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने बतलाया है कि कलिकाल के जीवों के लिये यही एकमात्र सुलभ मार्ग है। इसमें वर्ण देश अथवा जाति के भेद का विचार नहीं है। अतएव सबके लिए यह कल्याण मार्ग खुला हुआ है।

भगवान् के अनुग्रह का तात्पर्य—

भगवान् जो जीवों पर अनुग्रह करते हैं उसका तात्पर्य क्या है? इसमें भगवान का कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है? कहते हैं कि जीव मात्र को अनुग्रहपूर्वक निरपेक्ष, स्वरूपापत्तिरूपी मुक्ति प्रदान करना ही भगवान् का एकमात्र प्रयोजन है।[1] इसी हेतु वे अवतार धारण करते हैं। इस अवस्था में आनन्द स्वरूप भगवान जीव के अंतःकरण इन्द्रिय अवस्था देह में आनन्द का स्थापन कर अपने स्वरूप में स्थित कर देते हैं। इस प्रकार से आनन्द रूप से, स्वरूप से अवस्थान करना ही जीव की मुक्ति है। इस अवस्था में अन्यथा भाव नहीं रहता।

लीला—

भगवान अनुग्रह कर मुक्ति प्रदान करने के लिए जो अवतार धारण करते हैं उसका एकमात्र हेतु उनकी लीला है। लीला के लिये ही वह सब कुछ की सृष्टि करते हैं। इस लीला का उद्देश्य लीला है। अपनी नानाविध लीलाओं को प्रकट करने के लिये ही वे अवतार धारण करते हैं। यह लीला अपने आप में पूर्ण है। इसमें कोई कार्य सपन्न नहीं होता केवल व्यापार मात्र रहता है। वैसे कोई कार्य सपन्न हो जाय तो हो जाय, लेकिन उससे उस लीला का कुछ लेना-देना नहीं है। इस लीला में कर्त्ता का कोई उद्देश्य निहित नहीं है। आनन्द स्वरूप, लीला पुरुषोत्तम लीला के द्वारा अपने आनन्द को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार से उनका अनुग्रह भी उनकी लीला में ही समाहित है।

'सर्वभावेन' भगवान् का भजन—

यह सही है कि बिना भगवान के अनुग्रह के रागानुगाभक्ति का आविर्भाव नहीं होता, लेकिन इस अनुग्रह की सिद्धि के लिए शुद्ध अनुराग, एकांत निष्ठा की आवश्यकता है। इसीलिये महाप्रभुवल्लभाचार्य ने भक्ति के लिए जहाँ

---

[1] नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो भुवि।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

—भागवत १०।२९।१४

भगवान् के प्रति दृढ और उत्कट प्रेम की बात कही है। यहाँ भगवान् की महत्ता के ज्ञान और सतत ध्यान का भी निर्देश किया है। इससे जीव की अविद्या का नाश होता है और भगवान् के प्रेम की प्राप्ति होती है। इस अविद्या के विनाश हेतु दृढ विश्वास के साथ श्रवणादि द्वारा हरि का भजन करना चाहिए[1]। इसके सिवा सबका परित्याग करना चाहिए। भगवान् का भजन जीव का एकमात्र धर्म पुष्टि मार्ग में माना गया है। सदा-सर्वदा चाहे जिस भाव से हो भगवान् का भजन करना चाहिए।[2] अपने आप को पूर्णरूप से भगवान् की दया पर छोड देना चाहिए। श्रीमद्भागवत में कहा है 'जो कोई भगवान् में काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य अथवा सौहार्द भाव रखता है, वह भगवान्मय हो जाता है।[3]' आचार्य ने 'सुबोधिनी टीका' में भागवत की इस उक्ति की समीक्षा की है और बतलाया है कि काम स्त्री भाव में, भय वधिक भाव में, स्नेह सबधियो में, ऐक्य ज्ञान-अवस्था में तथा सौहार्द सख्य भाव मे विद्यमान रहता है। अतएव किसी भी भाव मे भगवान् का भजन करना जीव के लिए फलप्रद है।

नवधा भक्ति तथा दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति—

वल्लभाचार्य ने नवधा भक्ति को तो स्वीकार किया ही है, इसके अलावा दसवी प्रेमरूपा को भी माना है। वास्तव मे ससार के बधनो तथा माया-मोह से मुक्त नही होने पर जीव के लिए भक्ति का मार्ग अपनाना कठिन है। भगवान् को अपने भीतर बसाने के लिए अपने अत.करण को सभी दोषों से मुक्त करना चाहिए। आचार्य ने बतलाया है कि नवधा भक्ति के साधन-क्रम को अपनाने से प्रेम की परिपूर्णता होती है, जिसके फलस्वरूप श्री, वैराग्य

---

[1] तस्मात्सर्वं परित्यज्य दृढ विश्वासतो हरिम्।
भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विधातो विमुच्यते ॥
—तत्त्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक ५३, पृ० ११४।

[2] सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्य' क्वापि कदाचन ॥
—चतु श्लोकी (षोडश ग्रथ) श्लोक १।

[3] काम क्रोध भय स्नेहमैक्य सौहृदमेव च। नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयता हि ते।
—श्रीमद्भागवत १०।२९।१५

आदि भगवद धर्मों का प्रादुर्भाव होता है।[1] नवधा भक्ति ये हैं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन। इनके द्वारा हृदय में भक्ति भाव बढ़ता है। इसके लिये कोई जरूरी नहीं है कि गृहस्थाश्रम को त्याग दिया जाय। वल्लभ आचार्य जी ने बतलाया है कि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् का पूजन तथा उनके चरित्र और गुणों का श्रवण और कीर्तन करना चाहिए।[2] ऐसा करने से भगवान् का प्रेम बीज रूप में हृदय में जमता है।

दसधा भक्ति और अष्टछाप के कवि—

दसधा भक्ति का वर्णन अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में मिलता है। सूरदास ने प्रेम-लक्षणा भक्ति को दसवीं भक्ति कहा है।[3] इसी प्रकार से नंददास ने भी श्रवण, कीर्तन आदि का जिक्र किया है और इन्हें वे साधन मानते हैं।[4] वास्तव में नवधा भक्ति को प्रेम भक्ति के लिए साधन माना गया है। परमानंद दास के एक पद में इन सभी प्रकार की भक्तियों और भक्तों के नाम बतलाये गए हैं।[5] इसी प्रेम का उल्लेख श्री हरिराय जी ने

---

[1] साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्मा स्यन्दमाना प्रकीर्तिता।
जलभेद (षोडश ग्रंथ, श्लोक १०)

[2] बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः
अव्यावृत्तो भजेत कृष्ण पूजया श्रवणादिभिः।
—भक्तिवर्धिनी (षोडश ग्रंथ) श्लोक २।

[3] श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत, अरचन बंदन दास।
सख्य और आतमनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास॥ —सूरसागर

[4] श्रवन कीर्तन सार, सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान सार हरि ध्यान सार श्रुति सार गुहि गनि।
—नंददास (शुक्ल), रास पंचाध्यायी, अध्याय ५, पृ० १८२।

[5] ताते दसधा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली।
श्रवण परीक्षित तर राजरिषि कीर्तन करि शुकदेव
सुमिरन करि प्रहलाद निर्भय भयो कमला करी पद सेव।
प्रभु अरचन सुफलक सुत बंदन दास भाव हनुमन्त।

किया है। वे कहते हैं, 'श्री आचार्य जी के मारग को स्वरूप कहा है। जो माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ स्नेह सो सर्वोपरि है सो ठाकुर जी को बहुत प्रिय है, परतु जीव माहात्म्य राखे। सो काहे ते। जो माहात्म्य विना अपराध को भय मिट जाय तासो प्रथम दशा में माहात्म्य युक्त स्नेह आवश्यक कहिए ...... सो ठाकुर जी भक्तन के स्नेह वश होय भक्तन के पाछे पाछे डोलत है सो जहाँ ताई ऐसो स्नेह वश नाही होय तहाँ ताई माहात्म्य राखनो .... तासो माहात्म्य विचारै और अपराध सो डरपै तो कृपा होय। जब सर्वोपरि स्नेह होयगो तब आपहीते स्नेह ऐसो पदार्थ जो माहात्म्य कूँ छुड़ाय देयोगो।[1]'

प्रेम की तीन अवस्थाएँ—

वल्लभाचार्य ने इस प्रेम की तीन अवस्थाएं कही है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन।[2] प्रेम की इन तीनो अवस्थाओ की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है, क्योकि इनसे भगवान् के प्रति दृढ प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस प्रेम की पहली अवस्था स्नेह है। इस अवस्था में भक्त को जब भगवान् के प्रति स्नेह होता है तब सासारिक विषयो के प्रति वह उदासीन हो जाता है तथा बाद में चलकर लोक से सभी सबध छूट जाते हैं और भगवान् से सबध जुड जाते हैं। इस अवस्था में ससार के प्रति राग का नाश हो जाता है। दूसरी अवस्था आसक्ति में मिलन की आकुलता बनी रहती है। घरबार, जगत् के सभी प्रपच बाधक से प्रतीत होने लगते है। यह अवस्था विरह की है। तीसरी अवस्था व्यसन की है। यह अवस्था जब उत्पन्न होती है, तब भगवान् का ही सर्वदा ध्यान बना रहता है, उसे अन्य कोई बात अच्छी नही लगती। प्रेम की तन्मयता इस अवस्था में बनी रहती है। इस अनायास प्रेम भाव की प्राप्ति होने पर जीव कृतार्थ होता है।[3]

सखा भाव अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवन्त।
बलि आतम समर्पन करि हरि राखै अपने पास।
अविरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानद दास।
—परमानंद दास (अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५४३ पर उद्धृत)

[1] अष्टछाप वार्ता, काकरौली, पृ० १८।

[2] भक्तिवर्धिनी (षोडश ग्रंथ), श्लोक ३।

[3] व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्त श्रवणादौ यतेत् सदा।
ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसन च तथा भवेत्॥

भगवान् की विरहाग्नि मे जलते रहना, उनसे मिलने के लिये उत्कट अभिलाषा एव आतुरता भक्त की सबसे अधिक काम्य वस्तु है। भगवान् की जिस पर अत्यधिक कृपा होती है उसी के लिये यह बात सभव हो सकती है। भक्तो के हृदय में इसकी कितनी बडी आकाक्षा होती है, इसका अनुमान इसी बात स किया जा सकता ह कि श्री वल्लभाचाय जी इस बात की कामना कर रहे ह कि श्रीकृष्ण के विरह में जो दु ख नन्द, यशोदा और गोपियो को हुआ था वही दु ख उनके हृदय में उत्पन्न हो।[1]

ब्रह्म-सम्बन्ध-पुष्टिमाग में भगवान श्रीकृष्ण परम-आराध्य हैं। पुष्टि-भक्ति में सेव्य रसरूप श्रीकृष्ण हैं। वे साक्षात परब्रह्म माने जाते ह। सब कुछ को छोडकर भगवान श्रीकृष्ण के ध्यान और चितन की बात श्रीवल्लभाचायजी ने कही है[2]। ससार की माया ममता तथा अह भाव का परित्याग कर तथा अपने-पराये का भेद भाव भुलाकर भगवान के चरणो में अपने आपको सपूण रूप से समर्पित कर देना पुष्टिमार्गीय भक्ति में एक महत्व का स्थान बनाए हुए है। भक्त से इस बात की अपेक्षा रहती है कि वह इन सब वस्तुओ और प्रलोभनो का त्याग तो करे ही, साथ ही दीनतापूवक भगवान् के अनुग्रह प्राप्त करने की साधना करे। इस ही ब्रह्म-सबध कहा गया है। पुष्टि माग की भक्ति को व्यावहारिक रूप देने के लिये 'ब्रह्म-सबध' की व्यवस्था ह। इस प्रणाली के प्रचलन में श्रीमद्भागवत के एकादश स्कध में आए हुए निम्नलिखित श्लोक को श्री वल्लभाचाय जी ने प्रमाण माना ह

ये दारागार पुत्राप्तप्राणान् वित्तमिम पर।
हित्वा मा शरण यात कथ तास्त्यक्तुमुत्सहे ॥

स्नेहाद् रागविनाश स्यादासक्त्या स्याद गृहारुचि।
गृहस्थानो बाधकत्वमनात्मत्व च भासते।
यदा स्याद व्यसन कृष्णे कृताथ स्यात्तदैव हि ॥
—भक्तिवर्धिनी (षोडश ग्रथ), श्लोक ३,४,५।

[1] यच्च दु ख यशोदाया नदादीना च गोकुले।
गोपिकानां तु यद दु ख तद्दुख स्यान्मम क्वचित् ॥
—निरोध लक्षण (षोडश ग्रथ) श्लोक १

[2] तस्माच्छ्रीकृष्ण मागस्थो विमुक्त सवलोकत।
आत्मानद समुद्रस्थ कृष्णमेव विचिन्तयेत।
—सिद्धान्त मुक्तावली (षोडश ग्रथ) श्लोक १५,१६।

इस सम्प्रदाय की यह दीक्षा है। 'ब्रह्म-संबंध' संस्कार के बाद जब भक्त पुष्टिमार्ग में प्रवेश पाता है, तब उसे विशेष आचार-विचार का पालन करना पड़ता है। इस अनुष्ठान के द्वारा जैसे गुरु उस शिष्य का भगवान् से संबंध स्थापित करा देता है। इस दीक्षा का अभिप्राय यह बतलाया गया है कि जीव अविद्या के कारण परब्रह्म से अपना संबंध भूल गया है और सहस्रों वर्षों से जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा हुआ है। गुरु जैसे भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कराता है, शिष्य अपने संपूर्ण दोषों की निवृत्ति के लिये श्रीकृष्ण की शरण लेता है। इस प्रकार संबंध-स्थापन, आत्मनिवेदन तथा शरण-गमन के एकीकरण को ब्रह्म-संबंध कहते हैं[1]। श्री वल्लभाचार्य जी का आदेश है कि ब्रह्म के साथ अपना संबंध स्थापित करके जीव हमेशा यह ध्यान करे कि वह सब प्रकार सर्वदा श्रीकृष्ण की ही शरण में है[2]।

दीक्षा और ब्रह्म-संबंध

'शरण मंत्र' अर्थात् 'श्रीकृष्ण: शरणं मम' बतलाने के बाद गुरु, शिष्य को भगवान् के विग्रह के पास ले जाते हैं। तुलसी की माला देकर दीक्षा-मंत्र देते हैं। यह आत्म'निवेदन मंत्र[3] कहलाता है। यह मंत्र सबको नहीं बतलाया जाता। इस मंत्र में कहा गया है कि सहस्रों वर्षों से मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है। वियोग जनित ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है। इसलिये मैं भगवान् श्रीकृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण और उनके धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका हूँ। इसके बाद भक्त अपना सब कुछ भगवान् को समर्पण किए जाता है। ऐसा विश्वास है कि अंश रूप जीव का अंशी परमात्मा के साथ प्रेम-भक्ति द्वारा ब्रह्म-संबद्ध स्थापित होने से सब

---

[1] प्रभु दयाल मितल—'अष्टछाप-परिचय', पृ० ६०।

[2] तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णशरणं मम।
यद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥

—नवरत्न (षोडश ग्रंथ), श्लोक ९।

[3] सहस्रपरिवत्सर-मित्त-काल-जात कृष्ण-वियोग-जनित-ताप-क्लेशानन्द-तिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय प्राणान्तःकरणानि तद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्त-वित्तेहापराणि आत्मना सह समर्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ।

दोषा की निवत्ति हो जाती है, अन्यथा नही। इसलिये भगवान को बिना समपण किए कोई वस्तु भक्त के ग्रहण योग्य नहीं ह[1]।

सप्रदाय के सेव्य रूप

श्री वल्लभाचाय जी ने प्रथमत वात्सल्य भक्ति का प्रचार किया। वे श्रीकृष्ण के बाल रूप के उपासक थे। श्री वल्लभाचाय जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी के सेय स्वरूप नवनीत प्रिय जी ह। इनके अलावा सप्रदाय में और सात स्वरूप मान्य हैं। ये उनके सेवको द्वारा सेव्य सात स्वरूप ह। ये सातो स्वरूप १—श्रीमथुरेश जी, २—श्री विट्ठलनाथ जी, ३—श्री द्वारिकाधीश जी, ४—श्री गोकुलनाथ जी, ५—श्री गोकुलचद्रमा जी, ६—श्री बालकृष्ण जी तथा ७—मदनमोहन जी हैं[2]। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सात पुत्रों को सवा के लिये एक-एक स्वरूप दिया था। बहुतो का अनुमान ह कि इस सप्रदाय में मधुर रस की भक्ति क प्रवेश का कारण गौडीय वष्णव मत का प्रभाव ह[3]। ऐसा सभव हो सकता है। लेकिन इधर श्री वल्लभाचाय के शृगार-सबधी दो ग्रथो का पता चला है। ये हैं (१) परवढाष्टक (२) मधुराष्टक। ये ग्रथ बवई से गुजराती में प्रकाशित हुए ह[4]। इन पर प्रकाशक का नाम पता नही दिया हुआ है। इन दोना ग्रथा से इस बात का पता चल जाता है कि श्री वल्लभाचाय जी को व्यक्तिगत साधना और भगवद भजन के लिए मधुर भाव की उपासना मान्य थी। लेकिन अपने अनुयायियो तथा सवसाधारण के लिए उन्होने इस प्रकार की भक्ति का विधान नही दिया क्योकि बद्ध जीव के लिए उस साधना से पतित होने की सभावना अधिक रहती है, इसलिए उनके लिये वात्सल्य भाव की सेवा का ही विधान किया। मधुर भाव की भक्ति में वे भक्ति का चरम विकास मानते ह लेकिन सवसाधारण को ध्यान में रख कर उन्होंने वात्सल्य भाव में ही सेवा का विधान किया है। उनका कहना ह कि भगवान् का

---

[1] सिद्धात रहस्य (षोडश ग्रथ), श्लोक २।४

[2] प्रभुदयाल मित्तल अष्टछाप', परिचय, पृ० ५८।

[3] अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, पृ० ५२८।

[4] इन ग्रथा की सूचना मथुरा निवासी पडित श्यामलकिशोर जी से मिली ह जो वल्लभ-दशन के अध्यापक रह चुके हैं। ये वल्लभ-सप्रदाय के अच्छे विद्वान और अच्छे वैष्णव हैं।

जिस जीव पर विशेष अनुराग होगा उसे वे स्वय भी मधुर भाव की भक्ति प्रदान करेगे। अत वे मधुर भाव की भक्ति को कृपा-सापेक्ष मानते है और इसी कारण से उन्होने उसका विधान स्वतत्र रूप से नही किया। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समय से युगल-लीला और मधुर भाव की भक्ति का पूरा-पूरा प्रचार वल्लभ-सप्रदाय में हुआ। वल्लभ-सप्रदाय के सात ऐसे पीठ है, यहाँ युगल सेवा होती है। इन पीठो मे काम्य वन (व्रज के अतर्गत) का पीठ मुख्य है।

प्रपत्ति

इस सप्रदाय में 'प्रपत्ति' या शरणागति को उसी प्रकार से महत्व का स्थान प्राप्त है, जैसा कि अन्य सप्रदायो में। 'प्रपत्ति' में भगवान् ही सब कुछ है। उसकी शरणागति ही साधन है। इस प्रपत्ति में भगवान् ही साधन और भगवान् ही साध्य है। यह दो प्रकार की कही गई है, मर्यादिकी प्रपत्ति और पुष्टि-मार्गीय प्रपत्ति। मर्यादिकी में कर्म के अनुष्ठान की व्यवस्था है, लेकिन पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति में भगवान् में आत्यन्तिक विश्वास तथा शरणागति रहती है। इसमें किसी कर्म की अपेक्षा नही रहती। यह भक्त की एक मानसिक अवस्था है, जिसमें वह अन्य किसी के आश्रय की बात नही सोचता। भगवान् को ही अपना आश्रय समझता है और संपूर्ण भाव से अपने आप को उनके चरणो मे समर्पित करता है।

सेवामार्ग—

वल्लभ सप्रदाय में 'सेवा' का बहुत बडा महत्व है। सेवा से उनका मतलब भगवान् में चित्त को लगाना है। इस 'सेवा' के संबंध मे महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कहा है कि भगवान् में चित्त को लगाना ही सेवा है और यह तन और चित्त से की जा सकती है। इस सेवा से अहन्ता-ममतात्मक संसार से निवृत्ति तथा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।[1] सेवा के तीन प्रकार बतलाए गए है तनुजा, वित्तजा और मानसी। तनुजा सेवा वह है, जिसमे भक्त अपने शरीर तथा उसके व्यापारो को भगवान् को समर्पित कर देता है। शरीर को भगवत्कार्य में लगाना ही तनुजा है। धन-सपत्ति से भगवान् की

---

[1] चेतस्तत्प्रवण सेवा तत्सिद्धये तनुवित्तजा।
तत ससारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्॥
—सिद्धान्त मुक्तावली (षोडश ग्रथ) श्लोक २।

सेवा करना वित्तजा सेवा है और मन से भगवान् की सेवा मानसी सेवा है। मानसी सेवा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मानसी सेवा को फलप्रदा कहा गया है और सदा कृष्ण की सेवा करने की बात कही गई है।[1]

वल्लभ-सम्प्रदाय की विशेषतायें—

वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्ति पर अत्यधिक बल दिया गया है। वल्लभ प्रवर्तित पुष्टि मार्ग में भगवान के अनुग्रह को ही प्रधानता दी गई है। भगवान् के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम उदय होता है। भक्ति मार्ग में भक्त साधना के द्वारा भगवान् को प्राप्त करने का प्रयास करता है। लेकिन पुष्टि में भगवान् की अनुकम्पा द्वारा ही साध्य की प्राप्ति होती है। वल्लभाचार्य ने चमत्कारों को ब्रह्म-सम्बन्ध का परिपन्थी कहा है। उनकी दृष्टि में उससे भक्त की दृष्टि दूषित होती है अतएव उसका सर्वथा त्याग करना चाहिए। भक्त को अपनी भक्ति तथा साधना को किसी पर भी प्रकट नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि सम्प्रदाय में दीक्षित जो नए साधक हैं, उनसे भी उसे नहीं बताना चाहिये। नए साधक उस गूढ़ रहस्य को ठीक-ठीक समझ नहीं सकते, अतएव उन्हें नहीं बतलाने का यह निर्देश दिया हुआ है। अपनी धार्मिक मान्यताओं अथवा धार्मिक जीवन को जीविका उपार्जन का साधन बनाना गर्हित माना गया है। पुनर्जन्म की बात सम्प्रदाय में बहुत अधिक महत्व नहीं पाए हुए है फिर भी उसे अस्वीकार नहीं किया जाता। सम्प्रदाय में अतमुक्त साधक से भाईचारे का सम्बन्ध रखने पर बल दिया गया है, भले ही वह किसी भी जाति का क्यों न हो। वर्णाश्रम धर्म को इस सम्प्रदाय में अस्वीकार नहीं किया गया है। जहाँ तक सामाजिक सम्बन्ध का प्रश्न है, इस सम्प्रदाय वाले जाति प्रथा को मानकर चलते हैं, लेकिन भक्ति के लिए वे उसे कोई महत्त्व नहीं देते। वैसे समाज के विधि निषेधों और कृत्यों को मानना और उसी के अनुसार कार्य करना वे जरूरी नहीं मानते। इस सम्प्रदाय में साधु-सन्यासियों के लिए स्थान नहीं। वे यह नहीं मानते कि सन्यासी होकर ही कोई भक्ति मार्ग का अनुसरण कर सकता है। जाति धर्म निर्विशेष सबके लिए इस सम्प्रदाय का दरवाजा खुला हुआ था, वैसे बाद में चलकर यह बात नहीं रही। जब जैसे इस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और यह समृद्ध होना

---

[1] कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।

सिद्धान्त मुक्तावली, (षोडश ग्रंथ), श्लोक १।

श्री राधा सब कामनाओं को पूरा करने वाली है। निम्बार्क मत में श्री राधा को भगवान् कृष्ण की माधुर्य तथा प्रेमशक्ति रूपा कहा गया है।

(ग) सखी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास-सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक—

स्वामी हरिदास जी, सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। यह सम्प्रदाय, निम्बार्क सप्रदाय के ही अन्तर्गत है। स्वामी हरिदास जी पहले निम्बार्क सम्प्रदाय के थे। स्वामी हरिदास जी के शिष्य उनके मामा विट्ठल विपुल जी हुए, तभी से 'टट्टी सस्थान' के वैष्णवों की शिष्य-परम्परा चली। स्वामी हरिदास जी की जन्मतिथि तथा वे सारस्वत ब्राह्मण थे या सनाढ्य, को लेकर बहुत मतभेद है। 'भक्ति सिन्धु' ग्रन्थ के आधार पर इनका जन्म वृत्तान्त कुछ इस प्रकार बतलाया गया है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और कोल के निकट हरिदासपुर के निवासी थे। वंश-वृक्ष का क्रम इस प्रकार बताया गया है—ब्रह्मधीर, ज्ञानधीर, आशधीर, हरिदास। कहते हैं कि आशधीर का विवाह वृन्दावन के निकट राजपुर गाव के निवासी गगाधर की पुत्री से हुआ था[1]। इसी प्रकार से कोई इनकी जन्मतिथि भादो सुदी अष्टमी सं० १४४१ मानते है तो कोई सं० १४८५।[2] लेकिन इतना निश्चित है कि अकबर के बादशाह होने के पहले से ही इनकी ख्याति चारो ओर फैल चुकी थी।[3] इसी प्रकार से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि वे सनाढ्य ब्राह्मण थे क्योंकि इनके मामा विट्ठल विपुल जी सनाढ्य थे जैसा कि सहचरिशरण जी ने लिखा है :

> बीठल विपुल सनाढ्य अनाढ्य धन-धर्म पताका।
> श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका॥[4]

सहचरिशरण जी की 'गुरुप्रणालिका' के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि 'आसधीर' इनके गुरु थे। सहचरिशरण जी लिखते हैं—

---

[1] बलदेव उपाध्याय—भागवत सप्रदाय (प्रथम सस्करण) पृ० ३५१।

[2] वही, पृ० ३५१।

[3] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण) पृ० ९२।

[4] वही, पृ० ९२।

आसधीर गम्भीर विप्र सारस्वत सुति पर ।
जनम अलीगढ मध्य मधुर बानी प्रमोद कर ।
गुरु अनुकूल अतुल कूल धन निधिवन माहा ।
सत्तर लौं तनु राखि साखि जा को मित नाहीं ।।

स्वामी हरिदास जी के जीवन के सम्बन्ध में नाभादास जी के 'भक्तमाल' में निम्नलिखित छप्पय मिलता है[1] —

भक्तमाल में वर्णित हरिदास जी का परिचय—

'आसधीर' उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की ।
जुगल नाम सा नेम, जपत नित कुंज बिहारी ।
अवलोकत रह केलि, सखी सुख के अधिकारी ।
गान कला गंधर्व, स्याम स्यामा को तोष ।
उत्तम भोग लगाय, मोर मरकट तिमि पोष ।
नृपति द्वार ठाढ़े रह, दरसन आसा आसपी ।
'आसधीर' उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ।।

आसधीर का वार्तिक तिलककार ने इनका पिता बतलाया है ।[2] हम ऊपर देख चुके हैं कि सहचरिशरण जी ने उन्हें गुरु कहा है और संभवतः यही ठीक भी है । ऊपर के छप्पय से पता चलता है कि ये 'रसिक जी' के नाम से प्रसिद्ध थे । 'वार्तिक तिलक' के अनुसार यह नाम भगवान् का दिया हुआ था । उसमें कहा गया है कि 'श्रीयुगल सरकार के नित्य विहार में सखी भावना से प्रस्तुत रहा करते थे । एक समय युगल मंत्र का जाप कर रहे थे उसी के मध्य श्री भगवत का वचनामृत हुआ कि तुमको 'रसिक' कहकर लोग नाम लिया करेंगे ।'[3]

हरिदास जी के चमत्कारों से सम्बन्धित कहानियाँ—

इनके जीवन के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चमत्कार की कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे उनका अनन्य भक्ति और निस्पृहता का पता चलता है ।

---

[1] नाभा जी कृत 'भक्तमाल' (लखनऊ, सन् १९२६ ई०) छप्पय संख्या ३८६, पृ० ६०७-६०८ ।

[2] नाभा जी कृत भक्तिमाल, पृ० ६०८ ।

[3] वही, पृ० ६०८-६०९ ।

कहते है कि एक समय उनके किसी भगत ने उन्हें इत्र दिया। उस समय वे यमुना जी के किनारे रेत पर बैठ कर ध्यान मे भगवान् के साथ होली खेल रहे थे। इत्र की शीशी को उन्होंने वहीं उडेल दिया, जहा वे बैठे हुए थे। उस भक्त को इससे खेद हुआ। उसके मन की बात को जान कर उन्होंने अपने एक दास को आदेश दिया कि उस व्यक्ति को ले जाकर 'श्री बाके बिहारीलाल जी के दर्शन कराओ।' जब पट खोला गया तो उसने देखा कि श्री बिहारी जी का वस्त्र इत्र से सरावोर था।[1] इसी प्रकार से उनके पास कोई शरणागत होने आया और उन्हे एक पारस मणि भेंट दी। उसे पत्थर कह उन्होने यमुना जी में फेंक दिया तब उसे शिष्य बनाया।[2] कहते है कि वेष बदल कर बादशाह अकबर तानसेन के साथ उनके दर्शन से कृतार्थ हुआ था।[3] तानसेन इन्ही हरिदास जी का शिष्य था।[4]

टट्टी संस्थान के महन्त—

'टट्टी सस्थान' के स्वामी जी सस्थापक थे। उसकी गद्दी आज भी वृन्दावन में वर्तमान है। इस सप्रदाय के महन्तो की सूची एफ० एस० ग्राउस ने दी है, वह इस प्रकार है स्वामी हरिदास, विट्ठलविपुल, बिहारिनि दास, नागरीदास, सरसदास, नवलदास, नरहरदास, रसिक दास, ललित किशोरी। ललितकिशोरी जी को ललित मोहनीदास भी कहते है। बलदेव उपाध्याय ने भी एक सूची दी है जो इस सूची से लम्बी भी है तथा इससे थोडी भिन्न भी है। वे ललितकिशोरी तथा ललितमोहिनी को एक नही मानते, जैसा कि ग्राउस की सूची में दिया हुआ है। बलदेव उपाध्याय ने गद्दी की परम्परा का जो उल्लेख किया है, वह 'ब्रजमाधुरी सार' के आधार पर है। श्री वियोगी हरि ने निम्नलिखित सूची दी है—

श्री स्वामी हरिदास जी, श्री विट्ठलविपुल जी, श्री विहारनिदेव जी, श्री सरसदेव जी, श्री नरहरिदेव जी, श्री रसिकदेव जी, श्री ललितकिशोरी जी, श्री ललित मोहिनी जी, श्री चतुरदास जी (भगवत रसिक जी इनके गुरुभाई थे)

---

[1] नाभा जी कृत 'भक्तमाल' (लखनऊ सन् १९२६ के) छप्पय सख्या ३८६ पृ० ६०९।
[2] वही, पृ० ६०९।
[3] वही, पृ० ६०९।
[4] मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेम्मोयार (तृतीय सस्करण, सन् १८८३) पृ० २२१।

श्रीठाकुर दास जी, श्री राधिका दास जी, श्री सखीशरण (सहचरिशरण) श्री राधा प्रसाद जी, श्री भगवानदास जी।[1]

सखी सम्प्रदाय में गोपी भाव से उपासना—

इस सम्प्रदाय में दर्शन के गूढ तत्वों के विवेचन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है जितना कि एकमात्र आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति आन्तरिक प्रेम के निवेदन की ओर। इस सम्प्रदाय के भक्त साधकों की एकमात्र साधना सखी भाव से युगल स्वरूप की उपासना और सेवा है। वास्तव में इसे भक्ति-सम्प्रदाय का एक साधन मार्ग समझना चाहिए। भगवान् को पाने का एकमात्र उत्तम साधन इस सम्प्रदाय वाले गोपी भाव से उनकी उपासना मानते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास जी की साधना-पद्धति पर प्रकाश डालते हुए नाभा जी ने लिखा है—

> जुगल नाम सों नेम, जपत नित कुंज बिहारी।
> अवलोकन रहे केलि सुखी सुख को अधिकारी॥[2]

इस प्रकार से स्वामी हरिदास जी तथा उनके अनुयायी, राधाकृष्ण के युगलस्वरूप के उपासक थे। उनकी मनोमुग्धकारिणी लीलाओं का सखी भाव से अवलोकन करते हुए आनन्द तथा भक्ति के सागर में डूबे रहते थे। इस सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने बतलाया है कि भगवान् के प्रति इस प्रेम के मर्म को वही समझ सकता है, जो भगवत रस का रसिक है। इस सम्प्रदाय के भक्त महात्माओं ने व्रजभाषा-साहित्य को अत्यन्त समृद्ध किया।

(घ) राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय

प्रवर्त्तक—

राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीहित हरिवंश थे। इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में विद्वानों में अभी तक मत भेद ही बना हुआ है। मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म १५३० संवत् माना है भगवत् मुदित भक्त द्वारा रचित हित हरिवंश चरित्र ग्रन्थ के अनुसार इनका जन्म समय १५५९ संवत् (१५०३ ई०) है। इन विभिन्न मतों के आधार पर यदि हम इनका आविर्भाव काल १६ वीं शताब्दी का मानें तो अनुचित न होगा। यह सम्प्रदाय व्रजमंडल में उत्पन्न होकर वहीं फूला-फला।

[1] व्रजमाधुरी सार पृ० २४५।

[2] भक्तमाल, छप्पय संख्या ३८६, पृ० ६०७।

राधातत्त्व की प्रधानता—

राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे युगल-उपासना होती है। इसमे राधा तत्त्व की प्रधानता है। इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त किसी गभीर दार्शनिक मतवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित नही है। नाभादास जी ने इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवश जी की साधना-प्रणाली को गूढ तथा रहस्यमयी कहा है। नाभादास जी ने बतलाया है कि इस साधना के अधिकारी सभी नही हो सकते।[1] इस साधना-पद्धति मे विधि-निषेध का स्थान नहीं है। विशुद्ध हृदय की अनन्य भक्ति ही इस पथ के पथिक के लिये आवश्यक है जिससे कि वह सखी भाव से राधा कृष्ण के केलि-कुज में परिचर्या कर सके। चिन्मय जगत् की माधुर्य-रस-क्रीडा कोई-कोई ही समझ सकता है। प्रियदास जी ने स्पष्ट ही कहा है—"हित जू की रति कोऊ लाखनि मे एक जाने।" राधावल्लभीय सम्प्रदाय में युगल स्वरूप के नित्य-मिलन के अवसर पर भक्त एकनिष्ठ सेवा मे तन्मय रहता है। यही उसका परम कर्तव्य है। इस सम्प्रदाय में श्री राधा के प्राधान्य और मधुर रस की उपासना के प्रचलन के फलस्वरूप कुछ लोगों ने इसे चैतन्य सम्प्रदाय[2] और कुछ ने निम्बार्क सम्प्रदाय[3] की शाखा कहा है।

संप्रदाय मे श्री राधा का स्थान—

राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे राधा, कृष्ण, गोपी, वृन्दावन आदि का विवेचन बडे विस्तार के साथ हुआ है। राधा, इस संप्रदाय की उपासना के केन्द्र में है। राधा को इस सम्प्रदाय मे सब कुछ माना गया है। श्री राधा, महासुख-रूपा, पराशक्ति, आराध्या, सेव्या और इष्टरूपा है।[4] वह सभी सारों की सार है। हित हरिवश ने कहा है :—

> लावण्यसार-रससार-सुखैकसारे, कारुण्यसार-मधुरच्छवि-रूपसारे।
> वैदग्ध्य-सार-रतिकेलि-विलास-सारे, राधाभिधे मम मनोऽखिलसारसारे॥
>
> राधासुधानिधि, २५।

---

[1] भक्तमाल, छप्पय स० ९०।

[2] अक्षयकुमार दत्त—भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय, पृ० २२६।

[3] ग्रियर्सन—इन्सायक्लोपिडिया आफ रेलिजन एन्ड एथिक्स (भक्ति मार्ग), पृ० ५४६।

[4] राधासुधानिधि, श्लोक ७८।

लेकिन राधा और कृष्ण में अभिन्नत्व है। दोनों एक ही तत्व के प्रतीक है। जल और तरग के बीच जो सबध है। इतना ही नही, यह समस्त जगत गोप, गोपी, वृन्दावन, यमुना उस रस-समुद्र के वीचि विलास जैसे है। ये नाम के लिये भिन्न है तत्व रूप में अभिन्न। उनका नानात्व केवल प्रतीयमान है और इस नानात्व की प्रतीति का उद्देश्य लीला और रस विलास है। राधा-कृष्ण के पारस्परिक सबध पर हितहरिवश जी ने कहा है

> जोई जोई प्यारो कर सोई मोहि भाव
> भाव मोहि जोई, सोई सोई कर प्यारे।
> मो को तो भावतो ठौर प्यारे के ननन में,
> प्यारो भयो चाहे मेरे ननिन के तारे।
> मेरो तो तन मन प्राण हूँ में प्रीतम प्रिय,
> अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे।
> ज श्री हितहरिवश हस हसिनी साँवर गौर,
> कहो कौन करे जलतरगनि न्यारे।

युगलकिशोर रूप और नित्य विहार लीला—

इस सम्प्रदाय के मतानुसार श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और श्री राधा प्रकृति। श्री राधा भगवान कृष्ण की निजरूपा प्रेमशक्ति हैं। श्री राधा, उनकी चिद-अचिद विशिष्ट आह्लादिनी शक्ति है। इस सम्प्रदाय में युगलकिशोर रूप वास्तव में है एक लेकिन दो रूपो में अनन्त सौन्दर्य और माधुर्य को प्रकट कर रहे है। एक ही प्रेम तत्व एक ही रस, युगल रूप में रूपायित हो रह हैं। ध्रुवदास जी ने कहा है

> एक प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
> भूलि कहू जो और दो झूठा जानौ ताहि।

यह अद्भुत प्रेम का राज्य है जहाँ विरह-मिलन दोनों मिलकर एक अपूर्व रस की सृष्टि करते हैं। इसमें "मिलेहि रहत माना कबहुँ मिले ना" की स्थिति बनी रहती है। इसमें तृप्ति नही। यह चिरन्तन बना रहता है। इस प्रेम राज्य में नित्य विहार चलता रहता है। स्वकीया और परकीया भाव दोनो ही मिलकर चरम आनन्द की पूर्णता की उपलब्धि कराते हैं। स्वकीया और परकीया भाव में एक में केवल मिलन का सुख है तो दूसरे में विरह ही विरह है। स्वकीया प्रम में विरह जनित आकुलता का अभाव रहता है और

परकीया प्रेम में मिलन-सुख नही रहता। ये दोनो एक दूसरे को परिपुष्टि करने वाले है अतएव जहाँ ये दोनो एकाकार हो जाते है वहाँ प्रेम की चरम स्थिति आ जाती है। यही राधावल्लभी साधना की "प्रेमविरहावस्था" है। यह स्थिति निराली है। प्रेम विरह की यह नित्य-लीला दिव्य धाम श्री वृन्दावन में चलती है। यह लीला अनादि, अनन्त है। यह नित्य नूतन है, यह नित्य अभिनव है। ध्रुवदास ने इस नित्य-लीला का सुन्दर वर्णन किया है:

न आदि न अंत विहार करें दोऊ,
लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।
नई नई भाँति नई नई कांति,
नई नवला नव नेह विहारी॥

× × × ×

वृन्दावन रस सबको सारा।
नित सर्वोपरिजुगल विहारा॥
नित्य किसोर रूप की रासी।
नित्य विनोद मंद मृदु हासी॥

× × × ×

नित्य किसोर रूप निधि सींवां।
विलसत सहज मेलि भुज ग्रीवां॥
तिन विच अंतर पलको नाहीं।
तऊ तृषित प्रीतम मन माँहीं॥

× × × ×

या सुख पर नांहिन सुख औरे।
जेहि उर रचे रसिक सिर मौरे॥
श्री हरिवंश-चरन उर धारे।
सो या रस में मन अनुसारे॥

जीव वास्तव में प्रेम रूपा गोपी है:—

इस संप्रदाय के मतानुसार जीव, प्रेम रूपा गोपी है। उसका स्वरूप नित्यसहचारियो का है। रस-क्षेत्र में वह भगवान् की लीला में सहचरी रूप से योग देता है। भक्त की सबसे बडी साधना अपने इसी नित्य-सहचरी रूप को जानना है। अपने इस स्वरूप को भूल जाने के कारण जीव जन्म-जन्मान्तर

के चक्कर में पड़ा हुआ दुःख भोगता रहता है। इस सम्प्रदाय के विश्वास के अनुसार भक्त की सबसे बड़ी साधना यह है कि वह अपने को भगवान् की नित्य लीला का अंग समझता रहे अर्थात् अपने को वह उस नित्य लीला में नित्य-सहचरी रूप में देखें। ऐसा करने पर वह आनन्द रूप को पा सकता है। नित्य-सहचरी रूप में देखने की साधना कुछ इस प्रकार से बतलाई जाती है। साधक अपने को रूप-यौवन सम्पन्न, उन्मादकारिणी आकृतिमयी किशोरी समझता है। इसी रूप में समझता हुआ भक्त अपने को नित्य-वृन्दावन में सखियों के बीच नित्य-लीला में योग देने रहने का ध्यान करता रहता है। इस प्रकार से ध्यान करते-करते जब उसकी साधना सफल होती है तब उसे युगलकिशोर की रस भावना की अनुभूति होती है। इस साधना में सबसे पहले भक्त को अपने स्वरूप का पहचानना होता है। इसे पहचानने के फल स्वरूप उसके हृदय में युगल स्वरूप की रस-स्फुरण संभव हो पाती है। जब उसके चित्त की यह स्थिति होती है तब वह रस-साधना में दत्तचित्त हो जाता है और उसे सर्वत्र अपनी आराध्या के दर्शन होने लगते हैं।[1] सर्वत्र एक ही प्रेम-तत्व दृष्टिगोचर होने लगता है और फिर तो—

जिन आंखिन में वह रूप बस्यो,
उन आंखिन सों अब देखिये का ?

इस प्रेमरस से आप्लावित होकर साधक की समस्त द्वैत बुद्धि विनष्ट हो जाती है और इस प्रेमाविष्ट अवस्था में जीव और विभु का तादात्म्य उनकी एकरूपता अपने आप स्थापित हो जाती है। इस प्रेम का ही श्री हित हरिवंश जी ने 'हित' कहा है। उनका कहना है जो कुछ सृष्टि में दीख पड़ता है उसे 'हित' समझो।[2]

"हित" प्रेम ही परमात्मा—

हितहरिवंश के अनुसार 'हित' अर्थात् प्रेम ही परमात्मा है। यह प्रेम व्यापक है। इस प्रेम की नित्य विहार-केलि सब कुछ को परिव्याप्त किये हुये हैं। इसके चार रूप—प्रिया, प्रियतम सखी, श्रीवन—सभी कहने भर को चार हैं क्योंकि वही प्रिया है वही प्रियतम है वही सखी है और वही श्रीवन।

---

[1] सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्य बुद्धिमम।
—श्री राधा सुधानिधि।

[2] यत्किंचिद्दृश्यते सृष्टौ सर्व हितमयं विदु।

लाडली दास जी ने कहा है, "जहाँ तक धाम और इनके वासी धामी हैं, सब उसी एक 'हित-मित्र' (प्रेम-देवता) के चित्र हैं"

सबै चित्र हित मित्र के जहँ लौ धामी धाम

इसका मतलब यह हुआ कि सर्वत्र एक वही प्रेम-रस प्रवाहित हो रहा है। चराचर व्यापी रस-विलास का पर्यवसान उसी एक प्रेम रस में होता है। श्री वृन्दावन के ऐकान्तिक रस-विलास में सबका उत्स और सबकी गति है। वह प्रेय एक होकर भी अनेक है और अनेक होकर भी एक। वह अनिर्वचनीय है। इसी प्रेम को पाना भक्त का चरम लक्ष्य है और उसकी एक मात्र साधना युगल स्वरूप के केलि-कुंज में नित्य मिलन के अवसर पर एकान्त भाव से उनकी सेवा में लीन रहना है।

व्रजभाषा और संप्रदाय के भक्त-कवि—

इस सम्प्रदाय के अन्य महात्माओं द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थ जैसे 'सेवक वानी', 'वल्लभरसिक की वानी' आदि भी उपलब्ध हैं। इन भक्त कवियों की प्रतिभा वृन्दावन की अपूर्व माधुरी छटा वर्णन और राधा-कृष्ण की दिव्य लीलाओं के चारु चित्रण में खूब निखरी। व्रजभाषा साहित्य को पुष्ट और समृद्ध करने में इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यगण हैं—हितहरिवंश, हरिराम शुक्ल 'व्यास', और ध्रुवदास जी, इन लोगों ने अपने सरस पदों और कमनीय कृति द्वारा व्रजभाषा साहित्य को पूर्ण और सम्पन्न किया। इस रस सम्प्रदाय का प्रचार केवल वृन्दावन तक ही सीमित रहा।

पाचवा अध्याय

व्रजभाषा-साहित्य

ब्रजभाषा साहित्य और विभिन्न सम्प्रदाय—

पिछले अध्याय में ब्रजभाषा साहित्य के मेरुदण्ड रूप विभिन्न सम्प्रदायों के दर्शन, सिद्धान्त तथा साधना पद्धति पर विचार किया जा चुका है। वल्लभ सम्प्रदायी अष्टछाप[1] कवि ही ब्रजभाषा साहित्य के सच्चे स्रष्टा और साधक हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन तन्मय भक्तों के लीला गान के अभाव में ब्रजभाषा न तो इतनी शक्तिशालिनी हो सकती थी और न ही ब्रज साहित्य इतना सम्पन्न और समृद्ध हो सकता था। अतएव ब्रजभाषा साहित्य में वल्लभ सम्प्रदायी कवियों का स्थान निस्सन्देह सर्वोपरि है। निम्बार्क सम्प्रदायी, सखी सम्प्रदायी और राधावल्लभी सम्प्रदायी विभिन्न वैष्णव कवियों ने भी प्रचुर मात्रा में ब्रजभाषा में ललित पदों की रचना की। ब्रजभाषा साहित्य के लिए इन भक्त कवियों की देन भी कम महत्व की नहीं है। प्रस्तुत अध्याय में ब्रजभाषा के प्रमुख कवियों तथा उनके काव्यों का विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत विशेष परिचय प्राप्त किया जाएगा।

(क) वल्लभ-सम्प्रदाय के कवि

सूरदास—

ब्रजभाषा के भक्त कवियों में सूरदास से सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं अगर ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। सूरदास की तन्मयता उनका बाल सुलभ सरल हृदय, भगवान् की माधुरी में सहज ही रम जाने वाला उनका चित्त उनके पदों में इस प्रकार से प्रकाश पाए हुए हैं कि पाठक को पद-पद उनका परिचय मिलता है और वह आत्म विभोर हो

[1] वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता के चार प्रमुख भक्त कवि शिष्यों सूरदास, कृष्णदास परमानन्ददास, और कुम्भनदास तथा अपने चार भक्त-कवि शिष्यों-नन्ददास चतुर्भुजदास छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी को चुनकर अष्टछाप की स्थापना की थी।

उठता है। अपने सर्वस्व-भगवान्-कृष्ण की विविध लीलाओं का गान जो उन्होंने किया है वह भक्ति-काव्य की एक श्रेष्ठ निधि है। अपने भगवान् के प्रति समग्र रूप से आत्म-समर्पण कर सूरदास ने मानो सब कुछ पा लिया है। लेकिन इस आत्म-समर्पण ने उनकी प्यास और बढ़ा दी है। भगवान् की मूर्ति को सब समय अपने सामने रखने पर भी वह प्यास नही मिटती। सूर का भक्त हृदय गा उठता है—

नाहिन रह्यौ मन में ठौर।
नंद नंदन बिना कैसे आनिए उर और॥
चलत, चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत रात।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जात॥
कहत कथा अनेक ऊधौ, लाख लोभ दिखाय।
कहा करौं 'चित प्रेम पूरन', घट न सिंधु समाय॥
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति, मृदु हास।
'सूर ऐसे दरश को, ये मरत लोचन प्यास॥[1]

एक दूसरे पद में सूरदास ने बतलाया है वह नंद का लाल ही उनके लिये सब कुछ है। वे वेद, पुराण, भागवत, गीता आदि के गूढ ज्ञान को प्राप्त कर अपना भार नही बढाना चाहते।

मिलिबौ नैनन ही को नीको।
नंद कौ लाल हमारो जीवन, और जगत सब फीको।
वेद, पुरान, भागवत अरु गीता, गूढ ज्ञान पोथी को।
खाटी छाछ कहा रुचि उपजै, 'सूर' खवैया घी कौ॥[2]

समस्त जीवन अपने आराध्य देव की रूप-माधुरी का वह छककर पान करते रहे और अन्त समय तक अतृप्त ही रहे। उनके अन्त समय का वर्णन 'चौरासी वैष्णव की वार्ता[3]' में दिया हुआ है। उसमे आया है कि 'गुसाईं जी नें पूछी जो सूरदास जी नेत्र की वृत्ति कहा है तब सूरदासजी ने एक पद और कह्यौ। सो पद—

खंजन नैन सुरंग रस माते।
अतिसय चारु विमल, चपल ये पलपिंजरा न समाते। ...

[1] भ्रमरगीत सार, पद स० ६५।

[2] सूर-निर्णय, स्वरूपासवित (२) पृ० २७२।

[3] चौरासी वैष्णव की वार्ता (संवत् १९८५) पृ० २८९-२९०।

चलि चलि जात निकट स्रवननि के, सकि ताटक फँदाते।
सूरदास अजन गुन अटके, नतरु कब उडि जाते [1]।'

सूरदास पर वल्लभाचार्य का प्रभाव—

सूरदास के जीवन में महाप्रभु वल्लभाचार्य का गऊ घाट पर आगमन एक युगान्तर उपस्थित कर देने वाली घटना थी। सूरदास ने अपने प्रथम जीवन में दास्य भाव से ही भगवान को स्मरण किया है। भगवान् का 'पतित उधारन' रूप ही उनके सामने आता है। उस समय के उनके भजनो में दैन्य भाव की ही प्रधानता है। उनके विनय के पदो से लगता है जैसे सूरदास ने जिस समाज को देखा था वह नाना प्रकार की छलनाओ और बुराइयों का शिकार था। लोग अत्यन्त ही नीच कर्म में प्रवृत्त थे। समाज 'यौवनमद, जनमद धनमद और मादकमद' से आक्रान्त था। सूरदास के तत्कालीन पदो में वैराग्य का सुर प्रधान है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से सूर ने भगवान् के मधुर रूप का परिचय पाया और उस रूप-रस-माधुरी से मत्त होकर उन्होंने जो गान किए है वे अतुलनीय है। भगवान् का वह रूप 'छिन छिन' में नवीन होकर भक्त कवि को विभोर करता रहता है और उसका वर्णन उसके वश के बाहर की बात हो जाती है

सखी री सुन्दरता कौ रग।
छिन छिन माहि परत छवि औरे, कमल नयन के अग।
स्याम सुभग कें ऊपर वारौं, आली कोटि अनग।
'सूरदास' कछु कहत न आवै, भई गिरा गति पग।[2]

सम्भवत इसी रूप को देखकर विद्यापति ने कहा है—

जनम अवधि हम रूप नेहारलू
नयन ना तिरपित भेल॥

वल्लभाचार्य का प्रथम दर्शन—

'चौरासी वैष्णव की वार्ता'[3] से पता चलता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने के पहले सूरदास को भगवल्लीला का पता नहीं था। इसका

[1] सूरसागर, पन्नसंख्या, पदसंख्या ३२८५।
[2] वही पद संख्या १२५८।
[3] चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ० २७४।

रोचक वर्णन[१] वार्ता में मिलता है। जब सूरदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने गऊघाट गए तब महाप्रभु ने 'भगवद्‌यश वर्णन' करने के लिये कहा। 'हो हरि सब पतिन के नायक' तथा प्रभु मैं सब पतितन को टीको' "ऐसी पद श्री आचार्य जी महाप्रभुन के आगे सूरदास जी ने गायो सो सुनिके श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो सूर ह्वै कें ऐसो घिघयात काहे को है कछू भगवल्लीला वर्णन करि तब सूरदास ने कह्यो जो महाराज हों तो समझत नाही तब श्री आचार्य जी महाप्रभु ने कह्यो जो जा स्नान करि आउ हम तोको समझावेंगे तब सूरदास जी स्नान करि आये तब श्रीमहाप्रभु जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायो पाछें समर्पण करवायो और फिर दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही सो ताते सब दोष दूर भये ताते सूरदास जी को नवधा भक्ति सिद्ध भयी तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी।" इसके बाद से ही सूरदास के लीला-गान का प्रारम्भ होता है।

सूरदास की जन्मभूमि—

सूरदास के जन्म स्थान तथा उनकी जन्मतिथि को लेकर नाना प्रकार के मत उपस्थित किए गये हैं। 'चौरासी वैष्णव की वार्ता[२] में सूरदास के जन्म स्थान अथवा जन्म तिथि के सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नही मिलता। इसी प्रकार से नाभादास के 'भक्तमाल' में भी सूरदास के जीवन वृत्तान्त पर कोई प्रकाश नही डाला गया है। सूरदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में हरिराय जी ने भावप्रकाश वाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' मे बतलाया है[३] कि उनका जन्म सीही ग्राम में हुआ था। सीही दिल्ली से चार कोस की दूरी पर ब्रज की दिशा में स्थित है। 'साहित्य लहरी' में सूरदास के पिता का स्थान 'गोपाचल' बताया गया है। कुछ विद्वान[४] 'गोपाचल' को 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता में उल्लिखित 'गऊघाट' मानते हैं। लेकिन इसे स्वीकार करने में अधिकाश लोगो को सकोच है।[५] इसी प्रकार से कुछ विद्वानो ने सूरदास

---

[१] चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ० २७४-७५।

[२] 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापेखाने की सवत् १९८५ शके १८५० की छपी प्रति।

[३] अग्रवाल प्रेस मथुरा से प्रकाशित।

[४] सूर सौरभ प्रथम भाग, पृ० १८, १९।

[५] सूर-निर्णय, पृ० ५०।

में जन्म-स्थान की चर्चा करते हुए कहा है कि उनकी जन्मभूमि रुनकता या रेणुका-क्षेत्र थी।[1] डा० दीनदयाल गुप्त सूर की जीवन-सामग्री के लिये साहित्य-लहरी, आइने-अकबरी मुन्तखिबउत्तवारीख और मुंशियात अब्बुल फजल को प्रामाणिक मानने के पक्ष में नहीं हैं।[2] अधिकांश विद्वान हरिराय जी द्वारा उल्लिखित सीहीं गांव को ही सूरदास की जन्मभूमि मानने के पक्ष में हैं।

सूरदास की जन्मतिथि—

सूरदास की जन्मतिथि का उल्लेख हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारों ने किया है। उनके अनुसार सूरदास का जन्म संवत् १५४० में हुआ था। बाद की शोधों से यह तिथि गलत प्रतीत होती है। बाद के शोधकर्ताओं ने वल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा का ध्यान में रखते हुए सूरदास की जन्मतिथि निश्चित करने की चेष्टा की है। पुष्टि-सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार सूरदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। "सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून तें दस दिन छोटे हते[3]।" इस बात की पुष्टि श्रीगोकुलनाथ जी के कथन से हो जाती है। "सो सूरदास जी जब श्रीआचार्य जी महाप्रभु को प्रागट्य भयो है, तब इनको जन्म भयो है। सो श्रीआचार्य जी सों ये दस दिन छोटे हते[4]।" चाहे जो हो बहुत दिनों से चली आने वाली परम्परा को वैसे उड़ाया नहीं जा सकता भले ही उसे एकमात्र प्रमाण न माना जाय। आज अधिकांश विद्वान इस परम्परा को प्रामाणिक ठहराते हुए सूरदास की जन्मतिथि सं० १५३५ की वैशाख सुदी पंचमी मंगलवार मानने के पक्ष में हैं।[5] सूरदास के

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं० १९९०), रामचन्द्र शुक्ल, लेकिन सं० १९९७ वाले सं० में सूरदास के जन्म-स्थान का जिक्र नहीं है। हिन्दी भाषा और साहित्य में (सं० १९९४) डा० श्यामसुन्दर दास ने रुनकता गांव का ही उल्लेख किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने हिन्दी साहित्य (१९५२) में इन दोनों का उल्लेख किया है।

[2] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय (सं० २००४), पृ० १९९।

[3] भाव-संग्रह।

[4] निज वार्ता सूर निर्णय पृ० २२ पर उद्धृत।

[5] सूर निर्णय (सं० २००८) पृ० ५३। अष्टछाप-परिचय (सं० २००६) पृ० १२७ तथा अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (सं० २००४), पृष्ठ २१२।

देहावसान का समय आज के शोधकर्ता संवत् १६४० मानते है यद्यपि अधिकाश हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने संवत् १६२० माना है ।

जीवन वृत्त—

सूरदास का जीवन-वृत्तान्त भी यत्र-तत्र बिखरा हुआ मिलता है । उन सामग्रियो के आधार पर उनके जीवन की कहानी को एकरूप देने की चेष्टा की गई है । कहा जाता है कि सूरदास एक निर्धन पिता के पुत्र थे और जाति के ब्राह्मण थे । छः वर्ष की आयु में ही वे 'सीही' छोडकर बाहर चले गए और अट्ठारह वर्ष की उम्र तक सीही के निकटवर्ती एक ग्राम मे वास करते रहे । उस ग्राम के तालाव के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे उन्होने डेरा डाला । उस गाव के जमीदार की उन पर विशेप कृपा थी और उसने उसी पीपल के नीचे उनके लिये एक झोपडी वनवा दी । कहते है कि सूरदास शकुन विद्या के वडे अच्छे जानकार थे और उनके वतलाने से ही उस जमीदार की कुछ खोई हुई गाये मिल गई थी । इस कारण से वहुत लोग उनके पास आते और अन्न, वस्त्र आदि उन्हें भेंट करते । वे गायन कला मे प्रवीण हो चुके थे और भक्त-मंडली में भजन गाया करते थे । उनके वहुत से सेवक हो गए । उसी काल में (अट्ठारह वर्ष की अवस्था मे) उन्हे वैराग्य हुआ और उन्हें लगा कि घर छोडकर तो वे बाहर आए और फिर उसी माया-जाल मे फँस गए ।[1] अतएव सब कुछ छोड कर मथुरा होते हुए गऊघाट आए और वही कुछ सेवको के साथ रहने लगे । वहा पर भजन आदि में सूरदास का समय बीतता और सगुन वताने की विद्या तो उनके पास थी ही । फलस्वरूप उनकी ख्याति चारो ओर फैली और वहाँ भी उनके वहुत से सेवक हो गए ।[2]

दीक्षा—

इसके वाद ही सूरदास ने वल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी । उनके अन्य सेवक भी वल्लभ-सम्प्रदाय मे अन्तर्भुक्त हो गए । गऊघाट पर दो तीन दिन[3] तक विश्राम करने के वाद वल्लभाचार्य ने गोकुल के लिये प्रस्थान किया

[1] अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १० ।

[2] वही, पृ० १० ।

[3] चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना स० १९८५) पृ० २७६ ।

और अपने साथ सूरदास को ले गए। वहाँ स फिर वे वल्लभाचाय के साथ गोवधन गए। और आचाय जी ने उन्हें श्रीनाथजी के मदिर में कीतन करने का भार सौंपा।[1] पाछे आचाय जी आपु कहें, जो सूर! तुमको पुष्टि मारग को सिद्धान्त फलित भयो है। तासो अब तुम श्रीगोवधन के यहाँ समय-समय के कीतन करो।" सूरदास ने गोवधन के निकट पारसौली को अपना स्थायी निवास बनाया और वही पर उनका शेष जीवन बीता। 'चौरासी वष्णव की वार्ता'[2] में आया है कि सूरदास जी ख्याति सुनकर 'देशाधिपति' (अकबर) उनसे मिले। सूरदास जी ने मनारे तू करि माधौ सा प्रीति' नाहिन रह्यो मन में ठौर' तथा हा जा सूर ऐसे दशवा द्व मरत लोचन प्यास पद गाए। अकबर उनसे बहुत प्रसन्न हुआ। मथुरा में सवत् १६२३ में अकबर से मिलने की बात कही जाती है।[3]

सूरदास के विभिन्न नाम—

सूरदास के कइ नामा का उल्लेख मिलता है जसे सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास सूर श्याम सूरसुजान सूरसरस, सूरजश्याम तथा सूरजश्याम सुजान। इन नामा में प्रथम पाच सूरदास के नाम से प्रसिद्ध जा रचनाएँ हैं उनमें मिलत हैं। कुछ नामो के सम्बन्ध में विद्वाना में मतभेद ह कि उन नामा स पाए जाने वाले पद सूरदास के हैं या अन्य किसी व्यक्ति के। डा० जनादन मिश्र सूरसागर में आए हुए सूरज', 'सूरजदास तथा सूरश्याम' नाम से जुडे हुए पदा को प्रक्षिप्त मानते हैं[4] लेकिन ऐसा मानने का उन्होने कोई सतोषजनक कारण नही बतलाया है। डा० दीनदयालगुप्त[5] तथा श्री मुंशीराम शर्मा इस मत स सहमत नही। व विचार, शली आदि को दृष्टि में रखकर उन पदा का भी सूरदास का ही मानते ह।

क्या सूरदास अन्धे थे?—

सूरदास के अन्धत्व को लेकर भी कम मतभेद नही है। यह मतभेद दो प्रकार का ह। प्रथम तो यह कि सूरदास सचमुच में अन्धे थे या नही।

---

[1] अष्टछाप काकरौली पृ० १९।

[2] लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना स० १९८५ पृ० २७९ २८१।

[3] अष्टछाप-परिचय (स० २००६), पृ० १३९।

[4] सूरदास', डा० जनादन मिश्र पृ० ७।

[5] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, प० १९६ तथा २०५।

[6] सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृ० ५०–५२।

दूसरे अगर वे अन्धे थे तो बाल्यकाल से ही अथवा बाद में हुए। आधुनिक विद्वान प्राय एकमत है कि वे जन्मान्ध नही थे। "सूरदास का साहित्य कभी जन्मान्ध व्यक्ति का लिखा साहित्य नही हो सकता।"[१] सूरदास की रचनाओ मे प्रकृति का और मनुष्य के भावो का उतार-चढाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नही होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखो के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है।"[२] डा० दीनदयाल गुप्त उन्हें जन्मान्ध तो नही मानते लेकिन अधिकाश लोगो की नाई वे स्वीकार करने को तैयार नही कि सूरदास वृद्धावस्था में अन्धे हुए। उनका अनुमान है कि सूरदास बाल्यावस्था मे अधे हो गए थे[3]। वैसे 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में उनके अधे होने का स्पस्ट उल्लेख है लेकिन न जन्मान्ध होने का और बाल्यावस्था से ही अन्धे होने का। "देशाधिपति ने पूछी जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाही सो प्यासे कैसे मरत है और बिन देखे तुम उपमा कों देत हौ सो तुम कैसे देत है[४]।" लेकिन श्री हरिराय जी वाली भावप्रकाश वाली वार्ता में लिखा है "सो सूरदास जी के जन्मत ही सो नेत्र नाही हैं।" आधुनिक विद्वानो में प्रभुदयाल मित्तल उन्हें जन्मान्ध मानते है[५]।

चाहे जो हो, अधिकांश विद्वान उन्हें जन्मान्ध न मानकर वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन होने की बात स्वीकार करते है। यह मत ही अधिक तर्कपूर्ण और युक्ति-सगत मालूम होता है।

प्रेम का स्वरूप—

सूरदास ने जिस अपूर्व साहित्य की सृष्टि की है वह अद्वितीय है। उनके मधुर, सरस साहित्य को समझने के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रेम की नाना दशाओ का वर्णन उन्होंने किया है उनके स्वरूप को ठीक-ठीक समझें। वह प्रेम चिन्मुख प्रेम है और वह निखिलानद संदोह भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति निवेदित है। मधुर रस की भक्ति का रसास्वादन वही

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० १७५।

२ नददुलारे वाजपेयी, सूर सदर्भ, पृ० ३४।

3 अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २०२।

४ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना) सवत् १९८५, पृ० २८०–२८१।

५ सूर-निर्णय (स० २००८), पृ० ७६।

कर सकता है जो इस बात को सवदा ध्यान में रखें। भगवद्विषयक इस प्रेम का वणन भी उसी भाषा में किया गया है जिसमें सासारिक प्रेम का वणन करते हैं क्योंकि भगवान के प्रति उस प्रेम का वणन करने के लिये दूसरी भाषा मनुष्य के पास नही। भगवान् को प्रसन्न करने के लिये भक्त नाना रूप धारण करता है। भक्त सभी प्रकार के स्वाग भरने को तयार रहता है अगर उसे वह पसन्द आवे। भक्त की अपनी कोई पसन्द नही भगवान् की पसन्द में ही उसकी पसन्द है।

'भाव तो वाहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहे सब स्वाग भरौंगो।'

भक्तमाल में सूरदास का परिचय—

इस प्रेम को एक बार मन में बसा लेने पर भक्त-हृदय मधुर सगीत से गुजित हो उठता है। उसका आत्म निवेदन काव्य के रूप में प्रकट होता है और उस समय उपमाओ, उत्प्रेक्षाओ की भरमार लग जाती है। भक्त कवि नाना भाव से एक ही वस्तु को बार-बार दुहराता है फिर भी लगता है जैसे उसे तृप्ति नही हो रही है। सूरदास के काव्य की विशेषताओ का ध्यान में रखते हुए कहा गया है[1]

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति, अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह, अर्थ अदभुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सब रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन स्रवननि धर।
'सूर कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन कर॥

लीला का स्वरूप—

सूरदास जी के लीलागान में मधुर रस और वात्सल्य रस की प्रधानता है। इसके पहले कि हम उनके काव्य-सौष्ठव की चर्चा करें यह समझ लेना आवश्यक है कि सूरदास ने जिस 'लीला' का वणन किया है उसका स्वरूप क्या है। वास्तव में वह नित्य लीला है। उसमें वृन्दावन गोप गोपिकाए, कालिंदी खग, मृग पवत आदि सभी उस नित्य-लीला के अग है।

[1] नाभा जी कृत 'भक्तमाल' नवलकिशोर प्रेस (सन् १९२६ ई० छप्पय स० ४३८, पृ० ५६३।

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार ।
तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुजार ॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर ।
सारस,-हंस-चकोर-मोर - खग कूजत कोकिल-कीर ॥
जहां गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरासार ।
गोपिन मंडल मध्य विराजत निसदिन करत विहार ॥[1]
अमित एक उपमा अवलोकत जिय में परत विचार ।
नहिं प्रवेश अज-सिव गनेस पुनि कितक वात ससार ॥
सहम रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय ।
कुमुद कली विगसित अंवुज मिलि मधुकर भागी सोय ॥
नलिन पराग मेघ माधुरी, सो मुकुलित अंव-कदव ।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव-अंव ॥[2]
गोवर्धन गिरि रतन सिंहासन दंपति रस सुख मान ।
निविड कुज जहाँ कोउ न आवत रस विलसत सुख मान ॥
निसा भोर कवहुँ नहि जानत प्रेम मत्त अनुराग ।
ललितादिक सींचत सुख नैनन दुरि सहचरि वड भाग ॥
यह निकुंज को वरनन करिके वेद रहे पचिहार ।
नेति नेति कर कहऊ सहस विधि तऊ न पायो पार ॥[3]

ऐसी है वह नित्य-लीला जिसका वर्णन वेद भी नही कर पाते और उस लीलास्थली में ससारी जीवो के प्रवेश की वात कौन चलावे ब्रह्मा, शिव और गणेश भी उसमें प्रवेश नही पाते । वह लीला एक रस है और नित्य चलती रहती है । अतएव सूरदास अथवा अन्य भक्त-कवियो के लीला-वर्णन का आस्वादन करते समय नित्य लीला के इस स्वरूप को आँखो से ओझल होने देनें मे पद-पद पर वाधा आ उपस्थित होती है ।

वात्सल्य का चित्रण—

वात्सल्य का चित्रण करने में सभवत सूर की वरावरी करने वाला ससार में कोई कवि नही हुआ । वालको की विभिन्न चेष्टाओ का मानों सूक्ष्म निरी-

---

[1] सूर-निर्णय, नित्य लीला वर्णन, पृ० १९१ ।
[2] सूर-निर्णय नित्य लीला का वर्णन, पृ० १९१ ।
[3] वही, पृ० १९२ ।

क्षण कर सूरदास ने अपने काव्य में रूप देने का प्रयत्न किया है। बाल लीला का अत्यन्त ही स्वाभाविक वर्णन सूरदास ने किया है। एक के बाद एक पद आते जाते हैं और बालकृष्ण की रूप माधुरी, उनकी मनोदशाओं उनके खेल-कूद उनके नटखटपन का परिचय देते जाते हैं। लगता है जैसे सूरदास का एक का वर्णन कर दूसरे का वर्णन किए बिना तृप्ति नहीं होती। कोई बात इस सम्बन्ध की उनसे छूटने नहीं पाई है। इस वर्णन में कलात्मकता जैसे उनका मुंह जोहती रहती है। उपमाएँ उत्प्रेक्षाएँ, रूपक इतने सहज भाव से आए हैं कि पाठक उनमें रमता रहता है। लगता ही नहीं जैसे सजाने सँवारने के लिए प्रयुक्त हुए हैं सम्पूर्ण रूप से तन्मय होकर अपने आपको मिटाकर सूर ने कृष्ण का लीला माधुरी का साक्षात्कार किया है। सूर का भक्त हृदय कभी व्रज की स्त्रियों के रूप में कृष्ण के जन्म पर नन्द के द्वार पर भीड़ लगाता है तो कभी ढाढी बनकर अपने को धन्य मानता है।

> आजु नन्द के द्वार भीर।
> इक आवत, इक जात विदा ह्वै, इक ठाढ़ मंदिर के तीर॥[1]

अथवा

> मैं तेरे घर को हौं ढाढी, मो सरि कोउ न आन।
> सोइ लहौं जो मो मन भावै, नंद महर की आन॥[2]
> संपति देहु लेहु नहिं एकौ, अन्न-वस्त्र किहिं काज ?
> जो मैं तुमसौं माँगन आयौ सो लहौं नंदराज।
> अपने सुत कौ बदन दिखावहु, बड़े महर सिरताज।
> तुम साहब, मैं ढाढ़ी तुम्हरौ, प्रभु मेरे व्रजराज॥[3]

नंद और यशोदा के रूप में सूरदास का भक्त हृदय वात्सल्य से परिपूरित है। यशोदा पालना झुला कर लोरी गाकर बाल-कृष्ण को सुलाने की चेष्टा करती है कभी भगवान् से उनकी मंगल-कामना करती है, नंद हाथ पकड़ कर उन्हें चलना सिखाते हैं कभी उनकी दँतुलियाँ को देख कर आनंदित होते हैं।

---

[1] सूरसागर पद संख्या ६४३।

[2] वही पद संख्या ६५४।

[3] वही, पदसंख्या ६५४।

यशोदा हरि पालनैं झुलावैं ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावे, जोइ-मोइ कछु गावैं ।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावैं ।।
तू काहें नहिं वेगहिं आवैं, तोकौं कान्ह बुलावैं ।
कबहुं पलक हरि मूंदि लेते हैं, कबहुँ अघर फरकावैं ।
सोवत जानित मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावैं ।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावैं ।
जो सुख 'सूर' अमर-मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावैं ।।[1]

यशोदा की सबसे बडी अभिलाषा यह है कि कब कृष्ण घुटनो के बल चलेंगे, कब वे बोलना सीख लेंगे ।

नंद-घरनि आनद भरि, सुत स्याम खिलावैं ।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहिविधिहिं मनावैं ।
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की, देखौं इन नैननि ।
कबहि कमल-मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि ।[2]........

'रेनु-तन-मडित' और मुह में दधि लपटाए हुए बालकृष्ण को एक पल देखने में सूर को जो सुख मिलता है वह सत कल्प जीने मे नही ।

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मडित, मुख दधि लेप किए ।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए ।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ।।[3]

कृष्ण कभी 'दधि मथन' करती हुई यशोदा की मथानी पकड लेते है और कभी 'रई' की आवाज के साथ नाच-नाच उठते है ।

नंद जू के बारे कान्ह, छाँडि दै मथनियाँ ।
बार बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ ।।[4]

---

[1] सूरसागर, पद सख्या ६६१ ।
[2] वही, „ ६९२ ।
[3] वही, „ ७१७ ।
[4] सूरसागर, पद सख्या ७६३ ।

अथवा

जसुमति दधि मथन करति, बठी वर धाम अजिर,
ठाढे हरि हसत नान्हि दतियनि छबि छाज।[1]

अथवा

त्यों त्यों मोहन नाच ज्यों ज्यों रई घमरकी होइ।

कृष्ण चन्द्रमा को हाथ में लेकर खेलना चाहते हैं। यशोदा सब प्रकार से मना कर हार जाती ह अन्त में नइ दुलहिया पाने का आश्वासन पाकर ही कृष्ण सन्तुष्ट होते ह।

मया, म तो चद खिलौना लहौं।
जहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहहौं।
ह्वहौं पूत नद बाबा को, तेरौ सुत न कहहौं।
आग आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहि न जनहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दहौं।
तेरी सौं, मेरी सुनि मया, अबहि बियाहन जहौं।
सूरदास ह्व कुटिल बराती, गीत सुमगल गहौं॥[2]

बाल-लीला—

ग्वाल-बालो के साथ कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलते ह। कभी हारते ह कभी जीतते हैं। उस खेल में सभी बराबर हैं। भले ही किसी की कुछ गायें अधिक ह। लेकिन इससे क्या खेल में बडा-छोटा कौन। सूरदास का हृदय 'हरि' को सखा रूप में पाकर विभोर हो उठता ह हरि को खिझाने में हरि के साथ झगडने में और फिर एक होकर खेलने में जसे सूरदास ही श्रीदामा का रूप धारण कर लेते हैं।

खेलत म को काको गुसयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस हीं कत करत रिसयाँ।
जाति-पाँति हमते बड नाहीं नाहीं बसत तुम्हारी छयाँ।
अति अधिकार जनावत यात जात अधिक तुम्हार गया।
रुहठि कर तासौं को खले, रहे बठि जहँ-तह सब ग्वयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्योइ चाहत, दाऊँ दियौ करि नद-दुहयाँ॥[3]

---

[1] वही, पद सख्या ७६४। [2] वही पद सख्या ८११

[3] सूरसागर पद सख्या ८६३।

बाल-लीलाओं का वर्णन में सूरदास ने अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया है। जिस प्रकार से गोप बालकों के साथ कृष्ण खेल-कूद में निमग्न रहते हैं उसी प्रकार गोप-बालिकाओं के साथ नाना प्रकार की छेड़खानियों द्वारा उन्हें सुख पहुँचाया करते हैं। कभी ग्वाल-बालों को लेकर ब्रज-सुन्दरियों के घर में जाकर मक्खन चोरी करते हैं तो कभी पनघट और यमुना-तट पर नाना प्रकार से तंग कर उन्हें मुग्ध करते हैं और कभी शरद कालीन पूर्णिमा में उनके साथ रास रचाया करते हैं। इस प्रकार के वर्णनों से 'सूरसागर' भरा पड़ा है।

संयोग वर्णन—

शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन सूर के काव्य में अत्यन्त विस्तार वाला है। राधा और कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के उत्तरोत्तर विकास तथा उसकी पूर्णता की नानाविध चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण सूर-काव्य मे मिलता है। पारस्परिक अनुराग के विकास मान, उपालम्भ, मिलन, उत्कण्ठा आदि के सजीव वर्णनों से 'सूरसागर' भरा पड़ा है।

इस प्रेम के लिये गोपियाँ सभी कुछ सहने को तैयार है, सभी कुछ त्यागने को प्रस्तुत। समस्त संसार विपरीत हो जाय लेकिन उन्हें इसकी परवा नहीं। इस प्रेम के लिये वे जाति, कुल, सगे-सम्बन्धी, पिता-माता सबको छोड़ने के लिये तैयार है।

> नंदलाल सौं मेरौ मन मान्यौ, कहा करैगौ कोउ।
> मै तो चरन-कमल लपटानी, जौ भावै सो होउ।
> बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसै बिराने लोग।
> अब तौ स्यामहिं सौं रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ संयोग॥
> जाति महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ।
> गिरिधर वर मैं नेकु न छांड़ौ, मिलौ निसान बजाइ।
> बहुरि कबहिं यह तन धरि पैहौं, कहँ पुनि श्रीबनवारि।
> सूरदास-स्वामी कै ऊपर यह तन डारौं वारि।[1]

इस प्रकार से अपने-अपने को सम्पूर्ण भाव से देकर ही उन्होंने अपने प्रियतम को सम्पूर्ण भाव से पाया था और यही कारण है कि राधा और गोपियों का प्रेम किसी भी अवस्था मे मलिन नही हुआ। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम एक रूप बना रहा। उन्हें अपने प्रेम पर विश्वास था इसलिये कृष्ण पर

---
[1] सूरसागर, पद संख्या २२८१।

अविश्वास करने का उन्हें अवसर ही नहीं था। कृष्ण चाहे दूर रहें, चाहे निकट वे उनके हैं और सदव उनके ही बने रहेंगे। चूंकि सपूर्ण रूप से वे उनकी हैं। यही कारण है कि प्रेम के इस सागर में उफान तो आता है लेकिन मर्यादा के बाहर नहीं जाता। राधा भोरी है प्रेममयी है। मान भी करती है परन्तु 'मान' रखना जानती नहीं। अपने मन पर उनका वश नहीं। प्रिय के वियोग को वह सहन नहीं कर सकती इसलिये मान कर पीछे पछताती है।

> भूलि नहिं मान करौं री।
> जातें होइ अकाज आपनौ, काह वृथा मरौं री[1]॥

इस प्रकार से सूरदास की राधा को न खीजने में देर लगती है और न रीझने में। वास्तव में सूरदास की राधा अत्यन्त सरल, निश्छल हृदय वाली है। उनका प्रेम सरल चित्त का प्रेम है, उसमें कहीं भी अपूर्णता नहीं, कहीं भी आशंका नहीं, कहीं भी जटिलता नहीं।

राधा तथा अन्य गोपियों के साथ वृन्दावन में कृष्ण ने जितना भी समय बिताया और जितनी भी लीला की वह सब संयोग शृंगार के अन्तर्गत आता है।

वियोग वर्णन—

वियोग-पक्ष का वर्णन भी सूर साहित्य में विस्तृत और व्यापक है। वियोग की भिन्न भिन्न दशाओं का वर्णन 'सूरसागर' में इतना विशद है कि लगता है जैसे अब वर्णन करने को कुछ भी बाकी नहीं रह गया है। वियोग में जो टीस, जो पीड़ा होती है वह प्रिय की स्मृति को ताजी बनाए रहती है। संयोग-काल की छोटी-सी छोटी वस्तु भी वियोग में महत्व की हो जाती है और मधुरतर होकर प्रिय को भूलने नहीं देती। संयोग में प्रिय को निकट पाने से एक आत्म तुष्टि आती है। वियोग में प्रिय का अभाव प्रेम को और तीव्रता प्रदान करता है। संभवत यही कारण है कि भक्त-कवि वियोग-पक्ष का वर्णन अधिक भाव प्रवणता से करते हैं। विरह की अनुभूति भक्त-कवि के लिये सहज होती है। भगवान से मिलन के लिये वह आतुरता लिये हुए रहता है। उसके हृदय की यह बेचैनी, यह वेदना विरह जनित नाना मनो दशाओं और चेष्टाओं को रूपायित करने में सहायक होता है। यही कारण है कि कृष्ण के वृन्दावन छोड़कर चले जाने के बाद यशोदा-नन्द, गोप, गोपियाँ,

---

[1] वही पद संख्या २७२०।

वृन्दावन के जड-चेतन सभी पदार्थों को सूर ने प्रत्यक्ष किया है और वियोग-पक्ष का उनका वर्णन इतना सरस और द्रावक हो पाया है।

कृष्ण मथुरा चले गए हैं। नद लौटकर आ गए हैं। लेकिन कृष्ण नहीं लौटे। उनके वियोग में समस्त ब्रज व्याकुल है। ब्रज की सारी संपदा कृष्ण के साथ ही चली गई है।

तव तें मिटे सव आनन्द।
या ब्रज के सव भाग सपदा, ले जु गए नंद-नद।
विह्वल भई जसोदा डोलति, दुखित और उपनंद॥
धेनु नहीं पय स्रवति रुचित मुख, चरति नहिं तृण कंद।[१]

यशोदा के दुख का अन्त नहीं। उस ब्रज को लेकर वे क्या करेंगी जहा "गोकुल के राइ" नहीं है।

नंद ब्रज लीजै ठौंकि वजाइ।
देहु विदा मिलि जाहिं मधुपुरी, जहँ गोकुल के राइ॥[२]

यशोदा को इसी वात का आश्चर्य है कि कृष्ण को मथुरा में छोड़कर नद आ कैसे गए, उनके हृदय की वलिहारी है।

सराहौं तेरो नद हियो।
मोहन सो सुत छाड़ि मधुपुरी, गोकुल आनि जियो॥[3]

यशोदा मथुरा में जाकर वसुदेव की दासी होकर रहेंगी, कम से कम वे कृष्ण को देख तो पाएगी।

हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै वसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौं॥[४]

लेकिन चाहकर भी वह कहा जा पा रही है। यशोदा के हृदय का दुख अपनी विवशता के कारण अत्यन्त करुण हो उठा है।

संदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ धाई तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ॥
जदपि टेव तुम जानति उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लडैते, माखन रोटी भावै॥

---

[१] सूरसागर, पद सख्या ३७७५।

[२] सूरसागर, पद सख्या ३७९६।

[3] वही, पद सख्या ३७९३। [४] वही, पद सख्या ३७८८।

तेल उबटनो अरु तातो जल, ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ मागत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि क न्हाते ॥
सूर पथिक सुनि मोहि रनि दिन, बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लडैतो मोहन, ह्वह कर सकोच ॥[1]

गोपी ग्वाल बाल सभी कृष्ण के विरह में व्यथित हैं। सबसे उदासीन हैं। कृष्ण के रहते सुख और आनन्द देने वाली वस्तुए आज दुख को बढा रही हैं। सारी प्रकृति जैसे उनकी दुश्मन बन कर उन्हें कष्ट पहुँचा रही है। कभी वही प्रकृति उनके समान ही दुखी होकर कष्ट पा रही है। गोपियों को कृष्ण के बिना एक पल भी चैन नही। कभी उन्हें लगता है जैसे वन से लौटकर कृष्ण आ रहे हैं—

इहि बिरिया वन त ब्रज आवत।
दूरहि त वह बेनु अधर धरि, बारबार बजावत।[2]

लेकिन दूसरे ही क्षण उनका भ्रम दूर हो जाता है और उनकी व्याकुलता बढ जाती है। उन्हें कहीं से भी सहानुभूति नहीं मिलती। उन्हें न घर में चैन है और न बाहर। सब लोग उनकी हसी उडा रहे हैं लेकिन व विरह कातर होकर अपने को सभाल नहीं पा रही हैं।

अब हौं कहा करौं री माई।
नँद नदन देख बिनु सजनी, पल भरि रह्यौ न जाई॥
घर के मात पिता सब त्रासत, इहि कुल लाज लजाई।
बाहर के सब लोग हँसत ह कान्ह सनहिनि आई॥
सदा रहत चित चाक चढ्यो सो, गृह अगना न सुहाई
सूरदास गिरिधरन लाडिले हँसि करि कठ लगाई॥[3]

भ्रमरगीत—

सूरदास का 'भ्रमरगीत' वियोग शृगार के वर्णन में बेजोड है। उद्धव को देखकर गोपियाँ उल्टी सीधी सब सुनाती हैं। कृष्ण के सखा होने के नाते उद्धव गोपियों के लिये भी प्रिय हैं। कभी वे उन्हें बनाती हैं कभी खरी-खोटी सुनाती हैं और कभी अपनी दयनीयता पर रो पडती हैं।

"ऊधौ अब नहिं स्याम हमारे।[4]

---

[1] वही पद सख्या ३७९३। [2] सूरसागर पद सख्या ३८११।
[3] वही, पद सख्या ३८१८। [4] वही, पद सख्या ८३६४।

उद्धव की बात मानने को वे तैयार हैं। उनके ब्रह्म को वे अंगीकार करने को तैयार हैं। शर्त यही है कि वह मुकुट और पीताम्बर धारण कर उनके सामने आवे।

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधौ, मुकुट पिताम्बर धारी ॥[1]

कृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य प्रेम सदा-सर्वदा एक प्रकार का बना रहता है। वे उनके वियोग से कष्ट पाती हैं, उन्हें फिर निकट पाना चाहती हैं, केवल एक बार और देख लेना चाहती हैं। वियोग-व्यथा की असह्य पीड़ा से कातर होकर कभी नाना प्रकार की कटूक्तियाँ सुनाती हैं और कभी विगलित हो उठती हैं लेकिन सब समय उनके मन में रहता है कि जहाँ भी वे रहें, उन्हें (गोपियाँ) याद करें या न करें वे सुखी रहें।

जहँ जहँ रहौ राज करौ तहँ तहँ, लेहु कोटि सिर भार।
यह असीस हम देति सूर सुनु न्हात खसै जनि बार ॥

अथवा—

रहु रे मधुकर मधु-मतवारे।
कौन काज या निरगुन सों चिरजीवहु कान्ह हमारे ॥[2]

गोपियों के इस आत्म-समर्पण में भक्त-कवि ने जैसे अपने आत्म-समर्पण का ही निवेदन किया है। भक्ति को ही उन्होंने सब कुछ माना है। जोग और निर्गुण का तिरस्कार तो नहीं किया है लेकिन भक्ति को ही वे सीधा मार्ग समझते हैं। कृष्णोपासना, कृष्ण की अनन्य भक्ति द्वारा ही वे सब कुछ पाने के अभिलाषी हैं।

काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राज पंथ क्यों रूंधौं।[3]

सूरदास की रचनाएँ—

कहते हैं कि सूरदास ने "सवालाख भजन (पद) का अपने मन में संकल्प किया था, पर लाख ही बना के शरीर त्यागा, श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं पच्चीस सहस्र कहके उस ग्रन्थ को और अपने भक्त की वासना को पूरा कर

---

[1] सूरसागर, पद संख्या ४४२२।
[2] सूरसागर, पद संख्या ४१२२।
[3] वही, पद संख्या ४५०८।

दिया[१]।" भक्तमाल की टीका के इस उद्धरण से कम से कम इस बात का पता चल जाता है कि सूरदास ने बहुत से पद लिखे थे उसे प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहना कठिन है।" भक्तमाल के 'भक्तिसुधास्वाद' वार्तिक तिलककार के अनुसार 'जो पच्चीस सहस्र भजन श्रीकृष्ण भगवान ने कृपा करके रचा है उन भजनों में सूरश्याम की छाप दी है।[२]' इस परम्परा के अनुसार यह समझना कठिन नहीं है कि भक्तों में सूरदास का क्या स्थान है लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि सूरदास के नाम से प्रचलित पदों में ऐसे भी पद अन्तर्भुक्त किए गए हैं जिनकी रचना सूरदास ने स्वयं नहीं की है। सूरदास के नाम से प्रसिद्ध निम्नलिखित पच्चीस ग्रन्थों के नाम बताए जाते हैं

सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरसागर, भागवत भाषा, दशमस्कन्ध भाषा, सूरदास के पद, नागलीला, मान लीला, सूर रामायण सूरसागर सार, राधारस केलि कौतूहल, सूर पचीसी, गोवर्धन लीला ब्याहलो सूरसाठ प्राणप्यारी, भवरगीत सूरसागर सार सूरसाठी, सूरपचीसी, हरिवंश टीका, एकादशी माहात्म्य सेवाफल, दृष्टिकूट के पद, नल-दमयन्ती।

उपर्युक्त ग्रन्थों में सभी ग्रन्थ सूरदास कृत नहीं माने जाते। बस इसमें भी मतभेद है कि किन किन ग्रन्थों को प्रामाणिक और किन किन को अप्रामाणिक माना जाय। डा० दीनदयालु गुप्त नल-दमयन्ती, हरिवंश-टीका, राम-जन्म तथा एकादशी माहात्म्य को सूर की अप्रामाणिक रचनाओं में गणना करते हैं।[३] द्वारकादास परीख और प्रभुदयाल मित्तल भी उन चार ग्रन्थों को सूर का नहीं मानते।[४] डा० दीनदयालु गुप्त ने प्राण प्यारी को सन्दिग्ध रचना की कोटि में रखा है।[५]

परमानन्ददास

परमानन्ददास का परिचय भक्तमाल में—

परमानन्ददास का परिचय देते हुए नाभादास जी कृत भक्तमाल में कहा गया है।[६]

---

[१] भक्तमाल (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् १९२६) पृ० ५६४।
[२] वही, पृ० ५६४।
[३] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (स० २००४), पृ० २९८।
[४] सूर निर्णय (स० २००८), पृ० १०५।
[५] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय (स० २००४), पृ० २९८।
[६] श्री नाभा जी कृत (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् १९२६ ई०) छप्पय संख्या ४३७ पृ० ५६५।

पौगंड, बाल, कैशोर, गोपलीला सब गाई ।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई ।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन ।
गद गद गिरा उदार श्याम शोभा भीज्यौ तन ।
'सारंग' छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आदेश देत ।
ब्रजवधू रीति कलियुग विषै 'परमानंद' भयो प्रेमकेत ॥

'भक्ति सुधास्वाद तिलक'[1] में ऊपर की पंक्तियो पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि "द्वापर मे जिस प्रकार गोपी जनो की रीति थी, उसी प्रकार कलियुगविषे श्री परमानन्द जी प्रेम के स्थान हुए। श्रीकृष्णचन्द्र के जन्म से पाँच वर्ष तक की वाललीला, तथा १० वर्ष तक की पौगड लीला, और दस से सोलह वर्ष के भीतर की कैशोर लीला, ये सव गोप्य चरित्र गान किये। सो इस वार्ता का क्या आश्चर्य है, क्योंकि ये श्री नन्दनन्दन के प्रथम के सखा ही तो है। आपके नेत्रो से प्रेमवारि का प्रवाह तथा शरीर मे रोमाच, रात्रि दिन वना रहता था। और आपकी उदार वाणी सदा गद्‌गद् रहती थी। श्री श्यामसुन्दर की शोभा से तन मन भीगा रहता था। आपने अपनी कविता में 'सारग' छाप दी है। आपकी कविता सुनते मात्र में प्रेमावेश देती है।"

'सारंग' छाप—

भक्तमाल मे श्री परमानन्द जी का जो परिचय दिया गया है उससे उनकी भक्ति तथा लीला गान का पता चलता है। उन्होने कृष्ण की वाल तथा किशोर लीला का वर्णन किया है। उनकी भक्ति उच्चकोटि की थी। भक्तमाल से यह भी सूचना प्राप्त होती है कि उनकी कविता में 'सारंग' छाप दी हुई है। वैसे 'सारग' छाप वाले उनके वहुत ही कम पद मिलते है।[2] डा० दीनदयालुगुप्त का कहना है कि आधे से अधिक पद उनके सारग राग में लिखे हुए है।[3] सभवत इसी आधार पर भक्तमाल मे 'सारग' छाप की वात कही गई है।

---

[1] वही, पृ० ५६५।

[2] डा० दीनदयालु जी गुप्त (अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ११३-११४।

[3] वही, पृ० ११४।

भक्तमाल में वर्णित चार परमानद—

उनके पदो में उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। 'भक्तमाल' और 'चौरासी वष्णव की वार्ता' उनके जीवन-वृत्त की कुछ जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन 'भक्तमाल' में चार परमानन्दो का जिक्र ह। एक स्वामी परमानन्द जी श्री श्रीधरस्वामी के गुरु सन्यासी ह।[१] ये सुकवि, भजन प्रवीन शान्त श्री वृन्दावन के सन्यासी सवस्वत्यागी थे।" दूसरे 'श्री परमानन्द जी सारग' थे,[२] जिनके सम्बन्ध में भक्तमाल में पूरा प्रकाश डाला गया है। उनके काव्य, उनकी भक्ति आदि की बात उसमें कही गई ह। तीसरे परमानद की चर्चा करते हुए भक्तमाल में कहा गया ह कि वे टीला' जी के अगज (पुत्र) थे और जगत में विख्यात योगी हुए।[३] और चौथे परमानन्दजी ओली के थे जिनके द्वार पर भागवत धम का दृढ ध्वजा गडी थी।[४] इन चारो परमानन्दो में श्री परमानन्द सारग को ही अष्टछाप का परमानन्द दास कहते ह।[५]

जन्मतिथि—

श्री परमानन्द जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। चौरासी वष्णवन की वार्ता में इसका उल्लेख ह। उसमें उनका परिचय कान्यकुब्ज ब्राह्मण कह कर दिया गया है, 'परमानन्ददास कन्नौजिया ब्राह्मण तिनकी वार्ता।' वार्ता में और भी कहा गया है कि परमानन्ददास जी का जन्म कन्नौज में है कनौजिया ब्राह्मण के घर भयौ[७]। उनके माता पिता निधन थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रचलित परम्परा के अनुसार परमानन्ददास श्री वल्लभाचाय जी से १५ वष

---

[१] श्री नामा जी कृत भक्तमाल, प० ३७३।

[२] वही, पृ० ५६५।

[३] नामा जी कृत भक्तमाल प० ८४३।

[४] वही, पृ० ८७८ ८७९।

[५] ध्रुवदास की 'भक्त नामावली में उन्हें अष्टछाप का ही माना गया ह।

[६] चौरासी वष्णवन की वाता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना बम्बई स० १९८५) पृ० २९०।

[७] वही पृ० २९०।

छोटे थे[1]। इसको स्वीकार कर विद्वानो ने श्री परमानन्द जी का जन्म सं० १५५० के मार्गशीर्ष शु० ७ दिन सोमवार को माना है[2]। 'भाव प्रकाश' के अनुसार जव इनका जन्म हुआ तो किसी सेठ ने इनके पिता को वहुत द्रव्य दान किया। ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने इनका नाम 'परमानन्द' रखा। 'भाव प्रकाश' में आया है कि "तब वा ब्राह्मण ने वहोत प्रसन्न होइके कह्यो जो श्री ठाकुर जी ने मोको पुत्र दियो, और धन हू वहोत दियो। तासो यह पुत्र वडो भाग्यवान है, जाके जन्मत ही मोको परम आनन्द भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम "परमानन्ददास" ही धरूँगो।

व्याह का प्रसंग—

परमानन्द जी 'वार्ता' के अनुसार अत्यन्त "योग्य भये और कवि भये भगवत् कृपा के पात्र भये कीर्तन बहुत आछो गावते।" इस प्रकार से उनके साथ वहुत लोग रहने लगे और वे "आप स्वामी कहावते आप सेवक करते।" 'भाव प्रकाश'[3] के अनुसार एक समय नन्नौज में अकाल पडा और दडस्वरूप वहाँ के हाकिम ने उनके "पिता को सब द्रव्य लूटि लियो।" माता-पिता दु खी होकर परमानद दास से बोले कि सव द्रव्य वैसे ही चला गया और वे लोग उनकी शादी भी नही कर सके। परमानन्द दास से उन्होंने उपार्जन करने के लिये कहा लेकिन उन्होने कहा कि उन्हें व्याह तो करना नही है इसलिये द्रव्य की क्या आवश्यकता है ? माता-पिता के खाने का उपाय वे करते रहेंगे और इसलिये उन्हें निश्चिन्त होकर भगवद्भजन करना चाहिए। पिता को इन वातो से सन्तोष नही हुआ और द्रव्य अर्जन करने के चक्कर में एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते रहे। परमानन्द दास अपने घर में ही कीर्तन-भजन करने लगे और उनकी ख्याति चारो ओर गाँव-गाँव में फैल गई।

प्रयाग में परमानन्द दास—

कहते है कि २६ वर्ष की अवस्था में मकर सक्रान्ति के अवसर पर परमानन्ददास प्रयाग गये। प्रयाग में ही वे रम गये। वहाँ रहते उनके भजन कीर्तन की ख्याति चारो ओर फैली। उस समय यमुना के दूसरे पार अडेल

---

[1] अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय संस्करण), ऐतिहासिक दृष्टि, पृ० ५।

[2] अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (प्रथम भाग) पृ० २०९ तथा अष्टछाप-परिचय पृ० १७७।

[3] अष्टछाप (काकरौली, सं० २००९) पृ० ११२।

नामक ग्राम में महाप्रभु वल्लभाचाय का निवास था। परमानन्द जी एकान्शी को रात्रि-जागरण कर भजन-कीतन किया करते थे। यह सुन कर महाप्रभु वल्लभाचाय का सेवक जलघरिया कपूर क्षत्री भी रात में सब काम समाप्त कर अटेल से प्रयाग जाने को प्रस्तुत हुआ लेकिन उस समय नाव नही थी अतएव वह यमुना नदी तर कर पार कर गया और परमानन्द जी के स्थान पर गया। वहाँ लोगा ने बतलाया कि वह महाप्रभु वल्लभाचाय का सेवक है। परमानद जी ने उस समय कई विरह के पद गाए। चौरासी वष्णवन की वार्ता[1] में जो चार पद दिए हुए हैं उनसे परमानन्द दास की कृष्ण भक्ति का पूरा परिचय मिलता है।

> ब्रज के विरही लोग विचारे
> बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुबल तनहारे ॥
> मात जसोदा पथ निहारत निरखत साझ सकारे।
> जो कोई कान्ह कान्ह कहि बोलत अँखियन बहत पनारे।

नीचे के पदो में भक्त-हृदय की आतुरता का जसे चित्र-सा खिच जाता है।

अथवा

> माई को मिलवै नद किसोरे।
> एक बार को नन दिखावे मेरे मन को चोरे ॥

दीक्षा—

कहते हैं कि उस रात्रि को सब लोगा के चले जाने पर परमानन्द दास को निद्रा आ गई और उन्होने सपने में देखा 'जसे रात्रि के जागरन में श्री आचाय जी महाप्रभुन के सेवक जलघरिया क्षत्री बठे हैं और उनकी गोद में श्री नवनीत प्रिया जी के दर्शन भये।'[2] परमानद दास को अडेल जाकर 'जलघरिया क्षत्री से मिलने' की प्रेरणा हुई जिसमें कि वे फिर श्री नवनीत प्रिया जी के दशन पा सकें। वहाँ पर उन्हें महाप्रभु वल्लभाचाय जी के दशन हुए और श्री आचाय जी महाप्रभुन ने अपने श्री मुख सो कह्यो जो परमानद कछू भगवदीय जस वणन करि। तब परमानद स्वामी ने विरह के पद गाये।'[3] उन पदो में एक पद निम्नलिखित ह

---

[1] 'लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना (सवत् १९८५), पृ० २९३-२९४।

[2] 'चौरासी वष्णवन की वार्ता' लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना (स० १९८५) पृ० २९६।

[3] वही, पृ० २९७-९८।

जिय की साधन जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखि नाहीं पाए विलपत कुंज अही री।........

बाद में ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ व्रज में आए और वहीं पर भजन-कीर्तन मे अपना शेष जीवन बिताया। वे प्रति दिन श्री नाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन किया करते थे। ९१ वर्ष की उम्र में उन्होंने शरीर त्याग किया। इनकी मृत्यु सं० १६४१ भाद्र पद कृष्ण ९ के मध्यान्हकाल में हुई।[1] डा० दीनदयालु गुप्त उनके परलोकवास की तिथि स० १६४० के लगभग मानते हैं।[2]

रचनाएँ—

परमानन्द दास के नाम से प्रचलित सभी रचनाओं में (१) दानलीला (२) ध्रुव चरित्र (३) परमानन्द दास जी का पद (४) वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन सग्रहो में पद तथा (५) हस्तलिखित परमानन्दसागर तथा परमानन्द दास जी के पद-कीर्तन सग्रह को डा० दीनदयालु गुप्त प्रामाणिक नही मानते। उनके मतानुसार उनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना परमानन्द सागर है।[3]

दास्य भाव—

परमानन्ददास के पदो में कुछ दास्य भाव वाले पद भी है :

ताते तुम्हरो मोहिं भरोसो आवै,
दीनदयालु पतित पावन अस वेद उपनिषद गावै।
जो तुम कहो कौन खल तारे तो हों जानों साखि,
पुत्र हेत हरिलोक चल्यो द्विज सक्यो न काहू राखि।
गनिका कहा कियो व्रत संयम शुक हित मनहिं खिलावै,
कारन करि सुमिरै गज वपुरो ग्राह परमगति पावै।
अभय दान दीवान प्रकट प्रभु साचो विरद बुलावै।
कारन कौन दास परमानंद द्वारे दाव न पावै॥[4]

---

[1] अष्टछाप-परिचय, पृ० १८०।
[2] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २३०।
[3] वही, पृ० २९९-३११।
[4] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६०८।

वाल-लीला—

परमानन्द दास ने वाल-लीला का वर्णन जमकर किया है। वाल-लीला में जसे उनका मन रम जाता है। कृष्ण के नटखटीपन का चित्रण उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से किया है।

राग धनाश्री

जसोदा चचल तेरौ पूत।
आनयौ ब्रज भीतर डोले करै अटपटे सूत।
दह्यौ दूध घत ल आगे करि जहँ जहँ धरौ दुराई।
अंधियारे घर कोउ न जान तहाँ पहल ह्वै जाई।
गोरस के सब भाजन फोरे माखन खाइ चुराई।
लरकन्ह केकर कान मरौरे तहँ ते चले पराई।[1]

बच्चे गुट बनाकर किसी एक बच्चे को भय दिखाते हैं। कृष्ण को इसी प्रकार से वलदेव ने भय दिखाया है, इसकी शिकायत वे रोहिनी मया से कर रहे हैं।

देखिरी रोहिनी मया, ऐसे ह बलभया, यमुना के तीर मोको चुचुकाय बुलाओ,
सुबल श्रीदामा साथ, हसि हँसि मिल्वें बात, आपु डरायो मोहूँ डरपायो।
जहाँ तहाँ बोले मोर, चितवे तिनकी ओर, भाजो रे भाजो मया उहि देखो आयो,
आपु चढ़े तरु पर, मोहि छाड़ियो धर तर, धर धर छाती कर घर हूँ को धायो।
लपकि लियो उठाय, उर सों रँहो लगाय, मेरो री मेरो, कहि हियो भरि आयो,
परमानद बोले द्विज, वेद मन्त्र पढ़ि पढ़ि बछिया के पूछ सो हाथ दिवायो।[2]

विरह के पद—

इस प्रकार के अनेको पद वाल कृष्ण की लीला के सम्बन्ध में उन्होंने गाए हैं। अन्य भक्त कवियो की नाई इनके भी विरह-सम्बन्धी पदो में इनकी तन्मयता का परिचय मिलता है।

मोहन वह क्यों प्रीति बिसारी,
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी।[3]

---

[1] पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ-परमानन्द सागर परमानन्ददास (ले० ललित कुमार देव), पृ० २३४।

[2] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय पृ० ७५०।

[3] अष्टछाप परिचय, विरह पद संख्या ९७।

वियोग की अवस्था में वे सभी वस्तुएँ और भी अधिक आकर्षक हो जाती हैं जिनका प्रिय से सम्बन्ध हो और प्रिय जब कृष्ण हो तब तो कुछ कहना ही नहीं। उनके सिवा रस का मर्मज्ञ कौन है ? उनके बिना कौन गोपियों के अन्तर की व्यथा को समझ सकता है ?

कौन रसिक है इन बातन कौ।
नन्द नंदन बिन कासों कहिए, सुन री सखी ! मेरे दुखियामन कौ।[1]

संयोग के पद—

कृष्ण के साथ नाना प्रकार के विहार गोपियों ने किए हैं। गायें दुहवाई हैं। गगरी उठवाई है, 'ओघट घाट' पर बाँह 'टेकने' को कहा है, हिंडोल पर झूली हैं आज वे नहीं हैं। परमानन्द दास ने उन विविध लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है।

बलि गई मेरी गैया दुहि दीजै।
बार बार कहि कुँवरि राधिका, स्याम निहोरी लीजै।
वह देखो घटा उठी बाहर की, वेग स्याम घर लीजै।
बूँद परे रंग फीको ह्वइ है, लाल चूनरी भीजै।
परमानन्द स्वामी मन मोहन, कह्यौ हमारो कीजै॥[2]

अथवा

ललन ! उठाय देहु मेरी गगरी
जमुना तीर अकेली ठाढ़ी, दूसर नाहिन कोऊ।
जासों कहौं स्याम घन सुन्दर संगहि नाहिन कोऊ॥[3]

शृंगार करते समय कृष्ण आ गए हैं। उनके रूप पर मुग्ध होकर वह अपने आपको भूल गई है। परमानन्द दास का भक्त-हृदय उस रूप-माधुरी का प्यासा है, गोपी के बहाने उनका हृदय उस रूप पर अपने आपको न्योछावर कर दिए हुए है।

औचकहिं हरि आय गये।
हौं दरपन लै माँग सँभारत, चार्‌यो हू नैना एक भये।

---

[1] वही, विरह, पद संख्या ९०।

[2] अष्टछाप परिचय, रूपासक्ति, पद संख्या ६३, पृ० १९६।

[3] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ७४६।

नक चित मुसिक्याए जू हरि, मेरे प्रान चुराई ल्ये ।
अब तो भइह चाप मिलन की, बिसरे देह सिंगार ठये ॥
तब तें कछु न सुहाय विकल मन, ठगी नद-सुत स्याम नये ।
परमानद प्रभु सों रति बाढी, गिरिधर लाल आनद भये ।[1]

आज वे ही दूर चले गए हैं फिर भी गोपियों का दृढ़ विश्वास है कि उनकी दयनीय अवस्था का समाचार पाकर कृष्ण अवश्य आएगे। वास्तव में खबर पहुँचाने वाले ही उन्हें सच्ची बात नही बतलाते। भक्त परमानन्द का अटल विश्वास है कि प्रभु उनके हृदय की व्यथा को जानने वाले हैं और किसी भी हालत में उन्हें असहाय नही रहने देंगे।

जो प कोउ माधो सो कहें ।
तो कत कमल नन मथुरा में एको घरी रह ।[2]

परमानद दास ने एक पद में माना मधुर भक्ति के स्वरूप का निरूपण किया है। कृष्ण के प्रति यह प्रेम अपने आप में पूण ह। सासारिक प्रेम को सामने रखकर उसे समझने का प्रयास व्यथ ह। उस प्रेम के अपने विधि निषेध हैं, उसे अन्य की अपेक्षा नही।

म तो प्रीति स्याम सो कीनी ।
कोऊ निदो कोऊ बदो, अब तो यह घरि दीनो ।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह ।
जो व्यभिचार तो नन्दनदन सों बाढयो अधिक सनेह ।
जो व्रत गह्यो सो और न भायो, मर्यादा को भग ।
परमानद लाल गिरिधर को पायो मोटो सग ।[3]

कृष्णदास—

जीवन वृत्त—

कृष्णदास अष्टछाप के उन भक्त कवियो में ह जिनका जीवन नाना प्रकार की परस्पर विरोधी बातो से भरा हुआ ह। सम्प्रदाय में इनके महत्व का पता इसी से चल जाता ह कि व 'अष्टछाप' में अन्तभुक्त ह। दूसरी ओर

---

[1] अष्टछाप परिचय, रूपासक्ति ७४, पृ० १९८ ।
[2] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, राग सारग, पृ० ७२३ ।
[3] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६९५ ।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में इनके जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उससे इनके सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट धारणा नहीं बनाई जा सकती। उनके जीवन की घटनाओं में बगाली पुजारियों को अपमानित कर श्रीनाथ जी के मदिर से निकालना, मीराबाई की भेंट को अस्वीकार कर उनका असम्मान करना तथा गोसाईं विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के मदिर में जाने से रोक देना, उनका वेश्यासक्त और पर-दारा-प्रेमी होना तथा अर्थ लोलुपता का परिचय देना आदि ऐसी घटनाएं हैं जिनपर सहसा विश्वास नही किया जा सकता। फिर भी इन बातो को एकदम उड़ाया भी नहीं जा सकता क्योकि चौरासी वैष्णवन की वार्ता में इनका समावेश सप्रदाय में प्रचलित विश्वासो के आधार पर है। वैसे 'अष्टछाप' मे इनका अन्तर्भुक्त किया जाना, गोसाईं विट्ठलनाथ जी का इनके प्रति बराबर सदय रहना आदि इनके महत्व को प्रकट करते हैं। कहते हैं कि जब इन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के मदिर मे जाने से रोक दिया[1] तब राजा बीरबल ने पांच सौ आदमियो को भेजकर कृष्णदास को पकड़वा मँगाया और बदीखाने मे डाल दिया।[2] श्री विट्ठलनाथ जी को जब यह मालूम हुआ तब उन्होने खाना-पीना छोड दिया और कृष्णदास को मुक्त[3] करा कर फिर से श्रीनाथ जी मदिर का अधिकारी[4] बनाया। इससे पता चलता है कि कृष्णदास की श्रीनाथ जी के प्रति कितनी निष्ठा थी तथा वे कितने विश्वास पात्र थे कि इतना सब करने पर भी श्री विटठलनाथ जी ने उनका सम्मान ही किया।

भक्तमाल में उल्लेख—

भक्तमाल में कृष्णदास नाम के छ. भक्तो का उल्लेख है। उनमें अष्टछाप के कृष्णदास सभवत. श्री बाल कृष्ण (कृष्णदास) जी हैं।[5] उसमें कहा गया है कि कृष्णदास वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में जो भजन-रीति प्रचलित थी उसमें 'पूरे और गुणागार' हुए। आपकी कविता निर्दोष, अलकृत तथा श्रीगोपाल

---

[1] चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सं० १९८५), पृ० ३५८।

[2] वही, पृ० ३६०।

[3] वही, पृ० ३६०।

[4] वही, पृ० ३६३।

[5] श्रीभक्तमाल, (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् १९२६ ई०), पृ० ५८२।

जी के सुयस से भूषित होती थी।' आप सदा संतों के संग में रहा करते थे तथा भगवत चिन्ता ही आपके लिए एकमात्र वस्तु थी और इनकी अनन्य भक्ति को देखकर "गिरिधरलाल रीझि कृष्ण कौ नाम माझ साझौ दियौ।' अर्थात् 'गिरिधारी श्रीकृष्णचन्द्र जी श्री कृष्ण दास जी पर रीझ कर अपने नाम में साझी किया अर्थात आपका नाम 'कृष्ण" (बालकृष्ण वा कृष्णदास) रखवाया और आपके नाम का पद बनाया।[1]

वार्ता का विवरण—

मूल चौरासी वार्ता में उनकी प्रारम्भिक जीवनी के सम्बन्ध में बहुत कम कहा गया है। वार्ता के अनुसार वे शूद्र थे।[2] हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' में बतलाया गया है[3] कि कृष्णदास गुजराती थे तथा चिलोतरा गाँव के 'कुनबी पटेल के' घर जन्मे। इनका जन्म लगभग सं० १५५४ में हुआ तथा वल्लभ सम्प्रदाय में ये सं० १५६७ में दीक्षित हुए।[4] इनकी मृत्यु संवत १६३८ में हुई।[5] श्रीनाथ जी के मंदिर के वे अधिकारी थे।

रूप-माधुरी के पद—

कृष्णदास की कविता अत्यन्त रसमयी है। भगवान की रूप-माधुरी को लेकर वे मत्त रहते। भगवान् के सौंदर्य से अभिभूत उनके चित्त को और अन्य किसी ओर जाने का अवकाश नहीं।

> मो मन गिरधर-छवि पर अटक्यौ।
> ललित त्रिभंगी अंगन पर चलि, गयौ तहाँ ई ठटक्यौ॥
> सजल श्याम घन चरण नील ह्वै फिर चित अनित न भटक्यौ।
> कृष्णदास कियो प्राण न्यौछावरि यह तन जग सिर पटक्यौ॥[6]

गिरिधर ही उनके सब कुछ हैं। उनके प्रति ही कृष्णदास की अनन्य भक्ति है। उनका रूप सदा उनके चित्त में बसा हुआ रहता है। उन्हें और कुछ नहीं चाहिए, चाहिए केवल अपने परम-आराध्य का चरन रेनु।

---

[1] वही पृ० ५८२।
[2] चौरासी वष्णवन की वार्ता (सं० १९८५), पृ० ३४३।
[3] अष्टछाप (विद्याविभाग काकरौली, द्वितीय संस्करण) पृ० ३३१।
[4] वही, (भूमिका भाग), पृ० ८९।
[5] वही, (भूमिका भाग) पृ० १०।
[6] चौरासी वष्णवन की वार्ता (सं० १९८५), पृ० ३५४ ३५५।

मेरो तो गिरिधर ही गुणगान ।
यह मूरत खेलत नैनन में, यही हृदय में ध्यान ।
चरन-रेनु चाहत मन मेरो, यही दीजिए दान ।
'कृष्णदास' को जीवन गिरिधर, मंगल रूप निधान ।।[१]

शृंगार रस के पदों की उन्होंने अधिक मात्रा में रचना की है। रास-लीला, हिंडोरा आदि के नानाविध वर्णनों से उनका भक्ति-काव्य भरा पड़ा है।

हिंडोरे माई झूलत लाल बिहारी ।
संग झुलति वृषभानु-नंदिनी, प्रानन हूं तें प्यारी ।
नीलांबर पीतांबर की छवि घन दामिनी मनुहारी ।
वलि-वलि जाय जुगल चंदन पर, 'कृष्णदास' वलिहारी ।[२]

अथवा

झूलें मेरो प्यारो हिंडोरे, गोपाल लाल झुलावत हैं रे ।
× × × ×
काजर रेख वनी नैनन में पीतम को चित चोरे ।।
ललितादिक झुलवति आनंद भरि, छवि की उठत झकोरे ।
'कृष्णदास' प्रभु गिरिधर की छबि, सदा रहो मन मोरे ।।[३]

कृष्ण के कमल-मुख को बराबर देखते रहने पर भी कृष्णदास की आँखें अतृप्त ही बनी रहती है। उनके अंग-अंग की छवि पर उनका भक्त-हृदय न्योछावर है।

कमल मुख देखत कौन अघाय ।
सुन री सखी ! लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुझाय ।
मुक्तामाल लाल उर ऊपर जनु फूली वन जाय ।
गोवर्धन के अंग-अंग पर, कृष्णदास बलिजाय ।[४]

वार्ता में कहा गया है कि 'कृष्णदास' के पदों में सूरदास के पदों की छाया आती है। 'एक समै सूरदास ने कृष्णदास सो कह्यो—जो तुम पद करत हो, तामे मेरी छाया आवत है" ।[५]

---

[१] अष्टछाप-परिचय, विनय ७४, पृ० २४० ।

[२] वही, छवि-वर्णन १३, पृ० २२८ ।

[३] अष्टछाप-परिचय, छवि-वर्णन ९, पृ० २२८ ।

[४] अष्टछाप परिचय, रूपासक्ति ३२, पृ० २३२ ।

[५] अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय सस्करण, सं० २००९), पृ० ३७७ ।

खण्डिता नायिका—कृष्णदास ने खण्डिता नायिका के भी बहुत से वर्णन किए हैं।

तुम सों बोलिये को नाहीं।
घर घर गवन करत हों सुंदर, पिय चित नाहीं एक ठाहीं।[1]

अथवा

कौन के भुराये भोर आए हो भवन मेरे,
ऊँची दृष्टि क्यों न करयौ, कौन से लजाने हो।
भौरी भौरी बतियान भोर वन लागे मोहि,
श्री गिरधारी तुम तौ निपट सयाने हो।
'कृष्णदास' प्रभु छोडो, अटपटी रहे हो लाल,
आज ही तुम्हें मैं नीके करि जाने हो॥[2]

इस प्रकार से उनके गोवरधनधारी नित्य नव-नव रंगों से रंजित उनके हृदय को आनन्द से अनुरंजित करते रहते हैं।

गोवरन धारी लाल नित्य नव रंग।[3]

रचनाएँ—

कृष्णदास के नाम से कई रचनाएँ प्रसिद्ध हैं जैसे जुगलमान-चरित्र, भागवत भाषानुवाद, भ्रमरगीत, प्रेम तत्व निरूपण, भक्तमाल पर टीका, प्रेमरस रास कृष्णदास की बानी हिंडोरा लीला, दान लीला, वष्णव वंदन, आदि। श्री प्रभुदयाल मित्तल इन्हें प्रामाणिक नहीं मानते। उनका कहना है कि कृष्णदास ने केवल स्फुट पदों की रचना की थी।[4] डा० दीनदयालु गुप्त भी इन सभी रचनाओं को कृष्णदास अधिकारी की लिखी हुई रचनाएँ नहीं मानते।[5]

---

[1] अष्टछाप (कांकरौली द्वितीय संस्करण, सं० २००९), पृ० ३७७।

[2] अष्टछाप-परिचय पद संख्या ६१, पृ० २३८।

[3] वही पद संख्या ५९ पृ० २३७।

[4] अष्टछाप-परिचय (द्वितीय संस्करण पौष २००६) पृ० २१७।

[5] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय पृ० ३१५ ३१९।

कुंभनदास—

भजनानंदी कुंभनदास—

कुंभनदास भी अष्टछाप के भक्त-कवियों में हैं। कुंभनदास गृहस्थ थे, भजनानंदी, भगवान् के रूप पर मुग्ध।

(नट)

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्धन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहती तहीं-तहीं ॥[1]

समस्त जीवन इसी रूप को लेकर वे रहे। श्रीनाथ जी के यहाँ भजन-कीर्तन वे किया करते थे। सूरदास जी के पहले वे ही इस काम पर नियुक्त थे। श्रीनाथ जी का वियोग वे थोड़ी देर के लिये भी सहन नहीं कर पाते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ब्रज से द्वारिका जा रहे थे। उन्होंने कुंभनदास जी को अपने साथ ले लिया। लेकिन श्रीनाथ जी की जब याद उन्हें आई तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और वे खड़े-खड़े कीर्तन गाने लगे।[2]

(सारंग अठताल)

किते दिन ह्वै गए बिनु-देखे।
तरुन किसोर रसिक नंद नंदनु कछुक उठति मुख रेखें ॥
उवह चितवनि उवह हास मनोहर उवह बानिक नट-भेखें।
उवह सोभग उह कांति बदन की कोटिक चन्द-बिसेखें ॥
स्याम सुन्दर-संग मिलि खेलन को आवति जियआ पेखें।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु जीवन जनमअलेखें ॥[3]

गोस्वामी जी ने जब उनकी यह दशा देखी तब उन्हें लौट जाने के लिये कहा। लौटने के बाद वे श्रीनाथ जी के मंदिर में गए और निम्नलिखित पद गाया, जिससे कुंभनदास की भगवान् के प्रति अगाध आसक्ति का पता चलता है—

---

[1] कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह), पद संख्या २३२।

[2] अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय संस्करण,) पृ० २६४।

[3] कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह), पद संख्या ३३७।

(सारग)

जो पै चाप मिलन की होइ ।
तौ कत रह्यौ परे सुनि सजनी ! लाख करे जो कोई ।
जो प विरह परस्पर व्याप तौ इह्न बात बन ।
डर अरु लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गन ।
'कुभनदास' जो मन माने तौ कत जिय और सुहाइ ?
गिरिधर लाल रसिक विनु-देखे छिनु भर कलप विहाइ ॥[1]

कुभनदास के पदों मे मधुर रस की प्रधानता—

कुभन दास ने वात्सल्य रस क पद नहीं लिखे है। युगल-रूप की झाकी और नाना विध लीला का वणन उन्होने किया है। इनके पदो में मधुर रस की प्रधानता ह। वार्ताकार ने उनके पदा के सम्बन्ध में लिखा[2] है कि 'सो कुभन दास सगरे कीतन युगल स्वरूप सबधी कीये। सो बधाई, पलना बाल लीला गाई नाही।' माधुर्य भक्ति के उनके पद अत्यन्त ललित और हृदय ग्राही ह। 'मिश्रबन्धु विनोद' में इन्हें 'साधारण कोटि का कवि माना गया है।[3] लेकिन इनके पदा के देखने से यह धारणा भ्रान्त मालूम होती ह। प्रेम की आत्म विभोर अवस्था का सुन्दर वणन नीचे के पद में है—

देखो माइ ! देखहु उलटी रई ग्वालिन रीती मथनियन (दही) विलोव ।
विनु हि नन कर चचल, पुनि तजि नवनीत हि टकटोव ॥
देखत रूप बिहरि वित लाग्यौ इकऽकु गिरिधर मुख जोव ।
'कुभनदास' बिसरयौ दधि अकबक, औरे भाजन धोव ॥[4]

प्रेमासक्ति के सुदर वणना वाले उनके पद ह। आसक्त मन की अवस्था का कितना सुदर वणन है। गिरि-गोवरधन रैया के बिना सुन्दर ढग से कौन गाय दुह सकता ह ?

(देव गधार)

तुम नीकें दुहि जानत गईयाँ ।
चलिये कुवर रसिक नदनदन ! लागों तुम्हारे पईयाँ ॥

---

[1] कुभनदास (जीवन, पद सग्रह), पद सख्या २२१ ।
[2] अष्टसखान की वार्ता पृ० ६२ ।
[3] मिश्रबन्धुविनोद, पृ० २६७ ।
[4] कुभनदास (जीवन पद-सग्रह), आसक्ति-वणन पद सख्या २०१ ।

तुम हि जानिके कनक-दोहिनी घर में पठई मईयाँ ।
निकटहिं है इत्त खरिक हमारो नागर ! लेऊँ बलईयाँ ।
देखि परम सुदेस सुदरी चितु चिहुस्यो सुंदरईयाँ ।
'कुंभनदास' प्रभु मानि लई मन, गिरि गोवर्धन-रईयाँ ॥[1]

अथवा

(मलार)

सारी भींजि है नई ।
अवहि प्रथम पहरि आई हो पिता वृषभान दई ।
अपनों पीताम्वर मोहिं उढ़ावहु वरिखा उदित भई ।
सुन्दर स्याम ! जाइगो इह रगु वहु विध चित्र ठई ।
कहि हों कहा जाइ घर मोहन डरपति हौं इतई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मुदित उछंग लई ।[2]

प्रीति ही एकमात्र काम्य—

इस प्रीति और आसक्ति की पराकाष्ठा इन भक्त कवियो में देखने को मिलती है। उनके लिये प्रेमाराध्य का ध्यान, प्रेमाराध्य के लिये सव कुछ करना ही एकमात्र सत्य वस्तु है। ससार के अन्य कर्म, ससार की रीति, ससार के अन्य व्यवहार इन भक्तो के लिये कुछ अर्थ नही रखते। ऐसा है उनका प्रेम। ससार चाहे हँसे, चाहे निन्दा करे, चाहे जो भी करे भक्त के मन की 'हिलगिनि' (प्रीति, लगन) ज्यो की त्यो वनी रहती है।

(सारंग-इकताल)

हिलगनि कठिन है या मन की ।
जाके लयें देख मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ।
धर्म जाउ अरु हंसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।
सो क्यो रहै ताहि विनु देखें, जो जाको हितकारी ॥
रस लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन मृग गाने ।
'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहि गोवर्धन-धर जानै ॥[3]

---

[1] कुंभनदास (जीवनी, पद सग्रह) व्रज-भक्त-प्रार्थना, पद सख्या १३६ ।
[2] वही, वर्षाऋतु-वर्णन, पद सख्या ९२ ।
[3] कुंभनदास (जीवनी, पद संग्रह) आसक्ति-वचन, पद संख्या २१३ ।

कीर्तन की रचना—

कुभनदास रचित किसी भी ग्रथ का अभी तक पता नही चला है। वसे उनके बहुत से फुटकर पद मिलते ह। डा० दीनदयालु गुप्त ने उनके पदा के सग्रह की सूचना दी है[1]—काकरौली विद्या विभाग में १८६ पदा का सग्रह नाथद्वारा निज पुस्तकालय में ३६७ पदा का सग्रह तथा वल्लभ सप्रदायी कीतन सग्रह भाग १, २ तथा ३ में छपे पद।

परम सतोषी कुभनदास—

कुभनदास का आर्थिक कष्ट था लेकिन वे परम सतोषी थे। बादशाह अकबर, राजा मानसिह तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनकी सहायता करनी चाही लेकिन उन्होने उसे अस्वीकार कर दिया। अकबर ने उन्हें बडे सम्मान से फतहपुर सीकरी बुलवाया था। लेकिन इससे कुभनदास को कष्ट ही हुआ। बादशाह का उन्होने जो पद सुनाया उससे उनके वैराग्य तथा अनन्य भक्ति और सतोष का परिचय मिलता है

> भक्त को कहा सीकरी काम ?
> आवत जात पहया टूटीं बिसरि गयो हरिनाम।
> जाको मुख देखत दुख उपज ताको करनी परी प्रनाम।
> 'कुभनदास' लाल गिरिधर बिनु यह सब झूठो धाम॥[2]

जगत की किसी भी वस्तु की सार्थकता उनकी दृष्टि में तभी थी जब वह भगवान् के किसी काम आ सके। श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि उनके डेढ बेटे हैं, एक पूरा तो चतुर्भुजदास और आधा कृष्णदास। उनका कहना था कि चतुर्भुजदास भगवान की सेवा भी करता ह और गुणगान भी करता हैं इसलिये वह एक पूरा हैं और कृष्णदास केवल सेवा करता है इसलिए आधा।[3] वसे कुभनदास के सात पुत्र थे। चतुर्भुजदास, 'अष्टछाप में सम्मिलित हैं।

जन्म और मृत्यु तिथि—

कुभनदास जी गौरवा क्षत्रिय थे। वार्ता में उन्हें 'कुभनदास गौरवा कहा

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (स० २००४), पृ० ३१५।

[2] कुभनदास (जीवनी, पद सग्रह) पद सख्या ३९७।

[3] चौरासी वष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर, स० १९८५) पृ० ३३७।

गया है। इनका जन्म स० १५२५ की कार्तिक कृष्णपक्ष ११ को हुआ था। और मृत्यु स० १६४० के लगभग हुई। गोवर्धन से कुछ दूर जमनावती ग्राम के ये रहने वाले थे। उन पर इनके चाचा धर्मदास का पूरा प्रभाव पड़ा था जो स्वय भक्त थे। बाल्यकाल से ही उन्हें सगीत और काव्य रचना से प्रेम था।

नंददास—

नंददास का जीवन-वृत्त और भक्तमाल—

नंददास, अष्टछाप के भक्त-कवियो में थे। ये अत्यन्त ही प्रतिभाशाली थे। इनके काव्य को देखने से इनकी शिक्षा, इनके पाण्डित्य तथा जीवन के नानाविध अनुभवो का परिचय मिलता है। इन्होने अपने काव्य में अथवा अन्य कही अपने जीवन के सम्बन्ध मे बहुत ही कम कहा है। इनका जीवन वृत्तान्त बहुत कुछ अन्धकार में ही है। विद्वानों ने इनके जीवन-वृत्तान्त आदि को लेकर बहुत मतभेद है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा अष्टछाप की वार्ता (काकरौली) में इनके जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ मिलता है वह पर्याप्त नहीं है। नाभा जी कृत भक्तमाल में भी इनके जीवन वृत्तान्त का थोडा-सा उल्लेख है।

अष्टछाप[1] (काकरौली) में नददास को सनौढिया ब्राह्मण तथा तुलसीदास का छोटा भाई कहा गया है। यह विवादास्पद है। भक्तमाल में उन्हें सुकुल कुल का कहा गया है और इन्हें चन्द्रहास का अग्रज बताया गया है। भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय दिया हुआ है।

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयव लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल सवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम तै मै पगे
(श्री) नददास आनंद निधि रसिक सु प्रभुहित रँगमगे।[2]

---

[1] द्वितीय सस्करण, पृ० ५२५।

[2] भक्तमाल (लखनऊ, द्वितीय आवृत्ति सन् १९२६ ई०) छप्पय सख्या ११० पृ० ७०२-७०३।

अर्थात् "श्रीनन्ददास जी आनन्दनिधि रसिक प्रभु के प्रेम में मिले हुए थे, श्रीयुगल लीला रसरीति पर ग्रन्थ की रचना में बड़े प्रवीण हुए, तथा भक्ति रसयुक्त सरस उक्ति युक्त कथन और गान में अति उजागर थे। आप 'श्रीरामपुर' ग्राम के निवासी थे, समुद्र पर्यन्त आपका सुयश विख्यात हुआ और सम्पूर्ण सुन्दर कुलवाले ब्राह्मणों में उत्तम ब्राह्मण होते हुए भी भगवद्भक्तों के चरण रेणु की उपासना सेवा किया करते थे। श्री चन्द्रहास जी के बड़े भ्राता श्री नन्ददास जी अति सुहृद परम प्रेम रूपी जल में मीन के समान पगे रहते थे।[1]

रचनाएँ—

"दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार इन्होंने श्रीमद्भागवत की भाषा करने का विचार किया।[2] इससे इनके संस्कृत के ज्ञान का पता चलता है। इनका काव्य अत्यन्त मधुर और कोमल है। इनके नाम से प्रचलित २८ ग्रन्थों का उल्लेख डा० दीनदयालुगुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय'[3] में किया है। इन रचनाओं में रासपंचाध्यायी, रूप मंजरी, रस मंजरी, अनेकार्थमंजरी, विरह मंजरी, नाम मंजरी अथवा नाममाला, दशम स्कन्ध भागवत, श्याम सगाई, सुदामा चरित, गोवर्धन लीला, सिद्धान्त पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, भवरगीत को प्रामाणिक माना है।

कोमल कान्त पदावली—

फ्रान्सीसी विद्वान् गार्सां द तासी का कहना है कि नन्ददास ने जयदेव के गीत गोविंद के अनुकरण पर रचना की है।[4] इसका मतलब यह है कि नंददास की रचनाएँ श्रुतिमधुर, कोमल और मनोहारिणी हैं। कोमलकान्त पदावली इनके काव्य की विशेषता है।

> साँवरे पिय-संग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
> जनु घन-मंडल मंजुल खेलति दामिनि-माला॥
> छबिलो तियन के पाछे, आछे बिलुलित बेनी।
> चंचल रूप-लतन-संग डोलत जनु अलि-सेनी॥

[1] वही वार्तिक तिलक पृ० ७०३।

[2] लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस संवत् १९८८ पृ० ६० ६१।

[3] प्रथम संस्करण पृ० ३२५।

[4] उमाशंकर शुक्ल नन्ददास (प्रथम भाग) प्रथम संस्करण, भूमिका पृ० १११।

मोहन पिय की मल्हकनि, ढलकनि मोर मुकुट की ।
सदा बसहु मन मेरे, फहरनि पियरे पट की ॥[1]

नंददास की गोपियाँ तथा भ्रमरगीत—

नददास के काव्य से उनके शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है । 'भँवरगीत' की गोपिकाए 'सूरदास' की गोपियो जैसी सरल और बात-बात पर अश्रु-सिक्त हो जाने वाली नही है बल्कि उद्धव की बातो का जवाब देने में वे तर्क का सहारा लेती है । फिर भी उनके लिये तर्क और सूखा ज्ञान प्रधान नही है, भक्तिभावना और प्रेमाधिक्य ही प्रधान है ।

कोऊ कहै, रे मधुप कहा तू रस को जानै ।
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै ॥
आपन सम हमको कियो, चाहत है मतिमंद ।
दुविध ज्ञान उपजाय कै, दुखित प्रेम आनद ॥
कपट के छंद सो ॥[2]

नददास के इस प्रेम में रूप की परमासक्ति है । कृष्ण की रूप माधुरी से वे आत्मविभोर हो उठते है ।

कोटि काम-लावन्य-धाम, अंग सांवरे पिय के ।
जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तितही के ॥
कोउ जो अलक छवि उरझे, अजहूं नाहि न सुरझे ।
ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ मुरझे ॥[3]

कृष्ण के भेजे हुए सन्देश, उद्धव के ज्ञान की बातें गोपियो के लिये कोई अर्थ नही रखती । कृष्ण के सन्देश मे वे कृष्ण का रूप मात्र देखती, सदेश का मर्म नही समझती । उद्धव कृष्ण के भेजे हुए है, सन्देश उनके है बस इतना ही वे जानती है । और कृष्ण से सम्बन्धित ये दोनो है इसलिये कृष्ण का स्मरण उन्हे हो आता है । वे आनन्द से पुलकित हो उठती है, बेसुध होकर गिर पडती है । उस रूप को देखने के बाद उन्हें और कुछ देखने या समझने को नही रह जाता ।

---

[1] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण), पृ० ५५ ।
[2] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण), पृ० ५९ ।
[3] उमाशंकर शुक्ल, नददास (प्रथम भाग) प्रथम सस्करण, पृ० १४९ ।

सुनि मोहन संदेस, रूप सुमिरन ह्वै आयो।
पुलकित आनन अलक, अंग आवेस जनायो॥
विह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रजबनिता मुरझाइ।
द जल छीट प्रबोधहीं, ऊधौ बात बनाइ॥
सुनौ ब्रजबासिनी॥[1]

विरह की विशेषता—

विरह के कई प्रकार नंददास ने बतलाए हैं लेकिन सब कुछ कहने पर भी, सब तरह की चेष्टा करने पर भी वह विरह समझ में नहीं आता।

निपट अटपटौ, चटपटौ, ब्रज कौ प्रेम वियोग।
अजहूं नहि सुरझे जहां उरझे बड़े बड़े लोग॥[2]

वह प्रेम और विरहावस्था कुछ ऐसी ह कि वियाग में सभी इन्द्रियाँ प्रियतम कृष्ण के साथ चली जाती ह और शरीर में 'थाडा सा प्राण' रह जाता ह और वह भी इसलिये कि प्रियतम के फिर से आने की आशा ह।

मन, बैन, श्रवन, सब, जाइ रह पिय पास।
तमक प्रान घट रहत ह, फिरि आवन की आस॥[3]

उस विरह मिलन का मम सभी नही समथ सकते। यह भक्त हृदय ही अनुभव करता है और उसे समझ सकता ह।

परम दुसह श्रीकृष्न विरह-दुख व्याप्यो जिन में।
कोटि बरस लगि नरक भोग-अघ भुगते छिन में॥
पुनि रचक धरि ध्यान पियहि परिरम वियोजब।
कोटि-स्वग-सुख भुगति, छीन कीने मगल सब॥[4]

सयोग शृंगार का वर्णन—

नंददास न सयोग शृंगार मे सुन्दर वणन किए हैं। सयोग पक्ष क सुन्दर चित्रो से उनका काव्य भरा पडा ह।

---

[1] वही, पृ० १२४।
[2] उमाशंकर शुक्ल नंददास (प्रथम भाग) प्रथम संस्करण, पृ० ३०।
[3] वही, पृ० २९।
[4] वही, पृ० १६१।

आज आये मेरे धाम श्याम माई नागर नंद किशोर।
चंदा रे तू थिर ह्वौ रहियो होन न पावे भोर॥
दादुर चकोर पपैया वोलो और व्रोलो वन के सव मोर।
नंददास प्रभु वे जिन वोलो वारो तमचर चोर॥[1]

अथवा लज्जा के कारण प्रियतम का देखना सभव नही हुआ। अपनी ओर से उसने कोई कसर नही रखी। पूरी चेष्टा की लेकिन' लाज, को क्या करें !

जर जाओरी आज मेरे ऐसी कौन काज आवे
कमल नयन नीके देखन न दीनें।
वन तें आवत मारग में भेंट भई
सकुच रही इन लोगन के लीनें॥
कोटि यतन कर रही री निहारवे कूं
अंचरा के ओट दे दे कोटि श्रम कीनें।
नंददास प्रभु-प्यारी ता दिन तें मेरे नयना
उनहीं के अंग अंग रस भीनें॥[2]

नंददास का काव्य परिमाण और महत्व की दृष्टि से अष्टछाप के भक्त-कवियो के काव्य में सूरदास और परमानंददास के वाद ही आता है।

जीवन-वृत्त—

नंददास का जन्म स० १५९० के लगभग हुआ था तथा मृत्यु सं० १६४० के लगभग हुई। इनका जीवन-वृत्त वहुत कम मालूम है वैसे 'वार्ता' से पता चलता है कि वे एक खत्री के स्त्री पर आसक्त थे और श्री विट्ठलनाथ जी की कृपा से उनका मोह छूटा और वे भगवान् की भक्ति में लग गए। संप्रदाय में प्रचलित धारणा के अनुसार नंददास दीक्षित होने के वाद कुछ समय तक गोकुल, गोवर्द्धन रहकर फिर गृहस्थाश्रम में चले गए थे वाद में विरक्त भाव से लौटकर गोवर्धन में रहने लगे।

कहते हैं कि सूरदास के सत्सग से उनका विद्याभिमान तथा अहंकार दूर हुआ और भगवान् के प्रति भक्ति प्राप्त हुई। अहकार दूर होने से उनमें दैन्य भाव आया। 'अष्टछाप' में इनका एक महत्त्व का स्थान है।

[1] उमागकर शुक्ल, नन्ददास (प्रथमभाग) प्रथम सस्करण (परिशिष्ट ३) पृ० ४२१।

[2] नंददास (द्वितीय भाग) संपादक उमागकर शुक्ल, परिगिष्ट पृ० ४१५।

पूर्वानुराग के पद—

उनके कुछ पद नीचे उद्धत किए जाते हैं जिनसे इनकी सरसता, इनकी काव्य-कुशलता का पता चलता है। नन्ददास ने 'पूर्वानुराग तथा राधाकृष्ण विवाह' का वर्णन नीचे लिखे पद में किया है

कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवै नैन, चितहू न परै चैन,
मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कुछ और भई री।
जेतक नेम धरम किए री मैं बहु बिधि,
अंग अंग भई हौं तो स्रवन मई री।
'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति,
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री॥[1]

एक दूसरे पद में भी इस पूर्वानुराग का एक चित्र है

चंचल, री चली री चित चोर।
मोहन को मन यों बस कीनो ज्यों चकई संग डोर॥
जौ लौं नहिं देखत तब मूरति तौ लौं पलकन लागत और।
नंददास प्रभु प्रेम मगन भये नागर नंद किसोर॥[2]

छीत स्वामी—

जीवन वृत्त—

अष्टछाप के भक्त-कवियों में छीत स्वामी का जीवन-परिचय बहुत कम मिलता है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा नागरीदास कृत 'पद-प्रसंगमाला' से इनका थोड़ा-बहुत परिचय मिल जाता है।

इनका जन्म अनुमानतः संवत् १५७२ में मथुरा में हुआ था और मृत्यु संवत् १६४२ ई० में हुई।[3] गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से इन्होंने दीक्षा ली थी और कहते हैं कि उनकी मृत्यु की खबर सुनकर इन्हें इतना कष्ट हुआ कि इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली (संपादक ब्रजरत्नदास), पूर्वानुराग ५४ पृ० ३४४।

[2] नन्ददास ग्रन्थावली राग विभाग ५७, पृ० ३४५।

[3] प्रभुदयाल मीतल, अष्टछाप (कांकरोली) भूमिका भाग, पृ० १४।

तानसेन भी उनका गाना सुनने आया करते थे तथा इनने शिक्षा ली थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण में आने के पहले ही वे उनके लिए परिचित हो गए थे।

दीक्षा तथा जन्म और मृत्यु की तिथियाँ—

सं० १५९२ में वे पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए।[1] कण्ठमणि शास्त्री के अनुसार उनका जन्म अनुमानत. स० १५६२ में हुआ और मृत्यु सं० १६४२ में हुई।[2] कहते हैं कि गोस्वामी विट्ठलनाथ के देहावसान पर गोविन्ददास गोवर्धन की कदरा मे प्रवेश कर अंतर्धान हो गए।[3]

जीवन-वृत्त—

वार्ता में उनकी लडकी का उल्लेख है। इसका मतलब यह है कि वे विवाहित थे। गोविन्द स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। अष्टछाप (काकरौली) में इनके बारे मे प्रथम ही कहा गया है कि "श्री गुसाई जी के सेवक गोविन्द स्वामी सनोडिया ब्राह्मण, महावन में रहते जिनकी वार्ता।" ये भरतपुर राज्य के आँतरी ग्राम के थे। इनके साथ इनकी बहन 'कान्हबाई' रहती थी। वे भी गोस्वामी विट्ठलनाथ की शिष्या थी।

ये बडे ही विनोदी प्रकृति के थे। आंतरी मे वे भी सेवक बनाया करते थे और गोविन्द स्वामी के नाम से सुपरिचित थे। जब वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए तब गोवर्धन जाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद आँतरी से कुछ लोग इन्हें खोजते हुए आए। ये यशोदा घाट पर बैठे हुए थे। लोगो ने उन्हे पहचाना नही और उन्ही मे उनका पता पूछा। "तब गोविन्ददास ने कही जो—ये तो मुए बोहोत दिन भए"। जब वे लोग उनके घर पहुँचे तो उनकी बहन कान्ह बाई ने कहा कि गोविन्द दास वहाँ आ रहे हैं। उन लोगो ने कहा कि 'स्वामी, तुमने ऐसा क्यो कहा कि वे (गोविन्द स्वामी) मर गए।' उन्होने बतलाया कि 'स्वामी' तो मर गए अब वे 'दास' हैं। यमुना जी को 'स्वामिनी जी' मानकर वे पैर नही डालते। किनारे पर ही लौटते और 'अँजुली भरि के जल ले लेते।'

---

[1] अष्टछाप (काकरौली, द्वितीय सस्करण) भूमिका भाग पृ० १५ पर उद्धृत।

[2] वही, पृ० १५-१६। [3] वही, पृ० १६।

रचनाएँ—

गोविन्द स्वामी की भक्ति सख्य और मधुर दोनो प्रकार की थी। वार्ता में श्री नाथ जी के साथ उनके खेलने और झगडने के कई प्रसग आए हैं। उन्होने फुटकल पदो की रचना की ह। अभी तक ६०० पदो का पता चल पाया है। इनके काव्य में राधा-कृष्ण की लीलाओ का मधुर वणन है। बाल-लीला के पद भी उन्होने रचे ह।

बाल-लीला—

(रामकली)

हौं बलि बलि जाउ कलेवा लाल कीजे।
खीर खाड घृत अति मीठो ह, अब की कौर बच्छ लीजे।
बेनी बढे सुनो मनमोहन, मेरौ कह्यो जु पतीज।
औंटयौ दूध सम्य धौरी कौ, सात घूट भरि पीज॥
वारनें जाऊँ कमल मुख ऊपर, अचरा प्रेम जल भीज॥
ग्रोहोरयो जाइ खेलो जमुना तट, "गोविन्द" सग कर लीज[1]।

इस प्रकार मे बाल चरित्र और माता की ममता के चित्र उनके पदो में मिलते ह।

(गौरी)

कदम चढ़ काहू बुलावत गया।
मोहन मुरली को नयद सुनत ही जहां तहाँ त उठि धया॥
आवो, आवो सखा सिमिटि सब पाई ह एक ठया।
"गोविन्द" प्रभु बल दाऊ सों कहन लाग अब घर कौ बगदया[2]॥

बालको का दल लकर कृष्ण ग्वालिनो क घर जाकर दूध दही चोरी कर लते हैं। ग्वालिनें यशोदा से शिकायत करती ह।

(सारग)

अब हौं या ढोटा सा हारी।
गोरस लेत अटक जब कीनो तबही देत फिरि गारी॥

---

[1] गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-सग्रह) पद सख्या २३४।

[2] वही ३६५।

निसि दिन घर घर फेरो करत है बालक जूय मंझारी।
'गोविन्द' प्रभु हम कहति पियारी ए बातें कैसे जात सहारी ॥[1]

मधुर रस के पद—

मधुर रस की धारा भी गोविन्द स्वामी ने खूब बहाई है। कृष्ण के रूप उनकी नानाविध लीला, उनके प्रति भक्त हृदय की आसक्ति सबका सुन्दर वर्णन उनके काव्य में मिलता है। कृष्ण का वह सुन्दर मधुर रूप एक क्षण भी नही भूलता। ससार के सभी सबध जैसे तुच्छ हो जाते है जब बांसुरी की आवाज सुनाई पडती है।

(केदारो)

अब कहा करौं मेरी आली री अँखियन लागई रहत।
निसु दिन फिरत रूप रस मातो आवे नहीं गृह काज करत ॥
जदपि मात पिता पति सुख देखत तो हू न धीरज धरों मोहत बेन सुनत।
'गोविन्द' प्रभु कों हों जो लो न देखों आली तौलो छिन-छिन कैसे मेरे-
प्रान रहत ॥[2]

भक्त कवि को स्वर्ग की कामना नही है, क्योंकि वहां न कुज-लता है, न बसी की आवाज है और न जहां सारस, हस और मोर ही बोलते है। ब्रज की शोभा वहाँ कहाँ? गोपी, नद तथा माता यशोदा तो वन्दावन में ही है उन्हें छोड़कर स्वर्ग मे पाने लायक और है ही क्या?

(गौरी)

कहा करौं वैकुठे जाइ।
जहाँ नहीं वंसीवट जमुना गिरि गोवर्धन नंद की गाँइ।
जहाँ नहीं ए कुजलता द्रुम मंद सुगध बाजत नहिं बाइ।
कोकिल मोर हंस नहि कूजत ताको बसिवो काहि सुहाइ।
जहाँ नहीं बंसी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमाचय उपजत मन क्रम वच आवत नहि दाइ।
जहाँ नहीं ए भुव वृन्दावन बाबा नंद जसोमति माइ।
'गोविन्द' प्रभु तजि नंद सुख को ब्रज तजि वहाँ बसत बलाइ ॥[3]

---

[1] गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-संग्रह) पद सख्या ४६।

[2] वही, ४५३।

[3] वही, पद सख्या ५७४।

उस प्रियतम कृष्ण का पाने का एकमात्र साधन प्रेम ह। प्रेम के द्वारा ही उसे पाया जा सकता ह। रूप, गुण, शील, चातुरी, विद्या, बुद्धि, सद्वंश आदि व्यर्थ हैं अगर हृदय प्रेम से सिक्त न हो। उन सभी के द्वारा उसे पाने की आशा दुराशा मात्र है।

> प्रीतम प्रीत ही ते पये।
> जदपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनिन रिझये।
> सतकुल जनम, करम सुभ, लच्छन वेद पुरान पठये।
> 'गोविन्द' प्रभु बिना स्नेह सुवालों रसना कहा नचये॥[1]

चतुर्भुज दास—

सम्प्रदाय में विशिष्ट स्थान—

चतुर्भुज दास कुम्भनदास के सात पुत्रों में सबसे छोटे थे। पिता-पुत्र दोनों ही अष्टछाप में अन्तर्भुक्त थे इसी से पता चल जाता ह कि चतुर्भुज दास का कितना महत्व था। बचपन से ही उन्होंने पिता से भगवान् की भक्ति पाई थी और 'पुष्टिमार्ग' के रहस्य को समझा था। पिता की नाईं वे भी श्रीनाथ जी के अनन्य भक्त थे। कुम्भनदास अपने ठेठ पुत्र इन्हीं को ही बतलाते थे। चतुर्भुज दास को एक पूरा इसलिये कहते थे कि व भजन-कीर्तन भी करते थे और श्रीनाथ जी की सेवा में भी लगे रहते थे और आधा इनमें बड़े कृष्णदास थे जो श्रीनाथ जी की गायों की निगरानी करते थे। इन्हीं सब कारणों से कम उम्र में ही व सम्प्रदाय में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके। ये गौरवा क्षत्रिय थे। इनका जन्म जमुनावती में हुआ था।

जीवन-वृत्त—

'वार्ता' आदि से इनके जीवन-वृत्त पर बहुत प्रकाश नहीं पड़ता वैसे इनके चमत्कार की कहानियाँ उनमें दी हुई हैं। सम्प्रदाय-कल्पद्रुम के आधार पर कंठमणि शास्त्री इनका जन्म स० १५९७ में मानते हैं[2] लेकिन प्रभुदयाल मित्तल स० १५८७ मानने के पक्ष में ह।[3] इनकी मृत्यु संवत् १६४२ में गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के गोलोक वास के अनन्तर हुई। गोस्वामी जी

---

[1] गोविन्द स्वामी (साहित्यिक विश्लेषण वार्ता और पद-संग्रह), पद संख्या ३४३।

[2] अष्टछाप (कांकरौली द्वितीय संस्करण), भूमिका भाग, पृ० १०।

[3] अष्टछाप-परिचय, (द्वितीय संस्करण), पृ० २७२।

की मृत्यु का समाचार उनके लिये असह्य था। यह समाचार पाकर इन्होंने भी गोस्वामी जी की स्तुति के पद गाते हुए शरीर त्याग किया।

रचनाएँ—

चतुर्भुज दास का कोई ग्रंथ नही मिलता। संभवतः उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना नही की थी, फुटकल पद ही लिखे थे। इनके पद सरस तथा भक्ति-भाव से पूर्ण हैं। काव्य-सौष्ठव इनके पदो में है। बाल-लीला, वियोग और संयोग शृंगार के उनके पद अत्यंत ही सुन्दर और ललित हैं।

बाल-लीला—

बाल-कृष्ण का माता यशोदा के प्रति नाना प्रकार के अभियोग हैं। वे न उन्हे गो-दोहन सिखाती है और न 'धौरी' गाय का 'औटा' हुआ दूध कटोरा भर पिलाती हैं। और माता यशोदा का सबसे बडा अपराध यह है कि उन्हें उनके ब्याह की चिन्ता ही नही है। अगर चिन्ता होती तो निश्चिन्त सोतीं कैसे ?

मैया मोहि माखन मिश्री भावै।
मीठौ दधि मधु-घृत अपने कर, क्यो नहि मोहि खवावै।
कनक दोहिनी देकर मोको, गो-दोहन क्यों न सिखावै।
औट्यो दूध धेनु धौरी को, भरिकटोरा क्यो न प्यावै।
अजहूँ ब्याह करत नहि मेरो, होय निसंक नींद क्यों आवै॥
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर को बतियां, लै उछंग पय-पान करावै॥[1]

बाल-स्वभाव का चित्रण कितना सुन्दर है। चतुर्भुजदास 'श्रीनाथ जी' के खेल के संगी है। उनके साथ खेलते हैं, उनसे झगड़ते है, उन्हें 'गिरिधर' की सब बातो का पता है 'चुटिया' की लम्बाई को लेकर सुबल से जो उनका विवाद हुआ था उसका पता क्या चतुर्भुज दास को नही है।

चुटिया तेरी बडी किधौं मेरी।
अहो सुबल बैठहु भैयाहो, हम तुम मापे इक बेरी॥
लै तिनका मापत उनकी कछु, अपनी करत बड़ेरी॥
लेकर कमल दिखावत ग्वालन, ऐसी काहू न केरी॥
मोकों मैया दूध पियावत, तातें होत घनेरी।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर इहि आनंद, नाचत दै दै फेरी॥[2]

[1] अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण), पृ० २७८।
[2] वही, पृ० २७९।

ग्वालिनें कृष्ण के उत्पात से तंग आ गई हैं। दूध-दही-मक्खन चोरी कर के खाते हैं, जरा भी भय नहीं करते। माता यशोदा से एक ग्वालिन फरियाद करती है

जसोदा कहा कहौं हौं बात।
तुम्हरे सुत के करतब मों प, कहत कहे नहिं जात।
भाजन फोरि, ढोरि सब गोरस, ले माखन दधि खात॥
जो बरजौं तो आँखि दिखावे, रंचहू नाहिं सकात।
और अटपटी कब लौं बरनौं छुवत पानि सो गात।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहत-कहत सकुचात।[1]

माता यशोदा क्या कहें? गाँव की ग्वालिनें ही ऐसी हैं। कृष्ण जैसे निपट बालक को चोरी लगाती हैं। वह तो दूसरे के घर जाते नहीं फिर मक्खन चुराकर खायेंगे कैसे?

ग्वालिनि मोहि कहत क्यों आयो।
मेरो कान्ह निपट बालक, क्यों चोरि माखन खायो॥
× × × ×
'चतुर्भुज' लाल गिरिधर सों झूठी कहति बनाय।
मेरो स्याम सकुच को लरिका, पर घर कबहु न जाय॥[2]

रूपासक्ति और संयोग-वर्णन—

भगवान् कृष्ण का सुन्दर रूप उनकी मोहिनी छवि, उनकी बाँकी चितवन ने कुछ ऐसा जादू कर दिया है कि भक्त कवि का हृदय बेसुध सा बना रहता है। आँखों को ऐसी आदत हो गई है कि उन्हें बिना देखे कुछ नहीं सुहाता। उनका क्षण भर का वियोग एक युग के वियोग जैसा लगता है।

नैननि ऐसी बानि परी।
बिन देखे गिरिधरन लाल मुख, जुग भरि जात घरी॥
मारग जात उलटि तिन चितयो, मोतन दृष्टि भरी।
तबही तें लागी है एकटक, निमिष मरजाद टरी।
'चतुर्भुजदास' छुड़ावन कों हठि, ब विधि जतन करी।
ते गिरिधारि कों हरि कीनों, देह-दिसा बिसरी॥[3]

[1] रविशंकर शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १८।
[2] अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० २७९।
[3] वही, पृ० २८९।

अथवा

तब तें और कछू न सुहाय ।
सुंदर स्याम जर्बाह तें देखै, खरिक दुहावत गाय ॥
आवति हुती चली मारग सखि, हौं अपने सत भाय ।
मदन गोपाल देखि कें इकटक, रही ठगी मुरझाय ॥
बिसरी लोक-लाज, गृह कारज, बंधु-पिता अरु माय ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवर- घर, तन-मन लियौ चुराय ॥[१]

प्रेम की नानाविध चेष्टाओ, नाना मनोदशाओ का वर्णन 'चतुर्भुज दास' के काव्य मे मिलता है ।

स्याम ! सुन नियरो आयौ मेहु ।
भीजैगी मेरी सुरंग चूनरी, ओढ पीत पट देहु ।
दामिनी तें डरपति हौं मोहन ! निकट आपुनौ देहु ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिवर सो, बाढ़यौ अधिक सनेह ॥[२]

अथवा

ऐसेहि मोहू क्यो न सिखावहु ।
जैसे मधुर-मधुर कल मोहन, तुम मुरलिकाबजावहु ॥[3]

चतुर्भुज दास की भक्ति अपूर्व थी । उनके काव्य में एक तन्मयता पाई जाती है । उनके काव्य से लगता है जैसे उन्होने संस्कृत आदि की शिक्षा पाई थी ।

दामोदर दास हरसानी

वल्लभ सम्प्रदाय में इनका स्थान—

दामोदर दास हरसानी का स्थान वल्लभ संप्रदाय मे बहुत ही महत्व का है । "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में सबसे पहला स्थान इन्ही को दिया गया है । ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और वल्लभ-सप्रदाय के रहस्य से पूर्ण परिचित थे । स्वय महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें पुष्टि मार्ग के सिद्धान्त और भगवत-लीला-रहस्य से परिचित कराया था ।[४] ये वल्लभाचार्य

---

[१] अष्टछाप-परिचय, रूपासक्ति ५४, पृ० २८७ ।

[२] वही, प्रेमासक्ति ६२, पृ० २८९ ।

[3] वही, प्रेमासक्ति ६३, पृ० २८९ ।

[४] चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, सं० १९८५) पृ० ३ ।

के प्रथम और मुख्य शिष्य थे। स० १५४७ में ये महाप्रभु वल्लभाचाय क शिष्य हुए।[1] ये महाप्रभु के अत्यत प्रिय शिष्य थे। महाप्रभु इन्हें 'दमला कहा करते थे और श्री ठाकुर जी से यही प्रार्थना करते 'जो मेरे आगे दामोदर दास की देह न छूटे।'[2]

जीवन-वृत्त—

इनका जन्म स० १५२० के माघ वदी ४ को श्रीरंगपट्टन में हुआ था।[3] ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके और तीन भाई थे। इनके पिता का नाम वीरदास और इनकी माता का नाम यशोदा था। ये आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे थे। कहते हैं कि इनके पिता वाणिज्य के सिलसिले में श्रीरंगपट्टन छोड़कर (वडनगर) वहाँ आ बसे थे। वार्ता में इनके जीवन वृत्त के सबंध में बहुत कुछ नहीं मिलता। श्री द्वारकादास पारीख ने 'ब्रजभाषा के कुछ अप्रसिद्ध सुकवि' शीर्षक से ब्रजभारती (आषाढ, भाद्र, २००५ वि०) में इनके जीवन पर प्रकाश डाला है।

गोस्वामी विट्ठल नाथ और दामोदर दास—

कहते हैं कि जब श्री कृष्णदास अधिकारी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का श्रीनाथ जी के मंदिर में आना बन्द कर दिया था तब चन्द्र सरोवर पर छ मास तक उनके साथ उन्होंने सत्संग किया था। 'वार्ता के अनुसार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को सम्प्रदाय के रहस्य सिद्धान्त से परिचित करानेवाले[4] दामोदर दास हरसानी ही थे।

इनके कुछ पद—

इनकी रचनाओं तथा काव्य के सबंध वार्ता में कुछ नहीं कहा गया है। जो कुछ पद इनके मिलते हैं उनसे इनकी रचना माधुरी का परिचय प्राप्त हो जाता है। इन्होंने अपने पिता वीरदास के नाम से भी कई सुन्दर पद रचे हैं। इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं

---

[1] ब्रज भारती (आषाढ भाद्र, २००५ वि० स०, ७ वर्ष ६) पृ० ८।

[2] चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० २३।

[3] ब्रज भारती (आषाढ भाद्र २००५ वि०) पृ० ८।

[4] चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ० ६।

(१)　श्री नाथ जी को ध्यान मेरे निसिदिना री माई ।
मोहिनी मूरति सोहिनी सूरत चित लियो है चुराई ॥
लाल पाग लटकि भाल, चिबुर बेसर कंठमाल,
　　करन फूल मदहास लोचन सुखकारी ॥
मोर पोंछ सीस धरें मोतिन के हार गरें,
　　बाजूबन्द पहोंची कर मुद्रिका सुहाई ॥
छुद्र घंटिका जेहरि पग नूपुर बिछिया सुरेस,
　　अंग अंग देखि उर आनन्द न समाई ॥
मुरलिका अधर धरे श्याम ठाढे ब्रजयुवती,
　　मांह सप्त सुरन तीन ग्राम गोवर्धन राई ॥
निरख रूप अति अनूप छाके सुरनर विमान
　　वल्लभ-पद किंकर 'दामोदर' बलि जाई ॥

(२)　नमो नमो श्री भागवत पुरान ।
महा तिमिर अज्ञान बढ्यो जब प्रकट भये जग अद्‌भुत भान ।
जगे जीव निसि सोम अविद्या भयो प्रकास विमल विज्ञान ।
फूले अम्बुज श्रोता वक्ता मतिकर मंद मदन अभिमान ।
छूटे कठिन करम बंधन कै मिट्यो मोह सूझ्यो सब ज्ञान ।
'दामोदर' सुर नर मुनि गावत जय जय जय जय कृपानिधान ॥

(३) छप्पय—
कामधेनु को कहा, कहा कल्पद्रुम कीजै ।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि वारि, न्योछावरि दीजै ।
श्रीकृष्ण भजन निर्मोल दान दाता जग विट्‌ठल ॥
श्रीवल्लभ कुल अवतार नाम जाको श्री विट्‌ठल ॥
घर घरनि कहो 'विश्वास' सुनि, समुझि समुझि चित लाइये ।
द्विजवर नरेन्द्र गिरिवर धरन, श्रीविट्‌ठलेश पै जाइये ॥

रसखानि

जीवन वृत्त—

'रसखानि' हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिये अत्यत सुपरिचित है। रसखानि नामक दो कवि हो गए है लेकिन सुप्रसिद्ध रसखानि जो गोसाईं विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र थे वे सुजान रसखान है। दूसरे रसखान,

सैयद इब्राहीम पिहानी वाले थे। रसखान गोसाइं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनके शिष्य होने की बात "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में वर्णित है। 'वार्ता' के अनुसार ये एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे। एक दिन दो वैष्णवों की बात सुनकर कि अगर भगवान पर उनकी इतनी आसक्ति होती तो इसका उद्धार हो जाता। इसके बाद ही वे वृन्दावन पहुँचे और गोसाइं विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गए।[1] लेकिन सुजान रसखान[2] में वर्णित इनके जीवन चरित्र के अनुसार इनकी प्रेमिका ने व्यंग किया था इसी लिये ये वृन्दावन आए। 'सुजान रसखान' में एक दूसरी कहानी भी दी हुई है कि कहीं श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी वहीं पर इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति देखी और उस पर मुग्ध होकर ये वृन्दावन चले आये।[3]

जन्मतिथि, वंश-परिचय—

इनके जन्म-काल को लेकर बहुत मतभेद हैं। वियोगी हरि जी इनका जन्म संवत् १६१५ के लगभग मानते हैं।[4] प्रेम वाटिका' में एक दोहा आया है जिससे उनके जन्म संवत् का लोग कुछ अनुमान लगाते हैं।

> बिधु सागर रस इंदु सुभ बरस सरस रसखानि।
> प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरख बखानि॥[5]

इस दोहे के आधार पर प्रेमवाटिका का रचना काल संवत् १६७१ होता है। किशोरीलाल गोस्वामी के अनुसार इसी के २५ वर्ष पूर्व इनका जन्म मान लिया जा सकता है।[6] प्रेमवाटिका के दूसरे दोहे से यह ज्ञात होता है कि ये दिल्ली के पठान थे और बादशाह वंश के थे।

> देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
> छिनहिं बादसा-बंस की ठसक छांड़ि रसखान॥

रचनाएँ—

इन्होंने कितने ग्रंथ लिखे इसका ठीक पता नहीं चलता। इनके दो ग्रंथ 'सुजान रसखान और प्रेम वाटिका' अभी तक प्रकाश में आए हैं। लाल

[1] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ० २०९ ३०३।
[2] सुजान रसखान संपादक किशोरीलाल गोस्वामी, पृ० ९ १०।
[3] वही।
[4] ब्रजमाधुरी सार, पृ० १४७।
[5] सुजान रसखान, पृ० ८।
[6] वही, पृ० ८।

भक्त राम द्वारा सगृहीत एक और ग्रथ है जिसका नाम 'राग-रत्नाकर' है। इनके कवित्त और सवैयो में एक अपूर्व माधुरी है। उनसे एक ओर तो भक्ति से विह्वल इनके हृदय का पता चलता है तो दूसरी ओर इनकी काव्य शक्ति का।

पद—

उनके कुछ पद्य निम्नलिखित है।

एक समै मुरली धुनि मे रसखानि लियो कहुं नाम हमारो।
ता दिन तें परि वैरि बिसासिनी झांकन देत नहीं है दुवारो।
होत चावाव वचावो सु क्योकर क्यो अलि भेंटिये प्रान पियारो
दृष्टि परी तवहीं चटको अटको हियरे पियरे पटवारो।[1]
कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हम को चहि है।
निस द्यौस रहै संग साथ लगी यह सौतन तापन क्यों सहिहैं॥
जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि सदा हमको दहिहैं।
मिलि आओ सबै सखी भाग चले अब तो ब्रज में बांसुरी रहिहैं॥[2]
आजु सखी नंद नन्दन री तकि ठाढ़ो है कुंजनि की परछाहीं।
नैन विसाल की जोहन को सर वेधि गयो हियरा जिय माहीं॥
घायल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारत अंगन नाहीं।
तापर वा मुसकानि की डौड़ी ब्रज में अबला कित जाही॥[3]
हेरत बारहीं बार उतै तुव बावरी बात कहा धौ करैंगी।
जो कबहूँ रसखानि लखै फिर क्यो हू न बीर री धीर धरैंगी॥
मानि हैं काहू की कानि नहीं जब रूप ठगी हरि रग ढरैंगी।
याते कहूँ सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पैंड़ परेगी॥[4]
आली पगे जु रंगे रंग सांवले मोहें न आवत लालची नैना।
धावत हैं उतही जित मोहन रोके रुकें नहि घूंघट ऐना॥
कानन कौ कल नाहि परै सखी प्रेम सो भींजे सुनै बिन बैना।
भई मधु की मखियाँ रसखानि न नेह को बन्धन क्यो हू छुटैना॥[5]

---

[1] सुजान-रसखान, सवैया ४ पृ० १४।
[2] वही, सवैया ७, पृ० १५।
[3] वही, सवैया ३७, पृ० २५।
[4] वही, सवैया ५९ पृ० ३१।
[5] वही, सवैया ७६, पृ० ३७।

मेरो सुभाव चितैबे कौं माइ री लाल निहारि कै बंसी बजाइ।
वा दिन तें मोहि लागी ठगौरी सी लोग कहैं कोइ बावरी आइ॥
यौं रसखानि घिरयौ सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियराइ॥
जो कोउ चाहै भलो अपनो तो सनेह न काहू सो कीजियें माइ[1]

काहू सों माई कहा कहिये सहिये जु सोइ रसखानि सहाव।
नेम कहा जब प्रेम कियौ तब नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और कहा सखि क्यौं हू कहूं पिय देखन जावैं।
चेरिय सो ज गुपाल रच्यौ तो चलोरी सब मिलि चेरी कहाय॥[2]

मन लीनौं प्यारे चितै प छटांक नहिं देत।
यह कहा पाटी पढ़ी दल कौ पीछो लेत॥[3]

जेहि पाए बैकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥
इकअंगी, बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
मन प्रियहिं सवस्व जो, सोइ प्रेम प्रमान॥
लोक वेद-मरजाद सब, लाज काज सन्देह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह॥[4]

आस करन

भक्तमाल में वर्णित आसकरन जी का वृत्त—

आसकरन जी नरवरगढ़ के राजा थे। भक्तमाल के वार्तिक तिलक कार ने बतलाया है कि ये कूमवंशी (कछवाह) क्षत्रिय थे और इनके पिता का नाम भीमसिंह जी था तथा ये स्वामी कील्हदेव जी के शिष्य थे।[5] लेकिन 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये गुसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे।[6] द्वारकादास परीख ने इसका समाधान किया है। उनका कहना है कि यह सम्भव है कि ये पहले कील्हदेव जी के शिष्य रहे हों पर बाद में वे वल्लभ

---

[1] सुजान रसखान सवैया ७८ पृ० ३७।
[2] वही, सवैया ९६ पृ० ४३-४४।
[3] वही दोहा ४६, पृ० २७।
[4] प्रेमवाटिका, दोहा २८, २१ ७।
[5] नाभा जी कृत भक्तमाल, पृ० ८८४।
[6] द्वितीय खंड, पृ० १९०।

सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो गए।[1] 'भक्तमाल' के अनुसार ये श्रीसीतापति और श्रीराधावर दोनों के चरणकमलों का ध्यान लगाये रहते थे।[2]

उनके संबंध में नाभा जी ने लिखा है :

> धर्मशील गुनसींव महाभागौत राजरिषि।
> पृथीराजकुलदीप भीमसुत विदित कील्ह शिषि॥
> सदाचार अति चतुर, विमल बानी, रचना पद।
> सूर धीर उद्दार विनै भक्तन भजननि हद॥
> सीतापति राधानुवर, भजन नेम कूरम धर्यो॥
> (श्री) मोहन मिश्रित पद कमल 'आसकरन' जस विस्तर्यो॥[3]

जीवन-वृत्त और पद—

इनके सम्बन्ध में बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे पता चलता है कि ये संगीतज्ञ तथा मर्मज्ञ थे। इनकी भक्ति अपूर्व थी। इनके यहाँ संगीतज्ञों का सम्मान खूब होता था। तानसेन इनके यहाँ इनकी ख्याति सुनकर गए थे और तानसेन की सहायता से ही ये गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के यहाँ पहुँचे और उनके शिष्य हुए।[4] शिष्य होने के उपरान्त उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था।

> जै श्री विट्ठलनाथ कृपाल।
> कलि के महापतित अघरासी अपने करिकै किये निहाल॥
> पुरुषोत्तम निज कर ले दीने ऐसें दानी महा दयाल।
> 'आसकरन' को अपनो करिकै पुष्टि प्रमेय वचन प्रतिपाल॥[5]

कहते हैं कि एक बार बादशाह नरवरगढ़ में आया और इन्हें बुला भेजा। उस समय ये पूजा में लगे हुए थे। अतएव किसी ने जाकर इन्हें खबर नहीं दी। कहते हैं कि क्रोध कर बादशाह इनके मंदिर में पहुँचा। उसने देखा कि आसकरन जी पूजा में निरत भगवान् को प्रणाम करने के

---

[1] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (तृतीय खंड) विश्लेषणात्मक अध्ययन पृ० १६।

[2] नाभा जी कृत भक्तमाल, पृ० ८८४, तथा पृ० ८५५।

[3] भक्तमाल, छप्पय १७४, पृ० ८८३-८८४।

[4] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (द्वितीय खंड) पृ० १८९।

[5] वही, पृ० १९०।

झुके हुए हैं। जाने म लिये उसने अपनी तल्वार धीरे से चलाई। उससे आसकरन जी की एँडी थोडी सी कट गई लेकिन जस उन्हें कुछ पता नहीं चला। पूजा समाप्त होने पर उन्होंने बादशाह को देखा और आवभगत की।

एक बार श्री गुसाइ जी ने आसकरन जी को आज्ञा दी "जो आसकरन! सेन समें पोढायवे के कीर्तन तुम करिया।' तब आसकरन जी ने निम्नलिखित कीर्तन गाया था।

> तुम पोढो हों सेज बनाऊँ।
> चापो चरन रहों पाटीतर मधुरे सु केदारो गाऊँ।
> सहचरी चतुर सबे जुरि आई दपति सुख ननन दरसाऊ।
> 'आसकरन' प्रभु मोहन नागर यह सुख श्याम सदा हो पाऊ॥[1]

गदाधर दास द्विवेदी

रचनाएँ—

गदाधरदास द्विवेदी के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। उनके तीन ग्रथो का पता चलता है

(१) सम्प्रदाय प्रदीपालोक (२) हरिभजन मणि मजरी तथा (३) भगवत्तत्व दीपिका। याद्यमुख के अत में गदाधर दास ने सक्षेप में अपना थोडा सा परिचय दिया ह। उनकी पुस्तका के आधार पर उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया ह।

जीवन-वृत्त—

इनके पितामह का नाम प० लक्ष्मण द्विवेदी और पिता का नाम प० श्रीपति द्विवेदी था। इनके जन्म सवत् का ठीक ठीक पता नहीं चलता। ये सतीपुर ज्ञातीय (साचीहर या सम्पौरा) ब्राह्मण थे। इनका निवास स्थान अर्बुदाचल से चालीस कोस पर, एकलिंग शिवक्षेत्र से नैऋत्य कोण में अघोर गिरि (?) के समीप था। यहाँ पर 'श्रीश्यामसुन्दर जी' का मदिर था। यही पर गदाधर दास अपने परिवार के साथ रहते थे। उनका जीवन निर्वाह कथा वार्ता (पौराणिक वृत्ति) से ही होता था। कहते ह कि यही पर उन्होंने 'भगवत्तत्व प्रदीपिका' की रचना की थी। इस ग्रथ की प्राजल लेखन शैली के साथ तुलना करने पर

---

[1] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृ० २०३।

'सप्रदाय-प्रदीप' ग्रन्थकार की प्रथम कृति जैसी मालूम होती है। इसके बाद वाले ग्रथो मे उत्तरोत्तर सुचारुता के दर्शन होते है। इनके और अन्य संस्कृत ग्रथ का पता अभी तक नही चला है।

गदाधर नाम के और अन्य भक्त—

गदाधर दास द्विवेदी के अलावा एक और गदाधर का उल्लेख मिलता है। दूसरे गदाधर महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। ये कपिल सारस्वत ब्राह्मण थे और 'कडा' ग्राम के निवासी थे। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में १३वी वार्ता इन्ही गदाधर की है। इनके कीर्तनो में 'गदाधर मिश्र' की छाप है जब कि गदाधर दास द्विवेदी की रचनाओ में 'गदाधर दास' की छाप है। गदाधर दास का जन्म सभवत १५७०-८० के बीच है।[1]

गदाधर दास द्विवेदी के विद्यागुरु राणा व्यास थे। राणा व्यास के ये सजातीय थे, राणा व्यास, महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे।[2] 'वार्ता' में इन्हें राणा व्यास साचीरा ब्राह्मण 'गोवरा का वासी' कहा गया है।

दीक्षा—

पुष्टि सप्रदाय की दीक्षा गदाधर दास द्विवेदी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से ली थी। ये सप्रदाय के कट्टर अनुयायी थे। सप्रदाय में शुद्ध स्वरूप की रक्षा पर पूर्ण जोर देते थे। इनके कीर्तनो का सम्प्रदाय में बहुत समान है। सप्रदाय के प्रधान मदिरो में आज भी इनके कीर्तनो का उसी प्रकार समादर होता है। सभवत गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को ये स्वरचित कीर्तनो को गाकर सुनाया करते थे। अष्टछाप के प्रसिद्ध कीर्तनकारो की प्रतिद्वन्दिता में इनके कीर्तनो का समादर होना कुछ कम महत्व नही रखता।

इनके काव्य का वैशिष्ट्य—

ये सस्कृत और भाषा-साहित्य के अच्छे विद्वान थे। ये प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। पाडित्य के साथ ही साथ इन्होने भक्त-हृदय भी पाया था। इनके पद अत्यन्त सरस है। इनकी वर्णन शैली बडी आकर्षक है। इनके काव्य में भाषा-सौष्ठव, भाव-लालित्य तथा अपेक्षित कोमल हार्दिक दृष्टि का सुंदर

---

[1] सप्रदाय प्रदीपालोक (काकरौली), पृ० ५।

[2] चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृ० १५६।

सयोग हुआ है। लगता है जसे भाषा-साहित्य पर सस्कृत-साहित्य की अपेक्षा इनका अधिक अधिकार था।

पद—

इनके निम्नलिखित पद में भगवान् के प्रति इनकी आत्मीयता अत्यत सरस ढग से व्यक्त हुई है।

सु दर श्याम सुजान सिरोमणि देहु कहा कहि गारो जू।
बडे लोग के औगुन बरनत सकुच होत जिय भारी ॥१॥
को करि सके पिता को निरणय, जाति पाँति को जानें।
जिनके जिय जसी बनि आव तसी भाति बखानें ॥२॥
माया कुटिल नटी तन चितयो कौन बडाई पाई।
उन चचल सब जगत वियोगो जहृ-तह भई हसाई ॥३॥
तुम पुनि प्रगट होइ बारे तें कौन भलाई कीनी।
मुक्ति-वधू उत्तम जन लायक है अधमन को दीनी ॥४॥
बसि दस मास गभ माता के उन आशा करि जाये।
सो घर छाँडि जीभ के लालच ह्व गये पूत पराये ॥५॥
बार ही सो गोकुल गोपिन के सूने गृहन तुम डाटे।
ह्व निशक तह पठि रव लो दधि के भाजन चाटे ॥६॥
आपु कहाय बडे के ढाटा गाल कृपन लों माँग्यो।
मान भग कर दूजे याचक नक सकोच न लाग्यो ॥७॥
सब कोइ कहत नद बाबा के घर भरयो रतन अमोले।
गरे गुजा, सिर मोर-पखौआ गायन के सग डोले ॥८॥[1]
राज सभा को बठनहारो कौन त्रियन सग नाचे।
अग्रज सहित राजमारग में कुबजा देखत राचे ॥११॥
अपनी सहोदरा आपुहि छल करि अर्जुन सग भजाई।
भोजन करि दासी सुत के घर जादौं जाति लजाई ॥१२॥
ले ले भजे राजन की कन्या, यह धौ कौन भलाई।
सत्यभामा जु गौत में ब्याहीं उलटी चाल चलाइ ॥१३॥
बहनि पिता की सास कहाई नेक हू लाज न आई।
एते पर दीनी जू विधाता अखिल लोक ठकुराइ ॥१४॥

---

[1] सप्रदाय प्रदीपालाक, पृ० १०।

मोहन वशीकरन चट चेटक यंत्र मंत्र सब जाने ।
ताते भले भले करि जाने भले भले जग माने ॥१५॥
बरनों कहा यथामति मेरो वेद हू पार न पावे ।
दास गदाधर प्रभु की महिमा गावत ही उर आवे[1] ॥१६॥

इस पद की मग्नता अपूर्व है । इस पर मुग्ध होकर गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी महाराज अहमदाबाद वाले ने संस्कृत-टीका लिखी है जो अभी तक अप्रकाशित है ।

झूलन का भी उतना सुन्दर, सरस वर्णन गदाधर दास ने किया है ।

झूलत नागरी नागर लाल ।
मद-मंद सब सखी झुलावत गावत गीत रसाल ॥१॥
फरहरात पट नील पीत को अचरा कंचन माल ।
मानों परस्पर उमगि ध्यान छवि प्रकट भये तिहि काल ॥२॥
अलसलान अति पिय के सीस पर लटकत बेनी लाल ।
मानो मुकुट बरहा बिरही भये चोली थाक बेहाल ॥३॥
मोतिन-मालप्रिया के उर की पिय-तुलसी-दल-माल ।
मानो सुरसरी मिली जमुना तट मानो बिहग मराल ॥३॥
सावल गौर परस्पर अति छवि सोभा बिसद बिसाल ।
निरखी 'गदाधर' कुंवर कुंवरी छवि सालो भर्‌यो रस-जाल[2] ॥५॥

नागरी दास

जीवन-वृत्त—

नागरीदास कृष्णगढ के राजा थे । इनका असली नाम महाराज जसवंत सिंह जी था । वे अनन्य भक्तो में हुए । वैसे तो "नागरीदास" नाम के और कई भक्त हुए हैं । वे वल्लभकुल के गोस्वामी रणछोड जी के शिष्य थे। बहुत दिनो तक राजकाज के झंझटो को लेकर उनका जीवन अशान्त बना रहा । पिता की मृत्यु के बाद दिल्ली के बादशाह ने इन्हें कृष्णगढ़ का राजा बनाया । दिल्ली से कृष्णगढ पहुँचने के पहले ही इनके भाई ने जोधपुर-नरेश की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया । बादशाह ने इनकी सहायता की लेकिन ये असफल रहे । बाद में मरहठो की सहायता से उन्होने

[1] सम्प्रदाय प्रदीपालोक, पृ० १० ।
[2] वही, पृ० ९ ।

राज्य पर अधिकार जमाया। लेकिन यह सब कुछ इनकी प्रकृति के विरुद्ध था। अन्त में राज्य का त्याग कर वृन्दावन चले गए। इनके लिये उस राज्य का कोई मूल्य नहीं था। फिर भी राज्य का लोभ इन्हें न घर दबाये इसके लिये सचेष्ट रहते।

> म अपने मन-मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
> वृन्दावन की ओर तें, मति कबहू फिरि जाय।

इनकी शादी भावनगर के यशवत सिंह की कन्या से हुई थी। इनकी उपपत्नी बनीठनी जी इनके साथ ही वृन्दावन में रहती था। और अन्त तक इनके साथ रहीं। वे काव्य रचना में कुशल थीं। उनकी कविताओं में रसिक विहारी की छाप है। कवि आनन्द घन इनके गहरे मित्र थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२ सवत १७५६ में हुआ था।[१]

नागरीदास की भक्ति—

वृन्दावन के प्रति इनकी बडी आसक्ति थी। "कुंजविहारी के दर्शन बिना एक पल के लिये भी उन्हें चैन नहीं मिलता। वृन्दावन में जब ये 'नागरी दास' होकर गए तो सन्तों ने कैसा कृपा की इसका वर्णन उन्होंने स्वय किया है। उनका व्यौहारिक नाम अर्थात कृष्णगढ नरेश महाराजा सावत सिंह, सुनकर कोई नहीं आया।

> सुनि व्यौहारिक नाम कों, ठाढ़े दूरि उदास।
> दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम "नागरी दास"॥

नागरीदास की रचनाओं का दन्य भगवान् के प्रति उनकी परम आसक्ति का परिचय सर्वत्र मिलता है। वृन्दावन जो रसिक विहारी और रसिक विहारिनी' का क्रीडास्थल है वह उनके लिये सब कुछ है। स्वर्ग उसकी क्या समता कर सकता है?

रचनाएँ—

कहते हैं कि नागरीदास रचित ७५ ग्रंथ हैं। उनमें कुछ के नाम यो हैं गोपी प्रेम प्रकाश, व्रजसार, भार-लीला, प्रीतिरस-मजरी, जुगुल रस माधुरी भजनानन्दाष्टक, विहार चन्द्रिका, दोहन-आनन्द, फाग विलास, फूल विलास,

---

[१] व्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण) पृ० १८३।

ग्रीष्म-विहार, इश्क चमन, मजलिस-मंडन, रास के कवित्त, रैन रूपा रस[1] (कृष्णचन्द्र का विलास वर्णन), रास रस लता[2] (कृष्णचन्द्र की रासलीला विषयक ग्रंथ), भक्तिमग दीपिका, जुगुल भक्ति विनोद, वनजन-प्रशंसा आदि।

सूफी प्रभाव और अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग—

कविता में नागरीदास जी ने कई प्रकार से अपने नाम का उपयोग किया है। कहीं नागरीदास और कहीं नागरी। नागर और नागरिया का भी उन्होंने प्रयोग किया है। उनकी कितनी रचनाओं में सूफियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। फारसी अरबी के शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है।

राधाकृष्ण-लीला—

राधाकृष्ण की लीला का स्मरण, उनकी भक्ति के द्वारा ही सब कुछ संभव हो सकता है। वेद, पुराण, गंगास्नान से कुछ नहीं होने का। राधा कृष्ण की अनन्य भक्ति को ही वे सब कुछ मानते हैं।

> काहे कोरे नाना मत सुनै तू पुराननके,
> 　　तेंही कहा तेरी मूढ़, गूढ़मति पंग की।
> वेद के विवादनि को पावेगो न पार कहूं,
> 　　छांड़ि देहि आसा सब दान-न्हान गंग की॥
> और सिद्ध सोधे अब "नागर" न सिद्ध कछू,
> 　　मानि लेहि मेरी कही वारता सुढंग की।
> नाहि व्रज मोरे, कोरे मन को रंगाइ लै रे,
> 　　वृन्दावन-रेन रचो गौर-स्याम-रंग की॥[3]

व्रजभूमि से प्रेम—

व्रज के लोगों ने उन्हें ठग लिया। यहाँ ठग ही ठग बसते हैं। यहाँ की भूमि, पेड़ लताएं आदि सभी ठग हैं। यहाँ आने पर लोगों के गले में प्रेम का फंदा लग जाता है जिससे यहाँ से बचकर जाना मुश्किल है। अतएव नागरीदास का कहना है कि कोई भूल कर भी यहाँ न आवे।

---

[1] हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट्स (१९०१) पृ० ९४।　　[2] वही, पृ० ९६।

[3] व्रजमाधुरी सार, (अष्टम संस्करण) पृ० १८९-९०।

ब्रज के लोग सब ठग महा ।
आप ठग, ठग के उपासक, अधिक कहिए कहा ॥
कनक-बीज सी बचन रचना देत तनिक चखाय ।
बावरी ह्वै रहत सो फिरि धाम तन बिसराय ॥
भूमि ठग, द्रुम, देस, ठग दूत, ठगें स्याम सुजान ।
राखे सयानप सोउ इनके, और कौन समान ॥
इहाँ आवत हो परत दृढ़ प्रेम, की गर-पास ।
भूलि ह्या कोउ आइयो मति कहत "नागरिदास ।"[1]

बाँसुरी से उनकी प्रार्थना है कि वह मौन होकर रहे नहीं तो बहुतों का घर, परिवार छूट जाता है ।

मुख मूंदे रहु मुरलिया, कहा करति उतपात ।
तेरे हांसी घर बसी, औरन के घर जात ॥
अरी छिमाकर मुरलिया, परत तिहारे पाय ।
और सुखी सुनि होत सब, महादुखी हम हाय ॥[2]

इश्क चमन—

इश्क-चमन आदि में सूफी प्रभाव दीख पड़ता है

कोई न पहुंचा यहाँ तक, आसिक नाम अनेक ।
इश्क-चमन के बीच में, आया मजनू एक ॥
सब मजहब सब इल्म अरु, सब ऐश के स्वाद ।
अरे, इश्क के असर बिन, ये सबहीं बरबाद ॥[3]

(ख) निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि

श्री भट्ट जी

भक्तमाल में श्री भट्ट जी का वृत्तान्त—

श्री भट्ट जी निम्बार्क सम्प्रदाय के अनन्य भक्तों एवं आचार्यों में हैं । इस संप्रदाय के भक्तों में इन्होंने सर्वप्रथम ब्रजभाषा में काव्य रचना की । यही कारण है कि इनका 'युगल शतक' ग्रंथ निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्तों में 'आदि

[1] वही, पृ० १०६-७ ।
[2] ब्रजमाधुरी सार, शृंगार सागर, ५८-५४ पृ० २०२ ।
[3] वही, दोहा ७२, ७० पृष्ठ २०४ ।

वाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके 'युगल शतक' ग्रंथ का प्रकाशन म० पं० श्रीव्रजविहारीशरण, मु० सुपरा पो० मऊजि, गया ने विक्रमीय संवत् २००९ में कराया है। इसमे युगल-मूर्ति की लीला का वर्णन है। सम्प्रदाय के परपरागत शास्त्रीय भावो को ध्यान में रखकर इस ग्रंथ के पदो की रचना हुई है। इनके सबध मे नाभा जी कृत 'भक्तमाल' मे निम्नलिखित छप्पय मिलता है:

श्री भट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥
मधुर भाव संमिलित ललित लीला सुवलित छबि ॥
निरखत हरखत हृदे प्रेम बरसत सुकलित कवि ॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि ऊदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित ॥
आनन्द कन्द श्रीनन्द सुत श्री वृषभानुसुता भजन।
श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥[1]

युगल शतक—

"युगल-शतक" में सौ पद हैं और इनका अर्थ भिन्न-भिन्न रागो में सकलित पदों द्वारा विशद् किया गया है। इस ग्रंथ में छ प्रकार के सुखो का वर्णन है: सिद्धान्त सुख, व्रज-लीला सुख, सेवा सुख, सहज सुख, सुरत सुख, तथा उत्साह सुख। निम्बार्क सप्रदाय के सिद्धान्तो एव तत्वो को समझने में यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी है।

युगल मूर्ति का सरस वर्णन—

निम्बार्क सप्रदाय में युगल मूर्ति की उपासना का विधान है। युगल मूर्ति की लीलाओ का अत्यत सुन्दर और सरस वर्णन श्री भट्ट जी ने किया है। युगल-शतक मे जिन लीलाओ एवं रसो का वर्णन है उसे समझने के लिये साधक का प्रेमपूर्ण हृदय चाहिए। साधारण पाठको के लिये वह नही है। श्रीभट्ट जी के पदो मे एक ओर काव्य की मधुरिमा है तो दूसरी ओर भक्त हृदय की विह्वलता और रस-स्निग्धता।

चमत्कार की कहानियाँ—

भक्तो में इनका खूब समादर है। ये एक उच्चकोटि के भक्त माने जाते है। कहते है कि भगवान् इनकी इच्छा पूरी करने के लिये इन्हे नित्य नयी नयी लीलाए दिखाया करते थे। कहते है कि एक बार भावावेश में वे

[1] नाभा जी कृत 'भक्तमाल छप्पय संख्या ४३०, पृ० ५७०।

मल्हार राग अलापने लगे और भगवान् और स्वामिनी जी का भीगते हुए देखा भगवान ने जसे उनकी इच्छा पूरी की। इस सबंध में इनका निम्नलिखित पद प्रचलित है।

ठाढ़े गाढ़े कुजतर, बाढे मैन मरोर।
भीजत कब इन दगन ते, देखौं जुगलकिशोर।
भीजत कब देखो इन नना।
स्यामा जू की सुरग चनरी, मोहन को उपरना॥
जुगल किशोर कुजतर ठाढे, यतन कियो कछु मना।
उमडो घटा चहू दिसि थोमट जुरि आइ जल सना॥[1]

श्री भट्ट जी के गुरु—

श्री "भट्ट" जी केशव काश्मीरी जी के शिष्य थे।[2] वसे नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में उन्हें 'निम्बार्कीय' का शिष्य कहा गया है तथा श्री परशुराम देवाचार्य को श्री भट्ट जी का शिष्य बतलाया गया है। खोज रिपोर्ट की यह सूचना बिलकुल गलत है।[3] इनके जन्म काल को लेकर भी बहुत से मतभेद हैं। वसे अधिकांश लोग मानते हैं कि उनका जन्म विक्रमीय संवत् १५९५ के लगभग हुआ।

पद—

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं। इन्होंने युगल मूर्ति को ही अपना आराध्य बतलाया है

जनम जनम जिनके सदा हम चाकर निशि भोर।
त्रिभुवन पोषण सुधाकर, ठाकुर युगल किशोर॥

पद—

युगल किशोर हमारे ठाकुर।
सदा सवदा हम जिनके है जनम जनम घर जाये चाकर॥
चूक परे परिहरहिं न कबहू सबही भांति दया के आकर।
जै श्री भट्ट प्रगट त्रिभुवन में प्रणतनि पोषण परम सुधाकर॥

---

[1] युगल शतक उत्साह सुख, वर्षा ऋतु, ८८।
[2] भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३२२ तथा व्रजमाधुरी सार पृ १०८।
[3] काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (सन् १९३५ ३७ ई०) विवरण पत्र १६१।

उनके लिये सबसे बढकर भाग्य की बात यह है कि—

"वृन्दा विपिन विलास" को बराबर देखते रहें।

जहा जुगल मंगल मयो, करत निरन्तर वास।

सेऊ सो सुख रूप श्री, वृन्दाविपिन विलास ॥

सेऊ श्री वृन्दा विपिन विलास ॥

जहां युगल मिलि मंगल मूरति करत निरन्तर वास।

प्रेम प्रवाह रसिक जन प्यारे कबहुं न छाडत पास।

कहा कहो भाग की (जै) श्री भट, राधाकृष्ण रस चास ॥[1]

खोज रिपोर्ट मे उनके कुछ पद सगृहीत है। सयोग शृंगार के दो पद दिए हुए है तथा अन्य तीन पद शृगार लीला के ही है।

संयोग शृङ्गार—

उठत भोर लाल जू के सग ते,
कंचुकि कसति राधिका प्यारी,
खिसि खिसि परत नीलपट सिरते,
ससि वदन नव जोवन वारी,
मान भावती लाल गिरधर की,
रचि विधाता सुहाय सवांरी,
जै श्रीभट सुरत रंग भीनौं,
प्रिया सहित देखौ निकुंज बिहारी ॥[2]

श्री राधा जी के प्रेम का वर्णन कौन करे जिनके वश में भगवान् है।

श्री राधे तेरे प्रेम की कापे कहि आवै,
तेरी श्री गोपाल सौं तों ये बन आवै,
मन वच क्रम दुरगम किसोर ताहि चरनन छावै।
कहै श्री भट मति वृषभान जे प्रताप जनावै ॥[3]

श्री भट्ट जी ने दुलहा-दुलहिन के रूप मे कृष्ण और राधा का वर्णन किया है।

---

[1] युगल शतक, सिद्धान्त सुख, पद सख्या ७।

[2] खोज रिपोर्ट (सन् १९३५-३७ ई०) विवरण पत्र सख्या १६१ राग विभास।

[3] वही राग विलावल।

रग रगीले गात के, सग बराती ग्वाल ।
दूल्ह रूप अनूप ह्व, नित विहरत नदलाल ।
लस आली नित विहरत नदलाल ।
रग रगीले अग अग कोमल, सग बराती ग्वाल ।
दूलह श्री ब्रजराज लाडिलो, दुलहिन राधा बाल ॥
ज श्री भट्टवल्लभी जुग के, गावत गीत रसाल ॥[1]

मान—

श्री राधा ने मान किया है। सखी उन्हें समझा रही है।

भामिनो तो जु सुभाव को, कछु गति समझी हो न ॥
पिय तोको सवस दियो, कियो मान विधि कौन ।
मान अवसान कछू नहीं, भामिनी कसे कोनों ।
न दलाल गोपाल नें तोहि सवस दीनों ॥
अब लों कछु न दुरावती कहि का रग भीनो ।
कह्यो श्री भट कोमल कुवरि, सहचरि सो भीनों ॥[2]

रूपासक्ति—श्रीकृष्ण, श्री राधा जी के रूप को देखकर विभोर ह

हिय के हित साध सव, बांधे सर आधे जू ।
नन धरे फल आजु हों, पाये हरि राधे जू ॥
नन धरे फल आजु हो, पाये हरि राधे ।
तिरछी चितवन काह को, परी रूप अगाधे ॥
निरखि निरखि वीचो झकोर, हिय के हित साधे ।
ज श्री भट लखि छवि लाडिली बाधे लट आधे ॥[3]

कृष्ण, राधा जी का शृङ्गार कर उनकी सेवा में लगे हुए ह

शोभा निधि सुख सिद्धि रिधि, राधा छवि को धाम ।
जहां हितु हित सज्या सजी, श्री भट निज कर स्याम ॥
निज कर अपने श्याम सँवारो ।
सुखद सेज राजा माधव म दिर, सोभा निधि रिधि सिद्धि महारी ॥
हित के हेत हरषि सु दर वर अति ही अनूप रचि रुचिकारी ॥
ज श्री भट्ट करत परिचर्य्या, रिझवत प्राण वल्लभा प्यारी[4] ॥

---

[1] युग शतक, ब्रजलीला के प- राग विहागरो, सख्या १९ ।

[2] वही, पद सख्या २७ ।

[3] वही पद सख्या ३२ । [4] वही, ताल चपक सख्या ५० ।

श्री राधा का रूप-वर्णन नही हो सकता जिस पर कृष्ण रीझे हुए है :

राधे तेरे रूप को, पटतर कहिये काहि ।
सर्वस तजि रसवश भये, नैन कोर तन चाहि ।।
नेंक नैन की कोर मोरि मोहन वश कीनें ।
(श्री) राधे तेरे रूप की पटतर को दीनें ।
कमल कोश अलि ज्यो चलै, तारे रंग भीने ।
(जै) श्रीभट तन अंजन छुवै, लालन लवलीनें ।।[1]

हरि व्यासजी

हरिव्यास जी का निम्बार्क संप्रदाय में महत्व—

हरिव्यास जी, श्री भट्ट जी के परम प्रिय शिष्य थे । निम्वार्क सप्रदाय के भक्तो मे इनका प्रमुख स्थान है । इनका जन्म चौदहवी शताब्दी के आरंभ में हुआ था ।[2] इनकी जन्म भूमि मथुरा थी जो इस समय निम्वार्क सप्रदाय का गद्दी स्थान था । ये गौड-ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे । ये सप्रदाय की इक्कीसवी पीढी में पड़ते हैं । संप्रदाय की दृष्टि से इनका स्थान अत्यन्त महत्व का है । वल्लभ-संप्रदाय मे जो स्थान सूरदास का है वही स्थान इनका निम्वार्क सप्रदाय में है । इनके सवध मे नाभा जी ने निम्नलिखित छप्पय लिखा है :

खेचर नर की शिष्य, निपट अचरज यह आवे ।
विदित वात ससार संतमुख कीरति गावें ।।
वैरागिन के वृन्द रहत संग श्याम सनेही ।
ज्यो जोगेश्वर मध्य मनो सोभित वैदेही ।।
श्री भट्ट चरण रज परस तें, सकल सृष्टि जाको नई ।।
हरिव्यास तेज हरि भजवल, देवी को दीक्षा दई ।।[3]

भक्तमाल में वर्णित जीवन-वृत्त—

वार्तिक तिलक में वतलाया गया है कि आकाश मे चलने वाली देवी मनुष्य की शिष्या हुई, यह अति आश्चर्य की वात है । इसकी टीका में प्रियादास जी ने कवित्त में वह कहानी वतलाई है जिसमे देवी के हरिव्यास जी की शिष्या होने का प्रसग है । उसके अनुसार हरिव्यास जी अन्य सन्तो

[1] युगशतक, सहज सुख, राग राम सो, ताल चम्पक सख्या ६५ ।
[2] महावाणी-प्रकाशक ब्रह्मचारी विहारी शरण ।
[3] भक्तमाल, छप्पय स० ७७, पृ० ५७१ ।

के साथ विचरते हुए 'चटयावल" गाँव में पहुचे। वहाँ एक सुन्दर वाटिका में स्नान पूजा के बाद इन्होंने रसोई बनाने का विचार किया। इतने में किसी ने उसी वाटिका में देवी के स्थान पर बकरा मार कर देवी को चढाया। यह देख कर सन्तो ने निश्चय किया कि 'यहाँ प्रसाद की तो बात क्या, जल तक भी नहीं पीना चाहिए।" कहते है कि सन्तो को भूखा-प्यासा देखकर देवी रात में आई और कारण जानकर हरिव्यास जी की शिष्या हो गई। इसके बाद वहाँ के मुखिया आदि बहुत लोग हरिव्यास जी के शिष्य हो गए। एक श्वपच भी उनका शिष्य बना।[1] कहते है कि आज भी चटयावल ग्राम में वैष्णवी देवी का मदिर है। बलदेव उपाध्याय ने इसका नाम 'गढयावल" लिखा है[2] और महावाणी[3] में चट-थावर। यह पजाब प्रान्त में है।

हरिव्यास जी का काल—

इनका समाधि स्थान मथुरा में नारदटीला है। "महावाणी[4]" के अनुसार नारदटीला पर श्री भट्ट जी तथा इनकी चरण-पादुका है। मिश्रबन्धु विनोद में इनका विद्यमान सवत् और ग्रन्थों के नाम अशुद्ध हैं। बबई के वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'भक्तमाल' में भी इनके सबध में जो लिखा गया है वह गलत है। उसमें इन्हें गृहस्थ कहा गया है और ओडछा वाले हरिराम जी व्यास से मिला दिया गया है। श्री हरिव्यास देव जी विक्रमीय सवत् १५२५ तक विद्यमान थे।

काशी सरस्वती भवन (पुस्तकालय) में 'एक पुस्तक श्री नृसिंह परिचर्या है जिसके अन्त में लिखा है कि इस पुस्तक को वि० स० १५२५ में श्री हरिव्यास देव जी ने अपने हाथ से लिखा था[5]। अभी तक इनके आविर्भाव तथा तिरोभाव के समय का निश्चित पता नहीं चला है फिर भी इतना तो निश्चित है कि वि० स० १४५० से लेकर वि० स० १५२५ के बीच श्री हरिव्यास देव जी वर्तमान थे।

शिष्य-सम्प्रदाय—

इनके बहुत से शिष्य थे, जिनमें प्रमुख बारह ये हैं

[1] भक्तिमाल, पृ० ५७२-५७३। [2] भागवत-सम्प्रदाय, पृ० ३२४।

[3] प्रकाशक ब्रह्मचारी विहारीशरण।

[4] महावाणी, प्रकाशक, ब्रह्मचारी विहारीशरण।

[5] यह सूचना महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज के नोटबुक से उद्धृत है।

(१) श्री स्वभूदेव जी, (२) श्री बोहितदेव जी, (३) श्री हृषीकेशदेव जी, (४) श्री माधवदेव जी, (५) श्री केशवदेव जी, (६) श्री नागर गोपालदेव जी, (७) परशुराम देव जी, (८) श्री गोपाल देव जी, (९) श्री मदन गोपाल देव जी, (१०) श्री घमंडदेव जी, (११) श्री मुकुन्द देव जी। महावाणी में सिर्फ इतने ही नाम गिनाये गये हैं।[१] बलदेव उपाध्याय[२] ने जिन बारह शिष्यों के नाम गिनाए हैं उनमें घमंड देव जी का नाम नहीं है। उस सूची में उद्धवदेवाचार्य तथा वाहुबलदेवाचार्य के नाम हैं जो 'महावाणी' की उपर्युक्त सूची में नहीं हैं। कहते हैं कि इस सम्प्रदाय के ये सर्वप्रथम उत्तर भारतीय आचार्य थे। निम्बार्क संप्रदाय के अन्तर्गत ये "रसिक-सम्प्रदाय" के प्रवर्तक थे। यह शाखा इतनी प्रभावशाली हुई कि इस सम्प्रदाय के सन्त लोग "हरिव्यासी" के नाम से प्रख्यात हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का शृंगारी रूप ही इस संप्रदाय में उपास्य है। इनके बारह शिष्यों ने अलग-अलग अपने नाम से बारह गद्दियों की स्थापना की। उन गद्दियों में आठ के पीठ तो उपलब्ध हैं लेकिन शेष का पता नहीं चलता। इनमें स्वम्भूदेव जी और परशुराम देव जी के अनुयायी वैष्णव विशिष्ट हैं। उनके द्वारा स्थापित भारत में अनेक मठ-मंदिर हैं।

महावाणी—

इनकी सुप्रसिद्ध रचना "महावाणी" है जो ब्रजभाषा में लिखी गई है। अपने गुरु श्री भट्ट जी के आदेश से उन्होंने "युगल शतक" का भाष्य लिखा, यही 'महावाणी" है। "युगल शतक" में पाँच सुखों का वर्णन है वैसे ही "महावाणी" में पाँच सुख हैं। "महावाणी" में काव्यत्व है जो युगल शतक में नहीं है। "महावाणी"[३] के संपादकों (श्री निम्बार्कमाधुरी तथा श्री निम्बार्क मयूख) के अनुसार 'जुगल शतक में ब्रज रस है, श्री महावाणी में शुद्ध नित्य विहार रस है, ब्रज एवं ब्रज से सबंधित राधाकृष्ण का वर्णन नहीं है। ब्रज वृन्दावन धाम पृथ्वी पर अवस्थित रहते हुए भी इसके उत्पत्ति प्रलयादि कारणों से अभिन्न है।' श्री आचार्य पाद ने कई संस्कृत ग्रंथ भी लिखे हैं। उनके नाम यों हैं - सिद्धान्त रत्नांजलि, अष्ट याम, श्री निम्बार्क अष्टोत्तर नाम की टीका, तत्वार्थ पचक, पच संस्कार निरूपण। इनमें पिछले दो अमुद्रित हैं।

---

[१] महावाणी (भूमिका)। [२] भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३२५।
[३] प्रकाशक—ब्रह्मचारी विहारीशरण।

"महावाणी" के पाँच सुख निम्नलिखित हैं [1]

		पृष्ठ सख्या	पद सख्या
(१)	सेवा सुख	२४– ५०	८४
(२)	उत्साह सुख	५१–१२८	१८३
(३)	सुरत सुख	१२९–१४९	१००
(४)	सहज सुख	१५०–१७०	१०२
(५)	सिद्धान्त सुख	१७१–१९४	३८

हरिव्यास जी ने अत्यन्त सुन्दर काव्य की रचना की है। अपना नाम ये हरिप्रिया' रखते थे।

पदों की सरसता—

इनके पदा की सरसता की बानगी निम्नलिखित पदा स मिलती है।

रसिक विहारी लाल की, जीवन प्रान अधारि।
रसिक रसीली रस भरी, अलबेली सुकुमारि॥
रसिक रसीली राधा रस ही सों भरी ह।
रसिक विहारी जू की जीवन की जरी ह॥
अलबेली जू में ऐसो अधिकता ह कोइ।
पीवत ही पीवत लाल तपति न होइ॥
सनी ह सुहाग भाग प्रेमरगमगी ह।
प्रीतम पियारे सग सब निसि जगी ह॥
कौन कौन अग की अनूपता जू कहिये।
श्री हरिप्रिया दासी होइ सदा सग रहिये॥[2]

राधा और कृष्ण के प्रेम का एक दूसरा चित्र

एक रग में रगे दोउ एक प्रान द्व गात।
बदन विलोकत परस्पर छिन बिछुरे न सुहात॥
बदन बिलोकन में न अघात।
पल न लगे पग रहे चकित ह्व डग भरि चल्यो न जात॥
दोउ दोउन के प्रान जीवन धन छिन बिछुरे न सुहात।
एक रग रगिरह रगीले एक प्रान द्व गात।

[1] प्रकाशक—ब्रह्मचारी बिहारीशरण।
[2] महावाणी सेवा सुख, पद सख्या २, पृ० २४।

महा सुकुमार किसोर किसोरी जोरी अति अवदात।
निरखत श्री हरिप्रिया सहचरी आनन्द उर न समात ॥[1]

फूलों का शृंगार किए हुए आनन्द से भरी हुई श्री राधा झूले पर बैठी है और श्रीकृष्ण उन्हें झुला रहे हैं।

झूलत फूली लाडिली, किये फूल-सिगार।
प्रीतम फूल झुलावहीं करि करि बहुत मनुहार ॥
झूलत फूली फूली प्यारी प्रीतम फूले फूल झुलावत।
फूल डोल पर फूलमई-सी फूल सिंगार सिगारी यह सुख देखे
हो बनि आवत ॥
फूल कमल-कर लिये लाड़िली पिय मनुहार मनावत।
श्री हरि प्रिया निरखि न्यौछावर करत फूल बलिहारी
ज्यों ज्यों फूलन अंग समावत[2] ॥

रूपासक्ति—

कृष्ण के त्रिभगी रूप को देखकर भक्त का हृदय विह्वल हो उठा है :

ग्रीव ढुरनि कटि की मुरनि घूरनि कवनि छवि-जाल।
अद्भुत वानिक आज बलि बने त्रिभंगी लाल ॥
अद्भुत बानिक बने त्रिभंगी।
चरन चरन पर धरे अधर मुरली चितवनि भ्रू भौंह विभंगी ॥
कटि की मुरनि ढुरनि ग्रीवनि की कच की घुरनि रुरनि रसरंगी।
श्री हरि प्रिया बसी नित हिय में सहज सेज-सुख-सुरत सुवंगी ॥[3]

श्री प्रिया जी का चिंतन, ध्यान सब कुछ का देने वाला है।

चिन्तन फल देनी प्रिया चिंतामनि चिद्-रूप।
और न गति तुम बिन जु मोहि अहो स्वामिनी सुख रूप ॥
अहो मेरी स्वामिनी सुख-रूप।
नाहि गति मोहि जान, तुम बिन सकल-सिद्धि-सरूप ॥
ज्यों ज्यों चाहत त्यों-त्यों पुरवत परम प्रवर अनूप।
श्री हरि प्रिया चिन्तत फलदेनी चिंतामणि चिद रूप ॥[4]

---

[1] महावाणी, पद सख्या २३, पृ० ३०।
[2] वही, उत्साह सुख, फूल डोल, (राग विहागरो)।
[3] वही, राग अड़ानो, सख्या ८५। [4] वही, राग सोरठ, सख्या ९९।

श्री कृष्ण, श्री राधा जी से अपनी अधीनता स्वीकार कर रहे हैं

म आज्ञा अनुवर्ति हों अहो निसा आयीन ।
करत विहारीलाल यों विनय बाल रस-लीन ॥
विनय यों करत विहारीलाल ।
म तिहारो आज्ञा-अनुवर्ती है मन हरनी बाल ॥
जिहि जिहि भाँति चलावति हो मोहि चालत सोई चाल ।
श्री हरिप्रिया स्वामिनी तुम मम प्रानि की प्रतिपाल ॥[1]

लाल की लालची आँखें और किसी ओर देखना नहीं चाहती ।

रचक इनहिं न रचहिं कछु पचक विभव बड़े जु ।
ललचौहें लोचन महा अहं लाल के ए जु ।
ललचौहे लोचन लाल के ॥
लगे रहत लालच में निसिदिन पगे प्रेम रस-जाल के ।
रचक और रचत नहिं इनको वैचक विभव विशाल के ।
श्री हरिप्रिया सहज गुल साँचे राचे रग रसाल के ॥[2]

प्रेम की तन्मयता—

प्रेम उस अवस्था का कितना सुन्दर वर्णन है जब प्रेमी और प्रेमिका तन्मय होकर अभिन्न हो जाते हैं

प्यारो कहों के प्रान तोहि प्यारी कहों कि जीय ।
हों हो कहों कि हों तुही प्रिया कहों अकि पीय ॥
पीय कहों अकि प्रिया कहौं म प्रान कहों अकि प्यारा तोकों ।
हौं हि कहौं अकि हौं तूहीं कहौं जीय कहौं अकि प्यारी तोकौं ।
जो जो कहा सो सो सब तूहीं कहो कि कहौं कहा री तोकौं ।
श्री हरिप्रिया बरनन को बानो विपरित होन कहा री तोको ।[3]

नित्य लीला—

सिद्धान्त सुख क पद में राधा-कृष्ण और उनकी नित्य लीला के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है ।

---

[1] महावाणी सहज सुख गाय [illegible] २१ ।
[2] वही सहज सुख पद संख्या ७३ ।
[3] वही सहज सुख पद सख्या ७३ ।

प्रिया शक्ति अह्लादिनी पिय आनन्द-सरूप।
तन वृन्दावन जगमगे इच्छा सखी अनूप॥
कोटिन कोटि समूह सुख रस लिये इच्छा शक्ति।
प्रानेशहि प्रमुदावहीं प्रमुदावलि अनुरक्ति॥
जबते ए ए तबहि ते ए ए एक अनन्त।
श्री वृन्दावन में सदा नित विलास विलसंत॥
सरिता-रस-सिंगार की बहति सदा चहुं-ओर।
इकछत्र राज करै जु श्री हरिप्रिया जुगलकिसोर॥[1]

महावाणी की कुंजी—

इस स्वरूप को बिना ध्यान में रखे "महावाणी" के असली रस का आस्वादन असभव-सा है। इसीलिये "महावाणी" के बारे में निम्नलिखित बात ध्यान में रखने के लिये कहा गया है:

महावानी जानी जु यह खरी खंग की धार।
जतन-जतन सो राखियौं ज्यों पायो सुख-सार॥
दुर्ल्लभ हू ते दुर्ल्लभ जु सो सुल्लभ भई तोहि।
हित चित हिय नहि धरहि तो अहित इष्ट ते होंहि।
पंच रतन ये दिव्य महा काढ़े सोधि पयोधि।
जा करि श्री हरि प्रिया को पावै यह अविरोध॥[2]

श्री परशुरामाचार्य

वंश परिचय—

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के सत हरिव्यास देव जी के प्रमुख शिष्य थे। 'उदय' मासिक पत्र (१९४२ ई० संख्या १-३) में इनकी रचनाओं तथा जीवन-चरित पर प्रकाश डाला गया है। उसके अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत एक पचगढ ब्राह्मण कुल में हुआ था। निम्नलिखित दोहे से इनके ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न होने का सकेत मिलता है

ब्रह्म कर्म करणी गई, गई जनेऊ जाति।
अब हम हुए रामजन, 'परसा' परम सुजाति॥[3]

---

[1] महावाणी, सिद्धान्त सुख, पद सख्या १६।

[2] वही, सिद्धान्त सुख, ३, ४, ५।

[3] परशुरामसागर, दोहा सख्या ६५३।

काल—

इनका जन्म १५ वी शताब्दी भाद्रपद कृष्ण ५ को हुआ था।[1] श्री परशुराम देवाचार्य के सम्बन्ध में जो पट्टे आदि मिलते हैं उनसे लगता है कि उनकी लम्बी उम्र थी। खेजडलारा भाटी सरदारन की तवारीख में लिखा हुआ है कि सवत् 'पन्द्रह सौ पन्द्रह की साल अजुनजीरा बेटा सावन्त सिंह जी कुवर पदे था, सु जमुना जीर तरै माये सा (स्वामी) परशुराम जी कण्ठी बाँधी तहाँ गाँव सुलेमाबाद ताम्बापत्तर सासण करा दियो ने बादशाही नौ मुहरो कराय दियो[2]। इसके अनुसार श्री परशुरामदेवाचार्य स० १५१५ में विद्यमान थे। उनके नाम का एक पटटा भी वि० स० १६६९ का मिलता है। उसकी प्रतिलिपि निम्नलिखित हैं "श्री ध श्री महाराज राजा श्री किशनसिंह जी वचनायत स्वामी श्री परसुराम जी तौ पुण्य अथ एक सा एक बीघा को सेटों १ धस्ते सलेमाबाद मो० पीगलोद मो० उदीक कर दी थी धरती बजर खीस दु० श्री मुसपरवानगी भाटी भीम जी लिखत का हेमराज ता० १ माह जिलकाद स० १०१९, स० १६६९ मु० कोमायल[3]।' इसके बाद किसी पट्टे में परशुरामदेव का नाम नहीं मिलता केवल 'परशुराम जी रे द्वारे या मन्दिर' आदि का ही उल्लेख है। अब अगर उक्त जोधपुर की तवारीख में विक्रम सवत का ही उल्लेख हो और उस १५१५ सवत् के समय श्री परशुरामदेव जी की उम्र कम से कम १५ वर्ष की मान ली जाय तो उनकी उम्र १६९ वर्ष की होती है। सभव है कि निष्ठावान सन्त की उतनी लम्बी आयु हो।

मृत्यु तिथि—

श्री परशुरामदेवाचार्य जी की गुफा के द्वार पर एक शिला लेख मिलता है जिसमें परशुरामदेवाचार्य का नाम आया है। जहाँ श्री परशुरामदेव जी की गुफा है वह स्थान श्री पुष्कर राज के बारह प्राचीन स्थानों (स्थाना) में एक मुख्य स्थान है। इस शिलालेख में लिखा हुआ है कि श्री परशुरामदेव जी के शिष्य श्री हरिवंशदेव जी ने गुफा के निकट एक मन्दिर बनवाया। शिलालेख[4] की प्रतिलिपि—'श्री गोपाल जी महाराज सत्य पातसाह, श्री

[1] ग्रन्थ प्रणेता का परिचय उदय मासिक पत्र, पृ० १३।

[2] युगलशतक भूमिका निम्बार्क समय समीक्षा, पृ० ७।

[3] वही पृ० ७।

[4] युगलशतक, भूमिका निम्बार्क समय समीक्षा, पृ० ८।

शाहजहाँ सवत् १६८९ वर्षे माघ राजे स्वामी श्री हरिवंश देव, सुदि पूरणमासी सोमवार श्री परशुराम जी का शिष्य साला स्वामी श्री परशुराम जी स्वामी पूरणदास मन्दिर विराजमान, श्री कृष्ण साख मे पुरसद जयति सत्य सखामद स्वामी सेवक रामदास दामोदर दास मथुरावाला।" इस शिलालेख से यह पता चल जाता है कि श्री परशुराम जी वि० स० १६८९ के पहले ही परलोक वासी हो गए थे।

जीवन-वृत्त—

पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे ही इन्हे वैराग्य हो गया।[1] इनके पिता का नाम श्री वासुदेव जी था।[2] बचपन मे ही इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और ये हरिव्यास जी की शरण मे आये और बाद मे उनके शिष्य हो गए। उनके बाद ये ही उनके उत्तराधिकारी हुए। हरिव्यास जी के बारह प्रमुख विद्वान शिष्यो मे इनके ऊपर ही श्री सर्वेश्वर जी की सेवा भार सौंपा गया। संभवत. भारतवर्ष भर में २०००० निम्बार्कानुयायी स्थान होंगे। वे सभी परशुरामदेव जी को अग्रगण्य मानते है।[3] सम्प्रदाय का सर्व प्रधान पीठ "परशुरामपुरी" (सलेमाबाद) स्थान है जो किशनगढ राज्य मे है।

सलीमशाह चिश्ती—

परशुराम पुरी (सलेमाबाद) के स्थापित करने की एक कहानी प्रचलित है। उस काल में मुसलमान शासको का खूब दबदबा था। अजमेर के आसपास सलीम शाह चिश्ती का स्थान था। उसकी सिद्धियो की चारो ओर ख्याति थी। सलीमशाह इस पन्थ के सन्तो पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। यह अत्याचार यहाँ तक बढा कि सन्तो ने उस रास्ते से द्वारका जाना छोड दिया। कुछ सन्तो ने मथुरा में श्री हरिव्यासदेवाचार्य के पास इस फकीर के अत्याचारो की खबर पहुचाई। उन्होंने इस काम के लिये परशुरामदेव को भेजा। ये फ़कीर के निवास स्थान पर पहुचे और उसकी चीजें नष्ट भ्रष्ट कर दीं। फ़कीर ने क्रोध कर नाना प्रकार की सिद्धियो का इन पर प्रयोग किया लेकिन इनके तेज के सामने असफल रहा। अन्त मे हार कर वह इनका

---

[1] ग्रंथ-प्रणेता का जीवन चरित: उदय (पत्रिका), पृ० १३।

[2] भागवत सप्रदाय, पृ० ३२९।

[3] ग्रन्थ प्रणेता का जीवन चरित, उदय (पत्रिका) पृ० १४।

शिष्य हो गया और उससे प्रभावित अनेकानेक मुसलमान उनके शिष्य हो गये। सलीम शाह की इच्छा से उन्होंने "सलेमाबाद" को आबाद किया।

भक्तमाल में वर्णित इनका वृत्त—

भक्तमाल" में इनके संबंध में निम्नलिखित छप्पय मिलता है

ज्यों चंदन को पवन नींम्ब पुनि चंदन करई।
बहुत काल तप निविड उद दीपक ज्यो हरई॥
श्रीभट पुनि हरि व्यास संत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन हरिगुण उच्चरई॥
गोविन्द भक्ति गदरोग गति, तिलक दाम सद वद हृद।
जंगली देश के लोग सब, "परशुराम" किय पारषद॥[1]

हरिव्यास-छत्तीसी में इनका परिचय—

इनकी भक्ति तथा वैराग्य की बहुत सी कहानियां प्रचलित हैं। हरिव्यास-छत्तीसी" नामक हस्तलिखित ग्रंथ में इनके विषय में निम्नलिखित दोहे मिले हैं

आचारज हरिव्यास के, शिष्य सपूत अनन्त।
तिन में मुखिया परसुरा, गदीवन्त महन्त।
कण्ठमाल हरि व्यास की, पुनि सर्वेश्वर ईश।
सो राजत श्री मत्प्रभू, परसुराम के शीश।
शिष्य सकल हरिव्यास के, और प्रशिष्य अनन्त।
परसुराम-पद पादुका, सबही आन नमन्त।[2]

रचनाएँ—

ब्रजभाषा की इनकी रचनाएं अत्यन्त सुन्दर हैं। इनका लिखा परशुराम-सागर प्रसिद्ध है। इसमें इनके २२ ग्रंथ और ७५० के लगभग फुटकर पद संगृहीत हैं[3] (१) साखी का जोड़ा (२) छन्द का जोड़ा (३) सवैया दस अवतार का (४) रघुनाथ चरित (५) श्रीकृष्ण चरित (६) शृंगार सुदामा चरित (७) द्रौपदी का जोड़ा (८) छप्पय गजग्राह को (९) प्रहलाद चरित

[1] भक्तमाल पृ० ७०१।
[2] ग्रन्थ प्रणेता का परिचय उदय पत्रिका, प० २०।
[3] मनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १४२।

(१०) अन्तरबोध लीला (११) नामनिधि लीला (१२) शौच-निषेध लीला (१३) नायलीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्रीहरिलीला (१६) श्रीनिर्वाण लीला (१७) समझणी लीला (१८) तिथि लीला (१९) नन्द लीला (२०) नक्षत्र लीला (२१) श्री बावनी लीला (२२) विप्रमति। इसका रचनाकाल संवत् १६७७ है।

रचनाओं की विशेषता—

इनकी भाषा में राजस्थानी भाषा का मिश्रण है। सगुण तथा निर्गुण विचारधारा से प्रभावित इनकी दोनो प्रकार की रचनाएं मिलती है। निर्गुण ब्रह्म को लेकर इन्होंने कबीर की नाई कविता की है। इनकी कविताएँ अर्थ-गौरवपूर्ण हैं तथा उनमें उपदेश की प्रवृत्ति मुख्य है।

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत है

पद—

'परसा' गुरु तरु की मिलै, जब छाया तो पोष।
हरि अमृत फल पाइए, तब हीं सुख सन्तोष॥
'परसा' तन मन निर्मला, जब लीजे जल धोय।
हरि सुमिरण बिन आतमा, निरमल कभी न होय॥[1]
निगुण सगुण सब प्रीति बस, साखि सुनो मन सुद्ध।
'परसा' प्यायो 'नाम दै' हरि मूरत में दुद्ध॥
कुछऊ करो कुछऊ कहो, बादि बड़ाई डिंभ।
'परसा' इक हरि प्रीत बिन, मिथ्या सब आरम्भ॥
ताकी हरि मानै नहीं जाके प्रीति न प्रेम।
'परसा' ताकी मानि हरि, जो सेवे धरि नेम॥[2]

रूपासक्ति—

कमल नयन ने भक्त के चित्त को चुरा लिया है और अब वह नेह टूटने वाला नहीं है।

कमल नैन नैननि चित चोर्‌यो।
मो देषत मेरो मन मोहन हरि लीयो हरि न बहोर्‌यो॥टेक॥

---

[1] परशुराम सागर, पृ० ६।
[2] वही, पृ० ३१-३२।

मोहन मोहनी बसिकरण बसि करि बलि छलि भुवनि ढढोरयो ॥
लै जु गए सयस बसि अतरि नव मुसकि मुख मोरयो ॥१॥
निरखत बदन ठगोरी सो परि गई रहो चित्र जसें कोरयो ।
नंक यूद जल पम सिन्धु मिलि बिछुरत नहिन विछोरयो ॥२॥
अब कहा हा होहि कह काहु क जाणि बूझि जातौं मन जोरयो ।[1]
भयो विवसि परसा प्रभू सौं मन नेह न तूटत तोरयौ ॥३॥

गोपियों का विरह वर्णन—

उद्धव को सदेश देती हुई गोपियाँ कह रही ह

मधुप साल उरि साल मेरे हरि की व बात ॥
विलपति चित आनि आनि सुनि त न सुहात ॥टेक॥
विछुरत पाइ लागि वोलि भेटत भरि चाय ॥
दलती बेर नक ताकू म पकरयौ नहीं हाय ॥१॥
सवनि कू सुख देत नागर अनाथनि के नाथ ॥
सोई विसरत नहीं पलक प्रेम प्रीतम की साय ॥२॥
पारस की परस पावत पलटौं कुल जाति ॥
ताको सुख तब न जाण्यौं अब न रह्यौ जाति ॥३॥
लोचन हरि दरस कारिण लोचत दिन राति ॥
परसा प्रभु मिलन की कब आइ ह या घात[2] ॥४॥

एक दूसरे पद म गोपियाँ वर्षा ऋतु में अपने विरह के दुःख को उद्धव को सुना रही ह

स्याम सघण बरिया रुति आई ॥
देखि घटा घन घोर चहु दिसि पावसि प्रीनि सुहाई ॥टेक॥
बोलत मोर बूद विष लागत हरि विण कछु न सुहाई ॥
कवण अधार जीव हम विरहनि पतीयाँ हु न पठाई ॥१॥
तुम अति चतुर सुजाण सिरोमनि हम अधिम अजात कहाई ।
परस राम प्रभु तजि सब औगुण मिलि मोहन सुखदाई ॥२॥[3]

---

[1] रामसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या ६८०।४९२ पृ० ८१ अ ॥राग सारग॥

[2] रामसागर, पृ० ८२ आ ॥ राग सारग ॥

[3] वही, पृ० १०३ अ ॥ राग मलार ॥

इस तरह से और भी इनके अनेक पद हैं जो हिन्दी साहित्य में सुपरिचित भ्रमरगीतो की परम्परा में पडते है। इन पदो में उद्धव से गोपियां अपने विरह-दुख को नाना भाव से सुना रही है।

घनानंद—

जीवन वृत्त—

घनानन्द या आनन्दघन निम्बार्क सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गए थे।[१] इनका जन्म सवत् १७३० में हुआ था और मृत्यु सवत् १८१७ में। इनके जीवनवृत्त का पूरा-पूरा पता नही चलता। कहते है कि ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीरमुशी थे। इनका 'सुजान' नाम की वेश्या से अत्यन्त प्रेम था। कहते है कि ये बहुत बडे गायक थे। एक बार बादशाह के कहने पर नही गाया और बाद में सुजान के कहने पर गाया और समस्त दरबार को बेसुध कर दिया। सुजान के कहने पर इन्होंने गाया तो अवश्य लेकिन बादशाह की ओर पीठ कर सुजान की तरफ मुह करके गाया। बाद में बादशाह ने क्रुद्ध होकर शहर से निकाल दिया। सुजान इनके साथ आने को राजी नही हुई। ये अत्यन्त दुखी होकर वृन्दावन चले गए और भगवान् की भक्ति में समस्त जीवन बिता दिया। विरहिन गोपियो की तरह सर्वत्र कृष्ण के माधुर्य का दर्शन करते हुए घनानन्द अपनी साधना में लगे रहे। ब्रज के घर, वन, वीथियो में वे सर्वत्र कृष्ण को ही ढूढते रहते थे। कृष्ण का स्मरण, स्वप्न में कृष्ण का दर्शन इन्हें बेचैन कर देता और फिर वे उन्ही की रट लगाए रहते। वे रीतिकाल में पडते है लेकिन लक्षण ग्रन्थो को आदर्श बनाकर उन्होने कविता नही की। अपनी कविताओ में ये सुजान-छाप देते थे और बाद में भगवान् के लिये ही सुजान का प्रयोग करने लगे। अभी तक इनके ४१ ग्रन्थ हिन्दी के मिले है।[२]

काव्य की विशेषता—

इनकी कविता में अकृत्रिमता है और एक अनोखी माधुरी है। इनकी भाषा, विशुद्ध ब्रजभाषा है। बडी चलती भाषा में गोपियो के विरह का

---

[१] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनन्द कवित्त, प्रस्तावना, पृ० २९।

[२] वही, पृ० २७-२८।

वर्णन इन्होंने किया है। इनके असली नाम का ठीक पता अभी तक नहीं चला है।[1]

विरह के पद—

गोपियों के विरह का सुन्दर वर्णन नीचे के पद में है

> चकोरी माधुरी ये दीन गोपी।
> अहो ब्रजचन्द क्यों पहिचान लोपी॥
> छबीले छल तुम को पीर काकी।
> किया की कथा से छतिया जो पाकी॥
> सजीवन स्यावरे कब धौं ढरोगे।
> मेरे साधा विरह बाधा हरोगे॥[2]

दूसरे पदों में अपने विरह के आंसुओं का 'सुजान के आंगन' में पहुचाने के लिये वे बादलों से प्रार्थना करते हैं

> पर कारजहिं देह को धारे फिरौ, पर जन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
> निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबहीं बिधि सज्जनता सरसौ॥
> घनआनन्द जीवन-दायक हौ, कछू मेरियो पीर हियें परसौं।
> कबहू वा बिसासी सुजान के आंगन, मो अंसुवानि कौं लै बरसौ॥[3]

ठीक उसी प्रकार से उन चरणों की धूल ला देने के लिये गोपियाँ पवन से प्रार्थना करती हैं

> एरे बीर पौन! तेरो सब ओर गौन बीरो,
> तोसों और कौन मन ढरकौंहीं बानि दै।
> जगत के प्रान, ओछे-बड़े सों समान, घन
> आनंद निधान, सुखदान दुखियानि दै॥
> जान उजियारे गुन भारे अंत मोहीं प्यारे,
> अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै॥
> बिरह बिथाहि मूरि आँखिन में राखौं पूरि
> धूरि तिन पायन की हा हा! नेकु आनि दै॥[4]

---

[1] वाणीप्रसाद जायसवाल—विरह लीला की भूमिका।

[2] विरह लीला ६० ६१ ६२ पृ० ६।

[3] ब्रजमाधुरी सार, प० १७८।

[4] घनआनंद—कवित्त पद संख्या ७०, पृ० ४२।

भक्ति—

अपनी परम साधना का परिचय देते हुए घनानंद कहते हैं :

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगी,
साधन को महातम-सार गहि ताहि तू ।
प्रेम सो रतन जातें पाय है सहज ही में,
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू ।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यों चकोरकै सु,
बाढ़त अमंद यो तरंगनि उमाहि तू ।
बोहित-बिसास ह्वै चढाव लैहै सोई हाहा,
कृस्न-कृपासिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥[1]

भगवान् की कृपा ही उनके लिये सब है :

मो-से अनपहिचानि को, पहिचाने हरि कौन ?
कृपा कान मधि नैन ज्यों, त्यों पुकारि मधि मौन ॥
हरि तुम सो पहिचानि कौ, मोहि लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस ॥[2]

रसिक गोविन्द

रचनाएँ—

रसिक गोविन्द के संबंध में ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि उनके लिखे हुए कितने ग्रंथ हैं और इसी प्रकार से इनके गुरु आदि के नाम को लेकर भी नाना प्रकार के मत प्रचलित हैं। इनका एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिकगोविन्दानन्दघन' है। इसका जिक्र खोज रिपोर्ट में आया है। यह ग्रंथ उनके अन्य ग्रन्थों के साथ बिजावर निवासी बाबू रामनारायण जी के यहाँ पाया गया है।[3] इसके बाद भी खोज रिपोर्ट[4] में रसिक गोविन्द के इस ग्रंथ का जिक्र आया है जो वृन्दावन निवासी लाला बद्रीदास के पास देखा गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित

---

[1] वही, पद संख्या ३५२, पृ० १७९।
[2] ब्रजमाधुरी सार, पृ० १८१।
[3] रिपोर्ट आफ सर्च आफ हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स, (१९०६–८)।
[4] वही, (१९१२–१४)।

प्रति प० बल्देव उपाध्याय और प० बटुकनाथ शर्मा को 'काशी के रसिकवर प० चुन्नीलाल जी वद्य से प्राप्त हुई ह्[1]।'

वश परिचय, गुरु और सम्प्रदाय—

'रसिक गोविन्दानन्दघन' से इनके जीवन के सबध में कुछ परिचय प्राप्त हो जाता ह। उससे पता चलता है कि इनके पिता का नाम शालिग्राम तथा माता का गुमाना था। नाराणी जाति क थे। इनके एक बडे भाई का नाम बालमुकुन्द था तथा मोतीराम नाम के एक इनके चाचा भी थे। इनके गुरु का नाम किसी ने हरिव्यास बतलाया ह[2] तो किसी ने स्वामी गोवधन देव[3] कहा ह। लेकिन यह भ्रमात्मक ह। इन्होने स्वय अपने गुरु तथा सम्प्रदाय का परिचय दिया ह। लछिमन चन्द्रिका' में रसिक गोविन्द जी लिखते ह 'श्रीपरम उदार परमेश्वर सरवस्वर सर्वोपरि विराजमान। तिनकी परम्परा यह। हस वस सनकादिक नारद निम्बादित्य सम्प्रदाय के सिरोमनि आचारज श्रीहरिव्यास देव जू महाराज की गादी। श्रीपरमराम दव जी। श्रीहरिवश देव जी। श्रीनारायण देव जी। श्रीवन्दावन देव जी। श्रीगोविन्द देव जी। श्रीगोविन्द सरनदेव जी। श्रीसर्वेश्वर सरण देव जी महाराज को शिष्य परम कृपापात्र वैष्णव रसिक गोविन्द कवि[4]। इस प्रकार स यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये निम्बार्क सम्प्रदाय के थे तथा इनके गुरु का नाम सर्वेश्वर देव जा था। प० बलदेव उपाध्याय ने 'रसिक गोविन्दानन्दघन की जो हस्तलिखित प्रति देखी ह उसमें लिखा हुआ ह

जीवन हमारी, कुज भवन अधिकारी,
ऐसे सर्वेस सरन सुखकारी गुरुदेव।'[5]

रचना काल—

'शिवसिंह सरोज में कहा गया ह कि ये स० १७५० में वतमान थे।[6] मिश्रबन्धुओ ने इनका कविता काल स० १८५८ बतलाया है।[7] 'सरोज में

[1] रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० ५।

[2] रिपोट आफ सर्च आफ हिन्दी मनुस्क्रिप्ट्स, (१९०६–८)।

[3] खोज रिपोट, (१९१२–१४)।

[4] रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १३ पर उद्धृत।

[5] रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १४।

[6] शिवसिंह सरोज पृ० ६८, ३७०। [7] मिश्रबन्धु विनोद पृ० ८४८।

बतलाया हुआ काल भ्रमात्मक है। रसिक गोविन्द ने अपने ग्रंथ 'रसिक गोविन्दानन्दघन' में रचना काल इस प्रकार से दिया है :

वसु सर वसु ससि अंक रवि दिन पंचमी वसन्त।
रच्यौ गोविन्दानन्दघन, वृन्दावन रसवन्त ॥

अर्थात् यह ग्रंथ वृन्दावन में वसन्त पंचमी, रविवार संवत् १८५८ में लिखा गया। इसके पहले भी वे कई ग्रंथ लिख चुके थे। 'रसिक गोविन्द' ग्रंथ का रचना काल सं० १८९० है। इस प्रकार विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से प्राय. अन्त तक इनका रचनाकाल है।

पं० बलदेव उपाध्याय ने इनके ९ ग्रंथों का जिक्र किया है। उनके नाम यों हैं : अष्ट देश भाषा, पिंगल ग्रंथ, समय प्रबंध, रसिक गोविन्द, रामायण सूचनिका, कलिजुग रासो, युगल रस माधुरी, लछिमन चन्द्रिका, रसिक गोविन्दानन्द घन।[1]

काव्यत्व—

रसिक गोविन्द ने अलंकार, रस आदि का सुन्दर विवेचन किया है। इनमें पांडित्य के साथ-साथ सहृदयता भी प्रचुर मात्रा में थी। इनकी काव्य-रचना सुन्दर है। इनका काव्य उन रसिकों को आनन्द देने वाला है जो साहित्य के मर्मज्ञ हैं तथा भगवत् रस के रसज्ञ। इनके कुछ पद नीचे दिए जाते हैं

होली का एक सुन्दर वर्णन नीचे के पद में मिलता है।

रंगभरि भरि भिजवत मोरि अंगिया
दुइ कर लिहेसि कनक पिचकरवा।
हम सन ठनगन करत डरत नहीं,
मुख सन लगवत अतर अगरवा।
अस कस बसियत सुनु ननदी हो,
फगुने के दिन एहि गोकुल नगरवा।
मोहि तन तकत बकत पुनि मुसकत
'रसिक गुविन्द' अभिराम लंगरवा।[2]

इन्होंने 'प्रेम' नामक एक अलंकार माना है। उसका उदाहरण निम्न-लिखित है :

[1] रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० १६–२१।

[2] वही, पृ० ३८।

साँवरे रंग रँगे सुरँगे, पुनि प्रेम पगे सो पगे ही पगे हैं।
रूप अनूप समुद्र अपार, मझार पगे सो थगे ही थगे हैं॥
और कहा कहिये सजनी सुन री व ठगे सो ठगे ही ठगे हैं।
या ब्रजचन्द 'गोविन्द' की सन सो नैन लगे सो लगे ही लगे हैं॥[1]

निम्नलिखित पद में अनुप्रास और शब्दों का चमत्कार दीख पड़ता है।

घुघरारी अलक सँवारी अनियारी भौंहें
कजरारी आखें कजरारी मतवारी में।
धारी सारी जरतारी सरस किनारी वारी
मालनी गुही है बनी काली सटकारी में।
वारी घस रूप उजियारी 'श्री गुविन्द' कहै
वारी सुरनारी नरनारी नाग नारी में।
मिलन विहारी सों दुलारी सुकुमारी प्यारी
बैठी चित्रकारी की अटारी सुखकारी में॥[2]

वृन्दावन की शोभा तथा युगल-छवि का सुन्दर वर्णन निम्नलिखित पदों में है।

श्री वृन्दावन सघन सरस सुख नित छवि छाजत।
नन्दन वन से कोटि कोटि जिहिं देखत लाजत॥
जहँ खगमृग द्रुम लता बसत जे सब अविरुद्धित।
काल कर्म गुन काम क्रोध मद रहित सहित हित॥
परम रम्य घन चिदानन्द सर्वोपरि सोहैं।
तदपि जुगुलरस केलि काज जड ह्वै मन मोहैं॥[3]

इसी प्रकार से कृष्ण के सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है

मुख मुरली धुनि अलकें बिथुरी रहिं लपटाई॥
नील कमल पर अलि अवलिन जनु कलह मचाई॥
मकराकृत कुण्डल प्रतिबिम्बित ललित कपोलनि।
मनु अगाध जल विमल मध्यकृत मकरकपोलनि॥

---

[1] रसिक गोविन्द और उनकी कविता पृ० ४४।
[2] वही पृ० ४०।
[3] रसिक गोविन्द और उनकी कविता, पृ० ५६ युगुल रस माधुरी ४, ५, ६।

रुचिर पलक दृग कोर अरुण सितकारे तारे।
मनहुं कमल दल नवल जुगल अलि मधु मतवारे ॥
कुटिल कटाछें अति आछें भुव वक्र बनी अनु।
मनमथ बरषत बान तानि मनु जुग मरकत धनु ॥[१]

(ग) सखी संप्रदाय के कवि

स्वामी हरिदास—

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त तथा शिष्य परम्परा आदि की चर्चा हम पहले ही कर चुके है।[२] यहा पर इस सम्प्रदाय के भक्त-कवियो की रचनाओ के सम्बन्ध में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। हम पहले ही देख चुके है कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। उन्होने अन्य भक्त-कवियो की नाई पद की रचना की है। उनके पद कवित्व प्रदर्शन के लिये नहीं लिखे गए हैं। बल्कि अपने हृदय के उद्‌गारो को प्रकट करने के लिए लिखे गए हैं। उनमें सरसता है, मार्मिकता है और सबसे बढकर स्वामी जी के हृदय का अनुराग है। उनके पदो में भगवान् की लीला के सम्बन्ध में शृंगार परक पद हैं और सिद्धान्त विषयक पद भी हैं। विहार-विषयक इनकी पदावली को 'केलि माला, भी कहते हैं।

स्वामी हरिदास जी की अनन्य-भक्ति तथा अपने भीतर के विकारो को दूर करने के उनके प्रयत्न का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पद में मिलता है।

हे हरि मोसो न विगारन कौं तोसो न
सम्हारन कौं मोहि तोहि परी होड ॥
कौंधों जीते कौधो हरि परि बदी न छोड़ ॥
तुम्हारी माया बाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि काके भूले कोड़ ॥
कहि हरिदास हम जीते हारे तुम तहु न तोड़ ॥[३]

एक दूसरे पद मे स्वामी जी ने बतलाया है कि ससार के इस कठिन बन्धन से छूटने का एकमात्र उपाय भगवान् के चरणो की शरणागति है।

---

[१] रसिक गोविन्द और उनकी कविता पृ० ६७, युगुल रस माधुरी १२५, १२६, १२७, १२८।

[२] देखिये पृ० २३०–२३३

[३] मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर (तृतीय सस्करण, १८८३ ई०) पृ० २२४।

संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीव बहु बदसि ॥
मन बयार प्रेरे सनेह फंद फदसि ॥
लोभ पिंजरा लोभी मरजिया पदारथ चारि पद पदसि ॥
कहि हरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनंद नदसि ।[1]

भगवान के ऊपर संपूर्ण रूप से निर्भर रहने में ही स्वामी जी जीव की कृतार्थता समझते हैं। भगवत्कृपा के बिना जीव के लिये कुछ भी करना व संभव नहीं मानते। उन्होंने एक पद में अपने इसी मनोभाव को व्यक्त किया है।

ज्योंही-ज्योंही तुम राखत हो,
त्योंही-त्योंही रहियतु है, हो हरि।
और अचरजे पाइ धरों,
सु तौ कहौं कौन के पेंड भरि।
जदपि हों अपनो भायो कियो चाहों,
कैसे करि सकों, सो तुम राखो पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौं,
तरफराई रह्यौ उड़ि वे को कितोउ करि[2]।

हस्तलिखित प्रति के कुछ पद—

टट्टी सम्प्रदाय के भक्तों की वाणिया की हस्तलिखित प्रति में कुछ पद हरिदास जी के सिद्धान्त विषयक तथा कुछ पद लीला विषयक हैं। वे सखी भाव से भगवान् की लीला का रसास्वादन किया करते थे।

सिद्धान्त विषयक निम्नलिखित पद में भगवान् तथा स्वामिनी जी के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण का भाव है।

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें, सब होय बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे कों भाषिये, सो तो है हारनि।
जाहि तुमसों हित, ताहि तुम हित करौ सब सुख-कारनि।
श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी, प्रानन के आधारनि[3] ॥

[1] मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमायर (तृतीय संस्करण १८८३ ई०) पृ० २२४।
[2] काशी नागरीप्रचारिणी में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति सं० ३७१।२६९ सिद्धान्त पद १।
[3] काशी नागरी प्रचारिणी में सुरक्षित टट्टी सम्प्रदाय के भक्त कवियों की वाणियों का संग्रह, संख्या ३७१।२६९, पद संख्या २।

किस किस से प्रेम लगाना चाहिए इनका भी संकेत स्वामी जी ने किया है। उनके लिये वृन्दावन का सब कुछ प्रिय था। सांसारिक वस्तुओं में एक ही वस्तु उनके पास थी और वह था करवा (एक मिट्टी का वर्तन)। उनका कहना है कि—

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सों ब्रज बीथिनु दीजे सोहनी।
वृन्दावन सों, उपवन सों गुंज माल पोहनी।
गो गो सुतनि सों मृगी मृग सुतनि सों और तन नेंकु न जोहनी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सों चित ज्यों सिर पर दोहनी[1]॥

रूपा सक्ति—

स्वामिनी जी के रूप पर मुग्ध हो वे अपने आप को भूल जाते हैं।
प्यारी जू जब देखों तेरो मुख तब तब नयो नयो लागत।
ऐसो भ्रम होत कबहूं न देखी री दुति को दुति लेखनिन कागत।
कोटि चंद तें कहां दुरामेरो नये नये रागत।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत काम की सां तिन होइ न होइ। त्रिपति रहूं, निसिदिन लागत[2]॥

कुज विहारी नाच रहे है। स्वामिनी जी उन्हें नचा रही है। उनकी इस नृत्य-लीला को भक्त का हृदय सुधबुध खोकर देख रहा है।

कुंज बिहारी नाचत नीके, लाडिली नचावत नीके।
औवर ताल घरे श्री स्याना मिलवत ताता थेई ता थेई गावत संग पीके॥
तांडव लासि और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को मेरु सरस भयो और रस गुनी परे फीके॥[3]

भक्त हरिदास जी को सबसे अधिक अचरज होता है जब भगवान् और स्वामिनी जी की रूपच्छटा एक साथ होकर सौन्दर्य बिखेरती है।

यह अचिरज देख्यो न सुन्यों कहूं नवीन मेघ संग बीजुरी एक रस।
तामें मोज उठति अधिक बहु भांति लस।
मन के देखिये कों और सुख नाहिनें चितवत चितहि करत बस॥
श्री हरिदासी के स्वामी स्यामा कुंज विहारी बिहारनि जू को पवित्रजस॥[4]

---

[1] नागरी प्रचारिणी, सग्रह सख्या ३७१।२६९ पद सख्या १५।

[2] वही पद सख्या ४। [3] वही, पद सख्या कुंजविहारी, ८।

[4] वही, पद सख्या रागमलार, ४।

विट्ठल विपुल—

जीवनवृत्त—

श्री विट्ठल विपुल जी के जीवन के सम्बन्ध में इतना ही पता चलता है कि वे स्वामी हरिदास जी के मामा थे और उन्ही के शिष्य हो गए। ये सनाढय ब्राह्मण थे। ये बहुत बडे भक्त हुए। इनके पद अत्यन्त सरस एव ललित है। नाभा जी के भक्तमाल[1] में इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि ये लीला रसिक और गुरु निष्ठ थे। गुरु के परमधाम जाने पर गुरु वियोग से ये अत्यन्त कातर हो गए थे। कही आने-जाते नही थे। श्री वन्दावन में एक रात रास के समाज में महानुभावो ने उन्हें बुला भेजा। वे वहाँ गए और श्री युगल सरकार के दर्शन कर तथा गाने बाजे की अपार माधुरी सुनकर बेसुध हो गए। उसी अवस्था में वे श्री गुरु हरिदास जी और श्री युगल सरकार की दिव्य झाकी पाके रससागर में मग्न हो गए और उन्होने पच भौतिक तन का त्याग किया। भक्तमाल में निम्नलिखित कवित्त मिलता है।

> स्वामी हरिदास जू के दास, नाम बीठल है,
> गुरु से वियोग दाह उपज्यों अपार है।
> रास के समाज में विराज सब भक्त राज,
> बोलि के पठाये, आये आज्ञा बडो भार है॥
> युगल सरूप अवलोकि, नाना नृत्य भेद,
> गान तान, कान सुनि, रहो न सभार है।
> मिलि गये वाही ठौर, पायो भाव तन और,
> कहे रस सागर सो तार्को यों विचार है॥[2]

रस के सागर—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित टट्टी सम्प्रदाय के भक्तो की वाणियो की हस्तलिखित प्रति में उनकी वाणियाँ दी हुई है। उनमें से कुछ निम्नलिखित है। उनके पदो को देखकर उन्हें 'रस का सागर' कहना ठीक ही जान पडता है। इनकी वाणियो के सग्रह के प्रारम्भ में उस हस्तलिखित प्रति में यो लिखा हुआ है। "श्री कुज विहारी विहारिनि जी। अथ श्री स्वामी जी के शिष्य परम प्रिय श्री बीठल विपुल जी रस के सागर जिनिकी बानी लिखिते। इस सग्रह में इनकी जो भी वाणियाँ मिलती है उनमें कुज

[1] नाभा जी कृत भक्तमाल (सन् १९२६ ई०) पृ० ६२१ ६२२।
[2] वही, पृ० ६२१।

विहारी और स्वामिनी जी की सरस लीलाओं का वर्णन है। झूले का झूलना, मान करना, आपस में होड़ लगाना, परस्पर की नोक झोंक का अत्यन्त ही ललित वर्णन इनके पदों में मिलता है।

तैं मोह्यौ प्यारी मोरो लाल।
जिहि गुन सर्वस चोरि लियो नागरि के गुन अब प्रतिपाल॥
तैं कछू प्रेम ठगौरी मेली तुव मुख जोवत नैन विसाल।
भामिनी कनक लता ह्वै लपटी श्री बीठल विपुल उर स्याम तमाल॥[1]

हिंडोला—

हिंडोले पर युगल-मूर्ति का चित्रण जिस प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठ भूमि में भक्त-कवि ने किया है वह अत्यन्त मनोरम है।

सजनी नव निकुंज द्रुम फूले।
अलिकुल संकुल करत कुलाहल, सौरभ मनमथ भूले॥
हरषि हिंडोरे रसिक रासि वर युगल परस्पर झूले।
श्री बीठल विपुल विनोद देखि नभ देव विमाननि भूले[2]॥

हिंडोले का एक दूसरा चित्र—

डोल झूले स्यामा स्याम सहेली।
नव निकुंज न बरग पिय संग विहरत गर्व गहेली।
कबहुंक प्रीतम रमकि झुलावत कबहू प्रिया नवेली।
श्री बीठल विपुल पुलकि ललितादि देखत आनन्द केली॥[3]

मान—

सखी मान-भजन मे लगी हुई समझा रही है।

लालन तेरेई आधीन।
सुनि री सखी हो सांच कहत हो तुव जल ए मीन॥
तेरे रस बस स्याम सुन्दर वर जाचित ज्यो दीन।
श्री बीठल विपुल विनोद विहारी होत मनावत लीन[4]।

---

[1] राग सारग, पद सख्या १६।
[2] राग वसन्त, पद संख्या १२
[3] राग सारग, पद सख्या १४।
[4] राग सारग, पद सख्या १८।

यह सखी जानती है कि यह मान झूठ ही है क्योंकि अन्तर का प्रेम दोनों आँखें प्रकट कर रही है। –

नैना प्रगट करत पिय प्रेमें
झूठे ही ऊतर करत सखीरी छाडि मान के नेमें।
कोप कपट को अधर कप सखी अति हुलास हृदय में।
श्री बीठल विपुल विनोद विहारी नगवर जटित सुवृत्त नहे में।[1]

बीठल विपुल जी जानते है कि इस वन्दावन पर श्री 'स्यामा' जी का राज्य है जिनके अधीन वृज के सिरताज है।

हमारे माई स्यामा जू को राज
जाकें सदा आधीन सावरो या वृज को सिरताज॥
यह जोरी अविचल वृन्दावन नाहि आन सों काज।
श्री बीठल विपुल विहारनि केवल दिन जलधर संग साज।[2]

विहारनि दास—

पदों की हस्तलिखित प्रति—

विहारनि दास जी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। टट्टी-सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा में ये विट्ठल विपुल जी के बाद आते है। इनके पदों के संग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। उसी संग्रह के कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं। इन पदों में कुछ तो सिद्धान्त विषयक पद है और कुछ लीला विषयक।

सिद्धान्त के पद—

कहा छूटे सों छूटा कहियें। भयो मनिष जनम लहें।
पसु समान विनु स्याम हि कहें। कहत सुनत उत्तम नरदेह।
जो न करयो इत स्याम सनेह। श्रवन कथा न भक्ति सों हेत।
मृतक समान जो मत हो प्रेत॥
ताको मांस न कोऊ खाइ। योंही गयो जन्म इहकाइ॥
जीवत मरत न लाग्यो नेग। योंही खोय जनम अनेक।
संतनि सेवो साधन करो। प्रेमभक्ति भवसागर तरो॥
साक्त भक्त बीच बड़ भेदा। श्री विहारीदास यों बरनत बेदा॥[3]

---

[1] राग सारंग, पद संख्या २२। [2] राग सारंग पद संख्या २६।
[3] सिद्धान्त के पद, राग भैरो, संख्या ८।

एक दूसरे पद में विहारिन दास ने बतलाया है कि विना भगवान की कृपा के और विना उनके चरणों की छाया के संसार के जीव के लिये दूसरा कोई उपाय नहीं। भगवान् की शरणागति ही भक्त के लिये सब कुछ है।

मेरी चतुराई कछु नाही। तुमरी कृपा बिन लागों काहो ॥
भला पोच समझी नहीं जाही। विन विवेक उसारो ठाही।
तुम्हरी अद्भुत कथा अथाही। जात न मो जड पै अवगाही ॥
श्री विहारी दास-चरनन की छाही। अपने करि राखो गहि बांही[1] ॥

विहारिन दास जी ने बतलाया है कि वृन्दावन का सुख और कहीं नहीं। यह सब कुछ का देने वाला है।

श्री वृन्दावन को सो सुख कछु ना लह्यौ।
धर्म अर्थ कामना मुक्ति पद भेद भक्ति बहु भाहि कह्यौ।
परम पवित्र पुलनि सौरभ कन पावन जमुना नीर बह्यौ ॥
तिहि सलिता सीतल मन कीनो जिन सतापनि जगत दह्यौ।
और लोक वैकुंठ आदि दै अनन्तन काहू कछूव चित्त रह्यौ ॥
काम धेनु गनत न कलपद्रुम सोई दिन देत जोई जु चह्यौ ॥
नित्य नौतन रस छाड़ि विषय रस कितक मान अपमान सह्यौ ॥
परम उदार श्री विहारी विहारनि दास जानि जिय सरन गह्यौ ॥

भक्त विहारिन दास के लिये भगवान हैं और वे भगवान् के लिये हैं। अब इसमे चाहे किसी को कुछ भी लगे। कोई कुछ भी कहे। उन्होंने प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहा है कि—

प्रभु जू हों तेरा तू मेरा।
राजी खसम कहा करै काजी लोक वको वहु तेरा ॥
हो तू एक अनेक गठो गुन दोसन कि सहू केरा।
जल तरंग लो सहज समागम निर्मल सांझ सबेरा ॥
कोई स्वामी कोई साहिब सेवक कोई चाकर कोई मेरा।
विना ममिता एक तन ऐसा जगत भक्त घनेरा ॥
तन मन प्रान प्रान सो सनमुख अव न फिरै मन फेरा।
श्री विहारीदास हरिदास नाम निजु प्रेम न बेरा हेरा[2] ॥

---

[1] वही, संख्या १४।
[2] सिद्धान्त के पद राग भैरो, सख्या ८।

अपने मन को समझाते हुए वे कहते हैं

। मन मेरे अजहूँ होइ समानों ।
हरिपद कमल बिसारिविष रति कहा फिरत बोरानो ॥
सोई सोई दाइ उपाइ करत निति जो अपने चित मानों ।
भयो विवस आलस अभिमानी नेकु न इत नियरानों ॥
सेर चहाउ खाल गज दे ठकइहि ममिता इतरानों ।
ताके हित निति कर द्रपहु अहंकार अरुझानो ॥
सुत दारा को निरखि निरखि मुख अधम न उबिहि अघानो ।
न कछु आहिन ताहि विचारत स्वारथ स्वाद बिकानों ॥
जीवत मृतक भयो लोगनि संग रहत लोग लपटानों ।
श्री बिहारीदास बिनु बहुत बिमूचे कितेक बरनि बखानों[1] ॥

भक्ति की महिमा—

भक्ति की महिमा बतलाते हुए वे कहते हैं ।

भक्ति में कहा जनेऊ जाति ।
सब भूषन दूषन बिनु, प्राननि प्रति छूव धरनि घिनाति ॥
क्यों साधें चिरपन अभिमानी बड़ी जाति इतराति ।
बासर सों करसें सरि पाय जदपि उजारा राति ॥
कहा हरे रंग भाग विराजित तुलसी में न समाति ।
सोह नहीं सुहागनि के संग सोति सुरेति कुजाति ॥
बरन आश्रम अपने अपने मत तिन तिनहीं सों पाति ।
भगवत धरम सिरोमनि सेवत लालच मति भ्रम जाति ॥
गाइत्री सन्ध्या तप न तजि भजि माला मंत्र सजाति ।
श्री बिहारीदास को सुख सर्वोपरि वेद विदित विख्याति[2] ॥

लीला विषयक पद—

लीला विषयक उनके पद अनेक हैं। उनमें अत्यन्त लालित्य एवं सरसता है ।

सिंगार करो न करो सो खरो रंग प्यारी व धोप सुहाग को ओरें ।
समुहो चाह्यो न जात अली के हियो हुलसें नव जोवन भोरें ॥

[1] वही संख्या ३ ।
[2] सिद्धान्त पद राग भरो, संख्या ६५ ।

पानिप लोचन ज्यौं मुक्ता ढहि ऊँठि कहूं ठहरात न ठौरें।
ज्यो ज्यों विहारनि मंद मुरें हँसि रूप चुयौ परे घूघट ठौरें[1] ॥

स्वामी और स्वामिनी जी के प्रेम को देख कर भक्त-कवि अपने आप को भूला हुआ है।

नागर नेह निहारत नैननि।
आतुर ह्वै न चलै चकि चौंप सो चातुर चाहि रहें चित चैननि ॥
मौन ही मौन में मान मनाइ मिलाइ लिये मन सों मन मैननि।
श्री विहारनि दासि विलोकि वधू वन वृंद विनोद वढै विनु बैननि ॥
नित्य नवीन निकुंज में नागरि नागर नेह निहारत नैननि ॥

इसी प्रकार से 'लाल की ललचोंही अखिया' पर भक्त कवि रीझा हुआ है।

अंखिया लाल की ललचोंहीं।
इत उत चितै हसत सकुचित से पुनि वात कहत गहि गोही।
नैंन श्रवन नासा अवलोकत भाल तिलत दरसोही।
श्री विहारीदासि स्वामिनी रस बरसत यह सुख समझतिहोंही[3] ॥

युगलरूप—

'युगल-रूप' का सुन्दर वर्णन निम्नलिखित पद में है :

जोरी अद्भुत आजु वनी।
वारो कोटि काम नख छवि पर उजल नीलमनी ॥
उपमा देत सकुचित निर उपमा घन दामिनी लजनी।
करत हासि परिहासि प्रेम जुत सरस विलास सनी ॥
कहा कहों लावनि रूप गुन शोभा सहज घनी।
श्री विहारनिदासि दुलरावत श्री हरिदास कृपा वरनी[4] ॥

उक्त संग्रह मे विहारनि दास के कुछ दोहे हैं जिनमें सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है। संग्रह में उन दोहो के प्रारम्भ करने के पहले "अथ साखी सिद्धान्त लिख्यते" लिखा हुआ है।

साखी—

गुरु सेवत गोविन्द मिल्यौ गुरु गोविन्दहि आहि।
श्री विहारीदास हरिदास को जीवत है सुख चाहि ॥

---

[1] वही, पद संख्या, ३२।
[2] वही, पद संख्या १७।
[3] वही, राग सारग, ३।
[4] वही, राग केदार, १।

मूड मुडायें कहा भयौ जो मन न मुडायौ।
श्री विहारीदास सत भाइ विनु सतोष न आयौ ॥
पोथी पोथी सब परी कान उठाव भार।
श्री विहारी विहारनि दासि उर लिखि लिखि लीना अछिर सार ॥
इठनि प्रीति रस रीति हू समझि गहो मन माहि।
एक चकार पावक चुग सब ही की भख नाहि।
जो हू जाति चकोर की सोई पावक खाइ।
और पछी छुव चोंच सो छुवत जीभ जरि जाइ[1] ॥

नागरीदासि जी—

गुरु—

जीवन-सम्बन्धी इनका कोई वृत्तान्त अभी तक उपलब्ध नहीं है। ये 'टट्टी सस्थान' की परम्परा के हैं। इनके कुछ पदो की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। कुछ पद नीचे उदधृत किए जाते हैं। कवित्त और कुडलिया छन्दो में इनके कुछ सिद्धान्त के पद है। इन्होने अपने गुरु विहारनि दास तथा सखी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक को बार बार स्मरण किया है। मिश्र बन्धु विनोद[2] में इन्हें स्वामी पीताम्बर दास जी का शिष्य बताया गया है। इसका आधार क्या है, कहा नहीं जा सकता।

श्री विहारनि दासि सदा गति मेरे।
विश्व विलास आस न मानत भक्ति ग्यान बिधि मुक्ति निवेरें ॥
साधिक सिद्ध प्रससित जाके सुता के तिन्हें वलह चित हेरें।
निकुज भवन रमनरम ज्यों जुगल नवल रहें नित्य मेरें ॥
श्री हरिदास भज सुख रासि[3] ॥

कुण्डलिया—

निम्नलिखित पद 'कुण्डलिया' के अन्तर्गत मिलता है

यह जोबन जल बरषि ज्यौं नदी उमडि करारे ढाहि।
जल सूखें जोबन घटें रया गयें आब पछितांहि ॥
गयो आब पछितांहि किहि पूछ यिन स्यामहि।
मिथ्या सब दिन खोइ जोड धारा धन धामहि ॥

[1] वही ३, २४, ५४, ५५ ८५। [2] मिश्र बन्धु-विनोद, पृ० ७८९।
[3] कवित्त सिद्धान्त, पद सख्या ४।

दुलभ तन तू मोधि मन भजि यह अवसर जानि यहै ।
नित कित चूकत तहो तू सुनि सठ नागरीदास कहै[1] ॥

एक दूसरे पद में उन्होंने भगवान् के प्रति अपनी आसक्ति का निवेदन किया है।

प्राननि के प्रान मेरे नैननि के तारे हो ।
सहज सनेह निजु सुख धन धारि उर अतर अपनें प्रान राखि रखवारे हो।
अलक पलक जिनि अंतर अपने सुजान सुनहु मुख जीवत निहारे हो ।
अति ही व्याकुल कित काहे को कुवर तुम तन मन मेरे अति प्रीतम पियारे हो।
दासि श्रीनागरी हित तुहि प्रिया मानि चित[2] ॥ प्राननि के……

रचनाएँ—

मिश्रबन्धु विनोद[3] के अनुसार इन्होंने स्वामी जी (पीताम्बरदास) के पदों की टीका लिखी है और समय १८२० बताया गया है। यह भी कहा गया है कि इन्होंने स्वामी हरिदास, बिहारिनिदास, विट्ठल विपुल, सरसदास, नरहरि दास तथा स्वय अपने पदो की विस्तृत टीका लिखी है।

सरसदास जी—

'परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद'—

सरसदास जी के पदो के सग्रह की हस्तलिखित प्रति काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। जहाँ से उनके पद आरम्भ होते हैं वहाँ लिखा हुआ है "अथ श्री सरसदास जी की बानी लिख्यते"—इसके बाद 'परम उज्ज्वल रस सिंगार के पद' लिखकर तब पद दिए गए है।

लाल प्रिया को सिंगार बनावत ।
कोमल कर कुसमनि कच गूंयति मृग मद आउ रचित सचु पावत ॥
अंजन मन रजन नव वरकर चित्र बनाइ बनाइ रिझावत।
लेत बलाइ भाइ अति उपजत रीझि रसाल माल फहिरावत ॥
अति आतुर आसक्त दीन भये चितवत कुवरि कुंवर मन भावत ।
नैननि में मुसिकानि जानि पिय प्रेम विवस रस कंठ लगावत ॥
रूप रंग सींवो ग्रीवो भुज हसत परस्पर मदन लजावत ।
सरसदासि सुख निरखि निहाल भई गई निसा नव नव गुन गावत[4] ॥

---

[1] वही, पद सख्या, १३ । [2] रस के सवैया, ४ ।
[3] मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७८९ । [4] पद सख्या १५ ।

एक दूसरे पद में इसी तरह से स्वामी-स्वामिनी जी के प्रेम का वर्णन किया है।

वे वाके वे वाके नैननि प्रतिबिम्ब में सिंगार जनावत।
चतुर रूप गुनरासि सुघर दोऊ अपने अपने कर रचि रचि सखीहिं दिखावत॥
इतहिं सवांरि विलोकत उन तन वे उन तन चितै चितै चित चौंप बढ़ावति।
सरसदासि सुघरासि प्रिया पिय पुलकि पुलकि हिलिमिल मधुरे सुर गावत[1]॥

इस सम्प्रदाय के अन्य भक्तों की तरह इन्होंने भी सिद्धान्त के पद लिखे हैं।

सिद्धान्त के पद—

माया महामद मोह विष लिये लोभ की लाठि फिरे अरसानी।
कहू धीरज प्रेम विवेक रह्यो नहीं मारि लिये सब कीच की घानी॥
जीव मुरक कहाय पुरासनरादिक नारद हू मयमानी।
सरस सुदास गरीब भल लोये राखि कृपा करि कुंज की रानी[2]॥

नवलदास

रचना—

नवलदास के जो पद मिले हैं वे सखी-सम्प्रदाय के अन्य कवियों के पदों के संग्रह में ही मिले हैं। इस संग्रह की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा में है। इनके दो पद इस संग्रह में हैं जिनमें युगल छवि का वर्णन है। वे दोनों पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं

युगल छवि का वर्णन—

श्री विहारनिदासि प्रियो विहारनि रानी है।
एक ही सिंगार तन एक प्रान एक मन एक ही सहज का परस बखानी है।
एक ही बरन बसन भूषन बसन सुरत एक ही सुभाव प्रेम रस सानी है।
एक ही सुदृष्टि सखी नैनन सों तन ओरें एक ही सुभाव राग रंग सुखदानी है।
नवल निहारि दोऊ पर तरल कौन कोऊ भा[3]॥

दूसरे पद में भी इसी प्रकार का वर्णन है

रंग भरयो लाल रसीली मरी राधा।
एक तन एक मन एक ही समान दोऊ मरहूं न न्यारे हु सरस मन आधा।

---

[1] वही २१। [2] वही २०।
[3] सवैया ७।

छवि सों छवीली भांति नैननि में मुसकाति
मुसकाति हूं में छवि वढ़ी है अगाधा ॥
तैसई नवल सपी तैसोई श्री कुंजविहारी
तैसी मेरी प्रान प्यारी पूजो मन साधा[1] ॥

मिश्रवन्धु विनोद में इनका परिचय—

इनका जीवन-वृत्तान्त नही मिलता। सम्प्रदाय की परंपरा मे ये छठी पीढी के है। सरसदास के वाद इनका स्थान है। 'मिश्रवन्धु विनोद' में इनका नाम नवलदास वृन्दावन वताया गया है[2] और इन्हे नागरीदास का शिष्य कहा गया है। इनकी वाणियों का रचना काल १८०० है।[3]

श्रीकृष्णदास जी

नागरीदास के शिष्य—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा मे सखी-सम्प्रदाय के भक्तो की वाणियो की हस्तलिखित प्रति मे श्रीकृष्णदास जी के भी कुछ पद मिलते है। सखी-संप्रदाय की शिष्य-परंपरा की जो ग्राउस की सूची है उसमे इनका नाम नही मिलता और न 'भागवत-सम्प्रदाय' मे दी हुई वलदेव उपाध्याय की ही सूची में मिलता है। काशी नागरी प्रचारिणी वाली प्रति मे इन्हें नागरीदास का शिष्य कहा गया है। काशी नागरीप्रचारिणी वाली प्रति मे इनके पदों के प्रारंभ करने के पहले लिखा हुआ है "अथ श्री नागरीदास जू के शिष्य श्रीकृष्णदास जी जिन कृत्य मगल श्री स्वामी जी को लिषते।" काव्य की दृष्टि से इनके पद वहुत अच्छे नही कहे जा सकते। वृन्दावन का वर्णन निम्नलिखित पद मे है:

वृन्दावन का वर्णन—

जै जै श्री वृन्दावन सहज सुहावनो।
नित्य विहार अधार सदामन भावनो ॥
परम सुभग श्री जमुना पुलनि मंजुल जहाँ,
विमल कमल कल हंस सकल कूजि तहां ॥

---

[1] सवैया ८। तथा
एनुअल रिपोर्ट आन दी सर्च फार हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स फार दि इयर १९०८ (यूनाइटेड प्रेस गवर्नमेंट), सख्या ३८।

[2] मिश्र वन्धु विनोद, पृ० ७५४।

[3] वही।

विमल कमल दल हंस कूजित सेवक पग भृग सुध भरे ।
मुदित बन नव मोर नतत राजत अति रुचि सों घरे[1] ॥

भक्ति—

उनकी भक्ति का निरूपण निम्नलिखित पद में मिलता है

ओर बहुत अपनाइ जे मन बच क्रम अनसरे ।
मोसे पतित महा सठ ते अपने करे ॥
जसें पारस परसन कवन जानिये ।
जसें हिये श्री नागरीदास निहच उर आनिये
आनि निहच जोनि यह सुघ चरण कमल सेऊ सदा
ज श्री बद विहारनिदासि प्रगट नित्य सिंधु सुधारस सवदा[2] ॥

नरहरि दास

सखी-सम्प्रदाय में स्थान—

ग्राउस वाली सखी-सम्प्रदाय की शिष्य-परंपरा की सूची में इनका स्थान नवलदास के बाद है लेकिन भागवत-सम्प्रदाय में इनका क्रम सरसदेव जी के बाद है। भागवत-सम्प्रदाय में इनका नाम नरहरि देव जी दिया हुआ है। इनके संबंध में और कुछ ज्ञात नहीं। नागरी प्रचारिणी सभा वाली प्रति में इनके भी पद मिलते हैं।

सिद्धान्त के पद—

इनके सिद्धान्त के एक पद से इनकी भक्ति के स्वरूप का परिचय मिलता है। भगवान् के प्रेम को ही वे एकमात्र सत्य मानते हैं। विधि निषेध के चक्कर में, उनके मत से भगवान् का प्रेमी नहीं पड़ता।

जाको मन मोहन दृष्टि परे ।
सो तो भयो सावन को अंधो सूझत रंग हरे ।
जड चतन्य कछू नहिं समझत जित देख तित स्याम घरे ।
विह्वल विकल सभारत तन को घूमत नैन रूप भरे ॥
करनी अकरनी दोऊ सुधि भूले विधि निषेध सब रहे घरे ।
श्री नरहरिदास जे भये बावरे ते प्रेम प्रवाह परे[3] ॥

---

[1] मंगल, राग सूहा विलावल ५ । [2] वही १० ।

[3] सिद्धान्त के पद, राग सारंग १ ।

उनके दो निम्नलिखित दोहों में भी सिद्धान्त की बातें कही गई है।

नरहरि चाकी ज्ञान की मन मंदा करि पीसि।
पाचो इन्द्री हाथ करि तुरत मिले जगदीस ॥
नरहरि माला जनेऊ नाव नें बेर केलि को साथ।
जनेऊ कर्म जु की ये माला जपे जु हाथ[1] ॥

रूपासक्ति—

भगवान् के प्रेम में विह्वल हो नरहरिदास उनके अनोखे रूप को देख के सुध-बुध खोए हुए हैं।

सखी आज बने पिय सांवरे।
रूप अनूप अधिक छवि राजत कुटिल केस मनौं भांवरे ॥
टेढी पाग ग्रीवां कटि टेढी चितवनि की बलि जावरे ॥
श्री नरहरि दासि पिय की छवि निरखत प्यारी रूप समांव रे[2] ॥

एक दूसरे पद मे दूलह-दुलहनि के रूप मे बैठे राधा-कृष्ण की छवि का रस-पान कर रहे है लेकिन उनका मन अतृप्त ही बना रहता है।

कुंज महल के आगन बाजत सुखद बधाई।
बीना नाद मृदंग मधुर सुर लागत परम सुहाई ॥
फूली सखी सब मंगल गावत आनन्द उर न समाई।
करि सिंगार दूलह दुलहनि बैठें उमंगि बढी अधिकाई ॥
श्री नरहरि दासि निरखि तृन तोरत यह छवि बरनी न जाई।
नैंननि भरि सोभा रस पीवत पीवत मन न अघाई[3] ॥

नरहरिदास के निम्नलिखित पद मे काव्यत्व का सुन्दर उदाहरण मिलता है। इन पक्तियो में व्यक्त भाव सूरदास की कविताओ की याद दिलाते है—

अरे कारे बदरा तोमें स्याम हिराने।
ताहीं तें तू अंतर गर्व्यो विरहनि पीर न जानें ॥
परसि दकूल दामिनि अति चिमकत सत मख सारंग तानें।
मंद मंद मुरली धुनि गाजत बाजत मदन निसानें ॥
रंग रंग मिलें सुख उपजत आन रंग क्यों बानें।
श्री नरहरिदास ते अंतर कारे कारे सो रति मानें[4] ॥

---

[1] सिद्धान्त के पद १, २। [2] राग सारग ३।
[3] राग नट ६। [4] राग नट ४।

रसिकदास जी—

नागरीप्रचारिणी वाली सुरक्षित प्रति में इनके भी पद मिलते हैं। इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

सिद्धान्त के पद—

कल नहिं परत स्याम बिन देखें रहे प्रान चक चूरि।
कठनि अजीरन भई रूप की ओषदि लग तन भरि॥
भेदत नहीं ज्ञान गीता को सुनी कथा भरि पूरि।
श्री रसिक बिहारी की छवि उपरि किये जतन सब दूरि[1]॥

काव्यत्व—

इनके पदों में काव्य गुण भी हैं। नीचे के पद में उनकी कल्पना की उड़ान देखने को मिलती है।

हा हा कारे बदरा मेरी भरत नैन को कजरा।
तेरे बरन कहूँ स्याम भुलाने आन कुंज के डगरा॥
हो माननि कछू मान कियौ आन बान पै पगरा।
श्री रसिक बिहारी बिहँसि मिले तन बुझि गई तपसि
भ्रम गयौ सगरा॥[2]

साखी—

उनकी साखी भी इस संग्रह में देखने को मिलती है। हम उनमें से दो को नीचे उद्धृत करते हैं।

मेरे जिय में पिय बसे मैं पिय के जिय माहिं।
यसी अधिकौ कौन है जो जुगल चित्र पनि जाहिं॥
मो मन मोहै सांवरो मेरे नहीं विकार।
हों तोहि पूछों लाडिली ताको कहा विचार[3]॥

किशोरीदास जी (ललित किशोरी)

सिद्धान्त के पद—

रसिक दास जी के शिष्य किशोरीदास जी के पद भी इस संग्रह में मिलते हैं। साखी के अन्तर्गत इनके बहुत से पद हैं। उनमें से कुछ नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

[1] सिद्धान्त के पद राग विहागरा १।
[2] परम उज्ज्वल शृंगार रस के पद, राग विहागरो ६। [3] वही, ४, ५।

श्री वृन्दावन धाम, रंग सों जमुना रमहि अहार ।
ललित प्रेम को पाइहै, अद्भुत नित्य बिहार ॥
जो कोऊ उनके भये, तिन कों गति नहीं कोइ ।
ललित किसोरी भाव सों, पावेंगे निज गोद ॥
तन दीनो हरि मिलन को, ताकों वृथा न पोद ।
ब्रह्मादिक वछन रहे, सोइ सुलभ भयो तोद ॥
जो चाहे हरि मिलन कों, मैं मेरी को छोड़ ।
मैं मेरी को बाधिकैं, बहुत भये हैं भोड़ ॥
मिलत मिलत मिलिबो चहै, छिन छिन प्रीत नवीन ।
कुंज बिहारनि राधिके, ललित केलि लवलीन ॥

उनके लिये मुक्ति का कोई अर्थ नहीं, बल्कि वे मुक्ति को भी 'तारने' को तैयार हैं ।

जाऊ मुक्ति तो हू कों तारों ।
अंग संग नित्य बिहारनि हारों ॥
गौर स्याम हिये में धारों ।
ललित प्रिये पै तन मन वारों ॥[1]

गुरु-परिचय—

एफ० एस० ग्राउस[2] तथा बलदेव उपाध्याय[3] ने 'टट्टी संस्थान' वैष्णवों की परंपरा वाले भक्तों की जो सूचियां दी हैं उनमें श्री ललित किशोरी जी के गुरु का नाम रसिकदास अथवा रसिक देव जी दिया हुआ है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित उस संप्रदाय के भक्तों की वाणियों के संग्रह की जो हस्तलिखित[4] प्रति है उसमें लिखा हुआ है, 'अथ श्री स्वामी रसिकदास जी के परम प्रिये सिष्य श्री किशोरीदास जी जिनकी बानी लिख्यते ।' संगृहीत पदों में 'ललित किसोरी' नाम है, जो और बाद में लिखा हुआ है 'अथ श्री ललितकिशोरी दास जी के परम उज्ज्वल सिंगार रस के पद लिख्यते ।'

---

[1] सिद्धान्त के पद : राग विहागरो, ९२ ।

[2] मथुरा : ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर (तृतीय संस्करण, सन् १८८३ ई०) पृ० २२१ ।

[3] भागवत संप्रदाय, पृ० ३५७ ।

[4] संख्या ३७१।२६९ ।

इससे यही पता चलता है कि वे रसिकदास जी के शिष्य थे। लेकिन श्री वियोगी हरि ने लिखा है 'इनके गुरु श्री राधारमणीय गोस्वामी राधा गोविन्द जी थे।'[1] पता नहीं, श्री वियोगी हरि के ऐसा मानने का आधार क्या है।

जीवन-वृत्त

व्रजमाधुरी सार[2] में इनका जीवन वृत्तान्त दिया हुआ है। उसके अनुसार ललित किशोरी जी का वास्तविक नाम साह कुदन लाल जी था जो साह बिहारी लाल जी अग्रवाल के पुत्र थे। साह बिहारी लाल जी नवाब के जौहरी थे और लखनऊ के रहने वाले थे। ललित किशोरी जी के पिता की दो स्त्रियां थीं। पहली से साह रघुवर दयाल जी और साह मक्खनलाल जी दो पुत्र हुए और दूसरी से कुन्दनलाल जी और उनके भाई फुन्दनलाल जी हुए। इन दोनो भाइयों में बहुत प्रेम था। इन दोनो भाइयों ने गृहकलह के कारण लखनऊ छोड़ दिया और वृन्दावन में आ बसे। इन दोनों भाइयों के संबंध में गोस्वामी श्री राधाचरण जी लिखते हैं

> छोड़ि बादशाही वभव लक्ष्मणपुर त्याग्यो।
> श्री वृन्दावन वास दृढ़व्रत, अति अनराग्यो॥
> 'ललित निकुंज" बनाय राधिका रमन विराजे।
> रास विलास प्रकाश लच्छपद रचना भ्राजे॥
> ब्रजराज मग्न समाधि लिय, जुगल भ्रात निभय निपुन।
> श्री ललितकिशोरी, ललितमाधुरी प्रेम मूर्ति वृन्दाविपिन[3]॥

इस प्रकार से कुन्दन लाल जी 'ललित किशोरी" और 'कुन्दनलाल जी' ललित माधुरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों भाइयों ने लीला संबंधी अनेक सरस पदों की रचना की है। ललित किशोरी जी के पद अत्यंत मनोरम और सजीव हैं। प्रेम का सुन्दर चित्रण इनके पदों में मिलता है।

'उज्ज्वल सिंगार रस के पद—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा वाली हस्तलिखित प्रति में "उज्ज्वल सिंगार रस के पद" मिलते हैं। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

---

[1] व्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण) पृ० २६८।

[2] वही, पृ० २६७–६८।

[3] नव भक्तिमाल (व्रजमाधुरी सार पृ० २६७ पर उद्धृत)

सुष कौ सार समूह किसोरी।
रूप निधान रंग कौ सागर परम विचित्र महा अति भोरी ॥
छिन छिन लाल करत आधीनी सद प्रसन्न रहो तुम गोरी।
श्री कुंज विहारनि ललित लाडिली तुम बिनु और कहो मेरो कौं री[१] ॥

एक दूसरा पद—

हमरें बांट परी मुसिकानि।
निरखें केलि निकुंज माधुरी अद्‌भुत रस की खानि ॥
अंग संग श्री हरिदासि रसिक वर सहज सुभाइक बानि।
अपनी जानि विहारनि दासी दियो प्रेम सुष सानि[२] ॥

रूपासक्ति—

भगवान् की रूप माधुरी से आँखें मत्त बनी हुई घूम रही हैं.

घूमत नैन रूप रस माते।
चाहत मिल्यो मिलन ही को रति छिन छिन प्रति हुलसाते ॥
परम उदार सिरोमनि सुष निधि मंद मंद मुसिकाते।
अपनो जानि ललित के हित सों इनि ही के रंग राते[३] ॥

श्री राधिका जी ही उनके लिये सब कुछ हैं।

स्यामा प्यारी राधिके सुष रासि हमारी।
रोम रोम तन मन मिली अति ही हितकारी ॥
अद्‌भुत प्रेम प्रकासिनी निज प्रीतम प्यारी।
ललित किसोरी प्रान हैं यह जीव जियारो[४] ॥

लीला के पद—

इनके लीला के पद अनेक हैं और उनमें एक अद्‌भुत माधुरी है।

मैं तेरे संग मुरली स्याम बजाऊं।
ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अंगुरी चपल चलाऊं ॥
पंचम रिखभ निषाद सुरनि लौं, संग सग टीप लगाऊं।
ललित किसोरी ईमन, काफी, सोरठ गाय सुनाऊं[५] ॥

---

[१] नवभक्तिमाल, राम पूरवी, संख्या २०।
[२] वही, राग काफी, मख्या ४४।
[३] वही, राग, सोरठ, सख्या ६१। [४] वही, पद सख्या १०१।
[५] ब्रजमाधुरी सार, ईमन २८, पृ० २७५।

भक्ति—

इसी प्रकार से सब कुछ छोड कर भगवान् की भक्ति का ही उन्होंने शरीर धारण करने का फल बतलाया है।

लाभ कहा कथन तन पाये।
भजे न मदुल कमल-दल लोचन, दुख-मोचन हरि हरषि न ध्याये ॥
तन-मन-धन अरपन ना कीन्हें, प्रान प्रानपति-गुननि न गाये ॥
जोवन, धन, कलधौत धाम सब, मिथ्या आपु गवाय गवाये ॥
ललित किसोरी मिट तापना, बिन दृढ़ चितामणि उर लाये[1] ॥

"ललित माधुरी" के पद—

नीचे ललित माधुरी जी के दो पद उद्धृत किये जाते है जिनसे इनकी कवित्व शक्ति का पता चलता है।

बाकी अदा प म बलिहारी।
बाकी पाग, कैस लट बाकी, बाकि मुकुट-छवि प्यारी।
बांकी चाल, बाकिही चितवनि, बाकि मुरलिका धारी ॥
कह लों ललित माधुरी बरनौं, आपुहि बाके बिहारी[2] ॥
मोहन चोर पकरि कसे पाऊ।
देखत हौं दृग भरि भरि सजनी, परसन का रहि रहि ललचाऊ ॥
दुरयौ निकुज लता बन-वीथिनि निपट निकट म तोहि बताऊ ॥
ललित माधुरी हो में जो सग, चित चोर हौं आनि मिलाऊ[3] ॥

भगवत रसिक

काल और गुरु परिचय—

मिश्रबन्धु विनोद[4] में इनका समय स० १६२७ बतलाया गया है। वियोगी हरि जी[5] ने इनका जन्म-सवत अनुमानत १७९५ बतलाया है। बलदेव उपाध्याय न भी वियोगी हरि जी के मत को स्वीकार किया है और उनका

[1] ब्रजमाधुरीसार बिहार २३ पृ० २७४।
[2] वही, सारठ ४ पृ० २७९।
[3] वही जिला ५ पृ० २७९।
[4] मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ३६२।
[5] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम सस्करण), पृ० २१८।

जन्म स्थान सागर जिले का गढ़ाकोटा स्थान बतलाया है[1]। ये टट्टी संप्रदाय के अंतिम आचार्य श्री ललित मोहिनी जी के शिष्य थे। कहते हैं कि पहले ये गणेश जी के उपासक थे। प्रसन्न होकर गणेश जी ने इन्हें श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति "सखी भाव" से करने के लिये उपदेश दिया। निम्नलिखित पद से इस बात का संकेत मिलता है :

हमें वर गुरु गनेस जू दीनो।
जग भरि मूंड फिराय सीस पर नमस्कार शुभ कीनों।
आनंदघन को पद दरसायो, दम्पति-रति-रस भीनों।
'भगवत रसिक' लडैती-लालन ललित भुजन भरि लीनों[2] ॥

अनासक्त भाव—

कहते हैं कि टट्टी संस्थान के अन्तिम आचार्य इनके गुरु ललित मोहिनी जी के बाद भक्तों ने भगवत रसिक से बहुत ही आग्रह किया कि वे गद्दी का अधिकार लें, लेकिन इन्होंने स्वीकार नहीं किया और निर्लिप्त भाव से भक्ति-भावना में लगे रहे। रात-दिन भगवद् भजन में ही लगे रहे। इनमें अनन्य भक्ति थी।

रचनाएँ—

इनके पद दोनों प्रकार के हैं। एक ओर जहाँ वैराग्य का सुन्दर वर्णन मिलता है तो दूसरी ओर शृंगार का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। इनकी पाँच रचनाएँ बतलाई जाती हैं (१) अनन्य निश्चयात्मक[3] (लखनऊ निवासी लाल केदार नाथ जी वैश्य ने छपवा कर वितरण किया था), (२) नित्य विहारी युगल ध्यान, (३) अनन्य-रसिका-भरण (४) निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध (५) निर्बोध मनरंजन।

भगवद् भक्ति का रस—

भगवद् भक्ति के रस को समझने के लिये वैसा ही रसिक होना चाहिए अन्यथा उस रस का आस्वादन संभव नहीं। भगवत् रसिक जी ने कहा है :

---

[1] भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३५८।
[2] वही, पृ० ३५८।
[3] ब्रजमाधुरी सार, पृ० २२०।

तव मुख-कमल नयन अलि मेरे।
पलक न लगत पलकु बिनु देखे
अरबरात अति फिरत न फेरे।
पान करत मकरन्द रूप रस
भूल नहीं फिर इत-उत हेरे।
भगवत रसिक भये मतवारे।
घूमत रहत छके मद तेरे ॥[1]

इस रहस्य को सब लोग नहीं समझ सकते
'भगवत रसिक' रसिक की बातैं
रसिक बिना कोउ समुझि सक ना ॥[2]

क्योंकि भगवान् की कृपा से जिन्हें यह वस्तु प्राप्त हो जाती है उनका हृदय पवित्र प्रेम से भर जाता है और उनके लिये स्त्री-पुरुष का भेद मिट जाता है

यह दिव्य प्रसाद प्रिया प्रिय को।
बरसत हौं मन मोद बढ़ावत परसत पाप हरत हिय को।
पावन परम प्रेम उपजावत, भुलवत भाव पुरुष तिय को ॥
'भगवत रसिक' भाव तो भूषन, तिहि छन होन जुगुल जिय को ॥

भगवान के उस भक्त के लिये उपासना, पूजा-पाठ तीर्थ व्रत विधि निषेध कोई अर्थ नहीं रखते।

लखी जिन लाल की मुसक्यान।
तिनहिं बिसरी वेद विधि, जप, जोग, संयम ध्यान।
नेम, व्रत, आचार, पूजा पाठ, गीता-ज्ञान।
'रसिक भगवत' दृग दई असि, ऐंचिके मुख म्यान ॥[3]

वृन्दावन—

भगवत रसिक जी ने बतलाया है कि उनका वृन्दावन उनके हृदय में है और वहीं भगवान् की नित्य विहार-लीला चलती रहती है।

---

[1] अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ टोटी २।
[2] वही, टोटी ३।
[3] वही, पद ३।
[4] वही, पद ४०।

हमारो बृन्दावन उर और।
माया काल तहा नहिं व्यापै, जहां रसिक सिर मौर।
छूटि जाति सत-वसत-वासना, मन की दौरादौर।
'भगवत रसिक' बतायो श्री गुरु, अमल अलौकिक ठौर॥[1]

सिद्धान्त के पद—

कोई राधा को स्वकीया, कोई परकीया कहता है लेकिन वे भूल करते हैं। वह सहज प्रेम है। वहाँ स्वकीया-परकीया दोनो कोई भी अर्थ नही रखते।

कोउ सुकिया कोउ परकिया कलप किये मतवादि।
जोरी भगवत रसिक की नित्य अनन्त अनादि॥
नित्य अनन्त अनादि लोकतें रीति विलच्छन।
श्रुति सुमृति विलगाइ देखि अनुभव के अच्छन॥
सहज प्रेम माधुर्य रहत अनुरागे दोऊ।
ललिता सखी प्रसाद विना तहं जात न कोऊ॥[2]

इन्होंने कुडलिया छद भी बहुत से लिखे है। एक कुडलिया नीचे उद्‌धृत कर रहे हैं जिससे इनकी उदार मनोवृत्ति का पता चलता है:

जाको जैसी लखि परी तैसी गावै सोय।
बीथी भगवत मिलन की, निहचय एक न होय॥
निहचय एक न होय, कहे सब पृथक् हमारी
स्रुति स्मृति भगौत, सखि गीतादिक भारी॥
भूपति सवनि समान, लखै निज पर जा ताको।
जाको जैसे भाव, सुभासै तैसी ताको॥[3]

श्री राधिका की चरणो की शोभा अपूर्व है। वह भक्त के हृदय को सौन्दर्य से भरती जाती है।

जावक युत युग चरण लली के।
अद्‌भुत अमल अनूप दिवाकर मोहन मानस कंजकली के।
मंजुल मृदुल मनोहर सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंज गली के।
सुरतरु कामधेनु चिन्तामनि भगवत रसिक अनन्य अली के॥[4]

---

[1] अनन्य निश्चयात्मक ग्रथ, पद ४१। [2] वही, कुण्डलिया ४, पृ० ८०।
[3] वही, कुण्डलिया १६।
[4] वही, राग काफी, ३३।

सहचरी शरण

गुरु परिचय तथा रचनाएँ—

सहचरिशरण जी सखी सम्प्रदाय के एक बहुत बड़े महात्मा हो गए हैं। टट्टी सस्थान की गुरु-परपरा में इनका स्थान बारहवा है। ये श्री राधिका दास जी के शिष्य थे और इनका असली नाम सखीशरण था। वियोगी हरिजी इनका जन्म-काल विक्रमीय सवत उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्ध मानते हैं।[1] इस सम्प्रदाय के महतो और महात्माओ के सबध में उन्होंने 'ललित प्रकाश' ग्रथ की रचना की है जिससे इस सम्प्रदाय की बहुत-सी बातो की जानकारी प्राप्त होती है। 'गुरुप्रणमणिमा' ओर 'आचार्योत्सव सूचना' दोना ललित प्रकाश में वर्णित हैं और इस सम्प्रदाय की दृष्टि से ये अग बड़े महत्व के हैं। स्वामी हरिदास जी से लेकर श्री ललित मोहिनी जी तक का ही वर्णन अपने ग्रथ में किया है। लगता है जैसे इन्ही अष्टाचार्यों के साथ टट्टी सस्थान के महत्व को वे समाप्त मानते है। इनकी फुटकल रचनाएँ भी मिलती हैं। ललित प्रकाश के अलावा इनका दूसरा नाम स्वतत्र ग्रथ 'सरसमजावली' है।

इनके काव्य की विशेषता—

इनकी रचनाए अत्यन्त सुदर है। उनमें काव्य का चमत्कार देखने को मिलता है। इनकी भाषा में ब्रजभाषा फारसी पजाबी खडी बोली आदि सभी के दर्शन होते हैं। भगवान् से प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं

> निरदय हृदय न होहु मनोहर सदय रहौ मनभावन।
> नवल मोहिला मोहि तज जिनि, तोहि सौंह प्रिय पावन॥
> रसिक 'सहचरी सरन' स्याम घन रस बरसावन सावन।
> दरस देहु वर बदन-चद्रमा, चख चकोर विलसावन॥[2]

भगवान् के सौन्दर्य पर मुग्ध हुए बिना भक्त हृदय रह नहीं सकता।

> दृग जलजात रसीले हसि हसि ललचत नहिं मन का के।
> उर चटपटी लगावत छिन छिन चन मन मय ताके॥
> बरबस प्रान हरत निरखौरी मुख विलास मधु छाके।
> सहचरिशरण दौरि कोउ राखो डारत फद प्रभा के॥[3]

---

[1] ब्रजमाधुरी सार, (अष्टम सस्करण), पृ० २४५।

[2] सरसमजावली, पद सख्या १५, पृ० १०।

[3] वही, पद सख्या ४८, पृ० २९।

रूपासक्ति—

भगवान् की त्रिभग-मूर्ति उनके हृदय में बसी हुई है।

कटि किंकिनि, सिर मोर मकुट वर, उर वनमाल परी हैं।
करि मुसिक्यान चकाचौंधी चित, चितवनि रंग-भरी हैं॥
'सहचरिसरन' सुविस्व-विमोहिनी, मुरली अघर घरी हैं।
ललित त्रिभगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी हैं॥[1]

(घ) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि

हितहरिवंश—

उपासना में श्री राधा की प्रधानता—

हित हरिवंश जी श्री प्रिया प्रियतम के चरणो के उपासक थे। श्री रावा जी को प्रधान मानते थे। ये रामकृष्ण जी की उपासना किया करते थे और उन्ही का ध्यान करते, लेकिन प्रवान श्री रावा जी को ही मानते थे। कहते है कि स्वप्न मे श्री रावाजी से उन्होने मत्र ग्रहण किया था।

भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय—

राधावल्लभीय सप्रदाय के ये प्रवर्त्तक थे। रावावल्लभीय सिद्धान्त का प्रवर्त्तन कर इन्होंने भक्ति की एक नई धारा चलाई। नाभा जी के "भक्तमाल[2]" मे इनका परिचय देते हुए कहा गया है।

(श्री) राधाचरण प्रवान हृदै सुदृढ उपासी।
कुज केलि दंपति, तहा की करत खवासी॥
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं, दास अनन्य उतक्ट व्रतधारी॥
व्यास सुवन पथ अनुसारै, सोई भले पहिचानिहैं।
(श्री) हरिवंश गुसाई भजन की, रीति सकुत कोउ जानिहै॥

इसकी व्याख्या मे वार्तिक तिलककार ने लिखा है कि 'गुसाई श्री हित-हरिवश जी के भजन की रीति विरला ही कोई जान सकता है। ये श्री प्रिया प्रियतम के चरणो के उपासक थे। श्री रावा जी को प्रवान मानते थे।

---

[1] सरस मञ्जावली, मज ३८।

[2] भक्तमाल (लखनऊ, दूसरी वार प्रकाशित) सन् १९२६ ई० छप्पय सं० ९० पृ० ६०३–४।

आपके हृदय में अति सुदृढ भक्ति थी। दम्पति के कुंजकेलि की विशेष कथय-भावना सखी भाव से किया करते थे। श्री महाप्रसाद में आपका विश्वास प्रसिद्ध है, उसके बडे अधिकारी थे क्योंकि महाप्रसाद को अपना सर्वस्व जानते थे। 'विधि निषेध (सामान्य धर्म) पर चित्त न देकर भागवत धर्म (विशेष धर्म) मालाकंठी अनन्य भक्ति का उत्कट व्रत मन में रखकर श्री राधाकृष्ण की बडी भाग्यवती दासी रहे। श्री व्यास सुवन (श्री १०८ शुकदेव जी) के तथा आपके मार्ग पर चलने वाला ही भाग्य भाजन इस पथ का पहिचान सकता है और प्राय प्रेमी रसिक जन कोई-कोई जानते हैं[1]।'

भक्तमाल से पता चलता है कि 'विधि निषेध' को मानकर चलना वे आवश्यक नहीं मानते थे उनके लिये अनन्य भक्ति ही सब कुछ थी। सखी भाव से ही उन्होंने राधाकृष्ण की सेवा की। श्री राधा को ही प्रधान स्थान उन्होंने दिया।

जीवन-वृत्त—

ये गौड ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम व्यास जी और माता का नाम श्री तारारानी था। इनके पिता 'बादशाह के नौकर भारी अधिकार वाले थे[2]।' इनका जन्म विक्रमी संवत १५५९ में हुआ[3]। श्री राधावल्लभीय पंडित गोपाल प्रसाद शर्मा ने इनका जन्म संवत १५३० माना है। लेकिन वियोगी हरि जी ने दिखलाया[4] है कि संवत १५३० को उनका जन्म संवत् मानना ठीक नहीं बैठता। उनका लीला-संवरण सं० १६५० के लगभग वियोगी हरि जी मानते हैं[5]। इनके पिता देवबन्द (सर्कार सहारनपुर) के वासी थे। श्री वियोगी हरि का कहना है कि श्री हितहरिवंश जी का जन्म बाद ग्राम में हुआ था। यह ग्राम मथुरा से चार मील दक्षिण है। यहाँ प्रति वर्ष उनकी जयन्ती मनाई जाती है।

गोसाइं हित हरिवंश जी के चार पुत्र और एक कन्या थी। वैसे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वे अनासक्त थे। कहते हैं कि संवत् १५८२ में इन्होंने

---

[1] भक्तमाल पृ० ६०४–५।

[2] वही, पृ० ६०६।

[3] वही, पृ० ६०६।

[4] ब्रजमाधुरी-सार (अष्टम संस्करण), पृ० ६४।

[5] वही पृ० ६४।

[6] वही पृ० ६३–६४।

श्री राधावल्लभ जी का श्री विग्रह वृन्दावन मे स्थापित किया[1]। इन्हें श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार मानते हैं। इन्होंने राधा-कृष्ण के विशुद्ध शृंगार का वर्णन किया है। संस्कृत और व्रजभाषा की उनकी रचनाएं अपूर्व हैं।

भगवत्प्रेम का सरस वर्णन—

उनके पदो में उनकी दृढ भक्ति का सुन्दर सरस वर्णन है। कोई कुछ भी कहे, वे तो अच्छी तरह से समझ कर प्रकट रूप से अपने प्रियतम के प्रेम में बेसुध हैं। उन्हें छिपने-छिपाने की आवश्यकता नहीं। आखिर उन्हें भय ही किस बात का है।

मोहन लाल के रंग राची।
मेरे ख्याल परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची॥
कन्त अनत करौ कि न कोऊ, नाहिं धारना साची।
यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट ह्वै नाची॥
जाग्रत सयन रहत ऊपर मनि, ज्यो कंचन संग पांची।
"हित हरिवंस" डरौं काके डर, हौं नाहिन मति काची[2]॥

प्रेम में बेसुध होकर प्रेमी को संसार, समाज के नियमों की चिन्ता ही क्या? उनके लिये प्रियतम ही सब कुछ है। हित हरिवंश जी को इस बात की चिन्ता नहीं कौन किसमें मन लगाए हुए है। उनके लिए तो राधा कृष्ण ही सब कुछ हैं।

रहौ कोऊ काहू मनहि दियें।
मेरे प्राननाथ श्री स्यामा, सपथ करौं तिन छियें।
जे अवतार कदंब भजत हैं, धरि दृढव्रत जु हियें।
तेऊ उमगि तजत मरजादा, वन-विहार-रस पियें[3]॥

राधावल्लभ के मुख-कमल, उनकी रूप-माधुरी के दर्शन ही उनके लिये सब कुछ हैं। उनका ध्यान उनके नाम का जाप और वृन्दावन का वास ही 'हित हरिवंश' जी के लिये अभिलषित वस्तु है।

निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस।
राधा वल्लभ-मुख-कमल, निरखत 'हित हरिवंस'॥

---

[1] व्रजमाधुरी-सार (अष्टम संस्करण), पृ० ६५।
[2] वही, सिद्धान्ती पद, बिलावल ६।
[3] वही, भैरवी ७।

सब सों हित निहकाम मन, वृन्दावन विस्राम ।
राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान, मुख नाम ॥
रसना कटौ जु अन रटौ, निरखि अन फुटौ नैन ।
स्रवन फुटौ जो अन सुनौ, बिनु राधा जसु बैन[1] ॥

रूपासक्ति—

श्री राधा जी की छवि पर, उनके अंग-अंग की माधुरी पर कृष्ण मुग्ध हैं। अपूर्व है वह सौन्दर्य ! हित हरिवंश जी ने इस रूप माधुरी का जो वर्णन किया है वह अत्यन्त कोमल और मधुर है।

ब्रज-नवतरुनि-कदंब मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी ।
नख सिख लौं अंग-अंग माधुरी मोहे स्याम धनी ॥
यों राजत कबरी गूथित कच कनक कञ्ज बदनी ।
चिकुर चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानों ग्रसत फनी ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी ।
भ्रकुटि काम को दंड, नैन सर, कज्जल रेख अनी ॥
भाल तिलक, ताटंक खंड पर नासा जलज मनी ।
दसन कुन्द, सरसाधर पल्लव पीतम-मन-समनी ।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सामल बिंदु कनी ।
प्रीतम प्राण रतन संपुट कुच कंचुकी कसि तनी ।
भुज मृनाल बल हरित वलय जुत परस सरस स्रवनी ॥
स्याम सीस तरु मनो मिड बारी रचि रुचिर रनी ।
नाभि गंभीर मीन मोहन मन खेलन को हृदनी ।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि वृत कदलि खंभ जघनी ॥
पद अंबुज जावक जुत भूषन प्रीतम उर अवनी ।
नव नव भाय विलोभि भामगम विहरत वर करनी ॥
(जै श्री) 'हित हरिवंस' प्रसंसित स्यामा कीरति विसद घनी ।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर विस्व-दुरित-दवनी ॥[2]

इस रूप पर भला कौन मुग्ध न हो। सभी मोहित हो जाते हैं। पशु पक्षी, देवताओं की स्त्रियाँ, तारागण, चराचर सभी का मन लुट जाता है।

---

[1] सिद्धान्त के दोहा १०, ११, १२।
[2] हितचौरासी पद संख्या २९।

देखत मधुकर कोरी। मोहे खग मृगबेली।
मोहे मृग धेनु सहित सुर सुन्दरि प्रेम मगन पट छूटे॥
उडगन चकित थकित ससि मंडल कोटि मदन मन लूटे॥
अधर पान परिरंभन अति रस आनन्द मगन सहेली॥
जै श्री हित हरिवंश रसिक सचु पावत देखत मधुकर केली॥[1]

रचनाएँ—

हित हरिवंश जी की सुप्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) राधा सुधानिधि,[2] (२) हित चौरासी[3], (३) यमाष्टक (४) चतुश्लोकी (५) श्री यमुनाष्टक (६) राधा-तंत्र[4] (७) वृन्दावन शतक[5], हित सुखसागर।[6] इन रचनाओं में राधा सुधानिधि और हित चौरासी को ही अधिक ख्याति मिली। राधा सुधानिधि मे २७० संस्कृत के श्लोक हैं। इसमें श्री राधा की प्रशस्ति, उनका सौन्दर्य एवं सेवाभाव का विस्तार से वर्णन किया गया है। हित चौरासी मे ८४ ब्रजभाषा के पद हैं जिनमें सिद्धान्त संबंधी पद, तथा युगल-स्वरूप की रूप-माधुरी तथा सेवा-माधुरी का सुन्दर कवित्वमय वर्णन है। इनके अन्य ग्रंथों में हृदय पक्ष को प्रधानता होते हुए भी कला-पक्ष की अवहेलना नही हुई है। अध्यात्म-पक्ष का विवरण इन ग्रंथो मे कम है। भक्त हृदय को मुग्ध करने वाली राधाकृष्ण की कुंज-केलि और वन-विहार के ही ललित वर्णन हैं।

हरिराम शुक्ल 'व्यास'—

इनकी भक्ति का स्वरूप और जीवन-वृत्त—

ये राधावल्लभीय सम्प्रदाय के थे लेकिन अन्य सम्प्रदायो के प्रति इनकी समादर की दृष्टि थी। सन्तों के सेवक थे। इनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे पता चलता है कि उनमे अनन्य भक्ति थी,

[1] हित चौरासी, सारग ६३।

[2] हिन्दी अनुवाद के साथ बाबा हितदास ने बाद ग्राम, पोस्ट बरारी, जिला मथुरा से इसका प्रकाशन किया है।

[3] ब्रजभाषा में निबद्ध चौरासी पद।

[4] यह ग्रंथ भी इनके नाम से प्रसिद्ध है।

[5] लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण १८९४।

[6] श्री नारायण अलीगढ, १९३६।

विधि निषेध का उनकी दृष्टि से कोई मूल्य नहीं था, तथा जात पात के झंझटों से वे बरी थे। श्री राधा जी की रूप-माधुरी तथा उनकी लीला में ही मस्त रहते हुए उन्होंने सारा जीवन वृन्दावन में बिता दिया। वैसे वे ओरछा के रहने वाले सनाढय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम सुमोखन शुक्ल था। पैंतालीस वर्ष की अवस्था में ओरछा छोड़कर वृंदावन आए। यह घटना संवत १६१२ की है।[1]

वृन्दावन तथा भक्तों का महत्व—

ये हितहरिवंश जी के अनन्य भक्त थे। वृंदावन में आपकी विशेष निष्ठा थी। वे न स्वयं वृन्दावन छोड़ने की बात सोचते और न दूसरे संतों को सोचने देते। भक्तों का स्थान उनकी दृष्टि में भगवान् से भी बढ़कर था, फिर भक्तों की जाति देखने का प्रश्न कहाँ उठता।

'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनके सीस॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठनि खैये मागि॥[2]

भक्तमाल में वर्णित इनका परिचय—

हरिराम जी हरिभक्तों को अपना इष्ट मानते। 'भक्तमाल' में कई प्रसंगों का उल्लेख है, जिनसे इनके दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण हो जाता है। भक्तमाल के अनुसार कोई भगवान के मत्स्य, कोई वाराह कोई नृसिंह तथा वामन परशुरामादि अवतारों की आराधना करते हैं लेकिन व्यास जी महाराज सन्तों की ही आराधना किया करते थे। कहते हैं कि एक रात शरद् पूनो के रास रहस्य समाज के समय श्री प्रिया जी का नूपुर टूट गया वहीं उसी क्षण अपने कंध का नवगुण अर्थात (यज्ञोपवीत) तोड़कर उसी से श्री पद पंकज में घुंघरू को गूंथ कर आपने ठीक कर पहना दिया।[3]

काहू के आराध्य मच्छ कच्छ, नरहरि सूकर।
वामन, फरसाधरन, सेत बंधन, जु सलकर॥

[1] भक्तमाल, पृ० ६११।

[2] भक्त कवि व्यास जी साखी हरिजन महिमा २३, २५।

[3] भक्तमाल (लखनऊ दूसरी बार प्रकाशित, सन् १९२६ ई०), छप्पय सं० ९२ पृ० ६१०।

एकन कें यह रीति नेम नवधा सो लायें ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ायें ।।
नौगुण तोरि नूपुर गुह्यौ महत सभा मधि रास के ।
उतकर्ष तिलक अरु दाम को, भक्त इष्ट अति 'व्यास' के ।।[1]

रचनाएँ—

हरिराम शुक्ल 'व्यास' जी की दो कृतियों का पता चलता है (१) व्यास वाणी (ब्रजभाषा के लगभग ७०० पद, इसे आचार्य राधाकिशोर गोस्वामी ने सं० १९९४ मे प्रकाशित किया है, (२) नव रत्न, यह संस्कृत में सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का निदर्शक ग्रंथ है जो अभी तक अप्रकाशित है ।

संयोग-वर्णन—

इनके पद अति भाव-पूर्ण तथा ललित हैं, स्वामिनी (श्री राधा) पिय (श्रीकृष्ण) नाचना सिखा रही है । इधर रस की स्रोतस्विनी में प्रियतम गोता लगा रहे हैं । उधर मान के 'लकुट' का ध्यान उन्हें भयभीत कर रहा है :

(राग केदारो)

पिय को नांचन सिखावत प्यारी ।
वृन्दांवन में रास रच्यौ है, सरद-चन्द-उजियारी ।
मान गुमान लकुट लिये ठाढ़ी, डरपत कुंजबिहारी ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, हंसि-हंसि दै करतारी ।।[2]

उनकी स्वामिनी ऐसी है जिनका नाम मुरली में ले लेकर श्याम बराबर याद किया करते हैं । उन्होने करोडो रूप (छद्म वेश) धारण किया लेकिन पार नही पाते ।

(राग कान्हरो)

परम धन राधा नाम अधार ।
जाहि श्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार ।
जंत्र-मंत्र अरु वेद-तंत्र में सबै तार को तार ।
श्री सुक प्रगट कियौ नहिं यातें जानि सार को सार ।।

---

[1] भक्तमाल (लखनऊ, दूसरी बार प्रकाशित, सन् १९२६ ई०) छप्पय सं० ९२ पृ० ६०९-६१० ।

[2] भक्त कवि व्यास जी (सम्पादक वासुदेव गोस्वामी), सरद रासोत्सव ६२२ ।

कोटिन रूप धरे नद-नदन तऊ न पायो पार।
व्यासदास अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार ॥[1]

व्रज के प्रति भक्ति—

व्रज के प्रति उनकी भक्ति चरम तक पहुंच गई थी। वृन्दावन में रहने के लिये वे सब कुछ सहने का तैयार थे। साधुओं के पत्तल चुन चुन कर जूठे भात से पेट भरकर घूर के चीथड़ा से शरीर की रक्षा कर के वृन्दावन में रहने के अभिलाषी थे।

ऐसे हीं बसिए व्रज-वीथिनि।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषियत सीथिन।
घूरनि में के बीन चिनघटा रछया कीज सीतिनि।
कुंज-कुंज प्रतिलता लोटि उड, रज लागे अगो यिनि।
नितप्रति दरस स्याम-स्यामा को, नित जमुना-जलपीतिनि।
ऐसेहि 'व्यास' होत तन पावन, इहि विधि मिलत अतीतिनि।[2]

ध्रुवदास—

रचनाएँ—

ध्रुवदास जी के चालीस ग्रंथों की सूची श्री वियोगी हरि जी ने दी है[3]। उनमें कुछ के नाम यह हैं वृन्दावन-सत, सिंगार-सत रस रत्नावली, नेह मजरी रतिमजरी, वन-विहार रग विहार, रस बिहार, मानरस-लीला प्रेमलता, प्रेमावली, भजन-कुंडलिया, भक्त नामावली, प्रीति चौवनी रसानद लीला हित सिंगार लीला, व्रज लीला, जीव-दशा, वैद्य लीला, दान लीला आदि। मन शिक्षा ख्याल हुलास लीला तथा बयालीस वानी भी ध्रुवदास के नाम से प्रसिद्ध है वैसे यह संदेहास्पद है कि ये ग्रंथ उन्हीं के द्वारा रचित है या नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से 'भक्त-नामावली अधिक महत्व की रचना है।

गुरु परिचय—

कहते है कि स्वप्न द्वारा ये हित हरिवंश जी के शिष्य हुए। गुरु के प्रति इनकी बड़ी भक्ति थी। ये वृन्दावन में बहुत काल तक रहे। उनके

[1] भक्त कवि व्यासजी (सम्पादक वासुदेव गोस्वामी) सिद्धान्त, नाम की स्तुति, ३१।
[2] भक्त कवि व्यास जी, सिद्धान्त ९७।
[3] व्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण) प० १६०।

बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। 'रास सर्वस्व' से यह लगता है कि ये रासलीला के बहुत बड़े अनुरागी थे और करहला ग्राम के ये वासी थे। सभवत इनका जन्म स० १६४० में हुआ और गोलोक धाम सवत् १७४० के लगभग है।

माधुर्य-भाव—

कृष्ण की मधुर लीला के ये अनुरागी थे। इनके काव्य मे इनके माधुर्य भाव की उपासना का पता चलता है। इनका काव्य अत्यन्त सरस और मधुर है। वृन्दावन इनको अत्यन्त प्रिय था।

वृन्दावन—

यह वृन्दावन सब लोको मे अलग है।

न्यारी है सब लोक तें वृन्दावन निज गेह।
लसत लाडिली लाल जह भीजे सरस सनेह॥
गौर स्याम तन मन रगे प्रेम स्वाद रस सार।
निकसत नहिं तिहि ऐन तें अटक सरस विहार॥[1]

रूपासक्ति—

स्वामिनी (श्री राधा) जी के रूप को देख कर भक्त कवि का हृदय विभोर हो उठा है। विचित्र है वह शोभा।

बड़े बडे उज्ज्वल सुरंग अनियारे नैन अंजन की रेख हेरे हियरो सिरात है।
चपलाई खंजन की अरुनाई कंजन की उजराई मोतिन की पानिप लजात है।
सरस सलज्ज नये रहत हैं प्रेम भरे चंचल अंचल में कैसे हूं समात हैं।
हित ध्रुव चितवनि छटा जिहि कोद परें तिहि ओर बरखा सो रूप की ह्वै जात हैं[2]।

उस रूप का वर्णन करना असभव है चूकि क्षण क्षण में ही वह और का और हो जाता है।

कुंवरि छबीली अमित छवि छिन छिन औरे और।
रहिगे चितवन चित्र से परम रसिक सिरमौर॥[3]

---

[1] वृन्दावन शतक, पृ० ४।

[2] श्रृगार शतक, पृ० ९।

[3] वही, पृ० २०।

प्रेम वर्णन—

प्रेम की प्यास ऐसी होती है जिसका कुछ नहीं कहना। वह प्यास मिटने वाली नहीं। आंखें पीती जाती हैं, लेकिन उनकी प्यास मिटती कहां है ?

प्रेम तषा को ताप ध्रुव क्यों हूं कहो न जात।
रूप नीर छिरकत रहे तऊ न नैन अघात॥[1]

राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला देखकर भक्त कवि आत्म विभोर हो उठता है।

अलबेली सुकुमारी नैनन के आगे रहे,
तब लगि प्रीतम के प्रान रहे तन में।
यहे जिय जानि प्यारी पलहू न होत न्यारी,
तिनहूं के प्रेम रंग रंगी रहो मन में।[2]

अथवा

प्रेम रासि दोउ रसिकवर, एक बस रस एक।
निमिष न छूटत अंत संग यह दुहुनि की टेक॥[3]

चाचा हित वृन्दावन दास

'चाचा' शब्द का प्रयोग—

इनके चाचा जी कहलाने का कारण यह था कि ये श्री राधावल्लभीय गोस्वामी हितरूप जी के शिष्य थे और तत्कालीन गुसाईं जी के पिता जी भी इन्हीं के शिष्य थे।[4] इसलिये गुसाईं जी इन्हें 'चाचा' जी कहते थे और इसीलिये ये 'चाचा' हित वृन्दावन दास के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

काल निर्णय—

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त नहीं है। किशोरीशरण अली जी ने 'लाड सागर'[5] में इनका परिचय दिया है। अली जी के अनुसार इनका जन्म सं० १७४४ अथवा इससे पूर्व ही है। पं० रामचन्द्र

[1] नेह मंजरी, पृ० ८।
[2] आनंद दसा विनोद, पृ० ११९।
[3] रंग विहार, पृ० ११०।
[4] ब्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण) पृ० १५।
[5] प्रकाशक, लाला जुगलकिशोर काशीराम रोहतक मण्डी (पूर्व पंजाब) अक्षयतृतीया संवत् २०११ (प्रथम संस्करण)।

शुक्ल[1] ने इनका जन्म संवत् १७६५ माना है और मिश्र बन्धुओं ने संवत् १७७०। लेकिन श्री किशोरीशरण जी ने चाचा हित वृन्दावनदास के वाणी के आधार पर इन संवतो को ठीक नही माना है।

जीवन-वृत्त—

श्री अली जी ने बतलाया है कि चाचा जी की वाणियो से यह संकेत तो अवश्य मिलता है कि वे ब्राह्मण थे, लेकिन यह पता तो नहीं चलता है कि वे गौड़ ब्राह्मण थे, जैसा कि श्री वियोगी हरि[2] जी ने लिखा है।' ये किस ग्राम या नगर के थे यह भी पता नही चलता। इनका बचपन कष्ट में बीता। ये बचपन में ही पिता माता के साथ वृन्दावन चले आए थे और वही इनकी शिक्षा दीक्षा हुई। बहुत दिनो तक गृहस्थाश्रम में रहकर इन्होंने वैराग्य लिया था। महाराजा नागरीदास के भाई बहादुर सिंह इनके आश्रय-दाता थे। गृह-कलह को देखकर ये वृन्दावन चले आए।[3]

रचनाएँ—

इनके पदो की संख्या एक लाख से भी ऊपर है। परम्परागत विषयो पर इन्होंने अत्यधिक लिखा है। रसास्वाद के नये प्रकारो की भी खोज की है। सूरदास जी की तरह इन्होंने भी कृष्ण की बाल लीलाओ का सुन्दर वर्णन किया है। 'लाड सागर' मे इन्होंने राधा और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। लीला गान के अलावा उपदेशात्मक पद्यो आदि की भी रचना की है। उनकी रचनाओ में उत्तम काव्य के नमूने मिलते हैं। प्रेम की स्वाभाविक दशा तथा अनन्य प्रेम का चित्र नीचे के पद में है·

प्रेम का स्वाभाविक चित्रण—

> प्रीतम, तुम मो दृगनि बसत हौ।
> कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हंसत हौ?
> लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं जु लसत हौ॥
> वृन्दावन हित रूप, रसिक तुम, कुंजलड़ावत हिय हुलसत हौ॥[4]

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०९।

[2] ब्रजमाधुरी सार, पृ० २१५।

[3] वही, पृ० २१५।

[4] वही, पृ० २१६।

बाल लीला—

कृष्ण की बाल-लीला का सुन्दर वर्णन इनकी रचनाओं में मिलता है।

क्वारौ रहगौ तू लला।
को करगो ब्याह इन गुन भयो अति ल चला॥
कटि न बांधी हो लगोटी तब त सीख्यो कला।
अब कर सो ब्याह गिरिधर हमनि समझी भला॥
घर घर तें सब हँसति आइ जुरी बहु अबला।
सजन घर के बाटिहु कच महरि हांडो इला॥
अरी आलि बचाय मेरौ चोरि लायो छला।
म धरी गिरि भोग मेवा यह न छोडो गला॥
निसि अधेरी जन्म लक्षण चोर ह घर चला।
वृन्दावन हित रूप यदौं बाम पद इहि तला॥[1]

कृष्ण यशोदा से कह रहे हैं कि वे उनके लिये मक्खन का 'लौंदा' अलग दे दें जिससे वे खा पीकर मोटे हो जांय और सब लोग रीझ कर उनका ब्याह करने आवें।

मया हौं माखन लौंदा ल्हौं।
भरि द प्यारो मोहि कटोरा बलिदाऊ नहिं दहौं॥
मोटी रोटी सानि सानि क कूदि कूदि हौं खहौं।
रीझि रीझि सब ब्याह करेंगे जब मोटो ह्वै जहौं॥
दुहती बार हाथ बाबा के धार सु दूध अघहौं।
रानी बडी बेगि द ह्वहौं गाइनि बन जु चरहौं॥
कौन कर मेरी सर ब्रज में सब तें बली कहौं।
दहौं दण्ड दुष्ट धेनुक जो आजा तातहि पहौं॥
जम्यौ दही बासन में ताके ऊपर को जु अचहौं।
पय औटत जो पर मलाई ब्यारू सो जु करहौं।
बालो वहौं वेग निकारो याकी गनत न भ हौं।
हौं गिरिराज कृपायल गाओं सबनौं नाच नचहौं॥
अती ब्याह दुलहिना लाऊं मया मन सरसहौं।
वन्दावन हित रूप आगरी जा पद सबनि नचहौं।[2]

---

[1] श्री ब्याह सागर (प्रथम संस्करण, संवत् २०११), पृ० १५।
[2] वही पृ० १९।

वृन्दावन की शोभा—

वृन्दावन की शोभा का वर्णन करने में जैसे ये अपने को असमर्थ पाते हैं।

कहा कहों बानिक वृन्दावन की।
ठौर ठौर तरुवर अरु सरवर देखि बढ़ी रुचि मन की।
गोवर्धन की सुभग कंदरा आवनि त्रिविधि पवन की।
तहां अधिक रुचि मानी जननी झुकनि मुलन्नित ललन की॥
हरे हरे तृण शोभित अवनी तहां चरन गोधन की।
गिरि पूजन आई नृप कन्या शो शोभा त्रिभुवन की।
मैं जु दूरि तें कौतिक देख्यौ भीर तहां अलिगन की।
वृन्दावन हितरूप सगाई वह लै बड़े सजन की॥[1]

तथा राधा और कृष्ण की शोभा का वर्णन वे कैसे करें। उनकी इतनी बुद्धि कहाँ, उन्हे इतनी शक्ति कहाँ जो उस लावण्य माधुरी का वर्णन करें।

सोभा केहि विधि वरनि सुनाऊं।
इक रसना, नोउ लोचन-हानी, कहौ पार क्यों पाऊं॥
अंग-अंग लावन्य-माधुरी बुधि-बल किती बताऊं।
अतुलित सुनति कहि गये क्यों, दृग पल रजि धरि जु उचाऊं॥
लोक न सुनी दृगन नहि देखी, ऐसी रूप-निकाई।
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-पति प्रेम बिकाई।
सुन्दरता की हद मुरलीधर, वेहद छवि श्री राधा।
गावैं वपु अनंत धरि समुद, तऊ न पूजे साधा॥[2]

चाचा हित वृन्दावन दास की कुछ रचनाओं के नाम यों हैं. ब्रजप्रेमानद सागर, छद्म लीला, रास-रस, भक्त प्रार्थनावली, श्रीहितरूप-चरितावलि।

छद्म लीला का वर्णन—

छद्म-लीला का रोचक वर्णन चाचा हित वृन्दावन दास ने किया है। कृष्ण स्त्री के वेश में नद ग्राम से आते हैं और रात भर ठहरने का आश्रय चाहते हैं। ललिता उन्हे राधिका के पास ले जाती है। आने का कारण पूछने पर स्त्रीवेश धारी कृष्ण कहते है कि नदग्राम में कृष्ण ने उपद्रव मचा

[1] लाडसागर—श्रीकृष्ण वालविनोद-विवाह उत्कण्ठा, राग विहागरो, पद १२१ पृ० ६१।

[2] ब्रजमाधुरीसार, वीणाधारी लीला ४, पृ० २१७।

रखा है। होली में आकर मुझे रंग से सराबोर कर दिया और मेरे ऊपर मुरली की चोरी लगा दी। इसके बाद सखा सहित धाहूराम मचा दिया। इसे सुनकर सास वगैरह फटकारने लगी और मेरी सब निंदा की। इसके बाद कृष्ण तंग आकर अपने आने की बात कहते हैं। बातों ही बातों में कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम प्रकट होता है इसपर कृष्ण कहते हैं—

तू कारी करोजु नदसुत कसे प्रीति घटाई।
उनके मन में की हो परखत तें क्यों जुगति बनाई॥
वे मो दृग पुतरीन बसत हौं उन दृग माँहि समाई।
यह तो बात अटपटी भामिनि सुनिहौं सोच दवाई।
मुरलीधर व व्रत अनन्य मो बिन और मन भाई।
कहत कहत ही हिय भरि आयौ नैनन नीर बहाई।
नवग्राम ते सुनि मन लरजो तोसों करो भलाई।
छोटी बात कहीं प्रीतम की हौं हिय जिय अनखाई।[1]

इनके तेरहो समय प्रबन्ध, पद बन्ध (कृष्ण लीला) की हस्तलिखित प्रति (संख्या २८८०।१७६७) काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। उससे कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

आनन्द के बिरवा बयेरी पिय हिय हरित भये हैं।
पावत पोष अमीरस चितवनि बाढ़त नित जु नए हैं॥
तेरो भाग लिख्यौ अस प्यारी सुघर सिरोमनि हू रिझवे हैं।
वृन्दावन हित रूप मनोरथ है धन पुंज बये हैं॥[2]

श्री राधा की शोभा पर कृष्ण मुग्ध होते रहते हैं।

अरी तेरी पलनि लटक परी लाल के नैन भावरे भरत।
सोभा घटक हियें लटपटत जो पलनि अटक अर परत॥
चितवनि के भूले रहे अति आतुर धार न धरत॥
वृन्दावन हित रूप इत भूरि देखि अघौनी करत॥[3]

श्री राधा की इस शोभा की थाह पाना कठिन है

---

[1] रासविलास अर्थात् चौबीस छन्द गौने की लीला, राग कापी २८, २९ ३०, ३१।

[2] पद संख्या, पूरबी-ताल असवारी ९८।

[3] गावा सारंग-ताल मूल ७३।

लटँती तेरे रूप गह की थाह न काहूँ पाई ।
लाल दृग गोता लै लै हारे धरि चित चौंप महाई ॥
अंग अंग भौंर परत हैं तिनमें उछरत पैरत रहत सदाई ।
वृन्दावन हित रूप सुनि तेरी विधि भूल्यो चतुराई ॥[1]

श्री रावा, मुरलीवर का शृंगार कर रही है :

सिंगारति रावा मुरलीवर कौं ।
इत सोभा कौं सोभा देनी उत पिय स्याम सुघर कौं ॥१॥
पट भूषन रुचते पहिराये स्यामा सुन्दर वर कौं ।
कुसुम रचित आसन वैठारे नागरि पुनि नागर कौं ॥२॥
अगर धूप करि सौरभ चरचति सुख सोभा आगर कौं ।
वृन्दावन हित रूप देति कर दर्पन गुन सागर कौं ॥[2]

हठी—

गुरु—

'हठी' जी, श्री हित हरिवंश जी के द्वादश मुख्य शिष्यों में थे, वैसे श्री वियोगी हरि इसे स्वीकार नहीं करते ।[3] 'हठी' जी स्वामिनी जी (श्रीरावा) के अनन्य उपासक थे ।

राधा सुधा शतक—

इनके एक ग्रंथ 'श्री रावा-सुवा-शतक' का पता चलता है । इस ग्रन्थ को बाबू अमीरसिंह ने हरिप्रकाश यन्त्रालय में मुद्रित कराया । यह 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' से उद्धृत किया गया है तथा श्रीभारतेन्दु जी ने इसे देखकर शुद्ध किया था । उन्ही की आज्ञा लेकर यह ग्रन्थ अलग मुद्रित हुआ । यह ग्रन्थ सन् १८३७ में समाप्त हुआ था ।

रिपी सुदेव वसु ससि सहित, निरमल मधु को पाय ।
माधव तृतिया भृगु निरखि रच्यौ ग्रन्थ सुखदाय ॥[4]

---

[1] राग तोड़ी-तिताल ४५ ।
[2] रागनट-ताल आड चौताल ९४ ।
[3] व्रजमाधुरी सार (अष्टम संस्करण), पृ० २३६ ।
[4] श्री रावा सुवा शतक, पृ० १ ।

श्री राधा की भक्ति—

'हठी' जी के लिये श्री राधा जी का अनन्य प्रेम और उनकी भक्ति ही काम्य थी। उनके लिये वही सर्वस्व है।

> श्री वृषभानु कुमारि के पग बंदों कर जोर।
> जे निसि बासर उर धर ब्रज बसि नन्दकिशोर॥
> कीरति कीरति कुवँरि की कहि कहि थके गनेस।
> दस सतमुख बरनन करत पार न पावत सेस॥
> जब सिव सिद्ध सुरेस मुख जपत रहत निसि जाम।
> बाधा जन की हरत है राधा राधा नाम॥[1]

श्री राधा से उनकी प्रार्थना है

> हीन हौं अधीन हौं, तिहारो ब्रज-साहिबनी!
> हिय में मलीन करुना की ओर ढरिए।
> भारी भवसागर तें बोरत बचावो मोंहि,
> काम क्रोध लोभ मोह लागे सब अरिए।
> बुरो—भलो, जसो, तेरे द्वार परयो हौं तो,
> मेरे गुन-औगुन तू मन में न धरिए।
> कीरति किशोरी, वृषभानु की दुहाई तोंहि,
> लच्छि-लच्छ भाँति सो 'हठी' की पच्छ करिए।[2]

रूपासक्ति—

वृषभानु-सुता के परा की तुलना नहीं। उनमें अगर मन रम जाय तो मनुष्य सब कुछ पा सकता है वह सहज स्वभाव से ही हृदय के वश होता है।

> नवनीत गुलाब तें कोमल है हठी कंज की मंजुलता इनमें।
> गुल लाला गुलाल प्रवाल जपा छवि एसी न देखी ललाइन में।
> मुनि मानस मन्दिर मध्य बसे बस होत है सूधे सुभाइन में।
> रहुरे मन तूं चित चाइन सों वृषभान कुमारि के पाइन में॥[3]

---

[1] श्री राधासुधा शतक दो० १।२।३।

[2] वही, कवित्त ५०।

[3] वही, सवैया, ४९ प० १४।

वृन्दावन के प्रति आसक्ति—

अतएव 'हठी' जी की एकमात्र अभिलाषा है वृन्दावन, गोवर्धन के आश्रय में रहने की। अतएव महाराज (श्रीकृष्ण) से इनकी प्रार्थना है .

गिरि कीजे गोवन मयूर नव कुंजन को, पसु कीजे महाराज नन्द के नगर को।
नर कीजे तौन जौन राधे राधे नाम रटै तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को॥
इतने पै जोई कछु कीजिये कुंवर कान्ह राखिये न आन फेर हठी के झगर कौं।
गोपी पद पंकज पराग कीजे महाराज तृन कीजे रावरेई गोकुल नगर को॥[1]

अलबेली अली-संप्रदाय और गुरु परिचय—

अलबेली अलि को वियोगी हरि जी विष्णु सम्प्रदाय का मानते हैं।[1] लेकिन इनकी रचनाओं को देखने से लगता है जैसे ये राधा वल्लभी सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। कहते हैं कि इनके गुरु वंशी अलि जी ललिता जी के भक्त थे और उन्हीं के संग में इन्हें स्वामिनी जी के दर्शन हुए।[2] श्री राधाचरण गोस्वामी के मतानुसार; 'इनका जन्म विक्रम की अठ्ठारहवी शताब्दी के आदि में हुआ।' गोस्वामी जी ने इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित छप्पय लिखा है·

श्री बरसाने वास बरस द्वादस दृढ कीनों।
श्री ललिता-संग आयु लाड़िली दरसन दीनों।
रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गायी।
प्रेम-पथ अति गूढ, तासु पदवी दरसायी।
श्री रासेस्वरी-कृपा-कुसल निज परिकर में अपनाई।
श्री वंसी अलि आचार्य श्री ललिता जिमि सहचरि भई॥[3]

संस्कृत की रचना—

अलबेली अलि को जीवन के सम्बन्ध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं। इनके पद अत्यन्त सरस है। इन्होंने संस्कृत में श्लोक लिखे है। ये संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। गुरु-परम्परा का वर्णन इन्होंने संस्कृत में किया है। इनका निम्नलिखित श्लोक, संस्कृत में इनकी रचना-शक्ति का परिचय देता है।

श्री राधिकां ललिताया सहितां प्रसन्नां,
या लालयत्यतिसुभाषित चारुहासैः॥

---

[1] व्रजमाधुरी सार, पृ० २०९।

[2] वही, पृ० २०८।

[3] नवभक्तमाल (व्रजमाधुरीसार, पृ० २०८ पर उद्धृत)।

नि श्रेयसे समभवन्नति मामराणाम,
सा यन्निका स्फुर मे हृदि सुदरास्या ॥[1]

गुरु भक्ति—

अपने गुरु वसी अलि जी के प्रति अपनी भक्ति का परिचय उन्होंने बहुत से पदो में दिया ह । एक प द में वे कहते हैं

श्री बसी अलि को बलि जाऊ ।
जाको चरन-सरन किरपा तें, व दावन धन पाऊ ॥
नवनागरि-अलिकुल चूणामणि, रहसि रहसि दुलराऊ ।
अलबेली, अलि हिम को गहिनो, प्रेम-जराइ जराऊ ॥[2]

लीला के पद—

भगवान की विभिन्न लीलाओ का अत्यन्त सरस और हृदयग्राही वर्णन इन्होंने किया है ।

लला, तू अनोखे ख्याल परयो ह ।
अति हीं नौवर मन उनींदे, आरस रग भरयो ह ।
अति आसवित भर्‍यो, नहीं जानत, पुहुप प्रभाव करयो ह ।
'अलबेली अलि' तृपति न मानत, किहि रस रग ढर्‍यो ह ।[3]

एक दूसरे पद में भी इसी सरसता का परिचय मिलता है

देखु सखी, इनको नव नेह ।
उमडि हेर घन रूप के मानों, बरसत रस की मेह ॥
खान पान बसनन कल भूषन, भूले सब सुधि देह ।
'अलबेली' नहि जानति निसिदिन, परे प्रेम के गेह ॥[4]

व दावन में वे अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं ।

लीनों व दावन वास लह्यो ।
सेवा टहल महल की निसि दिन, यह जिय नेह निबाह्यो ।
अद्भुत प्रेम विहार चारु रस, रसिकनि बिनु किनु चाह्यो ।
'अलबेलि अलि' सफल कियो सब, जिन यह रस अवगाह्यो[5] ॥

---

[1] ब्रजमाधुरी सार प० २०८ ।
[2] वही, पद ५, पृ० २१० ।
[3] वही, ललित ४, प० २११ ।
[4] वही, सारठ ७, प० २१३ ।
[5] वही मरज ९ पृ० २१४ ।

(ङ) चैतन्य सम्प्रदाय के कवि—

गदाधर भट्ट का जीवन वृत्त—

गदाधर भट्ट, राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी रचनाए अत्यन्त सरस हुआ करती थी। ये चैतन्य महाप्रभु के आश्रित थे और उन्हे भागवत सुनाया करते थे।[1] ये दक्षिण भारत के किसी ग्राम के रहने वाले थे। वृन्दावन में आने की इनकी कहानी यो बतलाई जाती है। अपने घर में ही रह ये सरस पदो की रचना किया करते। उनके निम्नलिखित पद को वृन्दावन में जीव गोस्वामी के सामने दो साधुओ ने गाकर सुनाया :

सखी, हौं स्याम-रंग रगी।
देखि बिकाय गयी वह मूरति, सूरति माँहि पगी
संग हुतो अपनो सपनो सो, सोइ रही रस खोई।
जागेहुं आगे दृष्टि परे सखि, नेकुन न्यारी होई॥
एक जु मेरी अंखियन में निसिद्यौस रह्यौ करि भौन।
गाइ चरावत जात सुन्यो सखि, सो धौं कन्हैया कौन ?
कासो कहौं, कौन पतियावै, कौन करे बकवाद।
कैसे कै कहि जात 'गदाधर' गूंगे को गुर-स्वाद॥[2]

इस पद को सुन श्री जीव गोसाई जी ऐसे मोहित हुए कि एक पत्र लिखा कि 'रैनी (रगने वाले के स्थान) बिना ही आपको श्याम रग कैसे चढ गया ? मेरे मन मे बडा ही सोच है।[3]' इस पत्र को जीव गोस्वामी ने दो साधुओं के हाथ उनके पास भेजा। इसे सुन वे मूर्छित हो गए और वृन्दावन चले आए और फिर अन्त तक वृन्दावन वास में रहे। वियोगी हरि जी के अनुसार जीव गोस्वामी ने निम्नलिखित श्लोक गदाधर भट्ट के पास भेजा था—

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य वृन्दाटवींतत्पदाकाम्।
असंभाव्य तद्भावगंभीरचितान् कुतः श्यामसिंधोः रसस्यावगाहः।[4]

भक्तमाल मे इनका परिचय—

ये बहुत बडे भक्त हुए। ये अत्यन्त निरीह और दयालु थे। नाभा जी के भक्तमाल मे इनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे सुन्दर गुणो वाले थे और

---

[1] ब्रजमाधुरी सार, पृ० ७५। [2] वही, पृ० ७५-७६।
[3] नाभा जी कृत भक्तिमाल, पृ० ७९४-७९५।
[4] ब्रजमाधुरी सार, पृ० ७६।

सभी सतो को सुख देने वाले थे। 'सज्जन, सुहृद सुशील श्रेष्ठों के वचन प्रतिपालक', निमत्सर निष्काम और कृपा करुणा के निधान थे। भगवद्भक्ता का भजन में दृढ कराने के लिये उन्होंने शरीर धारण किया। वृन्दावन में श्रीमद्भागवत की कथा कहते और सभी को सुख पहुंचाते। ये उत्कृष्ट कवि थे। चैतन्य सप्रदाय के होते हुए भी इन्होंने ब्रजभाषा में कविता लिखी है—

सज्जन, सुहृद, सुशील, वचन आरज प्रतिपाल्य।
निमत्सर, निह्काम कृपा करुणा को आलय॥
अनन्य भजन दृढ़ करनि धरयौ वपु भक्तिनि काज॥
परम धरम को सेतु, विदित वृन्दावन गाज।
भागौत सुधा बरष बदन, काहू को नाहिन दुखद।
गननिकर 'गदाधर भट्ट' अति, सबहिन को लाग सुखद।[1]

रचनाएँ—

इनके पद अत्यन्त सुन्दर हैं। वसे इनके किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का पता नहीं चलता। इनके पदो में अनुराग, भक्ति का अत्यन्त ही सुन्दर रूप देखने को मिलता है। उनके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते है

झूलत नागरि नागर लाल।
मद मद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल॥
फरहराति पटपीत नील के, अचल चचल, चाल।
मनहु परस्पर उमगि ध्यान-छवि, प्रगट भई तिहिं काल।
सिलसिलात अति प्रिया-सीस तें लटकति बेनी नाल।
जनु पिय-मुकुट-बरहि भ्रम बस तह, ब्याली विकल बिहाल।
स्यामल गौर परस्पर प्रति छवि सोभा विसद बिसाल।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुवरि-मन परयौ सुरस जजाल॥[2]

कृष्ण के रूप पर भक्त का हृदय अत्यन्त लुब्ध बना हुआ है।

आजु व्रजराज को कुवर बनतें बन्यो,
देखि, आवत मधुर अधर रजित बेनु।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट,
परम प्रमुदित बदन फेरि हूकति धेनु।

---

[1] नाभा जी कृत भक्तमाल छप्पय स० १३८, पृ० ७९३।
[2] ब्रजमाधुरी सार पृ० ८५।

मद विघूनित नैन मन्द विहंसनि बैन,
कुटिल अलकावलि ललित गोपद-रेनु ।
ग्वाल बालनि-जाल करत कोलाहलनि
सृग दल ताल धुनि रचत संचत चैनु ।
मुकुट की लटक, अरु चटक पटपीत की
प्रगट अंकुरित गोपी मनहिं मैनु ।
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय-ब्रज-सुन्दरी
विमल वनमाल के बीच चाहुन ऐनु ॥[1]

सयोग शृंगार का निम्नलिखित पद अपने आप में सुन्दर है—

जम्हाई रिझाई सारग-नैनी ।
अति रस काननि अमरत बरषत,
अंखियां जल झलमलाय आई तन पुलकनि-सेनी ।
आयु तकति करताल देत दीनो न जाइ,
मुरझाइ भाइ-भीनी गज गैनी ॥
प्रेम-पागि उर लागि रही 'गदाधर'
प्रभु के पिय अंग-अग-सुख वैनो ।[2]

दैन्य-भाव के भी पद इनके मिलते है—

कबै हरि,कृपा करिहौ सुरति मेरी
और न कोऊ कारन को मोह-बेरी ।
काम-लोभ आदि ये निर्दय अहेरी
मिलकं मन-मति-मृगी चहुंधा घेरी ।
रोपी आय पास पासि दुरासा केरी
देत वाही में फिरि-फिरि फेरी ।
परी कुपथ कटक आपदा घनेरी ।
नेक हीं न पावति भजि भजन सेरी ।
दंभ के आरंभ ही सत संगति डेरी
करै क्यों 'गदाधर' बिनु करुना तेरी ॥[3]

---

[1] ब्रजमाधुरी सार, पृ० ८७ ।
[2] वही, पृ० ८७-८८ ।
[3] वही, पृ० ८९ ।

प्रियादास और चैतन्य के प्रति उनकी भक्ति—

प्रियादास जी, नाभादास के शिष्य थे और उन्ही के आदेश पर उन्होंने 'भक्तमाल' की टीका लिखी है। भले ही ये चैतन्य सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त न हों लेकिन 'महाप्रभु 'कृष्ण चैतन्य' के प्रति उनकी अनन्य भक्ति अवश्य थी। टीका लिखने के पहले ही मंगलाचरण में उन्होंने श्री चैतन्य के प्रति अपनी भक्ति निवेदित की है —

महाप्रभु 'कृष्ण चैतन्य', मनहरन जू के चरण को
ध्यान मेरे, नाम मुख गाइये।
ताही समय 'नाभाजू' ने आज्ञा दई,
लई धारि, टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगे
जगे जगमाहि कहि, वाणी विरमाइये।[1]
जानों निजमति ऐ पै सुन्यौं भागवत,
शुक द्रुमनि प्रवेश कियो, ऐसेई कहाइयें॥

संभव है कि चैतन्य सम्प्रदाय के अथवा उससे प्रभावित अन्य भी ब्रजभाषा के कवि हों, लेकिन अभी उनकी रचनाएं प्रकाश में नहीं आई हैं। इस दृष्टि से अभी कोई काम भी नहीं हुआ है।

(च) कुछ अन्य कवि :

तुलसीदास—

श्रीकृष्ण गीतावली—

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरित सम्बन्धी केवल एक ही ग्रन्थ लिखा है। कम-से-कम अभी तक अन्य किसी ग्रंथ का पता नहीं चला है। 'श्रीकृष्णगीतावली' की रचना उन्होंने विशुद्ध ब्रजभाषा में की है। इसमें ६१ पद हैं। कुछ पद श्रीकृष्ण की बाल-लीला सम्बन्धी हैं और कुछ पद भ्रमर-गीत की परंपरा के हैं जिनमें गोपियाँ उद्धव से अपने हृदय के उदगार प्रकट कर रही हैं। कहते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना उस समय हुई थी जब तुलसीदास जी ने वृंदावन की यात्रा की थी।[1] लेकिन बाबा बेनीमाधव दास ने बतलाया है कि यह ग्रन्थ चित्रकूट में लिखा गया था जब सूरदास जी तुलसी-

[1] रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४५।

दास जी से वहा मिलने गए थे।[1] लेकिन 'मूल गोसाई-चरित' की सूचनाएं अत्यन्त भ्रामक हैं। उन्हे प्रमाण नही माना जा सकता।

वाल-लीला—

वाल-लीला के कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं :

कवहु न जात पराये धार्मांहि।
खेलत ही देखौं निज आंगन सदा सहित वलरार्मांहि॥
मेरे कहां थाकु गोरस, कौ नवनिधि मंदिर यार्मांहि।
ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ वकहि वेकार्मांहि॥
हौं वलि जाउं जाहु कितहूं जनि मातु सिखावति स्यार्मांहि।
विनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तार्मांहि॥
हरिमुख निरखि, पुरुष वानी सुनि अधिक अधिक अभिरार्मांहि[2]॥

एक ग्वालिन यशोदा से कृष्ण की शिकायत कर रही है—

महरि तिहारे पांय परौं अपनो ब्रज लीजै।
सहि देख्यो, तुमहसो कह्यो, अव नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छोजे?
ग्वालिनी तौ गोरस सुखी ता विनु क्यो जीजै।
सुत समेत पाउं धारिये, आपुहि भवन मेरे देखिये जो न पतीजै।
अति अनीति नीकी नहीं अजहूं सिख दीजै।
तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति ऐसी वलि कवहूं न कीजै[3]॥

कृष्ण को वंधा हुआ, भय से सकुचा-सहमा देखकर ग्वालिन यशोदा को शान्त होने के लिये कह रही है।

हा हा री महरि वारो, कहा रिसवस भई, कोखि के।
　　आए सों रोषु केतो वड़ो कियो है।
ढीली करि दांवरी, वावरी सावरेंहि देखि,
　　सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है॥
दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन
　　ज़वते जनम हलधर हरि लियो है।

---

[1] मूले गोसाईं चरित, पृ० १५।

[2] तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खड) सन् १९८० ई० श्रीकृष्णगीतावली, राग आसावरी, ना० प्र० सभा०, पृ० ४३८-४३९।

[3] वही, राग केदारा, ७, पृ० ४३९।

खायो, क खवायो, क बिगार्यो ढार्यो लरिकारी,
ऐसो सुत प कोह् क्सो तेरो हियो ह् ।
मुनि कह् सुकृती न नद जसुमति सम,
न भयो, न भावी, नहि विद्यमान बियो ह् ।
कौन ज्ञान कौनो तप, कौने जोग जाग जप
काह् सो सुवन तोको महादेव दियो ह् ॥
इन्हहीं के आए ते बधाए व्रज नित नए,
नादत बाढ़त सब सब सुख जियो ह् ।
नदलाल-बाल-जस सत-सुत-सरवस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो ह् ॥[1]

गोपिया की विरह-दशा का वणन भी तुलसीदास जी ने अय कृष्ण भक्त कवियों की नाइ किया ह

गोपी विरह—

बिछुरत श्रीव्रजराज आज इन नयनन की परतीति गई ।
उडि न लगे हरि सग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याममई ॥
रूपरसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौन भई ।
साचेहु कूर कुटिल, सित मेचक, वृथा मीन छवि छीन लइ ॥
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गए चित सूल गई ।
तुलसिदास तब अपहु से भए जड, जब पल्कनि हठ दगा दइ ॥[2]

वियोग की दशा में सुख देने वाली वस्तुए दुख का कारण बन गइ हैं ।
ससि तें सीतल मोको लगा माई री ! तरनि ।
याके उर बरति अधिक अग अग दव, वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि ।
सब विपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि ।
तुलसिदास श्याम सुदर विरह की दुसह दसा सो मोप परति नहीं बरनि ॥[3]

उद्धव और गोपियाँ—

उद्धव जोग का संदेश देने गए हुए ह् । गापिया उन्हें व्रज की दशा देखने को कह रही ह् ।

---

[1] कृष्ण गीतावली, राग केदारा १७ पृ० ४४१ ४४२ ।

[2] वही राग विलावल २४ पृ० ४४५ । यही पद सूरसागर, पद सख्या ३६१४, में मिलता ह् ।

[3] वही, राग धनाश्री, ३०, पृ० ४४७ ।

ऊधौ या व्रज की दशा बिचारो ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोगकथा विस्तारो ॥
जा कारन पठए तुम माधव सो सोचहु मन माहीं ।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं ।
वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौ ॥
जोग जुगुति अरु मुकुति विविध विधि वा मुरली पर वारौं ॥
जेहि उर बसत स्याम सुंदर घन तेहि निर्गुन कस आवै ।
तुलसिदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै ॥[1]

कृष्ण को निकट पाने के लिये वे सब कुछ सहने को तैयार हैं, यहां तक कि कूबरी को भी वृन्दवन में ला सकती हैं, जिसमें कि कृष्ण मथुरा छोड़कर यहाँ आवें:

सब मिलि साहस करिय सयानी ।
व्रज आनियहि मनाइ पांय परि कान्ह कूबरी रानी ।
बसै सुबास, सुपास होंहि सब फिरि गोकुल रजधानी ।
महरि महर सुख-जीवन खुलहि मोद-मनि-खानि ।
तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी ।
देखियो दरस दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी ॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जगजानी ।
तुलसी सो तिहुंभुवन गाइवो नंदसुवन सनमानी[2] ॥

सब कुछ करने पर भी उन्हें जिस टीस का अनुभव होता है वह उन्हें व्याकुल कर देती है :

ऊधो ! प्रीति करि निरमोहियन सो को न भयो दुखदीन ?
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रवीन ।
अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन ।
बैठि इनकी पाति अब सुख चहत मन मतिहीन ॥
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न ।
दास तुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन[3] ॥

---

[1] वही, राग सोरठ, ३३, पृ० ४४८। यही पद सूरदास के भ्रमरगीत (भ्रमरगीत सार पद संख्या १०९, पृ० ४५-४६) मे कुछ पाठ भेद तथा कुछ अधिक पक्तियो के साथ मिलता है ।

[2] श्रीकृष्ण गीतावली राग मलार, ४९, पृ० ४५३ ।

[3] वही, राग केदारा, ५५, पृ० ४५५ ।

विहारी—

दोहों की विशेषता—

बिहारी किसी सम्प्रदाय में अन्तमुक्त थे ऐसा उनके दोहा से नहीं लगता। वैसे वियोगी हरि जी ने बतलाया ह कि उनका सम्बन्ध हितकुल[1] से था। ये मुख्यत कवि थे और जयपुर नरेश के आश्रित थे। उन्हें ही प्रसन्न करने के लिये इन्होने दोहा की रचना की। कही कही उन दोहा में राधा और कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। केवल उन कुछ दोहा को देखकर इन्हें किसी सम्प्रदाय का समझ लेना भ्रान्ति पूर्ण है। इनके दोहे अपने-आप में बेजोड ह। पहले ही उन्होने श्री राधा को स्मरण किया है। सम्भवत इसी आधार पर बहुत लोगो ने इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का माना[2] ह। लेकिन यह बात बहुत दूर तक जँचती नही। बहुत से सस्करणा में दोहो का यह क्रम ज्यो का त्या नहीं है। यह काव्यधर्म था जिससे प्रभावित होना किसी कवि के लिये आश्चर्य का बात नही है।

कुछ दोहे—

उनके कुछ दोहे नीचे उद्धृत किए जाते ह।

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांइ परे, स्याम हरित दुति होय॥
तजि तीरथ, हरि राधिका-तन दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि निकुंज-मग, पग पग होत प्रयाग॥
मोहन मूरति स्याम की, अति अदभुत गति जोय।
बसति सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होय।
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यह बानिक मो मन बसी, सदा बिहारीलाल॥
अधर धरत हरि के परत ओठ दीठि पट जोति।
हरे बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष-सी होति॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूडै स्याम रंग त्यों-त्यों उज्जल होय॥

---

[1] ब्रजमाधुरीसार प० २८५।

[2] भागवत-सम्प्रदाय प० ३३३।

करी कुवत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल चित, वसत त्रिभंगीलाल ।।
वतरस-लालच लाल की मुरली घरी लुकाइ ।
सौंह करै, भौंहनु हंसै, दैन कहै, नटि जाइ ।।
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर ।
मनु ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना कै तीर ।।[1]

देव—

काव्य की विशेषता—

देव भी ब्रजभाषा के ऐसे कवियों में है जो किसी सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त नही थे । इन्हे भी वियोगी हरि 'हितकुलावलवी'[2] मानते है । ये ब्रजभाषा के सिद्ध कवियो में थे । शृगार और शान्तरस दोनो ही का वर्णन इनके काव्य में मिलता है । अभी तक इनके २७ ग्रन्थो का पता चला है[3] । ये कई आदमियो के आश्रित रहे ।

इनके कुछ पद नीचे उद्धृत किएं जाते है ·

कुछ पद—

पायन नूपुर मंुज बजे, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई ।
साँवरे अंग लसै पटपीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई ।।
माथे किरीट वड़े दृग चंचल, मंद हंसी मुखचंद-जुन्हाई ।
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर, श्रीब्रजदूलह देव सहाई ।।[4]

कृष्ण के प्रेम में विह्वल नायिका का सुन्दर वर्णन इनके नीचे के पद में मिलता है ।

जव तें कुंवर कान्ह रावरी कला निधान
कान परी वानी आके सुजस कहानी सी ।
तवही ते 'देव' देवी देवता सी हंसति सी,
खीझति सी, रीझति सी रुसती रिसानी सी ।।

---

[1] विहारी-रत्नाकर—१, २०१, १६१, ३०१, ४२०, १२१, ४२५, ४७२, ६८१ । एक ब्रजमाधुरी सार, पृ० २९९ ।
[2]
[3] वही, पृ० २९९ ।
[4] देव-दर्शन, पृ० १८६ ।

छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी छीन
जकी सी, चकी सी, लागी थकी थहरानी सी।
बींधी सी बंधी सी विष बूडी सी विमोहित सी,
बैठी वाल बकति बिलोकत बिकानी सी ॥[1]

एक पद में उन्होंने कृष्ण के प्रति अनुराग का सुन्दर चित्र दिया है

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकनि कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो परलोक, नरलोक, बर लोकन में,
लीन्हों मैं अलीक लोक-लीकन तें न्यारी हौं।
तन जाहि, मन जाहि, 'देव' गुरुजन जाहि,
जीव क्यों न जाहि, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावनवारी बनवारी के मुकुट पर,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं।[2]

देव अपने अन्तर में वृन्दावन को बसाए हुए हैं। उसी अन्तर के वृन्दावन में भगवान् की लीला चल रही है।

होंही ब्रजवृन्दावन मोंही में बसत सदा
जमुना तरंग श्याम रंग अवलीन की।
देव' वई सुन्दर सघन वन देखियत,
कुंजन में सुनियत गुंजनि अलीन की।
बंसीवट तट नट नागर नचत मोमें,
रास के विलास की मधुर धुनि बीन की ॥
भरि रही भनक बनक ताल तानन की
तनक तनक तामें झनक धुरीन की ॥[3]

इसी प्रकार से कृष्ण को गोपियाँ की नाईं अपनी आँखों में बसा रखना चाहते हैं

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह सों, भाल मृगम्मद बिन्दु कै भाख्यो।
कंचुकी मैं चुपरयो करि चोवा, लगाय लियो उर सों अभिलाख्यो ॥
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यो।
साँवरे लाल को साँवरो रूप, मैं नैननि को कजरा करि राख्यो ॥[4]

---

[1] देव दर्शन पृ० १०३। [2] वही, पृ० १४१।
[3] वही, पृ० १६१। [4] वही, पृ० १४६।

गुणमंजरीदास—

जीवन वृत्त—

गुणमंजरीदास एक अनन्य भक्त थे। उनका स्वभाव अत्यन्त सरल और मधुर था। अपने पदों में उन्होंने अपना नाम 'गुणमंजरि' रखा है लेकिन उनका असली नाम गोस्वामी गल्लू जी था। इनके पिता का नाम गोस्वामी श्री रमणदयालु जी था। गुण मंजरीदास की पहली पत्नी का जब देहान्त हो गया तब उनकी दूसरी शादी हुई। श्री राधाचरण गोस्वामी उनके पुत्र थे और दूसरी पत्नी से हुए थे। श्री राधाचरण जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परम मित्रों में थे। गुणमंजरीदास फारसी शब्दों का एक प्रकार से बहिष्कार करते थे। इन्होंने अपना सब उपार्जित धन भगवत् सेवा में लगा दिया। इनके पदों से लगता है कि ये गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय से अत्यधिक प्रभावित थे। इनका जन्म संवत् १८८४ वि० में हुआ और मृत्यु सं० १९४७ में हुई।[1] इनके कुछ पद नीचे दिये जाते हैं।

> हमारे धन स्यामा जू को नाम।
> जाकों रटत निरंतर मोहन, नंद नंदन घनस्याम।
> प्रतिदिन नव-नव महामाधुरी, बरसति आठों जाम।
> गुन मंजरि नवकुंज मिलावें, श्री वृन्दावन धाम॥[2]

चैतन्य महाप्रभु के प्रति भक्ति—

एक पद में इन्होंने चैतन्य महाप्रभु और श्री अद्वैत प्रभु का नाम लिया है। चैतन्य प्रभु के प्रति इन्होंने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है—

> देखो आली, गौर-मेघ-उल्लास।
> श्री अद्वैत-पवन पुरवाई, करुना बिजुरि बिलास[3]॥

इस पद में 'गौर' शब्द का प्रयोग 'गौरांग' अर्थात् चैतन्य के लिये किया गया है। अद्वैत उनके प्रमुख अनुयायियों में थे।

रूपासक्ति—

एक दूसरे पद में स्वामिनी जी के सौंदर्य का सुन्दर वर्णन है।

प्यारी-चरनन में नव-बसंत। दस नख ससि-किरननि नित लसंत॥

---

[1] ब्रजमाधुरीसार, पृ० २५३–२५४।

[2] वही, मलार, २, पृ० २५५।

[3] वही, पृ० २५५।

अगनित अगुरी हू नव प्रवाल। बिछुवा घुघरू मुकुलित रसाल ॥
मेंहदी-दुति केसू को प्रकास। जावक नव-बेली कर विलास।
छिप बोलत स्यामल गति सरूप। कोकिल कुहुकति हैं अति अनूप ॥
वामन-लामन मलया समीर। सुरभित चहुंदिसि मिलि हरत धीर ॥
केसर उर को प्रिय लखी भाय। गुनगन गुन मंजरि मधुप धाय ॥[1]

नारायण स्वामी—

जीवनवृत्त और रचनाएँ—

नारायण स्वामी पजाब के थे। इनकी ब्रजभाषा की रचनाए अत्यन्त सरस हैं। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। वृन्दावन में लाला बाबू के मंदिर में दफ्तर की नौकरी कर ली। धीरे धीरे इनका मन ससार से उचट गया और इन्होंने सन्यास ले लिया। इनका जन्म सवत १८८५ या ८६ में हुआ और मृत्यु फाल्गुन कृष्ण ११ स० १९५७ में हुई। ब्रजमाधुरी सार' में श्री वियोगी हरि जी ने इनकी जीवनी पर प्रकाश डाला है। इनका 'ब्रजविहार' ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर है। 'ब्रजविहार' का एक सस्करण बम्बई के वेंकटेश्वर यन्त्रालय में छप कर सवत १९५० में प्रकाशित हुआ। उसमें २११ पृष्ठ है। इस ग्रन्थ में भगवान की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है जैसे माखन चोर लीला, उराहना आँख मिचौनी, खण्डिता मान लीला, युगल छवि लीला, होरी लीला सखी अनुराग लीला साझी लीला आदि ३२ प्रकरण हैं।

विरह के उनके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं

पद—

सखि, मेरे मन की को जाने।
कासों कहौं, सुने जो चित दै, हित की बात बखाने।
ऐसो को है अंतरजामी, तुरत पीर पहिचाने।
'नारायन' जो बीत रही है कब कोई सच माने।[2]
बेदरदी, तोहि दरद न आवे।
चितवन में चित बस करि मेरो, अब काहे कों आंख चुरावे॥

[1] ब्रजमाधुरी सार पृ० २५६।
[2] वही, पृ० २६२।

दाव सो परी द्वार पै तेरे, विन देखे जियरा घबरावै ।
'नारायन' महबूब सांवरे, घायल करि फिर गैल बतावै ॥[1]
करु मन, नंदनन्दन को ध्यान ।
यहि अवसर तोहि फिरि न मिलैगो, मेरो कह्यौ अब मान ।
घूंघर वारी अलकें मुख पै, कुंडल झलकत कान ।
'नारायन' अलसाने नैना, झूमत रूप-निधान ॥[2]

एक पद में इन्होंने सगुण, निर्गुण रूपों के अभेद पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है ।

निर्गुण-सगुण का अभेद—

देखि चरित मोहि अचरज आवै ॥ आस्ताई ॥
जो कर्ता जगपालक हर्ता, सो अब नंद को लाल कहावै ॥
विन कर चरण श्रवण नाशा दृग, नेति नेति जाको श्रुति गावै ॥
ताकूं पकरि महरि अंगुरीतें, आंगन में चलिवो सिखरावै ॥
ब्रह्म अनादि अलक्ष अगोचर, ज्योति अजन्म अनंत कहावै ॥
सो शशि वदन सदन शोभा को, नंदरानी निज गोद खिलावै ॥
जाके उर डोलत नभ धरनी, काल कराल सदा भय पावै ॥
सो ब्रजराज आज जननी को, भौंह चढ़ी को निरख डरावै ॥
जाके सुमरण ते जीवन को, भवबंधन छिन में छुटि जावै ॥
सोई आज बंध्यौ ऊखल ते, निरखन को सगरो ब्रज धावै ॥
पूरण काम वारि सागर पति, मागि मागि दधि माखन खावै ॥
भक्ताधीन सदा नारायण, प्रेम की महिमा प्रगट दिखावै ॥[3]
बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत ।
काल चिरैया चुग रही, निसदिन आयू खेत ॥
धन जोबन यों जायगौ, जा विधि उड़त कपूर ।
नारायण गोपाल भजि, क्यों चाटे जग धूर ॥
चार दिन की चांदनी, यह संपति संसार ।

---

[1] व्रजमाधुरी सार, पृ० २६३ ।

[2] वही, पृ० २६५ ।

[3] ब्रजविहार-बधाई के भजन, बधाई राग शहानो, पृ० ७ ।

नारायण हरि भजन करि, जा सों होय उबार ॥
यह शोभा ससार की, ज्यों टेसू के फूल ।
नारायण फल आस तजि, ललित देख जिन भूल ॥
कोऊ नहीं अपनो सगो, बिन राधा गोपाल ।
नारायण तू वृथा मति, परै जगत के जाल ॥[1]
अति कृपाल सतोष वृत्ति, जुगल चरण में प्रीति ।
नारायण ते सन्त वर, कोमल वचन विनीत ॥[2]
रति पति छवि निंदित वदन, नील जलज सम श्याम ।
नव योवन मृदु हास वर, रूपराशि सुख धाम ॥[3]
लगन लगन सबही कहै, लगन कहावै सोय ।
नारायण जा लगन में, तन मन दीजै खोय ॥
रूप छके झूमत रहै, तन को तनक न ज्ञान ।
नारायण दृग जल भरे, यही प्रेम पहिचान ॥[4]

सत्यनारायण 'कविरत्न'—

जीवन-वृत्त—

सत्यनारायण जी ब्रजभाषा के चोटी के कवि थे। ये अत्यत सरस और भावुक थे। शात प्रकृति के सरल हृदय के सत्यनारायण जी कविता पाठ द्वारा लोगो को मुग्ध कर देते थे। इनका देहाती पहनावा इनके आदर्शवादी दृष्टिकोण को प्रकट करता है। इसी पहनावे के कारण उन्हें इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-समेलन के पडाल में स्वयसेवको ने घुसने नहीं दिया। इनका दाम्पत्य अत्यत दुखद रहा। बहुत ही कम उम्र में उनकी मृत्यु हुई। इनका जन्म सवत् १९४१ माघ शुक्ला ३ को हुआ और मृत्यु १६ अप्रल सन १९१८ को।[5] ये कृष्णभक्त थे। स्वदेश प्रेम इनमें पूर्ण रूप से भरा हुआ था। देश और जाति का सुधार होना आवश्यक है यह दृष्टिकोण इनका रहा है। इन्होंने 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' का सुन्दर अनुवाद किया है।

---

[1] ब्रजविहार बधाई के भजन, अनुराग रस, पृ० २२२–२२४।
[2] वही, अनुराग रस, पृ० २२२।
[3] वही कृपानिधान की शोभा, पृ० २२८।
[4] वही, प्रेम लक्षण पृ० २३२–२३४।
[5] ब्रजमाधुरी सार पृ० ३६४–६५।

भ्रमर दूत—

अपने 'भ्रमर-दूत' मे इन्होने देश और समाज की दुर्दशा का वर्णन किया है

नारी सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेश-अवनति-प्रचंड-पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरा प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ।
विद्याबल लहि मति परम, अबला सबला होइ।
लखो अजमाइ कैं॥[1]

'भ्रमर-गीत' की परपरा में इनका 'भ्रमरदूत' पड़ता है। उसी प्रकार की व्यजना इनके पदो म भी है। देश और समाज सुधार की बातें कह उन्होने अपने 'भ्रमर दूत' में नवीनता ला दी है। नीचे लिखे पदो में भक्त कवियो की तरह वे भी कहते है ·

नास होइ अक्रूर क्रूर तेरो बजमारे।
बातन में दै सबनि, लै गयो प्रान हमारे॥
क्यो न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम।
कहं मूरति रमनीय दोउ, श्याम और बलराम।
रही अकुलाइ मे॥[2]

'तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि॥
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीतांबर चारु।
बिपिनबिहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगार॥
जुगुलरस के चखा॥[3]

इनके दोहे भी अतीव सुन्दर है।

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर।
सघन कुंज की वह छटा, अरु वह जमुन-हिलोर॥
पीतपटी लिपटाय कैं, लै लकुटी अभिराम।
बसहु मंद मुसिक्याय उर, सगुन-रूप घनस्याम॥[4]

---

[1] ब्रजमाधुरी सार, भ्रमरदूत, २५, पृ० ३७५।
[2] वही, भ्रमरदूत २७, पृ० ३७६।
[3] वही, भ्रमरदूत ३०, पृ० ३७६।
[4] वही, दोहा ५१, ५२ पृ० ३८१।

छठवाँ अध्याय

ब्रजबुलि का उद्भव और विकास

ब्रजबुलि—

अभी तक हम ब्रजभाषा-साहित्य का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से करते रहे हैं। इस अध्याय में ब्रजबुलि-साहित्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। उत्तर भारत की कृष्ण भक्ति धारा को समझने में 'ब्रजबुलि' साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्त्व का है। 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिये किया जाता है जिसमें बंगाल के वैष्णव कवियों ने पद रचना की है। ब्रजबुलि' का साहित्य अत्यन्त विशाल, मनोरम और हृदयग्राही है। इसके पदों में जो माधुर्य और लालित्य है वह शताब्दियों से सहृदयों को मुग्ध करता आ रहा है। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों से इन वैष्णव गीति कविताओं की, जिन्हें पद की संज्ञा प्राप्त है बाढ़ सी आ गई। यह काल चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का है। श्री चैतन्य के आविर्भाव के पूर्व के बंगला वैष्णव ग्रन्थों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। सन् ईसवी की पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी तक के बंगला के संकलित पद-संग्रह-ग्रंथों में स्पष्ट ही दो प्रकार की भाषा का निदर्शन मिलता है। इनमें एक तो विशुद्ध बंगला है और दूसरी मैथिली के अनुरूप भाषा है जिसे 'ब्रजबुलि' कहते हैं।

'ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग—

ब्रजबुलि' शब्द का प्रयोग बहुत हाल से होने लगा है। इसका प्रथम प्रयोग सन् ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी में ईश्वरचन्द्र गुप्त की रचना में मिलता है। पर इसका इतिहास इतना अर्वाचीन नहीं है। डा० सुकुमार सेन का अनुमान है कि 'ब्रजावली बोलि' शब्द से 'ब्रजबुलि' बना है[1]।

---

[1] विश्वभारती पत्रिका (बंगला) (कार्तिक-पौष, १३६७), पृ० ११२।

ब्रजबुलि और ब्रजभाषा में प्रभेद—

कुछ लोगो ने 'ब्रजबुलि' को ब्रज की बोली अर्थात ब्रज की भाषा मान लिया है।[1] संभवत इस अनुमान का आधार यह है कि ब्रजबुलि के बहुत से शब्दों का बंगला की अपेक्षा हिन्दी से अधिक साम्य है तथा 'ब्रजबुलि' शब्द में 'ब्रज' शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन ब्रजबुलि और ब्रजभाषा की भाषागत प्रवृत्तियो पर विचार करें तो यह धारणा भ्रान्त सिद्ध होगी। लेकिन एक बात यहाँ कह रखना ठीक होगा कि भाषा तत्त्व की दृष्टि से ब्रजबुलि और ब्रजभाषा का संबंध है। भाषा तत्त्वविदो ने इस बात को स्वीकार किया है।[2] ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के शब्दरूपो का समावेश है। वैसे इसकी मात्रा के संबंध में मतभेद अवश्य है। ब्रजभाषा के शब्दो के ब्रजबुलि में पाए जाने के कई कारण बताए जाते है। गौडीय वैष्णवो की एक बृहद् शाखा ब्रजमण्डल में जाकर बस गई। इस प्रकार से दोनो का संबंध स्थापित हुआ। ब्रजबुलि में, ब्रजभाषा के कुछ प्रादेशिक शब्द इसलिये लिए गए कि उनसे भाषा का माधुर्य बढता था जैसे बंशी के स्थान पर 'बाँसुरिया' आदि शब्द। साहचर्य के कारण भी अनायास बहुत से शब्द ब्रजबुलि में आ गए। इतना सहीं होते हुए भी दोनो को एक नहीं कहा जा सकता। दोनो के व्याकरण में पार्थक्य है उसी तरह से दोनो के उच्चारण मे भी भेद है।

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध मे डा० सुकुमार सेन का मत—

हम पहले ही देख चुके है कि डा० सुकुमार सेन ने ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में अपना पुराना मत छोड कर नये मत को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि मैथिल पदावली के अनुकरण पर तिरहुत प्रत्यागत बंगाली कवियो की पद रचना के फलस्वरूप ब्रजबुलि की उत्पत्ति मानना केवल मिथ्या-अनुमानमात्र मात्र है। डा० सेन का अब यह मत है कि ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ट से हुई है[3]। वे यह भी स्वीकार करते है कि मैथिली आदि स्थानीय भाषारूपों का प्रभाव इस पर पडना स्वाभाविक ही था। अतएव

---

[1] प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मिडिएवल वैष्णविज्म इन उड़िसा, पृ० ७१।

[2] डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : दी आरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ बंगाली लैंगवेज, पृ० १०३।

[3] विश्वभारती पत्रिका (बंगला) (कार्त्तिक-पौष १३६२), पृ० ११५।

डा० सेन का कहना है कि ब्रजबुलि किसी प्रदेश विशेष की सम्पत्ति नहीं वरन् वह आर्यभाषा की सर्वसाधारण सम्पत्ति है और इस दृष्टि से वह कनिष्ठतम सर्वभारतीय आर्यभाषा है।[1] सर्वभारतीय आर्यभाषा होने के कारण समसामयिक रूप से ब्रजबुलि का प्रचार तिरहुत नेपाल, बंगाल तथा उड़ीसा में हुआ। बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के उतने प्राचीन ब्रजबुलि के पद अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं तथापि सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी से ही ब्रजबुलि की रचनाएं इन प्रदेशों में प्रचलित रही होंगी। डा० सेन का यही अनुमान है।

वैष्णव पदावली का वर्ण्य विषय—

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में डा० सुकुमार सेन की आधुनिकतम मान्यता पर विचार करना आवश्यक है। राधा-कृष्ण लीला ही वैष्णव पदावली का मुख्य वर्ण्य विषय है। यह विषय-वस्तु मैथिली या बंगला किसी भी साहित्य की निजी सामग्री नहीं प्रत्युत् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश (अवहट्ट) से होते हुए उत्तराधिकार सूत्र से लौकिक साहित्य को प्राप्त हुई। विषय वस्तु संबंधी पर्याप्त चर्चा 'साहित्य और शिल्प में राधाकृष्ण-कथा का स्वरूप' वाले अध्याय में हो चुकी है।

अवहट्ट और आधुनिक लोकभाषाएं—

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की कड़ी को पार कर लोक भाषाओं का उदय हुआ। साहित्यारूढ़ अपभ्रंश भाषा से प्रान्तीय भाषाओं को निश्चित स्वरूप प्राप्त करने में लगभग दो सौ वर्ष लग गए। इस संक्रान्ति काल में भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था। एक ओर साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी और दूसरी ओर लोकभाषा का भी प्रादुर्भाव हो चला था। फलतः इन बोलियों के मिश्रण से विलक्षण प्रकार की अपभ्रंशाभास जन भाषाओं का साहित्य तैयार हो रहा था। इस अपभ्रंशाभास भाषा को अवहट्ट नाम दिया था। वास्तव में यह अवहट्ट अपभ्रंश और लोकभाषाओं के बीच सेतु रूप था। इस अवहट्ट में जहां लोकभाषाओं का बीज निहित है वहीं लोकभाषाओं में वर्णित राधाकृष्ण लीला के पूर्व सूत्र का भी संधान मिलता है। प्राकृत पैंगलम् में उद्धृत अवहट्ट में रचित राधाकृष्ण की नौकालीला संबंधी एक छन्द मिलता है। यद्यपि इसमें राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी अनुमान

---

[1] विश्व भारती पत्रिका (बंगाब्द) (कार्तिक-पौष १३६०) पृ० ११५

होता है कि राधा, कृष्ण की नौका पर नदी पार हो रही है। कृष्ण मझधार में नाव को डगमगा कर राधा को डराते है। राधा भयभीत होकर कहती है :

अरे रे वाहहि काणह णाव
छोटि डगमग कुगति ण देहि।
तइ इत्थि णइहि सन्तार देइ
जो चाहहि सो लेहि ॥[1]

(हे कृष्ण, नाव ठीक से खेवो, इसे डगमगाना छोड़ दो, नदी मे डुबोकर मेरी दुर्गति न करो। तुम इस नदी को पार करा दो फिर जो कुछ चाहो लो।)

अवहट्ट में वर्णित राधा-कृष्ण लीला—

राधा-कृष्ण की लीला के संबंध में एक दूसरी अवहट्ट की रचना मिलती है जो वैष्णव पदावली के पूर्व की है।

राइ दोहड़ी पढ़ण सुनि हसिउ कान्ह गोआल।
वृन्दावन घन कुंज घर चलिउ कमण रसाल ॥

राइ (राधा) का दोहा पढना सुन कर ग्वाल कृष्ण हसे। वृन्दावन के किसी निभृत कुज की ओर चले।

चर्यागीति में वैष्णव पदों के प्रेमरस का आभास—

चर्यागीति मे एक इसी प्रकार का पद आया है जिसमें मानिनी राधा का स्थान निरजन, शून्य ने ले लिया है और अनुनयशीला योगिनी ने अनुनयशील कृष्ण का स्थान ले लिया है। यह रचना अवहट्ट भाषा में है। तान्त्रिक बौद्ध साधक का यह साधन-सगीत है। इसे वे वज्रगीति कहते है। इस पद में भी वैष्णव पदो की तरह प्रेमरस की पूर्ण झलक मिलती है। इसमें योगिनी उदासीन-प्रणयी प्रभु को प्रसन्न करने के लिए अनुनय कर रही है।

किच्चे णिच्चअ विसाअ-गउ
लोअ णिमन्तिअ काइं
तह वत्ता ण जइ सम्भरसि
उट्ठहि सकल विसाइ।

---

[1] 'प्राकृत पैंगलम्'–९।

कज्ज अम्माण वि करिअ पिअ
मा कर सुन्न विछित
भव भअ पडिआ सअल जनु
उट्ठहि जोइणि मित्त।
पुव्व-पइज्जइ सम्भरसि
मा कर काज्ज विसाउ
तइ-अय मिल्ल सअल जणु
पतिअउ जग अवसाउ।
मिच्छेँ माणवि मा करेहि पिअ
उट्ठहि सुन्न - सहाव
कामहि जोइनि विन्द तुइ
फिट्टउ अहया भाव।[1]

(काम निश्चित करके, लोक निमंत्रित करके तुम नित्य वृत में विषादगत क्या हुए वह बात यदि स्मरण नहीं करते हो तो सब विषाद से उठ जाएगे। ह प्रिय, अपना काम तो करना ही होगा इसलिए शून्य विक्षिप्त न करो। सब लोग भव भय से भीत है, हे योगिनी मित्र, तुम उठो। पूर्व प्रतिज्ञा स्मरण करो काम से विमुख न हो। तुम्हारे लिये सब लोग मिलित हुए है अब जग का अवसाद दूर हो। प्रिय व्यर्थ मान न करो, शून्य स्वभाव उठो। योगिनी-वृन्द की शुभ कामना करो अभय भाव दूर हो।)

उमापति ओझा की रचनाएँ—

इसी प्रकार से विद्यापति के पहले के कवि उमापति ओझा की रचनाएँ व्रजबुलि-साहित्य के क्रम विकास को समझने में सहायक होगी। उमापति की रचनाएं अत्यंत सरस है। ऐसा भी हुआ है कि बाद में चलकर इनकी कई कविताओं को लोगों ने भ्रमवश विद्यापति की कविता समझ ली। उमापति ओझा सन् ईसवी की चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। ये मिथिला के अन्तिम स्वाधीन राजा हरि (हर) सिंह के मंत्री थे। उन्होंने महाराज की विजय के उपलक्ष में 'पारिजात-मंगल' नामक एक गीतिनाट्य लिखा था। इसके गीतों की भाषा मैथिली है। उनके निम्नलिखित पद

[1] डा० सुकुमार सेन चर्यागीति पदावली पृ० २२ पर उद्धृत, वज्रगीति साधन माला २५४।

से उनकी सरसता का पता लग जाता है। इस पद में मानिनी सत्यभामा की विरहावस्था का वर्णन कृष्ण से कर रही है।

> कि कहव माधव तनिक विशेषे, अपनहु तनु धनि पाव कलेशे।
> अपनुक आनन आरसि हेरि, चाद क भरम कांप कत बेरि।
> भरमहु निय कर उर पर आनि, परसह तरस परसो रहु जानि।
> चिकुर निकर निय नयन निहारि, जलधरजाल जानि हिय हारि।
> अपन वचन पिकरव अनुमाने, हरि हरि तेह परितेजय पराने।
> माधव आवसु करिअ समधाने, सुपुरुष निठुर न रहय निदाने।
> सुमति उमापति भन परमाने, माहेशरि देइ हिन्दुपति जाने।[1]

एक दूसरे पद में मानिनी का चित्र है जिसका मान कठिन रूप धारण किए हुए है·

> अरुण पुरुब-दिसि वहलि सगरि निसि गगन-मगन भेल चन्दा।
> मुनि गेलि कुमुदिनि तह ओ तोहर धनि मुनल मुख-अरविन्दा।
> कमल वदन कुवलय दुहु लोचन अधर मधुरि - निरमाणे
> सगर सरीर कुसुम तुअ सिरिजल किए तु अह्रदय परवाने।
> असकति करकंकण नहिं परिहसि ह्रदय हार भेल भारे
> गिरि-सम गरुअ मान नहिं मुचसि अपरुब तुअ बेवहारे।
> अवगुन परिहरि हरखि हेरु धनि मानक अवधि बिहाने।
> हिमगिरि - कुमरि - चरण ह्रदय धरि सुमति उमापति भाने॥[2]

ब्रजबुलि की उत्पत्ति के संबंध में डा० सुकुमार सेन के मत की आलोचना—

उमापति ओझा तथा विद्यापति के पद को ब्रजबुलि का जनक रूप माना जा सकता सकता है। अत. ब्रजबुलि की उत्पत्ति के सबध मे यह कहा जा सकता है कि पूर्वी अवहट्ट के वीज को मैथिली के वारि-सिचन द्वारा पनपाया गया और यही कारण है कि मैथिली के साथ ब्रजबुलि का योग इतना घनिष्ट है। अतएव डा० सुकुमार सेन के इस मत को स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नही हो सकती कि ब्रजबुलि की उत्पत्ति अवहट्ट से हुई और प्रान्तीय भाषाए मैथिली आदि प्रभावित हुई। लेकिन डाक्टर सेन के इस मत को 'ब्रजबुलि

---

[1] विद्यापति गोष्ठी, पृ० ६३।

[2] वही, पृ० ६५।

अन्तिम भारतीय आयभाषा ह' मान लेना कठिन है। अगर ब्रजबुलि ही अन्तिम भारतीय आयभाषा होती तो सम-सामयिक रूप से समस्त प्रान्ता में व्रजबुलि का एक ही रूप दिखाई देता पर जा सामग्री उपलब्ध है वह इस तथ्य के विपरीत है। मिथिला में सन् ईसवी की तेरहवीं शताब्दी क अन्त से ही व्रजबुलि का परिचय मिलने लगता है। नेपाल मारग में १४वी शताब्दी से नाटका के गीता में ब्रजबुलि के दशन हाते ह बगाल, उडीसा, आसाम में पन्द्रहवी शताब्दी के अतिम दिना के पूव के किसी भी व्रजबुलि पद या खडित अश की उपलब्धि अभी तक नही हुई है। व्रजबुलि ने विभिन्न प्रदेशा में विभिन्न समय में विभिन्न कारणा से प्रवेश पाया अतएव केवल अनुमान के आधार पर उसे सव शेष भारतीय आयभाषा मानना ठीक नही प्रतीत होता। भिन्न प्रदेशों में भिन्न कारणों से विकसित ब्रजबुलि के स्वरूप को पृथक रूप से विवेचन करना ही अधिक उपयुक्त होगा।

व्रजबुलि का व्याकरण और भाषागत विशेषताएँ—

ब्रजबुलि पर भाषातत्त्व और व्याकरण की दृष्टि से डा० सुकुमार सेन ने सुन्दर ढग से विचार किया है। इस अध्ययन में उनसे काफी सहायता मिली है। यहा पर व्रजबुलि की कुछ विशेषताओ तथा व्याकरण सबधी कुछ नियमा पर प्रकाश डाला जाता है।

(१) व्रजबुलि का छन्द मात्रिक है। छन्द-वचित्र्य की दृष्टि से व्रजबुलि साहित्य अत्यन्त समृद्ध ह। पदान्त में अ-कार का लाप नही होता। सस्कृत के तत्सम शब्दा का व्यवहार पर्याप्त मात्रा में मिलता है। साथ ही लौकिक साहित्य हाने के कारण अध-तत्सम शब्दा का प्रयाग खूब हुआ ह।

(२) अरवी-फारसी के शब्द व्रजबुलि में उतने नही मिलते। कुछ शब्द जो मिलते ह वे इस प्रकार ह आतर (इत्र), ओयाज (आवाज), कागज कलम किताप (किताब), गुलाव दालाल (दलाल), नालिश, वाजार, महल माफ, साहब सरम (शर्म) जीद् (जिद) आदि।

(३) व्रजबुलि में अ-कार का उच्चारण साधारणत विवृत है। बगला के प्रभाव से कभी-कभी सवृत भी देखने को मिलता है और छन्द के अनुरोध से कभी-कभी अत्यन्त ह्रस्व भी हुआ ह। इ ई उ ऊ का उच्चारण सस्कृत की तरह ही ह वस छन्दानुरोध स इनमें व्यतिक्रम भी हुआ ह। इसी प्रकार से छन्द के अनुरोध स ए और ओ का उच्चारण भी ह्रस्व या दीर्घ होता ह।

स्वरध्वनियो के परिवर्तन और विप्रकर्ष के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :

आषाढ > असाढ; कान्त > कन्त, मथुरा > माथुर, सुजान > सुजन, लावण्य > लावनि, स्नेह > सनेह, प्रात > परात, लुब्ध > लुबुध, भस्म भसम, हर्ष > हरिख, लक्ष्मी > लखिमी, लखिमी, कीर्ति > किरिति; प्रीति > पिरिति।

(४) सयुक्ताक्ष र व्यजनो मे से अगर एक लुप्त हो जाय तो भी पूर्ववर्ती स्वर, दीर्घ नही होता। जैसे उच्च > उच, उन्मत > उनमत, उमत।

(५) म के अलावा किसी भी स्पर्शी वर्ण के पूर्व मे रहने पर श, ष या स का लोप हो जाता है। जैसे—निश्चय > निचय, निश्चल > निचल, दृष्टि > दिठि, ओष्ठ > ओठ, अस्थिर > अथिर।

(६) कही-कही छन्द के अनुरोध से भी अक्षर लोप हो जाते है। अवगाहन अवगान, आनन्दे > आन्दे, प्रियतम 7 प्रीतम।

(७) ख, छ, थ, घ, और भ अगर पद के मध्य में हो तो बहुत बार इनके स्थान पर ह हो जाता है। जैसे मेघ > मेह, नाथ > नाह, विधि > विहि, शोभा > शोह, दुर्लभ > दुलह, लघु > लहु।

(८) अगर "स" आरभ मे न हो तो कभी-कभी "स" के स्थान पर "ह" हो जाता है। जैसे मास > माह, उच्छवास > । उछाह।

(९) स्वर-मध्य-स्थित स्पर्श वर्ण का कही-कही लोप हो जाता है और उसके स्थान पर य-श्रुति का आगम होता है। जैसे कनक > कनय, सागर > सायर, नागर > नायर, रजनी > रयनी, वदन > वयन।

(१०) ब्रजबुलि मे ष-कार का प्राय ही ख-कार हो जाता है। दोष > दोख, रोष > रोख।

(११) कही-कही र-कार का तथा छन्द के अनुरोध से कही-कही न (ङ ञ) का अगर अन्य वर्णो से सयुक्त हो तो लोप हो जाता है। जैसे चद्र > चद; प्रयाग > पयाग, अन्यत्र > अनत, प्रहरी > पहरी, कान्ति > काति, अङ्ग > आग, प्रान्तर > पातर, सञ्चार > सँचार।

(१२) ब्रजबुलि मे बहुवचन का स्वतन्त्र रूप नही है बहुवचन करने के लिये साधारणत 'सब' शब्द का प्रयोग होता है जैसे सखी सब, हाम सब (हम सब); अथवा बहुवचन वाले किसी तत्सम शब्द के साथ समास करना होता

हैं। जसे, सो कि कहन इहि सखिनि-समान, घाम-कुल (घम विन्दु सकल), रगिनी-यूथ, भ्रमर जाल, कोकिल-वन्द, अलि-पुज।

(१३) कारक

प्रथमा (कर्ता) की विभक्ति ए है लेकिन प्राय ही इसका लोप हो जाता है। जैसे—चकोर अमिया विनु तिने न ना पीउ (विभक्तिहीन)

रमनि-समाजे ताहारि गुण यापइ (विभक्तियुक्त)

तृतीया की विभक्ति—ए, हि, हिं, से में (बहु वार प्रथमा में भी प्रयुक्त होते हैं) जसे—

भक्तहि मेलि। याहिरे तिमिरे ना हरि निज देह।

करहि निवारत गोरि।

मरमक वेद न मरमहि जानत।

कानु से प्रेम बाढाइ।

द्वितीया—चतुर्थी की विभक्ति—ए क, क, कि (इन विभक्तियो का लोप भी विरल नहीं है)। क कि, के अचेतन पदार्थ के साथ प्रयुक्त नहीं होते।

जसे—रे मन, काहे करसि अनुताप,

तो सोंपल राइ (विभक्ति हीन), (राइक परिहरि,)

कहल सखिमोकि मान।

गोविन्ददास के काहे उपेखि।

पचमी—हि, हिं, सें मा तें (त)। कभी-कभी विभक्ति का लोप भी देखा जाता है।

कुज सें निकसे बहार (बाहर)।

कुजहि बाहिर भेल।

षष्ठी—क (का), कि, के, को, का, र।

हायक दरपन मायक फूल

वेणिये लावणि, प्रिया को

दो स्थानों में हक विभक्ति भी मिलती है जसे मुनिहक मानस निविहक बचन।

सप्तमी—ए हि हिं भो, म, मि। (विभक्ति का लोप भी विरल नहीं है)।

मनहि ना भावत आन कालिंदि-कूल में।

(१४) सर्वनाम

(क) उत्तम पुरुष

प्रथमा—हाम (हम), हामि (हमि)

निसि जागरि हामि ।

हमि पलटि बैठब ।

हामें—काम मायने मरब हामें (मुझे)

मुझे—मुझे कयल

मुंह—मुंह जानलुं

मो—कहल मो तोय

द्वितीया } मोय—अकपटे कहबि न वञ्चबि मोय
चतुर्थी } मुझे—चचल नयने हेरि मुझे सुन्दरि

मोहे—मजानि काहे विनती गरु मोहे

हामें—कान्दायनि हामें

हामा—कटाक्षे नेहारत हामा

तृतीया—मोय—मिलब मोय

मोहे—यदि मोहे ना मिलब सो वर रामा

हमे—ओहि दिवस हमे मथुरा-समागम-पयहि दरस न भेल

षष्ठी—मझु—

मेरे—मदिरे अवतुह चल मेरे कान

मोर, मोहर—ऐछन श्याम बिनु मोहर पराण मोरि, हामार (हमार), हमारी (हमारी), मोहरि, मोय (मोयि)

मर्मक वेदन जानसि मोय

तै खने हरब मो चेतने

हामक मदिर जब आओब कान

सप्तमी—मोहे (?)—ए सखि हेरि रहल मोहे धन्द

(ख) मध्यम पुरुष

प्रथमा—तुहु, तुहु, तो, तोह, तु

अकपटे एक बात मुझे कहबि तु ।

द्वितीया—चतुर्थी—तोव, तोइ, तोहे, तुहे

तृतीया—तोहे—तोहे मिलायलु

तुया—पन्थ मिलब तुया कान

षष्ठी—तुया, तुय–विरने तुय सने रह धरल्ह ताहू तुयाक, तुहुक तुहार, ताहार, तुहुकर तुहु कर रोनहि भीत अब पाओल

तोरा—सुन्दरि देहि पलटि दिठि नारा तग, तरि, तर—तेर वपु हाथ निस हाम लेयव

सप्तमी—तोहे—पिव रहु सा धनि ताह अनुराग

तुहे—सुन्दरि, माधव तुह अनुरागी ताहारि (?)

(ग) अन्य पुरुष (साधारण)

प्रथमा—स सो, सेह महि सोय ताह (?)

द्वितीया—चतुर्थी—सो सोइ, तहि–नहि पुन हरि ताह, ताह–अनए मापए तनु ताह

तृतीया—ताय

षष्ठी—ताक तावर, तछु तह्निक तिह्निक ताहार अनुखन तह्निक समाधि

सप्तमी—ताह तछु, ताहि, तहि, ताह

अन्यपुरुष (दूरस्थ)

प्रथमा—उह, आ, ओइ ओहि, उनिह (सम्मानसूचक–उनि) ओय

द्वितीया—चतुर्थी–उह

तृतीया—उनसे

षष्ठी—ओर, उह्नक, उह्निव, उह्नक उनकि–उनकि शाहे गले बनमाला

सप्तमी—उनहि उनते

अन्यपुरुष (निकटस्थ)

प्रथमा—ए इह एह एतह्व एतनि (?) इये (?)।

द्वितीया—चतुर्थी–एनह्व

षष्ठी—अछु अछुक, इहिनक, इनक इनकि।

(घ) सम्बन्धवाचक सर्वनाम

प्रथमा—जे जेह, जो, जोहि जाइ

पचमी—जहाँसे

षष्ठी—जहु, जहुका जाक जाके, जाँक जाँके, जाकर जाहे

(ट) प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रथमा—केह, केहु, को, कोइ, कोने, कोन, कि, किये (कीये)।

द्वितीया—चतुर्थी–कि (द्वितीया में अचेतन वस्तुओ के लिये),

काहु—काहु का उपेखि

काहुके, काहि, काहे, काह, काय

तृतीया—काहाँ–उपमा देयब काहाँ।

षष्ठी—काह–सजनि ऐछन होये जनि काह

काय, काहु, काहुक, काहुके, कन्हुक (?), का, काहे सप्तमी- काहा, काहें

(१५) सर्वनाम–क्रियाविशेषण

उत्तम और मध्यम पुरुष को छोडकर सभी सर्वनामो से क्रियाविशेषण-पद बनते है।

'अतएव' के लिये	...	तें, तेञि, हये
तहा (वहा) ,,	...	तहिं, ततहि, तांहा, तथि, ततिहुं, तांहि
'इस समय' ,,	...	अब, अबहि
'इस स्थान' ,,	...	इथे, इह
'जिस स्थान' ,,	...	जाहा, जाहिं, जहि, जथि
इसलिये ,,	...	जाहे, जथि
जिस समय ,,	...	जब, जैखने
उस समय ,,	...	तब, तैखने, तहिं
जब से...तब से	...	जब (जा) वरि...तब (ता) वरि, जब .... तबहु
किसलिये के लिये	...	काहे कथि, किये
अथवा ,,	...	किये
कहा ,,	...	कथि, कथिहु, काहां काहु
किस समय ,,	...	कब

(१६) स्त्री-प्रत्यय

ब्रजबुलि में दो स्त्री-प्रत्यय है : इनी (इनि) तथा ई (इ)। इनी (इनि) का ही व्यवहार अधिक है।

विशेषणो में स्त्रीलिंग बनाने के लिये ई (इ) प्रत्यय का व्यवहार करते हैं जैसे आकुलि—

—इना (इनि)—चकोरिनि, सौतिनि, आहिरिनि, पुलकिनि
—ई (इ) —उमति, पुतली, अवनत नयनी, पिक वचनी

ल प्रत्यान्त भूतकाल का क्रियापद विशेषण जस व्यवहृत होता है। स्त्रीलिंग होने पर उसमें ई (इ) प्रत्यय लगाते हैं।

मुरछलि गोरी, लाजे लाजायलि गौरि।

ब्रजबुलि में स्त्रीलिंग व्याकरणानुगत नहीं है स्वभावानुगत है। जो शब्द स्त्रीलिंग है उन्हें छोडकर और सभी पुलिंग है।

(१६) क्रिया

क्रिया के तीन काल होते हैं भूत, भविष्यत, वर्तमान। तीनों पुरुषों के भिन्न भिन्न रूप हैं लेकिन एक वचन और बहुवचन में भेद नहीं है। वर्तमान और भूतकाल में प्रत्येक पुरुष के लिये कई प्रत्यय है।

(क) वर्तमान काल में उत्तम पुरुष के प्रत्यय—हु (हु), उ ओ (औ) मो वँ, इ इये अत। जसे—प्रायहु, साधहु कहो पूछमो, जाइ अनुभइ अनुमानिये, मागत, जान नह, घुचाव जाव सोवरि।

वर्तमानकाल में मध्यम पुरुष के प्रत्यय—सि इ उ अ ह, जैस जानसि, बादायसि अनुमानि, जाइ, कर रह जान, वाढह।

वर्तमान काल में अन्य पुरुष के प्रत्यय—अइ, इ, अये, ओये, ए, अत, त, अ अहु, उ अन्त ति

जसे—करह हमइ, भनइ, जाइ, कापि हासि, बैठये, इछे चले, नृत्यत, दत देख अवगाह चलु लिखु जाति, मिलाति मीलति, नटति।

(ख) भतकाल में अल (ल) प्रत्यय लगाते है। यह मूलत विशेषण प्रत्यय है इसलिये अगर रनृ पद स्त्रीवाचक हो तो क्रियापद में स्त्री प्रत्यय का व्यवहार करत है।

ओ प्रत्यय का भी प्रयोग भूतकाल में होता है—जसे—गेओ, भेओ भवो, लियो।

उ-प्रत्यय का भी प्रयोग मिलता है—जैस हेरु, धरु, करु।

अल का व्यवहार भूतकाल के उत्तम पुरुष में करते है। जैसे अछल, कयल।

लि मध्यम पुरुष भूतकाल में व्यवहृत होता है। जसे आओलि, आछलि।

अन्य पुरुष भूतकाल में ऐसा कोई प्रत्यय नहीं लगता। जैसे आछल। स्त्रीलिंग मे आछलि होता है।

तीनो पुरुषो में कही कहीं 'ला' प्रत्यय मिलता है। जैसे भुलला, कहला।

'अल' भूतकाल के प्रत्यय में 'निश्चय' या 'स्वार्थ' में हि और हु का प्रयोग मिलता है। चललिहुं, भेलहि।

वर्तमान काल के क्रियापदो का भूतकाल के लिये भी प्रयोग हो जाता है।

(ग) भविष्यत् काल, उत्तम पुरुष में ब, बि (स्त्रीलिंग में) प्रयुक्त होते है। करब, बोलब, देबि, नेबि।

भविष्यत् काल, मध्यम पुरुष में बि प्रयुक्त होता है। बैठबि, कहबि। भविष्यत काल के अन्य पुरुष मे ब, बि का प्रयोग करते है। मिलायब, हब, बरबे, करबे।

(१७) अनुज्ञा

अनुज्ञा के दो रूप है. साधारण और भविष्यत्।

(क) साधारण अनुज्ञा, मध्यम पुरुष के प्रत्यय—अ, इ, जैसे गह, कर, चल हेरह।

साधारण अनुज्ञा के अन्य पुरुष के प्रत्यय—अउ, जैसे मेटउ, हसउ, रहु, रहुक ('क' स्वार्थिक) करु।

(ख) भविष्यत् अनुज्ञा प्रत्यय (केवल मध्यम पुरुष में ही प्रयुक्त होता है) इह जैसे जाइह, करिह।

(१८) कर्मवाच्य का प्रयोग निम्नलिखित उदाहरणो से स्पष्ट हो जायगा। जतो बिछुरिये ततो बिछुर न जाइ। एमन पिरिति आर कयिहु ना पेखिये। कछु ना दीसइ।

(१९) णिजन्त क्रिया

धातु में आय (आओ) प्रत्यय योग करने से यह क्रिया बनती है। जैसे सिखायब, पठाओल। बाढायसि। जानायइ।

(२०) नाम-धातु

ब्रजबुलि में नाम-धातु का प्रयोग अत्यधिक है। इसका कोई विशेष प्रत्यय नही है। जो भी कोई तत्सम या अर्ध तत्सम शब्द ब्रजबुलि में क्रिया

रूप में प्रयुक्त हो सकता है। जसे अनुमानल, सवादल, (प्रलाप) परलापसि, (विलम्ब) विलम्बायन, (विपाद) विपादइ।

(२१) असमापिका

इसके दो प्रत्यय इ, इ (अइ), अ। इनमें से प्रथम ही अधिक प्रयुक्त हो सकता है। जसे–रगि, मोरि, रायाइ, अलसाइ परयाधिया (आ-स्वार्थिक), गुनइ क्षाप, जाग, जान।

अन्य क्रियापद भी असमापिका के अर्थ में कभी-कभी प्रयुक्त होते हैं जैसे– राइ मुखे गुनलहि ऐछन बोल। करइते गमन भेल उपनीत। ज्ञानदास कह ओ रूप हेरिइते का धनि धर निज देह।

(२२) तुमर्थ भाव वचन में कई प्रत्यय हैं अइन अत अइ, उ। जसे चन्इत, अगोरत, सहइ, पिवइ, सहु।

(२३) हेतुबोधक असमापिका

इसके प्रत्यय ये हैं अन। अइते (अइत) भी होता है। जपत, चलत, उठन।

(२४) ब्रजबुलि के समास संस्कृत जसे ही हैं। वसे छन्द के अनुरोध से कहा-कहीं व्यतिक्रम भी हो जाता है। जसे ना बुझलु अन्तर-नारी (=नारी-अन्तर), तुह वडी हृदय-पाषाण (पाषाण-हृदय) कविगना चमकये चित (=कविगण चित), हार-उर (=उर-हार)

(२५) संस्कृत इमन प्रत्ययान्त शब्द ब्रजबुलि में विशेष रूप से व्यवहृत होते हैं। जसे मधुरिमहास, गुनहि गरिम, रंगिम, भंगिम, नयन नाचनिया, वंकिम नगा, चतुरिम वाणी।

(२६) संस्कृत क प्रत्यय (विशेषण) के अर्थ में ब्रजबुलि का 'अल' प्रत्यय व्यवहृत होता है। स्त्रीलिंग विशेषण में स्त्री प्रत्यय 'इ' होता है। जसे छुटल बाण फुटल हिय मोरि। मुरछलि गारि।

(२७) तद्धित प्रत्यय पन और आइ का व्यवहार होता है। जसे रसिक पन, गठपन निठुराइ, चतुराइ लुबुधाइ मधुराइ।

(२८) जनि—निषेधार्थक अव्यय है।

जैसे मुग्ध जनि पांच बाण। मझनि ऐछन हाये जनि काहे।

जनु—उपमाबोधक अव्यय है। जसे केशरि जनु गज कुंभ बिदारि।

(क) नेपाल

पहले कहा जा चुका है कि मिथिला में १४ वी शताब्दी के आरम्भ में राजा हरि (हर) सिंह के मन्त्री उमापति ओझा की रचना में सर्वप्रथम व्रज-बुलि का प्रयोग मिलता है। उसके बाद १५ वी शताब्दी में मिथिला में विद्यापति के द्वारा व्रजबुलि का पोषण और प्रचार हुआ। मिथिला में पनपने के साथ ही १४ वी शताब्दी मे हरिसिंह देव के सूत्र से व्रजबुलि ने नेपाल मे प्रवेश पाया। श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय का अनुमान है कि तुर्को के द्वारा मगध-गौड विजय के पहले ही से गौड देश के साथ नेपाल राज्य का सम्बन्ध बना हुआ था। यदि ऐसा न होता तो पालवश के राजाओ के समय में हस्तलिखित ग्रथ, पत्र आदि नेपाल में नही पहुचते। वस्तुत. नेपाल का शिल्प-मगध शिल्प का ही रूपान्तर है।[1] तुर्की आक्रमण के परिणाम स्वरूप कुछ समय के लिए दक्षिण बिहार और बगाल की राजसभा में साहित्य-चर्चा रुक-सी गई और वहा के पडित कवियो ने नेपाल, तिरहुत, मोरग राजसभा में जाकर आश्रय लिया। इस प्रकार हरिसिंह देव के बाद से मोरग अर्थात् नेपाल की तराई और नेपाल मे विशुद्ध मैथिली और व्रजबुलि के पदो की रचना की रीति चल पडी। पहले इन पदो की रचना 'नाट्य गीति' के लिए ही होती थी फिर पदावली के रूप में लिखे जाने लगे। नेपाल की राजसभा में पदावली की चर्चा १५ वी—१८ वी शताब्दी के बीच तक चलती रही, फिर मल्ल-वश के राज्य के साथ ही यह धारा भी क्षीणतर होती गई।

नेपाल के पदावली साहित्य का विकास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित—

नेपाल में पदावली—साहित्य का विकास वहा की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर ही आधारित है। अत वहा के साहित्य-पोषक राजवशो के ऐतिहासिक परिचय के साथ ही उस साहित्य की क्रमिकधारा की भी चर्चा की जायगी।

हरिसिंह देव तथा नैपाल-मोरंग का नाट्यगीति और पदावली साहित्य—

निरन्तर पूर्व-पश्चिम के मुसलमानों के आक्रमण को रोकते हुए अन्त मे हार कर सन् ईसवी के १३२४ मे हरिसिंहदेव को मिथिला त्यागना ही पड़ा,

---

[1] सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय "नेपाले भाषा-नाटक" के सबंध में वक्तव्य, पृ० १८४ (साहित्य-परिषद् पत्रिका, ३६ वा भाग।)

और अपने राज्य के उत्तर भाग मोरग में जाकर उन्होंने आश्रय लिया। हरिसिंहदेव स्वय विद्वान और विद्योत्साही थे। जिस मिथिला को छोडकर उन्हें आना पडा वह उस समय विद्या का स्मरणीय केंद्र थी। अत उन्होंने नेपाल को भी मिथिला का-सा ही रूप रग देने की चेष्टा की। हरिसिंहदेव के उत्तर प्रदेश में आने के बाद से ही नेपाल-मोरग में 'नाट्यगीति' और 'पदावली-साहित्य' पल्लवित-पुष्पित हो चला। इन साहित्य प्रेमी विद्वान राजाओ की रुचि नाटक में विशेष थी इसलिए नेपाल में नाटको का एक विशाल भण्डार तैयार हुआ।

नेपाल के मल्ल-राजा जयस्थिति का धर्म शास्त्र सपादन करवाना—

हरिसिंह देव की मृत्यु के कुछ दिनो के बाद ही उनकी पोती जगतसिंह की कन्या राजल्ल देवी का विवाह नेपाल के प्राचीन मल्लवश के वशज जयस्थिति मल्ल के साथ हुआ। विवाह के बाद जयस्थिति को नेपाल की राजगद्दी मिली। उस समय से मल्लवशीय राजाओ का पुनरुत्थान आरम्भ होता है। जयस्थिति मल्ल का राज्यकाल सन् ईसवी का १३८० १३९४ है। राजा होने पर जय स्थिति ने भी हरिसिंह देव के ही मार्ग का अनुगमन किया और हरिसिंह देव के अधूरे काम को यथाशक्ति पूरा करने की चेष्टा की। भारतवर्ष से पाच ब्राह्मण-कीर्तिनाथ उपाध्याय रघुनाथ झा, श्रीनाथ भट्ट महीनाथ भट्ट और रमानाथ झा—को नेपाल में लाकर इनके ऊपर नए धर्म शास्त्र का भार सौंपा। इन ब्राह्मणो में अधिकाश मिथिला के थे। इससे मिथिला नेपाल का सबध और भी दृढ और घनिष्ट हुआ। मिथिला की राजसभा उस समय विद्यापति के पदो से मुखरित हो रही थी, धीरे धीरे उन पदो की गूज नेपाल की राज-सभा तक पहुची।

जयस्थिति के सभाकवि के पुत्र मणिक के दो नाटक—'अभिनव राघवानन्द' और 'भैरवानन्द'—

जयस्थिति मल्ल के सभाकवि नाट्य कला विशारद 'रानवर्द्धन के पुत्र मणिक ने राजा की आज्ञा से दो नाटक अभिनव राघवानन्द[1] और भैरवानन्द[2] लिखे। प्रथम का विषय रामायण की कथा और दूसरे का विषय पुराण क

[1] कम्बिज हस्तलिखित ग्रथ सख्या १६५८ (डा० सुकुमार सेन बागला साहित्येर इतिहास, पृ० ३९७-३९८ पर उद्धृत।)

[2] नेपाले भाषा-नाटक (साहित्य परिषत् पत्रिका, ३६वा भाग), पृ० १७१।

समान ही एक प्रेम कथा है। राजकुमार के विवाह के अवसर पर 'भैरवानन्द' नाटक अभिनीत हुआ। नेपाल में लिखी हुई धर्मगुप्त की रामाक नाटिका सबसे पहली नाटक-कृति है।[१] उनका दूसरा नाटक रामायण नाटक है।[२]

नेपाल में ब्रजबुलि रचना का आरम्भ—

१५वी शताब्दी के आरम्भ मे ही नेपाल राजसभा मे पदावली-साहित्य की चर्चा शुरू हो जाती है। इस साहित्य चर्चा का कारण स्पष्ट है क्योंकि उस समय मिथिला मे विद्यापति और बगाल में जयदेव-चण्डीदास ने साहित्य में नवोन्मेष ला दिया था। नेपाल के साथ मिथिला के सबध की चर्चा तो पहले ही की जा चुकी है इसलिए यह मानना अनुचित नही कि इन युग-प्रवर्तकों की रचनाओ से ही अनुप्राणित होकर नेपाल के कवियो ने उन रचनाओ के अनुकरण से मैथिली और ब्रजबुलि में रचनाए आरम्भ की।

पांडव-विजय नाटक—

१५वी शताब्दी के अन्तिम दिनो में जयस्थिति के वशधर जययक्ष मल्ल देव की मृत्यु के बाद उनके तीन पुत्रों के बीच राज्य बँट गया। बडे लडके पुरानी राजधानी भातगाँव में राज्य करते रहे। छोटे दोनो की राजधानी क्रमश. काठमाडु और बनेपा थी। बनेपा के राजा जयरणमल्ल रचित 'पाडवविजय' नाम का एक नाटक प्राप्त हुआ है, इसका रचना-काल १४९५-९६ सन् ईसवी है।

विद्या-विलाप नाटक—

भातगाँव के राजा विश्वमल्ल और उनके पुत्र त्रैलोक्य मल्ल १६वी शताब्दी के बीच से अन्तिम दिनो तक नेपाल में राज्य करते रहे। नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में विश्वमल्ल के समय का लिखा हुआ, विद्या-विलाप' नाटक सुरक्षित है। यह नाटक असमाप्त है। ननीबाबू को जो 'विद्या-विलाप'[3] नाटक प्राप्त हुआ है वह परवर्ती काल के भूपतीन्द्र मल्ल द्वारा रचित है। हो सकता है कि भूपतिमल्ल ने पुराने 'विद्या-विलाप' नाटक के अनुकरण पर ही अपना नाटक लिखा हो। त्रैलोक्य मल्ल के राज्यकाल

---

[१] बागला साहित्येर इतिहास, पृ० ३९७।

[२] नेपाल दरबार का हस्तलिखित ग्रथ।

[3] ननीगोपाल बन्दोपाध्याय : नेपाले बागला नाटक, पृ० १३३।

(अन्तिम १६वी शताब्दी) में लिखे गए एक कृष्ण-लीला नाटक के कुछ पद मिले हैं[1]।

नेपाल के नाटकों में केवल गीत—

नेपाल में जितने भी नाटक अब तक मिले हैं, उसमें से अधिकांश हस्तलिखित ग्रंथों में केवल नाटक के गीत ही लिखे हुए मिले। इसका मुख्य कारण यह है कि अभिनेताओं को केवल नाटक के गीत ही कठस्थ करने होते थे और गद्यांश को अभिनय के साथ-साथ उसी समय मन से बनाकर कहना पड़ता था। ये सभी नाटक गीत प्रधान थे, कहना यों चाहिए कि ये एक प्रकार के 'गीतिनाट्य' थे।

कृष्ण-लीला विषयक नाटक में गेय पद—

त्रैलोक्य मल्ल के समय में लिखे गए कृष्ण-लीला विषयक नाटक में जो गेय पद हैं उनमें से कुछ पदों में रामभद्र और वीर नारायण की छाप मिलती है। ऐसा अनुमान होता है कि इसका रचयिता कवि जयदेव और विद्यापति द्वारा प्रभावित था क्योंकि इसमें जयदेव का एक सम्पूर्ण पद 'श्रितकमलाकुच मण्डलधृतकुण्डलम्' उद्धृत है। इन गीतों में जो दो चार ब्रजबुलि के पद हैं उनसे सुन्दर कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए नीचे दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं। विरहिणी नायिका (संभवत राधा) अपनी विरह जन्य दशा का वर्णन सखी से कर रही है—

> कमल नयन मोहि विसारल
> सुन मधुरिका सखि।
> बसन्त दारुण, काल गमाउब
> कसेन जीवन राखि।
> दक्षिण पवन मेघ सुधाकर
> मेल सभ किछु आनि।
> चन्दन शीतल, बोलिले गाबलू
> रेणु उड़े लह लागि।
> येवनिहे हरि विनु बड़ हय दुख।
> चरण कमल जदि छाड़ल ता दिन गयल सुख।

---

[1] डा० प्रबोधचन्द्र बागची नेपाले भाषा नाटक' (साहित्य परिषद पत्रिका, ३६वाँ भाग) पृ० १७३।

सकल रयनि, जागि गमावलि
न छाड़े नीर नयान।
अवश्य आवत हरि महागुणी
वीरनारायण भान[1]।

विरह दु.ख का वर्णन करते हुए नायिका पुन कहती है—

सघन वरिसे मेहा
सुमरि सुबंधु नेहा
जीव-चुटपुट नीद न आए विरह दगध देहा।
मन पक्षि हया जावो
जाहा गिया (लाग) पायिवो
हाते धरिया पाय पड़िया, गलाय तुलिया लयिबो।
चन्दन चिर न भाए
कुसुम साज सुखाए
अंग मोड़ि-मोड़ि आंगन ठाढ़ि मन चौदिके धाए[2] ॥

नेपाली भाषा की रचनाओं में बंगला का मिश्रण—

उपरोद्धृत पद मे वगला का प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि नेपाल में जिस ब्रजबुलि का विकास हुआ उसमें नेवारी (नेपाली) का मिश्रण न होकर बंगला का मिश्रण क्यो हुआ? नेपाल–मोरग में बंगाली पडित कवियो का आना-जाना बहुत दिनो से जारी था। बगला भाषा की प्राचीनतम चर्यागीति (बौद्धगान व दोहा) का हस्तलिखित ग्रथ नेपाल के पर्वतो के बीच ही सुरक्षित था। १३वी–१४वीं शताब्दी से नेपाल के मल्ल राजवश के गुरु बंगाली ब्राह्मण ही होते आ रहे थे।[3] इस प्रकार उन बगाली पण्डितो का बहुत दिनो से नेपाली राजवश के साथ ही साहित्य पर भी जड जम चुका था। अत. इन अप्रान्तीय भाषाओ ने साहित्य-क्षेत्र से नेवारी (नेपाली भाषा) को बिल्कुल ही खदेड दिया, फिर संस्कृत, मैथिली तथा ब्रजबुलि के प्रभाव से क्रमश नेवारी भाषा की साहित्य रचना-शक्ति दुर्बल होती गई।

---

[1]. डा० प्रबोधचन्द्र बागची : नेपाले भाषा नाटक—(साहित्य परिषद् पत्रिका, ३६वाँ भाग), पृ० १७३।

[2] डा० सुकुमार सेन · विद्यापति गोष्ठी, पृ० ४८।

[3] ननीगोपाल बन्दोपाध्याय : 'नेपाले बागला नाटक' भूमिका, पृ० ३।

हरगौरी विवाह नाटक तथा कुजविहारी नाटक—

त्रैलोक्य मल्ल के पुत्र जाज्योति मल्ल देव (अन्तिम १६वी शताब्दी—१७वी शताब्दी का आरम्भ) ने सस्कृत और लौकिक साहित्य का खूब पोषण किया। इनके नाम से बहुत सी गीतिकविताएँ[१] तीन चार भाषा नाटक, सगीत शास्त्र का अनुवाद और टीका[२] तथा कुछ निबन्ध-ग्रथ[3] प्राप्त हुए हैं। सन् ईसवी के १६२९ में जगज्योति ने 'हरगौरी विवाह' नाम का नाटक लिखा। इसमें ५५ पद हैं, यह भी 'गीतिनाटय'[४] है। जाज्योति का लिखा हुआ दूसरा 'कुजविहारि नाटक' है। लगभग सन् ईसवी १६२९ के आसपास ही यह भी लिखा गया[५]। इस नाटक का वर्ण्य विषय है राधा-कृष्ण और गोपियो की लीला। भाषा के उदाहरण के लिए एक पद नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

सूत्रधार यह कहकर चला गया—

कुज विहार हरि छाज रे,
गोपी सबे हरसित आज रे

इतने में राधा और कृष्ण ने साथ ही यह गाते हुए प्रवेश किया—

जाहि यह जमुनातीर, शीतल सुरहि समीर।
नवदले तरुअरे सोह, मधुकर पुनि सब मोह॥
ताहि विहरि मन मास, हमर हृदय गुण वास।
ताहा गए करिए विलास जाया बहु दुरावए आस॥
नप जा ज्योतिमल्ल वाणी, मोर गति एके भवानी।[६]

उसके बाद षडऋतु वर्णन, गोपियों की उक्ति, राधा की उक्ति आदि है।

---

[१] नेपाल दरबार का हस्तलिखित ग्रथ, गीत पचाशिका (रचनाकाल सन् १६२८ ई०)।

[२] वही 'सगीत चन्द्र' का अनुवाद। मूल पुस्तक दूरात दक्षिण देशान लाई गई थी।

[3] वही, सन १६२७ ई० में नारायण सिंह द्वारा सकलित 'श्लोकसार सग्रह और सन् १६१७ ई० का 'नरपतिचर्या टीका'।

[४] डा० सुकुमार सेन विद्यापति गोष्ठी पृ० ४०।

[५] वही पृ० ४९।

[६] डा० प्रबोधचन्द्र बागची, नेपाले भाषा-नाटय (साहित्य परिषद् पत्रिका, ३६वा भाग) पृ० १७४।

मुदित कुवलयाश्व नाटक—'मुदितकुवलयाश्व' नाटक मैथिल कवि पडित रामचन्द्र शर्मा और जयमती के पुत्र वंशमणि ओझा द्वारा रचित है।[१] यह नाटक सन् ईसवी के १६२८ में लिखा गया था। यूरोपीय पडितो ने इस नाटक का बराबर उल्लेख किया है, इसका कारण यह है कि इस नाटक मे मल्ल राजवंश की परम्परा के सबंध में बहुत आवश्यक जानकारिया मिलती है। यह नाटक संस्कृत-नाटको के अनुकरण पर लिखा हुआ नही है, इसको 'गीतिनाट्य' ही कहना अधिक उचित होगा। हस्तलिखित प्रति में केवल गीत ही मिलते है। पदो और वार्तालापमें मैथिली और बगला का ही प्रयोग हुआ है।

मलयगन्धिनी तथा मदनचरित नाटक—

जग ज्योति मल्ल के बाद राजा जगत् प्रकाश मल्ल की भी थोडी कुछ रचनाएँ प्राप्त हुई है। इनका राज्यकाल १७वी शताब्दी का मध्यभाग है। जगत् प्रकाश रचित 'मलयगन्धिनी'[२] नामक पुष्पिकाहीन एक असम्पूर्ण नाटिका मिली है। इस नाटिका का जगत् प्रकाश की रचना होने मे किसी भी प्रकार सन्देह की गुन्जाइश नही। नान्दी में है—"जगत प्रकाश भने नाटक नाये" और सूत्रधार भी कह रहा है—"श्रीश्री जयजगतप्रकाशमल्लक आज्ञा भेलच्छ............मयलयगन्धिनी नाटक अभिनय करु।" जगत् प्रकाश का लिखा हुआ दूसरा नाटक' मदन चरित[३] मिला है। यह नाटक सन् ईसवी के १६७० में लिखा गया।

कवीन्द्र प्रतापमल्ल देव की रचनाएं—

भातगाव के जगत् प्रकाश मल्ल के प्रतिद्वन्दी थे काठमाडु के प्रतापमल्ल देव और ललितापुर के सिद्धिनर सिंह देव।

'कवीन्द्र' प्रतापमल्ल देव के नाम से बहुत सी रचनाए मिलती है जैसे—'वृष्टि चिन्तामणि" अवलोकितेश्वर स्तवराज', 'स्वयंभूभट्टारकस्तोत्र', 'अविद्याधरीगीतस्तव', 'हरमेखला टीका', 'सगीततारोगयचूडामणि' आदि।[४]

---

[१] डा० सुकुमार सेन, 'विद्यापति गोष्ठी', पृ० ४९।

[२] डा० प्रबोध चन्द्र वागची, नेपाले भाषा-नाटक (साहित्य परिषद् पत्रिका, ३६ वाँ भाग), पृ० १७५।

[३] वही, पृ० १७५।

[४] डा० सुकुमार सेन. विद्यापति गोष्ठी, पृ० ४९-५०।

गीत दिगम्बर, हरकेलि तथा चतुरंग तरंगिणी नाटक—

कवि वंशमणि प्रतापमल्ल देव की सभा में भी थे। प्रतापमल्ल देव के तुलापुरुषदान-महोत्सव के अवसर पर वंशमणि ने सन् ईसवी के १६६५ में *'गीत-दिगम्बर' नाटक लिखा था। 'गीत-दिगम्बर'*[1] जयदेव के *'गीत-गोविन्द'* के अनुकरण पर लिखा गया है। ध्यान देने की बात है कि इस नाटक में एक पद तुलसीदास की अवधी भाषा के अनुरूप भाषा का मिलता है। वंशमणि ने 'हरकेलि'[2] नाम का एक महाकाव्य भी लिखा था। वंशमणि की और एक रचना 'चतुरंग तरंगिणी'[3] मिली है।

गोपीचन्द्र नाटक और हरिश्चन्द्र नाटक—

सिद्धिनरसिंह देव (मृत्यु १६५७ सन् ईसवी) के राज्यकाल में 'गोपीचन्द्र नाटक' और हरिश्चन्द्र-नृत्य' (अर्थात् हरिश्चन्द्र नाटक) लिखा गया। गोपीचन्द्र *नाटक का अधिकांश भाग पद्य में है और उसकी भाषा प्राचीन बंगला है।* 'हरिश्चन्द-नाटक' के रचयिता रामभद्र हैं। सिद्धिनर सिंह मल्ल के पुत्र श्रीनिवासमल्ल देव की आज्ञा से कवि रामभद्र ने 'ललितकुवलयाश्वमदालसा-नाटक' ('शिवपावनी महिमानृत्य) लिखा। यह नाटक १६६५ सन् ईसवी में लिखा गया।[4]

श्रीनिवास मल्ल का ब्रजबुलि का पद—

स्वयं श्रीनिवास मल्ल रचित एक ब्रजबुलि का पद मिला है—

उपमिअ आनन नीरज-पंकज नागधर दिवस-मलीने
भौंह अनुपम अधर सोहायन नवपल्लव रुचि छीने।
सुन पेयसि की मोर परल गदअ अपराधे
दह मलयानिल जार कलेवर न कर मनोरथ बाधे॥[5]

---

[1] नेपाल दरबार का हस्तलिखित ग्रंथ।

[2] एशियाटिक सोसायटी (इंडिया गवर्नमेंट हस्तलिखित ग्रंथ) ग्रंथ संख्या ८१४८)।

[3] नेपाल दरबार का हस्तलिखित ग्रंथ।

[4] डा० सुकुमार सेन विद्यापति गोष्ठी पृ० ५०।

[5] रागतरंगिणी, पृ० ४८।

अश्वमेध नाटक और मदालसा हरण नाटक—

भातगाँव के जगत् प्रकाश मल्ल के पुत्र जितमित्रमल्ल देव के उद्योग से सन् ईसवी के १६९० मे 'अश्वमेध-नाटक'[1] लिखा गया। और एक 'मदालसा हरण'[2] नाटक की हस्तलिखित प्रति मिली है जो सन् ईसवी के १६८७ में लिखा गया है।

भूपतीन्द्रमल्ल की रचनाएँ—

जितामित्र के बाद १८वी शताब्दी के आरम्भ में उनके पुत्र भूपतीन्द्र मल्ल भातगाँव के सिंहासन पर वैठे। इन्होने सन् ईसवी के १६९५-१७२२ लगभग ३० वर्ष तक राज्य किया। भूपतीन्द्र के लिखे हुए वहुत से गीत (पद) और नाटक प्राप्त होते हैं।[3] उनकी रचनाओ से रचयिता के सुन्दर कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। भूपतीन्द्र का लिखा हुआ 'माधवानल', 'रुक्मिणी परिणय' और दो नाटको की असम्पूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ (शेष पृष्ठ के न रहने के कारण नाटको का नाम ज्ञात न हो सका) नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। ननीवावू ने भूपतीन्द्र के और दो नाटक 'विद्याविलाप' और 'महाभारत' प्रकाशित किए हैं। उन्होने 'विद्याविलाप' को काशीनाथ रचित और महाभारत' को कृष्णदेव कृत कहा है। 'विद्याविलाप' मे दो पद और 'महाभारत' में एक पद छोडकर सभी पद लालमती देवी—सुत, विश्वलक्ष्मी देवी-पति भूपतीन्द्र की ही भणिति में हैं। अपनी राजधानी में गुणो का वर्णन स्वय करना शोभनीय नही, शायद राजा को ऐसा लगा इसलिए इन दोनो नाटको के तीन पदो में भूपतीन्द्र की छाप नही है। इन नाटको की भाषा भी अन्य नाटको के समान ही है अर्थात् गद्याश प्राचीन वंगला और पद्याश व्रजवुलि में है।

भाषा संगीत में व्रजवुलि के पद

भूपतीन्द्र की आज्ञा से १७१३ सन् ईसवी में, भैरवाप्रादुर्भाव, नाटक लिखा गया। नेपाल के राजकीय पुस्तकालय मे "भाषा सगीत' नाम का एक

---

[1] नेपाल—दरवार का हस्तलिखित ग्रंथ।

[2] डा० प्रवोधचन्द्र वागची नेपाले भाषा नाटक (साहित्य परिषद् पत्रिका) पृ० १७६।

[3] डा० सुकुमार सेन : विद्यापति गोष्ठी, पृ० ५१।

हस्तलिखित ग्रंथ सुरक्षित है। इसके गीतों को भूपतीन्द्र ने स्वयं संकलित किया था किसी सभा कवि से सन् ईसवी के १७०५ में कराया इस सम्बन्ध में प्रमाण के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इसमें १३९ गीत हैं और गीतों की भाषा ब्रजबुलि है। उदाहरण के लिए एक गीत नीचे दिया जा रहा है। राधिका का विरह वर्णन —

कि माधव न तेजह अवलाअ आनि। ध्रु०।
शरद जामिनी हमे हरिलो हे चउदिशे
देखि शशि दाह पराण।
नाह अपनहि कर मने भाविय।
मलय पवन हन चान॥
मधुकर भमि भमि विपिन कुसुम रमि
धुरि पिवय कर राव।
युवति हृदय दल, प (र) म कठिन मन,
पाहन तह अति भाव।
सरसिज सखरे द्रुम भय पिक ध्वुनि
सुनि जिय कापय मोर।
भवन आसन धन, भल न सभावय
खने खने चिति चिति मोर।
कवन गुणे परयस, रयनि गयाओल।
आवुरे अथिर गेयान,
भूपतीन्द्र नरपति भण सुन मालिनि
रति रस होयत निदान॥

भूपतीन्द्र मल्ल की रचनाओं के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये संगीत और नाट्य शास्त्र के विशेष जानकार थे। आज तक उनके गीत सम्मानित होते आ रहे हैं।

रणजीतमल्ल की रचनाएं—

भूपतीन्द्र के वंशज रणजीत मल्ल सन् ईसवी के १७२२ के कुछ पहले ही भातगाव के सिंहासन पर बैठे। साहित्य मर्मज्ञता में वे अपने पूर्व पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं थे। उन्होंने लगभग ५० वर्ष तक राज्य किया। इन ५० वर्षों में उन्होंने बहुत से नाटक लिखे। इन नाटकों में से बहुत कम ही

अभी तक मिले हैं। सगीत-शास्त्र में भी उनका अच्छा अधिकार था और गीतो के बीच-बीच में सुन्दर पदो के भी नमूने मिल जाते हैं।

रामचरित्र और माधवकामकन्दला—

ननीबाबू द्वारा प्रकाशित "रामचरित्र" और "माधवकामकन्दला" नाटक रणजीत मल्ल द्वारा ही रचित हैं[१]। इनमें दो पदो के अतिरिक्त सपूर्ण पदो में नृप रणजीत मल्ल की छाप मिलती है। अत. इसमें कोई सन्देह नही कि ये दोनो नाटक रणजीत मल्ल द्वारा ही लिखे गये होंगे। इन दोनो नाटको की भाषा में मैथिली की अपेक्षा बगला का ही अधिक प्रभाव है। "रामचरित्र" नाटक की भाषा यद्यपि अधिकाश बगला के ही निकट है फिर भी उसमें यदाकदा व्रजबुलि का भी अश है। उदाहरण के लिए एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

हरखे वृन्दावने जाय देखब।
कोकिल धुनि शुनि वेनु बजाव।
मिलत गोपिनी सबे आय॥

रणजीत मल्ल रचित नाटक—

श्री प्रबोधचन्द्र बागची महाशय को रणजीत मल्ल रचित और ६ नाटक प्राप्त हुए है—"उषा-हरण नाटक," "अन्धकासुर वधोपाख्यान नाटक," कृष्ण-चरित नाटक," "मदन चरित कथा नाटक," "कोलासुर वधोपाख्यान नाटक", और रामायण नाटक"[२]। इन सब नाटको की भाषा भी अन्य नाटको के समान ही है। इनके अतिरिक्त श्री प्रबोधचन्द्र बागची महाशय को रणजीत मल्ल द्वारा रचित नेवारी भाषा का "गोरक्षोपाख्यान कथा" नाम का एक नाटक मिला[३]। गोरखनाथ का कीर्त्तिकलाप ही इस नाटक का वर्ण्य विषय

---

[१] इन दोनो नाटको में राज्यवर्णन और देशवर्णन के अश में "गणेश" और "धनपति" के नाम की छाप मिलने के कारण, ननीबाबू ने "नेपाले बागला नाटक" और श्री सुकुमार सेन महाशय ने "विद्यापति-गोष्ठी" में "रामचरित" को गणेश और "माधवकामकन्दला" को धनपति रचित माना है।

[२] नेपाले भाषा नाटक, (साहित्य परिषत् पत्रिका ३६ वा भाग), पृ० १८०।

[३] वही।

हैं। नेवारी भाषा में होने पर भी यह नाटक अन्य नाटकों के अनुकरण पर ही लिखा गया है।

नाटकों में ब्रजबुलि—

भूपतीन्द्र मल्ल के पुत्र रणजीत मल्ल देव भातगाँव के अन्तिम नेपाली राजा थे अतएव इनकी राज्य समाप्ति के साथ ही नेपाल के नाटक-साहित्य का प्रसंग भी समाप्त होता है। नेपाल में ब्रजबुलि साहित्य बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के स्वतंत्र पदावली के रूप में विकसित न होकर नाटकों के २०० वर्षों की साहित्य धारा के बीच ही पनपा। मिथिला में जिस ब्रजबुलि का बीज बोया गया था वही नेपाल-मोरंग राजसभा में नवीन पौधे रूप में अंकुरित हुआ।

(ख) बंगाल

ब्रजबुलि की व्यापकता—

ब्रजबुलि-साहित्य ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों से लेकर ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण बंगाल को रस से आप्लावित करता रहा है। इसके बहुत प्रसार और विकास का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को है। उनके अनुगामियों ने राधाकृष्ण के लीलाविषयक ब्रजबुलि पदों की प्रचुर मात्रा में रचना की। उनके अनुयायी उन्हें राधा कृष्ण का अवतार मानते हैं और उसी रूप में उनकी लीलाओं का भी वर्णन उन्होंने किया है। ब्रजबुलि के प्रसार और उसके व्यापक होने में उसकी सरलता गेयता तथा उसके माधुर्य का कम हाथ नहीं है।

बंगाल में ब्रजबुलि का प्राचीनतम उदाहरण—

बंगाल में ब्रजबुलि का प्राचीनतम उदाहरण यशोराजखान रचित निम्नलिखित पद है। ये हुसेनशाह के आश्रित थे। इस पद में सखी मिलनातुर राधिका की दशा का वर्णन कृष्ण से कर रही है—

> एक पयोधर चन्दन लेपित आर सहइ गोर।
> हिम धराधर कनक भूधर कोले मिलल जोर।
> माधव तुआ दरशन काजे
> आध पदचारि करिया सुन्दरी बाहिर देहली माझे।
> डाहिन लोचन काजरे रंजित धवल रहल बाम।

हेरइते रूप नयनयुग झापलु
तब मोहे रोखलि भोर।
सुन्दरि, तेखने कहल को तोय।
भरमहि ता संये नेह बाढायबि
जनम गवायबि रोय।
बिनुगुण परखि परक रूपलाल से
काहे सोंपलि निज देहा।
दिने दिने खोयसि इह रूपलावणि
जीवइते भेल सन्देहा॥
जो तुहुं हृदये प्रेम तरु रोपलि
श्यामजलद रस-आशे।
सो अब नयन-नीर देह सींचह
कहतहि गोविन्द दासे। (पदकल्पतरु, सख्या ४३५)

अठ्ठारहवीं शताब्दी के बाद का ब्रजबुलि-साहित्य—

ईसवी सन् की सत्रहवी शताब्दी के अन्तिम दिनो से बगाल के ब्रजबुलि साहित्य के रूप मे परिवर्तन परिलक्षित होने लगता है जिससे पदो की भाषा और छन्द में नवीनता का समावेश होता है। साहित्य-रचना की दृष्टि से इन पदो की सृष्टि नही हुई, भक्ति-निवेदन ही उसके मूल में था। इन पदो की सृष्टि से कीर्तन की प्राचीन प्रणाली मे नये रस का सचार हुआ। दृष्टान्त के लिये शशिशेखर का निम्नलिखित पद उद्धृत किया जाता है :

विरहिणी राधा की दशम दशा का वर्णन है।

अति शीतल मलयानिल मन्द मधुर बहना
हरि वैमुखि हामारि अंग मदनानले दहना
कोकिल कूल कुहु कुहरइ अलि झंकरु कुसुमे
हरि लालसे तनु तेजब पावब आन जनमे।
सब संगिनी घेरि बैठलि गावत हरिनामे
जैखने शुने तैखने उठे नवरागिनी गाने।
ललिता कोरे करि बैठत विशाखा धरे मटिया
शशि शेखर कहे गोचरे जावत जिउ फाटिया[१]॥

---

[१] अप्रकाशितपदरत्नावली, सख्या २५७।

शत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं-शताब्दी में व्रजबुलि-साहित्य—

सप्तदश शताब्दी की यह रचना प्रणाली अष्टदश शताब्दी की सीमा को पार करते हुए उनविंश शताब्दी तक क्रमिक धारा में चलती आई। उन्नीसवी शताब्दी में जनमेजय मित्र, बंकिमचन्द्र चटटोपाध्याय, राजकृष्ण राय, गुरुप्रसाद सेनगुप्त त्रिपुरा के महाराज वीरचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भानुसिंह के उपनाम से) ने व्रजबुलि में कुछ पदों की रचना की। व्रजबुलि साहित्य की मधुरिमा और रसालुता ने उदीयमान बंगला साहित्य को माधुर्य प्रदान किया। बंगला-साहित्य को इसने अत्यधिक प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में आकर, जब नये नये विचारों और आधुनिकता का प्रवेश बंगाल में हो रहा था, व्रजबुलि साहित्य की धारा क्षीण हो गई और उसका स्थान आधुनिक बंगला-साहित्य ने ले लिया।

परवर्ती काल के व्रजबुलि के कुछ पद—

उस काल की व्रजबुलि की रचनाओं के स्वरूप को निम्नलिखित दो-चार पदों में देखा जा सकता है। मथुरा प्रवासी प्रिय कृष्ण के वियोग राधा व्याकुल हैं। विरह की असह्य पीड़ा में तड़पती हुई राधिका सोचती हैं संयोग दशा में कृष्ण-सानिध्य में ही मेरे प्राण क्या नहीं त्याग दिया, यह तिल-तिल कर दुःख सहते हुए जीने से तो संयोग की दशा में मृत्यु कहीं भली थी।

> पराण ना गेलो।
> जो दिन पेखनु सइ जमुनाकि तीरे,
> गायत नाचत सुन्दर धीरे धीरे,
> ओहि पर पिय सइ, काहे कालो नीरे,
> जीवन ना गेलो ?
> फिरि घर आयनु, नाकहनु बोलि,
> तितायनु आंखि नीरे आपना आंचोलि
> रोइ रोइ पिय सइ काहे लो पराणि,
> तइखन ना गेलो ?
> शुनहु श्रवण-पथे मधुर बाजे,
> 'राधे' 'राधे' 'राधे' राधे विपिन माझे,
> जब शुनतु लागि सइ, सो मधुर बोलि,
> जीवन ना गेलो ?

धायनु पिय सह, मोहि उपकूले,
लुटायनु कादि सह श्यामपद मूले,
सोहि पदमूले रइ, काहे लो हामारि ।
मरण ना भेल ?[1]

बादलो के बीच से छन-छन कर आती हुई भीनी चाँदनी, रह-रह कर बिजली की चमक और मेघो की मृदु ललक से वर्षाकालीन रात्रि की शोभा अद्भुत रमणीय हो रही है। उस कमनीय मोहक वातावरण में युगल किशोर झूलन और विहार के विलास रंग में तन्मय है—

देख रे ए सखि, आजु कि भिनि भिनि चांदनी राति,
चादिके सारी शुक पिक कुल गावत,
देख रे सखि··· ········ · ····।
पापिया दादुरीगण मदन जागायति
देख रे सखि········ ···············।
घन घन सौदामिनी झलकत, ललकत
गरजत गंभीर निनादे रे,
देख रे · ··· ···· ··· ··· ····।
रिमि झिमि बरखत मलय पवन साय,
युवक युवती चित मदन माताय रे,
ऐछन समये, विहरत नवल किशोर,
जमुना पुलिनें कुंज सुशोभने, शोभन हिन्दोल माझ रे,
नाचत गावत रंगिनी जोड़, विहरइ काननें जुगल किशोर रे।
ऐछन निरुपम झुलन विलास
आनन्दे हेरत वीरचन्द्र दास।[2]

इस कठिन भव-बन्ध मोचन में एकमात्र गुरु का ही सहारा है, अतएव कवि गुरु की अपार महिमा की वन्दना करता है—

पामर-जन-गण-परम सुहृत धन
गुरु पदे मझु परणाम।
कोमल-नीरज पटल-कलेवर
सरस प्रेममय धाम॥

[1] वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय 'मृणालिनी', पृ० ८४।
[2] महाराज वीरचन्द्र, झूलन गीति, २६; पृ० २८-२९।

को जाने तोंहारि कृपा-बल लेग ।
देह करुणा करि भूतल अवतारि
भव-तरि सम उपदेग ॥
जो जन सो तरि वहि वहि आवत
मिलत जुगल-निधि-पासे ।
सुखमय-युगल-केलि रस रजन
निति निति निरख उलासे ॥
स्मरण मनन करि कुआ पद-पकज
प्रसाद-दास रस गाव ।
वचित भक्ति दुरित-मति जानिए
नाहि करुण विछुरव ॥[1]

सावन की काली घनघोर रात्रि हैं । कृष्ण मादक वशी के स्वर में राधा को बारबार बुला रहे हैं । कृष्ण—प्राणा राधा भला कैसे वह प्रिय आह्वान अनसुनी कर सकती है तभी तो अभिसारोचित वेशभूषा की रचना के लिए सखिया से अनुरोध करती हो—

सजनि गो—शावन गगने घोर घनघटा
निशीथ जामिनी रे ।
कुज पथे सखि सखि कसे जायब
अबला कामिनी रे ।
उन्मद पवने यमुना तर्जित
घन घन गर्जित मेह ।
दमकत विद्युत पथतरु लुण्ठत,
थरथर कम्पत देह ।
घन घन रिम झिम रिम झिम रिम झिम,
बरखत नीरद पुज ।
घोर गहन घन ताल तमाले
निविड़ तिमिरमय कुज ।
बोलत सजनी ए दुरजोगे
कुजे निरदय कान
दारुण बाशी काहे बजायत
सकरुण राधा नाम ।

[1] प्रसाद दास पद-चिन्तामणि-माला ।

सजनि—

मोतिम हारे वेश बना दे
सीथि लगा दे भाले ।
उरहि विलोलित शिथिल चिकुर मम
बाधह मालत माले ।
खोल दुआर त्वरा करि सखि रे,
छोड़ सकल भय लाजे,
हृदय, विहगसम झटपट करतहि
पंजर-पिंजर माझे ।
गहन रयनमे न जाव बाला
नवल किशोर-क पाश
गरजे घन घन, बहु डर पावब
कहे भानु तव दास ।[1]

अंतिम पंक्तियों में जीव की ब्रह्म मिलन की आतुरता स्पष्ट ध्वनित है। अलौकिकता के बाने में उपरोद्धृत पद का सौन्दर्य अपूर्व है।

इसी भाव की व्यंजना कितने सुन्दर रूप में इस अन्य पद में प्रकट हुई है। मरणासन्न जीव 'उस पार नियति का मानव से जाने क्या क्या व्यवहार होगा' कि अज्ञात—भीति के कारण ही इतना भयभीत होता है। पर कवि की यह अभय वाणी कितनी आश्वासनपूर्ण है—मरण श्याम तुल्य और जीव कृष्ण—प्रिया राधिका के समान है, ऐसे परम प्रिय से मिलन के लिए जाते हुए कैसा भय और कैसी बाधा ?—

मरण रे,
तुहुं मम श्याम-समान ।
मेघवरण तुझ, मेघ जटाजूट,
रक्तकमल कर, रक्त अधर पुट,
तापविमोचन करुण कोर तब
मृत्यु-अमृत करे दान ।
तुंहुं मम श्याम-समान ॥
मरण रे,
श्याम तोहारइ नाम ।

---

[1] रवीन्द्रनाथ ठाकुर · (भानुसिंह-पदावली), ७ ।

चिर विसरल जब निरदय माधव
तुहु न भइबि मोय वाम ।
आकुल राधा रिझ अति जरजर,
झरइ नयन-दउ अनुखन झरझर,
तुहु मम माधव, तुहु मम दोसर,
तुहु मम ताप घुचाव ।
मरण तु आव रे आव ॥

भुजपाशे तव लह सम्बोधयि,
आंखिपात मझु आसव मोदयि,
कोर-उपर तुझ रोदयि रोदयि
नीद भरव सब देह ।

तुहु नहि विसरबि, तुहु नहिं छोड़बि,
राधा हृदय तु कबहु न तोड़बि,
हिय हिय राखबि अनुदिन अनुखन
अतुलन तोंहार लेह ॥

दूर सयें तुहु बांशि बजावसि
अनुखन डाकसि, अनुखन डाकसि
राधा राधा राधा,
दिवस फुरावल, अवहु न जायब,
विरहताप तव अबहु घुचायब,
कुंजवाट-पर अबहु म धायब,
सब कछु टुटइब बाधा ।

गगन सघन अब, तिमिर मगन भव,
तड़ित चकित अति, घोर मेघरव,
शाल ताल तरु सभय-तबध सब,
पथ विजन अति घोर ।

एकलि जायब तुझ अभिसारे,
जाक पिया तुहु कि भय ताहारे,
भय-बाधा सब अभय मूर्ति धरि,
पथ देखायव मोर ।

भानुसिह कहें, छिये छिये राधा,
चंचल हृदय तोहारि,
माधव पहु मम, पिय स मरणसे
अब तुंहुं देख विचारि ।।[1]

वगाल मे व्रजवुलि का इतिहास पाच सौ वर्षो के सुदीर्घ क्षेत्र के वीच विकसित रहा, अत व्रजवुलि के पद रचयिताओ की सूची भी उसी अनुपात से विस्तृत है । इसीलिए व्रजवुलि के उन वैष्णव पदकर्ताओ की चर्चा आगे स्वतत्र अध्याय मे की जायगी ।

(ग) आसाम

शंकरदेव और असमिया संस्कृति—

असमिया साहित्य के आदि युग (१२०० स० ई०-१६५०स० ई०) को भक्तिकाल की आख्या दी जा सकती है । भक्तिमूलक उस साहित्य के शकरदेव अग्रदूत है । कट्टर शाक्त उपासक आसाम प्रान्त में शकरदेव ने १५वी शताव्दी में वैष्णवता की विपुल वाढ ला दी, यह कोई कम श्लाघनीय कार्य नही । किसी आलोचक की यह उक्ति 'आसाम प्रान्त मे जो नही था और उसे जिन-जिन चीजो की आवश्यकता थी, वह सव कुछ शकरदेव ने देकर उसका मुख उज्ज्वल किया', अति उपयुक्त है । वस्तुत असमिया साहित्य, समाज, धर्म, सस्कृति के पुनरुत्थापन मे शकरदेव का स्थान अद्वितीय है ।

आसाम का वैष्णव साहित्य—

महाकवि शकरदेव, उनके प्रमुख शिष्य मावबदेव तथा उनके शिष्य-उपशिष्य वर्ग—विष्णुपुरी, कवीर, वृन्दावनदास, परमानन्द, पुरुषोत्तम ठाकुर, रामचरण ठाकुर, दैत्यारि ठाकुर, नारायणदास, गोपाल आता और भागीरथ के उद्योगो के फलस्वरूप आसाम मे भी वगाल का सामयिक वैष्णव साहित्य प्रस्तुत हुआ । यह कहना किसी प्रकार भी तर्कसंमत नही कि आसामी भापा वगाली आसामी भापा परिवार के अन्तर्गत होने के कारण आसाम के

---

[1] रवीन्द्रनाथ ठाकुर . भानुसिह -पदावली, ९ ।

[2] श्री कमलनारायण . 'असमीया साहित्य में वरगीत' (हिंदुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४३) पृ० ३ ।

ब्रजबुलि को भी बंगला से पृथक करके विचारने की आवश्यकता नहीं।[1] आसामी ब्रजबुलि साहित्य तथा बंगला ब्रजबुलि साहित्य में मौलिक भावगत भेद स्पष्ट है, आगे चल कर आसामी साहित्य संबंधी विचार विवेचन के समय इस पर आवश्यक प्रकाश डाला जाएगा।

आसाम में ब्रजबुलि साहित्य का प्रवर्तन—

आसाम में ब्रजबुलि के क्रमविकास का कारण था—पहले ही से कामरूप के लोगों का विदेह के लोगों के साथ सम्पर्क और स्वयं शंकरदेव का मैथिली बोलनेवालों से प्रत्यक्ष संबंध १४४९ १५६८ की प्रथम तीर्थ यात्रा के समय शंकरदेव ने देखा कि वैष्णव धर्म प्रचार में ब्रजबुलि तथा मैथिल भाषा का बहुत बड़ा हाथ है, अतः आसाम में वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने भी इन्हीं का आश्रय लिया। इस प्रकार प्रमुख धर्म सुधारक तथा साहित्यसेवी शंकरदेव तथा उनके सहचरों ने आसाम में एक वृहत् ब्रजबुलि साहित्य की सृष्टि की। जिसके कुछ अप्रमुख भाग ही अब तक प्रकाश में आए हैं।[2]

आसामी साहित्य और ब्रजबुलि—

आसामी साहित्य का एक बहुत बड़ा अंग ब्रजबुलि साहित्य है। यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रजबुलि गीत ही आसामी साहित्य का मेरुदण्ड है। विद्यापति के अनुकरण पर रची गई आसामी ब्रजबुलि के गीतों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) बरगीत (भगवत्विषयक गीत) और (२) अंकरा गीत (अंकिया नाटों के गीत)[3]। ये गीत भी बहुत कुछ विद्यापति के ब्रजबुलि गीतों से मिलते जुलते हैं। इन गीतों की विषयवस्तु श्रीकृष्ण और उनकी लीलाएं हैं। यहां यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि विषय की दृष्टि से बंगाली ब्रजबुलि कवियों की तुलना में आसामी ब्रजबुलि कवियों पर ब्रज का सीधा और स्पष्ट प्रभाव है।

आसामी ब्रजबुलि और ब्रजभाषा—

आसामी ब्रजबुलि में भी ब्रजभाषा के शब्द पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं इसका कारण स्पष्ट है—शंकरदेव अपने प्रथम १२ वर्ष कालीन तीर्थ यात्रा

---

[1] द्रष्टव्य—सुकुमार सेन हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर पृ० १।

[2] द्रष्टव्य 'जरनल आफ कामरूप अनुसंधान समिति (८) पृ० १०४।

[3] डाक्टर जयकान्त मिश्र हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर, पृ० १७७।

के समय विभिन्न धर्म और सस्कृति के केन्द्रस्थलो पर रुकते चले। उन्हें विभिन्न सम्प्रदायो के आचार विचार के अध्ययन का पूरा मौका मिला। उस समय उत्तर प्रदेश मे, राम, कृष्ण और राधाकृष्ण विषयक तीन वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित थे। ब्रजभाषा में प्रस्तुत उक्त सम्प्रदायो के साहित्य तथा सिद्धान्तो का शंकरदेव ने गभीर अध्ययन किया। विद्यापति का प्रभाव तो बीजरूप मे अप्रत्यक्ष भाव से हृदय में छिपा ही था, अब ब्रजभाषा साहित्य की प्रेरणा से ब्रजबुलि के बरगीतो के स्रोत फूट चले जिसकी भाषा में मैथिली तथा ब्रजभाषा के साथ ही कुछ आसामी पदो और मुहावरो का भी प्रवेश हो गया। इस कारण आसाम प्रान्त में विकसित ब्रजबुलि साहित्य में बगला ब्रजबुलि साहित्य से स्वतन्त्र विशेषताए है। प्रत्येक प्रान्त में विकसित ब्रजबुलि मे प्रादेशिक विशेषताओ के पुट के कारण सर्वत्र ही वह कुछ पृथक रूप में दिखाई पडी।

असमिया ब्रजबुलि पर ब्रजभाषा साहित्य का प्रभाव—

यात्रा से पूर्व शकरदेव की रचना की भाषा शुद्ध असमीया थी, इसका पुष्ट प्रमाण मिलता है आसामी भाषा और साहित्य के इतिहास लेखक श्री देवेन्द्र नाथ बेजबरुआ की पुस्तक मे 'शकरदेव की भाषा शैली दो प्रकार की थी। एक तो शुद्ध असमीया की भाषा शैली, दूसरी ब्रज और मैथिली मिश्रित असमीया थी। तीर्थ यात्रा के पहले की रचनाओ की भाषा असमीया है और यात्रा के बाद दूसरी शैली की भाषा का प्रयोग किया है[1]।' इस प्रकार आसामी साहित्य के साथ ब्रजभाषा साहित्य का केवल भागवत ही नही भाषागत मेल भी हुआ। उदाहरणस्वरूप माधवदेव का यह पद है—

राग–अशोवारी

गोविन्द दीनदयाशील स्वामी। तुहु मेरि सायेब चाकर हामि ।।घु०।।
काकु करिया तुवा चरणे लागो। अरुण चरणे चाकरी मागो ।।
तेरि चरणे मेरि परणाम। चाकरी मागो नाहि आन काम ।।
आपुन करमे जनम जाहा होइ। ताहा तुवा चरणे चाकरी रहु मोइ ।।
माधवदास कहय मति हीना। गति मेरि नहि तुआ पद बिना ।।[2]

यह प्रार्थना विषयक पद मीराबाई के प्रसिद्ध पद[3] का स्मरण दिलाता है।

---

[1] श्री कमल नारायण . 'असमिया साहित्य में 'बरगीत' पृ० १० पर उद्धृत (हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४३)।

[2] बड़गीत—७२, पृ० ४८।

[3] 'म्हाने चाकर राखो जी–गिरिधारी लाला।

वडगीतो के रचयिताओ में महाकवि शकरदेव तथा माधव देव ही अग्रगण्य ह। इनके अनुगामी तथा सहचरो ने भी पूण उत्साह के साथ वष्णव साहित्य सृजन में सहयोग दिया। परम्परा स वडगीता की सख्या २४० मानी जाती हैं परन्तु प्राप्त गातो की सख्या केवल २०७ ही हैं, जिनमें ४१ शकरदेव १५४ माधवदेव, १ रामचरण ठाकुर १ दैत्यारि ठाकुर और १० पुरुषोत्तमठाकुर द्वारा लिखे गए हैं।

आसाम के वडगीत—

वडगीता के कवित्व पर विचार करत हुए डा० काकति[1] ने अपना अभिमत प्रकट किया हैं—'जसे तूफान वन में लगी हुई दावाग्नि को प्रज्वलित करने में सहायक होता ह उसा प्रकार साहित्य जातीय एव महाजातीय आन्दोलन को उत्साहित और प्रेरित करता है। नाम्का गीतो और पदा ने ही शकरदव क वैष्णव आदालन को इस शाक्त प्रदेश में इतना व्यापक और लोकप्रिय बनाया। तृषित जनता, मरुभूमि की ऊट की तरह पानो का गधसूत्र पकड कर जला शय ढूढने जस वरगीता के सौरभ से आकृष्ट होकर शकर माधव के शरणापन्न हुई थी।' वरगीता में आध्यात्मक सौन्दय, भावा की कोमलता और विचारा की उच्चता ह[2]। मध्ययुग के आसामी साहित्य में इन गीतो ने क्राति मचा दी। निम्नलिखित कुछ थोडे स गीतो के उदाहरणा से इस कथन की सत्यासत्य की परीक्षा हो जावेगी।

इन पदो में भक्ति क निमल प्रकाश में दास के हृदय का सच्चा दय टपक रहा ह —

राग—सुहाई

श्री राम ! मइ अति पापी पामर तेरि भावना नाइ।
जनम चिन्तामणि काहे गयो जब काचक लाइ ॥ध्रु०॥
दिवसे विषय विषाकुल निशि शयने गावाइ।
मने धन खोजि विमोहित तेरि आरति न पाइ॥
हृदय कमले हरि बइह चिन्तो चरण ना तेरि।
करल गरल जब भोजन हामो अमिया हेरि॥

[1] 'पुराणि असमिया साहित्य'।

[2] बरुआ 'दी हिस्ट्री आफ आसामी लिटरेचर'।

परम मूरख माधव एकु भकति ना जाना ।
दास दास बुलि तावहु एहु शंकर भाणा ॥[1]

राग—अशोवारी

कैंछे गोविन्द सेवहों तोइ ।
चंचल मन मेरि थिर नाहि होइ ॥ध्रु०॥
जैंचे पंकजदलगत नीर ।
विषय लुबुध मन तैंछे अस्थिर ॥
छोड़ि पामर मति रति तुवा पाय ।
रूप रस परश शब्द गन्धे धाय ।
कहय माधव हरि करु मेरि दया ।
चरणे शरण लेहो छोड़ह माया ॥[2]

राग—माहुर धाचि

राम तेरे चरण कमले रति लागो, मागों भकति गोसाॅयि ।
हामो अनाथ, नाथ तुहु गोविन्द, अगतिक गति आवरि कोइ नाइ ॥घु०॥
निरमल भकति राज तुवा नाम गुण
ता बिने पतित तारक नाहि कोइ ।
हामू पतित तुमहि एकु पालक
इबेरि गोसाॅयि वंचवि नाहि मोइ ॥
तब निज दास संगति रति भकति
तृण दशने मागोहो प्रभू राम ।
तब निज दासकु दासक लेवना
माधव कहय आवरि नाहि काम ॥[3]

अब बाल गोपाल के मनोहारी रूप की एक झाकी देखिए :—

राग—माहुर धनश्री

साजेरे सखि नन्दकूबाला ।
नवघन जिनि शोहे तनु काला ॥ध्रु०॥

---

[1] बडगीत—१४, पृ० ९ ।
[2] बडगीत—६१, पृ० ४१ ।
[3] बडगीत—६८, पृ० ४६ ।

अधर सुधाकर पूरित वेणु ।
अंग विभूषित गो पद रेणु ।।
झलमल मयूर पुच्छ शोहे माथे ।
कोटि मदन जिनि गोपिनि नाथे ।।
निंदि इन्दु कोटि हरि साजे ।
झलक्ति किंकिणी मंजीर बाजे ।।
कण्ठे बेलि कदम्बकु माला ।
कहत माधव गति बाल गोपाला[1] ।।

वन में गोचारण के लिए जाते हुए किशोर कृष्ण का जग मोहन रूप वर्णन—

राग धनश्री

हरहु माय, चललि विपिने मधाई ।
बेणु विषाण, निशाने आवत, हरषे धेनु धाय ।। ध्रु० ।।
उहि जग मोदन कान्धे दधि उदन
गोधन आगु बुलाय ।
बंकिम नयन सरोरुह हासि
हेरइते भुवन भुलाय ।।
मदन मदनरूप देखि पुनु पुनु
सुरुचि पड़य सुरनारी ।
सोहि जगजीव वियोग अब सहचि
कचन चित्त हामारि ।।
हरि-विरहानल आकुल गोपिनी
दरशन दिवसे नपाय ।
हरिगुण कहि रहि प्रेमे भुरय नीर
शंकर एहु रस गाय[2] ।।

गोपियों के आगे कृष्ण हाथ पसार करके नव नीत माँग रहे हैं—

राग-कामोद

नन्देर नन्दन गोपिनी आगे ।
कर पासि हरि लवणु मागे ।। ध्रु० ।।

---

[1] बड़गीत–१२९ पृ० ९१ ।
[2] बड़गीत–२२, पृ० १५ ।

बोलत वाणी गोवारीक चाया।
नवीन लवणु देहु गोपजाया॥
जो हरि दाता पदारथ चारि।
मागत लवणु सोहि मुरारि॥
शिव विरंचि करु जाक सेवा।
लवणु मागि फिरय सोहि देवा॥
सनक सनातन जाकु धियाई।
सोहि लवणु मागे गोपिनीक ठाइ॥
अभय दान करु जेहि हाते।
गोपिनीक आगे सोहि कर पाते॥
मुकुति मिलावत जाकेरि नामे।
मागय लवणु गोवारिक ठामे॥
जोहि थिक निजानन्द सुखे।
सो हरि लवण मागय कोन दुखे॥
करत भकति हरिको अधीना।
उहि रस गावत माधव दीना[1]॥

इन पदो का सा लालित्य, छन्दो की मधुरता, भाषा का अविराम प्रवाह और उनके क्रोड से बहती हुई भक्ति की उच्छ्वसित निर्मल भावधारा जन समाज को लोकोत्तर संदेश देती है। 'बरगीत' शंकर तथा माधवदेव के भक्त हृदय के निचोड़ है, उनके भक्तिपूर्ण शरणागत जीवन की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है।

आसामी के नाटक—

अब आसामी नाटो (नाटको) पर भी थोडा विचार करना होगा। शंकरदेव और माधवदेव द्वारा लिखित 'अंकीया-बरनाट' १३ नाटको का संग्रह है। वे नाटक ये है—कालीय-दमन', 'पत्नी-प्रसाद' 'रस-क्रीड़ा', 'रुक्मिणी-

---

[1] बहुगीत–९५, पृ० ६५-६६।

रसखान का यह पद तुलनीय है—

सेस गहेस गनेस दिनेश, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै।
जाहि अनादि अनन्त अखड, अछेद अभेद सुवेद बतावै॥
नारद से सुक व्यास रटै, पचिहारे तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥

विजय', 'श्रीराम विजय', 'पारिजात-हरण', 'अजुन भजन', 'चारधरा', 'झुमरा', 'भूमि-लोटावा पिपरा गुचुआ', 'भोजन-व्यवहार' और श्रीकृष्ण जन्म ।

आसामी नाटकों की भाषा—

इन नाटकों की भाषा में ब्रजबुलि और आसामी का अद्भुत मिश्रण है। आसामी वैष्णवीय नाटको के लिए ब्रजबुलि' का माध्यम बनाने का यह कारण हो सकता है— पौराणिक कथाओं से ही नाटकों के लिए विषय चुना गया, उन पौराणिक पात्रों के चरित्र की पवित्रता की रक्षा आवश्यक थी, परंपरा से ब्रजधाम की ही भाषा श्रीकृष्ण महत्ता प्रदर्शन के लिए अपनाई जाती रही थी। अतः आसामी तथा बंगाली कवियों ने भी बंगला, आसामी और ब्रजभाषा के योग से 'ब्रजबुलि' को ही कृष्ण की महिमा गान के लिए अति उपयुक्त समझा क्योंकि जन साधारण के लिए भी ये भाषा अधिक बोधगम्य थी आसामी नाटकों में सूत्रधार कथन के समान सब पात्र अभिनय करते हैं। इसलिए ये 'नाट या 'यात्रा' (जात्रा) संस्कृत भाषा के समान ही है। इनमें ब्रजबुलि के गेय पद भी यथेष्ट मात्रा में हैं। संस्कृत श्लोकों के द्वारा कहानी आगे कहती है।

आसामी ब्रजबुलि के गद्य—

आसामी-ब्रजबुलि के दो एक उद्धरण देखिए—मनुष्य चेष्टा दरशिये श्री गोपाल दुइ दण्ड सपक बधे परि रहल। तदनन्तर गोप गोपी सबक परम विषाद दुख देखिय श्रीकृष्ण आस्फोटकय उरु फाल देल्ह। कालि सप परम चोट पाया। कृष्णक चारि उफरि परल्ल हाजारेक फणा तुलि कृष्णक चाइ फाफाइ कापचक्षु यारक्त जिह्वाये कवारि चेल्कय। नाक मुखे विष वहि याज हय। पनि श्रीकृष्ण परम आटोपे कालिक हाम्फोल, ताहेक वेढि चक्राकारे चमत्कारे पाक पूरिते लागल।

(कालीय-दमन' नाट पृ० ११)

'हाहा हामारि स्वामी परम सुकुमार नवीन वयस। ब्रजाधिक कठिन महेशक धनु इहान गुण दित स्वामी जानो नाहि पारय। हाहा पिता कि दारुण कर्म्म कयलि ! हे माता वसुमति ! तुहु थिर हुया रहब। हे पिता अनन्त ! तुहु भाग्य कये पृथिवी धनब। (श्रीराम-विजय नाट पृ० १९)

आसाम में इन वैष्णवीय नाटकों की प्रसिद्धि आजतक चली आ रही है।

पौराणिक निवन्ध—

इन 'वरगीत' तथा नाटो के अतिरिक्त शंकरदेव तथा माधवदेव ने कुछ वडे छोटे पौराणिक निवन्धो की भी रचना की है। शंकरदेव द्वारा 'भागवत-पुराण[१]' 'अनादिपातन[२]' (इसमें सृष्टितत्त्व वर्णित हुआ), 'भक्तिप्रदीप[३]' (गरुण-पुराण के कृष्णार्ज्जुन संवाद के आधार पर) रचा गया। माधवदेव ने 'भक्तिरत्नावली[४]', 'श्रीकृष्ण-रहस्य[५]' और 'राजसूय[६]' की रचना की। माधवदेव के शिष्य तथा संबंधी रामचरण ने 'भक्ति रत्नाकर[७]' (शंकरदेव के 'भक्ति रत्नाकर[८]' के आधार पर) और 'कंसवध-जात्रा[९]' (यात्रा) लिखा। जात्रा (यात्रा)—पाला की रचना पद्धति बहुत कुछ शंकरदेव 'नाटपाला' के समान ही है। इसमें बहुत से पद है, उदाहरण स्वरूप एक उद्धृत किया जा रहा है।

॥ राग सिन्धुरा ॥ एकताली ॥

आवत राम कानु गोप शिशु संगे।
शिगा शंख वेणु पारु गाए मन-रंगे।
चन्दने लेपित अंग वनमाला गले
जुड़य नूपुर द्वन्द चरण कमले।

---

१ कोचविहार के दरवार में ये हस्तलिखित ग्रंथ है—प्रथम स्कन्ध (५), अष्टम स्कन्ध (९), एकादश-स्कन्ध (१२), हरिश्चन्द्र-आख्यान (१४) और उद्धव-संवाद (१६३)। द्वितीय संस्करण का मुद्रण गौहाटी में (१८७९) हुआ था।

२ द्वितीय मुद्रण कलकत्ता पटलडागा मे (१८९९)।

३ लिपिकाल सन् ईसवी १६४५-४६।

४ प्रथम मुद्रण (?) गौहाटी १८७७।

५ कोचविहार—दरवार का हस्तलिखित ग्रंथ संख्या १५७।

६ प्रथम मुद्रण (?) नवगा १८८५।

७ द्रष्टव्य—श्री तारकेश्वर भट्टाचार्य लिखित 'आसामे प्राप्त प्राचीन भाषा पुथिर विवरण' (सा० प० प० २७, पृ० ७४-७७)।

८ ये निबंध संभवत. संस्कृत श्लोको का संग्रह है।

९ द्रष्टव्य—श्री तारकेश्वर भट्टाचार्य लिखित 'आसामे प्राप्त प्राचीन भाषा पुथिर विवरण' (सा० प० प० २७, पृ० ७७-८०)।

गाये पीतवस्त्र शोभे माथे मोर-पेखि
मोह होए मनमथ चानु-रूप-देखि।
उमके चलय दुहो अरुण चरण
एरुपे रहोक रामचरण रमन॥

आसामी तथा बगला के ब्रजबुलि साहित्य मे प्रभेद—

आसाम में बडगीत तथा 'नाटा' द्वारा ब्रजबुलि साहित्य का बहुत विकास और प्रसार हुआ। पहले ही कह चुके हैं कि आसामी तथा बगला ब्रजबुलि साहित्य में भाव तथा प्रादेशिक भाषागत भेद होने के कारण एक ही साहित्य के अन्तगत नही आ सकते। वह भिन्नता उन विषयो में है—

(१) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य में राधा' को स्थान नही उसका कारण है।

(२) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य में दास्यभाव की ही प्रधानता है जबकि बगला ब्रजबुलि साहित्य माधुय भाव से ही ओतप्रोत है। मधुर भाव की उपासना के अभाव के कारण युगल स्वरूप स्थापन की आवश्यकता नही हुई और परब्रह्म कृष्ण ही उपास्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हुए। माधवदेव ने कृष्ण के क्रीडामय शशव रूप का बहुत ही सजीव और आकषक चित्र उपस्थित किया।

(३) 'बडगीतो' में श्रीकृष्ण के साथ ही राम की भी वन्दना है। अत यह स्पष्ट ही है कि उन भक्त कवियो की दृष्टि में राम तथा कृष्ण में कोई भेद नही दोनो एक ही परब्रह्म स्वरूप है। जहा हिन्दी तथा बगला साहित्य में राम भक्तो तथा कृष्ण भक्तों में पारस्परिक मतभेद है वहा आसामी-ब्रजबुलि साहित्य ने दोनो भक्ति धाराओ का मधुर समन्वय किया।

(४) आसामी-ब्रजबुलि साहित्य के नाटो का बगला-ब्रजबुलि साहित्य में सवथा अभाव रहा। नेपाल और तिरहुत के नाटको में इस प्रकार की नाट्य पद्धति का अनुशीलन मिलता है।

(घ) उड़ीसा

उडीसा में वैष्णव धर्म—

१६वी शताब्दी में चैतन्यदेव के साथ ही गौडीय वैष्णव-धम क्रान्ति उडीसा में भी पहुची। जिससे वहां का प्रचलित प्राचीन वष्णव धम लुप्त हो

चला अथवा यो कहना चाहिए कि इस अप्रान्तीय वैष्णव धारा में उसने अपना अस्तित्व अन्तर्निहित कर दिया। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि गौडीय वैष्णव धर्म ने उडीसा के नवीन वैष्णव धर्म को जन्म दिया। और फिर उडीसा के गौडीय वैष्णवो ने ब्रजबुलि में रचना आरम्भ कर दी। अत यह स्पष्ट है कि उड़ीसा के ब्रजबुलि साहित्य का सीधा सम्बन्ध बगला के ब्रजबुलि साहित्य से है, मिथिला में अकुरोदित ब्रजबुलि से नही।[1]

उड़ीसा में ब्रजबुलि साहित्य—

महाप्रभु चैतन्य के उड़ीसा आगमन के पहले से ही उडीसा में ब्रजबुलि में रचना हो रही थी जिसका प्रमाण उडीसा के प्रमुख कवि और नाटककार राय रामानन्द का ब्रजबुलि का प्रसिद्ध यह पद है—

पहिलहि राग नयन भंग भेल।
अनुदिन वाढल अवधि ना गेल॥
न सो रमण न हाम रमणी।
दुहुं मन मनोभव पेशल जनि॥
ए सखि सो सब प्रेम-कहानी।
कानु-ठामे कहवि विछुरह जानी॥
न खोंजलूं दोति न खोजलूं आन।
दुहुक मिलने मध्यत पांच बाण॥
अब सो विरागे तुहु भेलि दोति।
सुपुरुख-प्रेमक ऐछन रीति॥
वर्द्धन रुद्र-नराधिप मान।
रामानन्द-राय कवि भाण[2]॥

इस पद को कवि ने उडीसा के राजा प्रताप रुद्र देव (१५०४-१५३२ सन् ईसवी) को समर्पित किया था। प्राचीनता में बगाल के यशोराज खान के ब्रजबुलि के पद[3] के बाद ही राय रामानन्द का यह पद है। ब्रजबुलि में ब्रजभाषा की भ्रान्ति से कुछ लोगो ने यशोराज खान और रामानन्द के पद की

---

[1] द्रष्टव्य-श्री सुकुमार सेन. दी हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर; पृ० १।

[2] पदकल्प तरु—५७६।

[3] देखिए पृ० ४०९ पर यशोराज खान का पद।

भाषा को व्रज की प्रादेशिक भाषा माना है।[1] सन ईसवी के १५११ या १५१२ में गोदावरी-तीर स्थित विद्यानगर में रामानन्द राय चैतन्य देव से पहली बार मिले। उस अवसर पर रामानन्द राय ने महाप्रभु को व्रजबुलि का उपरोद्धृत पद सुना कर अभिभूत किया। अनुमान होता है कि रामानन्द राय का जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास के पदों से इस प्रकार की रचना के लिए प्रेरणा मिली और इन्ही त्रयी से रामानन्द ने 'राधा भाव' भी श्रीचैतन्य से पूर्व ही ग्रहण किया।

"राय-रामानन्देर भणितायुक्त पदावली"—

हाल ही में श्री प्रियरंजन सेन ने 'राय रामानन्देर भणित युक्तपदावली' प्रकाशित की है। इसमें राय रामानन्द के कृष्ण अनुराग संबंधी १०० से अधिक सुन्दर पद संगृहीत है। व्रजबुलि साहित्य में इन पदों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन पदों की भाषा व्रजबुलि है पर उसमें व्रजभाषा, उड़िया तथा बंगला के भी बहुत से शब्दों का मेल हो गया है। उदाहरण के लिए नीचे एक पद दिया जा रहा है—

सभ सखागणे कृष्ण बोलए वचन।
स्नाहान बड़ाआ मोरे मिलब अखन॥
सुरेशर्मादरे बिजे हरि हलधर।
गोपाल घरेन घरे स्नाहाने तत्वर॥
नित्यकर्म सारिसरे भेटल मोहन।
धवन धोयाछ मेह दिखाए दर्पण॥
मलय कुसुम मधुश्री अंगे मंगल।
रामानन्दे चिन्ति रूप आनन्दे मुङल॥

श्री सुकुमार सेन ने इस संग्रह को १६वीं शताब्दी के उड़ीसा के प्रसिद्ध कवि रामानन्द राय का नहीं माना है। उनके मतानुसार आनुमानिक अष्टादस शताब्दी में किसी बंगाल उड़ीसा प्रान्तवासी कवि ने राय रामानन्द की छाप से कृष्णदास कविराज के 'गोविन्दलीलामृत' के अनुकरण पर इस कृष्णलीला विषयक पदावली की रचना की थी।[2]

---

[1] द्रष्टव्य—श्री प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मेडियल वैष्णविज्म इन उडीसा, पृ० ७१।

[2] द्रष्टव्य—श्री सुकुमार सेन 'बांगला साहित्येर इतिहास', पृ० १००८।

सोलहवीं शताब्दी में उड़ीसा के ब्रजबुलि के कवि—

१६वीं शताब्दी के उड़ीसा के ब्रजबुलि के अन्य कविगण ये हैं—चम्पति राय, महाराज प्रतापरुद्र देव, माधवी दासी, चान्दुदास और मुरारी।[1] ये ब्रजबुलि साहित्य के साधारण कवियों में से हैं। उनमें से कई एक ने कुछ बंगला के भी पद लिखे हैं। रामानन्द राय के तो बहुत से बंगला पद मिलते हैं।

वृद्ध चम्पति राय और दामोदर चम्पति राय —

उड़ीसा के साहित्य में 'चम्पति राय' नाम के दो कवि हुये हैं। प्रथम वृद्ध चम्पति राय (१४७९-१५३२ सन् ईसवी) के राजा प्रताप रुद्रदेव के महापात्र थे। द्वितीय दामोदर चम्पति राय या राय दामोदर दास (१५७०-१६०९ सन् ईसवी) पुरी के गणपति रामचन्द्र देवप्रथम की सभा में सम्मानित थे। दोनों कवियों में अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पहले को वृद्ध चम्पति राय और दूसरे की राय दामोदर दास नाम से चर्चा की जाएगी। वृद्ध चम्पति राय के ब्रजबुलि रचना के नमूने के लिए नीचे एक ब्रजबुलि का पद दिया जा रहा है—

राधाकु विरह दशा वर्णना (राधा की विरह-दशा का वर्णन)—

(मठा)

शरद राति कुन्द कान्ति केतकी कान्ति शोभितुआ।
मल्लिका कुल माधवी फूल मन्द गन्ध भ्रमरुआ॥
सुरभि सुन्दर शशी विपसत्र वहति मलय पवनुआ।
विसरि नेले च्यूतवृलि जीमूतान्त दहनुआ।
अवधि पूर्ण नकरि क्षीण युग शशी प्राय दीनुवा।
चम्पति राये स्वामी विरहें निश्चये जीवन न रहेआ[2]॥

सत्रहवीं शताब्दीके तीन प्रमुख कवि—

१७ वी शताब्दी में उड़िया साहित्य मे तीन अग्रगण्य कवि हुए—चान्द कवि (१५७०—१६०९ सन् ईसवी), राय दामोदर दास (१५७०—१६०९ सन्

---

[1] इनके कुछ पद 'पदकल्पतरु', 'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि', 'पद-सग्रह' (अप्रकाशित वैष्णव पदावली, विश्वभारती का हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २३४६) में संगृहीत है।

[2] प्राचीन गद्य पद्यादर्श, पृ० ९८।

ईसवी) और यदुपति दास (१६०५-१६२५ सन् ईसवी)। प्रथम दोनों पुरी के गणपति रामचन्द्र देव प्रथम की सभा में और अन्तिम कवि उड़ीसा के राजा नरसिंह देवकी सभा में थे। इन कवियों ने उड़िया ब्रजबुलि साहित्य को सुन्दर पदों द्वारा समृद्ध किया। अभी तक उड़ीसा के विद्वानों में इन कवियों की भाषा के संबंध में भ्रान्त धारणाएँ बनी हुई हैं। श्रीमहन्ती जी का इस विषय में कहना है कि इनकी भाषा ब्रजभाषा से प्रभावित है[1]। सत्य तो यह है कि इन कवियों की भाषा ब्रजबुलि होने में किसी भी प्रकार सन्देह नहीं। इन कवियों के ब्रजबुलि के दो चार पद उदाहरण के लिए नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं।

कृष्णावतार के शौर्य पक्ष का वर्णन—

आसोग

पूतनादि बक-शकट चण्ड दनुज कुल निवारिले।
यामलार्जुन आदि पतित कुल अवहेले तारिले॥
गोपरक्षने गिरि उभारि सुरपति गर्व दूषिते गजिले।
गोपे गोपीमन रंजिले।
विपिने भोजन विनोदे चतुरानन भ्रम भंजिले।
मोहमरेण शरण जनर तदुपरिरे चारणे छिन्नमनि।
चाद भणिले आर[2]।

वर्षा की घनघोर रात्रि में विरहिणी का विरह निवेदन —

आदि

घन घन गजत अम्बर घोर
चौदिगे चमकइ बिजुरि जोर
अहर्निशि झम्पइ मत्त मयोर
ध्वनि शुनि हिअरा कम्पइ मोर
अबहु बिसरि गए नागर भोर।

सखी मानिनी राधा का मान भंजन कर रही है —

---

[1] राय साहब महन्ती 'टाइप्स आफ एनशियेंट उड़िया प्रोज एण्ड पोयट्री' पृ० १३।

[2] प्राचीन गद्य पद्यादर्श, (आर्तवल्लभ महान्ती द्वारा सम्पादित) चाद कवि पृ० ११३।

शुन सखि चरण धराउणि तोर ।
कराउणि मिलिबे नन्दकिशोर ॥
से मुख शशीमुखा तो नेत्र चकोर ।
पान करबहुं सखि करबहुं कोर ॥
दामोदर दास कहे दुख नाहि ओर ।
अवधि मिलिबे सखि नन्दकिशोर[1] ॥

एकतालि

सर्व अवनीपति विक्रमें शकति विविधरग रति विहरतिआ
लावण्ये गजति लाख रजनीपति गौरबे औरकि गिरिपतिआ
देवी भानुमती रसवती संगति विविध रग रति विहरतिया
नीलगिरिकोपति चरणकमले मति विजयतु नरसिंह नरपतिया ।
उदिनल्ले नृप नरसिंह धरणीतल ।[2]

उड़ीसा का ब्रजबुलि-साहित्य बहुत कुछ अनुपलब्ध—

अभी तक उडीसा के ब्रजबुलि साहित्य की बहुत अल्प सामग्री ही उपलब्ध हुई है। अत अनुमान होता है कि उडीसा का पर्याप्त ब्रजबुलि साहित्य अभी प्रकाश मे नही आया है। इस अनुमान का कारण यह है कि "उडीसा मे गौडीय वैष्णव धर्म ने इतनी गहरी जड जमा ली थी कि बगाल की तुलना में आज भी चैतन्य को श्रद्धाजलि चढानेवाले व पूजा करने वालो की सख्या वहाँ बहुत अधिक है[3] ।" अतएव चैतन्यदेव के १२००० शिष्यों[4] में ब्रजबुलि मे लिखने वालो की सख्या इतनी अल्प होगी यह विश्वास नही होता। महाप्रभु चैतन्य के १८ वर्ष तक पुरी-निवास काल में बगाल से चैतन्य देव के शिष्य प्राय. उडीसा मे आते-जाते रहते थे, अत यह स्वाभाविक है कि उडीसा के भाव-प्रवण चैतन्य देव के अनुगामी वैष्णवो ने उनसे प्रेरणा पाकर ब्रजबुलि में

---

[1] प्राचीन गद्य पद्यादर्श, (आर्त्तवल्लभ महान्ती द्वारा सपादित) राय दामोदर दास, पृ० ११८ ।
[2] वही, यदुपति दास, पृ० १२० ।
[3] कैनेडी · 'दी चैतन्य मुवमेंट', पृ० ७५ ।
[4] प्रभात मुखर्जी 'दी हिस्ट्री आफ मैडिवल वैष्णविज्म इन उड़िसा' पृ० १२३ ।

अत्यधिक सख्या में रचना की हो[१]। प्रत्यक्ष प्रमाणा के अभाव में इसकी केवल कल्पना मात्र की जा सकती है।

पच सखा—

उडीसा के वैष्णव कवियों के उल्लेख के साथ यदि पचसखाओं की चर्चा नहीं की गई तो प्रसग अधूरा ही रह जावेगा। चतन्य देव के प्रभाव से उत्कल साहित्य में पाच बडे वैष्णव कवि हुए जो पचसखा[२] के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पाचो की भगवद्भक्ति विषयक विचारधारा में बहुत ही अधिक साम्य है। ये हैं बलराम दास, जगन्नाथदास, अच्युतानन्द यशोवन्त और अनन्तदास। उडीसा के वैष्णवो का विश्वास है कि जिस प्रकार द्वापर के कृष्ण कलियुग में महाप्रभु चैतन्य रूप में अवतरित हुए उसी प्रकार ये 'पच-सखा' अच्युत, बलराम, जगन्नाथ, अनन्त और यशोवन्त भी क्रमश सुदाम, सुबल, श्रीवत्स श्रीदाम तथा सुबाहु क अवतार हैं[३]। अब पृथक् रूप से इन पर थोडा विचार करना होगा—

बलराम दास—

उत्कल के १६वीं शताब्दी के प्रमुख वैष्णवो में से हैं। देवकीनदन ने बलराम दास के सम्बन्ध में कहा है—

> 'बन्द उडिया बलरामदास महाशय
> जगन्नाथ बलराम यार वश हय'[४]॥

---

[१] राधा मोहन ठाकुर का कथन तक सगत है 'श्रीमहाप्रभुर उडिस्यार नीलाचले दीघकाल अवस्थानेर फले सेखाने असख्य बागाली भक्त दिगेर यातायात औ अवस्थान हेतु ब्रजबुली औ बागला कीतन पदावली बहुल प्रचार एव प्राचीन उडिया भाषा सहित प्राचीन बागलार अधिकत्ता सादृश्य हेतु महाप्रभुर भक्त उडिस्यावासी कवि सम्पतिर पक्षे खाटि बागला ओ बागला मिश्रित ब्रजबुलि भाषाय पद रचना कराछसन असमव मने हय ना।

[२] तुलनीय है—समसामयिक ब्रजमण्डल में वल्लभाचार्य क 'अष्ट-छाप' कवियो के साथ।

[३] अच्युतानन्द का 'शून्य-सहिता' और 'गुरुभक्ति गीता'।

[४] वैष्णव-वन्दन।

पुराणपण्डा उनके पिता और पद्मावती उनकी माता हू। पुरी के समीप कपिलेश्वर-पुर में राधा अष्टमी के दिन उनका जन्म हुआ। जगन्नाथ के मन्दिर में इनके पिता पुराण पाठ करते थे। जगन्नाथदास ने भी पिता का ही अनुकरण किया। 'जगन्नाथ चरितामृत' में उल्लेख मिलता है कि जगन्नाथ के मन्दिर के दक्षिण-दिशा के वट वृक्ष के नीचे बैठ कर व पुराण की व्याख्या करते थे।

१८ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु चैतन्य से उनका प्रथम साक्षात्कार हुआ। चैतन्य देव अपने सखाओं के साथ उस स्थान पर आए जहा पर बैठ कर जगन्नाथ पुराण पाठ कर रहे थे। चैतन्य देव वहा कुछ देर रुक गए और पुराण की इतनी सुन्दर व्याख्या सुनकर बहुत सतुष्ट हुए[1]। पुरी में महाप्रभु प्रथमबार १५१० म गए। अत अनुमान होता है कि जगन्नाथ का जन्म १४९१ के लगभग कभी हुआ होगा[2]।

चैतन्यदेव के अनुगामियों में बहुत से जगन्नाथ दास हुए। ब्रजबुलि साहित्य के कवि जगन्नाथदास के सबध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता फिर भी इन कवियों में से दो जगन्नाथ अधिक विख्यात हुए।

(१) उडीसा के जगन्नाथदास जिनके सबध में देवकी नन्दन बाबू ने कहा है—

जगन्नाथ दास वन्दों सगाते पडित।
जार गीत शुनिया श्री जगन्नाथ मोहित॥

(२) काष्ठ-काटा के जगन्नाथदास जिनकी गणना कृष्णदास कविराज ने गदाधर पडित के शिष्यों में की है।

जगन्नाथदास ने कुछ बगला और ब्रजबलि के पद चैतन्यदेव के पारिवारिक जीवन सबधी लिखे हैं। उनके बगला और ब्रजबुलि के अन्य पद 'पदकल्पतरु' सिद्धात चन्द्रोदय' 'दास पोथी', पदसग्रह'[3] में सकलित हू। इन सगृहीत पदों से अनुमान होता है कि जगन्नाथदास ने पदावली में क्रमिक रूप से ब्रजलीला का

---

[1] एहि समये श्री चैतन्य सगेते घेनि सखागण
वट तलेण विजे कले पुराण शुणि ताप हेले।
जगन्नाथ चरितामृत' द्वितीय अध्याय।

[2] अच्युतानन्द की 'शून्य कहानी' ग्रथ के आधार पर इनका जन्म १४७९ ई० के आस-पास हू।

[3] विश्व भारती की पोथी शाला में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रथ, सख्या २३४६।

वर्णन किया था। जगन्नाथदास की पदावली की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नही है, पर कान्दी अचल की खडित हस्तलिखित ग्रथ में इनके द्वारा रचित १२३ पद थे[1]।

निश्चित रूप से कहना तो कठिन है कि ये जगन्नाथदास कौन थे पर अनुमान होता है कि सगीत मर्मज्ञ कवि ने गाने के लिए ही इन स्वरचित पदो की रचना की होगी। इन पदो से यह भी आभास मिलता है कि चैतन्यदेव के साथ इनका केवल साक्षात्कार मात्र नही हुआ था वरन् साहचर्य भी था। अतः अनुमान होता है कि ये पद रचयिता उडीसा के ही जगन्नाथदास रहे होंगे क्योकि पुरी में रहते हुए महाप्रभु का इनके साथ घनिष्ठ योग रहा। इनकी रचना के उदाहरण स्वरूप ब्रजबुलि का एक पद यहा उद्धृत किया जा रहा है।

यमुना के तट पर गोपियो के साथ लीलारत कृष्ण का एक अपूर्व चित्र—

जमुनाक तीरे, धीरे चलु माधव
मन्दमधुर वेणु वाअइ रे।
इन्दीवरनयनी वरजवधू कामिनी
सदन तेजिया वने धावइ रे॥
असित-अम्बुधर-असित सरसि रुह
अतिस कुसुम-अहिमकर सुतानीर-
इन्द्रनीलमणि - उदारमरकत
श्रीनिन्दित वपु-आभारे।
शिरे शिखण्डदल नवगुंजाफल
निरमलमुकुतालम्बि नासातल
नवकिशलय-अवतंस गोरोचन-
अलकतिलक मुख शोभा रे॥
श्रोणि पीताम्बर वेत्रवामकर
कम्बुकण्ठे वनमाला मनोहर
धातुराग वैचित्र्य कलेवर
चरणे चरण परि शोभा रे॥
गोधूलि धूसर विशाल वक्षस्थल।
रग भूमि जिनि विशाल नटवर॥

---

[1] श्री सुकुमार सेन · 'बागला साहित्येर इतिहास' पृ० ३०६।

गोछादनरजुविनिहित कन्धर।
रूपे भुवनमन लोभा रे॥
ब्रह्म पुरन्दर दिनमणि शंकर।
जो चरणाम्बुज सेवे निरन्तर॥
सो हरि कौतुक व्रजवालक-साये।
गोपनागरी-अभिलाषा रे॥
सो पहु पदतल राग धूसर।
मानस मम फद आश निरन्तर।
अभिनवसतकवि दास-जगन्नाथ॥
जननी जठर भय नाशा रे॥[1]

उपर्युक्त पद में अनुप्रास अलंकार का वैशिष्ट्य है। पद के भावों में विशेष उत्कर्ष नहीं पर इतना तो अवश्य है कि वह साधारण से अच्छा माना जाए।

कवि की अन्य रचनाएं यह हैं—'कमल लोचन चौतिशा', वेदापरिक्रमा' ब्रह्म गीता', भागवत का अनुवाद 'तुला भिणा, गजनिस्तारण गीता', 'कालिय-दलन' तथा अर्थ कोइलि'[2]।

अच्युतानन्द—

अच्युतानन्द के पिता आनन्द[3] मोहन्ती महाराज के कर्मचारी थे और राजा की ओर से उन्हें खुण्टिआ की उपाधि मिली थी[4]। अच्युतानन्द का जन्म कटक जिले के त्रिपुर या तिलकना में हुआ था। इनकी लिखी हुई 'उदय कहाणी' के अनुसार इनका जन्मकाल १४८९ ई० है[5]। कोई उन्हें जाति का गोप बताता है तो कोई गौड़ परन्तु वे स्वयं लिखते हैं कि उनके पितामह करण थे और राज दरबार में नकलनवीस का काम करते थे। बाद की

---

[1] 'पदकल्प तरु' पद संख्या १३२३।

[2] प्रभात मुखर्जी 'दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म इन उड़िसा' पृ० ७८-८१।

[3] 'शून्य-संहिता' के अनुसार अच्युतानन्द के पिता का नाम दीनबन्धु है।

[4] खुण्टिया संगिया राजा देइ। राजार पात्र अटे सहि॥
ताहार पुत्र में अच्युत। ईश्वरदास भागवत' ४६।

[5] बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय पृ० ५३५।

रचनाओ[1] में भी उनकी जाति करण उल्लेखित है, अत. पुष्ट प्रमाणो के अभाव में उनकी जाति करण मानना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

चैतन्यदेव के साथ प्रथम साक्षात्कार के समय उनकी अवस्था वहुत छोटी थी। वाल्यकाल ही से सासारिक विषयो की ओर उनकी विरक्ति थी। प्रथम साक्षात्कार के पश्चात् वे ११ वर्ष तक घर ही पर रहे। तत्पश्चात् पुरी जाकर महाप्रभु की आज्ञा से सनातन द्वितीय के पास से दीक्षा ली, उसके वाद से निरन्तर वह महाप्रभु के साथ ही रहे। किवंदन्ती है कि अच्युतानन्द की मृत्यु १०८ वर्ष की आयु में हुई। इससे इतना तो निश्चित है कि वे दीर्घायु रहे होगे।

उनकी रचनाए ये हैं—'शून्य सहिता', 'अणकार सहिता', 'ब्रह्म शकुलि लेखन', निराकार-सहिता', 'नवगुज्जरि' और व्याल्लीस चौपदी' 'हरिवश का अनुवाद', 'ब्रह्म-विद्या-तत्त्व-ज्ञान', 'गुरुभक्ति गीता' तथा ज्ञान-सागर[2]। इनकी रचनाओ मे सर्वोत्कृष्ट है 'शून्य सहिता'।

किसी भी पद सग्रह में इनका रचा हुआ व्रजवुलि अथवा वंगला का पद अव तक उपलब्ध न हो सका। अत. संभव है इन्होंने व्रजवुलि के पद न लिखे हो।

यशोवन्त मल्लिक—

जिला कटक के आडंग ग्राम के जगमल्लिक और रेखा देई के पुत्र थे। इनकी जाति महानयक या क्षत्रिय थी[3]। इनका जन्मकाल १४७६ ई० है[4]। सुदर्शनदास के 'यशोवन्त दासक चौरासी आज्ञा' में यशोवंत का प्रारभिक जीवन वर्णित है। यशोवन्त के पिता वहुत दरिद्र थे। अभाव ने यशोवंत को अन्न चुराने के लिए वाध्य किया। वह चोरी करते हुए पकडा गया और आडग के सामन्त प्रमुख के समुख उपस्थित किया गया। उसे वहीं पर विधवाने

[1] ईश्वर दास 'भागवत' ४६, 'आवतर मलिक' और 'यशोवन्त' की ८४ कलाए अध्याय प्रथम।

[2] प्रभात मुखर्जी . 'दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म इन उडिस्सा' पृ० ८४-८५।

[3] 'चद्रवशेर जात यशोवन्त क्षत्रिय कुल से कले पवित्र'—आवतर मलिक।

[4] अच्युतानन्द की लिखी हुई 'उदय कहाणी' नामक ग्रंथ के आधार पर।

का दण्ड मिला। अपनी जीवन रक्षा के लिए जगन्नाथ से उसने प्रार्थना की। कहा जाता है जगन्नाथ ने उसकी प्रार्थना सुनी और स्वयं यशोवन्त का शरीर धारण करके दण्ड लिया। इस दृश्य को केवल रघुराम ने देखा और तभी से उसने अपनी स्त्री तिलोत्तमा के साथ यशोवन्त का शिष्यत्व ग्रहण किया। यशोवन्त की अलौकिक शक्ति की चर्चा के कारण बहुतों ने उसका शिष्यत्व ग्रहण किया, उनमें से प्रमुख हैं सुदर्शनदास तथा सालबेग। इन अलौकिक घटनाओं से इतना सत्यांश ग्रहण किया जा सकता है कि जगन्नाथ देव उनकी दुस्साध्य मनोकामनाएं भी पूर्ण कर देते होंगे।

इनकी रचनाएं ये हैं—'प्रेम भक्ति', 'ब्रह्म-गीता', 'गोविन्द चन्द्र टीका' तथा 'शिव सर्वोदय (शैव तन्त्र का अनुवाद')।

बंगीय वैष्णव पद-संग्रहों में यशोवन्त के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है इन्होंने विशेष साहित्य चर्चा न की हो क्योंकि इनकी उपलब्ध रचनाओं की संख्या भी बहुत अल्प है।

अनन्तदास—

अंतिम पंच सखाओं में जिनके जीवन के विषय में सबसे कम जानकारी प्राप्त हुई है वह हैं 'अनन्तदास'। इनकी जन्मभूमि है मेहपुर और जन्म काल है १४०५ ई०[२]। ये जाति के करण थे[३]। बाद में ये पुरी जिले के कोठदेस परगने के बालिपातन में जा बसे।

अनन्तदास की एक भी रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। वे अप्रकाशित ग्रंथ ये हैं—'रास', 'शून्य नामभेद' तथा 'हेतु-उदय भागवत'[४]।

अद्वैत आचार्य के अनन्त नाम के दो शिष्य थे। एक कवि अनन्तदास दूसरे अनन्त आचार्य। उनमें से कवि अनन्तदास ही अधिक प्रसिद्ध हुए, जिनके ब्रजबुलि तथा बंगला के बहुत से पद विभिन्न वैष्णव पद संग्रहों में संगृहीत हैं। उड़ीसा के पंचसखा के अनन्तदास और ब्रजबुलि के पद रचयिता अनन्तदास के बीच कोई सादृश्य नहीं मिलता, जिससे वे एक समझे जाएँ।

[१] प्रभात मुखर्जी दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म इन उडिस्सा पृ० २६।

[२] अच्युतानन्द की लिखी हुई 'उदयकहानी' नामक ग्रंथ के आधार पर।

[३] ईश्वरदास 'भागवत' अध्याय ४६।

[४] श्री प्रभात मुखर्जी 'दी हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म इन उडिस्सा' पृ० ८७।

व्रजबुलि साहित्य को पंचसखाओं की देन—

पुष्ट प्रमाणो के अभाव में यह कहना अति कठिन है कि इन 'पच-सखाओं' ने व्रजबुलि साहित्य को कितनी देन दी। 'पंच-सखाओं' में से तीन बलराम-दास, जगन्नाथदास तथा अनन्तदास की छाप से रचित बहुत से व्रजबुलि पद भिन्न-भिन्न पद-सग्रहो मे सकलित हैं। आज तक के उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि 'पच-सखाओं' में जगन्नाथदास को छोडकर व्रजबुलि में किसी ने भी पद रचना नहीं की है, अन्य कवियो से उनका केवल नाम साम्य मात्र है। सभव है कि भविष्य में उत्कल के बलरामदास के कुछ व्रजबुलि के पद प्रकाश में आ जाएँ। इन 'पच-सखाओं' ने वैष्णव दर्शन सबधी बहुत से ग्रथ रचे, अत इसमें कोई सदेह नही व्रजबुलि साहित्य को न सही उत्कल के वैष्णव साहित्य को तो अवश्य गौरवान्वित किया।

विभिन्न प्रातो में विकसित व्रजबुलि के भिन्न स्वरूपो का पर्याप्त विवेचन हो चुका। व्रजबुलि ने सर्वाधिक विकास और स्थायी रूप वैष्णव धर्म के गढ रूप बंगाल मे पाया। अत आगे पृथक् अध्याय में बगाल के सुप्रसिद्ध पद रचयिताओ की जीवनी तथा काव्य-विषयक समीक्षा की जाएगी, पर उसके पहले 'बगला साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव 'और' गौड़ीय वैष्णव दर्शन' का सक्षेप मे परिचय प्राप्त करेंगे।

सातवा अध्याय

बगला-साहित्य पर वैष्णवता का प्रभाव

चैतन्य का युगान्तरघाती प्रभाव—

बगला साहित्य, समाज और धम के क्षेत्र में श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव एक युगान्तरकारी घटना थी। उस काल में मुसलमानी शासन का प्रभाव हिन्दू समाज के ऊपर बाहर से पड रहा था और भीतर से श्रीचैतन्य महाप्रभु का व्यक्तित्व तथा उनकी भावधारा उसे एक नया रूप दे रही थी। ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी से बगला-साहित्य का एक विशिष्ट रूप देखने को मिलता है और इसके मूल में चैतन्य का प्रभाव था। चैतन्य प्रवर्तित वैष्णव-धम की मधुर धारा ने सम्पूर्ण बगाल को आप्लावित कर दिया। एक समय था जबकि बगाल के वैष्णव धम ने बगाल के साहित्य को तन्मय कर रखा था। इतनी शताब्दियो के बीत जाने पर भी आज का पाठक उस साहित्य को मुग्ध दृष्टि से देखता है और उसके रस-माधुर्य से अभिभूत है।

वैष्णव भावधारा का व्यापक प्रभाव—

वैष्णव भावधारा आधुनिक काल में रवीन्द्र-साहित्य में एक अभिनव रूप में प्रकट हुई। कवि ने अपने आरम्भिक जीवन में वैष्णव-कविता के अनुसरण से 'भानुसिंहेर पदावली' लिखी थी। वसे यह अनुसरण रवीन्द्र-साहित्य का बाह्य पक्ष मात्र था। उपनिषद के दर्शन के साथ वैष्णवों की नित्यलीला को मिलाकर रवीन्द्र दर्शन का आत्मविभोर करने वाला रूप प्रकट हुआ। इसी लिये रवीन्द्र-काव्य में व्रजधाम में निरन्तर चलनेवाला नित्यलीला का नूपुर -ध्वनि क्षण-क्षण में सुनाई पडती है। रवीन्द्रनाथ का प्रेम वृन्दावन की प्रेमलीला में अन्तर्हित होता है—

> आजि सेइ प्रेम अवसान लभियाछे
> राशि राशि हये तोमार पायेर काछे।
> निखिलेर सुख निखिलेर दुख निखिल प्राणेर प्रीति
> एकटि प्रेमेर माझारे मिले छे सकल प्रेमेर स्मृति
> सकल कालेर सकल कविर गीति।

(आज उस प्रेम ने तुम्हारे चरणों पर राशि-राशि होकर अवसान प्राप्त किया है। समस्त सुख, समस्त दुःख और समस्त प्राणों की प्रीति, सभी प्रेम-स्मृतियां तथा सभी कवियों की गीतियां एक ही प्रेम में अन्तर्हित हुई हैं।)

निम्नोद्धृत पंक्तियों में रवीन्द्रनाथ ने वैष्णव-दर्शन को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है—

प्रलये सृजने न जानिए कार युक्ति
भाव हते रूपे अविराम जावा-आसा
बन्ध फिरिछे खुंजिया आपन मुक्ति,
मुक्ति मागिछे बांधनेर माझे बासा।

(न-जाने यह किसकी युक्ति है जो प्रलय-सृजन में भाव और रूप का यह निरन्तर आना-जाना लगा हुआ है। बन्धन अपनी मुक्ति खोजता फिर रहा है और मुक्ति बन्धन के बीच अपना आश्रय ढूंढ रही है।)

साहित्य पर चैतन्य का प्रभाव—

इस प्रकार से यह सहज ही देखा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रहा। यह प्रभाव कुछ ऐसा था कि इसने समाज के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा। साहित्य के क्षेत्र में गीतिकाव्य की धारा प्रबल हो उठी। साहित्य में जहां पहले अलौकिक चरित्रों की ही अवतारणा की जाती थी वहाँ अब देवोत्तर लौकिक मानव को भी स्थान मिलने लगा। ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी का साहित्य मुख्य रूप से वैष्णव-भक्ति का साहित्य है। इसके पहले का अर्थात् ईसवी सन की तेरहवी, चौदहवी शताब्दी का बंगला भाषा का साहित्य कुछ लौकिक कहानियों तथा पौराणिक चरित्रों तक ही सीमित था। वैसे उन शताब्दियों का ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर तत्कालीन बंगला-साहित्य की रूपरेखा निर्धारित की जा सके। मनसा, चण्डी की लोक प्रचलित कहानियाँ तथा रामायण-महाभारत एवं अन्य पुराणों के विभिन्न चरित्र ही उस समय के लोक-साहित्य के उपजीव्य थे।

चैतन्य-पूर्व वैष्णव भाव धारा—

ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी के बंगला के भक्ति-साहित्य के लिये पहले से आती हुई वैष्णव-भावधारा तथा अन्य धर्मों की चिन्ताधारा के साथ ही तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति को भी ध्यान

में रखना आवश्यक है। महाप्रभु से पहले बगाल के वैष्णव धर्म के स्वरूप के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है फिर भी यह ठीक है कि ईसवी सन की सोलहवी शताब्दी के पूर्व से ही भक्ति सबधी कुछ रचनाएँ मिलने लगती हैं।

बगाल मे वैष्णवता—

बगाल में वैष्णव धर्म का प्रभाव सभवत बहुत पहले से ही पडने लगा था। गुप्तकाल में वैष्णव धर्म का जो प्रसार और व्याप्ति हुई उससे बगाल भी अछूता नही रहा। ईसवी सन् की चौथी शताब्दी के शुशुनियाँ पर्वत लिपि में चन्द्रवर्मण को चक्रस्वामी या विष्णु का उपासक कहा गया है[१]। इसी प्रकार से ईसवी सन की ग्यारहवी शताब्दी के बेलाव के शिलालेख में भी कृष्ण को गोपीशत केलिकार[२] कहकर उल्लेख किया गया है पर इस शिलालेख के अनुसार कृष्ण केवल अशावतार मात्र हैं। पहाडपुर में मिली हुई युगल-मूर्ति के सम्बन्ध में नाना प्रकार के मत उपस्थित किये गए हैं। डा० सुशीलकुमार दे इस युगल-मूर्ति को राधा-कृष्ण की मूर्ति समझने के पक्ष में है।[3] डा० प्रबोधचन्द्र बागची का अनुमान है कि वह युगल-मूर्ति या तो कृष्ण-सत्यभामा की है अथवा कृष्ण-रुक्मिणी की[४]। अत इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। ये मूर्तियाँ मन्दिर की शोभा वृद्धि के उद्देश्य से उत्कीर्ण की गई थी। सभव है कि पहाडपुर के मन्दिर की दीवारो पर उत्कीर्ण युगल-मूर्ति में उडीसा के मन्दिरो की दीवारो पर उत्कीर्ण घोर शृगारिक मूर्तियो का ही अनुकरण किया गया है।

बगाल के वैष्णव सेन राजा—

पालो के समय पाल चन्द्र और काम्बोज राजा लोग बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे। सेनो के समय सेन वर्मण और देव राजागण ब्राह्मण धर्माश्रयी थे। इस समय बगाल का सर्वव्यापी धर्म ब्राह्मण धर्म था। वर्मण वश के सभी राजा परम विष्णु भक्त थे। लक्ष्मण सेन परम वैष्णव और नरसिंह के भक्त थे।

---

[१] हिमांशुचन्द्र चौधरी वैष्णव साहित्य प्रवेशिका पृ० १४।

[२] वही, पृ० १४।

[3] अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट पृ० ७।

[४] हिस्ट्री आफ बगाल (खड १) पृ० ४०१ तथा बागालीर इतिहास (आदिपर्व) डा० नीहाररजन राय, पृ० ६०१।

भोज वर्मा के बेलाब और लक्ष्मण सेन के तर्पण-दीघि-शासन में विभिन्न अवतारों की बात मिलती है। वहाँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला और विष्णु के कृष्ण, नरसिंह और परशुराम अवतार की भी बातें हैं।[1] डा० नीहाररंजन राय का अनुमान है कि लक्ष्मीनारायण के युगल स्वरूप का प्रचलन दक्षिण भारत में ही अधिक था और सेन राजत्वकाल में दक्षिण से ही यह पूजाविधि बंगाल में आई।[2] धोयी कवि के लिखे हुए पवनदूत के एक श्लोक से यह अनुमान होता है कि सेन राजाओं के कुल देवता लक्ष्मीनारायण थे। बंगाल में वैष्णव-धर्म का इतिहास दो रूपों में विकसित हुआ। (१) विष्णु का दशावतार समन्वित रीतिबद्ध रूप और (२) राधाकृष्ण के ध्यान और रूप की कल्पना।

तत्कालीन साहित्य की दो धाराएँ--

लगता है जैसे बंगाल के तत्कालीन साहित्य पर दो प्रकार की विचारधारा का समान रूप से प्रभाव पड़ा है। उस समय का जो साहित्य मिलता है उसमें एक तो रामायण-महाभारत से प्रभावित उच्चस्तर का साहित्य था और दूसरा लोक-साहित्य था जिसमें कृष्ण की ब्रज-लीला आदि का वर्णन होता था। कृष्ण के लिये कानाइ, कानु, राधा के लिये राइ, गोपी के लिये गोध, गुइ, शब्दों का प्रयोग इस बात को सूचित करता है कि ये शब्द लोक-साहित्य में प्रचलित थे।[3] रामायण का आश्रय लेकर भी साहित्य की रचना बंगाल में हुई है लेकिन कृष्ण-कथा पर आश्रित साहित्य के समान वह लोकप्रिय नहीं हो सका। कृष्ण लीला को आधार मानकर रचे जाने वाले साहित्य पर भागवत-पुराण, विष्णु पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि का प्रभाव पड़ा है। राधा-कृष्ण का जो स्वरूप कल्पित हुआ उसका सुप्रतिष्ठित और प्रचलित रूप संभवत कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' में मिलता है। जयदेव अन्तिम सेन राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि थे; लक्ष्मणसेन का काल ईसवी सन् की बारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। ईसवी सन् की बारहवीं, तेरहवी शताब्दी से ही श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का काव्य में वर्णन होने लगा था इसका अनुमान और अन्य दो ग्रन्थो के आधार पर किया जा सकता है। इनमें एक

---

[1] बागालीर इतिहास (आदि पर्व), पृ० ६५९।

[2] वही, पृ० ६६०।

[3] डा० सुकुमार सेन : बागला साहित्येर इतिहास, पृ० ६५।

ता 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' है। संभवतः यह बारहवीं शताब्दी का संकलित ग्रंथ है। इस प्रकार का दूसरा ग्रंथ 'सदुक्तिकर्णामृत' है जो संभवतः तेरहवीं शताब्दी में संकलित हुआ था। प्रथम अध्याय में इन ग्रंथों के कुछ पदों की चर्चा की गई है जिनसे कृष्ण-लीला सम्बन्धी वर्णनों के रूप का कुछ आभास मिल जाता है। ईसवी सन की चौदहवीं शताब्दी में चंडीदास ने राधा-कृष्ण की लीला को अपने ललित पदों द्वारा अधिक से अधिक व्यापक बना दिया।

राधा के विकास में शाक्त धर्म का प्रभाव—

गीतगोविन्द में राधा का जो स्वरूप पाया जाता है वह अत्यन्त स्पष्ट और निखरा हुआ है। वैसे हाल की सप्तशती में राधा का उल्लेख है लेकिन उसमें गीत गोविन्द के जैसा राधा के उस रूप का निखार नहीं है। भास के बालचरित में ब्रह्म, विष्णु और भागवत में श्रीकृष्ण की प्रेमलीला वर्णित हुई है लेकिन उनमें राधा का उल्लेख नहीं है। इसके पहले भोजवर्म्मा की बेलाव लिपि का उल्लेख हम कर चुके हैं। उसमें सैकड़ों गोपियों के साथ कृष्ण की विचित्र लीला की बातें मिलती हैं पर वहाँ भी राधा का कोई उल्लेख नहीं है। इस पर विद्वानों का अनुमान है कि सेनों के राजत्व काल में किसी समय शाक्त धर्म के प्रभाव से राधा शक्तिरूप स्वीकार कर ली गई।[1] हिन्दू तंत्र के प्रभाव से ही शिव और शक्ति के रूप में राधा और कृष्ण को ग्रहण किया गया।[2] श्रीरूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में कहा है—

> यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
> सर्व गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा।
> ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्व्व शक्तिवरीयसी।
> तत्सार भाव रूपेयमिति तन्त्रे प्रतिष्ठिता॥[3]

रूपगोस्वामी के कथन द्वारा राधा और कृष्ण सम्बन्धी उपर्युक्त मत की पुष्टि हो जाती है। ब्रह्म संहिता के पांचवें अध्याय में सहस्रार चक्र को गोकुल कहा गया है।[4] ब्रह्म संहिता का वैष्णवों में अत्यधिक समादर है। वहां

---

[1] डा० नीहार रंजन राय—बांगालीर इतिहास (आदि पर्व) पृ० ६६४।

[2] डा० शशिभूषण दास गुप्त, आब्सक्योर रेलिजस कल्ट्स पृ० १४९।

[3] उज्ज्वल नीलमणि राधा प्रकरण ३ ४।

[4] डा० शशिभूषण दास गुप्त आब्सक्योर रेलिजस कल्ट्स पृ० १४९।

जाता है कि स्वय श्री चैतन्य इस ग्रन्थ को दक्षिण भारत से ले आए थे। बंगाल के वैष्णव धर्म पर तन्त्र का प्रभाव पड़ा है इसका अनुमान इन सब बातो से सहज ही लगाया जा सकता है। राधा को शक्तिरूपिणी मानने के साथ ही साथ गौडीय वैष्णवो ने काम गायत्री को भी ग्रहण किया है।[1]

गीत गोविन्द की राधा—

सामान्य रूप से लोगो की धारणा है कि कवि जयदेव परम वैष्णव थे किन्तु वास्तव में वे पचदेवोपासक स्मार्त ब्राह्मण थे। हर प्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि विद्यापति भी पचदेवोपासक और स्मार्त ब्राह्मण थे। अर्थात् स्मृति की व्यवस्था मानकर चलते थे और गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु और दुर्गा इन पाच देवताओ की उपासना करते थे।[2] जयदेव की प्रेममूलक ललित पदावलि का प्रभाव भी श्रीचैतन्य पर अधिक पडा है। इसी तरह से विद्यापति और चण्डीदास के पदो ने भी श्रीचैतन्य को प्रभावित किया है। वास्तव में जयदेव के 'गीत गोविन्द' की धारा विद्यापति के पदो मे अक्षुण्य है और बाद में चलकर विद्यापति के रागात्मक पदो के अनुकरण पर वैष्णव पदावलि की रचना हुई। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि गौडीय वैष्णव धर्म ने भागवत के आधार पर माना, पर जयदेव ने भागवत का अनुसरण नही किया। भागवत में शरद्कालीन रास का वर्णन हुआ है पर जय-देव में वसन्तकालीन रास वर्णित है। 'गीत गोविन्द' में नन्द के आदेश पर राधा, कृष्ण को घर ले जा रही हैं। और उसी समय दोनो का मिलन होता है। भागवत पुराण में यह बात नहीं मिलती है। वास्तव में गीतगोविन्द की यह घटना ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुरूप है।

वड्डु चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीर्त्तन—

श्रीचैतन्य से पूर्व का 'वड्डु चण्डीदास' रचित 'श्रीकृष्ण कीर्त्तन' मिलता है। इसकी पर्याप्त चर्चा हम पिछले पृष्ठभूमि वाले अध्याय में कर चुके है।[3] इस ग्रन्थ का प्रभाव जयदेव की वैष्णव पदावली पर पडा है। पर चैतन्य-युग और उसके बाद के वैष्णव पदकर्ताओ के पदो में जिस विशुद्ध भक्ति और आवेग

---

[1] डा० सुशील कुमार दे अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एन्ड मूवमेन्ट, पृ० २१-२२।

[2] हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सपादित 'कीर्त्तिलता' की भूमिका।

[3] देखिये पृ० १२१-१३९

का परिचय मिलता है वह 'श्रीकृष्णकीत्तन' में नहीं है। 'श्रीकृष्णकीत्तन' के कृष्ण अपनी विभूति और ऐश्वय से राधा को लुभाने का बार-बार प्रयत्न कर रहे हैं। 'पराणे पराण बाधा आपना आपनि' का कोई परिचय इस ग्रथ में नही मिलता।

मालाधर वसु का 'श्रीकृष्ण विजय'—

श्रीचैतय से पूव का वैष्णव भावापन्न दूसरा ग्रन्थ मालाधर वसु रचित 'श्रीकृष्णविजय' है। मालाधर वसु की उपाधि 'गुणराज खान थी'। गौड देश के नवाब ने उन्हें यह उपाधि दी थी। चैतन्य चरितामृत में इसका उल्लेख है। श्रीचतय ने इस ग्रथ के सम्बध में जो कहा ह उससे पता चलता है कि इसके प्रति उनकी कितनी भक्ति थी और व इससे कितना अधिक प्रभावित हुए थे। श्री चतय ने कहा ह

गुणराज खान कल श्रीकृष्णविजय
ताहा एक वाक्य तार आछे प्रेममय॥
'नन्दरे नन्दन कृष्ण मोर प्राणनाथ'
एइ वाक्येविकाइनु तार वशेर हाथ॥[1]

(गुणराज खान ने श्रीकृष्ण विजय लिखा जिसमें उनका एव प्रेममय वाक्य 'नन्द का नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ ह। इसी वाक्य पर उनके वश के हाथ बिक गया।)

यह ग्रथ ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के शेषार्ध में लिखित माना जाता ह।[2] इस ग्रथ में भागवत में वर्णित कहानी का अनुसरण किया गया है। विष्णु पुराण और हरिवश का भी जगह-जगह अनुसरण मिलता है। खगेन्द्रनाथ मित्र का कहना ह कि उत्तर भाषा-साहित्य में जो कृष्ण-चरित विषयक काव्य लिखे गए उनमें रचना काल और प्राचीनता की दृष्टि से श्रीकृष्ण विजय' प्रथम रचना है।[3]

---

[1] चैतयचरितामृत, २।१५।१०० १०१।

[2] डा० सुकुमार सेन—बांगला साहित्येर इतिहास पृ० १०८।

[3] मालाधर वसुर श्रीकृष्णविजय (खगेन्द्र नाथ मित्र द्वारा सपादित) की भूमिका।

चैतन्य-पूर्व श्रीकृष्ण का स्वरूप—

चैतन्य-युग से पहले बंगाल में वैष्णव धर्म का क्या स्वरूप था उसका कुछ पता 'श्रीकृष्ण विजय' से चल जाता है। चैतन्य युग से पूर्व वैष्णव धर्म की प्रधान धारा श्रीकृष्ण ऐश्वर्य, विभूति और भागवत् तत्त्व विषयक थी। श्रीकृष्ण ही परमतत्त्व हैं, इसे मालाधर वसु ने अपने ग्रंथ में प्रतिपादित किया। श्रीकृष्ण विजय की वृन्दावनीय लीला में शृंगार लीला की धारा अत्यन्त क्षीण थी। 'श्रीकृष्ण विजय' में शृंगार लीला का आभास मात्र है। उस ग्रन्थ में गोपियों का उल्लेख तो है लेकिन राधा का उल्लेख बहुत कम है। चैतन्य के बाद की वैष्णव भावापन्न रचनाओं में श्रीकृष्ण में आत्म-समर्पण की भावना का निदर्शन मिलता है। 'श्रीकृष्ण विजय' में आत्म समर्पण का यह भाव इतने प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिलता। वैसे एकाध पंक्ति ऐसी भी आ गई है जिनमें इस भाव का आभास अवश्य मिलता है: जैसे 'वासुदेव सुत कृष्ण मोर प्राणपति'।

चैतन्य की समसामयिक राजनैतिक परिस्थिति—

चैतन्य के बाद में जो मधुर रस की धारा प्रवाहित हुई उसका उत्स कहाँ था इसे समझने के लिये गौड या बंगाल की तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक अवस्था का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना ठीक होगा। ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी की बंगाल की राजनैतिक अवस्था सुव्यवस्थित नहीं थी। चौदहवीं शताब्दी से ही दिल्ली के पठान राज्य की नींव हिल उठी और क्रमशः उनकी शक्ति और क्षमता का ह्रास होने लगा। सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पहले ही सन् १३३९ ई० में गौड़ के शासनाधिकारी मारे गए और मालिक फकरुद्दीन नाम के एक सेनानायक ने अपने को बंगाल का स्वाधीन शासक घोषित किया। पर दिल्ली की शासन-शृंखला से मुक्त होकर भी गौड़ सुल्तान चैन से राज्य न कर सके। गौड के हिन्दू जमीन्दारों ने तब तक पूर्ण अधीनता नहीं स्वीकार की थी। ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भातुरिया परगना के जमीन्दार राजा गणेश ने गौड के सिंहासन पर अधिकार जमा कर पुन हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा की। राजा गणेश के पुत्र ने इस्लाम धर्म को ग्रहण किया और उमरावों ने राजा गणेश के पौत्र की हत्या करके इलियास शाह के एक वंशधर को गद्दी पर बिठाया। पर इलियास शाह के वंशधरों ने ऐसा अत्याचार करना प्रारम्भ किया और सर्वत्र

ऐसी अशान्ति और अराजकता फैली कि उससे घबड़ा कर हिन्दू समाजपतियों और मुसलमान उमरावों ने मिलकर अलाउद्दीन होसेन शाह को नवाब निर्वाचित किया। यह घटना ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की है। गौड़ देश के सुल्तान यद्यपि मुसलमान थे फिर भी उच्च पदों पर हिन्दुओं को वे रखे हुए थे। इन्होंने बंगला-साहित्य और संस्कृति के विकास में बहुत बड़ा भाग लिया। कहा जा सकता है कि ईसवी सन् की पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का बंगला-साहित्य इन्हीं का ऋणी है। गौड़ देश के इन मुसलमान सुलतानों ने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कितना हाथ बटाया इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि होसेन शाह के एक सेनापति लस्कर परागल खान के आदेश से कवीन्द्र परमेश्वर ने बंगला में महाभारत काव्य की रचना की थी।[1] लस्कर परागल चटग्राम को जीतकर वहां का शासक बन गया था। उसके पुत्र छुटि खान की आज्ञा से श्रीकर नन्दी ने जैमिनि संहिता के अश्वमेध-पर्व का अनुवाद किया था।[2] होसेन शाह के ही शासन काल में गौड़ शहर के निकट राम केलिग्राम था जो ब्राह्मण संस्कृति का एक विशिष्ट केन्द्र था। इस संस्कृति के केन्द्र में ही रूपगोस्वामी और सनातन गोस्वामी का वास स्थान था और वे दोनों होसेन शाह के अत्यन्त विश्वस्त मंत्री थे।[3] ये दोनों श्री चैतन्य के दाहिने हाथ जैसे थे।

इस्लाम का प्रभाव—

इस्लाम के संपर्क ने तत्कालीन विचारधारा को और अन्य प्रकार से भी प्रभावित किया। मध्ययुग की चिन्ता धारा की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी। उसके पहले देख चुके हैं कि भारतवर्ष में भक्तिमूलक धर्ममत प्रचलित था। उत्तर भारत के आर्यों में यज्ञ आदि क्रिया का प्रचार था तथा वे ब्रह्मज्ञान की ओर अधिक झुके हुए थे। दक्षिण की द्राविड़ जाति भक्ति धर्म के प्रति अधिक अनुरक्त थी। क्रमशः आर्यों की ज्ञानधारा के साथ द्राविड़ों की भक्तिधारा का मेल हुआ। इस मिलन के फलस्वरूप नए आदर्श और नई कल्पना का उद्भव हुआ। इसके बाद इस्लाम धर्म के संघात से इस धर्म को नया उद्दीपन मिला। मुसलमान लोग अपने साथ दृढ़ निष्ठा

---

[1] डा० सुकुमार सेन बांगला साहित्येर इतिहास, पृ० ७४।

[2] बंगला साहित्येर इतिहास पृ० ७४।

[3] वही पृ० ६८।

करता है कोई बहुत धन खर्च कर मूर्ति बनवाता है, समस्त संसार व्याव हारिकता में लगा हुआ है। कृष्ण पूजा, कृष्ण भक्ति किसी को रुचती नहीं, नाना उपहार देकर कोई वाशुली की पूजा करता है, मद्य-मांस के द्वारा कोई यक्ष की पूजा करता है, सर्वदा नृत्यगीत, वाद्य की धुन में लगे रहते हैं और परम मंगलमय कृष्ण का नाम नहीं सुनते।)

चैतन्य के समसामयिक बंगाल में रघुनन्दन ने अष्टाविंशति तत्त्व लिखकर समाज-बंधन को और भी दृढ़ किया। कृष्णानन्द ने आगम पंडित तथा तान्त्रिक साधक के समान क्रिया बहुल तान्त्रिक ग्रंथ की रचना की।[१] उसी समय पूर्णानन्द ने व्यक्तिगत साधना के लिये षटचक्रनिरूपण और योग आदि का प्रचार किया।[२]

नवयुग का उदय—

कहा जा सकता है कि उत्तर भारत में रामानन्द से नवयुग का आरम्भ होता है क्योंकि भक्ति धर्म को वही दक्षिण से लाए। उन्होंने लोक भाषा में बिना जाति-पाति, ऊँच-नीच का भेद भाव किए समान रूप से सबको भक्ति का उपदेश दिया। इस सम्बन्ध में तन्त्र के प्रभाव का भी भुलाया नहीं जा सकता। ब्राह्मण्य के सामाजिक बंधनों को तोड़ कर तन्त्र ने जाति निर्विशेष सब नरनारी को समान अधिकार दिया और धर्मसाधना का एक नया आदर्श उपस्थित किया। लेकिन बंगाल में जो विभिन्न संस्कृतियों का मेल हुआ वह बुद्धि का मेल नहीं था। बंगाल में आदर्शों का समन्वय नहीं हुआ बल्कि आवेगों का समन्वय हुआ। गौड़ीय वैष्णव धर्म में आवेग और प्रेम का मुख्य स्थान है। पंचम पुरुषार्थ रूप भक्ति का धर्म जिसे श्री चैतन्य ने जन्म दिया वह है गौड़ीय वैष्णव धर्म। बंगाल का महायान, सहजयान वज्रयान, शैवमत, तन्त्रमत सभी आवेग की बाढ़ में बह गए। गौड़ीय वैष्णव धर्म ने कोई विधिनिषेध नहीं माना। इस महान् प्रेमधर्म की स्थापना में संकीर्तन का बहुत बड़ा हाथ है। श्री चैतन्य ने संकीर्तन द्वारा अपने धर्ममत का प्रचार किया। अन्य-अन्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों के समान उन्होंने अपने सिद्धान्तों के प्रचार अथवा प्रतिपादन के लिये किसी ग्रन्थ की रचना

---

[१] हिमांशु चन्द्र चौधरी वैष्णव साहित्य प्रवेशिका, पृ० १९।

[२] वही—पृ० १९।

नही की ।[१] भले ही गौडीय वैष्णव समाज कीर्तन का जन्मदाता न हो लेकिन यह सही है कि कीर्तन की प्रभावोत्पादकता की कल्पना कर श्री चैतन्य ने अपने मत के प्रसार के लिये इसका प्रयोग किया ।[२] कीर्तन का उल्लेख श्रीमद्भागवत में भी मिलता है ।[३]

चैतन्य-पूर्व मधुर रस की साधना—

गोपीभाव प्रधान वैष्णव साधना न रामानुज सम्प्रदाय में गृहीत था और न माध्व सप्रदाय में । ऐसा भी कोई प्रमाण नही मिलता जिससे यह कहा जा सके कि चैतन्य से पूर्व निम्बार्क तथा विष्णुस्वामी सम्प्रदायो ने उक्त साधना को ग्रहण किया था । बगाल में चैतन्य से पूर्व मधुररस के अनुकूल किसी प्रकार की साधना प्रचलित थी इसका पुष्ट प्रमाण नही मिलता । महामहोपाध्याय पडित प्रमथनाथ तर्क भूषण का कहना है कि राधातत्र, विष्णु जामल आदि तत्र में इस प्रकार के मधुर भाव की साधना की बात आलोचित हुई है लेकिन यह कहना कठिन है कि इस प्रकार की साधना की कोई सुशृखल प्रणाली चैतन्य युग से पूर्व थी या नही ।[४] इसका कोई प्रमाण नही मिलता । जयदेव के समसामयिक धोयी, उमापतिधर आदि बहुतो ने राधा कृष्ण की प्रेमलीला का गान किया है पर श्रीचैतन्य की वैष्णव साधना-प्रणाली अथवा भाव-सम्पद का परिचय उनलोगो की रचनाओ में नही मिलता ।

प्रेम रस के आदि प्रचारक-माधवेन्द्रपुरी—

विष्णु के प्रति भक्ति और श्रद्धा की एक धारा श्री चैतन्य से पहले ही से बगाल में प्रवाहित होती आ रही थी । आभिजात्य कुल की चाटुकारिता और इन्द्रिय विलास के वातावरण में रग कर वह प्रकट हुई है और श्रीचैतन्य प्रवर्तित प्रेम का यही अग्रदूत है । गौडीय वैष्णव धर्म में माधवेन्द्र पुरी को प्रेम रस का आदि प्रचारक कहा गया है :

---

[१] महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्क भूषण—वैष्णव धर्म (अधर मुखार्जी वक्तृता), पृ० ५४ ।

[२] डा० सुशीलकुमार दे अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव फेथ एन्ड मूवमेन्ट्, पृ० ३३५, फुटनोट २ ।

[३] ११।५।२९ ।

[४] बागालार वैष्णव धर्म (अधरचन्द्र मुखार्जी वक्तृता), पृ० ४७-४८ ।

भक्ति रसे आदि माधवेन्द्र सूत्रधार।
गौर चन्द्र यहा कहियाछन बारबार ॥[1]

(गौरचन्द्र (चैतन्य) ने बार-बार कहा है कि भक्ति रस के आदि सूत्रधार माधवेन्द्र थे)।

शेखर के पद से मालूम होता है कि नरहरि सरकार ने श्रीचैतन्य के आविर्भाव के पूर्व ही व्रजरस गाया था

गौरांग जन्मेर आगे विविध रागिणी रागे
व्रज रस करिलेन गान।
हेन नरहरि सग पाया वापु श्रीगौरांग
बड सुखे जुडाइल प्राण।[2]

(गौरांग के जन्म के पहले ही विविध राग रागिनियों में उन्होंने व्रज रस गाया ऐसे नरहरि को पाकर अत्यधिक प्रसन्नता से श्री गौरांग का मन उनसे जा मिला)।

नवद्वीप का वैष्णव समाज—

श्रीधरस्वामी और माधवेन्द्र पुरी द्वारा अनुप्राणित होकर नवद्वीप में एक छोटा-सा वैष्णव समाज तैयार हुआ और अद्वैताचार्य उसके शिरोमणि थे। श्रीधर स्वामी और माधवेन्द्रपुरी की भावधारा का अनुसरण करके ही संभवत अद्वैताचार्य अपने आरम्भिक जीवन में ज्ञानमिश्रित भक्ति का अनुशीलन करते थे।[3] वेदान्ती होने पर भी अद्वैताचार्य भक्तिधर्म के अनुरागी थे और श्रीवास आचार्य आदि ने उनके साथ मिलकर महाप्रभु श्रीचैतन्य के आगमन की सूचना दी और बाद में महाप्रभु को ही नेता रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार से यह सहज ही देखा जा सकता है कि चैतन्य के पूर्व यद्यपि मधुर रस की वैष्णव-साधना नहीं थी फिर भी लोक-साहित्य तथा भिन्न भिन्न मत-मतान्तरों का विकास इस प्रकार से हो रहा था जिससे चैतन्य प्रवर्तित मधुर रस की साधना के लिये लोक चित पर अधिकार करना सहज हो गया।

---

[1] चैतन्य भागवत आदि खंड छठा परिच्छेद।
[2] गौरपदतरंगिणी, पृ० ३०२।
[3] डा० सुशीलकुमार दे अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट इन बंगाल पृ० २३ तथा ३५।

गौड़ीय वैष्णव काव्य साहित्य और गाथा सप्तशती—

यहा इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है कि गौड़ीय वैष्णव काव्य-साहित्य का ऐहिकतापरक शृगारी साहित्य ने कम योग नहीं रहा। गाथा सप्तशती से उन पद कर्ताओ का परिचय अवश्य ही था, इसका पता निम्नलिखित उद्धरण से चल जाता है।

विरहे विसं व विसमा अमअ मआ होइ संगमे अहिअम्।
किं विहिना समअं किअ होंहि वि पिया विनिस्मिल आ॥

इसके साथ चण्डीदास के निम्नलिखित पद्यांशो से तुलना की जा सकती है—

१—निमे सुधा दिया एकत्र करिया
ऐछन कानुर लेह।

(कानु का प्रेम ऐसा है जैसे नीम और सुधा को एकत्र कर दिया हो)।

२—कानुर पिरीति बाहिरे सरल
अन्तरे गरल हय।

(कानु की प्रीति बाहर से सरल लेकिन अन्तर में विष जैसा दग्ध करती है)।

३—कानुर पिरीति चन्दनेर रीति
घषिते सौरभमय।
घषिया आनिया हियाय लइते
दहन द्विगुण हय॥

(कृष्ण की प्रीति चन्दन की रीति वाली है जो घिसने पर तो सौरभ फैलाती है। पर घिसकर हृदय पर लगाने से दुगुनी जलन होती है।)

कविराज गोस्वामी के मत से प्रेम 'विषामृते एकत्र मिलन' है। विद्यापति ने भी इसी के अनुरूप कहा है —

तोंहे बड़ नागर ओ बड़ भोरी।
अमिय पियओ लट विष सो घोरी॥

वैष्णव सहजिया मत और गौड़ीय वैष्णव साधना—

अन्त में वैष्णव सहजिया मत की चर्चा किए बिना यह अध्ययन अधूरा रह जायेगा। सभवत. वैष्णव सहजिया मत ने चैतन्य प्रवर्तित वैष्णव साधना को अत्यधिक प्रभावित किया। वैसे यह बात भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि गौड़ीय वैष्णव साधना ठीक वही नही है जो वैष्णव सहजिया मत वाले मानते

है। लेकिन यह भी ठीक है कि दोनों में इतना साम्य है कि बहुत लोग दोनों को अभिन्न मानते हैं। वैष्णव सहजिया मत वाले प्रायः सभी प्रमुख गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त कवियों और साधकों को अपने मत के अन्तर्गत रखते हैं। चण्डीदास, विद्यापति, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, नरहरि लोचन, कृष्णदास कविराज, वृन्दावन दास आदि सभी को वे अपने मत का अनुयायी मानते हैं। उनके मतानुसार जितने प्रमुख गौडीय वैष्णव भक्त थे सभी ने सहज साधना की थी। अकिंचनदास के 'विवर्त विलास' में कहा गया है—

श्रीरूप करिला साधना मीरार साथे।
भट्ट रघुनाथ कैला कर्ण-बाई साथे॥
लक्ष्मी हीरा सने करिला गोंसाई सनातन।
महामन्त्र प्रेमे सेवा सदा आचरण॥
गोसाई लोकनाथ चण्डालिनी कन्या सगे।
दोहा जन अनुराग प्रेमेर तरगे॥
गोयालिनी पिंगला से व्रज देवी सम।
गोसाइ कृष्णदास सदाइ आचरण॥
श्यामा नापितानीर सगे श्रीजीव गोसाई।
परम से भाव कइला यार सीमा नाई॥
रघुनाथ गोस्वामी पिरिति उल्लासे।
मीरा बाइ सगे तेह राधा कुण्ड बासे॥
गौरप्रिया सगे गोपाल भट्ट गोसाइ।
करये साधन अन्य किछु नाई॥
राय रामानन्द यजे देव-कन्या सगे।
आरोपेते स्थिति तेह कियार तरगे॥[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव सहजिया मत में साथ गौडीय वैष्णव मत का अत्यधिक साम्य है और यही कारण है कि दोनों को अभिन्न मान लिया जाता है।

सहजिया मत और 'चैतन्य चरितामृत'—

सहजिया मत वाले 'रस का ही अवलम्बन कर चलते हैं। वे लोग रूप धर्मी है। इस मत वालों के अनुसार 'रस' का सम्बन्ध मन से है। इसलिये

[1] बंग साहित्य परिचय, खण्ड २, पृ० १६५०।

वे मानते है कि जो सच्चे रसिक हैं उन्हें द्रष्टा का स्थान ग्रहण करना पड़ता है, भोक्ता का नही। वैष्णव-पदावली-साहित्य की रचना गया कृष्ण-लीला रस का आस्वादन करने के लिये हुई थी। सहजिया मतवालो ने इसमें से बहुत कुछ अपना लिया। यहा तक कि अपने मत की स्थापना के लिये उन्होने 'चैतन्य चरितामृत' का आधार लिया।[1]

सहज मत की देहाश्रित प्रेम साधना—

सहजिया कहते है कि जन्मगत जो स्वाभाविक भाव है वही सहज है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है प्रेम। इस प्रेम की सार्थकता इन्द्रियातीत होने पर भी देह के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सहज भजन का सार है—देहाश्रित प्रेम साधना। गौडीय वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार वृन्दावन में राधाकृष्ण की लीला अनन्तकाल से चली आ रही है। सहजिया मतानुसार ये अप्राकृत युगल नरनारी में ही अपनी प्राकृत लीला कर रहे है। उनके मतानुसार प्रत्येक नारी राधिका-सहज का आस्वाद्य रूप रति और प्रत्येक पुरुष श्रीकृष्ण है—सहज का आस्वादक रूप रस। सहज मत वालो के लिये यह जड देह ही सर्वोत्कृष्ट है और इस देह के सम्यक् तत्त्व की प्राप्ति से मन का निर्विकारत्व प्राप्त होता है। यह जड देह ही परम तत्व है और इस जड देह और प्राकृत प्रेम के आस्वादन द्वारा ही सच्चे प्रेम की प्राप्ति होती है। नरनारी के मिलन का जो आनन्द है उसी आनन्द द्वारा परम आनन्द का आस्वाद मिलता है। किन्तु इस मिलन के स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार से की गई है—

> नीर ना छुंइबि सिनान करिबि
> भाविनी भावरे देहा।

(बिना जल का स्पर्श किए स्नान होगा जैसे भाविनी और भावदेह में सबंध है।) सहजिया मत वालो ने मनुष्य को ही प्रेमास्पद माना था और लौकिक प्रेम के बीच से ही परम प्रेमास्पद भगवान् के प्रेम का पता पाया था, इसीलिए उन लोगो का कहना है—

> मानुष रतन मानुष जीवन
> मानुष पराण धन॥

---

[1] मनीन्द्रनाथ वसु . सहजिया साहित्य, भूमिका।

पर यह बात उन लोगों ने सामान्य मनुष्य को ध्यान में रखकर नहीं कही थी, 'सहज' मनुष्य को ही लक्षित करके कही थी—

जे जना मानुष से जाने मानुष
मानुषे मानुष चिन।

(जो मनुष्य है वही मनुष्य को जानता है, मनुष्य ही मनुष्य को पहचानता है।) उन्होंने जिस प्रेम का उल्लेख किया है वह काम-गन्ध हीन है—

हियार भितरे जाहार बसति
ताहार उपरे के।
ताहार उपरे प्रेमेर बसति
से कथा बुझिबे के॥

(हृदय के भीतर जिसकी बस्ती है उसके ऊपर कौन है। उसके ऊपर प्रेम की बस्ती है इस बात को कौन समझेगा।)

देह की साधना द्वारा परम तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है, यही सहजिया मतवाद है। इस देह-साधना के गूढ़ तत्त्व को जो जानते हैं वही केवल सहज साधना के उपयुक्त हैं। उस गोपनीय तत्त्व के सम्बन्ध में उनका कहना है—

मरम ना जाने धरम बखाने
एमन आछये जारा।
काज नाइ सखि तादेर कथाय
बाहिरे रहुन तारा॥

(बिना मर्म जाने जो धर्म बखानते हैं हे सखि उनसे कोई मतलब नहीं वे बाहर ही रहें)।

सहज साधना अन्तर्मुखी है—

इस सहज साधना में बाह्य जगत का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। यह अन्तर्मुखी धर्म है बहिर्मुखी नहीं। इसलिये केवल अन्तरंग ही सहजिया प्रेमतत्त्व के मर्म को समझ सकते हैं—

आमार बाहिर दुयारे कपाट लेगेछे।
भितर दुयार खोला॥
तोरा निसाडा हइया आयलो सजनि।
आधार पेरिया आला॥

इसी सजनी' या 'सखी' को लेकर सहजिया मत वालों ने प्रेम तत्त्व का अनुशीलन और प्रचार किया।

सहजिया मत का प्रेम-तत्त्व—

सहजिया मत का प्रेम तत्त्व, परकीया प्रेमतत्त्व है। सहजिया सम्प्रदाय वालो ने स्वकीया और परकीया को दूसरे अर्थ में लिया है। उन लोगो ने स्वकीया से सकाम साधना और परकीया से निष्काम साधना का अर्थ लिया है। साधना के उद्देश्य को ध्यान में रख कर वे कहते हैं कि बाहर देवता (मूर्ति) की पूजा करने की अपेक्षा आत्मोपलब्धि के लिये साधना करना ही श्रेष्ठ मार्ग है।[1] पर परकीया प्रेम के साथ सखी-साधना का तत्त्व अंगांगी भाव से जुड़ा रहने के कारण सहज साधना के लिये नारी को लेकर साधना अति आवश्यक है। इस सखी-साधना के मूल में सम्भवत तान्त्रिक प्रभाव पड़ा है।[2] तन्त्र मत में देह साधना के पाँच कुल है—ब्राह्मणी, चाण्डाली, रजकी, डोम्बी और शबरी। ये मानवी नहीं है। बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय वालो ने जिस डोम्बी, चाण्डाली और सहजिया चण्डीदास ने जिस रजकी को सम्बोधन करके अपना साधन-तत्त्व विश्लेषण किया है, ये लोग उनके कुल हैं।[3]

चैतन्य साधना और सहजिया साधना में अन्तर—

श्रीचैतन्य की साधना से सहजिया साधना का मौलिक अन्तर है। चैतन्य में गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय वाले राधा और कृष्ण को एकाकार देखते है। वही द्रष्टा हैं, वही भोक्ता है, वही रति है, वही रस है। वैसे उनमें राधा-भाव का ही प्राधान्य है। उन्हें 'राधाभाव द्युति सुवलित' कहा गया है। वैष्णव कवियो में चाहे वे चैतन्य-पूर्व के हो या चैतन्य के बाद हुए हों सखी-भाव की प्रधानता रही, राधा-भाव की नही। बंगाल के वैष्णव साहित्य के विकास मे वैष्णव सहजिया साधना तथा काव्य का प्रभाव गौडीय वैष्णव साधना और साहित्य पर पड़ा है उसी प्रकार से गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय ने वैष्णव सहजिया मत और काव्य को प्रभावित किया है। इन दोनो के पारस्परिक प्रभाव को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

---

[1] मनीन्द्र मोहन वसु : सहजिया साहित्य, भूमिका।

[2] डा० नीहाररंजन राय, बांगालीर इतिहास, आदि पर्व, पृ० ६३९।

[3] वही, पृ० ६३९।

आठवा अध्याय

चैतन्य सम्प्रदाय के दर्शन और सिद्धान्त

गौडीय दर्शन और सिद्धान्त—

पिछले अध्याय में वैष्णवता के कारण बगला साहित्य के परिवर्तित स्वरूप पर विचार किया जा चुका है। अब बगाल में विकसित ब्रजबुलि साहित्य के परिचय से पहले उसके मूल प्रेरक और शक्ति प्रदान करने वाले गौडीय वैष्णव दर्शन के सिद्धान्तो की जानकारी बहुत आवश्यक है। अत प्रस्तुत अध्याय में गौडीय वैष्णव दर्शन और उसके मूल सिद्धान्तो का सक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

गौडीय वैष्णव मत के प्रवर्तक—

गौडीय वैष्णव दर्शन के सिद्धांत तत्व की दृष्टि से प्राचीन होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह चार सौ वर्षों से कुछ पहले ही आविर्भूत हुआ। महाप्रभु चैतन्य के मौलिक उपदेश और साधना के आधार पर ही यह विशिष्ट दार्शनिक धारा प्रवर्तित हुई। गौडीय वैष्णव धर्म के दार्शनिक सिद्धात और उसके अनुसार साधना दीक्षा तथा नियम विधान आदि के सबध में चैतन्यदेव ने स्वय कुछ नही लिखा। पर उनसे मौलिक उपदेश पाकर रूपगोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने बहुत से ग्रथ लिखे। बाद में इन दोनो की प्रेरणा से जीव गोस्वामी ने काफी ग्रथ लिखे। इन तीनो के द्वारा लिखे गए ग्रथों के अतिरिक्त गौडीय वैष्णव धर्म के तत्वो का प्रचार करने वाले और दूसरे ग्रथ सम्प्रदाय में नहीं लिखे गए। जीव गोस्वामी रचित षट्-सदर्भ में ही मुख्य रूप से गौडीय वैष्णव धर्म के दार्शनिक तत्वो का विस्तृत विवेचन हुआ है। इतना होने पर भी महाप्रभु श्री चैतन्य को गौडीय वैष्णव धर्म का आदि आचार्य मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

गौडीय वैष्णव मत का स्वावलम्बन—

अधिकाश विद्वान ऐतिहासिक सबद्धता के कारण चैतन्य मत को माध्वमत

की ही शाखा विशेष मानते हैं।[1] परन्तु दार्शनिक सिद्धांत की दृष्टि से दोनों सम्प्रदायों में बड़ा भारी अन्तर है, माध्वमत द्वैतवाद का समर्थक है वहाँ चैतन्य मत अचित्य-भेदाभेद-सिद्धान्त का स्थापक। इसी कारण कुछ विद्वानों को अचित्य-भेदाभेद-सिद्धान्त निम्बार्क के भेदाभेद-सिद्धांत के अनुकूल जान पड़ा अतः उन्होंने चैतन्य मत-को निम्बार्क सम्प्रदाय के अंतर्गत माना पर सच तो यह है कि गौडीय वैष्णव दर्शन के सिद्धान्त, उपासना-पद्धति, साधना का आदर्श सर्वथा पृथक् ही हैं। गौड़ीय-वैष्णव-दर्शन के सिद्धान्तों तथा साधना पद्धति के वैशिष्ट्य के कारण यदि वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास में चार प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों के अतिरिक्त चैतन्य-मत को एक पांचवें स्वतंत्र संप्रदाय रूप से माना जाय तो अनुचित न होगा।

चैतन्य मत और अचिंत्य भेदाभेद्वाद—

चैतन्यमतानुशार भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमतत्व है और उनकी सूर्य और किरण, अग्नि और स्फुलिंग में जो भेदाभेद संबंध है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण का जीव के साथ शक्ति अंश में भेद और चैतन्य अंश में अभेद है; प्रकृत रूप में जीव भगवाम का ही भेदाभेद प्रकाश है। यह भेद और अभेद की स्थिति तर्क द्वारा अचित्य होने के कारण चैतन्य मत की प्रसिद्धि 'अचित्य-भेदाभेद' के नाम से भी हुई।

चैतन्य संप्रदाय में ब्रह्म या श्रीकृष्ण—

एक ही तत्व—"ब्रह्म", "परमात्मा", भगवान्"—भक्त भगवान् को नाना रूपों में देखता है। भक्त अपने भाव के अनुरूप भगवान का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार से भिन्न-भिन्न साधक भिन्न-भिन्न रूपों में भगवान् को देखते हैं। भगवान् एक है, वह अखण्ड है, वह चिदानन्द स्वरूप है। गौडीय सिद्धांत के अनुसार एक ही ईश्वर, एक ही विग्रह भक्तों के भाव के अनुरूप नाना प्रकार के रूप धारण करता है। चैतन्य चरितामृत में कहा गया है :

एकइ ईश्वर भक्तेर भाव अनुरूप। एकइ विग्रहे धरे नानाकार रूप।[2]

एक दूसरे स्थल पर चैतन्य चरितामृत में कहा गया है :

---

[1] प्रथम अध्याय में 'गौड़ीय सम्प्रदाय' की चर्चा के प्रसंग में इस संबंध का उल्लेख किया जा चुका है।

[2] चैतन्य चरितामृत २।९।१४१

एकइ विग्रह तार—अनन्त स्वरूप।[1]

अर्थात उनका एक ही विग्रह है लेकिन वे अनन्त रूप धारण करते हैं। अतएव गौडीय सिद्धांत के अनुसार एक ही अद्वय ज्ञानतत्व के अलग-अलग नाम —ब्रह्म, परमात्मा और भगवान हैं। नारद पांचरात्र में इसी बात को एक अत्यन्त सुन्दर उपमा द्वारा समझाया गया है। उसमें कहा गया है कि मयूरसडी (धूपछाह) साडी विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न स्थानों से विभिन्न रंगों वाली दीखती है लेकिन उसका एक ही प्रमुख रंग है और अन्य सभी रंग उसी में समाये हुये हैं। इसी प्रकार से अच्युत (श्रीहरि) भिन्न भिन्न प्रकार के भक्तों को भिन्न भिन्न रूपों में दिखलाई पडते हैं। वह एक ही तत्व, ज्ञानमार्गी के लिये निर्विशेष ब्रह्म और योगपथी उपासक के लिये परमात्मा तथा भक्ति का अवलम्बन लेने वाले भक्त के लिये भगवान् हैं।

श्रीकृष्ण ही परब्रह्म —

चैतन्य सम्प्रदाय में श्री कृष्ण ही परम तत्व परब्रह्म हैं। वे पूर्ण ज्ञान हैं। वे पूर्णानंद हैं। शक्ति सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य का पूर्णतम विकास उन्हीं में हुआ है। चैतन्य चरितामृत में कहा गया है

स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्व।
पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द, परम महत्व॥[2]

एक जगह और चैतन्य चरितामृत में आया है।

ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान्। सर्व्व अवतारी, सर्व्व-कारण प्रधान।
अनन्त वैकुण्ठ आर अनन्त अवतार। अनन्त ब्रह्माण्ड इहा सबार आधार॥[3]

इस प्रकार से गौडीय सम्प्रदाय में कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, सर्वशक्तिमान हैं सर्व कारण स्वरूप हैं तथा सबके आश्रय हैं। वे सभी शक्तियों के मूलाधार सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर और सर्वाश्रय हैं।

कृष्ण एक सर्वाश्रय कृष्ण सर्वधाम।
कृष्णेर शरीरे सर्व विश्वेर विश्राम॥[4]

---

[1] चैतन्य चरितामृत, २।२०।१३७
[2] वही, १।२।५
[3] वही, २।८।१०६-७
[4] वही १।२।७८

गौडीय सम्प्रदाय के इस मत का समर्थन अनेक श्रुतियों द्वारा हो जाता है। कहा गया है "कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।[1] ब्रह्मसंहिता (५|१ में भी यही कहा गया है।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादि गोविन्द. सर्व्वकारण-कारणम् ॥

गीता में भगवान् ने स्वयं ही बतलाया है कि वे ही एक मात्र सर्वकारण है। गीता (अध्याय, ११) में उन्होंने अपने विश्वरूप में अर्जुन को यह दिखाया है कि वे सर्वाश्रय है। गीता में अन्यत्र भी (७|६, ७|७, ७|१०) में भगवान् के इस रूप का परिचय मिलता है।

श्री कृष्ण का स्वरूप—श्री कृष्ण, सर्व ऐश्वर्य, सर्वशक्ति और सर्वरस पूर्ण हैं। वे सच्चिदानन्दविग्रह है। कविराज गोस्वामी ने कहा है।

सच्चिदानन्दतनु श्री ब्रजेन्द्रनन्दन। सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्व्वरस पूर्ण।[2]

इस प्रकार से सत्, चित् और आनन्द ही श्री कृष्ण का स्वरूप है। श्रीमद् भागवत (१|३|३८) में कहा गया है कि उनमे ही कला या अंश रूप समस्त अवतारो का आविर्भाव होता है। वे अखिल रसामृत सिन्धु है। उन्ही में रस-माधुर्य आदि का पूर्णतम विकास है। वे प्रेममय, आनन्दमय और रसमय है। द्विभुज मुरलीधर ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही वेदो के ब्रह्म है। उनसे आनन्द और प्रेम की अनन्त धारा प्रवाहित हो रही है। अपने ऐश्वर्य और माधुर्य से सबको आकर्षित कर रहे हैं इसी लिये उनका नाम 'कृष्ण' है। लेकिन जब "श्रीकृष्ण के विग्रह" आदि की बात कही जाती है तो वह केवल भाषा का प्रयोगमात्र है, उपचारवशत ऐसा कहा जाता है[3], वस्तुतः यहाँ जो देह है वही देही है। इस देह और देही के अभेद का फल यह होता है कि श्रीकृष्ण के विग्रह का कोई भी अंग किसी भी इन्द्रिय की शक्ति धारण करता है और किसी भी इन्द्रिय की शक्ति को प्रकट कर सकता है।[4] श्रीकृष्ण में आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नही है। जैसे नमक के गोले में केवल नमक ही नमक है वैसे कृष्ण में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है।[5]

---

[1] श्री मद्भागवत् १|३|२८
[2] चैतन्य चरितामृत, २|८|१०८|
[3] लघुभागवतामृत, ३४१।
[4] ब्रह्मसंहिता, ५।३२।
[5] बृहदारण्यक ४।५।१३।

श्रीकृष्ण अद्वय ज्ञानतत्व है।[1] अद्वय अर्थात् द्वितीय से हीन। श्रीकृष्ण ही एक-मात्र स्वय सिद्ध तत्व हैं। उनमें सजातीय, विजातीय, स्वगत किसी प्रकार का भेद नहीं। अर्थात् भिन्न भिन्न अवतारादि सजातीय ब्रह्माण्ड आदि विजातीय तथा देह-देही (जड, चेतन) स्वगत इन सभी तत्वों की सत्ता श्री कृष्ण की सत्ता की अपेक्षा रखती है वे श्रीकृष्ण की सत्ता पर ही आश्रित हैं। इसलिये श्रीकृष्ण के सबंध में किसी प्रकार के भेद की बात नही कही जा सकती।

श्रीकृष्ण, सगुण एव निर्गुण—स्वरूप शक्ति की तीन वृत्तियाँ हैं—ह्लादिनी, संधिनी और संवित। यह स्वरूप शक्ति केवल भगवान में ही है और इस शक्ति के विलासभूत अप्राकृत गुण सब भगवान् में वर्तमान है। प्रकृति भगवान की शक्ति रूपा है इसीलिये मायिक प्राकृत गुण (अर्थात सत्व, रज, तम) भगवान् में नहीं है। इन गुणों से रहित होने के कारण भगवान् निर्गुण है और चिन्मय अप्राकृत गुणों के कारण वह सगुण भी हैं।

श्रीकृष्ण में विरुद्ध धर्म—भगवान् का विभुत्व ही उनका स्वरूप धर्म है। वे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और अनन्त है लेकिन उनमें अचिंत्य ऐश्वर्य भी है इसीलिये उनमें विरुद्ध धर्माश्रयत्व संभव है। परिमित शरीर में भी कोटि ब्रह्माण्ड कोटि ब्रजमंडल, अनन्त भगवद्धाम का धारण किये हुये है। यशोदा ने इस रूप को देखा था। श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय है। एक ही समय में वे सर्वव्यापक है और अणु से भी क्षुद्र है। अस्थूल होने पर भी स्थूल अनणु होने पर भी अणु और अवर्ण होने पर भी श्यामवर्ण और रक्तान्तलोचन हैं।[2] अपनी अचिंत्य शक्ति के कारण ही वे 'अणोरणीयात् महतोमहीयान'[3] हैं, नरदेह में भी विभु हैं।

श्रीकृष्ण लीलामय—परब्रह्म श्रीकृष्ण लीलामय हैं। इस लीला का प्रयोजन लीला है कार्यसिद्धि नहीं। एक छोटे से बालक के समान वे क्रीडारत होते है। उनकी लीला केवल आनन्द प्राप्ति के लिये है। श्रीकृष्ण की रसास्वादन की इच्छा ही लीला का प्रवर्तन करती है। आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण, आनंद के आस्वादन के लिये आनन्द की प्रेरणा से लीला करते हैं। इसी रसास्वादन के लिये अपने स्वरूप और विभिन्न भगवत् स्वरूपों में वे अनुष्ठित है।

[1] चैतन्यचरितामृत १।२।५३।

[2] कूर्मपुराण वचन लघु भागवतामृत (९७) में उद्धृत।

[3] श्वेताश्वतर ३।२०, कठोपनिषद, १।२।२०।

नरलीला-श्रेष्ठलीला--चैतन्य चरितामृत (२।२१।८३) में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की श्रेष्ठ लीला उनकी नरलीला है। उनका गोपवेश, हाथो में मुरली, उनका नित्य-नवकिशोर नटवर रूप ही उनकी नरलीला के अनुरूप है।

कृष्णेर जतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला, नरवपु कृष्णेर स्वरूप।
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नरलीलार हय अनुरूप ॥

इसका मतलव यह है कि विभिन्न स्वरूपो मे भगवान् की जो लीलायें है उनमे नरलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। ब्रज में वे कुमार, पौगण्ड और किशोर इन्ही तीन अवस्थाओ मे लीला करते है। वे मूर्तिमान श्रृगार है और शुद्ध माधुर्य रस के आस्वादन के लिये ही वे पृथ्वी पर अवतरित होते है। राधा के साथ निरन्तर प्रेमक्रीडा ही उनका कार्य है। इस प्रकार से नररूप मे लीला करने वाले कृष्ण परब्रह्म है और नराकृत ही उनका निजस्वरूप है।[1]

श्रीकृष्ण में माधुर्य की प्रधानता—श्रीकृष्ण का माधुर्य रूप ही प्रधान है। इस माधुरी की सीमा नही। इस माधुर्य से समस्त विश्व, स्वर्गवासी देवतागण, लक्ष्मी और यहा तक कि स्वयश्रीकृष्ण भी मुग्ध है। इस रूप का एक कण समस्त त्रिभुवन को डुवा देता है और सभी प्राणियो का आकर्षण करता है।

जे रूपेर एक कण डुवाय सब त्रिभुवन
सर्व प्राणी करे आकर्षण।[2]

और फिर

श्रवणे दर्शने आकर्षये सर्वमन। आपना आस्वादिते कृष्ण करेन जतन ॥[3]

कृष्ण का यह माधुर्य केवल अनुभूति का विषय है इसका वर्णन करना सभव नही। भक्त, आत्मविभोर होकर "मधुर-मधुर" कहता अपनी विह्वलता, आतुरता, अतृप्ति तथा अपनी अक्षमता को प्रकट करता है। वह उस मधुरता का वर्णन नही कर पाता। वह जव वर्णन करना चाहता है तो इतना ही कहकर रह जाता है कि "वह मधुर से सुमधुर और उससे भी सुमधुर और उससे भी अति सुमधुर है।"

मधुर हैते सुमधुर ताहा हैते सुमुधुर
ताहा हैते अति सुमधुर ॥[4]

श्रीकृष्णकर्णामृत (९२) में भी हम यही पाते है :

---

[1] यत्रावतीर्ण कृष्णाख्यं परब्रह्म नराकृतम्—विष्णुपुराण, ४।११।२।

[2] चैतन्य चरितामृत, २।११।८४।

[3] वही, १।४।१२८।

[4] वही, २।२१।११६—११७।

मधुर मधुर वपुरस्य विभोमधुर मधुर वदन मधुरम
मधुगन्धि-मधुस्मितमेतदहो मधुर मधुर मधुर मधुरम ॥

श्रीकृष्ण का ऐश्वय-माधुय के अधीन—प्राचीन धम-ग्रन्थो में भगवान् के ऐश्वय-पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है लेकिन चतन्य महाप्रभु ने प्रचार किया— माधुय भगवत्ता-सार[1] अर्थात् भगवत सत्ता का सार माधुय ही है। श्रीकृष्ण के ऐश्वय का अणु-परमाणु माधुय स सिक्त है अतएव वह ऐश्वय भक्त के हृदय में भय का सचार नही करता और न गौरवमहिमा के कारण सकोच ही।

श्रीकृष्ण रसिक शिरोमणि—श्रीकृष्ण के लिये "रसो व स" कहा जा सकता है। व ऐश्वयमय, परममाधुयमय और लीला पुरुषोत्तम है लेकिन सबसे बढकर रसिक शेखर ह। लेकिन यहाँ स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि आस्वाद्य आस्वादक दोनो ही वह है। राधाकृष्ण की लीला में ही माधुय का चरम विकास होता ह। अतएव युगल रूप ही रस-स्वरूप है। इस माधुय का स्फुरण वात्सल्य रस में सभव नहीं। यशोदा की गोद में उनके माधुय का स्फुरण होता है लेकिन व उस समय 'साक्षात मन्मथ मदन" नही होते। व वृन्दावन के अप्राकृत मदन' है। भक्त उस रस के आस्वादन के लिये लालायित रहता ह। भगवान कृष्ण जिस लीला में रत रहते ह उसीके अनुरूप उनमें भगवत्व का विकास होता है।

श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता—श्रीकृष्ण के माधुयमय रूप की परिणति व्रज लीला में ही हुई। व्रजलीला में श्रीकृष्ण में रूपमाधुय, वेणु-माधुय, प्रेम-माधुय और लीला-माधुय का समन्वित स्वरूप देखने को मिलता ह। यह अन्य किसी स्वरूप में नही है, इसीलिये श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता ह।

भगवान श्रीकृष्ण करुणामय भक्तवत्सल—चतन्य चरितामृत में कहा गया ह कि मायाबद्ध जीव का निस्तार ही ईश्वर का स्वभाव ह। लोक निस्तारिब एइ ईश्वर-स्वभाव।[2] अतएव अन्य गुणो के साथ वे करुणामय भक्तवत्सल ह। व स्वतत्र होते हुए भी अपनी भक्त वत्सलता क कारण भक्त के आधीन रहते हैं।[3] उनकी करुणामात्र से जीव का उद्धार होता है। उसी करुणा के

---

[1] चतन्य चरितामृत २।२१।९२।

[2] वही, ३।३।५।

[3] अह भक्त-पराधीन। श्री मदभागवत ९।४।६३।

द्वारा जीव भगवान् के साथ सबंध होता है। जीव के लिये भगवान् की करुणा का बहुत बड़ा महात्म है।

चैतन्य सम्प्रदाय में शक्ति या राधा—

श्रीकृष्ण की तीन मुख्य शक्तियाँ- चैतन्य चरितामृत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ है जिनमें तीन प्रधान है। ये तीनों चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्ति है। इन्हें क्रमश अतरगा, बहिरगा और तटस्था भी कहते है।

कृष्णेर अनन्त शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति नाम ॥
अन्तरंगा बहिरंगा तटस्था कहि जारे।
अन्तरगा स्वरूप-शक्ति सभार उपरे ॥[1]

इन शक्तियो में चिच्छक्ति, श्रीकृष्ण के स्वरूप मे बसी हुई है। श्रीकृष्ण, चित् स्वरूप है। उनकी चित्-स्वरूप शक्ति, चिच्छक्ति है और यही अंतरगा है क्योकि इसी चित्शक्ति द्वारा लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अतरग-लीला करते है। उनकी मायाशक्ति, बहिरगा है। इसी शक्ति से ब्रह्माण्ड और जड जगत् की उत्पत्ति हुई है। यह इसलिये बहिरंगा कहलाती है कि यद्यपि यह श्रीकृष्ण की ही शक्ति है फिर भी उनकी अचिन्त्यशक्ति के कारण उनसे तथा उनके धाम-परिकरादि से दूर ही बनी रहती है। श्रीकृष्ण की जीव-शक्ति के अश में अनन्त जीव अस्तित्व वाले है। यह तटस्था है क्योकि श्रीकृष्ण की अन्य दो शक्तियो से यह भिन्न है फिर भी इसे दोनो ही शक्तियो में प्रवेश का अधिकार है।

स्वरूप शक्ति के तीन प्रकार—श्रीकृष्ण, सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत्, चित्, आनन्द के अनुसार उनकी स्वरूप-शक्ति के सधिनी, सवित् और ह्लादिनी तीन प्रकार है। सधिनी, श्रीकृष्ण के सत् अश की शक्ति है। यह आधार शक्ति है। इसीके द्वारा भगवान् स्वय अपनी तथा अन्य वस्तुओं की सत्ता धारण किये हुए रहते हे। चित् अंश की शक्ति, सवित् शक्ति है। यह ज्ञान-शक्ति है। भगवान्, इसी शक्ति द्वारा स्वय ज्ञान प्राप्त करते है और अन्य को ज्ञान प्रदान करते है। आनद अश की शक्ति ह्लादिनी शक्ति है। इसके द्वारा भगवान् स्वात्मभूत आनद का अनुभव करते है और दूसरो को आनंद देते हैं।

---

[1] चैतन्य चरितामृत, २।८।११६-११७।

श्री राधा का स्वरूप—श्री राधा, भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की सार-स्वरूपा हैं। वे भगवान् का प्रधान शक्ति हैं। चतन्य चरितामत में कहा गया है।

ह्लादिनीर सार अंश—तार प्रेमनाम।
आनन्द चिन्मय रस—प्रेमेर आख्यान॥
प्रेमेरे परम सार—महाभाव जानि।
सइ महाभाव रूप राधा ठाकुरानी॥
(२।८।१२२ १२३)

ह्लादिनी का सार प्रेम है और प्रेम का सार भाव और इस भाव का चरम उत्कर्ष महाभाव में है। इस महाभाव के भी मोदन और मादन दो प्रकार हैं। वास्तव में महाभाव की चरमावस्था मादन में ही है। इसी मादन महाभाव की विग्रह रूपा श्री राधा हैं और केवल मात्र वही हैं अन्य कोई नहीं। यहां तक कि श्रीकृष्ण में भी इसका प्रकाश नहीं है। श्रीकृष्ण के रसास्वादन की चरम परिणति मादन महाभाव में ही है। राधा प्रेममयी हैं चिर माधुर्यमयी प्रेम की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा नित्य नव किशोरी हैं। श्रीकृष्ण की इच्छाओं की पूर्ति ही इनकी आराधना है इसलिये ये राधा हैं।

कृष्णवांछा पूर्तिरूप करे आराधने।
अतएव राधिका नाम पुराणे व्याख्याने॥[1]

राधिका कृष्णमयी है। वे कृष्ण को मुग्ध और आनन्दित करती रहती हैं। वे कान्ता शिरोमणि हैं। उनके लिये कृष्ण ही सब कुछ हैं। किसी वस्तु की सार्थकता वे कृष्ण-संयोग से ही मानती हैं। उनकी वाणी में उनके नेत्र में, उनकी नासिका में उनके श्रवण में, उनके बाहर उनके भीतर सर्वत्र कृष्ण ही स्फुरित हो रहे हैं।

कृष्णमयी कृष्ण जार भीतरे बाहिरे।
जाहां जाहां नेत्र पड़े ताहां कृष्ण स्फुरे॥[2]

कृष्ण राधा के वशवर्ती—

कृष्ण राधा के प्रेम के वशवर्ती हैं केवल राधा ही उनकी वशवर्तिनी नहीं। समस्त जगत को मोहने वाले कृष्ण हैं और उन्हें राधा ने मोह रखा है वे सर्वेश्वरी हैं।

[1] चतन्य चरितामृत, १।४।७५। [2] वही १।४।७३।

जगत मोहन कृष्ण-ताहार मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठाकुराणी॥[1]

कृष्ण ने स्वय स्वीकार किया है कि "मैं पूर्णानन्द, चिन्मय, पूर्ण तत्व हूँ (लेकिन) मुझे राधिका का प्रेम उन्मत्त करता है। न-जाने राधा के प्रेम में कितना बल है जो मुझे सदा विह्वल करता है।"

पूर्णानन्दमय आमि, चिन्मय पूर्णतत्व।
राधिकार प्रेमे आमाय कराय उन्मत्त॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल।
जे बले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥[2]

राधा-मूल कान्ता शक्ति—नारदपंचरात्र (६०, ६१, ६२ ६५) में महादेव की उक्ति है कि राधा मूल कान्ता शक्ति है। व्रज की गोपिकायें, द्वारका की राजमहिषियां, वैकुण्ठ की लक्ष्मी सभी उनकी अंश रूपा है। वे राधा की विलास मूर्तियाँ है। इस प्रकार से जैसे श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् है वैसे श्रीराधा स्वयं शक्ति रूपा मूल कान्ता शक्ति है। श्री राधिका, कृष्ण की षड्विध ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी है। वे समस्त सौन्दर्य-माधुर्य और कान्ति की मूल आधार हैं।[3]

राधा-लीलारस आस्वादन की आधार—श्री राधा में चरम प्रेम की अभिव्यक्ति है। हम यह देख चुके है कि मादन-महाभाव की अभिव्यक्ति उन्हीं में हुई है। वे श्रीकृष्ण को लीलारस-आस्वादन करा रही है। इसमें उनका आत्म सुख नहीं बल्कि प्राणप्रिय श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिये ही वे प्रेम क्रीडा में विभोर है। इसी लीला-रस के आस्वादन के लिये वे भिन्न स्वरूप में अनादिकाल से विराजमान है अन्यथा वे अभिन्न है। श्री राधापूर्ण शक्ति है और श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान।

राधा पूर्णशक्ति, कृष्ण पूर्णशक्तिमान।
दुइवस्तु भेद नाहि शास्त्र-प्रमाण॥
मृगमद, तार गन्ध—जैछे अविच्छेद।
अग्नि-ज्वालाते जैछे नाहि कभु भेद॥

---

[1] वही, १।४।८२।

[2] वही, १।४।१०६-८।

[3] चैतन्य चरितामृत, १।४।७८-७९।

राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइरूप ॥[1]

प्रेम का स्वरूप तथा राधा-कृष्ण की युगल उपासना—हम यह देख चुके हैं कि परम स्वतन्त्र पुरुष श्रीकृष्ण राधा के वशीभूत हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि मादन-महाभाव-स्वरूपा श्री राधा में प्रेम का चरम विकास है। और इसीलिए श्रीकृष्ण उनके सर्वाधिक वशीभूत हैं भक्त में जितना ही प्रेम का विकास होता है उतना ही अधिक कृष्ण उनके वश में होते हैं। जगत के समस्त सुख-दुःख मान-अपमान स्वजन-परिजन सबको तिलांजलि देकर राधा तथा अन्य गोपियाँ श्रीकृष्ण की सेवा में रत हैं, इसी लिये कृष्ण उनके चिर ऋणी हैं व उसका प्रतिदान असम्भव समझते हैं।[2] राधा के प्रेम से श्रीकृष्ण के माधुर्य का विकास होता है। जब महाभाव स्वरूप श्री राधा उनके साथ रहती हैं तब माधुर्य का इतना अधिक प्रकाश होता है कि उससे मदन तक मोहित हो जाता है।[3] इसलिये वैष्णव आचार्यों ने राधा-कृष्ण-तत्व को ही सब तत्वों का सार माना है और उनके लिये राधाकृष्ण की युगल उपासना ही परम साध्य है। राधा-कृष्ण के इस प्रेम में, जो महाभाव की दशा है शरीर और आत्मा की अभिन्नता का भान उत्पन्न होता है दोनों एक रूप हो जाते हैं। इस प्रेम की दशा में पुरुष-स्त्री के भेद का भान नहीं रह जाता।

चैतन्य सम्प्रदाय में श्री गौरांग (महाप्रभु चैतन्य)—

श्री गौरांग के रूप में राधा-कृष्ण का मिलन—चैतन्य चरितामृत (१।४। ४९,५०) में श्री गौरांग-तत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि राधा-कृष्ण एक ही आत्मा हैं लेकिन लीला रस के आस्वादन के लिये अनादि काल से दो पृथक स्वरूप धारण कर विलास कर रहे हैं। श्रीकृष्ण और श्री राधा के मेल से उत्पन्न रूप ही श्री गौरांग (महाप्रभु चैतन्य) का स्वरूप है। भाव का आस्वादन करने के लिए दोनों एक ही रूप में आविर्भूत हुए।

राधाकृष्ण एक आत्मा दुइदेह धरि। अन्योन्ये विलसे रस आस्वादन करि ॥
सेइ दुइ एक रूपे चैतन्य गोसाञि। भाव आस्वादिते दोंहे हैला एक ठाँइ ॥

---

[1] वही, १।४।८४-८५।
[2] वही २।८।७०-७१ तथा श्रीमद्भागवत, १०।३२।२२
[3] गोविन्दलीलामृत ८।९२

इस प्रकार से इस गौरांग स्वरूप में ही रसराज श्री कृष्ण महाभावमयी श्री राधा के साथ नित्य रमण करते हैं और अपने शरीर-मन को राधाभाव में ढालकर अपने माधुर्य रस का स्वयं ही आस्वादन करते हैं। श्री राधाभाव द्युति युक्त नन्दनन्दन श्री कृष्ण ही नवद्वीप के गौर हरि हैं। वे अन्त: कृष्ण और बहिर्गौर थे।[1] ब्रजलीला की अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये ही भगवान् श्री कृष्ण ने श्री गौराग रूप मे नवद्वीप लीला प्रकट की अथवा श्री राधा ने अपने प्राणप्रिय श्याम सुन्दर को अतृप्त देखकर ब्रजलीला के बाद इस वर्तमान कलि में उन्हें गौर सुन्दर रूप में मंडित कर दिया। नवद्वीप लीला को परिशिष्ट लीला भी कहा जाता है।

नवद्वीप लीला—नवद्वीप लीला के रहस्य का उद्घाटन बलराम दास की निम्नलिखित पंक्तियो से हो जाता है।

> कैछन तुया प्रेम, कैछन मधुरिमा कैछन सुखे तुहुं भोर।
> ए तिन वांछित धन, व्रजे नहिल पूरण, कि कहब ना पाइया ओर॥
> भावि या देखिनु मने, तोहारि स्वरूप बिने, ए सुख आस्वाद कभु नय।
> तुया भाव-कान्ति धरि, तुया प्रेम गुरु करि, नदीया ते करब उदय॥

ब्रजलीला में विभिन्न रस-वैचित्री का आस्वादन करने पर भी श्री कृष्ण की तीन वासनाएँ अपूर्ण रह गईं। प्रथम, राधा की प्रेम-महिमा कैसी है? द्वितीय राधा-भोग्य उनका स्वय का माधुर्य कैसा है? तथा तृतीय उस माधुर्य के आस्वादन से राधा को जो सुख मिलता है उसकी अनुभूति कैसी है? इसके बाद कृष्ण कहते है कि "मन में विचार कर देखा कि ये तीनों वासनाएँ बिना तुम्हारी (राधा) भावकान्ति ग्रहण किए पूर्ण नही हो सकतीं" और इसके लिये ही वे नदिया (नवद्वीप) में अवतरित होंगे। ब्रजलीला में उनका केवल "विषयत्व" ही प्रधान रहा।[2] मादनमहाभाव का आश्रय हुए बिना स्व-माधुर्य का आस्वादन संभव नहीं था इसलिये राधा-भावद्युति-सुवलित हो इसलिए श्री कृष्ण ने श्री गौराग का रूप ग्रहण किया। और इस प्रकार से नवद्वीप-लीला में ब्रजलीला की उनकी अपूर्ण वासना पूर्ण हुई।

गौर-लीला का उद्देश्य—गौर लीला के तीन प्रधान कारणो का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। इन प्रधान कारणो के अलावा कुछ गौण कारण भी

---

[1] तत्वसन्दर्भ, ६५।

[2] चैतन्य चरितामृत, १।४।११४

नवद्वीप-लीला के मूल में थे। और यह गौण कारण नाम और प्रेम का प्रचार था। जन-साधारण के लिये श्री गौरांग ने नाम-सकीर्तन का आदर्श रखा।[1] मायाबद्ध जीव के आधार के लिये 'प्रेम भक्ति' को उन्होंने सुलभ कराया।[2]

श्रीकृष्ण और गौरांग में अभिन्नत्व—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण और गौरांग अभिन्न हैं। ये दोनों एक ही अवतार के दो भाव हैं। व्रज लीला और नवद्वीप-लीला मूल में एक ही लीला प्रवाह है। व्रजलीला की अपूर्णता के ही कारण नवद्वीप लीला प्रकट हुई।

चैतन्य सम्प्रदाय में गोपी—

गोपी का स्वरूप—चैतन्य चरितामृत (२।८।१६९) में कहा गया है कि राधा का स्वरूप कृष्णप्रेम-कल्पलता है और सखियाँ उसके पत्र-पुष्प हैं। गोपियाँ, श्री राधा का कायव्यूहरूपा हैं। ह्लादिनी शक्ति ही असंख्य गोपियों के रूप में प्रकट होती है, क्योंकि अनेक स्त्रियों के बिना कान्ता रस वैचित्री का आस्वादन नहीं हो पाता।[3] खगेन्द्रनाथ मित्र ने गोपी शब्द की व्युत्पत्ति 'गुप' धातु से बतलाई है। उन्होंने बतलाया है कि गुप का अर्थ रक्षा करना है, अर्थात् गोपियाँ महाभाव की रक्षा करनेवाली स्त्रियाँ हैं।[4] गोपियाँ, राधा की प्राणप्रिय सखियाँ हैं जो परस्पर कुछ गोपन नहीं रखतीं। इनके द्वारा ही राधा-कृष्ण लीला की पुष्टि होती है।

> सखी बिनु एइ लीलार पुष्टि नाहि हय।
> सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय॥[5]

गोपी प्रेम—कृष्ण सदा ही गोपियों के एकमात्र इष्ट हैं। उन्हें सुख पहुँचाना ही उनका काम्य है। अपने सुख की उन्हें बिल्कुल परवा नहीं।[6] उनका बनाव शृंगार इसलिए है कि श्री कृष्ण को उनसे सुख मिलता है। गोपियों की कान्ता भावमयी लीला काम क्रीडा नहीं है। काम और प्रेम

---

[1] चैतन्य चरितामृत, १।३।१७

[2] वही, १।३।२०-२१

[3] वही १।४।६८-६९।

[4] वैष्णव रस साहित्य, पृ० १३-२२।

[5] चैतन्य चरितामृत २।८।१६४।

[6] वही, १।४।१४९।

मे अन्तर है। 'काम में सुख-वासना की गति 'स्व' की ओर होती है और प्रेम में 'पर' की ओर अर्थात् प्रीति के विषय की ओर। काम में निज इन्द्रिय-तृप्ति ही ध्येय रहता है लेकिन प्रेम, ह्लादिनी शक्ति की वृत्ति है इसलिये उसका ध्येय विषय पक्ष के प्रेम की ओर अर्थात् कृष्णेन्द्रिय तृप्ति की ओर रहता है।

> आत्मेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, तारे बलि 'काम'।
> कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा, धरे 'प्रेम' नाम।[1]

काम, माया-जनित वासना है, प्रेम मे माया का लेश भी नहीं। भक्त चाहता है भगवान् का सुख और भगवान् चाहते है भक्तों का सुख।[2] इस प्रकार की प्रीति में विषय (अर्थात पर) के सुख के लिये जो वासना है वही 'प्रेम' है। प्रेम और काम मे सूर्य और अन्धकार तथा सोने और लोहे जैसा अन्तर है।[3]

गोपी प्रेम की विशुद्धता—गोपी प्रेम विशुद्ध है। उनकी सेवा निष्काम है। उसमे स्वसुख की छाया तक नही है। उसका रूप निर्मल और विशुद्ध है। गोपियो का विशुद्ध प्रेम, स्वरूप शक्ति का स्वाभाविक धर्म है। इस प्रेम की विशुद्धता की अनुभूति भक्त उद्धव को हुई थी। इसीलिये गोपी-चरण-रज पाने की आशा में वे वृन्दावन की लतागुल्म होकर जन्म लेने की कामना करते है।[4] इसीलिए श्री शुकदेव ने रासलीला-वर्णन के अन्त में कहा है कि इस लीला का कीर्तन या श्रद्धापूर्वक श्रवण करने वाले को परा भक्ति की प्राप्ति होती है और हृदरोग काम विनष्ट होता है।[5]

गोपियो के प्रकार—गोपियो के दो प्रकार बताये गये है। नित्यसिद्धा और साधन सिद्धा। नित्यसिद्धा वे है जो अनादिकाल से कान्ता-भाव से व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की सेवा करती आ रही है। ये स्वरूपत ह्लादिनी शक्ति है। साधनसिद्धा वे है जिन्होने साधन द्वारा सिद्धि प्राप्त कर व्रज मे गोपीत्व लाभ किया है और नित्यसिद्ध-परिकरो के साथ श्रीकृष्ण की सेवा कर रही है। ये स्वरूपत जीवतत्व है। जीव, नित्यसिद्ध भी हो सकते है।

---

[1] चैतन्य चरितामृत, १।४।१४१।

[2] मद्भक्ताना विनोदार्थ करोमि विविधा क्रिया —पद्मपुराण।

[3] चैतन्य चरितामृत, १।४।१४७, १४०।

[4] श्री मद्भागवत, १०।४७।६१।

[5] वही, १०।३३।३९।

सेवा भेद से दो प्रकार की गोपियाँ—सेवा के प्रकार भेद से गोपियों के दो भाग किये जाते हैं सखी तथा मंजरी। सखी, वे हैं जो राधा के अनुरूप अंगदानादि द्वारा कृष्ण को प्रसन्न करती हैं जैसे ललिता विशाखा आदि। सखियाँ, नित्यसिद्धा स्वरूप शक्ति हैं। ये स्वातन्त्र्यमयी हैं। लीला विस्तार ही सखित्व का विशेष लक्षण है। मंजरी वे हैं जो शरीरदान द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा न करके राधागोविन्द के मिलन और सेवा आनुकूल्य ही अपना मुख्य कर्त्तव्य मानती हैं। रूपमंजरी अनंगमंजरी आदि इस कोटि में हैं। ये भी स्वरूप शक्तियाँ ही हैं। ये राधा की किंकरियाँ या अंतरंग सेवा की अधिकारिणी हैं। मंजरियों में भी नित्यसिद्ध जीव हैं। साधन सिद्धा सभी गोपियाँ, मंजरियाँ हैं। बस यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि श्री राधा ही ब्रज की मधुरा रति का मूल उत्स हैं तथा राधा के बिना कृष्ण को तृप्ति नहीं।

चैतन्य सम्प्रदाय में जीव—

जीव भगवान की शक्ति—श्री कृष्ण की जीव शक्ति से सब जीवों की उत्पत्ति हुई है। भगवान् के दो अंश हैं—स्वांश और विभिन्नांश,[1] लीलावतार-गुणावतारादि भगवान के स्वांश और जीव विभिन्नांश हैं। अखण्ड चैतन्य स्वरूप श्री कृष्ण से अनन्त परमाणु रूप जीव समूह प्रकट हुये जैसे अग्नि से स्फुलिंग कण निकलते हैं।[2] ईश्वर और जीव का संबंध उसी प्रकार का है जैसे सूर्य और उसकी किरणें। सूर्य का अंश होते हुये भी किरणें सूर्य मण्डल से बाहर ही रहती हैं। उसी प्रकार ईश्वर का अंश होते हुए भी जीव, ईश्वर के स्वरूप से बाहर रहता है। जीव कभी भी कृष्ण स्वरूप में तदाकार नहीं होता, मुक्तावस्था में भी नहीं।[3] इसीलिये जीव को विभिन्नांश विशेष रूप से भिन्न अंश कहा गया है।

ब्रह्म-जीव में भेदाभेद संबंध—ब्रह्म और जीव में नित्य-अभेद और नित्य भेद संबंध है। यह संबंध उसी प्रकार का है जैसे अग्नि और उष्णता तथा सूर्य और सूर्यालोक का संबंध है। ब्रह्म और जीव का अभेद उनके चिद्धर्म को लेकर है और भेद, उनके स्वरूप-स्वभाव को लेकर। स्वरूप में ब्रह्म और

---

[1] परमात्म संदर्भ, ४५ तथा चैतन्य चरितामृत, २।२२।८-७।

[2] चैतन्य चरितामृत १।७।१११।

[3] वेदान्त सूत्र २।२।३८।

जीव दोनो ही चिद् है। इसलिए दोनों अभेद है। लेकिन चिद् स्वरूप होने पर भी दोनो मे भेद इसलिये हो जाता है कि ब्रह्म विभु-चित् और जीव अणु-चित् है। ब्रह्म सर्वज्ञ, शक्तिमान, सृष्टिकर्ता, मायातीत, मायापति तथा परमानन्दघन विग्रह है और जीव अल्पज्ञ, नियन्त्रित, माया द्वारा प्रभावित सचालित, वद्ध और अशेष दुख का आकर है। ब्रह्म में ज्ञान, स्वप्रकाश, परप्रकाश आदि गुणो की पराकाष्ठा है वहा जीव में ये सभी गुण उसकी अत्यन्त अल्पशक्ति के कारण अणु रूप मे ही है। इसीलिये जीव का कर्तृत्व ईश्वर द्वारा प्रवर्तित है।

जीव-तटस्था शक्ति—जीव को तटस्था शक्ति इसलिये कहते है कि उसके एक ओर चिज्जगत है और दूसरी ओर माया रचित प्रपचमय संसार। चिच्छक्ति असीम है लेकिन माया शक्ति भी प्रवल है। जीव दोनो ओर जा सकता है। भगवदुन्मुख होने पर जीव भगवद्शक्ति में दृढ होता है और माया की ओर आकृष्ट होने पर उसी के जाल में जकड जाता है। इस प्रकार से वह तटस्थ स्वभाव का है। वैसे जीव चिद्-अंश है और उसमें माया का लेश भी नही है, लेकिन उसमे चिद्-शक्ति अत्यन्त दुर्वल है, इसीलिये वह माया से प्रभावित होता है।

जीव के प्रकार—जीव दो प्रकार के है (१) नित्य मुक्त जीव (२) वद्ध-जीव।[1] नित्यमुक्त चिज्जगत् मे विचरण करता है और वद्ध-जीव इस जड जगत् में आवद्ध है।

नित्यमुक्त जीव—नित्यमुक्त जीव अपने चिन्मय अणु-स्वरूप में रहता है। जड वस्तुओ से वह असम्पृक्त रहता है। ये नित्यमुक्त जीव, कृष्णचरण की ओर उन्मुख रहते हैं और श्रीकृष्ण की अन्तरगा स्वरूप-शक्ति के विलास की कृपा से चिरन्तन काल से नित्य भगवत्-परिकर-स्वरूप वने रहते है।[2] इन नित्य मुक्त जीवो के दो भेद है—ऐश्वर्यगत नित्यमुक्त और माधुर्यगत नित्यमुक्त। प्रथम परम व्योमपति के पार्षद है और दूसरे गोलोक—वृन्दावननाथ के पार्षद।

भगवत् कृपा से भक्ति-प्राप्ति—भगवत्-प्रीति वास्तव मे भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी-स्वरूप शक्ति की सर्वानन्दातिशायिनी वृत्ति है।[3] भगवान्

---

[1] चैतन्य चरितामृत, २।२२।८।

[2] वही, २।२२।९ तथा परमात्म सदर्भ, ४५।

[3] प्रीतिसदर्भ, ६५।

भक्त पर अनुग्रह कर इसे भक्त को दान करते हैं जिससे भक्त हृदय उद्भासित हो उठता है। यह प्रीति भक्त में भगवत्-सेवा की कामना जगाती है तथा भगवत् सेवा के उपयोगी बनाकर पार्षदत्व प्रदान करती है। नित्यमुक्त जीव इसे ही पाकर अनादि काल से पार्षद रूप से श्रीकृष्ण की सेवा करता आ रहा है। यह प्रीति भक्त तथा भगवान दोनों के लिए परमास्वाद्य है।

बद्ध जीव—बद्ध जीव भगवान को भूले हुये, कृष्ण बहिर्मुख हो चिरन्तन काल से मायाबद्ध हैं। भगवान् को भूलने का अर्थ अनादि काल से भगवत्-स्मृति का अभाव है। इसी कारण वे माया में जकड़े हुए संसार में निबद्ध अपने को अपने कर्मों का भोक्ता मानते हुए जन्म-मरण के चक्कर में पड़े हुए हैं। जब जीव कृष्ण दास्य विस्मृत होता है तब उसका संसारी जीवन आरम्भ होता है और उसमें राग-द्वेष, सुख-दुःख, मिथ्याभिमान का उदय होता है। बद्ध जीव दो प्रकार के होते हैं—उदित विवेक और अनुदित विवेक। उदित विवेक बद्ध जीव बद्ध मुक्त-जीव भी कहलाते हैं क्योंकि संसार में रहते हुये भी वे निर्लिप्त रहकर भगवद् आराधना में लीन रहते हैं और अपनी साधना के बल से मुक्त हो जाते हैं। साधना भेद से इनके तीन प्रकार हैं ऐश्वर्यगत माधुर्यगत और ब्रह्मज्योतिगत। ऐश्वर्य प्रिय साधक परव्योमनाथ के नित्य पार्षदों के साथ सालोक्य लाभ करते हैं और माधुर्यप्रिय साधक मोक्ष लाभ कर नित्यवृन्दावनादि धाम में सेवा-सुख भोग करते हैं। अभेद के सन्धान में लगे हुए साधक मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्म सायुज्य रूप में अपना अस्तित्व मिटा देते हैं। पशु-पक्षी आदि अनुदित विवेक बद्ध-जीव की श्रेणी में आते हैं जिनमें किसी प्रकार की परमार्थ चेष्टा नहीं रहती।

जीव की माया निवृत्ति के उपाय—हम यह देख चुके हैं कि भगवत्-विस्मृति ही बंधन का कारण है। क्योंकि जीव की मूल सत्ता चिन्मय है और माया उसमें आगन्तुक है स्वरूपगत नहीं। इस विस्मृति को दूर करने के लिये भक्ति-ग्रन्थों में बारबार कहा गया है—सर्वदा विष्णु का स्मरण करो कभी उनका विस्मरण न करना, जितने भी विधि निषेध के प्रकार हैं वे सभी इन्हीं दो विधि निषेधों के ही किंकर हैं।[१] लेकिन यह इतना सहज नहीं क्योंकि माया भी ईश्वर की ही शक्ति है अतएव अत्यन्त प्रबल है। उससे छुटकारा पाने के लिये भगवान् का शरणापन्न होने के सिवाय दूसरा कोई उपाय

---

[१] पद्मोत्तर खण्ड, ७२।१००।

से ही सुलभ हो सकती है। किसी प्रकार की चेष्टा या कौशल इस क्षेत्र में काम नहीं देते। भगवान् की शरणागति, सरल विश्वास, सच्ची लगन से सेवा अगर हो तो भगवान भक्त को अपनाकर ममतावश इसे भक्ति प्रदान करते हैं।

प्रेम पंचम पुरुषार्थ—गौड़ीय वैष्णवों ने श्रीकृष्ण भक्ति या प्रेम-सेवा को पंचम पुरुषार्थ माना है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में यह उत्तमा शुद्धा भक्ति के नाम से वर्णित है। उसका लक्षण इस प्रकार है 'श्रीकृष्ण की प्रीति के अनुकूल स्मरण कीर्तनादि द्वारा उनके नाम-गुण-लीलादि का अनुशीलन या भजन ही भक्ति कहलाती है। आनुकूल्यमय यह अनुशीलन अन्याभिलाषा-शून्य होने पर अर्थात् श्रीकृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के प्रति स्पृहाशून्य, साथ ही जीव-ब्रह्म का ऐक्य-विषयक शुष्क ज्ञान और सकाम कर्मादि द्वारा अनावृत, अविच्छिन्न रहने पर यह उत्तमा या शुद्धा भक्ति कहलाती है।'[1] गोपाल तापनी श्रुति में भी भगवान् के भजन को ही भक्ति कहा गया है।[2] श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ विमल भक्ति ही शुद्धा भक्ति है। शुद्ध भक्त स्वर्गादि सुख भोग, पंचविध मुक्ति तथा अणिमादि सिद्धि की स्पृहा नहीं करते। संसार से निर्लिप्त सर्वदा श्री कृष्ण की सेवा से जो प्रेमानन्द उन्हें होता है वे उसी में विभोर रहते हैं।

प्रेम का क्रमिक विकास—'भक्ति रसामृतसिन्धु' (१।४।११) तथा 'चैतन्य चरितामृत' (२।२३) में भगवत्प्रेम के विकास क्रम पर प्रकाश डाला गया है। इसमें सबसे पहले 'श्रद्धा' का नाम लिया गया है। यह श्रद्धा पूर्वजन्म की सुकृति के फल-स्वरूप शास्त्र-चर्चा श्रवण से उत्पन्न होती है। श्रद्धा जिनमें होती है उसे गुरु, शास्त्रवाक्य, तथा भगवत-लीलादि में दृढ़ तथा निश्चित विश्वास होता है। इस श्रद्धा के विना जप, तप सभी व्यर्थ है। श्रद्धा के विना भक्ति नहीं हो सकती। श्रद्धा, जीव को शान्तिमय आनन्द धाम की ओर ले जाती है।

साधुसंग और भजन—भक्ति-लाभ का मुख्य उपाय साधुसंग को कहा गया है। इस साधु-संग की बड़ी महिमा गाई गई है। चैतन्य चरितामृत (२।२२।३३) में कहा गया है

---

[1] भक्तिरसामृत सिन्धु, १।१।११ तथा चैतन्य चरितामृत, २।१९।१४८।

[2] पूर्वगोपाल तापनी, १५।

'साधुसग साधुसग' सवशास्त्रे कय । लव मात्र साधुसगे सवसिद्धि हय ॥

सभी शास्त्रो में भक्ति प्राप्ति का उपाय 'साधुसग' कहा गया है लेकिन क्षणभर के लिये भी साधुसग हो जाय तो सवसिद्धिहो जाती ह। श्रीमद्भागवत[1] में साधुसग के सबध में कहा गया ह कि 'श्रीकृष्ण-महिमा के जानकार सद्भक्तो का सग करने पर उनके मुखसे हृत्कण रसायन 'हरिगुणकीतन' श्रवण के प्रभाव से हृदय में श्रद्धा का उदय होता ह। साधु सग में रहने से भगवान् के नाम रूप-गुणलीलादि के कीतन के श्रवण का सुयोग प्राप्त होता है। और इस कीतन की महिमा इसी बात से समझी जा सकती है कि भगवान् ने स्वय कहा है ,

> नाह तिष्ठामि वकुण्ठे, योगिनां हृदये न च ।
> मदभक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद ॥

इस प्रकार से साधु का सगति और कीतन भजन करता हुआ भक्त, भक्ति की ओर अग्रसर होता ह।

निष्ठा, रुचि, आसक्ति, रति और प्रेम—भक्ति के विकास के लिये चित्त की स्थिरता आवश्यक है और चित्त की यह स्थिरता तभी आती ह जब भक्ति अग में निष्ठा' उत्पन्न होती ह। श्रद्धापूर्वक साधु-सग तथा श्रवण-कीतनादि करने से मनुष्य के अनथ दूर होते ह और वासनाओ से वह मुक्ति पाता है। इसी अवस्था में उसमें निष्ठा उत्पन्न होती ह। निष्ठापूवक भक्ति-अग का अनुष्ठान करते रहने पर भगवद्गुण-लीलादि के श्रवण और कीतन में 'रुचि' उत्पन्न होती ह। उनमें भक्त को अत्यन्त आनन्द आने लगता ह। रुचि के साथ श्रवण कीतनादि करते करते आसक्ति' उत्पन्न होती ह और तब उसे भक्ति-अगो के अनुष्ठान के बिना चन नही आता। इस आसक्ति की प्रगाढता से श्रीकृष्ण में 'रति' होती ह। कृष्णविषयक अभिलाषा द्वारा चित्त में स्निग्धता भरने वाला भक्ति विशेष ही 'रति या भाव' है। यह ह्लादिनी प्रधान शुद्ध सत्व की वृत्ति ह। यही प्रेम की पूर्णावस्था है। रति या भाव की घनीभूत अवस्था को 'प्रेम' कहते ह। प्रेम के उदय से कृष्ण अत्यन्त अपने हो जाते है और तब 'भगवान मेरे ह' की भावना उदय होती ह। यह भगवान् की कृपा से ही सभव हो पाता ह। इसमें भगवान् की माधुय-छटा ही विकीण होती रहता है, उनका ऐश्वय प्रधान स्वरूप ओझल हो जाता

[1] ३।२५।२४।

है। यहाँ यह याद रखना आवश्यक है कि कृष्ण प्रेम नित्य सिद्ध है, साध्य कभी नही।

नित्यसिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभुनय।[१]

भक्त का परम लक्ष्य प्रेम-सेवा द्वारा प्रेमास्पद का सुख-सम्पादन है।

भक्ति के तीन स्वरूप—ऊपर साधना का जो क्रम-विकास दिया गया है उसे ध्यान मे रखते हुये रूप गोस्वामी ने भक्ति के तीन स्वरूप बतलाए है—साधन-भक्ति, भाव-भक्ति, प्रेम-भक्ति।[२] इन्द्रिय द्वारा अनुष्ठित अर्थात् श्रवण-कीर्तन द्वारा भक्ति की जो साधना की जाती है वह साधन-भक्ति है।[३] साधना द्वारा जब चित्त विमल हो जाता है और चित्त परिशुद्ध हो जाता है तो उसमे पहले भाव-भक्ति और फिर प्रेम-भक्ति का उदय होता है। वास्तव मे भाव-भक्ति, प्रेम-भक्ति की पूर्वावस्था है। इस प्रकार से साधनावस्था की भक्ति साधन-भक्ति और सिद्धावस्था की भक्ति प्रेम-भक्ति है।

साधन-भक्ति के चौसठ अंग—महाप्रभु चैतन्य ने साधन-भक्ति के चौसठ अगो के अनुष्ठान का उपदेश दिया है। 'चैतन्य चरितामृत" मे "मध्यलीला" के बाईसवे अध्याय मे साधन-भक्ति के चौसठ अग वर्णित है। इन चौसठ अगों मे प्रथम दस अग गुरुपदाश्रय आदि ग्रहणात्मक और द्वितीय दस अंग सेवा-नामापराध आदि निषेधात्मक हैं। ये बीस अग भक्ति के द्वार कहे गये है। ये भक्ति की रक्षा करनेवाले और भक्ति की बाधाओ को दूर रखने के उपाय हैं। इनके बाद के चौवालीस अंग भक्ति की वृद्धि करने के साधन हैं। नवविधा भक्ति इन चौवालीस अगो का सार कही गई है। नवविधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन, परिचर्या, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन है। साधना के चौसठ अगो मे से साधु-सग, नामकीर्त्तन, भागवत-श्रवण, मथुरा-वास, और श्रद्धा के साथ श्री मूर्ति की सेवा विशेष रूप से महाप्रभु को मान्य है।[3] और साधन-अगो में उन्होने नाम-सकीर्तन को सर्वश्रेष्ठ माना है।[४]

साधन-भक्ति के प्रकार—साधन भक्ति दो प्रकार की है वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्र विधि को मान और शास्त्रशासन से भय करते हुए

---

[१] चैतन्य चरितामृत, २।२२।५३।
[२] भक्तिरसामृत सिन्धु, १।२।१।
[३] वही, १।२।२।
[४] चैतन्य चरितामृत, २।२२।७५   [२] वही, २।१५।१०८

चलती है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति नहीं होती। इसमें सेवक-सेव्य भाव की प्रधानता रहती है। माधुर्य ज्ञान की अपेक्षा भगवान का ऐश्वर्य-ज्ञान ही प्रमुख होता है। भगवान् को पाप-पुण्य का फलदाता मानकर भक्त उनकी उपासना की ओर उन्मुख होता है। अपने इस जन्म और परजन्म के दुःखों से छुटकारा पाना उसका काम्य होता है। इस प्रकार की भक्ति का आश्रय लेने वाले के लिए चैतन्य चरितामृत (२।८।१८२ तथा १।३।१३) में कहा गया है "विधिमार्गे ना पाइइ व्रजे कृष्णचन्द्र"। वैधी भक्ति में भगवान का ऐश्वर्य ज्ञान प्रधान होता है इसलिए भक्त को व्रजेन्द्र-नन्दन की सेवा नहीं प्राप्त होती। व्रजभाव में माधुर्य की प्रधानता है। वैधी भक्ति की साधना करने वाला भक्त सिद्धि अवस्था में शान्त भाव का भक्त माना जाता है। इस प्रकार के भक्तों को वैकुण्ठ, कैलासादि भगवद लोक प्राप्त होता है।[1] लेकिन वैधी भक्ति का अनुष्ठान करते ऐश्वर्य ज्ञान अगर अन्तर्हित हो जाय और शुद्ध भक्तिमय श्रीकृष्ण-सेवा का भाव हृदय में जगे तो समझना चाहिए कि भक्त के हृदय में रागानुगा भक्ति का उदय हुआ है।

रागात्मिका भक्ति—रागमयी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति है। इस भक्ति में राग ही प्रधान है। कृष्ण के दर्शन से नंद की आँखों में प्रेमाश्रु आ जाते हैं यशोदा एक क्षण भी कृष्ण को आँखों की ओट नहीं होने देना चाहती। प्रेमाविष्ट गोपियाँ कृष्ण को देख आत्मविभोर हो जाती हैं। यह सब रागमयी भक्ति है। व्रजवासियों का इस पर एकान्त अधिकार है। इस भक्ति में प्रेमास्पद श्रीकृष्ण को सुखी करना और उन्हें सुखी देख क्षण-क्षण आनन्द से भर उठना ही काम्य है। भक्त को अपने लिये कुछ भी नहीं चाहिए। कृष्ण-सेवा रत भक्त को नित नये आनन्द प्राप्त होते हैं। यह भक्ति श्रवण-कीर्तनादि द्वारा नहीं प्राप्त होती।

रागात्मिका भक्ति के दो प्रकार—रागात्मिका भक्ति दो प्रकार की है कामरूपा और सम्बन्धरूपा। सम्बन्ध रूपा भक्ति में भक्त श्रीकृष्ण के साथ एक संबंध स्थापित करता है। श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र-सखा का भाव संबंध रूपा है। 'मैं श्रीकृष्ण का पिता, माता या सखा हूँ' इस प्रकार का अभिमान ही सम्बन्धरूपा भक्ति है। कामरूपा भक्ति व्रजगोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम है। गोपियों का प्रेम अपने सुख के लिए नहीं है अतएव यह रागमय विशुद्ध प्रेम है। "काम" यहाँ इसी अर्थ में है। गोपियों का प्रेम निष्काम है जिसमें केवल प्रिय

[1] चैतन्य चरितामृत, १।२।१५

को सुख पहुँचाना ही एकमात्र काम्य है लेकिन यह प्रेम काम क्रीडा के अनुरूप है अतएव "काम" के नाम से अभिहित है। इसमें इन्द्रिय-सुख की इच्छा नही। इसमें प्राकृत काम की गन्ध तक नहीं है।

रागानुगा भक्ति :—व्रजवासी भक्तो की प्रेम-भाव के अनुकरण में की गई आराधना, रागानुगा भक्ति कहलाती है। इस भक्ति में भक्त के हृदय में व्रजवासियों के स्वातन्त्र्यमयी रागात्मिका भक्ति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम या लोभ उत्पन्न होता है और उनका वह अनुसरण करता है। लेकिन रागात्मिका भक्ति का अधिकार केवल व्रजवासियों जैसे नन्द, यशोदा, गोपियाँ, राधा, सुबल आदि को है क्योंकि ब्रज का यह परिकर ब्रज श्रीकृष्ण की स्वरूप-शक्ति है। जिन साधनो से ये श्रीकृष्ण की सेवा करते है वह जीव के लिए संभव नही क्योंकि वह स्वरूप शक्ति नही है। जीव, स्वरूपतः श्रीकृष्ण का दास है।[1] अतएव रागानुगा भक्ति, रागात्मिका भक्ति का अनुकरण मात्र है।[2] इसमें कृष्ण की सेवा के अतिरिक्त अन्य कामना नही रहती।

रागानुगा भक्ति रागात्मिका का साधन :—रागानुगा भक्ति, रागात्मिका भक्ति का साधन है। रागानुगा भक्ति ही परिपक्व अवस्था में रागात्मिका भक्ति कहलाती है। रागात्मिका भक्ति के विषय व्रजविहारी श्रीकृष्ण है और आश्रय व्रजवासी भक्त है। रागानुगा भक्ति के विषय गुरुरूप मे व्रजवासी भक्त है और आश्रय उनके अनुगत रागानुगा भक्त है। लेकिन रागानुगा भक्ति परिपुष्ट होकर रागात्मिका में पर्यवसित होती है और रागात्मिका भक्ति के विषयाश्रय रूप में आत्म प्रकाश करती है।

रागानुगा भक्ति के भेद उपभेद :—रागानुगा भक्ति के भी दो भेद हैं, सम्बन्धानुगा और कामानुगा। कामानुगा भक्ति के भी दो भेद है, सम्भोगेच्छामयी और तद्भावेच्छामयी। जो द्वारका की राजमहिषियो के भावानुगत है उनकी भक्ति सम्भोगेच्छामयी है और जो लोक-वेदादि धर्म परित्याग करने वाली, निष्काम प्रेममयी गोपियों का अनुसरण करते है उनकी भक्ति तद्भावेच्छामयी है। सम्भोगेच्छामयी भक्ति में स्व-सुख की इच्छा, महिम-ज्ञान, लोकधर्म की अपेक्षा आदि भक्ति-अवरोधक भाव है। दूसरी में समस्त लौकिक, पारलौकिक सुखो के त्याग की भावना है।

---

[1] "कृष्णेर नित्यदास जीव"—चैतन्य चरितामृत, २।२२।१७।
"जीवेर स्वरूप हय—कृष्णेर नित्यदास", वही, २।२०।१०१।

[2] भक्तिरसामृतसिन्धु, १।२।२७०।

रागानुगा के साधन दो प्रकार —रागानुगा के साधन दो प्रकार के हैं बाह्य या देह साधन तथा अन्तर या मानसिक साधन। बाह्य या देह-साधन में नव विधा भक्ति (या चौंसठ प्रकार की साधना भक्ति) का आश्रय लेते हैं और अन्तर या मानसिक साधन में अपने भावानुकूल व्रज-परिकर की सेवा का चिन्तन करना ही मानसिक सेवा है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे यशोदा के वात्सल्य प्रेम का ध्यान कर वात्सल्य रस का आस्वादन संभव है उसी प्रकार राधा-कृष्ण की प्रेमलीला की कल्पना से ध्यान में श्री राधा कृष्ण के मिलन और सेवा-परिचर्या के भाव से श्रीकृष्णलीला की रस माधुरी का पूर्ण आस्वादन किया जा सकता है। राग मार्ग में लीला-स्मरण ही मुख्य साधनांग है यह बाह्य साधन श्रवण-कीर्तनादि से परिपुष्ट होता है। साधना की पूर्ण परिणति में लीला-स्मरण ही मुख्य रूप से अनुष्ठित होता है।

मधुर भाव की सेवा श्रेष्ठतम —रागमार्ग की उपासना मधुर भाव की ही उपासना है। मधुर भाव ही सर्वोत्तम भाव है और व्रज गोपियाँ इसकी आदर्श स्वरूपा हैं। गोपीभाव से लीला-स्मरण के अतिरिक्त युगलकिशोर की निकुंज सेवा की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्री राधा-कृष्ण की प्रेम-सेवा प्राप्ति ही जीव का साध्य और उनका मधुर लीला-स्मरण ही साधन है। दास्य सख्य वात्सल्य और मधुर भावों में मधुर भाव की सेवा और उपासना को ही गौडीय वैष्णवों ने साध्य शिरोमणि माना है। इसका कारण यह है कि दास्य की अपेक्षा सख्य, सख्य की अपेक्षा वात्सल्य और वात्सल्य की अपेक्षा मधुर में घनिष्ठाधिक्य और स्वादाधिक्य होता है।

वैधी और रागानुगा में अंतर —वैधी और रागानुगा में जहाँ तक बाह्य अनुष्ठानों का प्रश्न है कोई अंतर नहीं। दोनों में ही श्रवण-कीर्तनादि की उपयोगिता स्वीकार की गई है। अगर अंतर है तो केवल साधक के भाव में। विधि-मार्ग का भक्त एकादशी व्रत करता है नरक-गति की मुक्ति के लिये और रागमार्ग का भक्त एकादशी व्रत करता है क्योंकि उससे श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। दोनों ही एकादशी व्रत करते हैं पर दोनों के भाव में अंतर है। कहा गया है कि जबतक भक्त रागमयी भक्ति का प्रकृत अधिकारी नहीं हो जाता तबतक उसे वैधी भक्ति का अनुष्ठान करते रहना चाहिये।

साधन भक्ति का सार कृष्ण स्मृति—साधन भक्ति में बहुत से विधि निषेधों का अनुष्ठान है लेकिन सब विधियों का सार श्रीकृष्ण का स्मरण[1] है। सब

---

[1] भक्तिरसामृतसिंधु १।२।८।

समय कृष्ण का स्मरण, उनकी स्मृति को हृदय मे जगाये रखना, यही भजन का मूल रहस्य है। सर्वदा उनके स्मरण से साधक की समस्त वृत्तिया भगवान् को ही समर्पित हो जाती है। श्रीकृष्ण-स्मृति ही साधन भक्ति का प्राण है।

भाव-भक्ति—साधन-भक्ति ही क्रमश. निष्ठा, रुचि लाभ करते हुये परिपक्व दशा में भगवत्-कृपा से भाव या रति की अवस्था मे पहुँचती है। साधन-भक्ति की यह उत्कर्ष-अवस्था भाव-भक्ति कहलाती है।

भाव-भक्ति का स्वरूप—ऊषाकाल मे अरुणोदय के समय प्रथम रश्मि की अल्पस्फुरित आभा के समान भाव ही प्रेम का प्रथम प्रकाश है। धीरे-धीरे भाव ही प्रेम में परिणत होता है। भगवत्-प्राप्ति, आनुकूल्य और सौहार्द्याभिलाप द्वारा चित्त की आर्द्रता या स्निग्धता सपादन ही भाव भक्ति है।[1]

भगवत्-कृपा से भाव-उत्पत्ति—भावोत्पत्ति के कारण-रूप साधन के विना ही सहसा जिस भाव का उदय होता है उसे कृष्ण या तद्भक्त का प्रसाद-जनित भाव कहते है। थोड़े से साधन के बाद भी यदि भावोद्गम होता है तो उसे भी कृपाजनित ही मानना होगा। कृष्ण-प्रसाद से भाव तीन प्रकार के माने गये है: वाचिक, दर्शनदानज और हार्द।[2]

भाव के पांच प्रकार—भक्तो के भेद से भाव के पांच प्रकार कहे गये है: शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कान्ता। भक्त जब "भावावलम्बन" द्वारा वैधी मार्ग का अनुसरण करता है तब क्रमश उसके हृदय मे अनुभूति जगती है कि भगवान् प्रकृत ही मेरे प्रभु, सखा, पुत्र अथवा प्रियतम है। इसके बाद उसके भावानुसार भगवान् उसके भाव के विषय बन जाते है। इस अवस्था में भगवान् उसके और वह भगवान् का प्रिय बन बैठता है। और अन्त में अपने सभी विहिताविहित कर्म, ज्ञान आदि विषयो को तिलाजलि देकर भगवान् के श्री चरणो में अनन्य निष्ठा से आत्मसमर्पण को ही भगवान्-प्राप्ति का एकमात्र उपाय समझता है और क्रमश प्रेम भक्ति का अधिकारी होता है।

राग मार्ग का भक्त—रागमार्ग का भक्त भगवान् के माधुर्य-सागर मे निमग्न रहकर प्रेमरसास्वादन करता रहता है। इस सुख की तुलना में वह मोक्ष को तृणवत् समझता है उसका मन पल भर के लिये भी विषयातर नही होता।

---

[1] भक्तिरसामृत सिन्धु, १।३।२।
[2] वही, १।३।१६।

प्रेम भक्ति का स्वरूप—भगवत्-कृपा से प्रेम भक्ति का उदय होता है इस विशुद्ध भक्ति को पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं। भक्तिरसामृत सिंधु में भक्ति की जो व्याख्या है वह इस प्रकार है, 'जिस भावभक्ति की प्रथम दशा से ही हृदय अत्यन्त आर्द्र और स्निग्ध हो जाता है, परमानन्द की प्राप्ति होती है और श्रीकृष्ण में गाढ स्नेह उत्पन्न होता है—इसी भाव को पंडित प्रेम कहते हैं"।[1] चैतन्य चरितामृत (२।१९।१५१) में कहा गया है कि साधन भक्ति से रति का उदय होता है और रति की प्रगाढावस्था ही प्रेम है। नारद पाञ्चरात्र में भी यही कहा गया है कि 'जिस भावभक्ति में देह-गेह आदि अन्य विषयों की ममता-परित्याग से केवल श्री विष्णु विषय में ममता प्रयुक्त होती है उसे भीष्म प्रह्लाद, उद्धव, नारद आदि भक्त प्रवर प्रेम कहते है।

प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव—प्रेम भक्ति का चरम लक्ष्य परम आकांक्षा "श्रीकृष्ण प्रेम-सम्पादन" है। अपनी प्रगाढता के क्रमानुसार यह भिन्न भिन्न नाम ग्रहण करता है। इक्षुरस के समान प्रेम भी क्रमशः गाढ होते हुये उत्तरोत्तर स्नेह मान, प्रणय, राग अनुराग, भाव और अन्त में महाभाव में परिणत होकर चरम उत्कर्ष प्राप्त करता है।[2]

स्नेह और उसके प्रकार—प्रेम की क्रमिक गाढ़ता की प्रथम अवस्था 'स्नेह' है। 'चित्त की द्रवीभूतता' ही स्नेह का लक्षण है। जब चित्त स्नेह से द्रवीभूत होता है तब दर्शन श्रवण या स्मरण से आँसू निकलने लगते हैं। तब प्रिय के दर्शन से तृप्ति नहीं होती पलभर का विरह भी असह्य हो उठता है। घृत स्नेह और मधुस्नेह ये दो स्नेह के भेद हैं। 'तुम मेरे हो' इस प्रकार का मदीयतामय स्नेह मधु स्नेह है जैसे राधा का स्नेह। 'मैं तुम्हारी हूँ' इस प्रकार का तदीयतामय स्नेह घृतस्नेह है जैसे चन्द्रावली का स्नेह। मधुस्नेह का माधुर्य स्व प्रकाशित है और घृतस्नेह भावनान्तर के संयोग से प्रकाशित है। तदीयतामय घृतस्नेह में सम्भ्रम या गौरव ज्ञान रहता है।

मान और उसका स्वरूप—प्रेम की गाढतर अवस्था 'मान' है। इसमें प्रेम की गति वक्रता का भाव लिए हुए रहती है। इस अवस्था की विशेषता हृदगत भाव-संगोपन है। इसके द्वारा अभिनव रस माधुर्य का आस्वादन होता है। कारण-अकारण ही मान का उदय होता है। मान की दशा में बाह्य उदासीनता

[1] भक्तिरसामृत, १।४।४१।

[2] चैतन्यचरितामृत २।१९।१५२ १५३ तथा उज्ज्वल-नीलमणि १४।५९ ६१।

रहती है लेकिन हृदय में अनुराग तिल भर भी कम नहीं होता। मान जब गौरव रहित होकर विश्राम्भ भाव धारण करता है तब प्रिय के साथ अभिन्नता स्थापित होती है, यह प्रणयावस्था का परिचायक है।

मान और प्रणय का संबंध—साधारणतः स्नेह से मान उत्पन्न होता है और वह मान ही प्रणय में परिणत हो जाता है। और फिर स्नेह से प्रणय और प्रणय से मान की परिणति होती है। इस प्रकार मान और प्रणय में कार्य-कारण संबंध है। श्रीकृष्ण में गौरव ज्ञान न रहने पर विश्रम्भात्मक प्रणय ही राधिका आदि गोपिकाओं के मान का आधार है। राधा के मान में संकोच या गौरव बुद्धि का लेश भी नहीं रहता। मानिनी राधा के चरण छूकर भी कृष्ण उनका मान-भंजन नहीं कर पाते हैं। श्रीकृष्ण-सुख-वासना से ही राधा के प्रणय-रोष या मान की उत्पत्ति होती है। जिस पर पूर्ण अधिकार है, जो बिल्कुल अपना है उसीसे मान किया जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति राधा का प्रगाढ़ प्रणय मान के रूप में यदाकदा झलक जाता है।

प्रणय की परिणति राग में—प्रणय की घनीभूत अवस्था "राग" है। इसमें दर्शन, मिलन की तीव्र आकांक्षा रहती है। मनके भीतर प्रबल तृष्णा उत्पन्न होती है। मिलन के लिये कष्ट सहना परम-सुख मालूम होता है और वियोगावस्था का परम-सुख भी दुःखप्रद प्रतीत होता है।

अनुराग का स्वरूप—राग की प्रगाढ़ अवस्था का नाम अनुराग है। इस अवस्था में प्रिय का निरंतर दर्शन भी नित्य-नूतन प्रतीत होता रहता है। तृष्णा के आधिक्य से वह प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति ही मालूम होता है।

भाव और महाभाव—अनुराग जब उत्कर्ष को प्राप्त होता है और आस्वाद्य बन जाता है तब वह भाव कहलाता है। इसके बाद प्रेम का चरम उत्कर्ष महाभाव है। इस महाभाव की एकमात्र अधिकारिणी व्रज-वनितायें हैं, द्वारका की राजमहिषियां नहीं। रूप गोस्वामी ने भाव और महाभाव को एकार्थ माना है लेकिन कृष्णदास कविराज ने इन्हें दो स्वतंत्र स्तर माना है। रूप गोस्वामी ने मान की प्रथमावस्था को रूढ़ भाव और परावस्था रूप अधिरूढ़ भाव को महाभाव कहा है। रूढ़ और अधिरूढ़ भाव-रूप महाभाव केवल मधुरा रति में ही प्रकाशित होता है।

भक्तों के प्रेम की श्रेणियाँ—शान्तरति और कुब्जादि की साधारणी रति, प्रेम तक, दास्य रति, राग तक; सख्य रति, अनुराग की पूर्ण सीमा तक; वात्सल्य रति और महिषियों की समंजसारति, अनुराग की शेष सीमा तक

विकासशील है। सुबलादि प्रिय-नर्म-सखाओं की सख्यरति और ऐश्वर्य श्रेष्ठा रुक्मिणी तथा सौभाग्य-अधिका सत्यभामादि प्रिय महिषियों की रति भाव की प्रथमावस्था से रूढ भाव तक और व्रजगोपियों की समर्था रति अधिरूढ भाव रूप महाभाव तक विकसित है।

महाभाव के दो प्रकार—महाभाव के दो प्रकार है मादन और मोदन। मादन महाभाव प्रेम की चरम उत्कर्षावस्था है। श्री राधिका के लिये कृष्ण को सुख पहुँचाने के सिवाय अन्य कोई आकांक्षा नहीं। कृष्ण के सुख के अतिरिक्त वे न तो कुछ जानती हैं और न कुछ चाहती हैं। मादन महाभाव श्री राधा में ही चरम तक पहुँचा हुआ है अतएव उन्हीं में कृष्ण प्रेम का चरमतम विकास है। श्री राधिका में ही वैकुंठ की लक्ष्मी, द्वारका की महिषियों तथा व्रज गोपियों का विस्तार हुआ।

चरम साध्य-महाभाव—गोपिकानिष्ठ समर्थारति प्रौढ़ महाभाव दशा को प्राप्त होने पर प्रेमभक्ति रूप में कीर्तित होती है। उज्ज्वल नीलमणि (१४।५७) में कहा गया है कि यही रति प्रौढ़ होने पर महाभाव दशा को प्राप्त होती है। वह मुक्त पुरुषों और श्रेष्ठ भक्तों की भी अभिलाषा की वस्तु है। इस महाभाव दशा में भक्त चिद्घनानंद भगवान के अनन्त नित्य लीला-समुद्र में निमग्न रहता है। यही गौडीय वैष्णव साधना का चरम प्राप्तव्य है।

गौडीय वैष्णव धर्म की विशेषताएँ—गौडीय वैष्णव धर्म की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जिनसे वह अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से भिन्न हो जाता है। पहले के धर्माचार्यों ने भगवान् के ऐश्वर्य रूप को ही प्रमुखता दी है और उन्हें कठोर दण्ड विधायक कहा है। भगवान का यह गरिमामय रूप भक्त के हृदय में त्रास भरने वाला था। महाप्रभु चैतन्य ने भगवान् के माधुर्य-रूप को ही सामने रखा। उन्होंने कहा कि भगवान् श्री कृष्ण अनन्त ऐश्वर्य के अधिपति तो हैं पर उनका ऐश्वर्य असमोर्ध्व माधुर्य के अधीन है। उस ऐश्वर्य की प्रत्येक कणिकायें अणु-परमाणु माधुर्य मंडित है अतः उसमें सर्वथा नहीं त्रास नहीं। भगवान् का स्मरण हृदय से सभी पापों को दूर कर उसे विशुद्ध बना देता है और फिर विमल चित्त में अपने आप कृष्ण प्रेम का आविर्भाव होता है और जीव कृष्ण-सेवा जनित परम आनंद का अधिकारी हो जाता है। अतएव न जीव के लिये भय का कोई कारण रह जाता है और न भगवान् के लिये किसी दंड विधान का।

गौडीय वैष्णव धर्म में भगवान् के इस माधुर्य का सुन्दर विवेचन है। श्री कृष्ण मे माधुर्य का ऐसा आकर्षण था जिससे पूर्ण काम स्वय भगवान् के हृदय में स्व-माधुर्य आस्वादन की लालसा जगी और वे गौराग महाप्रभु के रूप मे नवद्वीप मे अवतरित हुये। इसकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है। भगवान् भी जीवो के निस्तार[1] के लिये उतना ही सचेष्ट है जितना भक्त उन्हें पाने के लिये।

गौडीय वैष्णव धर्म मे उदारता है। इस संप्रदाय ने अन्य साधना मार्गों की अवहेलना नही की है लेकिन भक्ति को ही प्रधानता दी है[2]। उन्होंने विभिन्न सप्रदायो मे समन्वय-स्थापना की चेष्टा की है। गौड़ीय वैष्णवो की साधना जातिवर्ण निर्विशेष है। इनके मतानुसार भक्ति-प्रवण चाण्डाल हरिभक्तिविहीन ब्राह्मण से कही श्रेष्ठ है—

नीच जाति नहे कृष्ण-भजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य।
जेइ भजे सेइ बड़, अभक्त हीन छार।
कृष्ण-भजने नाहि जाति-कुलादि विचार॥[3]

नीच जाति का होने से ही कोई कृष्ण-भजन के अयोग्य नही हो जाता और न अच्छे कुल का ब्राह्मण होने से ही भजन के योग्य समझा जा सकता है। जो भजता है वही बडा है। कृष्ण-भजन मे जाति-कुल का विचार नही।

गौड़ीय वैष्णव साधना सार्वजनीन है। वह सबके लिये सहज और सुलभ है। सासारिक विषय-वासना भक्ति-अगो के अनुष्ठान से अपने आप ही दूर हो जाती है और कृष्ण-प्रेम का आविर्भाव होता है। अतएव इस सप्रदाय वाले किसी भी प्रकार का प्रयत्न या बलपूर्वक त्याग करने की आवश्यकता नही मानते।

साधनागो मे नाम-सकीर्तन को ही श्रेष्ठ माना गया है और यह सहज-साध्य अग है। नाम-कीर्तन के लिये कुछ भी नियम-पालन के विधि-विधान नही, किसी भी स्थान मे, किसी भी समय, कोई भी व्यक्ति हरि-नाम कीर्तन

---

१ चैतन्य चरितामृत, ३।२।५।

२ वही, २।२२।१४-१६।

३ वही ६२-६३।

का अधिकार प्राप्त कर सकता है। चतन्य चरितामृत (३।२०।१४) में कहा गया है

खाइते शुइते जया नाम लय। काल-देश नियम नाहि, सर्वसिद्धि हय॥

अन्य वैष्णव-सम्प्रदायों की नाइ गौडीय वष्णव सम्प्रदाय में भी अष्ट कालीन लीला-स्मरण की बात कही गई है लेकिन उसमें माधुय का ही प्राधान्य है। महाप्रभु चैतन्य ने जीव में भगवान सबधी मदीयतामय भाव का स्फुरण किया। 'मैं भगवान का हूँ' इस प्रकार के तदीयतामय भाव की अपेक्षा 'भगवान् मेरे हैं' जैसे मदीयतामय भाव ही गौडीय वष्णव धम का प्राण है। मदीयतामय भाव द्वारा भगवान् में अत्यधिक ममत्व तथा एकत्व सबध की प्रतिपादना होती है। इस भाव में अत्यधिक अपनत्व है।

नौवां अध्याय

बंगाल का ब्रजबुलि साहित्य

(१६वीं–१९वीं शताब्दी के प्रमुख पद-रचयिता)

ब्रजबुलि की दीर्घकालीन परंपरा—

पिछले अध्याय में ब्रजबुलि साहित्य के पीठिका स्वरूप गौडीय–वैष्णव दर्शन का पूर्ण और विशद विवेचन किया जा चुका है। अब उस दर्शन के पोषक बंगाल के ब्रजबुलि-साहित्य का यहां कुछ विस्तार से विचार किया जाएगा। वस्तुतः बंगीय वैष्णव पदावली में ही ब्रजबुलि को सबसे अधिक प्रसिद्धि और स्थायित्व मिला। १६वी-१९वीं सन् ईसवी के बीच ही बंगाल में ब्रजबुलि की बेल सघन रूप में फली-फूली। उसके बाद २०वीं शताब्दी में वह क्षीणकाया होकर विकासशील बंगाल साहित्य के अन्तराल में छिप गई। यदाकदा बंगला साहित्य के अग्रदूत बंकिम चन्द्र, माइकेल मधुसूदन, और रवींद्रनाथ के नाटकों तथा काव्यों में ब्रजबुलि साहित्य के शक्तिहीन अस्तित्व का परिचय मिलता रहा पर वह नगण्य ही है। ब्रजबुलि अपने माधुर्य गुणमयता और धर्माश्रयता के कारण बंगाल साहित्य के इतिहास में अमिट छाप छोड़ गई।

ब्रजबुलि और ब्रजभाषा—

'ब्रजबुलि' नाम के होने तथा ब्रजभाषा के शब्द रूपों को ग्रहण करने पर भी यह भाषा उत्तर प्रदेश के भाषा भाषियों के लिए अपरिचित-सी ही बनी रही। जिस समय पूर्वी भारत के प्रदेशों में ब्रजबुलि विकसित हो रही थी, उस समय उत्तर प्रदेश में समसामयिक रूप से ब्रजभाषा शक्ति सम्पन्न हो रही थी। वल्लभ-सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभीय सम्प्रदाय तथा सखी सम्प्रदाय भुक्त ब्रजभाषा के विभिन्न सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा ब्रजभाषा साहित्य की समृद्धि व सम्पन्नता की चर्चा की जा चुकी है। अतः जब ब्रजभाषा का भण्डार राधाकृष्ण की मधुर लीलाओं से ही स्वतः पूर्ण ऐश्वर्यशाली था, ऐसी दशा में सुदूर प्रान्तीय भाषाओं की ओर उसका ध्यान न जाना स्वाभाविक ही था। पर अप्रत्यक्ष रूप से समसामयिक वैष्णव दर्शन तथा साहित्य ने सिद्धान्त, भाव और भाषा में एक दूसरे को प्रभावित अवश्य किया।

इस अध्याय में बंगीय ब्रजबुलि-साहित्य के प्रमुख पद रचयिताओं और उनके गिने चुने सुन्दर पदों की चर्चा की जाएगी।

यशोराज खान जीवन-वृत्त—

गौड दरबार के सुल्तान हुसेन शाह (१४०३ १५१० सन् ईसवी) के कर्मचारी यशोराज खान ने एक कृष्ण-मंगल काव्य की रचना की थी, जिस काव्य की हस्तलिखित प्रति अब उपलब्ध नहीं है। रामगोपालदास की 'रसकल्प वल्ली'[1] से ज्ञात होता है कि यशोराज खान श्रीखण्ड के निवासी और वैद्य थे। "राजखान' गौड दरबार के किन्हीं कर्मचारियों के उपाधि रूप में ही मिलता है। श्रीखण्ड के बहुत से वैद्य गौड-दरबार में विशेष सम्मानित थे। रघुनन्दन के पिता मुकुन्द दास जो नरहरि सरकार के बडे भाई और श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे, हुसेन शाह के अंतरंग' अर्थात खास चिकित्सक थे। मुकुन्द दास के पिता नारायण दास भी राजवैद्य थे। गोविन्द दास कविराज के मातामह 'महाकवि' दामोदर भी श्रीखण्ड के निवासी थे। वंशावली में यशोराज खान और दामोदर के नाम का जिस रूप में उल्लेख हुआ है उससे दोनों व्यक्ति एक ही प्रतीत होते हैं।[2]

यशोराज खान का एक खंडित पद—

पीताम्बर दास की 'रस मंजरी' (अन्तिम १७ वीं शताब्दी) में यशोराज खान रचित एक खण्डित पद (पयार छन्द में) की चार पंक्तियां उद्धृत हुई हैं —

> शुनि वेणु अपरुप ध्वनि
> छुटल कुंजरगति बरज रमनी।
> पदे हार परे केह करेते नूपुर
> केहू आध सीमन्ते लेइ न सिन्दूर।

यद्यपि यह पद असम्पूर्ण ही मिला है फिर भी रास के अवसर पर मुरली की अपूर्व ध्वनि द्वारा आमन्त्रित की गयी सम्मोहित गोपियों का विक्षिप्त दशा वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है।

रस मंजरी' में यशोराज खान का और एक सम्पूर्ण पद भी उद्धृत है।

---

[1] जसराखा आर श्रीकविरजन (कलकत्ता विश्वविद्यालय हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ४०५१।२५ ख)

[2] श्री सुकुमार सेन बांगला साहित्येर इतिहास' पृ २०४।

एक और पद—

कोई दूती कृष्ण के दर्शनार्थ राधिका की चेष्टाओ का वर्णन श्रीकृष्ण से कर रही है—

अथ राग

एक पयोधर चन्दन-लेपित आरे सहजइ गोर ।
हिमधराधर कनक भूधर कोरे मिलल जोर ॥
माधव तुआ दरशन-काजे
आध पदचारि करत सुन्दरी बाहिर देहली-माझे ॥
दाहिन लोचन काजरे रंजित धवल रहल वाम ।
नीलधवल कमल जुगले चाद पूजल काम ॥
श्रीयुत् हुसन जगत भूषण साह् ए रस-जान ।
पंच गौड़ेश्वर भोग पुरन्दर भने यशराज-खान ॥

उपरोक्त उपमा निस्सन्देह बहुत सुन्दर है—चन्द्रमुखी (चाद) ने नीले और श्वेत वर्ण के (एक नेत्र काजल रंजित होने के कारण श्यामवर्ण तथा दूसरा विना काजल के होने से श्वेत है) कमलो से कामदेव की पूजा की है। व्यजना है कि मिलनातुर राधा को इस समय कामदेव की ही कृपादृष्टि की कामना है।

ब्रजबुलि पद का प्राचीनतम उदाहरण—

यह बगाल में प्राप्त ब्रजबुलि के पद का प्राचीनतम उदाहरण है। अब तक विद्वान मण्डली रामानन्द राय के प्रसिद्ध ब्रजबुलि पद 'पहिलहि राग नयन भग भेल . ...' को ब्रजबुलि का प्राचीनतम पद मानते आए हैं। पर इस तथ्य के विरुद्ध दो वाते हैं—पहली तो यह कि राय रामानन्द उड़ीसा निवासी थे अत इस ब्रजबुलि पद की रचना उडीसा में हुई होगी। इसलिए यह पद उडीसा के ब्रजबुलि पदो में प्राचीनतम हुआ। दूसरी वात यशोराज खान का काव्य हुसेन शाह के राज्यकाल (१४९३-१५१९ सन् ईसवी) में रचा गया अतएव यशोराज खान की रचना १५वी सन् ईसवी के अन्तिम दिनो की है और राय रामानन्द का ब्रजबुलि का पद १६वी सन् ईसवी के आरम्भ में रचा गया ऐसा विद्वानो का अनुमान है।[1] ऐसी दशा मे भी यशोराज खान की ही रचना कुछ प्राचीन हुई।

---

[1] श्री सुकुमार सेन : 'हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर', पृ. २३।

रामानन्द राय जीवन वृत्त—

रामानन्द राय या राय रामानन्द उडीसा के गजपति राजा प्रताप रुद्र (शासन काल १५०४–१५३२ सन् ईसवी) के अधीन गोदावरी-तीर पर बसे हुए विद्या-नगर के स्थानीय शासक थे। रामानन्द के पिता भवानन्द और चारों भाई वाणीनाथ गोपीनाथ कलानिधि तथा सुधानिधि आदि सभी राजा प्रताप रुद्र के अमात्य और कर्मचारी थे।[1]

चैतन्यदेव के साथ साक्षात्कार—

महाप्रभु चैतन्यदेव के दक्षिणात्य जाते समय गोदावरी तीर पर राय रामानन्द के साथ उनकी पहली भेंट हुई। प्रथम दर्शन से ही दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। 'चैतन्य चरितामृत' के मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद में यह घटना विस्तार से वर्णित है। दोनों में धर्म-संबंधी वाद विवाद प्रारम्भ हुआ। महाप्रभु ने प्रश्न किया— वैष्णव धर्म का प्रधान लक्ष्य तथा आदर्श क्या है'? रामानन्द ने स्पष्ट तथा उपयुक्त उत्तर दिया। श्री चैतन्यदेव एक के बाद दूसरा प्रश्न करते गए और उन्हें उचित उत्तर मिलता गया। पर उन सच्चे प्रेमी जिज्ञासु भक्त के मन में तृप्ति कहाँ, वह तो प्रेमभक्ति तत्व की अन्तिम बात सुनना चाहते थे। जिसकी प्रथम दो पंक्तियाँ सुनते ही भाव विह्वलता से महाप्रभु ने रामानन्द का मुँह अपने हाथों से ढाक लिया। वह अपूर्व पद निम्नोद्धृत है—

चैतन्य को सुनाया जाने वाला पद—

पहिलहि राग नयन भंग भेल।
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल॥
ना सो रमण, ना हम रमणी।
दुहु मन मनोभव पेशल जानि॥
ए सखि ए सब प्रेम कहानी।
कानु ठामे कहबि, बिछुरल जानि॥
ना खोंजलु दूती ना खोंजलु आन।
दुहु केहि मिलने मधत पंचबान॥
अबसो विराग तुहु भेल दूती।
सुपुरुख प्रेमक एछन रीति॥

---

[1] पद कल्पतरु (पंचम खण्ड), पृ २०३।

वर्द्धन रुद्र-नराधिप-मान ।
रामानन्द-राय कवि भान ॥[1]

यह श्रीराधा का मथुरा के राजसिंहासन पर आसीन श्रीकृष्ण के लिए दूती को दिया गया सन्देश जान पड़ता है। प्रथम प्रेम निरन्तर बढ़ता हुआ उस भाव दशा तक पहुंच चुका था जब कि मैं (रमणी) और तुम (रमण) की बोध-वृत्ति भी लुप्त हो गई थी। ऐसी थी वह अभेदत्व की स्थिति जहां मिलन के लिए किसी भी प्रकार के वाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं थी। पर आज स्थानगत दूरी से तुमने मनोगत दूरी बना ली है जिससे यह बोध पुनः उदित हुआ है कि तुम और मैं पृथक हैं, हम दोनों के बीच वियोग-सागर की उत्ताल तरंगें लहरा रही हैं। इसलिए अब तुम्हारे और मेरे में मिलन कराने के लिए दूती की आवश्यकता आ पड़ी है।

अब तक की प्राप्त प्रमाण सामग्री के आधार पर प्राचीनता की दृष्टि से यशोराज खान के बाद ब्रजबुलि साहित्य के इतिहास में इस पद का स्थान है, परन्तु प्रेम व्यंजना के अद्भुत चमत्कार के कारण साहित्यिक दृष्टि से इस पद का स्थान अवश्य ही प्रथम है।

युगल स्वरूप संबंधी पद--

'पदकल्पतरु' में युगल स्वरूप की वन्दना विषयक इस पद में 'राम राय' की छाप मिलती है —

---

[1] पदकल्पतरु, ५७६, चैतन्य चरितामृत, २।८।१५२।

तुलनीय है अमरुक का यह श्लोक--

तथा ह्यभदस्माक प्रथममविभिन्ना तनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥

कविकर्णपुर के 'श्री चैतन्यचन्द्रोदय नाटक' में भी इसी भाव की व्यंजना मिलती है—

अहं कान्ता कान्तस्त्वमिति न तदानीं मतिरभूत
मनोवृत्तिर्लुप्ता त्वमहमिति नो धीरपि हता।
भवान् भर्त्ता भार्याहमिति यदिदानीं व्यवसिति
स्तथाप्यस्मिन् प्राण स्फुरति ननुचित्रं किमपरम् ॥७।१६-१७।

ए दुहु मगल आरति कीज ।
मगल नयने निरखि मुख लीज ।।
मगल-आरति मगल-थाल ।
मगल राधा मदन गोपाल ।।
श्याम गौरि दुहु मगल राशि ।
मगल-जोति मगल परकाशि ।।
मगल-गाजहि मगल निसान ।
सहचरिगण करु मगल गान ।।
मगल-चामर मगल उद्गार ।
मगल-शबदे करये जयकार ।।
मगल-मुखे मेहु काहु वाखान ।
कह रामराय तहि भगवान ।।[1]

ब्रजभाषा का प्रभाव—

इस पद पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव है बहुत से ब्रजभाषा के शब्दरूपा का प्रयोग हुआ है। रामानन्द राय रचित सस्कृत के 'जगन्नाथ वल्लभ नाटक' या 'रामानन्द सगीत नाटक' के बहुत स गीतों में 'राम राय' की सक्षिप्त छाप है, इसी के आधार पर श्री सुकुमार सेन महाशय ने इसे आलोच्य कवि रामानन्द राय का ही पद अनुमान किया है।[2]

परन्तु इसे स्वीकार करने में दो मुख्य बाधाए हैं—सबसे पहिली बात कवि रामानन्द राय बहुत उच्च कोटि के कवि और दार्शनिक थे। इनके 'जगन्नाथ वल्लभ' नाटक में भी सस्कृत काव्य रचना की दक्षता और असाधारण कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। पर उपरोद्धत पद में भाव कवित्व किसी भी दृष्टि से विशेषता नहीं यह एक अति साधारण कोटि का पद है, इसलिए इस एक दार्शनिक प्रौढ कवि का कृति मान लेना उस कवि के साथ बहुत बडा अन्याय करना है। दूसरी बात इस पद पर ब्रजभाषा का इतना स्पष्ट प्रभाव भी सन्देह का कारण है क्योंकि ब्रजभाषा के प्रभाव का कोई सन्तोष-जनक उत्तर नहीं मिलता।

---

[1] २८४४।

[2] श्री सुकुमार सेन हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर', पृ० २८।

राम राय कौन ?—

इन सब कारणों से यह अनुमान होता है कि राम राय कोई व्रजबुलि का अप्रसिद्ध कवि रहा होगा और व्रजवास या अन्य किसी कारण से व्रजभाषा का इतना स्पष्ट प्रभाव उस पर है, अथवा राम राय व्रजभाषा का ही कोई अप्रसिद्ध कवि रहा हो और बंगीय वैष्णव पदावली में पद संगृहीत होने के कारण एक दो व्रजबुलि शब्दों का प्रक्षेप उसमें हो गया है। द्वितीय अनुमान ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है क्योंकि पद में 'मदन गोपाल' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। गौड़ीय वैष्णवों के उपास्यदेव 'मदन मोहन गोपीनाथ, श्रीगोविन्द' है, 'मदन गोपाल' नहीं, इससे अनुमान होता है कि व्रजभाषा का कवि 'राम राय' वल्लभ सम्प्रदायी रहा हो।

चैतन्य देव के स्नेहाधीन—

चैतन्यदेव से मिलने के बाद रामानन्दराय का भविष्य जीवन निश्चित हो गया। महाप्रभु के अन्तलीला के सुदीर्घ २४ वर्ष में अधिकांश समय रामानन्द राय ने महाप्रभु के वासस्थल नीलाचल में बिताया। श्रीचैतन्यदेव का रामानन्द राय पर अत्यधिक स्नेह था और अपने स्नेहातिशयता को एक बार उन्होंने इन शब्दों के द्वारा प्रगट भी किया था—

'रामानन्द सह मोर देह-भेद मात्र।'[1]

वासुदेव घोष : जीवन वृत्त—

वासुदेव और उनके दोनों भाई गोविन्द और माधव का जन्म बुड़ना या बुरगी सिलहट में हुआ, बहुत संभव है यहाँ इन लोगों का ननिहाल था। इनके पिता कुमारहट्ट में बसे थे परन्तु तीनों भाई नवद्वीप में आकर बसे। ये तीनों ही श्रीचैतन्य के सहचर तथा अनुगामी थे। सभी सुमधुर गायक तथा काव्य-कलाविद् थे। नवद्वीप में गौरांग संगठित कीर्तन संकीर्तन दल के तीनों ही प्रधान गायक थे; कदाचित् कीर्तनगान से ही वे नवद्वीप में आकर बस गए हों। 'चैतन्य-भागवत' तथा 'चैतन्य चरितामृत' में इन तीनों भाइयों का बहुत बार उल्लेख आया है, इनमें से पदकर्ता की दृष्टि से वासुदेव ही अधिक प्रसिद्ध है।

---

[1] श्री चैतन्य चरितामृत, १।१०।१३२।

रचनाए—

वासुदव घाप के ९५ पद पदकल्पतरु' में सगहीत है इनमें से ब्रजबुलि के १२ ही पद ह । अभी तक श्रीचैतय के दूसरे किसी अनुगामी के इतने पद नही मिल ह । अय दोनों भाइया क १३ से अधिक सख्या में पद नहा मिले हैं । वासुदेव के सभी पद गौराग विषयक ह । इनके गौराग विषयक पदा का ऐतिहासिक दृष्टि स भी बहुत मूल्य ह क्योंकि महाप्रभु की लाला का उन्होने प्रत्यक्ष देख कर वणन किया ह । तभी ता देवकीनन्दन दास ने 'वैष्णव व दना' में वासुदेव की स्तुति इस प्रकार की—

श्रीवासुदेव घोष वन्दिब सावधाने ।
गौर गुण बिना जेइ अय नाहि जाने ॥

(सावधान होकर श्री वासुदेव घाप की वन्दना करूँगा जिन्हाने गौर गुण बिना अन्य कुछ न जाना) ।

नागरी भाव के पद—

इससे जान पडता है कि वासुदेव घोष ने गौराग लीला के अतिरिक्त अय किसी विषय का वणन ही नही किया । चतय देव के जीवन का वणन श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाओ के अनुकरण पर ही किया । नवद्वीप-लालाआ में ब्रजगापिया का अभाव था अत नरहरि सरकार के अनुकरण द्वारा वासुदव ने अपने का तथा अन्याय गौर भक्तो का नदीया-नागरी कल्पना करक नागरी भाव' क पदा की एक स्वतत्र धारा चलाई । श्रीकृष्ण की गोपिकाओं क साथ की गई दान-लाला नौका-लाला के समान अय लीलाआ की भी उन्हाने उदभावना की । नागरी भाव क पद का उदाहरण —

निरमल गोरा-तनु कषिल काचन जनु ।
हेरइते म गेलू भोर ।
माग भुजगमे दशल मझु मन ।
अन्तर कापइ मोर ॥
सजनि, जब हाम पेखलू गौरा ।
आकुल दिग विदिग ना पाइए
मदन लालसे मन भोरा ॥
अरुणित-नयने तरछ अवलोकने ।
बरिखे कुसुमशार साधे ॥

जीवइते जीवने येह नाहि पायन्नूं ।
डुवन्नूं गंगा अगाधे ॥
मंत्र महौषधि तुहुं जानसि जदि ।
मनु लागि करवि उपाय ।
वासुदेव-घोष कहे शुन-शुन ए सखि
गोरा लागि प्राण मोर जाए ॥[1]

इस नागरी भाव की उपासना में मनोवैज्ञानिक तथ्य है, बराबर से नारी-जाति कोमलता, आत्म-समर्पण और प्रेम-तन्मयता की जीती-जागती आदर्श स्वरूपा मानी गई है। अतएव नारी प्रेम को आदर्श मान कर उसी भाव से प्रेमी भक्तगण अपने इष्टदेव की उपासना में दत्तचित्त रहते हैं।

गौरांग विषयक पदों का वैशिष्ट्य—

वासुदेव घोष के गौरांग विषयक पदों में वर्णन की जो वास्तविकता और आवेगों की अकृत्रिमता है उसी के कारण वे इतने मर्मस्पर्शी हुए हैं। इस विषय में कृष्णदास कविराज की उक्ति अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है—

वासुदेव गीते करे प्रभुर वर्णने ।
काष्ठ-पाषाण द्रवे जाहार श्रवणे ॥[2]

वासुदेव घोष के वात्सल्य रस विषयक बंगला के पदों में चैतन्य देव के बाल्यकाल का सजीव और सुन्दर चित्रण मिलता है।

रामानन्द वसु : जीवन वृत्त—

ये वर्द्धमान जिले के मेमारी स्टेशन के निकटवर्ती कुलीनग्राम के प्रसिद्ध मालाधर वसु (गुणराज खान) के वंशधर और महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। इनके पितामह मालाधर वसु ने 'श्रीकृष्ण विजय' ग्रंथ की रचना द्वारा गौड़ बादशाह से 'गुणराज खान' की उपाधि पाई थी। 'श्रीकृष्णविजय' महाप्रभु का अन्यतम प्रिय पाठ्य ग्रंथ था। गुणराज के पूर्व बड़ु चण्डीदास के अतिरिक्त अभी तक दूसरे किसी बँगला वैष्णव काव्य की उपलब्धि नहीं हुई है। जनसाधारण के मतानुसार 'सत्यराज' रामानन्द के पिता थे परन्तु

---

[1] पदकल्पतरु, २८।
[2] चैतन्य चरितामृत, १।११।१६

चैतन्य चरितामृत[1] के वंशावली वर्णनानुसार रामानन्द वसु और सत्यराज एक ही व्यक्ति थे। बहुत सम्भव है कि अपने पितामह के समान ही रामानन्द को भी सत्यराज खान की उपाधि प्राप्त हुई हो। इनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता परन्तु अनुमान होता है कि वे महाप्रभु के ही समसामयिक थे।

पद—

रामानन्द वसु रचित कुछ बंगला तथा ब्रजबुलि के पद विभिन्न वैष्णव पद-संग्रहों में संकलित हैं जिन पदों द्वारा इनकी रचना नैपुण्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ब्रजबुलि का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

मलयज मिलित जमुना जल शीतल
वंशीवट निरमाण।
निकटहि नीप-कदम्ब तरु कुसुमित
कोकिल भ्रमर करु गान॥
तार तले तिरिभंग तरुणतमाल-तनु
वामे रसवती राइ॥
एक नव जलधर कोरे बिजुरी थिर
काचन रतन मिलाइ॥
दुहुँ तनु एकमन निविड आलिंगन
दुहुँ जन एकइ पराण॥
वसु रामानन्द भनें तुलना ना हय मने
रूपेर निछनि पाँचबाण॥[2]

कवि ने केवल संयोगस्थित युगल स्वरूप का सुन्दर और उपयुक्त उपमाओं द्वारा वर्णन ही नहीं किया लेकिन चित्र को और भी सजीव करके पाठक के

---

[1] कुलीन ग्रामवासी सत्यराज रामानन्द।
यदुनाथ पुरुषोत्तम शंकर विद्यानन्द॥
वाणीनाथ वसु आदि जत ग्रामी जन।
सभइ श्रीचैतन्य भृत्य चैतन्य प्राणधन॥
चैतन्य चरितामृत, १।१०।७८-७९।

[2] पदकल्पतरु ६५२।

सम्मुख उपस्थित करने के लिए पृष्ठ भूमि का भी सजीव और सुन्दर चित्रण किया है; इससे कवि का वर्णन चातुर्य प्रकट होता है।

रचनायें—

वात्सल्य रस के पदो में भी रामानन्द वसु का रचना वैशिष्ट्य झलकता है।

चैतन्य देव के प्रधान अनुगामियो में होने के कारण उन्होंने गौराग विषयक कुछ पदो की भी रचना की है, उन पदो की सरलता तथा सुबोधता के गुण को देखने पर अनुमान होता है कि ये कवि के आरम्भिक जीवन की रचनाएँ होगी। कुछ पद केवल 'रामानन्द' की छाप से विभिन्न पदावलीसमूहों में सगृहीत है, वे अधिकाश श्रीगौराग विषयक है। भाव भाषा की दृष्टि से जाच करने पर वे रामानन्द वसु कृत ही प्रतीत होते है।

वृन्दावन दास : जीवन वृत्त –

श्री चैतन्यदेव के प्रधान अनुगामी श्रीवास पण्डित की भतीजी नारायणी के पुत्र हैं। इनके जन्म के विषय में किवदन्ती प्रचलित है कि नित्यानन्द प्रभु के आशीर्वाद से महाप्रभु द्वारा चबाए गए पान को प्रसादी रूप से ग्रहण करने से विधवा नारायणी को व्यास तुल्य पुत्र-प्राप्ति हुई। किवदन्ती में कितना सत्याश है कहा नही जा सकता पर पिता के मृत्यु के बाद ही इनका जन्म हुआ होगा, इससे ऐसा अनुमान होता है। इनके जन्मकाल के विषय मे भी बहुत मतभेद है। अधिकाश १५१०-१५२० सन् ईसवी के बीच इनका जन्म समय मानते हैं। बहुत बचपन से ही ये नित्यानन्द महाप्रभु के अनुगामी हो गए थे। नवद्वीपलीला प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ था, जिसके लिए इनके मन मे अत्यन्त पछतावा था।[1] नित्यानन्द प्रभु के तिरोधान के पश्चात् ये वर्द्धमान जिले के देनुड ग्राम मे आकर बस गए। वृन्दावन दास खेतरी महोत्सव में उपस्थित थे ऐसा 'भक्ति-रत्नाकर' में उल्लेख मिलता है। अनुमानिक अन्तिम १६ वी शताब्दी के लगभग इनका परलोक गमन हुआ।

रचनाएँ—

वृन्दावन रचित 'चैतन्य-भागवत' बगला चैतन्यचरित-काव्यो मे प्राचीनतम है। ये चैतन्यलीला के व्यासदेव रूप से प्रसिद्ध है। कृष्णदास कविराज

---

[1] 'हइल पापिष्ट जन्म एखन ना हइल,
हेन महामहोत्सव देखिते ना पाइल।'

गोस्वामी रचित 'चतन्य चरितामृत' और अन्य कुछ वैष्णव ग्रन्थो में 'चतन्य भागवत' का चतन्य मगल' नाम से उल्लेख मिलता ह। कहा जाता है कि वन्दावन दास की माता नारायणी ने अपने पुत्र तथा लोचन दास के ग्रन्थ का नाम एक ही होने क कारण 'चतन्य मगल' नाम बदलवाकर चतन्य भागवत' रखवाया, इस बात के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता। इस सम्बन्ध में 'प्रेमविलास' का कहना है कि 'चतन्य भागवत' का नाम 'चतन्य मगल' था और वृन्दावन के महन्तों ने भागवत नाम दिया, यही बात अधिक युक्तिसगत प्रतीत होती ह।

वन्दावन दास ने 'चतन्य भागवत' में बारबार उल्लेख किया है कि नित्यानन्द प्रभु क उत्साह से ही व श्री चतन्य जीवनी रचने में प्रवत्त हुए। 'चतन्य भागवत' का रचनाकाल अनिश्चित है। फिर भी ग्रन्थ के वणना से ऐसा अनुमान होता है कि सनातन रूप उस समय जीवित थे। वन्दावन दास में निस्सन्देह एक उच्चकोटि के कवि की प्रतिभा थी। वन्दावन दास ब्रजबुलि के श्रेष्ठ कवियो में स थे। इनकी ब्रजबुलि की कविताएँ विभिन्न सग्रह ग्रन्थो में सकलित हैं। उन सग्रहो में वन्दावन दास रचित बगला पदो में भी ब्रजबुलि के ही शब्दरूप भर पडे हैं। 'चैतन्य भागवत' में भी स्थान-स्थान पर ब्रजबुलि के शब्द रूपो का यहा तक कि सम्पूर्ण ब्रजबुलि की पक्तियो का भी प्रयोग मिलता है।

पद—

वृन्दावनदास की ब्रजबुलि रचना के उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद उद्धत किया गया। सखी नायक का पक्ष लेती हुई अत्यधिक मान की हुई नायिका का तिरस्कार कर रही है—

कछे चरणे कर – पल्लव ठेलति
मोललि मान भुजगे।
कवले कवले जीउ जरि जब जायव
तबहि देखव इह रगे॥
मागो किए इह जिद्द अपार।
को अछु धीर धीर महायल
पागरि उतारव पार॥
श्यामर झामर मलिन नलिन मुखर
झरमर नयनक नीर।

रचयिता माधव आचार्य की प्रतिभा अन्य माधवो की तुलना में सर्वोपरि थी अतएव वैष्णव पद सग्रह ग्रन्थो में भाव तथा भाषा की दृष्टि से उच्चकोटि के पदो को हम माधवदास या माधव आचार्य रचित माने तो अनुचित न होगा।

पद—

निम्नोद्धृत व्रजवुलि का पद कवि के कलात्मक माधुर्य और छन्द सौंदर्य का यथार्थ परिचय देगा।

कवि राधा के अपूर्व रूप का वर्णन कर रहा है—

शारद शशधर किए मुख शोभा।
कुंकुम काचन विजुरी गोरोचन—
चम्पक वरण हरण मन लोभा॥
देख देख राधा रूप अपारा।
मदन मोहन चाहिते अनुखन
लावणि प्रेम-अमिआरस धारा॥
शिर पर कुसुम खचित वर वेणी।
लम्बित हृदि पर मोति माल वर
सुमेरु भेदिआ जनु वहत त्रिवेणी॥
कनक करभकर भुजवर साजे।
केशरिखिनकटि मणि किंकिणी तटो
गति गजराज मनोहर राजे॥
थल पंकज पद शोभा।
नरवरमुकुरमणि-मंजीर रण रणि
माधव नयन भ्रमर चित क्षोभा॥[1]

पुरुषोत्तम दास : जीवन वृत्त और रचनाएँ—

पुरुषोत्तम दास कुमारहट्ट के रहने वाले सदाशिव कविराज के पुत्र थे। ये जाति के वैद्य थे। पिता पुत्र दोनो ही नित्यानन्द प्रभु के परम भक्त और अनुगामी थे।[2] 'वैष्णवन्दना' रचयिता देवकीनन्दन पुरुषोत्तमदास के ही

---

[1] पदकल्पतरु, २४६१।

[2] श्री सदाशिव कविराज वड महाशय।
श्रीपुरुषोत्तम दास ताहार तनय॥
आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।
निरन्तर वाल्यलीला कर कृष्ण सने॥ —चैतन्यचरितामृत, १।११।३५.

शिष्य थे। विभिन्न पद संग्रह ग्रंथों में पुरुषोत्तम की छाप के पद आलोच्य कवि की ही रचना अनुमित होती है।[1] इन्होंने बंगला तथा ब्रजबुलि दोनों में ही रचना की है। आश्चर्य है कि उपरोक्त पदों में एक भी पद श्रीचैतन्य विषयक नहीं सभी श्रीकृष्ण के मथुरा-सम्बन्धी पद हैं। कवि की ब्रजबुलि रचनाओं में मौलिकता है। रचना की विशेषता निम्नोद्धृत पदों में देखने को मिलेगी।

पद—

कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात विरह-मग्न ब्रज का कितना हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है—

गोकुल छाड़ि जबहु तुहु आएलि
तब विहि प्रतिकूल भेल।
बरजवासि किए थावर जंगम
विरह दहने दहि गेल।
तुआ प्रिय जतहु सुभिकुल आकुल
तण-कवल करि मुखे।
हेरि मथुरापुर लोचन झर झर
पानि ना पीवत दूखे॥
कोकिल भ्रमर सारी शुकवर
रोयत तरु पर बैठि।
तोहारि मयूर मृगीकुल लुठए
शकति नाहि बने पैठि॥
तरुकुल पल्लव सबहुं शुखायल
तेजल कुसुम विकाशे।
एतहु विपदे तोहें कतए निवंदव
कुलि पुरुषोत्तम दासे॥[1]

कृष्ण विरह की दुःखातिशयता में जब ब्रज की सभी वस्तुओं (स्थावर अथवा जंगम) पर जैसे पाला पड़ गया है तब पुत्र-विरहातुरा विक्षिप्त माता यशोदा की दशा कितनी मार्मिक होगी—

गोकुल नगरे भ्रमए जनु बाउरि
उदसल कुन्तल-भार।

[1] पदकल्पतरु १७५४।

काँहा मझु प्राण-तनय व्रज-नन्दन
कहइते बहे जलधार ।
माधव सो जननी नन्दरानी ।
तुआ विरहानले उमति पागलि जनु
काहारे कि पुछए बाणी ॥
अब काहे वेणु-शबद नाहि शुनिए
कौन कानन-माहा गेल ।
बुझि बलराम संगे नाहि गेयल
को परमाद आजु भेल ॥
ऐछे विलाप शुनइ पुर सहचरि
रोइ आवत तछु पाश ।
बहु परबोध-बचने गृहे आनत
कह पुरुषोत्तम दास ॥[1]

पदो मे मर्मस्पर्शी व्यजना है, वर्णन की सजीवता है, साथ ही कवि प्रतिभा की मौलिकता है ।

ज्ञानदास : जीवन वृत्त—

ज्ञानदास वर्द्धमान जिले से उत्तर की ओर काँदड़ा गाव के रहने वाले थे । इन्होंने १५३० सन् ईसवी मे ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया । कहा जाता है कि काँदड़ा में ज्ञानदास का एक मठ अब भी सुरक्षित है जहा पौष-पूर्णिमा के दिन प्रतिवर्ष वैष्णवो का महोत्सव और तीन दिन के लिए मेला लगता है । नित्यानन्द प्रभु की पत्नी जाह्नवीदेवी से ज्ञानदास ने दीक्षा ली इसी कारण ये नित्यानन्द प्रभु के शाखाभुक्त माने जाते है । खेतरी के उत्सव में ये उपस्थित थे अतएव गोविन्ददास, बलरामदास के समकालीन हुए ।

काव्य का वैशिष्ट्य—

ज्ञानदास बगला तथा व्रजबुलि साहित्य के श्रेष्ठ कवियो मे से हैं । बगला की अपेक्षा इनके व्रजबुलि पद अधिक है । रसानुभूति की तीव्रता और भावो की अकृत्रिम सरलता के कारण व्रजबुलि-साहित्य में ज्ञानदास के पदो का गोविन्ददास के पदो के बाद ही स्थान हैं । 'रूपानुराग', 'रसोद्गार' और

---

[1] पदकल्पतरु, १७५६ ।

माथुर विषयक पदो में ज्ञानदास की कवि प्रतिभा पूर्ण रूप से निखर आई है। ये पद भाव तथा रचना शैली में चण्डीदास के पदानुकरण-से प्रतीत होते है। इसी कारण परवर्ती युग के कीर्तन-गायकों तथा लिपिकारों के इच्छाकृत प्रयास अथवा अनिच्छाकृत असमर्थता के कारण ज्ञानदास के उत्कृष्ट बगला पद चण्डीदास की रचनाओं में प्रक्षिप्त कर दिए गए है।

ज्ञानदास की ब्रजबुलि रचनाओं की उत्कृष्टता के नमूने के लिए यहा दो चार पद उद्धत किए गए।

मुग्धावस्था का प्रेम—

मुग्धावस्थाजन्य अत्यधिक लज्जा के कारण राधा ने श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग को सखियो से छिपा रखा था पर उनकी चेष्टाओं से वह गुप्त प्रेम सखियों पर प्रकट हो जाता है जिससे सखियाँ राधा को छेड़ती है—

लहु लहु मुचकि हासि चलि आवोलि
पुन पुन हेरसि फरि।
जनु रतिपति सये मिलन रग भूमे
ऐछन कएल पुछेरि॥
धनि हे बुझलू ए सब बात।
एतदिन तुहुक मनोरथ पूरल
भेटलि कानुक साथ॥
जब तोहे सखीगण निरजने पूछल
तब तुहु झापलि काए।
अब विहि सो सब वेकत कयल सखि
कइछन गोपवि ताए॥
चोरिक वचन कहत सब गुरुजन
सो सब पाएलू सखि।
दशदिन दुरजन एकदिन सुजनक
आजु देखलु परतखि॥
हाम सब निजजन कहसि रातिदिन
सो सब बुझलु आज काजे।
ज्ञानदास कह सखि गुहु विरमह
राइ पाएल बहु लाजे॥[1]

[1] पदकल्पतरु २३०।

सखियो के महज छेड़छाड मे कवि का वर्णन चातुर्य प्रकट होता है।

रूपानुराग—

राधा कृष्ण के प्रथम दर्शनमात्र मे उनके प्रेम में डूब जाती हैं। कृष्ण के मन मोहक रूप-दर्शन मे उनकी क्या अवस्था हो जाती है इसी का वर्णन सखी से कर रही हैं—

रूप देखि आंखि नाहि नेउटइ
मन अनुगत निज लाभे।
अपरशे देइ परश-सुख-सम्पद
श्यामर सहज स्वभावे॥
सखि हे मुरति पिरिति-सुखदाता।
प्रति-अंग अखिल–अनंग-सुख-सायर
नायर निरमिल धाता॥
लीला लावनि अवनि अलंकरू
कि मधुर मंथर गमने।
लहु–अवलोकने कत कुल गामिनी
शूतल मनसिज शयने॥
अलखिते हृदयक अन्तर अपहरू
बिछुरन ना हय सपने।
ज्ञानदास कहे तब कैछन हए
तनु तनु जब हव मिलने[1]॥

यह पद राधा के 'रूपानुराग' का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है।

राधा का मान—

राधा कृष्ण से मान किए बैठी हैं। क्रोधावेश में वे कृष्ण को कपटी, छली आदि बहुत कुछ अपशब्द कह डालती है। सखी उन्हें सब प्रकार से समझाने का प्रयत्न करती है पर वे एक नही सुनती—

पहिलहि चांद करे दिल आनि।
झापल शैल शिखरे एकपाणि॥
अब विपरीत भेल सो सब काल।
बासि कुसुमे किए गांथइ माल॥

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली, १३५।

ना बोलह सजनि ना बोलह आन।
की फल आछए भेटब कान॥
अन्तर बाहिर सम नह रीत।
पानि तल नह गाढ़ पिरीत॥
हिया सम कुलिश बचन मधुधार।
विष घट उपरे दुध उपहार॥
चातुरि बेचह गाहक-ठाम।
गोपत प्रेम-सुख रह परिणाम॥
तुहु किए शठि निकपटे कह मोए।
ज्ञानदास कह समुचित होय[1]॥

मानिनी का मान बहुत सुन्दर रूप में व्यक्त किया है।

चैतन्य सम्बन्धी पद—

चैतन्यदेव पर रचे गए पद का एक उदाहरण —

हेम-बरण बर-सुदर विग्रह
सुर-तरु-बर-परकाश।
पुलक पत्र-नव प्रेम पक्व-फल
कुसुम मन्द-मदु-हास॥
नाचत गौर मनोहर अदभुत।
राजित सुरधुनि धार।
त्रि-जगत-लोक ओक भरि पाओल
भकति रतन-मणिहार॥
भाव विभवमय रसरूप अनुभव
सुवलित सुखमय अग।
द्विरद-मत्त-गति अति सुमनोहर
मुरछित लाख-अनग॥
धनि खिति-मण्डल धनि नदीया-पुर
धनि-धनि यह कलि-काल।
धनि अवतार धनि रे धनि कीतन
ज्ञानदास नह पार॥[2]

---

[1] पदकल्पतरु ४९६।
[2] वही २०६२।

रचनाएँ—

महाप्रभु विषयक ज्ञानदास के लिखे पदो में नरहरि, यदुनन्दन और वासुदेव के पदो जसी प्रत्यक्षानुभूति नही और उनमे वैसा मिलना सभव भी नहीं, उन कवियो की तुलना मे ज्ञानदास के पदो में भाषा तथा शैली का वैशिष्ट्य अवश्य है।

ज्ञानदास की छाप मे 'यशोदा की वात्सल्यलीला' नामक वीस पदो का सग्रह एक हस्तलिखित ग्रन्थ में मिलता है।[1] इन पदो में ज्ञानदास-सा रचना कौशल नही है। पर वे आलोच्य ज्ञानदास कृत नही ऐसा कहने के लिए भी कोई प्रमाण नही। 'ज्ञानदास' की छाप मे एक वैष्णव-आगम-निवन्ध 'भागवत तत्वलीला' या 'भागवतोत्तर' मिला है।[2]

अनन्तदास जीवन वृत्त और रचनाएँ--

कवि अनन्तदास अद्वैत-आचार्य के शिष्य थे। अनन्तदास कटवा के उत्सव में उपस्थित थे।[3] अनन्त आचार्य नाम के भी अद्वैत आचार्य के एक शिष्य थे, सभवत उल्लेखित कवि और ये अभिन्न रहे हो परन्तु इन दोनो के जीवन-सम्वन्धी विशेष विवरण न मालूम होने से निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। अनन्त आचार्य रचित एक वगला पद[4] प्राप्त है। 'राय अनन्त' की छाप से भी दो वगला पद[5] मिले है। ये दोनो पद अत्यन्त साधारण कोटि के है अतएव अनुमान होता है कि ये 'राय अनन्त', आलोच्य कवि तथा अनन्त आचार्य से स्वतत्र है। राय अनन्त तथा अनन्त आचार्य कृत कोई भी ब्रजवुलि पद उपलब्ध नही, अतएव उन दोनो की चर्चा यहाँ नही की जा रही है।

अनन्तदास की छाप मे २१ ब्रजवुलि पद मिले है। उनमें से निम्नोद्वृत पद ब्रजवुलि पदों में अन्यतम है।

---

[1] श्रीसुकुमार सेन, 'वागला साहित्येर इतिहास', पृ० ३०३।

[2] ब्रजसुन्दर सान्याल 'शिव रहस्य' प्रवन्ध, 'प्रदीप' १३१० वंगाब्द, पृ० २६८-७१।

[3] 'भक्तिरत्नाकर', नौवा अध्याय, पृ० ५८९।

[4] पदकल्पतरु, २२८५।

[5] वही, २३२८,२३३७।

कृष्ण के रूप लावण्य का वर्णन—

कृष्ण के अपूर्व रूप-लावण्य का वर्णन है—

विकच-सरोज भान मुखमण्डल
दिठि भंगिम नट-खंजन-जोर।
किये मृदु माधुरि हास उगारइ
पी पी आनन्दे आंखि पडलहि भोर॥
वरणि ना हय रूप वरणचिकनिया।
किये घनपुंज किये कुवलय दल
किये काजर किये इन्द्रनीलमणिया॥
अंगद वलय हार मणिकुंडल
चरणे नूपुर कटि किंकिणी-कलना।
अभरण-वरण किरणे अंग ढर-ढर
कालिंदीजले जैछे चांदकि चलना।
कुंचित-केश वेश कुसुमावलि
शिर-पर शोभे शिखि चांदकि छांदे।
अनन्तदास-पहुँ अपरूप-लावणि
सकल जुवति-मन पडि गय फांदे॥[1]

रूप के यथार्थ परिस्फुटन के लिए कवि ने चुन-चुनकर उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया है। भाव तथा भाषा वैशिष्ट्य के लिए कवि की प्रतिभा अवश्य ही सराहनीय है।

बलराम दास जीवन वृत्त—

बंगीय वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत बलराम दास नाम से बहुत से पद रचयिता हुए। वे निम्नलिखित हैं —

(१) बलराम दास नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे और कटवा तथा खेतरी के उत्सव (१५८२–८३ सन ईसवी) में उपस्थित थे।

(२) प्रेम विलास के रचयिता नित्यानन्द दास का दूसरा नाम बलराम दास था। ये श्रीखण्ड के आत्माराम दास के पुत्र और जाह्नवी देवी के शिष्य थे। ये भी खेतरी के उत्सव में उपस्थित थे।

(३) कविपति बलराम बुधारी के निवासी और रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे।

[1] पदकल्पतरु, २६८।

(४) वलराम वसु नाम के भी एक पद रचयिता थे,[१] जिनका कोई विशेष परिचय प्राप्त नही है।

इनमे से पहले वाले ही श्रेष्ठ और प्राचीनतम 'सगीतकारक' बलरामदास नाम से देवकीनन्दन के 'वैष्णव-वन्दना' में उल्लेखित है। ये वर्द्धमान जिले के दोगाछिया गांव के रहने वाले और जाति के ब्राह्मण थे।

रचनाएँ—

वलरामदास ने वगला तथा व्रजबुलि दोनो मे ही रचनाएँ की है। बलराम दास श्रेष्ठ पद रचयिताओ मे से है। व्रजबुलि साहित्य में गोविन्ददास, ज्ञानदास के वाद वलरामदास का ही स्थान है। रूपानुराग और रसोद्गार वर्णन में इन्होने अपूर्व चमत्कार दिखाया। इनकी भाषा अत्यन्त प्राजल है। गोविन्ददास के समान ही बलराम भी छन्द-शास्त्र में कुशल थे और आलकारिक पद रचना में तो इन्होने अपना पूर्ण कला-चमत्कार दिखाया। निम्नलिखित व्रजबुलि पद में प्रत्येक पक्ति का प्रथम अक्षर 'व' है। राधा के विरह में व्याकुल कृष्ण की अवस्था का वर्णन दूती राधा से कर रही है :—

राधा के विरह मे कृष्ण की अवस्था—

विरह वेयाधि-वेयाकुल सो पहुँ
वरजल धैरज लाज।
वासर जामिनी विलपि गोवांयइ
वसि वसि विपिनक माझ॥
विधु-मुखी वेदन कि कहव आज।
विषम-विशिख-शर वरिखने जरजर
विकल वरजजुवराज॥
वहु वैदगाध बिबिध गुण चातुरि
बिछुरल सवहुँ मुरारि।
वरिखक ठामे बोल तोहे पावइ
वाउर भेल बनमाली॥
बेशविलास विशेषहि बिरमल
बिरमल भोजनपान।

[१] वर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित प्रति संख्या ५४०—एक पद।

बोलइते बदने बचन नाहि निकसइ
बलराम कि कहब आन ॥[1]

इस पद में अलंकार चमत्कार के कारण कहीं भी भाव पक्ष दबा नहीं है। निम्नोद्धृत दूसरे पद में प्राकृतिक पृष्ठ भूमि के साथ रास-लीला के अपूर्व दृश्य का वर्णन है —

रासलीला—

मधुर समय रजनि शेष
शोहइ मधुर कानन देश
गगने उयल मधुर मधुर
विधु निरमल कांतिया।
मधुर-माधवि-केलि निकुंज
फुटल मधुर कुसुम-पुंज
गावइ मधुर भ्रमरा भ्रमरि
मधुर मधुहि मातिया ॥
आजु खेलत आदे भोर
मधुर जुवति नव किशोर।
मधुर बरज रंगिणि मेलि
करत मधुर रभस-खेलि ॥
मधुर पवन बहइ मंद
कुजये कोकिल मधुर-छंद
मधुर विहंगि शरद-सुभग
नदहि विहग-पांतिया।
रवइ मधुर शारि कीर
पढ़इ ऐछन अमिया-गीर
नटइ मधुर मउर मउरि
रटइ मधुर भांतिया ॥
मधुर मिलन खेलन हास
मधुर मधुर रस विलास
मदन हेरइ परणि लुठइ
वेदन फुटइ छातिया।

[1] अप्रकाशित पदरत्नावली, १८३।

मधुर मधुर चरित-रीत
वलराम-चिते फुरउ नीत
दुहुंक मधुर चरण सेवन
भावने जनम जानिवा ॥[1]

चैतन्य संबंधी पद—

वलरामदास ने चैतन्य देव पर भी बहुत सुन्दर पद रचे हैं। उदाहरण के लिए व्रजवुलि का एक पद उद्धृत है —

कलियुग-मत्त-मतंगज-मरदने
कुमति-करिणि दुर गेल।
पामर दुरगत नाम-मोति शत-
दाम कण्ठ भरि देल॥
अपरुप गोर विराज।
श्रीनवद्वीप-नगर-गिरि-कन्दरे
उयल केशरि-राज॥
संकीर्त्तन-रण हुंकृति शुनइते
दुरित दीपि-गण भागि।
भये आकुल अणिमादि मृगीकुल
पुणवत गरव तेयागि॥
त्याग जाग जप तिरिरिल वरन सम
शश जम्बुकि जरि जाति।
वलराम दास कह अतये से जग माह
हरि-धनि शब्द खेयाति॥[2]

काव्य का वैशिष्ट्य —

पद की अन्तिम कुछ पक्तियों में सिंह (हरि) और भगवान् (हरि) का रूपक अत्यन्त सुन्दर और सार्थक है। इस पद मे यह मालूम होता है कि वलरामदास विशुद्ध साहित्य के मर्मज्ञ थे।

१६वी शताब्दी के पद रचयिताओं में वात्सल्य रस के सुन्दर कृतित्व के लिए ये स्मरणीय है। इस क्षेत्र में उन्होंने रामानन्द वसु का ही अनुसरण

[1] पदकल्पतरु, २४९७।
[2] वही, ६१७।

किया। वात्सल्य रस विषयक इनके प" बगला में ही रचे गए। इनके बगला पद अत्यन्त सरल और मर्मस्पर्शी हैं।

गोविन्ददास कविराज जीवन वृत्त—

वष्णव-साहित्य में गोवि द नाम के एकाधिक पद रचयिता हुए हैं—(क) गोविन्दग्गम कविराज, (ख) गोविन्ददास चक्रवर्ती, (ग) गोविन्ददास आचाय। वष्णव गीति कवियो में श्रेष्ठ और ब्रजबलि साहित्य के श्रेष्ठतम पद रचयिताओ में गोविन्ददास कविराज ह।

इनका ज म १५३५ सन् ईसवा के लगभग अनुमान किया जाता है। इनके पिता चिरजीव माता सुनन्दा और मातामह श्रीखण्ड निवासी दामोदर थे। गोविन्ददास क बडे भाई रामच द्र कविराज नरात्तमदास के घनिष्ठ मित्र थे। बाल्यकाल में ही पिता क देहान्त हो जाने के कारण दोना भाई ननिहाल में पले। बाद में पतृक निवास स्थान कुमारनगर और उसके बाद तेलिया बुधरी ग्राम में जाकर बस गए। गाविन्ददास की स्त्री का नाम महामाया और एक मात्र पुत्र का नाम दिव्य सिह था। दिव्यसिह के पुत्र घनश्याम दास कविराज १७वी शताब्दी के श्रेष्ठ कवियो में स हुए।

मातामह के प्रभाव स रामच द्र और गोवि द दोनों ही शाक्तमत के प्रति आकृष्ट हुए। सभवत शाक्तमत ही उनक ननिहाल का कुल धम था। परन्तु बाद में रामच द्र कविराज फिर गोवि न्दास श्रीनिवास-आचाय से दीक्षा ग्रहण करके वष्णव हो गए। इनके वैष्णव धम परिवतन के विषय में 'प्रेम विलास', 'भक्तिरत्नाकर आदि ग्रयों में उल्लेख मिलता है कि जब रामच द्र कविराज विवाह के बाद डोली में लौट रह थे ता रास्ते में श्रीनिवास आचाय ने उनके रूप और व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर कहा 'ऐसा सुन्दर पुरुष यदि कृष्णभजन करे तो रूप साथक हो। यह बात रामच द्र के मन में चुभ गई और दूसरे ही दिन आचाय द्वारा वैष्णव धम में दीक्षित हो गए। उसके बाद से ये एक सच्चे निष्ठावान वष्णव भक्त बन गए और गुरु के साथ खूब तीर्थाटन किया। कहा जाता ह कि गोविन्ददास एक बार कठिन रोग ग्रस्त हुए जिसमें उनके बचने की कोई आशा नही थी। ऐसी अवस्था में मुमूर्षु गोविन्ददास ने अपनी परम आराध्य देवी भगवती का स्मरण किया। देवी ने आकाशवाणी में कहा— विपत्ति में श्री मधुसूदन का नाम ही सार है। अतएव वकुण्ठविहारी श्रीगोवि द का स्मरण करो, वे ही विपत्ति स तुम्हें मुक्ति देंगे'। गाविन्ददास

ने सव समाचार भाई को लिख भेजा। दयार्द्र आचार्य ने रामचन्द्र कविराज के साथ याजी ग्राम से वुधरी ग्राम में जाकर गोविन्ददास को श्री श्रीराधाकृष्ण चतुराक्षर मत्र से दीक्षित किया। अत्यधिक आश्चर्य की वात हुई कि महामत्र ग्रहण के वाद ही गोविन्ददास रोगमुक्त हो गए। ये खेतरी के उत्सव मे उपस्थित थे। इनकी मृत्यु अनुमानत १६१३ सन् ईसवी में हुई। वैष्णव होने के वाद गुरु की आज्ञा से इन्होने राधाकृष्ण-लीलागीति की रचना आरम्भ की। एकाधिक गोविन्द पद रचयिता के कारण गोविन्ददास तथा 'गोविन्द' छाप वाले विभिन्न पद रचयिताओ के पद परस्पर घुलमिल गए है।

रचना वैशिष्ट्य—

परन्तु ब्रजवुलि के कवि शिरोमणि गोविन्ददास की भाषा मे ऐसी विशेपता है कि थोडे विचार से ही उनके पद अनायास पृथक किए जा सकते है और वहुत कुछ इसी आधार पर किए भी गए है। गोविन्ददास की भाषा विशुद्ध ब्रजवुलि है, उसमे तद्भव की अपेक्षा तत्सम और अर्द्धतत्सम शव्दो का ही वहुत प्रयोग हुआ है। इनकी रचना शैली मे छन्दवैचित्र्य है। अनुप्रास, उपमा, रूपक के प्रयोग मे भी कवि अत्यन्त पटु है। शव्द झंकार और पद लालित्य में ये वहुत कुछ विद्यापति के निकट है। यदि यो कहे कि इस क्षेत्र में इन्होने विद्यापति का ही अनुकरण किया तो अत्युक्ति न होगी। एक वात अवश्य है कि ब्रजवुलि के अत्युत्तम कवि द्वय ज्ञानदास तथा वलरामदास के पदो में जो अतुलनीय मार्मिकता है वह इनके पदो मे कम है। कवि भाषा चमत्कार में ही अधिक उलझा, भावो की गहराई मे प्रवेश के लिए वह प्रयत्नशील नही। कविराज के काव्य का विशिष्ट्य माधुर्य गुण उन्ही के शव्दो मे सुनिए—

रसनारोचन श्रवणविलास
रचइ रुचिर पद गोविन्ददास।

गोविन्ददास कविराज के काव्य कला के निदर्शन के लिए कुछ थोडे पद उद्धृत किए जा रहे है—

कृष्ण के अनुपम रूप सौन्दर्य का निम्नोद्धृत दोनो पदो मे निस्सन्देह अति सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

नन्दनन्दन-चन्द चन्दन-गंधनिन्दित अंग।
जलदसुन्दर-कम्बुकन्धर निन्दि सिन्धुर भंग॥
प्रेम-आकुल-गोप गोकुल-कुलजकामिनीकान्त।
कुसुमरंजन-मंजुवजुल-कुंजमन्दिर सन्त॥

गण्डमण्डल-वलितकुडल उड़ै चूड़ पिखण्ड ।
कलिताण्डव-तालपडित बाहुदण्डितदण्ड ॥
कजलोचन कलुषमोचन श्रवणरोचन भाष ।
अमलकमल-चरणकिशलय निलय गोविन्ददास ॥[1]

कृष्ण के रूप का वर्णन—

अरुणित चरणे रणित मणि-मंजिर
आध आध पद चलनि रसाल ।
कांचन-वचन वसन-मनोरम
अलिकुल मिलित ललित वन-माल ॥
भाले बनि आवत मदन-मोहनिया ।
अंगहि अंग अनंग-तरंगिम
रंगिम भंगिम नयन-नाचनिया ॥
मांझहि खीन पीन-उर-अम्बर
प्रतार-अरुण किरण मणि राज ।
कुंजर-करभ-करहि कर-चयन
मलयज कंकण वलय विराज ॥
अधर-सुधा-झर मुरलि-तरंगिणि
विगलित रंगिणि-हृदय-दुकूल ।
मातल नयन भ्रमर जनु भ्रमि भ्रमि
उड़ि पड़त श्रुति-उतपल-फूल ॥
रोचन तिलक चूड़े बनि चन्द्रक
वेढ़ल रमणि-मन मधुकर-माल ।
गोविन्ददास चिते निति निति विहरइ
इह नागर-वर तरुण तमाल ॥[2]

राधा की कमनीय शोभा का वर्णन –

शरद-सुधाकर-मण्डल-मण्डन
खण्डन वदन विकाश ।
अधरे मिलायत श्याम-मनोहर
चीत-चोरायनि हास ॥

---

[1] पद कल्पतरु २४१९ ।
[2] वही, २४२४ ।

आजु नव श्याम विनोदिनि राइ ।
तनु तनु अतनु-जूथ-शत-सेवित
लावणि वरणि न जाइ ॥
कवरि-वकुल-कुले आकुल अलिकुल
मधु पिवि पिवि उतरोल ।
सकल अलंकृति कंकण झंकृति
किंकिणि रणरणि बोल ॥
पद-पंकज पर मणिमय नूपुर
रणझण खंजन-भाष ।
मदन-मुकुर जनु नख-मणि-दरपण
नीछनि गोविन्ददास ॥[१]

ध्वन्यात्मक नाद-सौन्दर्य का चमत्कार इन पदों में अपूर्व है ।

लज्जा-वर्णन—

स्वाभाविक लज्जावश रावा ने कृष्ण के प्रति अनुराग को सखियो से छिपा रखा है । अत सखियो की आख वचाकर अत्यन्त सतर्कता से रावा कृष्ण से मिलने जा रही है, पर इतने पर भी सखिया देख ही लेती है—

चौदिके चकित-नयने घन हेरसि
झांपसि झापल-अंग ।
वचनक भाति वुझइ नाहि पारिए
काहा शिखलि यह रंग ॥
सुन्दरि, की फल परिजन वाचि ।
श्यामसुनागर-गुपत प्रेमधन
जानलुं हिय-माहा साचि ॥
ए तुआ हास मरम प्रकाशइ
प्रति अंग भगिम साखी ।
गांठिक हेम वदन-माहा झलकइ
एतदिने पेखलुं आखि ॥
गहन मनोरथे पन्थ ना हेरसि
जीतलि मनमथराज ।

[१] पदकल्पतरु, २४६३ ।

गोविन्ददास कहइ धनि विरमह
मौनहि समुझल काज ॥[1]

राधा कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को लाख प्रयत्न करके भी छिपा नहीं पाती क्योंकि उनके अंग प्रत्यंग में हाव भाव उसे प्रकट किए देते हैं इसे कवि कितने सुन्दर, कलापूर्ण ढंग से व्यक्त करता है गोठिक हम वदन माहा झलकई।

राधा का श्याममय रूप—

राधा कृष्ण प्रेम में विभोर है। प्रेमाधिक्य के कारण वह श्याममय हो जाना चाहती है, उनकी इस मानसिक अवस्था का कितना यथार्थ वर्णन है—

लोचने श्यामर बचनहि श्यामर
श्यामर चारुनिचोल।
श्यामर हार हृदय मणि श्यामर
श्यामर सखी कर कोर॥
माधव, इथे जदि बोलबि आन।
अचपल कुलवती-मति उमतायलि
किये तुहु मोहिनी जान॥
मरमहि श्यामर परिजन पामर
श्यामर मुख-अरविन्द।
झरझर लोरहि लोलित काजर
विगलित लोचननिन्द॥
मनमथ सागर रजनि उजागर
नागर तुहु किए मोर।
गोविन्ददास कतहु आशोआसय
मिलवह नन्द किशोर॥[2]

अभिसार—

घोर वर्षा की रात को कृष्ण से अभिसार के लिए राधा जाने को तयार हैं। सखियाँ विभिन्न प्रकारों से समझाती हैं जिससे इस दुर्दिन की काली रात में राधा घर से बाहर न जाएँ, पर उस प्रेम दीवानी को संसार की कठिन से कठिन बाधा भी रोक नहीं सकती—

[1] पद कल्पतरु, २२७।

[2] वही, ४०।

कुल मरियाद-कपाट उदघाटलूं
ताहे कि काठ-कि बाधा ।
निज मरियाद-सिन्धु संयं पंवरलु
ताहे कि तटिनि अगाधा ॥
सहचरि मझु परिखन कर दूर ।
जैछे हृदय करि पन्थ हेरत हरि
सोवरि सोवरि मन झूर ॥
कोटि कुसुम-शर वरिखये जछु पर
ताहे कि जलद-जल लागि ।
प्रेम-दहन-इह नाक हृदय सह
ताहे कि वजरक आगि ॥
जछ पदतत्वे निज जीवन सोंपनुं
ताहे कि तनु अनुरोव ।
गोविन्ददास कहइ धनि अभिसर
सहचरि पाओल बोध ॥[1]

मुरली-वादन—

शरद की अत्यन्त सुन्दर रात है। पूर्ण चन्द्र के उदित होने से सम्पूर्ण प्रकृति पर अपूर्व सौन्दर्य और मादकता विकीर्ण हो रही है। कृष्ण के मन में रास नृत्य की इच्छा स्फुरित होती है और वे सम्मोहन बांसुरी के स्वर में व्रज की सुन्दरियो का आह्वान करते हैं, जिस मुरली रव को सुनते ही सुध बुध बिसराकर व्रज रमणिया जिस अवस्था में होती हैं वैसे ही दौड़ पडती हैं। उसी चित्रहारी अभूतपूर्व दृश्य का मनोरम वर्णन हुआ है—

शरद-चन्द पवन मन्द
विपिने भरल कुसुम-गन्ध
फुल्ल मल्लिका मालति जुथि
मत्त-मधुकर-भोरणि ।
हेरत राति ऐछन भाति
श्याम मोहन मदने माति
मुरलि-गान पंचम तान
कुलवति-चित चोरणि ॥

[1] पदकल्पतरु ९८८ ।

सुनत गोपि प्रेम रोपि
मनहिं मनहिं आपन सौंपि
ताहिं चलत जाहिं बोलत
मुरलिक कल लोलनि।
बिसरि गेह निजहु देह
एक नयने काजर रेह
बाहे रंजित कंकण एकु
एकु कुण्डल डोलनि ॥
शिथिल-छन्द निविक बंध
वेगे धावत जुवतिवृन्द
खसत वसन रसन चोलि
गलित वेणि लोलनि।
ततहिं वेलि सखिनि मेलि
केहु काहुक पथ ना हेरि
ऐछे मिलन गोकुल-चन्द
गोविन्ददास गावनि ॥[1]

कृष्ण के रूप का वर्णन—

जब गोप बालाएँ अधीर हो आगे का बढ़ती हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें काले बादलों के समान प्रतीत होते हैं। इस पूरे पद में सन्देह अलंकार के द्वारा कृष्ण का रूप अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णित हुआ है—

सुरपति—धनु कि शिखंड चूड़।
मालति—झुरि कि बलाकिनि उड़ ॥
भाल कि झापल विधु आध-खण्ड।
करिवर-कर किय ओ भुज-दण्ड ॥
ओ कि श्याम नट राज।
जलद रूप-तद तरुणि-समाज ॥
कर-किसलय किये अरुण विकाश।
मुरलि-मुरलि किये चातक-भाष ॥
हास कि झरये अमिया मकरंद।
हार कि तारक—दोतिक छन्द ॥

[1] पदकल्पतरु, १२५५।

पद-तले कि थल-कमल घन-राग।
ताहे कलहंस कि नूपुर जाग॥
गोविन्ददास कहये मतिमन्त।
भुलल चाहे द्विज राय वसन्त॥[१]

कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना—

कृष्ण को बहुत जल्दी ही वृन्दावन छोड़कर मथुरा जाना है। सखियां यह समाचार जानती हैं, इस समाचार से राधा पर पाला पड़ जाएगा, जानकर उनसे छिपाए ही रहती हैं, पर अनन्य प्रेमिका राधा को चैन कहा, उनका अन्तःकरण तो सूचना दे ही रहा है। वे सखियों से कहती हैं—

झापल उतपतलोरे नयान।
कैछे करत हिया किछुइ ना जान॥
तुहु पुन कि करवि गुपतहि राखि।
तनु मन दुहुं मुझे देयत साखी॥
तब काहे गोपसि कि कहब तोय।
बजरक वारण कर—तले होय॥
जानलुं रे सखि मोनक ओर।
पिया परदेश चलव मोहे छोड़॥
गमनक समय विरोध जनि कोय।
पियाक अमंगल जैछे ना होय॥
समय—समापन की फल आर।
प्रेमक समुचित अबहुं निवार॥
गोविन्ददास अतये अनुमान।
पिया परदेशि काहे रह प्राण॥[२]

वियोग अवस्था की कामना—

कृष्ण मथुरा चले गए, पुन वृन्दावन आने की आशा भी अब रच मात्र शेष न रही। राधा की विरहजन्य पीड़ा तीव्रतम हो उठी है। सयोग की कृष्णमयी राधा वियोग में भी उसी दशा की अनुभूति चाहती है जो इस जड शरीर के रहते संभव नही। अतः वे कामना करती है—

---

[१] पदकल्पतरु, १०५०।
[२] वही, १६०१।

गोकुले गोप-रमणि अछु भेल।
गरल-गरामने गोविन्द गेल ॥[1]

इस एक ही उदाहरण से यह स्पष्ट है कि कवि इस प्रकार की रचना करने मे भी कुशल है।

चैतन्य वन्दना--

गोविन्ददास ने श्री चैतन्यदेव की वन्दना विषयक कुछ पदों की भी रचना की है। उदाहरण के लिए एक पद उद्धृत किया जाता है—

चम्पक सोन-कुसुम कनकाचल
जितल गौर तनु लावणि रे।
उन्नतगीम-सीम नाहि अनुभव
जग मन मोहिनी भांवनी रे ॥
जय शचीनन्दन रे।
त्रिभुवन मण्डन कलिजुगकाल-
भुजगभयखण्डन रे ॥
विपुल पुलक कुल-आकुल कलेवर
गरगर-अन्तर प्रेम भरे।
लहुलहु हासनी गदगद भाषणी
कत मन्दाकिनी नयने झरे ॥
निज रसे नाचत नयन ढुलायत
गायत कत कत भक्तहि मेलि।
जो रसे भासि अवश मही मण्डल
गोविन्ददास तहि परश ना भेलि[2] ॥

इन दो-चार विभिन्न रचना शैली के पदो के उदाहरण से इतना स्पष्ट है कि शब्द-झंकार और पद-लालित्य में गोविन्ददास कविराज के पद ब्रजबुलि साहित्य में अतुलनीय है।

रचनाएं—

गोविन्ददास कविराज सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने 'सगीतमाधव' नामक एक सस्कृत नाटक की रचना की थी। नरोत्तमदास के चचेरे भाई

---

[1] पदकल्पतरु, १७२८। [2] वही, ३।

और शिष्य सन्तोषदत्त के अनुरोध से इस नाटक में कुछ संस्कृत तथा ब्रजबुलि के पद लिखे गये ऐसा अनुमान होता है[1]। गोविन्ददास के साथ वृन्दावनवासी श्रीजीव गोस्वामी का पत्र व्यवहार था। इस प्रकार का एक पत्र भक्ति रत्नाकर'[2] में उद्धृत है। इनकी कवित्व शक्ति से मुग्ध होकर श्रीजीव ने इन्हें कवीन्द्र अर्थात् 'कविराज' की उपाधि से भूषित किया था।

कवि शेखर राय जीवन वृत्त एवं रचनाएं—

कवि शेखर राय १६ वीं शताब्दी के श्रेष्ठ ब्रजबुलि कवियों में से थे। ब्रजबुलि तथा बगला दोनों प्रकार के पदों में ही कवि का रचना नैपुण्य प्रकट होता है। काव्य और पदावली की छाप में इन्होंने 'कविशेखर', 'शेखर' 'शेखर राय', 'राय शेखर' इत्यादि का प्रयोग किया है पर इनका असली नाम था देवकीनन्दन सिंह। कवि शेखर राय द्वारा रचित 'गोपालविजय' काव्य में कवि ने अपना थोड़ा कुछ आत्म परिचय दिया है—सिंह वंश में जन्म हुआ पिता का नाम चतुर्भुज और माता का नाम हीरावती है। नाम देवकीनन्दन है पर लोग श्रीकविशेखरराय कहते हैं। कृष्ण ही जिसके जीवन-सर्वस्व हैं[3]। इनका आदि निवास स्थान वर्धमान जिले का पड़ान ग्राम था। श्रीखण्ड के रघुनन्दन गोस्वामी के शिष्य थे।

कविशेखर का पदावली संग्रह 'दण्डात्मिका लीला' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अष्ट प्रहर का लीला विलास तीस दण्डों में विभक्त हुआ है। कुछ पदों के वर्णन-कौशल्य में कवि विद्यापति के समकक्ष हैं। उदाहरणार्थ राधा का निशाभिसार संबंधी यह पद—

निशाभिसार—

> काजर-रुचि-हर रयनि विशाला।
> तछु पर अभिसार कर ब्रज-बाला॥

---

[1] श्रीसुकुमार सेन— बागला साहित्येर इतिहास, पृ० ३३०।

[2] प्रथम तरंग।

[3] सिंहवंशे जन्म नाम देवकीनन्दन
श्रीकविशेखर राय बले सर्वजन।
बाप चतुर्भुज नाम मा हीरावती
कृष्ण जार प्राण धन कुल शील जाति।

घर संये निकसये जैछन चोर ।
निशवद पथ-गति चललिह थोर ॥
उनमत चित अति आरति वियार ।
गुरुया नितम्ब नव जौवन-भार ॥
कमलिनि माझा खिणि उच कुच-जोर ।
धाघसे चलु कत भावे विभोर ॥
रंगिणि संगिनि नव नव जोरा ।
नव अनुरागिणि नव-रसे भोरा ॥
अगक अभरण वासये भार ।
नूपुर किंकिणि तेजल हार ॥
लीला-कमल उपेखलि रामा ।
मन्थर-गति चलु धरि सखि श्यामा ॥
जतनहि नि.सरु नगर दुरन्ता ॥
शेखर अभरण भेल वहन्ता[1] ॥

रचना कौशल में विद्यापति से साम्य—

रचना कौशल में विद्यापति जैसी कुशलता के कारण इनके बहुत से पद विद्यापति के नाम से विभिन्न संग्रह ग्रन्थों में संकलित हैं। निम्नोद्धृत उत्कृष्ट पद के रचयिता कविशेखर हैं परन्तु आज भी वह विभिन्न संग्रह ग्रंथों में विद्यापति की छाप से चला आ रहा है।

वर्षा-ऋतु में विरहिणी की दशा—

भादो की बरसाती काली अंधेरी रात और प्रिय प्रवासी है, शून्य गृह-स्थिता विरहिणी सखी से अपनी व्यथा सुना रही है—

ए सखि हामारि दुखेर नाहि ओर ।
ए भर बादर माह भादर
शून्य मन्दिर भोर ॥
झम्पि घन गर-जन्ति सन्तनि
भुवन भरि बरिखन्तिया ।
कान्त पाहुन काम दारुण
सघने खर शर हन्तिया ॥

---

[1] पदकल्पतरु, २७०६ ।

भाव कामान वाण दृगंचल
चन्दन रेख ताहे गुण ॥
कम्बु कण्ठे मणि–हारा विराजित
काम-कलंकित शोभा ।
चरण-अलंकृत-मंजरि झंकृत
राय शेखर मन लोभा[१] ॥

कविरंजन, कविशेखर, विद्यापति—

एक चैतन्य सम्प्रदायभुक्त बंगाल का कवि 'द्वितीय विद्यापति' [२]नाम से प्रसिद्ध था, इस विषय पर सबसे पहले शौरीन्द्र मोहन गुप्त ने गोपालदास रसिकदास के शाखा निर्णय के अवलम्बन पर प्रकाश डाला है[३] । रसिकदास ने कविशेखर को रघुनन्दन के अष्टम शाखाभुक्त माना है और नवम शाखा मे कविरंजन को स्थान दिया जिनकी छोटे विद्यापति रूप से ख्याति थी[४] । कविरंजन के ब्रजबुलि पद विद्यापति के अनुकरण पर रचित होने के कारण संकलनकर्त्ताओं और सम्पादकों की अनभिज्ञता के कारण वे पद इस धारणा-वश कि कविरंजन विद्यापति की ही उपाधि थी, विद्यापति के पदों में सन्निविष्ट कर दिए गए ।

कविरंजन की ब्रजबुलि रचना के उदाहरण के लिए यह पद उद्धृत है—

राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा—

प्रेम-क्रीड़ा-मग्न राधा-कृष्ण के रूप का वर्णन—

उदसल कुन्तल-भारा ।
मुरति शिंगार-लखिमि अवतारा ॥
अतिशय प्रेम-विकारा ।
कामिनि करत पुरुख-बिहारा ॥

---

[१] पदकल्पतरु, २१५८ ।

[२] 'छोटो विद्यापति' ।

[३] द्रष्टव्य—'समालोचनी' फाल्गुन १३११ बंगाब्द, पृ० ३३६-३८; 'प्रदीप', श्रावण १३१२ बंगाब्द, पृ० १२१-२२ ।

[४] द्रष्टव्य—'समालोचनी' फाल्गुन १३११ बंगाब्द, पृ० ३३६-३८; 'प्रदीप', श्रावण १३१२ बंगाब्द, पृ० १२१-२२ ।

डोलत मोतिम हारा ।
जामुन-जले जछ दूधक धारा ॥
कुच-कुम्भ पालटल बयना ।
रस अमिया जनु ढारल मयना ॥
प्रियतम कर तहि देवा ।
सरसिज माहे जनु रहल चकेवा ॥
कंकण किंकिणि बाजे ।
जय जय डिंडिम मदन समाजे ॥
रसिक शिरोमणि कान ।
कवि रजन रस भान ॥[१]

यह एक पद ही कवि को उत्तम कोटि का प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। कवि रजन तथा कवि शेखर दोनों ने ब्रजबुलि तथा बगला में पदों की रचना की, रचना शैली भी एक ही समान है, दोनों ही जाति के वैद्य श्रीखण्ड के रहने वाले और रघुनन्दन के शिष्य थे। अतएव सुकुमार सेन महाशय कविशेखर और कवि रजन दोनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं और उनका अनुमान है कि 'कविरजन' का ही 'कविशेखर' नामान्तर या उपाधिभेद है। कम से कम कविरजन छाप के कुछ विशिष्ट पद तो कविशेखर द्वारा ही रचित हैं ऐसा उनका दृढ़ विश्वास है[२]।

अतएव यदि कवि शेखर-कविरजन विद्यापति (बगाल) को एक ही व्यक्ति मान लें तो अनुचित नहीं।

रचनाएँ—

कविशेखर सस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। सस्कृत में 'गोपालचरित' महाकाव्य और 'गोपीनाथविजय' नाटक की रचना की। गोपालविजय के उपक्रम में उल्लेखित कवि की बगला रचना 'गोपालेर कीर्तन-अमृत' बहुत सभवत राधाकृष्णलीला पदावली थी।

वल्लभदास वल्लभ-छाप—

'पद-कल्प-तरु' में वल्लभदास छाप के बहुत से पद सकलित हुए हैं। वैष्णव साहित्य के पद रचयिताओं में बहु 'वल्लभ' हुए हैं जैसे आलोच्य कवि

[१] पदकल्पतरु १०७८।

[२] श्रीसुकुमार सेन 'बागला साहित्येर इतिहास' पृ० २१७-२१८।

वल्लभ-दास, श्री वल्लभ, कवि वल्लभ, राधावल्लभ, हरिवल्लभ आदि। अत-एव केवल 'वल्लभ' छाप के पदों को पुष्ट प्रमाणों के अभाव में अनिश्चितता के साथ ही किसी कवि विशेष की रचना के अन्तर्गत रखा गया है।

जीवन वृत्त—

वैष्णव-पदावली में संगृहीत वल्लभदास की छाप वाले पदों में कवि ने नरोत्तमदास ठाकुर की स्पष्टतया अपने गुरु रूप में स्तुति की है। अनुमान है कि वल्लभदास श्रीनिवासाचार्य, नरोत्तम दास ठाकुर और रामचन्द्र कविराज का समसामयिक पद रचयिता और नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ के अनुसार वल्लभदास जाति के वैद्य और कविराज उपाधि से भूषित थे। भक्त प्रवीण होने के कारण ये 'भक्ति-मूर्ति' और 'भक्ति अधि-कारी' भी कहलाते थे। इन सब जीवनी विषयक विवरणों को सत्य मान लेने में कोई आपत्ति नहीं परन्तु इस ग्रन्थ के अनुसार वल्लभदास श्रीनिवासा-चार्य के प्रिय शिष्य थे और कवि रचित पदों के तथ्य से इसमें विरोध है। यह ठीक है कि श्रीनिवासाचार्य के शिष्यों में भी वल्लभदास थे परन्तु आलो-चित पदों के रचयिता वल्लभदास नरोत्तम ठाकुर के ही शिष्य थे इतना तो निश्चित है।

'वल्लभदास' छाप के २५ बंगला तथा ब्रजबुलि पद 'पदकल्पतरु' में संगृ-हीत हुए हैं। जिनमें से १७ पद 'वल्लभदास' की छाप, ७ पद 'वल्लभ' की छाप और एक 'श्रीवल्लभ' की छाप में मिलता है। श्रीवल्लभ लिखित पद की वल्लभदास छाप के पदों के साथ तुलना से वर्ण्य विषय और रचना शैली की समानता के कारण वे एक ही कवि रचित अनुमित होते हैं। अत-एव 'वल्लभदास' और 'श्रीवल्लभ' को एक ही व्यक्ति माना गया। गोविन्द-दास कविराज लिखित 'पदकल्पतरु' के दो पदों[1] में गोविन्ददास कविराज के नाम के साथ श्री वल्लभ के नाम के उल्लेख से वल्लभदास गोविन्ददास के मित्र जान पड़ते हैं। वल्लभदास ने भी गोविन्ददास कविराज की प्रशंसा में एक पद[2] लिखा। गोविन्ददास की जीवनी पर विशेष प्रकाश डालने के कारण इस पद का ऐतिहासिक महत्व है।

---

[1] संख्या २२५, २३४।

[2] गौरपदतरंगिणी, पृ० ४८१।

युगल स्वरूप—

वल्लभदास की रचना शैली के उदाहरण के लिए निम्नलिखित ब्रजबुलि का पद उद्धृत किया जा रहा है। राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप का अपूर्व शोभा वर्णन की कुशलता से यह स्पष्ट होता है कि रचनाकार सुकवि है—

ओ मुख शरद सुधाकर-सुदर
इह नलिनि दल गजे।
ओ तनु नवघन-सुदर रजित
इह थिर दामिनि पुजे॥
देख राधामाधव जोरि।
दुहुक परश रसे दुहु पुलकारत
दुहु दोहा रहल आगोरी॥
ओ नव नागर सब गुणे आगर
इह से कलावति-सीम।
ओ अति चतुर शिरोमणि विदग्ध
ए सब गुणहि गरीम॥
मधुर वृन्दावने श्याम-गौरि-तनु
दुहु नव किशोरि किशोर।
नरोत्तम दास आश चरणे रहु
श्रीवल्लभ-मन भोर॥[१]

'वल्लभ' छाप के कुछ ऐसे पद वैष्णव पदावली में अवश्य सगृहीत होंगे जो आलोच्य कवि कृत न होने पर भी उसी की कृति मान ली गई है पर वास्तव में जिसके रचयिता 'वल्लभ' नामान्त हरि-वल्लभ, राधा-वल्लभ आदि हैं, जब तक इसका पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

कवि वल्लभ जीवन वृत्त—

कवि वल्लभ के पिता का नाम राजवल्लभ तथा माता वैष्णवी थी। ये मरछाया नदी के तट पर महास्थान के पास आरोड़ा ग्राम के रहने वाले थे। कवि वल्लभ के गुरु उद्धव दास थे। नरहरि-सरकार के शिष्य ब्राह्मण मुकुट राय कवि वल्लभ के मित्र थे। उन्हीं के अनुरोध से कवि ने 'रस-कदम्ब'

[१] पदकल्पतरु, १०२२।

ग्रन्थ की रचना की। कवि वल्लभ का 'रस-कदम्ब' गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त ग्रंथ है और बंगीय वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ के बाद इसी ग्रंथ का स्थान है। यह ग्रन्थ कवि की सहृदयता, कवित्व कुशलता तथा वर्णन वैदग्ध्य का पूर्ण परिचायक है।

कवि वल्लभ का केवल एक ही पद 'पदकल्पतरु' में उद्धृत हुआ है। अपूर्व भाव-गाम्भीर्य के कारण यह पद ब्रजबुलि साहित्य में निस्सन्देह अति उच्च स्थानाधिकारी है।

प्रेम प्रगाढ़ता—

ललिता राधा की प्रेमजन्य अनुभूतियों को जानने के लिए उत्सुक है। राधा उस प्रेम प्रगाढ़ता का कितना सुन्दर परिचय देती है—

सखि हे कि पुछसि अनुभव मोय।
सोइ पिरिति अनुराग बाखानिये
अनुखन नौतुन होय॥
जनम अवधि हैते ओ रूप नेहारलुं
नयन ना तिरपित भेला।
लाख लाख जुग हाम हिये हिये मुखे मुखे
हृदय जुड़ल नाहि गेला॥
बचन-अमिया-रस अनुखन शूनलुं
श्रुति-पथे परश ना भेलि।
कत मधु-जामिनि रभसे गोयांयलुं
ना बुझलुं कैछन केलि॥
कत विदगध जन रस अनुमोदइ
अनुभव काहु ना पेखि।
कह कविवल्लभ हृदय जुड़ाइते
मिलये कोटिमें एकि॥[1]

विद्यापति के पदों से साम्य—

अपूर्व उत्कर्ष और व्यंजना के 'प्रेम' के भाव के कारण स्वर्गीय सारदा चरण मैत्रा महाशय तथा नगेन्द्रनाथ गुप्त महाशय ने इस पद को विद्यापति के पद-संग्रह में विद्यापति की छाप से सकलित किया। इस पद के विद्यापति कृत

---

[1] पदकल्पतरु, ९३७।

होने का कोई पुष्ट प्रमाण नही ह। स्वर्गीय सतीश चन्द्र राय महाशय इस प का श्रीरूप गोस्वामी के उज्ज्वल-नील-मणि' ग्रथ की परवर्ती रचना मानन इसलिए यह पद विद्यापति रचित नही हो सकता। इसके लिए व भाव-गत आभ्यन्तरीण कारण देते ह— साई विपरीत अनुराग वाखानिए अनुखन नौतुन हाय' में 'पिरिति और अनुराग' शब्द का पृथक प्रयोग कवि ने श्रीरूप गोस्वामी के उज्ज्वल नीलमणि' ग्रथ में वर्णित 'अनुराग शब्द के लक्षण विवृत के अनुसार ही किया। उज्ज्वल-नील-मणि ग्रथ में प्रेम' या पिरित' की परिणति अनुराग शब्द के लक्षण स्वरूप कहा गया है—

'सदानुभूतमपि य कुर्य्यान्नवनव प्रियम।
रागो भवन्नवनव सोनुराग इतीर्य्यत ॥'[1]

अर्थात जो राग' या 'प्रेम' नव-नव रूप धारण करके सवदा अनुभूत प्रियजन को भी नव-नव रूप से आस्वादित कराता है, उसी को 'अनुराग कहते ह। श्रीरूप गोस्वामी के पूव किसी रस शास्त्रकार ने अनुराग शब्द का विशेष अथ में प्रयोग नहीं किया ह।[2] यदि 'पिरिति' और 'अनुराग' शब्द का एकार्थक ही कवि को अभिप्रेत होता तो कवि सहज ही ऐसे प्रयोग करता कि साइ पिरिति ही पिरिति अथवा 'साइ अनुराग ही अनुराग' है। दूसरी बात 'पदकल्पतरु' तथा पदरससार' की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में यह पद कवि वल्लभ की ही छाप से सकलित हुआ ह।

रस-कदम्ब जसे प्रौढ वष्णव ग्रथ का रचयिता ही इस पद का रचयिता होगा ऐसा निसकोच माना जा सकता है। सभव ह कि कवि वल्लभ के और भी सुन्दर पद विद्यापति की छाप के अतराल में छिप गए हो।

राधावल्लभ दास जीवन वृत्त—

राधावल्लभ दास (या राधादास) श्रीनिवास आचाय के शिष्य थे। श्रीनिवास के शिष्यों में तीन राधावल्लभ हुए उसमें से राधावल्लभ चक्रवर्ती हो पद रचयिता अनुमित होते ह क्योकि राम गोपाल दास ने रसकल्पवल्ली' में 'श्रीराधावल्लभ चक्रवर्ती ठाकुर के नाम से पद उद्धत किया ह।

[1] १४। १४६।
[2] पदकल्पतरु (पचम खड) पृ० २७।

अनुमान होता है कि राधावल्लभ ने क्रमानुसार कृष्णलीला पदावली की रचना की थी। रासलीला सम्बन्धी १८ पदों की एक हस्तलिखित प्रति मिली है।[1] इन पदों में भागवत की कहानी का अनुसरण हुआ है।

रचनाएँ—

'राधावल्लभ' छाप के १७ पद पदकल्पतरु में संगृहीत हैं। राधावल्लभ ने बंगला तथा ब्रजबुलि दोनों प्रकार के पदों की रचना में ही नैपुण्य दिखाया है। इनके पदों का विषय नानाविध है। ये चार पद[2] ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं।

कवि की ब्रजबुलि रचना के दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

प्रथम दर्शनजन्य प्रेम—

राधा के प्रथम दर्शन मात्र से कृष्ण उनके प्रेमाधीन हो गए हैं। सखी से वह अपनी विरहजनित दशा का वर्णन करके राधा से मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं—

सजनि, अपरूप पेखलूं बाला।
हिमकर मदन-मिलित मुखमण्डल
ता पर जलधर माला॥
चंचल नयने हेरि मुझे सुन्दरी
मुचकायइ फिरि गैल।
तेखने मरमे मदन ज्वर उपजल
जीवइते संशय भैल॥
अहनिशि शयने सपने आन ना हेरिए
अनुखन सोई धेयाने।
ताकर पिरीति-कि रीति नाहि समुझिए
आकुर अथिर पराण॥
मरमक वेदन, तोहे परकाशल
तुहुं अति चतुरी सुजान।
सो पुन मधुर मूरति दरशायबि
राधा वल्लभ गान॥[3]

---

[1] बंगीय साहित्य परिषद् का हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २३५३ (लिपिकाल ११११ बंगाब्द)

[2] पदकल्पतरु, २३६१, २३६३, २३६८, २३७०।

[3] वही, १९६।

दूती द्वारा श्रीकृष्ण के रूप-गुण प्रेम का बखान—

दूती राधा के पास आकर कृष्ण के रूप गुण की अथक प्रशंसा करते हुए उनकी प्रेम विह्वल दशा का वर्णन करती है संभव है कि जिसे सुनकर राधा का मन भी कृष्णोन्मुख हो जाए।

सुन्दरि सुवदनि तुहु अगेयान।
गिरधर पुरुष तरुण नव किशोर
अनुखन तोहारि धेयान॥
जछु मुख कोटि-शरदशशिलावणि
सो तुआ दरशन आशे।
जछु रूप ललित मदन मुरछायइ
सो तुआ परश अभिलाषे॥
जछु गुण अखिल भुवन भरु कीर्त्तन
तुआ गुणे तछु मन भोर।
की विहि अपरूप तोहे निरमायल
श्याम हृदय मणिचोर॥
मधुरधरपिरीति-अमिया सुख सागर
अतए करबि अवगाह।
ताकर वचने जोउ निमजह
लाज धरम गेह माह॥
सो सुकुमार-हृदय भेल आकुल
मीलह ताते अति साधे।
कह राधावल्लभ जबहुँ ना मीलह
प्रेम करब परमादे॥[1]

रचनाएँ—

राधावल्लभ ने रघुनाथ दास गोस्वामी के 'विलापकुसुमांजलि' का बंगला पद्य में अनुवाद किया। उन्होंने कुछ गौर प्रशस्ति अर्थात् गौरांक पद भी लिखे थे।[2] राधावल्लभ दास तत्त्व संबंधी निबन्ध 'सहज तत्त्व'[3] के रचयिता

[1] अप्रकाशितपदरत्नावली ४३०।

[2] बर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २५५।

[3] द्रष्टव्य ११९५ बंगाब्द साहित्य परिषद् पत्रिका ६ पृ० ७६-७७।

है। हाल ही में श्रीसुकुमार सेन को 'हरिनामार्थ'[1] गाथा वल्लभदास की छाप में मिला है। उनकी उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि कवि राधावल्लभ दास प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

प्रसाद दास : जीवनवृत्त—

प्रसाद दास विष्णुपुर निवासी करुणामय दास के पुत्र थे। 'मजुमदार' इनकी वंशगत उपाधि थी। इनके अग्रज जानकीराम दास भी अच्छे कवि थे। दोनो भाई ही श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।[2] आचार्य प्रभु की कृपा से प्रसाद दास 'कविपति' हो गए।

रचनाएँ—

पदकर्त्ता प्रसाद दास के केवल ६ पद ही पदकल्पतरु में संकलित हुए हैं। उसमें से तीन वात्सल्य विषयक[3], दो नित्यानन्द प्रभु की स्तुति विषयक[4] है। गोष्ठ-विहार सम्बन्धी ब्रजबुलि का एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

गोष्ठ विहार—

सबहुं मिलित जमुना-तीर
अंजलि पुरि पियत नीर
बैठल तँहि तरुर छाय
बीच नन्द-नन्दना।
नविन-निरद-बरण जोति
नासाये ललके झलके मोति
उरे विलम्बित कदम्ब-माल
भाले तिलक-चन्दना।
कुन्द-कलिक-कलित-चूड़े
मन्द पवने वरिहा उड़े
कटि-तटे किये पीत वसन
बाहे शोभित कंकणा।

---

[1] विश्वभारती का हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या, ८४।
[2] कर्णानन्द; प्रेम-विलास, २०।
[3] पदकल्पतरु ३९०,१३२२, २०८५।
[4] वही—२७८,२३०५।

हसित-ललित यदन इन्दु
अलपे उपजे धरम बिन्दु
लोल नयन कमल-जुगल
ताहे ललित अंजना।
नखर उजर गछन चन्द
चकोर निकर लागल छन्द
लुबध हेरि चरणे घेरि
सघने करत चुम्बना।
अरुण अधरे पुरल वेणु
घनाइया घेरत सबहु धेनु
सहजे सुन्दरि विरहे भोर
दूरे बरज-अगना।
शुनि शुनि गापि हरल बोल
भावे अवश चित विभोर
रहि रहि रहि चमकि उठत
थरहि थरहि कम्पना।
अनेक जतने चेतन पाइ
चललि जाहा सुन्दरि राइ
फेरि हेरत बेरि बरि
ऐछन मन रजना।
दास प्रसाद करत आश
अमिया अधिक मधुर भाष
शुनि तिरपित श्रवण-सुख
ताप निकर भजना ॥[1]

एक ही पद कवि की रचना कुशलता की ख्याति के लिए पर्याप्त है।

यदुनन्दन दास जीवन वृत्त और रचनाएँ—

कटवा के पास मालिहाटि ग्राम में यदुनन्दन का जन्म हुआ। ये वैद्य जाति के थे। ये श्रीनिवास-आचार्य के अनुचर थे और आचार्य कन्या हेमलता देवी से इन्होंने दीक्षा ली। १७वीं शताब्दी के अनुवाद करने वाले

[1] पदकल्पतरु, २५७५।

कवियो मे यदुनन्दन दास अग्रगण्य है। यदुनन्दन दास रचित 'रसकदम्ब' या 'राधाकृष्णलीला रसकदम्ब' रूप गोस्वामी के 'विदग्ध माधव' नाटक और 'दानलीलाचन्द्रामृत' 'दान केलिकौमुदी' भणिका का, 'गोविन्दविलास' या 'गोविन्दलीलामृत' कृष्णदास कविराज के 'गोविन्दलीलामृत' तथा 'कृष्ण कर्णामृत' कृष्णदास कविराज के 'सारगरगदा' टीका सहित विल्वमगल के 'कृष्ण-कर्णामृत' काव्य का अनुवाद है। ये सब काव्य इतने लालित्यपूर्ण है कि केवल अनुवाद से नही लगते। यदुनन्दन के नाम से एक जीवनी विपयक काव्य 'कर्णानन्दरस', या 'कर्णानन्द' भी मिलता है। इनकी प्रतिभा केवल काव्य जगत् तक ही सीमित नही थी, दर्शन के क्षेत्र मे भी उसका पूर्ण प्रसार था। सभवत वैष्णव-तत्त्व सबधी ग्रन्थ 'हरिभक्तिचन्द्रामृत' के रचयिता भी आलोच्य कवि यदुनन्दन दास ही थे। सहज-साधन सबधी निबन्ध 'हीरावली तत्त्व राय-शेखर की सस्कृत रचना 'हीरावलीतत्व' का अनुवाद है। श्रीसुकुमार सेन यदुनन्दन को ही इसका अनुवादक अनुमान करते है[1]।

इतने ग्रन्थो का प्रणेता, अवश्य ही प्रौढ कवि रहा होगा। 'राधा-कृष्ण-लीलारसकदम्ब' और 'कृष्णकर्णामृत' काव्यो के बहुत से पद विभिन्न पद-सग्रहो में सकलित है। कवि ने 'यदुनन्दन', 'यदुनाथ', 'यदु' छाप का प्रयोग किया है। वैष्णव साहित्य में 'यदुनन्दन' तथा 'यदुनाथ' नाम से और भी कवि हो गए है। अत-एव उपलब्ध सभी पदो को आलोच्य कवि की रचना नही मान सकते, पर प्रौढ कवि की रचनाओ मे प्रतिभा की एक ऐसी विशिष्ट छाप रहती है जिससे वे अलग से पहचाने जा सकते है। कवि की व्रजबुलि रचना का उदाहरण—

कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन—

कृष्ण के रूप सौन्दर्य की अनुपम शोभा का वर्णन है—

सो वर–वर–नागर राज।
तपनतनयातटे नीप–तरु–निकटे
हिलन नटवरसाज॥
मरकतरतन–मुकुर जिनि लावणि
प्रति तनु पिरीति पसार।
शारद चांद-फांद मुखमन्डल
कुण्डल श्रवणे विहार॥

[1] श्रीसुकुमार सेन—'बागला साहित्येर इतिहास', पृ० ४०१।

माथा भाँग-भवन धनु भंगिम
दिठि सजन गट ओर।
बाम्बुलि-अधरे मुरली रव माधुरी
ऊमतायस मन मोर॥
ऊद्धत चूड़े चाव निगि चन्द्रम
मंद पवन सयँ मेल।
कहे जदुनन्दन श्रवण रसायन
तनु मन सब हरि लेल॥[1]

अनुप्रास के प्रयोग से नाना लालित्य और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। रूपक, उपमा के उचित व सुन्दर प्रयोग से कृष्ण का मनमोहन रूप और भी निखर उठा है। ब्रजबुलि साहित्य के सुन्दर पदों में से यह एक पद है।

कवि कृत निम्नोद्धृत दूसरे पद में रूप गोस्वामी संकलित पद्यावली के एक श्लोक[2] का भाव अनुगत हुआ है।

रूप-सौन्दर्य—

सौन्दर्य की साकार प्रतिमूर्ति घनश्याम के अंग प्रत्यंग हाव भाव में सौन्दर्य हिल्लोल कर रहा है। कितनी अपूर्व है यह रूप-शोभा—

इन्दीवरवर-उदरसहोदर-मधुरमदहरदेह।
जाम्बुनदमद-चन्दविमोहित अम्बरवरपरिधेय॥
सजनी के नव-नागरराज।
मोहन मुरली-सुरलि-रुचिरानन दाहन-कुलवतीलाज॥
मोतिम-सार हार उर-अम्बर नखतर-दामक भान।
करिकर गरब-कवलकर सुन्दर सुवलित बाहु सुठाम॥
मदगजराज-लाज गति मन्थर जग भरि भरइ अनग।
यदुनन्दन मन सो नन्दनन्दन चन्दनशीतल-अंग॥[3]

---

[1] अप्रकाशितपदरत्नावली, २६३।

[2] इन्दीवरोदरसहोदरमेदुरश्री
वासोव्रवतकनकद्युतिनिभ दधान।
आमुक्तमौक्तिकमनोहरहारवक्षा
कोऽयं युवा जगदनंगमयं करोति॥

[3] पदामृत समुद्र पृ० ३।

इन दो उद्धरणों से ही स्पष्ट है कि कवि यदुनन्दन ब्रजबुलि के अत्यन्त कुशल रचयिता हैं।

धरणी : पदकल्पतरु में धरणी के पद—

'पद-कल्प-तरु' में धरणी छाप के चार पद संगृहीत हैं जिनमें से एक बंगला और बाकी तीन ब्रजबुलि के हैं। धरणी का एक बंगला पद कीर्त्तनानन्द[1] में भी संकलित है। एक ब्रजबुलि पद[2] में कवि ने श्रीनिवास आचार्य को 'प्रभु मोर श्री-श्रीनिवास' कहकर उनकी स्तुति की है। इससे अनुमान होता है कि कवि श्रीनिवास आचार्य के अनुचरों में से था। इससे अधिक कवि के जीवनी के संबन्ध में किसी ग्रन्थ से और कुछ भी ज्ञात नहीं होता है।

'धरणी' छाप के केवल चार पांच उपलब्ध पद ही इसके प्रमाण हैं कि ये एक श्रेष्ठ कवि की कृतियां हैं। उनकी रचना शैली के नमूने के लिए एक ब्रजबुलि पद उद्धृत किया जा रहा है।

राधा का कामदेव को दोषी बनाना—

कृष्ण से प्रेम करने के कारण राधा को बहुत कष्ट सहना पड़ रहा है। प्रेमजन्य बहु प्रकार के दुखों से सन्तप्त राधिका कामदेव को ही दोषी ठहराकर उसका तिरस्कार करती है—

आरे मनमथ नाहि तुया धरम-विचार।
को करु दोस रोख करु का संये
    बड़ तुहुँ मुरुख गोवांर॥
शुनइते रूप कला गुण-माधुरि
    तेयि दिठि हेरल कान।
साइ जोध-पति ताहे नाहि पारलि
    हृदये हानलि पांच बाण॥
किये गुणे रति तोहे पति करि मानल
    नाम के राखल काम।
नाशसि काम कुलटा-पद देओसि
    अब तोहे चीनलुं हाम॥

---

[1] पृ० २६१।

[2] पदकल्पतरु, २३८१।

देवीपति शिय जीव तुआ राखल
छिये छिये ए बडि दूखे।
ता सयें वाद साधि जैछे धाआलि
तछे अनल दिल मूखे॥
अब हाम शम्भु आराधव तुआ लागि
पुन तोहे करब विनाश।
विरहिणिगण जेन किये घर किये घन
जाहाँ ताहाँ सुखे करु वास॥
धरणिक वाणि मान तुहुँ सुन्दरि
शम्भु आराधयि काय।
मनमथ-कोटि मथन करु जो जन
सो तुआ चरण धेयाय॥[1]

इस पद में उक्ति सौन्दर्य की विशेषता है। राधिका के हृदय की खीज कितने सुन्दर रूप में प्रकट हुई है। धारणी के पदों में भाव वचित्र्य और भाषा चमत्कार का दिग्दर्शन होता है।

किशोरदास जीवनवृत्त एव रचनाएँ—

कवि के जीवन के सबध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। कवि का समय अन्तिम १७ वी शताब्दी अनुमित होता है। अप्रकाशित पदरत्नावली में 'किशोर' की छाप से दो बगला पद[2] प्राप्त है। किशोर दास छाप का और एक बगला पद कृष्णपदामृतसिन्धु[3] में मिलता है।

दास-हस्तलिखित ग्रन्थ के प्राचीनतम अश में छापहीन एक ब्रजबुलि पद है, उसके अन्तिम भाग में वहा किशोर दास के छाप से सगृहीत हुआ है। कवि की रचना शैली के निदर्शन के लिए वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

अभिसार—

श्यामवर्ण निर्मल सुन्दर, सुखद रात्रि में श्याम नील वस्त्र से सज्जित आभूषणों से भूषित कृष्ण से अभिसार के लिए जा रही है—

[1] पदकल्पतरु ८५८।
[2] सख्या–४८० ४८१।
[3] सख्या–१४५।

जय जय जय विजइ कुंजे
कुंजरवरगामिनी ।
प्रेम तरंगे भरल अंगे
संगे वरज रमणी ॥
गगन मण्डल अति निरमल
शरद सुखद जामिनी ।
नील वसन हाटकवरण
झलकत घन दामिनी ॥
द्रिमिकि द्रिमिकि खावपाखाज-
ठाम ठमकि चलनी ।
रुनु रुनु रुनु झुनु झुनु झुनु
वाजत नूपुर किंकिणी ॥
जंत्र तंत्र तरन मान
धनि धनि नवजीवनी ।
ताना नाना नाना सुललित वीणा
वायत सुघड रमणी ॥
मिलल श्याम कुंजधाम
अनुपाम सुख शोहिनी ।
दास किशोर सुखेर नाहि ओर
हेरि श्याममनमोहिनी

पद का नाद-सौन्दर्य अवश्य ही सराहनीय है। निस्सन्देह यह पद व्रजबुलि साहित्य के सुन्दर पदो मे से एक है।

रचनाएँ—

किशोरदास रचित 'उद्धवसवाद' ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।[1] यह ग्रन्थ रूप गोस्वामी के 'उद्धवसन्देश' या 'उद्धवदूत' का अनुवाद नही, मौलिक रचना है। ग्रन्थारम्भ मे कवि ने कुछ श्रेष्ठ वैष्णवो की इस प्रकार स्तुति की है—

[1] वर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित प्रति १२; राजकीय सग्रह ४९४८ (एशियाटिक सोसाइटी) लिपिकाल १२३३ बगाब्द।

जय जय नरोत्तम जय श्रीनिवास
पंडित गोस्वामी जय गदाधरदास ।
जय नरहरि जय श्रीरघुनन्दन
विघ्नविनाश हेतु करिया स्मरण ।

वंगीय साहित्य परिषद् के २०५० संख्यक हस्तलिखित प्रति में गौर किशोर दास रचित कुछ पद मिलते हैं उनमें से एक पद में 'किशोर दास' की छाप मिलती है। वहाँ तो छन्द सुरक्षा के लिए कवि का नाम का पूर्वांश छोड़ना पड़ा। अनुमान होता है कि आलोच्य कवि और 'किशोर दास' या गौर किशोर दास दोनों अलग थे।

नृप वैद्यनाथ—

नरहरि चक्रवर्ती के 'गीत चन्द्रोदय' की हस्तलिखित प्रति में 'नृप वैद्यनाथ' की छाप का एक ब्रजबुलि पद संगृहीत है। वह पद नीचे उद्धृत किया जाता है।

प्रथम मिलन—

प्रथम मिलन अवसर पर राधा अत्यन्त भयभीता है अतएव नाना प्रकार से कृष्ण से अनुनय विनय करती है—

हाम नवनागरी माधाइ ।
बले जनि परशह मदन दोहाइ ॥
हठ जदि करह हामाए ।
आरतिपरमधन कबहि न पाए ॥
अतिरसे ना हइह भोरा ।
हाम कमलिनी तुहुँ नुरिखल भवरा ॥
भवरा नागर दुहु तुले ।
मुकुलित कुसुमे सेह नाहि भूले ॥
शुन शुन विनति हमारा ।
सहजे भुजब रति हाम नारी अबरा ॥
लहुँ लहु परशिह मोरे ।
भाग सा मील्ए दुलह पियारे ॥
एबे नव ऊपल जौवने ।
कांच कनया फल बदरी समाने ॥

मिनति करहुँ तुआ पाए ।
अवला ए वल फन्दिले ना जुआए ॥
तुहुँ विदगध शिरोमणि ।
मिनति करिए बोलो हाम ने नविनी ।
नृप वैद्यनाथ यह भावि ।
वाला रमणी बहुत पुण्ये पावि ॥

विद्यापति से साम्य—

इस पद में स्पष्ट ही विद्यापति के पद की गूंज है । संभवत: नृप वैद्यनाथ भी मैथिल रहे हैं । विद्यापति के प्रभाव के कारण ही 'नृप' वैद्यनाथ छाप वाले पद विद्यापति के पदों के संकलन में ही मिला दिए गए । 'पदकल्पतरु' के २३८८ सख्यक पद में वैद्यनाथ का नाम आता है । प्रमाणों के अभाव में नृप वैद्यनाथ के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । पर साहित्यिक जाच से वह अवश्य ही व्रजबुलि साहित्य के सफल कवि सिद्ध होते हैं ।

घनश्याम दास : जीवन वृत्त—

घनश्याम दास या घनश्याम कविराज महाकवि गोविन्द कविराज के पौत्र और दिव्य सिंह के पुत्र थे । इनका समय अनुमानिक १६५३ सन् ईसवी माना जाता है । श्रीनिवास आचार्य के पुत्र गोविन्दगति घनश्यामदास के गुरु थे ।[1]

नरहरि दास के पदों के साथ पदों का मिश्रण—

व्रजबुलि साहित्य के श्रेष्ठ रचयिताओं में से घनश्याम दास भी एक हैं । अपने पितामह गोविन्द कविराज के समान इनके पदों में भी अनुप्रास झंकार और अलकारों की अनुपम छटा है ।

घनश्याम दास के बहुत से पद नरहरि दास (चक्रवर्ती)—जिन्होंने घन-श्याम दास की छाप से कुछ पदों की रचना की[2]—के पदों के साथ घुल मिल

---

[1] 'कर्णानन्द', पृ० २९ ।

[2] 'भक्तिरत्नाकर' के रचयिता तथा पदकर्ता नरहरि चक्रवर्ती ने ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय देते हुए इस प्रकार लिखा है—

'ना जानि कि हेतु हैल मोर दुइ नाम ।
नरहरि दास आर दास घनश्याम ॥'

गए हैं। सच्चा साहित्यिक भाव तथा भाषागत आभ्यन्तरीण प्रमाण द्वारा घनश्यामदास के पदो को अनायास ही नरहरि चक्रवर्ती के पदो से पृथक कर सकता ह।

रचनाएँ—

घनश्याम दास ने 'गोविन्दरतिमजरी'[1] नामक एक वैष्णव रसालकार विषयक सस्कृत ग्रन्थ की रचना की। इसमें उनके स्वरचित बहुत से पद उद्धृत ह, सस्कृत श्लोक के स्वणसूत्र में ब्रजबुलि पदो की मणिमाला गुथित है। पद सख्या ४६ है उनमें नित्यानन्द वन्दना विषयक एक पद बगला में है।

घनश्याम दास के पद—

'रस-मजरी, पदरत्नाकर पदरससार, अप्रकाशित पदरत्नावली पद कल्पतरु क्षणदागीत चिन्तामणि 'दास-हस्तलिखित सग्रह, सकीर्तनामृत आदि विभिन्न वैष्णव पद-सग्रह-ग्रन्थो में सकलित ह। घनश्यामदास के सस्कृत तथा बगला पदो की रचना भी अत्यन्त प्रौढ तथा प्राजल ह। घनश्यामदास की ब्रजबुलि रचना के उदाहरण स्वरूप दो चार पद नीचे उदधृत किए जाते हैं।

कृष्ण स्वरुचि से राधा के अग प्रत्यग का शृगार करते हुए उनकी अपूर्व लावण्य माधुरी का निहार रहे हैं—

जावक रचइते सचकित लोचन
पद सये वदन सचार।
अधर राग सये बुझि अनुभव कर
कौन अधिक उजियार॥
देख देख कानुक रग।
राइक येन बनायत अभिमत
निरखि निरखि प्रति-अग॥

---

[1] राजकीय सग्रह (एशियाटिक सोसाइटी) ३७२५ ४०६६, कलकत्ता विश्व विद्यालय की हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या ३२५, वर्द्धमान साहित्य सभा की हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या ५२३ ख। ऐसा प्रतीत होता है कि वेणी माधव दे का प्रकाशित सस्करण किसी खण्डित हस्तलिखित प्रति पर आधारित ह।

चरण-विभूषण मणिगण उजर
श्याम मुरति परतेक ।
निरखव लाख नयने हेन मानये
अतये से भेल अनेक ॥
किये प्रतिविम्ब - दम्भ संये निज तनु
चरण - निछनि परकाश ।
सम्बर - वेरी - विजय वेकत भैल
भण घनश्यामर दास ।[1]

इस पद के भाव चमत्कार मे कवि की प्रतिभा चमकती है—

वारहमासा—

वियोगिनी रावा की मर्म पीडा को कवि ने वारहमासे में वर्णित किया है । उसके कुछ पद यहाँ उदाहरण स्वरुप उद्धृत किये जाते है—

(शिशिर)--

देख शिशिर-निशि बहि गेल ।
मझु पियक दरश ना भेल ॥
मधु-माम पहिलहि साज ।
हत मदन संये ऋतु राज ॥
हत मदन सये ऋतु-राज आवत ।
भ्रमर गावत मातिया ॥
कुहरे कोकिल सतत कुहु कुहु ।
कुहुलिया उठे छातिया ॥[2]

(वैशाख)—

अव भेल माह वैशाख ।
तरु कुसुमे भरु नव शाख ॥
वह मलय - मारुत मन्द ।
झरु माधवी - मकरन्द ॥
झरु माधवी मकरन्द गन्धहि ।
मत्त मधुकर झंकहि ॥

---

[1] पदकल्पतरु, २७३९ ।
[2] वही, १८१९

टङ्कारि फाम्मुंक साधि मनसिज।
बिधे - मरम निशङ्कहि ॥[१]

(जेठ)— इह जेठ पठल आगि।
मझु दहत तनु वन लागि ॥
रहु वेढ़ि आग ना पाग।
नहि जीउ हरिणि निकाग ॥
नहि जीउ हरिणि निकाग दास ना।
निकसे फाफर धूमहि ॥
हृदय बीदर गेच गगधर।
सतत लुठत भूमहि ॥[४]

(सावन)— अब भल गावण मास।
अब नाहि जिवनक आश ॥
धन गगन गरजे गभीर।
हिया होत जनु चौचार ॥
हिया होत जनु चौ-चीर घोर ना
याथे पलकाधो आर रे।
झलके दामिनि खोलि दापसे
मदन लेइ तलोयार रे ॥[३]

यद्यपि बारह-मासे में कवि ने काव्य गति का ही पूणतया अनुकरण किया है तथापि वस्तु-स्थापना में कवि का कुछ अपनापन दीखता है। वह अपनापन ही कवि-वशिष्ट्य है।

वक्रोक्ति अलंकार का चमत्कार—

संस्कृत श्लोक[४] के अनुकरण पर रचित राधा-कृष्ण की उक्ति प्रयुक्ति विषयक व्रजबुलि के इस पद में वक्रोक्ति-अलंकार का चमत्कार है—

---

[१] पदकल्पतरु १८२०।

[२] वही १८२१।

[३] वही १८२३।

[४] कोऽयं द्वारि हरिः गिरिगुहा हित्वाग्र हर्म्ये कुत
मान्तोऽहं मधुसूदनस्तदिह किं पद्माल्य गच्छतु।
कृष्णोऽस्मीति गुणाऽननुवदति किं न श्याममूर्ति प्रिये
सामामापरिखेदित मिमिति सुस्मरो हरिः पातुव ॥

'को इह पुन पुन करत हुंकार ।
हरि हाम जानि ना कर परचार ॥
परहरि सो गिरि कन्दर माझ ।
मन्दिरे काहे आवब मृगराज ॥
सो हरि नहों मधु सूदन नाम ।
चलु कमलालय मधुकरी ठाम ॥
ए घनि सो नह हाम घनश्याम ।
तनु बिनु गुण किए कहे निज नाम ॥
श्याम मूरति हाम तुहुं किना जान ।
तारापतिभये बुझि अनुमान ॥
घर-माहा रतनदीप उजियार ।
कैछने पैठब घन-अंधियार ।
राधारमण हाम कहि परचार ।
राकारजनि नहे घन-अंधियार ॥
परिचयपद जब सब भेल आन ।
तबहि पराभव मानल कान ॥
तैखने उपजल मनमथसूर ।
अब घनश्याम-मनोरथ पूर ॥'[1]

वर्षा की अंधेरी रात में राधा की दशा—

वर्षा की भयावनी अंधेरी रात वियोगिनी राधा पर गजब का जुल्म ढाह रही है—

डाके डाहुकि झमके झुमकल
झिंझि झनकत झांझिया ।
डिण्डिमायित मण्डूकीरव
मडर नाटक-साजिया ।
रे घन घननह गहन दूरगह
गगने घन घन गर्जिया ।
आवए रतिपति मत्त गजवर
विरहिणीगण तर्जिया ।

---

[1] पदकल्पतरु, ३५० ।

हाने तनु मन पलके पलकन
झलके दामिनी-कातिया।
(बर-) धार खरग उघारि झारत
थोरसे भर मातिया।
वारिबिन्दु नह पर जिउ सहार
असम शर-बरखन्तिया।
नन्दनन्दन-चरणे मन घन
श्यामदास नमन्तिया॥[1]

उपर्युक्त पदो के उदाहरण से स्पष्ट है कि घनश्याम दास ब्रजबुलि पदो की रचना में अति कुशल थे। अपने पितामह गोविन्ददास कविराज के समान न होने पर भी घनश्याम दास के पद ब्रजबुलि साहित्य में यथेष्ट महत्व का स्थान रखते है।

सुन्दर दास जीवन वृत्त एवं रचनाएँ—

वैष्णव-साहित्य में सुन्दरदास नाम के किसी भी पद-कर्त्ता का उल्लेख नहीं मिलता है। श्रीसुकुमार सेन ने वंशानन्द[2] ग्रन्थ के आधार पर अनुमान किया है कि आलोच्य कवि श्रीनिवास आचार्य के पौत्र गोविन्दगति के द्वितीय पुत्र, सुन्दरानन्द ठाकुर है।[3] सुन्दरदास का समय लगभग १६०७ सन् ईसवी है। पदकल्पतरु में सुन्दरदास' के दो पद[4] सकलित हुए हैं। जिसमें से एक ब्रजबुलि तथा दूसरा बंगला का पद है। ये दोनों ही पद बलराम के गोष्ठ-लीला विषयक हैं। ये पद विशेष महत्त्व के हैं क्योंकि सारा वैष्णव-साहित्य ही या तो कृष्ण-लीला विषयक या गौराग महाप्रभु विषयक पदो से भरा हुआ है, उसमें सुन्दरदास के बलराम विषयक ये दोनो पद अपवाद स्वरूप हैं। कवि की ब्रजबुलि रचना के निदर्शन स्वरूप एक पद उद्धृत किया जाता है।

गैया चराने के लिए जाते हुए बलराम का अपूर्व रूप-सौन्दर्य का वर्णन है—

---

[1] शेखर के एक भर बादर माह भादर पद की स्पष्ट अनुकृति प्रतीत होती है।

[2] पृ० २८।

[3] श्रीसुकुमार सेन हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर', पृ० २३४।

[4] संख्या-१३२७ १३२८।

बलराम का रूप सौन्दर्य—

गलित-रज-गिरि जिनि तनु सुन्दर
जानु-लम्बित वन-माल ।
नील-वसन बनि अपरूप-शोभनि
मग्कने हीर मिशाल ॥
धावत धवली-पाछे बलराम ।
चंचल नयन ढुलए जनु पंकज
हेरि मुगध भेल भेकाम ॥
उभ करे धवली शांवली बलि डाकइ
कोमल-वल्म लेइ काम्वे ।
सघने खसये शिखि-पिंज मनोहर
छान्दनडुरि देइ बान्धे ॥
बयान चांद अधर जनु बान्धुली
ताहे मधुर मृदु हास ।
बरिसए अमिया श्रवण भरि पीवइ
सहचर सुन्दरदास ॥[1]

इस पद में वर्णन-लालित्य है। यद्यपि सुन्दरदास रचित दो ही पद उपलब्ध हैं पर ये अल्प उदाहरण ही इस बात के साक्षी हैं कि कवि ब्रजबुलि का सफल रचनाकार था । 'अप्रकाशित पदरत्नावली'[2] मे 'कवि सुन्दर' की छाप का एक पद मिलता है पर वह सुन्दर कवि ब्रजभाषा का कवि है ।

जगदानन्द दास जीवन वृत्त—

जगदानन्द दास श्रीखण्ड के रघुनन्दन के वंशधर थे । ये सेनभूम के जोफलाई ग्राम में बस गये । कवि की जन्मतिथि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है । इनकी मृत्यु १७८२ सन् ईसवी मे हुई ऐसा इनकी वंश परम्परा में माना जाता है । उनके निवास स्थान जोफलाई ग्राम में प्रतिवर्ष उनका मृत्यु-दिवस मनाया जाता है ।[3]

---

[1] पदकल्पतरु, १३२७ ।

[2] संख्या ४६४ ।

[3] डा० दीनेशचन्द्र सेन, बंग भाषा और साहित्य, पंचम संस्करण ।

१६५३ १६५६ सन् ईसवी का एक हस्तलिखित प्रति में जगदानन्द छाप के एक पद की प्राप्ति से विद्वानो के मन में आलोच्य कवि जगदानन्द की मृत्यु तिथि की प्रामाणिकता के संबध में सन्देह जगा।[१] परन्तु प्रेमदास के वंशी शिक्षा[२] में वंशीवदन के शिष्य जगदानन्द की इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

'श्री जगदानन्द बन्दो मधुर चरित जिंह बरणिला ग्रंथ वंशीलीलामृत।'

इससे यह ज्ञात होता है कि १६ वीं शताब्दी के अंत में लगभग वंशी वदन के एक जगदानन्द नामक शिष्य हुए जिन्होंने 'वंशीलीलामृत ग्रंथ और कुछ फुटकर पदो की रचना की थी। इससे आलोच्य कवि जगदानन्द की मृत्यु तिथि की प्रामाणिकता के संबध में संदेह नहीं रह जाता। कालिदास नाथ ने जगदानन्द की पदावली का संकलन किया था। उन्होंने 'श्रीजगदानन्द पदावली' की भूमिका[३] में जगदानन्द का जीवनी विषयक थोड़ा कुछ तथ्य संगृहीत किया है।

पद—

जगदानन्द ब्रजबुलि के कुशल कवि थे। इनके ब्रजबुलि के बहुत से पद 'गौरपदतरंगिणी, 'कीर्तनानन्द' 'अप्रकाशित पदरत्नावली,' 'पदकल्पतरु, 'दास हस्तलिखित-संग्रह-ग्रंथ आदि विभिन्न संग्रह ग्रंथो में संकलित हैं।

पदों की रचना में इन्होंने गोविन्ददास कविराज का अनुकरण किया। भाषा और छन्द पर इनका पूरा अधिकार था। ध्वनि झंकार और शब्द चित्र उपस्थित करने में कवि का वैशिष्ट्य दीखता है।

राधा का कमनीय शोभा—

निम्नोद्धृत ब्रजबुलि का पद जगदानन्द के श्रेष्ठ पदो में से है सखिया से घिरी हुई वस्त्राभूषणो से सुसज्जित कृष्ण से मिलने के लिए जाती हुई रूपसौन्दर्यभूषिता राधिका की मनोहारी कमनीय शोभा का वर्णन है —

मंजु विकच-कुसुम-पुंज
मधुप-शब्द गुंज-गुंज
कुंजर गति गंजि गमन मंजुल कुल नारी।

[१] श्री सुकुमार सेन हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २३७।
[२] पृ० २१।
[३] पृ० १।

घनगंजन चिकुरकुंज,
मालति-फुलमालरंज,
अन्जनजुत कंजनयनी खंजन गति हारि ॥
कांचनरुचिरुचिर अंग,
अंगे अगे मरु अनंग,
किंकिणि करकंकण मृदु झंकृत मनुहारी ।
नाचत जुग भुरु भुजंग,
कालिदमनदमन रम,
संगिनि सवरंगे पहिरे रंगिल नील सारी ॥
दसन कुंदुकुसुमनिंदु,
वदन जितल शरद-इन्दु,
बिन्दु छरम-घरमें प्रेमसिन्धु प्यारी ।
ललिता धरे मिलित हास,
देहदीपति तिमिर नाश,
निरखि रूप रसिक भूप भूलल गिरिधारी ॥
अमरावति जुवतिवृन्द,
हेरि हेरि रूप पड़ल धन्द,
मन्दमन्द-हसना नन्दनन्दन-सुखकारी ।
मणि माणिक नख विराज
कनक नूपुर मधुर बाज
जगदानन्द थल-जलरुह चरणक बलिहारि ॥[1]

इस पद मे अपूर्व नाद-सौन्दर्य झंकृत हो रहा है ।

जगदानन्द रचित तीन चित्रगीत भी मिलते है । उदाहरण के लिए उनमें से एक नीचे उद्धृत किया जाता है—

जामिनी दिनपति गगने उदय करु
कुमुद कमल खिति माझ
अपरशे दुहुक परश-रस कौतुक
निति निति जगते विराज ।
वर-रामा हे
बुझवि तुहुं सुचतुर

[1] कालिदास नाथ सग्रह, पृ० २१, कृष्णपदामृतसिन्धु, पृ० २०९ ।

आपन पराण जाक कर सोंपिए
सो पुन कबहुँ नहँ दूर ।
जीवन अवधि हाम आपना बेचलु
तन मन एक करि तोए
किए पुया यलवत प्रेम-पदातिक
तिल आध नादेह मोए ।
काचन वदन कमल लागि लोचन
मधुकर मरत पियासे
लिखनक आदि आखर मेलि समुझवि
कहे जगदानन्ददासे ॥[1]

इस पद के आद्याक्षरों में द्वारकाप्रवासी कृष्ण का राधा के लिए भेजा हुआ सन्देश छिपा है— 'आबब आजी कि कालि'।

अनुप्रासों की छटा और भाषा साहित्य से जगदानन्द के पद शोभित अवश्य हैं पर उनमें भाव-उत्कर्ष का सर्वथा अभाव है।

रचनाएँ —

जगदानन्द ने 'भाषा शब्दार्णव' नामक एक छन्दात्मक शब्दकोष की रचना का भी प्रयास किया था, यह असमाप्त रचना कालिदास नाग के संकलन में प्रकाशित हुई है। पद रचयिताओं को आसानी से मन चाहे शब्द मिल जाएँ' इसी उद्देश्य से इस प्रकार के ग्रन्थ की रचना की ओर कवि प्रवृत्त हुआ। 'गीत-गोविन्द' के अनुवाद का भी कवि ने प्रयास किया था।[2]

जगदानन्द नाम के एकाध कवि का और उल्लेख मिलता है पर वे परवर्तीकाल के थे।

गोपाल दास : जीवन वृत्त—

रामगोपालदास (गोपालदास) श्रीखण्ड के निवासी थे। ये जाति के वैद्य थे। श्रीखण्ड के रघुनन्दन के वंशज रतिकान्त ठाकुर के शिष्य थे। रामगोपाल

[1] दास—हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ।

[2] वर्धमान साहित्य सभा का हस्तलिखित ग्रन्थ, संख्या १८५ (केवल एक ही पृष्ठ उपलब्ध है)।

के पिता श्यामराय, वडे भाई मदन राय और पुत्र पीताम्वर दास थे। रामगोपाल दास ने १५९५ शकाव्द में रसकल्पवल्ली (या रावाकृष्ण-रसकल्पवल्ली)[१] की रचना की। इसमे विभिन्न पद रचयिताओ के पद, साथ ही कवि के स्वरचित पद भी सग्रहीत है। ग्रथ मे कवि ने आत्म परिचय दिया है जिसमे पता चलता है कि कवि महाप्रभु चैतन्य देव के समसामयिक भक्त श्रीखंड निवासी चक्रपाणि चौंधरी के वृद्ध प्रपौत्र थे।

रचनायें—

'रसकल्पवल्ली' में कवि के स्वरचित ६ व्रजवुलि के पद उद्धृत हुए हैं जिनमें से दो पद 'पदकल्पतरु'[२] में गोविन्ददास की छाप से मिलते हैं। कवि की प्रामाणिक रचना के कारण 'रसकल्पवल्ली' के प्रमाणों को ही अधिक पुष्ट मानना उचित होगा। गोपालदास की छाप वाले ६ पद 'पदकल्पतरु' में सकलित हुए है। जिनमें से २९६६ सख्यक पद स्पष्ट ही व्रजभापा का है। स्वर्गीय सतीश चन्द्र राय महाशय का अनुमान है कि यह पद वृन्दावन निवासी पट्-गोस्वामी मे से गोपाल भट्ट गोस्वामी रचित है, इस अनुमान का कारण है 'पदकल्पतरु' में सगृहीत गोपाल भट्ट गोस्वामी के दो पदो[3] की भापा से उपरोक्त पद का भाषा साम्य 'क्षणदागीत चिन्तामणि' में गोपाल दास की छाप में एक व्रजवुलि का पद[४] उद्धृत है। पीताम्वर दास ने 'रस-मजरी' में अपने पिता रामगोपालदास के वहुत से पद सकलित किए है।

गोपालदास निस्सन्देह व्रजवुलि साहित्य के उच्चकोटि के कवियो की श्रेणी का दावा कर सकते है। प्रमाण के लिए दो व्रजवुलि के पद नीचे उद्धृत किए जाते है।

---

[१] रामगोपाल और उनकी रचना 'रसकल्पवल्ली' का विस्तृत परिचय शौरीन्द्रमोहन गुप्त के लेख 'श्रीखण्डेर प्राचीन वैष्णव कवि' (प्रदीप, भाद्र १३१२ वगाव्द, पृ १६२-६७) में सर्वप्रथम मिलता है। वहुत दिनो के पश्चात् श्रीहरेकृष्ण मुखोपाध्याय ने पुन इस पर प्रकाश डाला (साहित्य परिपद् पत्रिका ३७, पृ. ९९-१२४)।

[२] सख्या—१०५२, १०७६।

[३] सख्या—१०८८, २८३३।

[४] सख्या–२३३।

अभिसार—

शरद पूर्णिमा की रात्रि में अभिसार को जाती हुई राधा के रूप लावण्य का मनोहारी वर्णन है—

कि कहब राइक हरि-अनुराग।
निरवधि मनहिं मनोभव जाग॥
सहजें रुचिर तनु साजि कत भाति।
अभिसरु शारदपुनमिक राति॥
धवल वसन तनु चन्दनपूर।
अरुण-अधरे धरु विशद कपूर॥
कबरी उपरे धरु कुन्द विथार।
कण्ठे बिलम्बित मोतिमहार॥
करवे श्रापल करतल काति।
मल्यजचन्दनपल्यंक पाति॥
धाव कि कौमुदी तनु नह चिन्ह।
जइछन क्षीर नीर नह भिन्न॥
छाया धरी ना छाडल बाद।
चरणे शरण कर ज्ञामिनी-आध॥
गोपालदास कह सुचतुर गोरी।
नूपुरक रतन तुले मुख पूरि॥[1]

खण्डिता—

कृष्ण की व्यर्थ प्रतीक्षा में रात्रि का अवसान होना है, सवेरे कृष्ण आ धमकते हैं। खण्डिता राधा मन भरकर कृष्ण को उलाहने देती है—

छल करि वाणी कतए पारलपसि
तोहारि वचन परमाण।
चारिप्रहर राति जागि पोहायनु
आयलि रानि विहान॥
माधव, आजि बड देखलि दुरा।
आगे इह आरति ना मुझिमा अब तोह
हेरि पायनु बड गुन॥

[1] 'क्षणदा-गीत-चिन्तामणि', २३३।

भालहि सिन्दुर-काजले पूरल
वदनहि दशनक रेख।
हेरइते तोहे लाज मोहे होयत
जावकराग परतेख ॥
कमलिनी पाइ सरस रसे भूललि
ना बुझलि मालतीगन्ध।
कहइ गोपाल दास नाहि समुझलि
को फुले किये मकरन्द ॥[1]

यह पद गोविन्ददास के ३०५ संख्यक[2] पद की छाया वहन करती हुई भी कवि की मौलिकता और काव्य कुशलता का स्पष्ट परिचायक है।

रचनायें—

'रसकल्पवल्ली' के अतिरिक्त कवि की और भी रचनाएँ उपलब्ध हैं—चैतन्यतत्त्वसार[3] सरकारठाकुरशाखावर्णन[4] अष्टरस, 'जगन्नाथवल्लभ' नाटक का अनुवाद[5] और गोपालदास के नाम से 'पाषण्डदलन' निबन्ध मिला है। संस्कृत निबन्ध 'अष्टरस' के अवलम्बन पर रामगोपालदास के पुत्र पीताम्बरदास ने बंगला में 'अष्टरसव्याख्या' की रचना की।

तरुणी रमण रचनायें और जीवन वृत्त—

तरुणी रमण या तरणी रमण ने ब्रजबुलि में बहुत से पदों की रचना की। कवि का वास्तविक परिचय अभी ज्ञात नहीं हो सका है। विद्वानों ने अनुमान के आधार पर कवि के सम्बन्ध में भिन्न तथ्यों का संकलन किया है। पदकल्पतरु में केवल एक ही पद [6]तरुणी रमण की छाप में मिलता है, यह ब्रजबुलि

---

[1] पदकल्पतरु—३९५।
[2] वही—३९५।
[3] साहित्य परिषद् पत्रिका, ६, पृ ५६।
[4] वही ६, पृ २६१।
[5] कलकत्ता विश्वविद्यालय का हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २५८२, (लिपिकाल १२३५ बंगाब्द)।
[6] वही संख्या २६२६, (लिपिकाल १०८२ मल्लाब्द)।
[7] संख्या—३५४।

में है। मुकुंददास गोस्वामी के 'सिद्धांत चन्द्रोदय' में तरुणी रमण के बहुत से पद संग्रहीत हैं। ग्रंथ के आठवें अध्याय के ६१ पदों में से ४३ पद तरुणी रमण के हैं। इन ४३ पदों में से ६ बंगला और बाकी ब्रजबुलि के हैं। इन पदों पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विशेष विषय पर यह क्रमबद्ध रचना की गई है। इन पदों के सम्बन्ध में एक बात और विशेष ध्यान देने की यह है कि कवि की अधिकांश ब्रजबुलि पदों में तरुणी रमण की छाप है और बंगला पदों में चण्डीदास की। सम्भवतः एक ही कवि ने ब्रजबुलि तथा बंगला पदों के लिए दो भिन्न छापों का प्रयोग किया हो। सहजिया ग्रंथ 'रसासार'[1] से भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि चण्डीदास और तरुणी रमण एक ही व्यक्ति थे।[2] कदाचित कवि का वास्तविक नाम चण्डीदास था, पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। तरुणी रमण रचित ब्रजबुलि पद का एक उदाहरण खण्डिता राधा की कृष्ण के प्रति मानोक्ति—

खण्डिता—

ए हरि माधव कर अवधान।
जितल विमाधि औषध किबा काम॥
अंधियारा होइ उजर करे जोइ।
दिवसक चांद पूछन नाहि कोइ॥
दरपण लेइ कि करब आंधे।
शफरी पलायब कि करब बांधे॥
सायरि शुखायब कि करब नीरे।
हाम अबाध तुआ कि करब धीरे॥
की करब बंधु गण विधि भेल बाम।
निशि परभाते आयलि श्याम।
तरुणी रमण भण एछन रंग।
रजनी गोयायले कानक संग॥[3]

---

[1] कलकत्ता विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति, संख्या ११११।

[2]
इहा जानि चण्डीदास तरुणी रमण।
गीत—छन्द गाहिल रितीति स धन॥

[3] सिद्धान्त-चन्द्रोदय आठवाँ अध्याय ३९।

प्रेमदास : जीवन वृत्त -

कवि का असली नाम पुरुषोत्तम मिश्र और उपाधि सिद्धान्तवागीश थी, 'प्रेमदास' (प्रेमदादास) उनका गुरुदत्त नाम था। गोविन्दराम और राधाचरण कवि के दो बडे भाई थे। पिता गंगादास, पितामह मुकुन्दानन्द और प्रपितामह जगन्नाथ मिश्र थे। ये काश्यपगोत्रीय थे। कवि का निवास स्थान कुलनगर वर्द्धमान जिले में मानकर के पास था। १६ वर्ष की आयु में प्रेमदास घर से भागकर वृन्दावन मे गोविन्ददेव के मन्दिर में रसोइया का काम करने लगे। कुछ दिनो के बाद उनके बडे भाई गोविन्द राम उन्हें समझा बुझाकर घर लौटा लाए। किंवदन्ती है कि कवि को स्वप्न मे श्रीचैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैत से कवित्व रचनाशक्ति का वर प्राप्त हुआ था। कवि ने अपनी जीवन संबन्धी उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख 'चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी' के अन्तिम पृष्ठो और 'वंशी-शीक्षा' मे भी किया है। वन्दना के अंश में कवि ने तीन प्रभु के बाद ही वंशीवदन, जाह्नवी ठाकुरानी, रामाइठाकुर और हरि गोसाई का स्मरण किया इससे विद्वानो का अनुमान है कि प्रेमदास बाघनापाडा के गोस्वामियो के शिष्य थे।[1]

रचनाएं—

प्रेमदास का 'चैतन्यचन्द्रोदयकौमुदी'[2] चैतन्य-जीवनी काव्य, कवि कर्णपुर के 'चैतन्यचन्द्रोदय नाटक' का काव्यानुवाद है। कवि ने सन् ईसवी १७१२-१३ में यह अनुवाद किया।[3] यह ग्रन्थ केवल अनुवाद मात्र नही, ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व का है। प्रेमदास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ वंशी-शिक्षा १७१६-१७ सन् ईसवी मे रचा गया।[4]

---

[1] श्रीसुकुमारसेन · बांगला साहित्येर इतिहास, पृ० ६४४।

[2] रायल एशियाटिक सोसाइटी की हस्तलिखित ग्रन्थ-संख्या-५४४४, १८५० सन् ईसवी में मुद्रित हुआ।

[3] 'वेदनेत्ररसक्षौणीमिते शाके मुदान्वित ।
लिलेख प्रेमदास कौमुदी चन्द्रोदयस्य वै ।। 'एशियाटिक सोसाइटी, हस्तलिखित ग्रन्थसख्या ५४४४।
'शकादित्य पोल शत चौत्रिश शकेते, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक सुखेते, लौकिक भाषाते मुयि करिनु लिखते ··(वंशी शिक्षा)।

[4] 'पौल शत अष्टत्रिंश शकेर गणने, श्रीश्रीवंशीशिक्षा ग्रन्थ करिनु वर्णने पृ० २३६। योगेन्द्रनाथ दे ने १३३१ बंगाब्द में इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया।

पदावली साहित्य में उनका कृतित्व अधिक प्रकाशित हुआ। पदकल्पतरु' में प्रेमदास के ३१ पद संगृहीत हैं जिसमें से ६ ब्रजबुलि के हैं।[1] 'पदकल्पतरु से पहले किसी भी अन्य प्राचीन संग्रह ग्रन्थों में प्रेमदास के पद संकलित नहीं हुए हैं। 'गौरपदतरंगिणि', 'अप्रकाशितपद रत्नावली', कीर्तन-गीत रत्नावली' में प्रेमदास के कुछ पद मिलते हैं। ब्रजबुलि की तुलना में प्रेमदास के बंगला पद अधिक सुन्दर हैं। प्रेमदास की ब्रजबुलि रचना का उदाहरण—

राधा कृष्ण से कहती हैं—

माधव, मोहे कहसि चाँदमुख।
चांदक गुण कहए सब सुशीतल
चांदे जनम भरि दुख॥
जलनिधि-उदर ऊयल शशधर
गरल सगें उपनीत।
सेवल शंकर शिरसि रहल जब
ताहा फणी हेरि असम्बित॥
पुन जाइ गगने करल आरोहण
ताहे गरासे राहु मन्द।
देवे कलंकित होयल मृगधरि
असित पक्षे तनु-अंत॥
काहे मिनति करु कपटहिं नागर
हेरि विरस मन होय।
प्रेम-दास कह चांद वदन चाह
चकोरे पीयूष देइ सोय॥[2]

इस पद को ब्रजबुलि-साहित्य में ऊँचा स्थान दिया जा सकता है विषय की दृष्टि से इसमें मौलिकता है।

घनरामदास वैशिष्ट्य—

पदकल्पतरु में घनरामदास रचित १६ पद उद्धृत हुए हैं जिनमें से १५ बंगला और एक ब्रजबुलि[3] में है। घनरामदास के सभी पद बाल-कृष्ण विषयक हैं।

---

[1] संख्या ४७५ ५५८ ५६१, ५९२, ५९६, ८०७।

[2] अप्रकाशितपदरत्नावली ३९९।

[3] संख्या—११५२।

गौडीय वैष्णव भक्तकवियो ने मुख्य रूप से मधुर रस में रचनाएँ की। वात्सल्य रस की रचना करने वाले ब्रजबुलि साहित्य में केवल दो ही चार कवि हुए हैं। इसी दृष्टि से ब्रजबुलि साहित्य में घनरामदास का महत्त्व है।

रचनाएँ—

पदकल्पतरु में दो बगला पद[1] घनश्यामदास की छाप में मिलते हैं, एक राधा-जन्मावसर सम्बन्धी और दूसरे में कृष्ण ने अपने मुह में यशोदा को विश्वरूप दर्शाया। 'सकीर्त्तनामृत' मे श्रीकृष्ण की बाल-लीला विषयक चार पद[2] घश्नयामदास की छाप में मिलते हैं। इन पदो की भाषा और शैली घनरामदास के पदो के अनुरूप ही है, इनमें से कुछ पद 'पदकल्पतरु', 'कृष्ण-पदामृतसिन्धु,' 'कीर्त्तनगीतरत्नावली' मे घनरामदास की छाप से सकलित हुए हैं।

घनश्याम दास नाम के और कवि—

अब प्रश्न यह उठता है कि घनरामदास और घनश्यामदास क्या एक ही व्यक्ति थे ? बगला साहित्य मे घनराम (चक्रवर्ती) नाम से 'धर्म-मगल' काव्य के रचयिता केवल एक ही व्यक्ति के विषय में अभी ज्ञात है। इनकी जीवनी से अनुमान होता है कि ये राम भक्त थे, अतएव बाल-कृष्ण विषयक पदो के रचयिता घनराम दास और घनराम चक्रवर्ती की अभिन्नता में सन्देह है। वैष्णव साहित्य मे 'घनश्याम' नाम के बहुत से व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है, पद रचयिता की दृष्टि से जिनमे से प्रमुख घनश्याम कविराज (गोविन्द कविराज के पौत्र) हैं जो ब्रजबुलि साहित्य के प्रसिद्ध रचयिताओ में से थे। घनश्याम कविराज के सभी पद मधुर रस विषयक है, अतएव वात्सल्य रस विषयक 'घनश्याम' या 'घनराम' छाप वाले पदो के ये रचयिता रहे होंगे इसकी सभावना बहुत कम है।

रचनाएं—१७ वी शताब्दी के आरम्भ के लगभग 'श्रीकृष्णविलास'[3] नामक घनश्माम दास रचित एक कृष्णलीला-काव्य उपलब्ध हुआ है। इस काव्य में कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का वर्णन भागवत के अनुकरण

---

[1] संख्या–११३८, ११४५।

[2] सख्या–७६, ७८, ८१, ८७।

[3] रायल एशियाटिक सोसाइटी की हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या-५४२१ (खण्डित—२८३ पृ०)।

पर हुआ ह । घनश्याम दास के गुरु जयगोपालदास जाति-पाति की भेद भावना के घोर विरोधी थे श्री जीव गोस्वामी और श्रीनिवास आचार्य ने इनको अपने दल से बहिष्कार कर दिया था ।[1] वैष्णव-इतिहास शायद इसी कारण इनके सम्बन्ध में मौन ह । जमिनी-सहिता के अनुसार अश्वमेघ पर्व लिखनेवाले विभिन्न रचयिताओ में से घनश्यामदास भी एक थे । कवि की स्व-उक्ति से ज्ञात होता ह कि ये जाति के कायस्थ थे ।[2] अश्वमेघ-पर्व के लिखने वाले घनश्यामदास और 'श्रीकृष्ण विलास' के रचयिता घनश्यामदास एक ही व्यक्ति जान पडते हैं असभव नहीं यदि घनश्याम दास की छापवाले बाल-कृष्ण विषयक पदो के रचयिता भी ये ही घनश्यामदास रहे हों ।

और यह भी असभव नही यदि घनरामदास छाप वाले ब्रजबुलि पदो के रचयिता भी उपर्युक्त घनश्यामदास ही रहे हो । घनश्यामदास और घनरामदास नामों की अत्यधिक समानता के कारण दोनो नामो के परस्पर मिश्रण का अनुमान अनुचित न होगा । इस अनुमान का आधार पद का छन्द विषयक गोलमाल है । जब सम्पूर्ण पद मात्रिक छद में लिखा हुआ है तब अन्तिम चार पक्तियाँ पयार छन्द में क्या लिखी गई ? सभव ह घनश्यामदास के ब्रजबुलि के वात्सल्य रस विषयक पद के कारण ही छाप वाले पदो में घन रामदास का नाम जोड दिया गया हो, क्योकि घनरामदास के नाम से उपलब्ध सभी बगला पद वात्सल्य रस सबधी ह ।

घनश्याम दास का परिचय—

अनुमान होता है कि बगला पदो का रचयिता घनरामदास, घनराम चक्रवर्ती और घनश्यामदास से स्वतन्त्र ही १७वीं शताब्दी का कोई कवि रहा होगा जिसकी जीवन सामग्री अभी अधकार में ही ह, पुष्ट प्रमाण के अभाव में निश्चय के साथ कुछ कहा नही जा सकता ह ।

[1] भक्तिरत्नाकर में श्रीजीव-गोस्वामी का पत्र द्रष्टव्य ।

[2] उत्पत्ति कायस्थकुले नहि विद्यावन्त
अष्टदशा नाहि पदि अमर सुवन्त ।
हेन जन करे गात लोक उपहास
कृष्णेर किंकर (वह) घनश्यामदास ।

वात्सल्य—

घनरामदास की छाप से प्राप्त वात्सल्य रस विषयक ब्रजबुलि पद नीचे दिया जा रहा है—

पचवरिसवयसा—कृति मोहन
धावमान पर अंगना ।
पायस पाणितले आवर माखन
खायत मिटायत वयना ॥
दोले दोले मोहन गोपाल ।
प्रखर चरणगति मुखर किंकिणी कटि
लोटन लोलये वनमाल ।
सोनाय बांधिल भाल रुखनख उरे माल
पिछे दोले पाट-कि थोप ।
खेने आलगछि देइ खेने भूमे गड़ि जाइ
खेने परसन्न खेने कोप ॥
नन्द सुनन्द जशोमती रोहिणी
आनन्दे सुतमुख चाय ।
अरुण दृगंचल काजरे रंजित
हासि हासि वदन देखाय ॥
कुन्तले रतनमणि झलमल देखि ।
कुण्डले उज्ज्वल गंड काजररेखि ॥
घनराम—दास बोले शुन नन्दरानी ।
त्रिजगन्नाथ नाचाओ करे दिया ननी ॥[1]

ब्रजबुलि के इस पद में बंगला का मिश्रण स्पष्ट है, भाषा सीधी और सरल है।

राधामोहन ठाकुर : जीवन वृत्त—

ये श्रीनिवास आचार्य के वृद्ध प्रपौत्र थे। 'पदामृत-समुद्र' ग्रन्थ के मंगलाचरण में कवि ने जो अपना परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि इनके गुरु और पिता जगदानन्द थे। पिता के निवास स्थान चाकन्दी ग्राम में ही इनका जन्म हुआ।[2] इनका जन्म समय १६९९ सन् ईसवी के लगभग और मृत्यु समय १७७८ सन् ईसवी माना जाता है। राधामोहन ठाकुर कटवा से

[1] पदकल्पतरु, ११५२। [2] स्वर्गीय जगद्बन्धु बाबू के मतानुसार।

कुछ दूर मालिहाटि गाव क रहने वाले थे। व अपने समय के प्रमुख वष्णव पडितो में अन्यतम थे। मुर्शिदाबाद के कुजघाटा के महाराजा नन्दकुमार और पुटीया के राजा रवीन्द्र नारायण राधा मोहन ठाकुर के शिष्य थे। 'भक्तमाल' ग्रन्थ स मालूम होता ह कि पुटिया के राजा रवीन्द्र नारायण पहले शाक्त थे, परन्तु राधामोहन ने विचार विमर्श में राजपण्डितों को पराजित करके वष्णव धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित की और इस प्रकार राजा को विष्णु मत्र स दीक्षित किया। 'भक्तमाल' में वर्णित उपयुक्त घटना से राधामोहन के पाण्डित्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

स्वकीया परकीयावाद का सैद्धान्तिक विरोध—

११२५ बगाब्द में बगाल के दो प्रमुख वष्णव दल-स्वकीयावादी और परकीयावादी—में सैद्धान्तिक विरोध छिडा।[१] मत प्रायक्य ने इतना प्रचण्ड रूप ग्रहण कर लिया कि निणय के लिए प्रमुख वैष्णव पण्डितो की एक सभा बुलानी पडी। उस विद्वत मण्डली के सामने दोनो दलो को अपने मत के सिद्धान्तो को स्पष्ट करने को कहा गया। राधामोहन ठाकुर परकीयावादी दल के मुखिया थे इनके नेतत्व में परकीयावादी दल ही विजयी हुआ। इन्हें एक जय-पत्र प्रदान किया गया १७ फाल्गुन ११२५ बगाब्द में मुर्शिद कुली खा के दरबार में वह दलील रजिस्टर करवाई गइ। उपरिलिखित विवरण भी इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का ही परिचायक है।

रचनाएँ—

राधामोहन ठाकुर ने १८वी शताब्दी के आरम्भ में पदामृत समुद्र नामक पद-सग्रह ग्रन्थ का सकलन किया था। 'महाभावानुसारिणी' नामक इस ग्रन्थ की एक सस्कृत टीका भी लिखी थी जिसमें उनकी प्रगाढ विद्वत्ता और समीक्षक के सभी गुण स्पष्ट रूप में प्रकट ह। ये दोनो ग्रन्थ ही राधामोहन ठाकुर को वष्णव-साहित्य में अमर रखने के लिए पर्याप्त ह।

पदों का वैशिष्ट्य—

'पदामृत-समुद्र' में विभिन्न रचयिताओ के सकलित पदो की सख्या ७४६ ह जिसमें स कवि की स्वरचित पदो की सख्या २२८ है। पदकल्पतरु में

---

[१] विश्वभारती द्वारा प्रकाशित चिठिपत्रे समाज चित्र (दूसरा भाग) में एक पत्र प्रकाशित हुआ ह जिसमें शास्त्रार्थ का समय ११३७ बगाब्द (सन् १७३१ ई०) दिया हुआ है।

राधामोहन ठाकुर के १८० पद संगृहीत हैं, संग्रहकार वैष्णवदास ने 'पदामृतसमुद्र' से ही उन पदों का संकलन किया।

'पदकल्पतरु' में राधामोहन छाप के ऐसे पद जो पदामृतसमुद्र में नहीं है, वे संग्रहकर्त्ता वैष्णवदास के गुरु राधामोहन ठाकुर द्वारा रचे गए पद हैं। ये राधामोहन टेया निवासी द्विज हरिदास के वंशधर और पदकर्ता थे। राधामोहन ठाकुर ने ब्रजबुलि में ही अधिकांश पद लिखे उनके बंगला पदों की संख्या २३ और संस्कृत पदों की संख्या ५ हैं। इन्होंने शब्दालंकार बहुल कुछ चित्र-गीतों की भी रचना की। राधामोहन ठाकुर गोविन्ददास कविराज के अन्वानुसरण करने वाले पदकर्त्ताओं में से होते हुए भी इनके पदों में भावों का सौन्दर्य है। इनकी रचना शैली के उदाहरण स्वरूप ब्रजबुलि के दो पद उद्धृत किए जा रहे हैं।

श्रीकृष्ण वन्दना—

जय जय नन्द नन्दन चन्द।
अंग-दीपति निन्दि नीरद
नील-नीरज-कन्द ॥
पीत-अम्बर कनक-भूषण
मकर-कुण्डल-धारि।
वृष्णि-दूषण कंस-मारण
करण-मानस-कारि ॥
वल्लवीकुल-हृदय आकुल-
करण-उद्यमवन्त।
तर्तहि किंचित मसृण मानस
निजहु मन्दिरे सन्त ॥
चरण-पंकज भक्त-मानस-
सरसि उदय-कारि।
ए राधामोहन-पाप-विमोचन
ए भव-सागर-तारि ॥[1]

---

[1] पदकल्पतरु—संख्या—२४३५।

नन्द-नन्दन नीके नागर
नविन घन रस-मेह ।
नील-उतपल-नवित-नीरद
निंदि निरुपम देह ॥
निरखि सो रूप-ठाम ।
नलिनि-नायक-नंदिनी-तट
नटत जनु नव काम ॥
नूतन-नीप नि-कत निवटहि
नियत करतहिं नाट ।
नविन नागरि नगर ना रह
निपडे निरन्तर हाट ॥
नयन-नाचने निर्जहि नव राग
करावे जो निति नीत ।
निजक पद-तले नीत मायउ
ए राधामोहन-चीत ॥[1]

नरहरि चक्रवर्ती—नरहरि नाम के दो पदकर्त्ता—

(नरहरिदास द्वितीय और घनश्यामदास द्वितीय) वैष्णव-साहित्य में नरहरि नाम के दो प्रसिद्ध पदकर्त्ता हुए। नरहरि प्रथम महाप्रभु चैतन्य देव के समसामयिक और अन्तरंग भक्त, श्रीखण्ड निवासी सुप्रसिद्ध नरहरि सरकार ठाकुर थे जाति के वैद्य थे। दूसरे नरहरि हमारे आलोच्य कवि हैं। दोनों पदकर्त्ताओं ने ही 'नरहरि' छाप का प्रयोग किया है और दोनों रचयिताओं के पद आपस में इतने घुलमिल गए हैं कि उनको अलग करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

जीवन वृत्त —

नरहरि चक्रवर्ती के पिता जगन्नाथ विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। नरहरि का निवास स्थान गंगा के किनारे पूर्व में गम्भीला के पास था। कवि ने 'भक्ति-रत्नाकर' में शेष भाग परिशिष्ट में अपना परिचय दिया

[1] पदकल्पतरु — संख्या — २६६५।

है[1]। इससे अधिक कवि के जीवन सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं हो सका। विद्वानों का अनुमान है कि सन् ईसवी १८ वीं शताब्दी के अन्त में कवि का जन्म हुआ। प्रेमदास के समान नरहरि चक्रवर्ती ने भी वृन्दावन के गोविन्द देव के मन्दिर में कुछ दिनों तक रसोइए का काम किया था।

रचनाएं—

नरहरि रचित 'भक्तिरत्नाकर' काव्य वैष्णव साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों में से है। इस ग्रन्थ को 'वैष्णव-इतिहास' का कोश कहा जाए तो अनुचित न होगा। 'भक्ति-रत्नाकर' में श्रीचैतन्य देव के परवर्ती प्रधान वैष्णव-आचार्य श्रीनिवास, नरोत्तम ठाकुर, श्यामानन्द, षट् गोस्वामी तथा अन्य वैष्णव महन्तों की जीवनी विषयक बहुत महत्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। इसमें वृन्दावन-परिक्रमा तथा नवद्वीप-परिक्रमा का पाण्डित्यपूर्ण विशद विवरण दिया हुआ है, इन दोनों अंशों को स्वतन्त्र ग्रन्थ ही कहना चाहिए[2]। ग्रंथ की पंचम तरंग में व्रज-मण्डल और रास-स्थली के वर्णन प्रसंग में संगीत शास्त्र का विस्तृत विवेचन दिया हुआ है जो रचयिता के संगीत शास्त्र के असाधारण ज्ञान और शोध नैपुण्य का स्पष्ट परिचायक है। 'भक्ति-रत्नाकर' की पंचम तरंग वास्तव में संगीत शास्त्र विषयक निबन्ध है। इसमें रास, अष्टकालीन नित्य-लीला, झूलन और होरि-लीला के प्रसंग में रचयिता ने बहुत से स्वकृत पद उद्धृत किए हैं। बारहवीं तरंग के 'नवद्वीप-परिक्रमा' के प्रसंग में महाप्रभु की बाल्य-लीला, विद्यारम्भ, दिग्विजयी के साथ विचार, उपनयन, विवाह, कीर्त्तन प्रचार आदि लीला विषयक सुन्दर और संक्षिप्त विभिन्न पद रचयिताओं के पदों के साथ नरहरि ने स्वरचित भी बहुत से पद सन्निविष्ट किए हैं। विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों के उद्धरणों से रचयिता के विद्या नैपुण्य का परिचय मिलता

---

[1] निज परिचय दिते लज्जा हय मने।
पूर्व्ववास गंगातीरे जाने सर्वजने।
विश्वनाथ-चक्रवर्ती सर्व्वत्र विख्यात
तांर शिष्य पिता मोर विप्र जगन्नाथ।
ना जानि कि हेतु हेल मोर दुइ नाम
नरहरि-दास आर दास घनश्याम॥

—भक्तिरत्नाकर, ग्रन्थानुवाद, पृ० १०६७।

[2] श्रीनगेन्द्र नाथ वसुके सम्पादन में स्वतंत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

है। बहुत से अनुपलब्ध ग्रथा का निर्देश भी भक्ति रत्नाकर' में दिया हुआ ह।

नरहरि चक्रवर्ती रचित दूसरा जीवनी ग्रथ है 'नरोत्तमविलास'[1]—इसमें नरोत्तम ठाकुर का जीवन चरित और क्रिया कलाप वर्णित हुआ है, यह ग्रथ 'भक्ति रत्नाकर' का परिपूरक है। भक्ति रत्नाकर' और 'नरोत्तम-विलास' के अतिरिक्त नरहरि ने 'श्रीनिवासचरित' नाम का एक जीवनी काव्य लिखा था। इस ग्रथ की कोई भी हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहा है। 'भक्ति रत्नाकर' में 'श्रीनिवासचरित' का उल्लेख मिलता है[2]।

पद-रचना—

नरहरि चक्रवर्ती ने बहुत स पदा की भी रचना की ह। इनके गौराग विषयक पदा का सकलन ग्रथ है गौरचरित्र-चिन्तामणि[3]। पदा का दूसरा वृहत सकलन ग्रथ ह गीतचन्द्रोदय[4]। इसमें सकलनकर्त्ता के स्वरचित पद भी सकलित ह। इस ग्रथ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतिया अब तक प्राप्त हुई है सभी खडित है[5]। इससे विद्वाना का अनुमान ह कि नरहरि चक्रवर्ती सकलन के काय को पूण करने के पूव हा परलोक सिधार गए। त्रिपुरा दरबार के ग्रथागार में जा हस्तलिखित प्रति है वह खडित है फिर भी पुस्तक का अधिकाश उसमें सुरक्षित है। नरहरि के अय दो ग्रथ 'छन्दसमुद्र' और 'पद्धतिप्रदीप' के विषय में विशेष कुछ ज्ञात नहा ह। इस सम्बध में स्वर्गीय

---

[1] वटतला से बहुत बार मुद्रित हुआ ह।

[2] शिष्यगण नाम एथा लिखिते नारिनु
श्रीनिवासचरित्र ग्रथेत विस्तारिनु। चतुर्दश-तरग।

[3] असम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति के अवलम्बन स श्रीहरिदास-दास द्वारा प्रकाशित, चैतनाब्द ४६१, प्रकाशित ग्रथ में लगभग पौने चार सौ पद ह।

[4] वीरचन्द्र देववर्म्मन ने गीतचन्द्रोदय' का कुछ हिस्सा १२९८ त्रिपुराब्द में आगरतला स प्रकाशित करवाया था, इसमें केवल ३३० ही पद है।

[5] शिवचन्द्र शील के सग्रह में २०५ पृष्ठो (साहित्य परिषद् पत्रिका ८ पृ० १८६) की हस्तलिखित प्रति थी। एक हस्तलिखित प्रति त्रिपुरा दरबार के सग्रह में है जिसमें पदा की सख्या १४४६ है।

जगद्बन्धु का मत है--" 'छन्द-समुद्र' से इनके संस्कृत भाषा और साहित्य में गम्भीर व्युत्पत्ति (ज्ञान) का परिचय मिलता है।" जो कुछ भी हो इनकी रचनाओं से यह तो स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि ये भारी छन्दोशास्त्री और संगीतज्ञ थे।

पदकल्पतरु में इनके पद—

'पदकल्पतरु' में 'नरहरि' की छाप से ३६ पद उद्धृत हुए हैं, जिनमें से अधिकांश पदों के रचयिता नरहरिदास प्रथम हैं। 'घनश्यामदास' छाप वाले ४२ पदों को भी साहित्य-मर्मज्ञों ने घनश्याम प्रथम की रचना माना है। 'क्षणदागीतचिन्तामणि', 'पदामृतसमुद्र', 'कीर्त्तनानन्द' आदि विभिन्न संकलन ग्रन्थों में नरहरि चक्रवर्ती का कोई भी पद संगृहीत नहीं हुआ है, 'नरहरि', 'घनश्याम' की छाप में संकलित पद नरहरि प्रथम और घनश्याम प्रथम के ही पद हैं।

छन्द के ज्ञाता—

ब्रजबुलि-साहित्य में छन्द शास्त्र की दृष्टि से नरहरि को निस्सन्देह प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है, पर भावोत्कर्ष और कवित्व-शक्ति की कसौटी पर इनके पद उतने खरे नहीं उतरते। हां, लोचन दास के धमाली-पदों के अनुकरण पर रचे गए गौरांग विषयक मुख्यत 'नदीया नागरी' भाव वाले कुछ पदों में रसज्ञता और स्वाभाविकता अवश्य है। नरहरिदास चक्रवर्ती के ब्रजबुलि रचना के उदाहरण स्वरूप नीचे दो एक पद उद्धृत किए जा रहे हैं—

चैतन्य का विवाह-वर्णन—

श्री चैतन्य का विष्णुप्रिया देवी के साथ विवाह के अवसर का वर्णन—

देवरमणी–वृन्द विरचि
वेश विविध भांति।
राजत थल–माहि अतुल
झलके कनककांति॥
भ्रमत गगन–पथ अगणन
जूथ हिय-उत्साह।
मानत दिठि सफल निरखि
गौरवर – विवाह॥
मिश्र-भवन रीत रुचिर
उचरि पुलकगात।

नवनव-अभि लाष करइ
धृति धरइ न जात ॥
निरुपम पहु प्रेयसीछवि
लोचन भरि नेत ।
नरहरि कत भाजय सवे
प्राण निछनि देत ॥[१]

गौरांग का प्रेमावेश—

गौरांग महाप्रभु का भगवद प्रेमावेशमय स्वरूप का वर्णन —

नाचत गौर
निखिलनटपंडित
निरुपम भंगि
मदनमो हरइ ।
प्रचुरचण्डकर—
दरपरिभजन—
अंगकिरणे विक—
विदिक उजरइ ॥
उनमत - अतुल—
सिंह जिनि गरजन
शुनइते बली कलि-
वारण डरइ ।
घन घन लम्फ
ललितगति चंचल—
चरणघाते क्षिति
टलमल करइ ॥
किन्नरगरव
खरव करुपरिकर
गायत उल्से
अमियरस झरइ ।
बायत बहुविध
खोल समय धुनि
परशत गगन
कौन धनि धरइ ॥

---

[१] भक्तिरत्नाकर, पृ० ८१३ ।

अतुल—प्रताप
काँपि दुरजनगण
लेअइ शरण
चरणतले पडइ ।
नरहरि—पहुंक
किरीति रहु जगभरि
परमदुलह धन
नियत वितरइ ॥[१]

सुवनदास : पद-रचना—

इनका एक ही पद अभी तक मिला है लेकिन उसीसे इनके कवित्व का पता चल जाता है। एक बारहमासा इनका मिलता है।[२] इस बारहमासे में महाप्रभु चैतन्य की पत्नी विष्णुप्रिया का विरह-वर्णन है। एक और पद[3] इनका मिलता है लेकिन वह व्रजवुलि का नहीं है बल्कि बंगला है। डा० सुकुमार सेन इसे इन्हीं की रचना मानते हैं।[४] बारहमासे की कुछ पंक्तियां निम्नोद्धृत हैं—

बारहमासा—

घन घन मेघ गरजे दिन यामिनी
आओल माह आषाढ़ ।
नव जलधर पर दामिनि झलकये
दाह दिगुण तहि बाढ़ ॥
सहचरि दैव दारुण मोहे लागि ।
शरद सुधाकर सम मुख सुन्दर
सो पहु काहाँ गेओ भागि ॥ध्रु०॥
अन्तर गर गर पाँजर जरजर
झरझर लोचन वारि ।
दुख-कुल-जलधि-मगन महु अन्तर
ताकर दुख कि निबारि ॥

---

[१] भक्तिरत्नाकर, पृ० ८८३ ।
[२] पदकल्पतरु, पदसंख्या—१७८९—१८०० ।
[3] वही, पदसंख्या—१०३१ ।
[४] हिस्ट्री आफ व्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २८४ ।

जदि पुन गौर-चाँद नदिया-पुर
गगन उजोरए नीत।
तब दुख विफल सफल करि मानिये
होयत तब थिर चीत ॥[1]

निन्दुदास रचनाएँ—

बिन्दुदास की भी बहुत कम रचनाएँ उपलब्ध हैं। पदकल्पतरु में तीन पद ऐसे मिलते हैं जिनकी रचना इन्होंने ब्रजबुलि में की है। उन पदों को देखने से लगता है कि इनके और पद होंगे क्योंकि उन पदों से इनकी कवित्व-शक्ति का पता चलता है। इन तीनों की पद संख्या कल्पतरु में ७१, १६६७ तथा २३३३। पदकल्पतरु की पद संख्या २२५३ भी इन्हीं की रचना है लेकिन यह बंगला में है। इससे लगता है कि इन्होंने बंगला और ब्रजबुलि दोनों में ही पद लिखे थे। निम्नलिखित पद में सखी राधा के मन के कष्टों को पूछती है और उसमें भाग बटाना चाहती है—

पद— तोहारि वेदन छदन कारण।
पुन पुन पूछिये ताय।
तुहु उर धरि धरि भरि भरि बोलसि
सुध बुध सब खोय॥
आलि रि हामरा तोहारि कियें नहियें।
जो तुया दुखे दुखायत शत-गण
ताहारे कि वदन ना कहिये ॥ध्रु०॥
ए तुया सगिनि रंगिनि रसिकिनि
कहिले कि आओब लाजे।
फणि मणि धरय गमन मवने जाब
जछे सिधायव काज॥
हाम आगुयाओनि आगुनि पठय
बठव योगिनि-साजे।
तन्त्र मन्त्र यत शत शत बूडय
बूडब सागर मासें।

[1] पदकल्पतरु पदसंख्या—१७९४।

भावना औ तुया अन्तरे अन्तर
कहिले कि रहे ताप-लेश ।
विन्दु इन्दुमुखि सिन्धु उतारब
बोलह वचन विशेष ॥[१]

गोवर्धनदास : रचनाएँ—

गोवर्धनदास, ब्रजबुलि के उन थोड़े से कवियो में से हैं जिन्होंने होली विषयक पद लिखे हैं। पदकल्पतरु मे इनके सोलह पद मिलते हैं। उन्हें देखने से लगता है कि इन्होंने अधिकांश रचनाएँ ब्रजबुलि में ही कीं। बंगला के भी दो पद हैं। उनका होली विषयक एक पद नीचे उद्धृत है—

होली विषयक पद—

बाजे दिग् दिग् थैया होरि रंगे ।
किशोर किशोरी सखिनी मेलि
तपन तनया तीरे केलि
सुखमयअति मधु ऋतुगति
रतिपति तयि संगे ॥
मसृण घुसृण चुवक चन्दन
जंत्र रन्ध्रे बरिखे सघन
अरुण वसन्त लुलित रशन
श्रम-जल गल अंगे ।
वीणा मुरज सर उपांग
द्रिमिकि द्रिमिकि द्रिमि मृदंग
चंचलगति खजन जिति
नृत्यति अति भंगे ॥
गावे गमकं गोपि मेलि
गौरि गुर्ज्जरि रामकेलि
सुभगा सुहिनि सुहइ साहानि
संगित रस–तरंगे

---

[१] पदकल्पतरु, पद संख्या—७१ ।

यूथे यूथे युवतिवृंद
माझे शोहत गोकुल-चंद
गोवर्द्धन हृदि वर्द्धन
करु मदन मनगे ॥[1]

सख्य के पद—

इनका एक पद सखाओं सहित गायों के चराने का मिलता है—

पाल जड़ करि शिशुगण मेलि
नामाइल यमुनार जले।
आनंदे गोगणे करे जलपाने
पिओ पिओ सभे बोले॥
उच्च पुच्छ करि जले पेट भरि
उपरे उठिल धेनु।
राखाल मेलिया हेलिया हेलिया
घन बाम शिंगा वेणु॥
नव तृण पाइया धेनु खाइया खाइया
भ्रमये यमुना-तीर।
नंदेर नन्दन करि गोचारण
सखागण संगे फिरे॥
बेलि अवसान देखि बलराम
धेनुगण लया सुखे।
कृष्ण माझे करि सखागण घेरि
चलिला गोकुल मुखे॥
गोष्ठे प्रवेशिया गोगण राखिया
पथते मिलिला माय।
पुत्र कोले निला पराण पाइला
दास गोविन्द गाय॥[2]

---

[1] पदकल्पतरु, पद संख्या १४४३।
[2] वही—१२४१।

आनन्द (आनन्ददास) : पद—

पदकल्पतरु में आनन्ददास की दो कविताएँ मिलती हैं। पद संख्या २७९४ में राधा और कृष्ण के पासा खेलने का वर्णन है। उसमें सखियाँ भी योग दे रही हैं। दूसरी कविता ब्रजबुलि की है जो निम्नोद्धृत है—

वृषभानुनन्दिनी-के शोभा बनी
वरण किरण छवि जिनि दामिनी ॥

चरण कमल पर नखर निशाकर
मंजीर रंजित मधुर ध्वनि।
किए विधि-अद्भुत उरुजुग निरमित
खीनकटि नीलिमवसनकसिनी ॥

किए मुख छन्द जिनि कोटि चन्द
काम कामान भांग मृगनयनी।
श्याम भुजंगिनी वेणी के लावणि
आनन्द-मतिगति दुख हरिणी ॥[1]

नन्द : पद—

पदकल्पतरु में नन्द रचित तीन पद हैं। एक पद नन्द (द्विज) पद संख्या १७३३ मिलता है। डा० सुकुमार सेन दोनो को एक ही नन्द मानते हैं।[2] उनका एक पद नीचे उद्धृत है—

सुन्दरि, आन-गुण नहे मोर बचन मधुर।
तुया परसादे साव सब पूर ॥
आन – सग कमुना कहबि मोर।
चांद ना तेजइ कबहुं चकोर ॥
तुया गुण – गायन वयन हामार।
तुया हृदि शीतल पंकज – हार।
तुहुं दरपण विनु सब आन्धियार।
भिछ नह नन्द कहये कत बार ॥[3]

---

[1] पदकल्पतरु, पद सख्या—२८७२।
[2] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९२।
[3] पदकल्पतरु, पद सख्या १०४६।

कृष्णकान्त जीवन वृत्त और रचनाए—

इन्होंने ब्रजबुलि में सुदर पदो की रचना की है। इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का मिश्रण परिलक्षित होता है। इन्हें उद्धवदास से अभिन्न माना गया है।[1] लेकिन डा० सुकुमार सेन इससे सहमत नहीं हैं।[2] इनके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। पदकल्पतरु के रचयिता वैष्णव दास के साथ इनका बधुत्व था।[3] पदकल्पतरु में इनके २० पद मिलते है। इनकी सरस रचना का परिचय निम्नलिखित पद से मिल जाता है—

सहचरि सगे चये हाम नाति।
भवहरि हेरहु मनोहर भाति॥
को जाने कछन मझु हिय चाम।
आपक अरविन पाणि उचाय॥
आजु नेहारलु जछन कानु।
कैछन सकेत ना बुझलु हाम॥
सो हेन रूप सो धवगधि रग।
मनहि लागि अथिर कह अग॥
अब सखि शुनह वणुक गान।
गोवर्द्धन पर इह अनुमान॥
कृष्णकान्त कह इये कि विचार।
हरि रहु ताहि रचह अभिसार॥[4]

चूडामणि एक पद—

पदकल्पतरु में चूडामणि की सिर्फ एक कविता मिलती है। डा० सुकुमार सेन को इसमें सदेह है कि यह चूडामणि का रचना है।[5] वह कविता निम्नलिखित है—

नाचत मोहन नन्द-दुलाल मेरो कान।
नासा — विराजित मोतिम — भूषण
कटि मासे घुगुरु रसाल॥

---

[1] पदकल्पतरु (पचम खड) पृ० ३०।
[2] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९५।
[3] पदकल्पतरु (पचम खड), पृ० ३०।
[4] वही, पद सख्या- २८७८।
[5] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९१।

सुन्दर उर पर वर रुरु-नख-पद
सररुह रतन-मंजीर।
नव नव वच्छ-पुच्छ धरि धायत
पतन अंगुलि धुलि-धुसर शरीर॥
मरकत चान्द मुकुर मुख-मण्डल
परिसर कुंचित अलक-हिलोल।
ब्रज-रमणी परबोध करायत
नयन फिरायत आध आध बोल॥
अभिनव नील जलद जिनि तनुरुचि
कहिल नहिल रूप किये निरमाण।
कत कत भकत यतन करि ध्यायोत
सबे चूड़ामणि दासेर एइ निवेदन॥[1]

उद्धवदास : जीवन वृत्त—

उद्धवदास के ९९ पद 'पदकल्पतरु' में मिलते हैं। ब्रजबुलि तथा बगला दोनो में ही इन्होंने पद रचना की है। इनका असली नाम कृष्णकान्त मजुमदार था और ये टेसा वैद्यपुर के निवासी थे।[2] इनका जन्म अम्बष्ठ कुल में हुआ था। ये राधामोहन ठाकुर के शिष्य थे। पदकल्पतरु के सकलन कर्ता वैष्णव दास के मित्र थे। वैष्णवदास का असली नाम गोकुलानन्द सेन था।[3]

ये १८वी शताब्दी के अच्छे कवियो में थे।[4]

रचनाएं—

इनकी रचनाए 'गौरपदतरगिणी', 'कृष्णपदामृतसिन्धु', 'कीर्तन गीत रत्नावली', 'कीर्त्तनानन्द', 'संकीर्त्तनामृत' तथा 'मुकुन्दानन्द' आदि सग्रहो में मिलती है।[5] उनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

श्रीराधामोहन झूलत हिंडोरे।
चदन-काठकि हिंडोरे झूलत
श्यामा श्यामहु भोरे॥ ध्रु॥

---

[1] पदकल्पतरु, पद सख्या ११४२।

[2] अप्रकाशित पद रत्नावली, भूमिका (उद्धवदास का वृत्तान्त)।

[3] वही।

[4] डा० सुकुमार सेन. हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० २९८।

[5] वही पृ० २९७-९८।

झुलना झमकत राइ चमकित
कानु कोरे अगोरे।
सुरग रगहि डोर विरचित
कतहु हिरामन-हीरे ॥
कनक-खम्बा कनक डालो।
खचित चुनिया रसाल रे ॥
ता पर मोतिम-जाल रे।
कनक-पाटकि डुरिया रे सखि
चित सुरग सुढार रे ॥
देइ झोकार बोले भालि भालि
उपवदास हि भान रे ॥[1]

नन्दकिशोर रचनाएं—

इनकी जो छ कविताएं 'सकीर्तनामृत' में सकलित हैं उनमें पाच ब्रजबुलि की हैं और एक बगला की। इनका एक पद नीचे दिया जाता है—

लोचन लोरे धारि घन मृगमद
कलम कयल नखचन्द्र।
पदनखे दास कयल पहु लिख इते
हरखि धरल पद द्वन्द ॥
सुन्दरी अन्तरे उलसित भेल
आदर सुधइ सुधारसवादरे।
विरहताप दूर गल ॥
करे कर धारइते अन्तर दरदर
रसवती पुलकित अंग।
उपजल प्रेम विहगपति तछु भए
भागल मान भुजग ॥
नाह वाहु धरि अथिर कलेवर
मदन जलधि जल भगे।
भांगल मान जनित भय माधव
कोरे पसारल रगे ॥

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली, पद सख्या—४४६।

भुज भुज बन्धन निविड आलिगन
वदन वदन एकु मेलि ।
नन्दकिशोर हेरि अनुमानइ
दुहुँक कलह किए केलि ॥[1]

दीनबन्धु : जीवन वृत्त और रचनाएँ—

दीनबन्धु ने 'सकीर्त्तनामृत' का सकलन किया है जिसमें चालीस पदकर्त्ताओं के पद सग्रह किए गए है। पदों की सख्या ४९१ है और इनमें दो सौ से भी अधिक पद दीनबन्धु के लिखे हुए हैं। इन पदों में दीनबन्धु की लगभग एक सौ कविताएँ व्रजबुलि की है। 'सकीर्त्तनामृत' का प्रकाशन बगीय साहित्य परिपद् की ओर से हुआ है। उनका काल ईसवी सन् की अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।[2] ये सस्कृत के भी विद्वान् थे। छन्दो का इनका ज्ञान सुन्दर था। 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में इनके आठ पद दिए हुए हैं। वे सभी बगला के पद हैं। इनका व्रजबुलि का एक पद नीचे उद्धृत है—

घनी साजत श्याम मनोहर वेश ।
कसी कानड़ छांदे बाबावल केश ॥
सींथि सिंदूर चन्दन बिन्दुछटा ।
रविमण्डल वेढ़ल चांद छटा ॥
मृगनाभि विचित्रित गण्डदुकूल ।
वरवेशर लम्बित नासिकमूल ।
घन कुकुम घोरि लेपि कुचभार ।
तहि शोभित सुन्दर मोतिम हार ॥
कर-कंकण हेरि अनंग विभोर ।
कटि किंकिणी मण्डित नीलनिचोल ॥
पद पकज रंजित जावकरंग ।
दीनबन्धु नेहारि प्रफुल्लित अंग ॥[3]

संस्कृत मिश्रित व्रजबुलि का एक पद—

'अप्रकाशित पद रत्नावली' मे निम्नलिखित पद मिलता है। इसमे संस्कृत रूप और व्रजबुलि का मिश्रण है—

---

[1] सकीर्तनामृत, ३९५ ।

[2] हिस्ट्री आफ व्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३०६ ।

[3] सकीर्त्तनामृत, ४४ ।

निज मन्दिर तेजि गत सकट ।
चल-कुण्डल-मण्डित-गण्ड तट ॥
मद-मत्त-मतगज-म द-गता ।
जटिला-पद-पकज-धूलि-नता ॥
नतकंधर हेरि गत सुबल ।
जटिला जय देइ बले कुशल ॥
मधुराधर बातहि शूप मिठ ।
गुरु-गविति नूनित देय पिठ ॥
सुबलाकृति राइ वने गमन ।
रहु दीनबंधु कलित भवन ॥[1]

नयनानन्द जीवन वृत्त और रचनाएँ—

पदकल्पतरु में नयनानन्द के २५ पद मिलते हैं। नयनानन्द इसवी सन की अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए हैं।[2] वे जाति के ब्राह्मण थे। उनका निवास स्थान वीरभूम जिले का मगलाडिहि बताया जाता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नयनानन्द की कविताओं का एक हस्तलिखित सग्रह है।[3] इसमें ७२ गीति कविताएँ हैं। डा० सुकुमार सेन ने निम्न लिखित पद अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है—

निनिमुखे सुखे हरि छान्दत गाइ ।
गावी दोहन केलि करत मायाइ ॥
दोहत गावी सखागणसग ।
घरघर गागरी बोलत रग ॥
गोदोहन केलि कत अवसान ।
सहचर आसि पुन मेटल कान ॥
ए नयनानन्द कहइ जुडि हात ।
एके एके मीलल सकल सागात ॥[4]

---

[1] अप्रकाशित पदरत्नावली पद सख्या—५१० ।
[2] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर पृ० ३११ ।
[3] संख्या—२१३५ ।
[4] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३१२ ।

एक पद में हिन्दी के शब्द—

नीचे लिखे हुए पद में हिन्दी शब्दो के रूप मिलते है—

उठ गोपाल प्रातःकाल मुख नेहारि तेर।
रजनी अव-सान भेइ काम भेइ मेर॥
उठत भानु देखत कानु रजनी गेइ दूर।
वालक संगे मेलत रगे रोहिणेय बलवीर॥
एइ श्रीदास दामसुदाम संगी गण तेर।
पूरत वेणु धाओत धेनु आगिना भरल मेर॥
नद-रानी पसारि पाणि बालक लेइ कोर।
मुख नेहारि दु:ख विसरि किये सुख जानि ओर॥
श्याम चन्द्र चन्द्र उदित नाशल हृदि घोर।
हेरियावयन कहिछे नयन उठ कानाइ मोर॥[1]

जगदानन्द : जीवन वृत्त और पद—

ये गोकुलानन्द के पुत्र थे। गोकुलानन्द, नयनानन्द के भाई थे। इनका निम्नलिखित पद वीरभूम विवरण मे मिलता है—

आरति करे नन्दरानी बालक मुख हेरि।
गावत नव-नागरी सब राखाल सकल घेरि॥
रम्भा फल घृत प्रदीप पुष्परचित थालि।
सुन्दरी गणे हुलोति देइ शिशुगण करताली॥
राखि शिगवेणु जशोदा माइ कोरे निल दुनो भाइ।
माखन दहि देइ क्षीर खावए रामकानइ।
सकल शिशुर मुख तुलि जशोमती चुभो खावए।
मंगल पुछे नन्द घोष जगदानन्द गावए॥[2]

चन्द्रशेखर (३) : जीवन वृत्त और रचनाएँ—

चन्द्रशेखर का काल ईसवी सन् की अट्ठारहवी शताब्दी का उत्तरार्ध है।[3] इस काल मे लिखी जाने वाली ब्रजबुलि कविता को देखने से चन्द्रशेखर तथा

---

[1] वीरभूम विवरण, खण्ड १, पृ० १८०।

[2] वीरभूम विवरण, खण्ड १, पृ० १७९।

[3] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३२३।

उनके भाई शशिशेखर के महत्व का समझा जा सकता है। उस काल तक आते आते व्रजबुलि कविता निष्प्राण हो गई थी। उसमें कोई ताजगी नहीं रह गई थी। इन दोनो भाइयो ने उसकी पुन प्राणप्रतिष्ठा की। चन्द्रशेखर के पिता का नाम गोविन्दानन्द ठाकुर था और ये वद्धमान जिले के थे। इनकी कविताएँ किसी प्रसिद्ध पद-सग्रह में नही मिलतीं। इनकी कविताएँ पद रस सार (सभवत इसका सकलन ईसवी सन् की अट्ठारहवा शताब्दी के अन्तिम दिनो में हुआ) मिलती ह। 'नायिकारत्नमाला' में इनके सबसे अधिक पद मिलते है। 'अप्रकाशित पद रत्नावली', कीर्तनगीत रत्नावली' तथा वीरभूम विवरण (तृतीय खण्ड) में इनकी कविताएँ मिलती हैं। निम्नलिखित पद इनके रचना कौशल का परिचय देता है—

हाँ हाँ निरलज परवचक शठ
राइ-नियडे मति जाहा।
बेरि बेरि तोहे निषेध हम करतहि
काहे उदवेग बढ़ाइ॥
तभु यदि जायबि कलह बाढ़ायबि
बरि हसायब प्राते।
येह ना पायबि रोइ रोइ आयबि
कर अवलम्बइ माये॥
एतहु बचन कहि फिरि वुति चलतहि
कानु चलल तछु साथ।
चन्द्रशेखरे कहे लाज नाहि जाकर
ताकर सभ्य किये बात॥[1]

सस्कृत मिश्रित व्रजबुलि का पद—

निम्नलिखित कविता में सस्कृत और व्रजबुलि का मिश्रण है। इसमें राधा, उद्धव से सस्कृत में प्रश्न करती हैं और उद्धव व्रजबुलि में जवाब देते ह—

कस्त्व श्यामल धामा।
हरि-किकर हाम उद्धव-नामा॥
अद्य हरि स कुत्र।
मधुपुरे वसइ बरजजनमित्र॥

---

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली, पद-सख्या—२४५।

कुरुते कि मधुनगरे ।
कंसक वक्ष दलन करि विहरे ॥
पुन पुन पूछइ गोरी ।
चन्द्रशेखर कहे प्रेमभिखारी ॥[1]

शशिशेखर : जीवन वृत्त—

ये चन्द्रशेखर के भाई थे और व्रजबुलि के बहुत अच्छे कवि थे । इनके पद अत्यधिक लोकप्रिय हैं । वैसे चन्द्रशेखर से इनकी व्रजबुलि कविताएँ निम्नकोटि की है । इनकी कविता में कही 'शशि' और कहीं 'शेखर' की छाप मिलती हैं। इनकी कविताएँ 'नायिका रत्नमाला', 'अप्रकाशितपदरत्नावली', 'कीर्त्तनगीत-रत्नावली' और 'कृष्ण-पदामृत सिन्धु' में मिलती हैं । इनका एक पद नीचे उद्धृत है—

अति शीतल मलयानिल
मन्द–मन्द–वहना ।
हरि–वैमुख हमारि अंग,
मदनानले दहना ॥
कोकिला–कुल कुहु कुहरइ
अलि झंकरु कुसुमे ।
हरि–लाल से तनुतेजब
पाओब आन–जनमे ॥
सब संगिनि घिरि बैठलि
गाओत हरि–नामे ।
जैखने शुने तैखने उठे
नव–रागिनी गाने ॥
ललिता कोरे करि बैठत
विशाखा धरे नाटिया ।
शशिशेखरे कहे गोचरे
जाओत जिउ फाटिया ॥[2]

---

[1] नायिका-रत्नमाला, ५४ ।

[2] अप्रकाशित पद रत्नावली, पद सख्या—२५७ ।

गोपीनाथ दुर्लभ पद—

इनकी एक कविता दास हस्तलिखित सग्रह ग्रन्थ में मिलती है। 'दुलभ' पदवी बगाल की निम्नश्रेणी की जातियो में मिलती है। इनका पद नीचे उद्धृत है—

शुन हे नागर गुण रसेर कल्पतरु
अनाथिनी राइ-पराण।
चतुरेर शिरोमणि प्रेम रतनमणि
विदगध नागर कान।
बन्धु, जानसि राइ तोहारि।
नील अम्बर गले देइ मिनति कर
राखबि बचन हामारि॥
अब राइ गुरुजना सगति तब तहि
ना करिह मुरली निसान।
शुनइते मधुर शबदे तनु पुलकित
चमकि चमकि उठे प्राण।
उतपन चित रीत नाही मानत
लोरे नयान मोर झाप।
तुआ मुख दरशन लागि चित आकुल
गुरु-दुरजन भये काप॥
कि कहब ओ मुख-चांद बरश बिने
खेने कत जुग करि मानि।
लाख जन चकोर-तापहरण मुख
देखिले कि हए नाहि जानि॥
कहइते गोरी पुलके परिपूरत
नागर करलहि कोर।
आहा मरि मरि करि चुम्बइ कत बेरि
गोपीनाथ दुलभ भोर[1]॥

दयाल पद—

दयाल की एक ब्रजबुलि कविता मिलती है। वह कविता निम्नलिखित है—

[1] हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३३३ ३३४ पर उद्धृत।

पेखलुं अपरूप नन्दकुमार ।
कालिन्दी नीर तीरतरुहेलन
जैछन जलदसंचार ।।
चूड़हि उएए मयूरशिखण्डक
सो एक अपरूप ठाम ।
जैछन इन्द्र धनुक तहि कयल
ऐछ मझु मने भान ।।
मोतिमहार उर-पर लोलत
हेरिए तारकपाति ।
कटि पर पीत वसन तहि राजित
जिनि सौदामिनी कानि
चरण अवधि वन-माला विराजित
उनमत मधुकर जाल ।
पद पंकज तले मास मौंपलु
कातर कहत दयाल[1] ।।

हरिवंश दास : पद—

इनकी दो कविताएं 'अप्रकाशित पदरत्नावली' में मिलती हैं। उनकी सख्या ५८१ तथा ५८२ है। इन कविताओ से लगता है कि ये व्रजबुलि के अच्छे कवि थे। इनका एक पद नीचे उद्धृत है—

सजनी कि हेरलु कुंजक माझ ।
युगल कमल पर युगलहु मधुकर
युगल कमल पुन साज ।।
पुन दश शशधर हेरि कमल पर
रति-पति लागल धन्द ।
पुन दुहुं कमले रविर किरण गो
उदयति आर दश चन्द ।।
युगल सरोवरे युगल कमल गो
दरश परश नाहि जान ।
पुन युग-कमल अरुण संग जुझत
शशधर दश-परिमान ।।

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली, पद संख्या—५०३ ।

पुनहिं कमल चारि देखत सारि सारि
कमले कमले कर रण।
रविर उदय-काले चांदेर उदय गो
मनमथ मुरछित मन॥
चांद-कमल-रण करल निरीखन
हेन बले राहु गरास।
आध सपन दखि हरिवेश मने सुखी
आखि मिलिना पूरत आश॥[1]

कमलाकान्तदास जीवन-वृत्त—

ये पदरत्नाकर' के सङ्कलन कर्ता थे। ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने अपना कुछ परिचय दिया है। उससे पता चलता है कि वे सिउर ग्राम के वासी थे जहां से आठ कोस पूरब कटवा है। वे कर्ण-कायस्थ थे। उनके पिता का नाम ब्रजकिशोर और कनिष्ठ भ्राता का नाम रुक्मिणीकांत था। इनका परिचय पदकल्पतरु के पांचवें खण्ड में दिया हुआ है।[2] इनका काल ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अप्रकाशित पदरत्नावली' के एक पद से पता चलता है कि इनके गुरु का नाम नटवर था जो शिवानन्द के पुत्र तथा गदाधर दास के शिष्य थे।

पद—

ब्रजबुलि के ये अच्छे ही कवि माने जा सकते हैं। सम्भवतः वैष्णव-साहित्य में ब्रजबुलि के वही अन्तिम कवि थे। इनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है—

श्याम गुण धाम बिने
याम युग भेल।
काम-शर दाम-अब
भेल मुझे शेल॥
भ्रमर-कुल-नाछे अब
साद मधु प्राण।

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली पद संख्या—५०३।
[2] पदकल्पतरु पंचम खण्ड, भूमिका पृ० ७–९।

कुंज मन-रञ्ज भय-
पुंज सम भान ॥
कोकिल-कल-भावे अब
त्रास मेल चीत ।
संग-सुख लागि मम
अंल भेद भीत ॥
गन्ध सह गन्धवह
मन्द-गति भेल ।
इह सुखद विपिन-द्रुम-
दाम सुख देल ॥
विकच फुल-वृन्द चित
गन्ध हरि गेल ।
सबल हृदि कमल अब
तरल-मति भेल ॥[1]

[1] अप्रकाशित पदरत्नावली, पदसंख्या—४७५ ।

दसवा अध्याय

तुलनात्मक अध्ययन

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि की तुलना—

पिछले कई अध्यायो में ब्रजभाषा तथा ब्रजबुलि के भक्त-कवियो की रचनाओ, उनके मत और सिद्धात तथा साधना पद्धति की विस्तृत रूप से हमने चर्चा की है। यहाँ पर हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि उनमें किन किन बातो में समानता है और किन किन बातो में अन्तर है। अध्ययन की सुविधा के लिये चार विषयो को ध्यान में रख कर हम विचार करना चाहेंगे भक्ति और साधना, पदावली, भाषा और छन्द, अलकार।

(क) भक्ति और साधना

भक्ति के आश्रय—

ब्रजभाषा और ब्रजबुलि के कविगण मुख्य रूप से भक्त है। काव्य के द्वारा उन्होंने अपनी भक्ति ही निवेदित की है। कृष्ण और राधा इस भक्ति के केन्द्र है। कृष्ण का बाल अथवा किशोर रूप ही इस भक्ति का आश्रय है। वैसे यह सही है कि किसी में राधा का प्रधानता दी गई है और किसी में कृष्ण को और किसी में युगल-मूर्ति को। विशेष रूप से ब्रजभाषा के कवियो में यह वैचित्र्य अधिक देखने को मिलता है। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषा के कवि अलग-अलग सप्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। इन सप्रदायो में निम्बार्क सप्रदाय, सखी सप्रदाय, वल्लभ सप्रदाय तथा राधावल्लभीय सप्रदाय के भक्तो में अनेक विशिष्ट कवि हो चुके है जिन्होंने ब्रजभाषा में पद रचना कर एक अपूर्व रस की सृष्टि की है। ब्रजबुलि के भक्त-कवि चैतन्य सप्रदाय में अन्तर्भुक्त थे। इन विभिन्न सप्रदायों के भक्त-कवियो ने अपने अपने सप्रदायो की मान्यताओ तथा विशिष्टताओ को ही अपनी रचनाओं में रूप दिया।

वल्लभ और चैतन्य सप्रदाय—

ब्रजभाषा के भक्त-कवियो में वल्लभ-सप्रदायी कवियो और विशेष रूप से अष्टछाप के कवियो का प्रमुख स्थान है। निम्बार्क राधावल्लभी तथा सखी

सम्प्रदाय के कवियो की भी उत्कृष्ट रचनाए मिली है और अब वे प्रकाश में आने लगी है। वल्लभ-सम्प्रदायी कवियो की विशिष्टता को ध्यान में रखकर यहाँ विशेषरूप से उन्ही की चर्चा हम करेंगे। जैसा कि पहले हम कह चुके है कि इन विभिन्न सम्प्रदायो के कवियों ने अपने काव्य में सम्प्रदायगत विशिष्टताओं को बराबर सामने रखा है इसलिये भावना आदि की दृष्टि से उनकी रचनाओ के अध्ययन का मतलब उन सम्प्रदायों के प्रवर्तकों द्वारा प्रचारित सिद्धान्तो का अध्ययन है। अतएव सबसे पहले हम वल्लभाचार्य और श्री चैतन्य प्रतिपादित मतो की परीक्षा करना चाहेंगे कि उनमें कहाँ तक समानताएँ और असमानताएँ है।

वल्लभ और चैतन्य संप्रदायों में साम्य—

वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदाय में कई बातो में साम्य है। दोनो सम्प्रदायो में भक्ति को प्रमुखता दी गई है। इस भक्ति को ही दोनो सम्प्रदायो में सब कुछ माना गया है। इस जन्म अथवा दूसरे जन्म के लिये इस भक्ति की उपलब्धि को ही चरितार्थ माना गया है। श्रीकृष्ण का बाल और किशोर रूप दोनो सम्प्रदायो के भक्तो को मुग्ध करता है। इस रूप के सिवाय दूसरे रूप की वे कल्पना नही करते। शृंगार और मधुर भाव के आश्रय श्रीकृष्ण है। उपर्युक्त सभी सम्प्रदायो में यह बात पाई जाती है। वैसे शृंगार या मधुर भावना की मात्रा में कुछ-कुछ अन्तर अवश्य है। वल्लभ और चैतन्य दोनो सम्प्रदायो में भागवत् पुराण को बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। भागवत पुराण को दोनो संप्रदायो ने शीर्ष स्थान दिया है। कृष्ण की लीला-भूमि-व्रज दोनो सम्प्रदायो के लिये प्रिय है। अन्य सम्प्रदायो के लिये भी व्रज उसी प्रकार से प्रिय है। वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तो का केन्द्र वृन्दावन रहा है। व्रजभूमि के प्रति इन वैष्णव कवियो की आसक्ति उनकी रचनाओ में सर्वत्र पाई जाती है। राधा-कृष्ण की लीला-भूमि-व्रज का कण-कण उन भक्त कवियो के लिये पवित्रतम है और उस भूमि का पद-पद उनके लिये तीर्थराज है। वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदाय दोनो मे ही जाति-पाँति को भक्ति के क्षेत्र मे अस्वीकार किया गया है। 'कह्यो शुक श्री भागवत विचार। जाति पाति कोऊ पूछत नाही श्रीपति के दरबार'॥[1] भगवान् और भक्त के बीच वे कोई भी व्यवधान स्वीकार नही करते। चैतन्य

---

[1] सूर सागर, पद सख्या २३१।

सम्प्रदाय इसमें वल्लभ सम्प्रदाय से आगे बढ़ा हुआ है। वल्लभ सम्प्रदाय में वर्णाश्रम का सामाजिक जीवन के लिये अस्वीकार किया गया है। चैतन्य सम्प्रदाय का दृष्टिकोण निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है—

जेइ भजे सेइ बड़ो, अभक्त हीन छाड़।
कृष्ण भजने नाहि जाति कुलादि विचार ॥[1]
किवा विप्र किवा न्यासी शूद्र केने नय।
जेइ कृष्ण तत्ववेत्ता सेइ गुरु हय ॥[2]

गौडीय वैष्णव मत—

वल्लभाचार्य और चैतन्य समसामयिक थे अतएव उनमें कुछ समानताएँ अवश्य थीं लेकिन दोनों का व्यक्तित्व अलग-अलग था, दोनों की अपनी अलग-अलग विशिष्टताएँ थीं। चैतन्य संपूर्ण रूप से भक्त थे। उनकी भक्ति की उत्कटता ने संपूर्ण बंगाली समाज को अभिभूत कर लिया था। चैतन्य ने अपने मत के प्रचार के लिये किसी ग्रंथ की रचना नहीं की थी। चैतन्य के अनुयायियों और विशेष रूप से वृन्दावन के गोस्वामियों—रूप सनातन और जीव—ने चैतन्य प्रवर्तित भक्ति तत्व की अपूर्व व्याख्या की है। जीव गोस्वामी के भगवत-सन्दर्भ अथवा षट्-सन्दर्भ नामक ग्रंथ में गौडीय वैष्णव धर्म के तत्वों का बड़े सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है। गौडीय वैष्णव के 'अचिन्त्य भेदाभेद' के संबंध में हम अन्यत्र विचार कर चुके हैं। गौडीय वैष्णव मत में मधुर रस की भक्ति का ही प्राधान्य दिया गया है। प्रेम को गौडीय वैष्णव आचार्य लोग मन की स्वाभाविक वृत्ति नहीं मानते। उनका कहना है कि भगवान की जब कृपा होती है तब भक्त के मन से मोक्ष आदि की वासना का अवसान हो जाता है और उसमें शुद्ध भाव का आविर्भाव होता है। यही भाव, भक्ति अथवा प्रेम के रूप में परिणत हो सकता है। इस प्रेम के संबंध में कहा गया है

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा-तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा-धरे प्रेम नाम।
कामेर तात्पर्य निज सम्भोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य-हय प्रेम प्रबल ॥[3]

---

[1] चैतन्य चरितामृत, ३।४।६३।

[2] वही, २।८।१००।

[3] वही १।४। १४१।

इस प्रेम का उदय जब हृदय में होता है तब कृष्ण से आत्मीयता का बोध होने लगता है और जितना ही यह प्रेम बढता जाता है उतने ही कृष्ण 'अपने' होते जाते है। अतएव हम देखते है कि गौडीय वैष्णवो ने लौकिक आत्मेन्द्रिय प्रेम को 'काम' कहा है जो जड़ोन्मुख है, जो मोहग्रस्त करता है। भगवद्-विषयक प्रेम के लिये गौडीय वैष्णवो ने 'प्रेमा' शब्द का प्रयोग किया है और इसे ही परम पुरुषार्थ माना है

परिपूर्ण कृष्ण प्राप्ति सेइ प्रेमा हइते।
एइ प्रेमेर वश कृष्ण कहे भागवते॥[1]

और यही पचम पुरुषार्थ प्रेम महाधन है जो कृष्ण के माधुर्यरस का आस्वादन कराता है :

पचम पुरुषार्थ सेइ प्रेम महाधन।
कृष्णेर माधुर्यरस कराय आस्वादन॥[2]

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी इस प्रेम रस, माधुर्य रस के परिपन्थी है :

अज्ञान तमेर नाम कहिये कैतव।
धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वाछा आदि सब॥
तार मध्ये मोक्ष वांछा कैतव प्रधान।
याहा हइते कृष्णभक्ति हय अन्तर्द्धान॥[3]

महाप्रभु श्री चैतन्य के धर्म मत को बड़े सुन्दर ढग से निम्नलिखित श्लोक के द्वारा व्यक्त किया गया है :—

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधू वर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममल प्रेमा पुमर्थोमहान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न. परः॥[4]

महाप्रभु के मत से श्रीकृष्ण ही उपास्य है और उनका धाम वृन्दावन है, उस वृन्दावन की बालाओ ने जिस मधुर भाव से भजन किया है वही श्रीकृष्ण की उपासना है। इस धर्म का प्रमाण श्रीमद्भागवत है और श्रेष्ठ पुरुषार्थ प्रेमा है।

---

[1] चैतन्य चरितामृत, २।८।६९।
[2] वही, १।७।१३७।
[3] वही, १।१।५०।
[4] खगेन्द्रनाथ मित्र-वैष्णव रस-साहित्य, पृ० १८—१९ पर उद्धृत।

वल्लभ की पुष्टि भक्ति—

महाप्रभु वल्लभाचार्य भक्त तो थे ही साथ ही एक बहुत बड़े दार्शनिक, तत्व चिन्तक और धर्म के तत्वों के जानकार थे। उन्होंने आधार स्वरूप अपने सम्प्रदाय को एक दार्शनिक प्रणाली दी जिसकी उद्भावना उन्होंने स्वयं की थी। उनके लिखे बहुत से संस्कृत ग्रंथ हैं। श्री वल्लभाचार्य प्रवर्तित भक्ति में मधुर रस की भक्ति की अपेक्षा वात्सल्य भक्ति की ही प्रधानता है। वैसे यह कहना ठीक नहीं होगा कि उनके मत में मधुर भक्ति का स्थान नहीं है। हम अन्यत्र देख चुके हैं कि उन्होंने मधुर भक्ति सर्वसाधारण के लिये नहीं बतलाई है। गोसाईं विट्ठलनाथ के समय से वल्लभ-सम्प्रदाय में भी मधुर भक्ति का अधिक प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में नन्द, यशोदा, गोप, गोपी आदि का प्रेम ही प्राधान्य पाए हुए है। इस सम्प्रदाय के भक्त अधिकांश वात्सल्य, सख्य अथवा दास्य भक्ति का ही आश्रय लिए हुए देखे जाते हैं। वल्लभाचार्य प्रवर्तित पुष्टि भक्ति में पूर्ण निष्ठा से भगवान् के भजन की बात कही गई है —

'सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः'।[1]

कहा गया है कि उत्कट प्रेम द्वारा भगवान् का स्मरण और ध्यान भक्त का एकमात्र कर्तव्य है। इसके द्वारा वह भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करता है। इसमें भगवान् की उपासना के सिवा अन्य कोई वस्तु काम्य नहीं है। परमानन्द दास के निम्नलिखित पद से वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों के दृष्टिकोण पर प्रकाश पड़ता है —

माधो यह प्रसादहु पाउं।
तव भृत भृत्य भृत्य परिचायक दास को दास कहाऊँ।
यह परमारथ मोहि गुरु सिखयो स्याम धाम को पूजा।
यह बासना घटै नहिं कबहूँ केवल देखो दूजा।
परमानंददास तुम ठाकुर यह नातो जिन टूटे।
नंदकुमार जसोदानंदन हिलिमिलि प्रीति न छूटे।[2]

वल्लभ सम्प्रदाय में पुष्टि भक्ति का चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला में प्रविष्ट होकर उस नित्य लीला का आस्वादन करना है। पुष्टिमार्ग में कहा

[1] चतुःश्लोकी (षोडश ग्रंथ संग्रह), श्लोक १।
[2] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५३१ पर उद्धृत।

गया है कि मनुष्य भगवत् लीलोपयोगी देह प्राप्त करने के बाद ब्रह्म के साथ आनन्द रस ले।

निम्बार्क सम्प्रदाय में भी कहा गया है कि कृष्ण की शरणागति छोड़ कर मनुष्य के लिए अन्य कोई गति नही है :—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्[१]

निम्बार्क, राधावल्लभी और सखी-संप्रदाय—

इस सम्प्रदाय में भी भगवान् की कृपा से प्रेम-रूपाभक्ति मिलने की बात कही गई है। मधुर भाव की भक्ति का निम्बार्क सम्प्रदाय में प्राधान्य है। इस सम्प्रदाय में युगल उपासना के साथ राधा की उपासना पर विशेष बल दिया गया है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे श्रीराधा की प्रधानता है। प्रियादास ने लिखा है—

श्री हित जू की रति कोऊ लापनि में एक जाने।
राधाई प्रधान माने पाछे कृष्ण ध्याइये ॥[२]

इसी प्रकार से सखी-सम्प्रदाय के भक्त-कवियो ने युगल-उपासना का आनन्द सखीभाव से उपभोग किया है।

चैतन्य सम्प्रदाय में राधातत्त्व—

चैतन्य सम्प्रदाय में राधा तत्व की अपनी अलग विशिष्टता है। यह विशिष्टता अन्य वैष्णव सम्प्रदायो में देखने को नही मिलती। चैतन्य सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को अभिन्न, एक स्वरूप कहा गया है —

राधा कृष्ण ऐछें सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ॥[3]

राधा के प्रेम को 'साध्य शिरोमणि' कहा गया है लेकिन इस प्रेम को पाना जीव के लिये कठिन है। राधा का यह प्रेम जो सर्व 'साध्य शिरोमणि' है किसी साधन का फल नही है। यह नित्य है। सखी भाव से राधा-कृष्ण की नित्य-लीला में राधा के प्रेम का आनुगत्यमय प्रेम प्राप्त करना सभव माना

---

१ निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ८।
२ नाभा जी कृत भक्त माल, पृ० ६०५।
3 चैतन्य चरितामृत, १।४।८५।

गया है। गौडीय वैष्णव भक्त-कवियो की रचनाओ में सखी भाव से ही इस नित्य-लीला का आस्वादन हुआ है।

सखीर स्वभाव एक एकथ्य कथन।
कृष्ण सह निज लीलाय नाइ सखीर मन॥
कृष्ण सह राधिकार जे लीला कराय।
निज केलि हते ताहे कोटि सुख पाय॥[1]

राधा भाव की भक्ति चैतन्य महाप्रभु को छोडकर अन्यत्र देखने का नहीं मिलती। चैतन्य ने स्वय राधा भाव से भक्ति की थी। अपने प्रियतम कृष्ण से मिलन के लिये उनका हृदय आतुर बना रहता था। ब्रजबुलि अथवा ब्रज भाषा के कवियो ने द्रष्टा रूप में ही उस नित्य प्रेम का आस्वादन किया है। वल्लभाचार्य ने गोपियो के प्रकार बतलाए हैं लेकिन राधा का नाम उन्होने कहीं नही लिया है।[2] यहा एक बात और विशेष ध्यान देने की है कि राधा कृष्ण लीला में सखिया का स्थान बहुत महत्व का रहा। ये सखिया राधा कृष्ण की लीला प्रसारिका हैं। प्रेमलीला एक मात्र विषय स्वरूप हैं श्रीकृष्ण और उनकी आश्रय स्वरूपा हैं श्री राधिका। इस विषयाश्रय के अवलम्बन से जो नित्य-लीला गोलोक-वृन्दावन में चल रही है उसमें ये सखिया राधा के परिमडल में ही आवृत्त भी लक्षित होती है। ब्रजभाषा के वैष्णव साहित्य में इन सखियो का अपना स्वतंत्र स्थान है और आगे चलकर इनका महत्व इतना अधिक बढा कि सखी भाव से उपासना करने वाला एक पृथक 'सखी-सम्प्रदाय' वृन्दावन में चल पडा।

चैतन्य सप्रदाय में परकीया भाव—

चैतन्य-सप्रदाय की एक विशेषता यह भी है कि इस सम्प्रदाय में परकीया भाव की प्रधानता है। विश्वभारती द्वारा प्रकाशित चिठिपत्रे समाज चित्र' (दूसरा भाग[3]) में एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिसमे बगाल के परकीया भाव और ब्रजमडल के स्वकीया भाव पर सुन्दर प्रकाश पडता है। यह पत्र (विजय) सन् १७३१ ई० (११३७ बगाब्द) में श्री राधा मोहन ठाकुर को लिखा गया है। किसने लिखा इसका स्पष्ट उल्लेख नही है। इस पत्र के अनुसार

[1] चैतन्य चरितामृत २।८।१९७ ६८।

[2] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ५०८।

[3] पचानन मडल प्रकाशक विश्वभारती ग्रन्थ विभाग, (माघ १९५३ ई०)

कृष्णदेव भट्टाचार्य जयपुर मे राजा जयसिंह के सभा पंडित थे। जयपुर से वे बंगाल (गौर मडल) में स्वकीयावाद की स्थापना के लिये भेजे गए। वे पातशाही मनसबदार को साथ ले आए थे। स्वकीया और परकीयावाद पर विचार करने के लिये मालियारी ग्राम में पडितो की एक सभा बुलाई गई। उसमें बंगाल के सप्त पंडित-जगदानन्द, रामानन्द, मदनमोहन, मुरलीधर, वल्लभीकान्त, साहेब पचानन और हृदयानन्द थे। उन सप्त पंडितो के साथ कृष्णदेव भट्टाचार्य का छ महीने तक स्वकीया-परकीया को लेकर शास्त्रार्थ होता रहा। यह 'दिग्विजय विचार' के नाम से भी सुप्रसिद्ध है। इस सभा में नवद्वीप के सभा पंडित, काशी के सभा पंडित, सोनार ग्राम विक्रमपुर के सभा पंडित, उत्कल के सभा पंडित, धर्म अधिकारी (विचारक), वैरागी तथा वैष्णव सभी इकट्ठे हुए थे। इसमें भागवत शास्त्र मत, पुराण, महाप्रभु का मत, षड्गोस्वामियों का भक्ति शास्त्र तथा श्रीधर गोस्वामी की टीका, टीपणी आदि को लेकर विचार होता रहा। कृष्णदेव भट्टाचार्य पराजित हुए और स्वकीया मत की स्थापना में असफल हुए और परकीया-स्थापन के लिये विजय-पत्र लिख दिया गया। वृन्दावन और जयनगर (जयपुर) में विजय-पत्र की प्रतिलिपि भेजी गई। अतः गौड़ मडल में परकीया-वाद का आधिपत्य बना रहा। वृन्दावन से सिरोपा (सम्मान या पुरस्कार स्वरूप दी गई पगड़ी) आई। स्वकीयावाद की पराजय के फलस्वरूप बगाल, उड़ीसा, सूबे विहार में भी जहा स्वकीयावाद की स्थापना थी वहा लोगों ने उसे छोड दिया और परकीयावाद को अपनाया।

वल्लभ संप्रदाय की मधुर और सख्य भक्ति—

वल्लभ-सम्प्रदाय मे मधुर भाव की तथा सख्य भाव की भक्ति को ध्यान में रख कर भक्तो की दो कोटियाँ बताई गई है। मधुर भाव से भक्ति करने वाले भक्तो को सखी और सख्य भाव से भक्ति करनेवालो को सखा कहा गया है। इनमें राधा या चन्द्रावली स्वामिनी कही गई है। इस सम्प्रदाय में मुख्य सखिया आठ मानी गई है। उनके अलावा और भी बहुत सी सखिया है जिनकी संख्या बहुत अधिक है इसी प्रकार सखाओ की भी संख्या बहुत अधिक है लेकिन उनमे आठ मुख्य है। अष्टछाप के कवियो की एक विशेषता है—गोचारण-लीला में वे कृष्ण के सखा है कुञ्ज-लीला में सखी है। उन आठ कवियो के नाम निम्नलिखित है।

भक्त कवि	सखी	सखा
सूरदास	चम्पक लता	कृष्ण
परमानन्ददास	चन्द्रभागा	तोक

कुम्भनदास	विशाखा	अर्जुन
कृष्णदास	ललिता	ऋषभ
छीत स्वामी	पद्मा	सुबल
गोविन्द स्वामी	भामा	श्रीदामा
चतुर्भुज दास	विमला	विशाल
नन्ददास	चन्द्ररेखा	भोज

कांकरौली से प्रकाशित श्री हरिराय जी की भावना सहित चौरासी वैष्णवन की तथा अष्टसखान की वार्ता के अनुसार इन कवियों के नाम और स्वरूप का तालिका ऊपर दी गई है। श्री वल्लभाचार्य की सुबोधिनी टीका के रास पचाध्यायी, फल प्रकरण, अध्याय ३ में उन्नीस प्रकार की गोपियों का उल्लेख है जो रास में प्रवेश पाने की अधिकारिणी हैं।

सखी और मंजरी—

गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में भी अष्टसखियों की बात कही गई है। इस सम्प्रदाय में सेवा के प्रकार भेद से गोपियों की दो कोटियाँ की गई हैं - (१) सखी। (२) मंजरी। सखी उन भक्तों को कहा गया है जो प्रायः राधिका के समान ही कृष्ण का प्रीति विधान करते हैं। मंजरी वे हैं जो राधाकृष्ण के मिलन तथा सेवा के अनुकूल कार्य करना चाहते हैं। ये मंजरियाँ राधिका की अन्तरंगा हैं और इस दृष्टि से सेवा के क्षेत्र में इनका अधिकार सखियों से बहुत अधिक है। अष्ट सखियों के नाम तथा उन भक्तों के नाम निम्नलिखित हैं। श्री गौरांग के समय में नवद्वीप में ये इसी नाम से परिचित थे

ब्रजलीला में	गौरांग लीला में
ललिता	रूप गोस्वामी
विशाखा	रामानन्द राय
सुमित्रा	शिवानन्द सेन
चम्पकलता	राघव पंडित
रंगदेवी	गोविन्द घोष
सुन्दरी	वासुदेव घोष
तुंगदेवी	माधव घोष
इन्दुरेखा	गोविन्दानन्द

से यह बात बाद में आई। वल्लभाचार्य ने इस तरह की कोई बात नहीं कही है। श्री विट्ठलनाथ के बाद ही वल्लभ-सम्प्रदाय में यह बात आई। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय भी यह परम्परा पहले से ही चली आती है।

वल्लभ भगवान् के अवतार—

वल्लभ-सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य को पूर्ण ब्रह्म विष्णु अथवा कृष्ण कहा गया है। वैसे तो मध्ययुग में गुरु के प्रति भक्ति प्रायः सभी सम्प्रदायों में देखने को मिलती है। गुरु को गोविन्द ही नहीं गोविन्द से भी बढ़कर कहा गया है। नन्ददास ने वल्लभाचार्य को 'कृष्ण' कह कर वन्दना की है

तत्प्रमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल दल नैन।
जग कारन करुणार्नव, गोकुल जाको ऐन।[1]

कृष्णदास ने वल्लभाचार्य की वन्दना करते हुए उन्हें 'व्रजपति' 'गिरधारी' आदि कहा है

व्रजपति वल्लभ एक ही जानों भेद नहीं है नमो नमो।
भजनानंद रसिक गिरधारी आप दिखावत नमो नमो॥[2]

इसी प्रकार कृष्णदास ने एक जगह और कहा है

शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष प्रमाण भूतल आयौया।
कृष्णदास के प्रभु आप प्रगटे व्रज सुन्दरी मन भायौया[3]॥

कुंभन दास ने गाया है

बरनों श्री वल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रगटे फिर गोकुल सकल विश्व आधार[4]॥

जब सूरदास से उनके अन्तिम समय में पूछा गया कि उन्होंने समस्त जीवन भगवान् का गुणगान किया है लेकिन अपने गुरु वल्लभाचार्य का नहीं किया, सूरदास ने कहा मैं तो सगरो जस श्री आचार्य जी को ही बरनन कियो है जो मैं न्यारो देखतो तो न्यारो करतो[5]। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों का

---

[1] नन्ददास मानमंजरी (सम्पादक उमाशंकर शुक्ल) पृ० ६१।
[2] कीर्तन संग्रह भाग २ पृ० २१०।
[3] वही पृ० २१६।
[4] वही पृ० २०६।
[5] अष्टछाप वार्ता, कांकरौली पृ० ५२।

विश्वास है कि भक्तों के निमित्त पुष्टि मार्ग को प्रकाश करने तथा भागवत के गूढ अर्थ को प्रकट करने के लिये ही वल्लभ का अवतार हुआ था।

चैतन्य-पूर्ण अवतार—

श्री चैतन्य महाप्रभु को लोचनदास ने पूर्ण अवतार माना है और कहा है कि युगधर्म सकीर्तन का प्रचार करने के लिये ही उनका अवतार हुआ[1]। लोचनदास के मतानुसार राधा के वर्ण को अग में धारण कर तथा उनके भाव-रस को अन्तर में धारण कर श्री चैतन्य अवतरित हुए .

राधार वरणे अग गौराग हइया।
राधिकार भावरस अन्तरे धरिया॥[2]

वृन्दावन दास ने मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों की धारा में श्री चैतन्य का उल्लेख करते हुए विशेष रूप से उन्हें कृष्ण का अवतार कहा है। जयानन्द ने भी उन्हें युगावतार कहा है। उन्होंने बतलाया है कि कीर्तन का प्रचार तथा चाण्डाल पर्यन्त सबके उद्धार हेतु उनका अवतार हुआ है। श्री चैतन्य को पर-तत्त्व, कृष्ण कहा गया है।

स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व॥
नंद सुत वलि जोरे भागवते गाइ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसात्रि॥[3]

और भी कहा गया है

श्रीकृष्ण चैतन्य गोसात्रि व्रजेन्द्र कुमार।
रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार॥[4]

चैतन्य—एकही देह में राधा और कृष्ण—

चैतन्य की एक विशेषता अन्य किसी सम्प्रदाय में नही है और वह है राधा-कृष्ण के युगल रूप का एक ही देह में अवतीर्ण होना। श्री चैतन्य केवल कृष्ण नही है बल्कि एक ही देह में राधा और कृष्ण दोनो है। कविराज गोसाईं कहते है

---

[1] चैतन्य मगल, सूत्र खड।
[2] वही, आदि खड।
[3] चैतन्य चरितामृत, २।६।१३८।
[4] वही, १।४।१८१।

राधा कृष्ण एक आत्मा दुइ देह धरि।
अन्योन्ये विलासे रस आस्वादन करि॥
सेइ दुइ एक एबे चैतन्य गोसाँइ।
भाव आस्वादिते दोंहे हल एक ठाइ॥[1]

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि चैतन्य के अवतार का कारण युगनाम कीर्तन का प्रचार, आचाण्डाल सबका उद्धार प्रेम भक्ति का प्रचार और स्वयं अपने प्रेम और माधुर्य का आस्वादन करना था।

भगवान् की लीला—

प्रायः सभी वैष्णव सम्प्रदाय इस बात में एक मत हैं कि भगवान् लीला के लिये ही अवतार धारण करते हैं। भगवान् की इस लीला का दर्शन भक्त की सबसे बढ़कर काम्य वस्तु है। भगवान् की नित्य लीला का अंग होना ही भक्त अपना चरम साध्य मानता है। भगवान् नर रूप धारण कर नाना प्रकार की लीला करते हैं और इस लीला का वर्णन मध्ययुग के भक्त-कवियों ने छक कर किया है। भगवान की नानाविध लीला का प्रत्यक्ष करता हुआ भक्त अपने आपमें मस्त बना रहता है। उसके हृदय का निगूढ़ प्रेम उन सभी लीलाओं का दर्शन कर धन्य होता है। भगवान् की लीला, प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की कही गई है। मध्ययुग के भक्त कवियों की रचनाओं में इसी प्रकट लीला की अभिव्यक्ति हुई है। प्रकट लीला की अभिव्यक्ति में उन भक्त कवियों ने भगवान् के नाना रूपों को देखा है और उनसे नाना प्रकार के संबंध स्थापित किए हैं। उनकी भक्ति, रागानुगा भक्ति है इसलिये ये सभी संबंध प्रेम के ही संबंध हैं। लेकिन चाहे जो भी संबंध क्यों न हो, भगवान ही उस प्रेम के आलंबन हैं। इस प्रेम से आश्रयरूप आलंबन, नंद, यशोदा ग्वालबाल गोपियाँ आदि हैं। वे सभी इसी प्रयत्न में रहते हैं कि भगवान् को वे प्रसन्न रखें।

संयोग वियोग—

प्रेम के संयोग और वियोग पक्ष दोनों के ही चित्रण इन भक्त-कवियों ने किए हैं। मधुर प्रेम की सभी अवस्थाओं का उन्होंने वर्णन किया है। संयोग सुख को पाकर भक्त-हृदय जितना निहाल रहता है उतना ही वियोग-अवस्था में मिलन की लालसा से व्याकुल रहता है। लेकिन विरह की अवस्था में

[1] चैतन्य चरितामृत १।४।४९।

ही जैसे भक्त-हृदय अपने आपको पूर्ण पाता है और यही कारण है कि विरह जनित काव्य अत्यंत मरम और भावप्रवण हुआ है। गीतगान करने का उद्देश्य यह माना जाता है कि उससे श्रद्धा, प्रीति और भक्ति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है —

> सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-संविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
> तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥[1]

लीला-वर्णन में भिन्नता—

देश, काल और परम्परा के भेद से वैष्णव-कवियों के लीला-वर्णन में भी भेद है। जहाँ तक वल्लभ-संप्रदाय का प्रश्न है भक्त का चरम साध्य भगवान् की नित्य-लीला में युक्त होकर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति है। गोपी भाव से वह इस लीला को देखना चाहता है :—

> हमको विधि ब्रज बधू न कीन्हीं, कहा अमरपुर वास भए;
> बार बार पछितात यहै कहि, सुख होतो हरि संग रए।
> कहा जन्म जो नहीं हमारो, फिरि फिरि ब्रज अवतार भलो,
> वृन्दावन द्रुम लता हूजिए करता सों माँगिए चलो।
> यह बांछना होड क्यो पूरन दासी ह्वै वर ब्रज रहिए,
> सूरदास प्रभु अन्तर्यामी तिनहिं बिना कासों कहिए ॥[2]

वल्लभ संप्रदायी कवियों की विशिष्टता—

वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों ने और विशेष रूप से अष्टछाप के कवियों ने राधा कृष्ण की लीला के संयोग और वियोग अवस्था के जो वर्णन किए हैं उनमें राधा का स्वकीया रूप ही लिया गया है परकीया-भाव बहुत ही कम है। वियोग-शृंगार की विभिन्न अवस्थाएँ, पूर्वराग, मान, प्रेम-वैचित्त्य, प्रवास आदि का वर्णन इन भक्त-कवियों ने किया है। इनके अलावा कृष्ण की बाल-लीला का सुन्दर वर्णन इन भक्त-कवियों की रचनाओं में मिलता है। बालकों के स्वभाव आदि का सूक्ष्म निरीक्षण इन कवियों ने किया है। कृष्ण का घुटरुओं से चलने का प्रयास करना, प्रथम दो दाँतों का निकलना, मिट्टी खाना, चन्द्रमा के लिये मचलने, आदि का वर्णन सूरदास, परमानन्द दास आदि ने अतुलनीय ढंग से किया है। ग्वाल बालों के साथ गायों का चराना, नाना प्रकार की

---

[1] श्रीमद्भागवत, ३।२५।२५।

[2] सूरसागर, पद संख्या १६६४।

क्रीडा कराना, दूध-दही की चोरी करना आदि के वर्णन इन कवियों की रचनाओं में भरे पड़े हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय में परकीया-भाव—

वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों में स्वकीया भाव की ही प्रधानता है यह हम देख चुके हैं। परकीया भाव के पद बहुत ही कम मिलते हैं। कुंभनदास कृष्णदास तथा छीतस्वामी के ऐसे पद नहीं मिलते जिनमें परकीय भाव हो।[1] सूरदास, परमानन्ददास चतुर्भुजदास तथा गोविन्ददास के कुछ पद परकीय भाव वाले हैं।

सूरदास के निम्नलिखित पद में कहा गया है —

मुरली सुनत भई सब बौरी, मानहुँ परिसिर माझ ठगौरी।
छूटि सब लाज गई कुलकानी, सुत पति आरज पथ भुलानी।
कोउ जेवत पति ही तन हेर, कोउ दधिमें जामन पय फेर॥[2]

इसी प्रकार से गोविन्द स्वामी ने मुरली की आवाज पर मात पिता पति सुत को छोड़ने की बात कही है

अब कहा करौं मेरी आली री अखियन लागेई रहत,
निसदिन फिरति रूप रस माती आवे नहीं गृह काज करत।
जदपि मात पिता पति सुत गृह देखत तोहू,
न धीरज धरौं मोहन बेनु सुनत,
गोविन्द प्रभु को हौं जौलौं न देखौं आली,
तौलौं छिनु छिनु कसे मेरे प्रान रहत॥[3]

इसी तरह से परमानन्द दास ने भी कहा है —

मैं तो प्रीति श्याम सों कीनी।
कोऊ निन्दो कोऊ वन्दो अब तो यह कर दीनी।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार नन्द नन्दन सों बाढ़्यो अधिक सनेह।

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय पृ० ६२६।
[2] सूरसागर पद संख्या १६०७।
[3] अष्टछाप परिचय रूपासक्ति पद संख्या ४२, पृ० २५५।

जो व्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग।
परमानन्द लाल गिरधर को पायो मोरो संग ॥[1]

निम्बार्क संप्रदाय में मधुर रस की प्रधानता—

निम्बार्क सप्रदाय में मधुर रस की भक्ति की प्रधानता है। इस सप्रदाय के भक्त-कवियो ने युगल-मूर्ति की दिव्य लीलाओ का सुन्दर वर्णन किया है। श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्तिरूपा श्री राधा के साथ वृन्दा-वन धाम में नित्य लीला में निरत रहते है। 'महावाणी' मे सहज सुख का जो वर्णन हरिव्यास देव जी ने किया है उसमें 'प्रेम वैचित्र्य' का सुन्दर वर्णन है जिसमें पास रहने पर भी वियोग के भाव की विह्वलता बनी रहती है।

सदा अनमिले मिले तऊ लागे चहनि चहानि।
हो वलि जाऊँ अहु कहा परी अटपटी जानि ॥[2]

सखी और राधावल्लभी संप्रदाय में युगल लीला—

इसी प्रकार सखी सप्रदाय में युगल-लीला को सखी भाव से देखते रहने में ही भक्त अपनी चरम सार्थकता मानता है। सखी सप्रदाय की उपासना पर भगवत रसिक ने प्रकाश डाला है। उनका कहना है:

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप।
नित्यकिशोर उपासना, जुगल मंत्र को जाप ॥
जुगल मत्र को जाप, वेद रसिकन की बानी।
श्री वृन्दावन धाम, इष्ट स्यामा महरानी ॥
प्रेम देवता मिले बिना सिधि होइ न कारज।
'भगवत' सब सुख दानि, प्रगट भे रसिकाचारज ॥[3]

राधावल्लभीय संप्रदाय में भी युगल सरकार की प्रेम-लीला को भक्त आत्मविभोर होकर देखता रहता है। इस सप्रदाय के कवियो ने भी मधुर रस की लीला का ही वर्णन किया है।

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, पृ० ६२८।
[2] महावाणी, सहज सुख, राग ललित, पद सख्या १२।
[3] भागवत सप्रदाय, पृ० ३६० पर उद्धृत।

गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में रस का विवेचन—

गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में रस के आलम्बन श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रियागण हैं। रस विषयक सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन 'रसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' में किया गया है। 'उज्ज्वल नीलमणि' में जितने विशद भाव से रस का विवेचन हुआ है वैसा किसी साहित्यिक रस ग्रंथ में नहीं है। भक्त जिस प्रेम लीला का आस्वादन करता है उस प्रेम के आलम्बन गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में नायक नायिका यथेश्वरी दूती, सखी हरिवल्लभा आदि हैं। राधा और चन्द्रावली नित्यप्रिया हैं। वे कृष्ण के जैसी रूप-गुण वाली हैं। नित्य प्रेयसियों में कई प्रधान मानी गई हैं, उनके नाम ये हैं राधिका (गान्धर्वी) चन्द्रावली (सोमाभा), विशाखा, ललिता (अनुराधा), श्यामा, धनिष्ठा गोपाली, पद्मा, शव्या भद्रा तारा चित्रा और पाली। राधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं और प्रेयसियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार से नायक नायिका का अवलम्बन कर ब्रजबुलि के पदकर्त्ताओं ने लीलागान किया है। उज्ज्वल नीलमणि में पूर्ववर्ती अलंकार ग्रंथों और काम शास्त्रीय ग्रंथों के विभिन्न पारिभाषिक शब्दों जैसे विभाव अनुभाव संचारी भाव आदि को स्वीकार किया गया है लेकिन इसका विवेचन स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया है। नायक-नायिका के विभिन्न भेदों को ध्यान में रखकर पदों की रचना की गई है। पूर्वराग, मान, अभिसार, संयोग शृंगार की विभिन्न अवस्थाओं को लेकर ब्रजबुलि के पद कर्ताओं ने अपूर्व पदों की रचना की है।

गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में नाम संकीर्तन का महत्त्व—

गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय में नाम-संकीर्तन का बहुत बड़ा माहात्म्य है। कविराज गोस्वामी ने कहा है

> हर्षे प्रभु कहे शुन स्वरूप राम राय।
> नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय॥[1]

कलियुग में नाम संकीर्तन को ही परम उपाय कहा गया है। यह नाम संकीर्तन सभी अनर्थों का नाश करने वाला और कृष्ण प्रेम से पूर्ण करने वाला है

---

[1] चैतन्य चरितामृत ३।२०।७।

नाम संकीर्तन हैते सर्व्वानर्थनाश ।
सर्व्वशुभोदय कृष्ण प्रेमेर उल्लास ॥[1]

नाम कीर्त्तन की महिमा श्रीमद्भागवत में भी कही गई है :

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिना नृप निर्णीत हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥[2]

नाम सकीर्त्तन के वशीभूत भगवान हो जाते है । भगवान् ने स्वय कहा है कि जो उनके नाम का गान करते हुए उनके सामने नृत्य करता है उसके हाथो वे विक जाते है । उनका गान करते हुए उनके सामने जो रुदन करता है सब प्रकार से भगवान् उसके वश में हो जाते है ।

गीत्वा च मम नामानि, नर्त्तयेन्ममसन्निधौ ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्ज्जुन ॥
गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः ॥[3]

इस नाम सकीर्तन का इतना अधिक महत्व गौडीय सम्प्रदाय में है कि उनका कहना है कि इसी के प्रचार के लिये श्रीचैतन्य का अवतार हुआ था -

हरिनाम सकीर्त्तन प्रकट करिव[4] ।

कृष्णदास कविराज ने श्रीचैतन्य के आविर्भाव का कारण सकीर्तन का आस्वादन बतलाया है—

दुइ हेतु अवतरि लञा भक्त गण ।
आपनि आस्वादे प्रेम नाम संकीर्तन ।
सेइ द्वारे आचण्डाले कीर्तन संचारे ।
नाम प्रेम मालागाथि पराहल संसारे ॥[5]

(दो हेतुओ से (उन्होंने) अवतार लिया । प्रेम नाम सकीर्तन का आस्वादन स्वयं करते है । चाण्डाल पर्यन्त कीर्तन का सचार कर नाम-प्रेम की माला गूँथकर ससार को माला पहनाई) ।

---

[1] चैतन्य चरितामृत, ३।२०।९ ।

[2] भागवत, २।१।११ ।

[3] हरिभक्ति विलास ११-२३१ ।

[4] चैतन्य मगल, सूत्र खण्ड ।

[5] चैतन्य चरितामृत : १।४।३५ ।

चैतन्य सम्प्रदाय में साधन भक्ति—

कविराज गोस्वामी ने चैतन्य चरितामृत का 'मध्यलीला' के बाइसवें परिच्छेद में साधन भक्ति की विशद विवेचना की है। कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को साधन भक्ति के चौंसठ अंगों की शिक्षा दी है। इस शिक्षा में कुछ को ग्रहण योग्य और कुछ को वर्जित बताया गया है। गुरु का आश्रय, दीक्षा आदि दस तो ग्रहण योग्य हैं और अवैष्णव संग, सेवा-नामापराध आदि दस वर्जनीय हैं। इसके बाद श्रवण कीर्तन आदि चौआलीस अंग बताये गये हैं और उस चौआलिसा में श्रवण कीर्तन स्मरण पूजन, वन्दन, परिचर्या, दास्य, सख्य आत्मनिवेदन ये नौ श्रेष्ठ हैं। चौंसठ अंगों में *साधु संग, नामकीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरावास, श्रीमूर्ति सेवा ये पाँच अत्यन्त श्रेष्ठ हैं* और इन पाँचों में भी नामकीर्तन का उच्च स्थान दिया गया है। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि नामकीर्तन का कितना बड़ा स्थान गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में प्राप्त है।

वल्लभ सम्प्रदाय में सेवा का प्राधान्य—

श्री वल्लभाचार्य ने नवधा भक्ति को प्रेमभक्ति का साधन कहा है। वल्लभ-सम्प्रदाय की भक्ति की चर्चा करते समय हम यह देख चुके हैं कि नवधा भक्ति के संबंध में अष्टछाप के कवियों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। नाम कीर्तन का जो स्थान गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में है वह वल्लभ-सम्प्रदाय में नहीं है। बस नाम की महत्ता और नाम-कीर्तन नाम-जप के महत्त्व का मध्ययुग में अत्यधिक प्रधानता दी गई थी फिर भी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में उसकी अपनी एक अलग विशेषता है। इसी प्रकार से भगवान की सेवा का जो वैशिष्ट्य वल्लभ-सम्प्रदाय में है वह गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में नहीं है। सेवा का माहात्म्य बहुत बड़ा कहा गया है। परमानन्द दास ने कहा है

सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हू ते मीठी।[1]

इसी प्रकार से सूरदास ने भी 'सेवाफल' नाम के पद में ठाकुर के मन्दिर की सेवा का फल बतलाया है। यह पद नाथद्वारा निज पुस्तकालय की प्रति नं० ४६।५ में सुरक्षित है।[2] सूरदास सेवा का फल बतलाते हुए कहते हैं

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ६६७।
[2] वही, पृ० ६६६ पर उद्धृत।

प्रात. उठि श्रीकृष्ण को ध्यावै, जो फल मागै सो फल पावै ।
जो ठाकुर की आरति करै, तीन लोक ताके पायन परै ।
जो ठाकुर को करै प्रणाम, वैकुंठहि ताको निज धाम ।
जो श्रीहरि को सुमिरै नाम, ताको कुसल नित पूरन काम ।
जो ठाकुर को ध्यान लगावै, ध्रुव प्रहलाद की पदवी पावै ।
जिन हरि की चरणामृत लीयो, वैकुण्ठ लोक अपनो घर कीयो ।
जो हरिजू को करै श्रृंगार, ताको पूरन अगीकार ।

× + ×

सेवा में जो आलस लावे, कोटि जन्म प्रेत को पावे ।
वेद पुरान स्मृति जो भाखे, सेवा रस व्रजवीथिन चाखे ।
सेवा की है अद्भुत रीति, विट्ठलनाथ सो राखो प्रीति ।
श्रीआचार्यजी प्रकट वताई, कृपा भई तव सव मन आई ।
सेवा को फल कह्यो न जाई, सुख सुमिरौं श्रीवल्लभ राई ।
सेवा को फल सेवा पावै, सूरदास प्रभु हृदे समावै ।

इससे सहज ही समझा जा सकता है कि सेवा का वल्लभ सम्प्रदाय में क्या स्थान है। अवश्य ही सेवा का यह विस्तृत विधान गोकुलनाथजी तथा श्री हरिराय जी के समय में लिपिवद्ध हुआ। इस विपय पर न वल्लभाचार्य जी का और न विट्ठलनाथजी का कुछ लिखा हुआ मिलता है।[1]

(ख) पदावली

बंगाल का पदावली-साहित्य—

राधा-कृष्ण की लीला सवन्धी पदो की रचना व्रजभाषा और व्रजवुलि में सैकडो वर्षो तक होती रही है। दोनो का विपुल साहित्य भक्तो और रसिको को भाव विभोर करता रहा है। वगाल मे पदावली-साहित्य की अपनी एक अलग विशिष्टता है, भाव की दृष्टि से भी और सकलन की दृष्टि से भी। विशेप-विशेष लीला के पद भिन्न-भिन्न कवियो के एक जगह सगृहीत हुए है जैसे दानलीला, माथुर लीला आदि। इन लीलाओ का गान वगाल मे खूव प्रचलित है। कीर्तन करने वालो का दल होता है। कीर्तन के प्रारम्भ में चैतन्य सवन्धी वैसे ही पद गाए जाते है जिनका सवन्ध राधा-कृष्ण की लीला

[1] अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय, पृ० ६६३।

से है। इसे गौर चन्द्रिका कहते हैं। इनसे सुनने वाला को यह संकेत मिल जाता है कि किस लीला का उस दिन गान होगा। व्रजभाषा का पदावली साहित्य इस प्रकार का नहीं है और न बगाल की यह परंपरा ही हिन्दी प्रदेशो में है।

'महाजन' पदावली—

बंगाल में वैष्णव पदावली को 'महाजन पदावली' भी कहते हैं। ये पद गीति काव्य धर्मी हैं। पदों की रचना कविता करने के लिए नहीं लिखी गई है। उनका उद्देश्य भक्ति का निवेदन एवं उन पदों के द्वारा भगवान् की लीला को प्रत्यक्ष करना है। उन पदों को रूपक या कवि कल्पना समझना गलत होगा। उन भक्त कवियों के लिए यह परम सत्य है। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में जो नरलीला की थी उसी लीला का चित्र वैष्णव पदावली है। पदकर्त्ताओं ने वृन्दावन में चलने वाली राधा-कृष्ण की नित्य-लीला का आस्वादन किया है और अपनी उसी अनुभूति को इन पदों में अभिव्यक्त किया है। इन पदों के द्वारा भी वे उस लीला रस का आस्वादन करते रहे हैं। अतएव इन पदों का गीति-काव्य की दृष्टि से अध्ययन करना समीचीन नहीं होगा यद्यपि उनमें काव्यत्व भी है और गीतात्मकता भी। वास्तव में उन पदों में पदकर्त्ताओं की गंभीर अनुभूति और उनका धर्म विश्वास है।

जयदेव के 'गीत गोविन्द' में लीला-वर्णन के लिए जो गीत लिखे गए हैं उन्हें 'पद' कहा गया है। चैतन्य-परवर्ती साधकों की रचनाओं में चरम परिणति देखने को मिलती है। 'महाजन-पद' केवल शुष्क तत्वचिंतन के लिये नहीं लिखे गए। उन पदों में उन भक्तों की भक्ति गद्गद रसालुता और उनके भक्ति रस से सिक्त हृदय की सरस अनुभूति का परिचय मिलता है।

राधा-कृष्ण लीला का लौकिक रूप में वर्णन—

वैष्णव-पदावली में राधा-कृष्ण की लीला का जो वर्णन है वह लौकिक प्रेम की विभिन्न दशाओं के जैसा ही है। वास्तव में उस प्रेम का चित्रण, उस प्रेम की तन्मयता और तीव्रानुभूति को प्रकट नहीं किया जा सकता फिर भी उसे कुछ दूर तक मानव प्रेम की विभिन्न मनोदशाओं के द्वारा समझा जा सकता है। दूसरी बात यह है कि कृष्ण ने इस लीला का नटरूप धारण कर ही संपादित किया है

कृष्णेर जतेक खेला सर्वोत्तम नरलीला
नररूप ताहार स्वरूप।
गोपवेश वेणुकर नवकिशोर नटवर।
नरलीलार हय अनुरूप।[१]

यही कारण है कि वैष्णव पदावली का आकर्षण केवल भक्तो के लिए ही नही है वल्कि साधारण नट-नटियों के लिए भी है। लेकिन इतना होने पर भी यह ध्यान रखना जरूरी है कि यह लीला मानवीय नही है। उन 'महाजनों' के कृष्ण उनके अन्तर में अपने अपूर्व रूप तथा रस-माधुरी को लेकर विराजमान है। अतएव वैष्णव पदावली के अन्तर में पैठने के लिये वैसा हृदय और मन चाहिए। केवल काव्य की दृष्टि से उसके माधुर्य का आस्वादन करने वाला वहुत कुछ से और शायद असल वस्तु मे वंचित रह जाता है।

वैष्णव-पदावली में धर्म की अनुप्रेरणा—

वहुत वार काव्य को नीति या धर्म के प्रचार का वाहन वनाया गया है लेकिन इससे काव्योत्कर्ष में सहायता तो नहीं ही पहुँचती है वल्कि वह उनके अपकर्ष का कारण वन जाता है। वैष्णव पदावली धर्म की अनुप्रेरणा से रची तो गई है लेकिन उसमें मतवाद का स्थापन ऐसा नहीं किया गया है कि जिससे रसास्वादन में वाधा पहुँचे। व्रजलीलाख्यान की यह आनुसंगिक फल है, उसकी सहायक मात्र है। यही कारण है कि इन पदो की रचना करते समय श्रीकृष्ण का सर्वावतार श्रेष्ठ रूप और श्रीराधा का भगवान् की परा-शक्ति या परा-प्रकृति रूप वरावर वना रहता है। वैष्णव पदावली का अध्ययन करते समय यह मूलतत्त्व अगर आंखों से ओझल हो जाय तो उसका रसास्वादन करना भी अधूरा ही रह जायगा।

पदावली मे मधुर रस का प्राधान्य—

पदावली में दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भाव की भक्ति का परिचय मिलता है लेकिन सवसे अधिक मधुर रस को ही प्रधानता दी गई है। हम पहले देख चुके है कि भक्त विरह की दशा में ही अपने को सम्पूर्ण भाव से पाते है। पदावली में भी मधुर रस की भक्ति का प्राधान्य तो है लेकिन सर्वत्र विरह की व्याकुलता उसमें परिव्याप्त है जैसे नाना छल से भक्त का हृदय भगवान् से मिलन के लिए छटपट कर रहा है। मान, प्रवास, पूर्व्वराग सभी

[१] चैतन्य चरितामृत, २।८१।८३।

में उस विरह की वेदना को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इस विरह वेदना का अनुभव भक्त हृदय को इस प्रकार होता है कि उन्होंने राधा-कृष्ण के मिलने के वर्णन में भी उस विरह की प्रधानता बनाए रखी है। मिलन में विरह का भय बना हुआ है और विरह में मिलन की व्याकुलता पदावली में स्थापित भक्त-हृदय के भावावेग को बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता।

आसाम, उड़ीसा और नेपाल मे व्रजबुलि के पद—

व्रजबुलि के पद बंगाल के सिवा आसाम उड़ीसा और नेपाल में भी मिलते हैं। आसाम के वैष्णव पदों में बाल और किशोर रूप का वर्णन है और उनमें दास्य भक्ति की ही प्रधानता है। राधा को उन पदों में कोई स्थान नहीं दिया गया है। लगता है जैसे वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रभाव आसाम के वैष्णव भक्तों पर पड़ा है। उड़िया पदों में कुछ विनय और वन्दना के पद हैं। विष्णु राम आदि की वन्दना के पद भी मिलते हैं। कृष्ण के ऐश्वर्य रूप, पूतनादि वध का भी वर्णन किया गया है वैसे मधुर रस के भी कुछ पद मिलते हैं। नेपाल में व्रजबुलि के पद कुछ स्वतन्त्र रूप से लिखे हुए नहीं मिलते। नाटकों के बीच-बीच में लिखे हुए ये पद मिलते हैं इसलिए कृष्ण भक्ति-काव्य की दृष्टि से उन्हें कोई विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता।

पद कल्पतरु के आधार पर वर्ण्य विषयों की सूची—

पद-कल्प-तरु की सूची से बंगाल के वैष्णव-साहित्य में वर्णित विषयों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पद-कल्पतरु के कुछ विषय निम्न लिखित हैं

राधा का पूर्व राग, श्रीकृष्ण का पूर्व राग वय सधि रूपानुराग, अभिसार नायिका भेद, मान दुर्जय मान, विविध मान, अकारण मान, कारणमास मान, स्वयं दौत्य स्वयं दौत्य-सभोग रसालस अभिसारानुराग प्रेम-वचित्र्य रूपोल्लास रास रसोद्गार गोवर्धन लीला, शरतकालीन महारास गोष्ठ विहार और दानलीला नौका विलास बसन्त लीला स्नान यात्रा रथयात्रा, झूलनयात्रा अभिषेक लीला प्रवास, अदूर प्रवास सुदूर प्रवास, दिव्योन्माद स्वप्न रसोद्गार द्वादश-मासिक विरह, नानाविध विरह, विरह की दस दशा भावोल्लास, श्री गौरचन्द्र का नृत्यादि लीला-वर्णन गौरचन्द्र का रूप-वर्णन गौरचन्द्र के ऐश्वर्यादि का वर्णन, श्री गौराग का सन्यासादि वर्णन गौराग का माहात्म्य-वर्णन, गौरचन्द्र के

भक्त-वृन्दो का चरित्र वर्णन, दशावतार वर्णन, अष्टकालीय नित्य लीला, पूर्वाह्न लीला, मध्याह्न लीला, अपराह्न लीला, प्रदोष लीला, रात्रि लीला, निद्रा लीला, जन्मसकीर्तन, प्रार्थना ।

व्रजभाषा के वर्ण्य-विषय—

व्रजभाषा के विभिन्न कवियो ने दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर भाव के सुन्दर पदो की रचना की है। अष्टछाप के कवियो ने विभिन्न भावो और लीलाओ के वर्णन किए है लेकिन सूरदास आदि ने बाल लीला का जितना सुन्दर वर्णन किया है वह रसपरक साहित्य में बेजोड है। सम्भवत. अष्ट छाप के कवियो में नददास ने ही नायिका-भेद जैसी चीज लिखी है। व्रजभाषा के कवियो ने भी शृगार के सयोग और वियोग पक्ष दोनो के ही सुन्दर वर्णन किए है। व्रजभाषा और व्रजबुलि के कवियो की रचनाओ पर पिछले अध्यायो में पूरी तरह से प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। यहा पर तुलना के लिये कुछ पद नीचे दिए जा रहे है।

विनय के पद—

व्रजभाषा और व्रजबुलि के कवियो में शान्त रस के पद बहुत ही कम मिलते है। उनका ध्यान लीला-गान की ओर ही अधिक है। विनय के पदो में भक्त कवियो ने भगवान् को पतित पावन और अपने को पतित कहा है। व्रजभाषा के कवियो में विनय के पदो को देखने से सहज ही मालूम हो जाता है कि उनमें दैन्य की भावना अधिक तीव्र है। व्रजबुलि के पदकर्ताओ में दैन्य की वह तीव्रता नही दीख पडती।

भजन मन सतत हइया गिरदन्द।
राधा कृष्ण परम-सुख-दायक
रसमय परमानन्द ॥ ध्रु ॥
चंचल विषय-विष सुख मानि खाओसि
ना जानसि इह अति मन्द।
परकाले विकट मरण-दुख देयब
बुझह अबहि करु अन्ध ॥
मोहे दुख-भागि करण नहे समुचित
तो हाम जनमक बन्धु।

निज दुख जानि अबहि शरण कह
ओ दुहु करुणार सिन्धु ॥
जो पद पकज प्रेम-सुधा पिवि
दुर कर जिन दुख-द्वन्द ।
ए राधा मोहन कह तेजह मिलह मोह
जछे गहत निज बन्ध ॥[1]

नरोत्तम दास के निम्नलिखित पद में भी यह देखते ह कि भगवान में अनुरक्ति न होने के कारण भक्त ग्लानि प्रकट कर रहा ह

हरि हरि किये मोर करम अभाग ।
विफले जनम गेल हृदय रहल शेल
ना भेल हरि अनुराग ॥[2]

कुछ पद विद्यापति के अवश्य मिलते है जिनमें ब्रजभाषा के कवियो के पदा का आभास मिल जाता ह

जतने अतेक धन पाये बटोरलु
मेलि परिजने खाय ।
मरणक बेरि हेरि काइ ना पूछत
करम सगे चलि जाय ।
ए हरि वन्दो तुया पद-नाय
तुया पद परिहरि पाप-पयोनिधि
पार हव कौन उपाय ॥[3]

ब्रजबुलि कविया में ब्रजभाषा कविया से एक अलग विशेषता यह ह कि चैतन्य सप्रदायी कविया ने श्रीगौराग (चतन्य महाप्रभु) को श्रीकृष्ण का अवतार माना इसीलिए श्रीकृष्ण तथा श्रीगौराग में उन्हाने कुछ अन्तर नही देखा । श्रीकृष्ण की सभी लीलाए गौराग अवतार में भी हुइ । भक्त हृदय ने वसा ही उन्हें पतित-पावन माना

गौरांगपतित-पावन तुया नाम ।
कलि-जीवे जन आछिल कृत-पातकी
देओलि सवे निज दाम ॥ ध्रु ॥

---

[1] पद कल्पतरु, पद सख्या ३०३४ । [2] वही, पद सख्या ३०२० ।
[3] वही ३०१८ ।

आचण्डाल अवधि तोहारि गुणे कान्दये
प्रेम-पुलके नाहि ओर
हरि-नाम-सुधा-रसे जग-जन पूरल
दिन रजनी रहु भोर ॥[1]

यह सही है कि सूरदास तथा अन्य व्रजभाषा के कवियों में यह पतित-पावन का भाव बड़े ही वेग से प्रकट हुआ है :

परम पुनीत-पवित्र कृपानिधि, पावन नाम कहायौ ।
सूर पतित जब सुन्यौ विरद यह, तब धीरज मन आयौ ।[2]

अथवा

सरन गए को को ना उबार्‌यौ ।
जब जब भीर पड़ी संतन कौं, चक्र सुदरसन तहां संभार्‌यौ ॥[3]

दास्य भक्ति के पद—

दास्य भक्ति के पद भी व्रजभाषा में बहुत मिलते हैं। परिमाण और विविधता की दृष्टि से दास्य भाव वाले पद व्रजभाषा में व्रजबुलि से बहुत ही अधिक हैं। गोविन्ददास के निम्नलिखित पद से व्रजबुलि के भक्तों की रचनाओं का कुछ अनुमान किया जा सकता है —

भजहुं रे मन नन्द-नन्दन
अभय-चरणारविन्द रे ।
दुलह मानुष—जनम सतसगे
तरह ए भव—सिन्धु रे ।
शीत आतप वात वरिखण
ए दि यामिनी जागि रे ।
विफले सेविलुं कृपण दुरजन
चपल सुख-लव लागि रे ॥
ए धन जौवन पुत्र परिजन
इथे कि आछे परतीत रे ।
कमल दल—जल जीवन टलमल

[1] पद कल्पतरु, पद संख्या, ३००९ ।
[2] सूर सागर, १।१२५ ।
[3] वही, विनय, १।१४ ।

भजहुँ हरि-पद नीत रे ॥
श्रवण कीर्तन स्मरण वन्दन
पाद — सेवन — दासि ।
पुजन सखिजन आत्म निवेदन
गोविन्द दास अभिलाषि ॥[1]

भक्त हृदय हरि के चरण-कमलों में भौंरे की अनन्यता—अनुराग से तल्लीन रहना चाहता है

तज मन हरि विमुखन के संग ॥
जाको संगहि कुमति उपजति ह ।
भजनहि पड़त विभंग ॥ध्रु॥
सतत असत-पथ लेइ जो जायत
उपजत कामिनी—संग ।
शमन - दूत परमायु परीखत
दूरहि नेहारत रंग ॥
अतये से हरि—नाम सार परम मधु
पान करह छोडि ढंग ।
कह माधो हरि चरण सरोरुहे
माति रहु जनु भृंग ॥

और भी इसी प्रकार के पद दास्य भाव के और मिलते हैं इसकी तुलना में निम्नलिखित सूरदास का पद व्रजभाषा की दास्य भक्ति का प्रतिनिधित्व करता है

हमें नन्द नन्दन मोल लिये ।
यम के फंद काटि मुकराय, अभय अजात किये ।
भाल तिलक श्रवनन तुलसीदल मेरे अंक दिये ।
मूडे मूड कंठ बनमाला मुद्रा चक्र दिये ।
सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये ।
सूरदास को और बडो सुख जूठनि खाइ जियें ।[3]

---

[1] पदकल्पतरु, ३०३२ ।
[2] वही, ३०३५ ।
[3] सूरसागर, पद संख्या १७१ ।

सख्य रस के पद—

सख्य तथा वात्सल्य भक्ति के पदो से ब्रजभाषा का साहित्य तो भरा पड़ा है। ब्रजबुलि के कवियो में भी सख्य वात्सल्य भक्ति के पद मिलते हैं लेकिन उनकी संख्या बहुत थोड़ी है और जो कुछ है भी उनमें भी बंगला के ही पद अधिक है। अत॰ यह नि संकोच भाव से कहा जा सकता है कि ब्रज-भाषा के सख्य तथा वात्सल्य भक्ति के पदो के सामने भाव तथा परिमाण की दृष्टि से इन पदो का कोई विशेष महत्व नही। निम्नोद्धृत ब्रजबुलि के पद में सख्य-रस का नमूना देखा जा सकता है:

जमुनाक तीर तरुतल सुशीतल
असिया मिलल दोन भाइ।
सभे वले भाल भाल कि खेला खेलावे बोल
आजु खेलिव एइ ठाँयि॥
फारु कोचड़ेते भेंटा कड़ि
रामचाकि दाढागुलि
केहो कहो पाचनि फिराय।
राम कानाइ कुतूहले दुइ भाइ दुइ दले
शिशुगण करे धाओया धाय॥
कौतुके ठेलाठेलि निज अंग हेलाहेलि
केह केह लाट्टया घुराय।
सव शिशु थरे थरे गेंहुँया वलाइ करे
लोफे गेंडु मत वलाइ॥
सातलि भागलु वलि ठाके महामत बली
चौदिगे पड़े धाओया धाइ।
एक शिशु कहे शुन सातलि पात्याछि पुन
मार जदि कानाइर दोहाइ॥[१]

लेकिन इस तरह के सख्य विषयक पद ब्रजबुलि में गिने-चुने ही हैं। गैया चराने के लिए कृष्ण-बलराम के साथ वन को जाते हुए गोप-बालो का सुन्दर वर्णन है :

---

[१] पद कल्पतरु, पदसंख्या ११९५।

गोठेरे साजन गोपाल।
धवलि सावलि पिउलि वलिया
हांकारे सब राखाल ।।ध्रु।।
काए काधे चेलि विनोद पागडि
काए गले गुजागाभा।
श्वेत लोहित काए नील पीत
कटि तटे भाल शोभा ।।
भाइया बलराम पूरिछे विषाण
कानाइ पूरिछे वेणु।
उच्च पुच्छ करि श्रवण तुलिया
आगे चले सब धेनु ।।
नाचत गायत वेणु बाजायत
धेनु चालायत रग।
भोजन-सभार लया आगुसार
यादवेन्द्र चलु सगे ।।[1]

जन्म सबधी पद—

जन्म सबधी पदो में ब्रजबुलि के वैष्णव-कवियों ने महाप्रभु चैतन्य के जन्म का वर्णन ही अधिक किया है। कृष्ण-जन्म सबधी पद भी कुछ मिलते हैं। बाल-लीला के पदो में भी इसी प्रकार से चैतन्य और कृष्ण दोनो से सबधित पद हैं। ब्रजभाषा का बाल-लीला में कृष्ण सबधी ही पद अधिक लिखे गए है वैसे कुछ पद वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ सबधी भी मिलते है।

बाल-लीला—

ब्रजबुलि के निम्नलिखित पद में शची माता (चैतन्य महाप्रभु की माता) के आगन में गौराग के नाचते हुए सुन्दर रूप का वर्णन है

कियें हाम पेखलु कनक-पुतलिया।
शचीर आगिनाय नाचे धूलि-धूसरिया ।।
चौदिके दिगम्बर बालके वेढ़िया।
तार मामे गोरा नाचे हरि हरि बलिया ।।

[1] पदकल्पतरु पदसख्या, ११९२।

रातुल कमल-पदे धाय द्विजमणिया ।
जननी शुनये भाल नूपुरेरे ध्वनिया ।।
वासुदेव घोषे कहे शिशु-रस जानिया ।
धन्य नदियार लोक नव द्वीप धनिया ।।[1]

वात्सल्य-रस का पद—

निम्नोद्धृत ब्रजबुलि का पद वात्सल्य रस का सुन्दर नमूना है। कृष्ण को मक्खन का लालच दिखा कर यशोदा नचा रही है। मक्खन खाते-खाते नाचते हुए श्याम का सौंदर्य अपूर्व रूप में प्रकट हो रहा है जिसे देखकर यशोदा और रोहिणी मा का हृदय वात्सल्य स्नेह से गद्‌गद् है .—

दधि-मथ-ध्वनि शुनइते नीलमणि
आओल संगे बलराम ।
जशोमती हेरि मुख पाओल मरमे सुख
चुम्बये चान्द-वयान ।।
कहे शुन जादुमणि तोरे दिव क्षीर ननी
खाइया नाचह मोर आगे ।
नवनी-लोभित हरि मायेर वदन हेरि
कर पाति नवनीत मागे ।।
राणी दिल पूरि कर खाइते रंगिमाधर
अति सुशोभित भेल ताय ।
खाइते खाइते नाचे कटिते किंकिणी बाजे
हेरि हरषित भेल माय ।।
नन्द-दुलाल नाचे भालि ।
छाडिल मंथन-दण्ड उथलिल महानन्द ।
सघने देइ करतालि ।। ध्रु ।।
देख देख रोहिणि गद गद कहे राणी
जादुया नाचिछे देख मोर ।
धनराम दासे कय रोहिणी आनन्दमय
दुहु भेल प्रेमे विभोर ।।[2]

---

[1] पदकल्पतरु, ११५० ।

[2] वही, ११५७ ।

व्रजभाषा में सूरदास, परमानन्ददास आदि के लिखित बाल-लीला के पद अत्यन्त सुपरिचित हैं। उन पदों में विविधता है और एक अपूर्व रस-माधुरी है। व्रजभाषा के वे पद विश्व-साहित्य में बेजोड़ हैं।

शृंगार के पद—

शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—के वर्णनों से व्रजभाषा और व्रजबुलि साहित्य भरा पड़ा है। व्रजभाषा तथा व्रजबुलि के कवियों और उनकी रचनाओं के संबंध में पिछले अध्यायों में पूरा प्रकाश डाला जा चुका है। उन पदों को देखने से ही पता चलता है कि भक्त-कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन छक कर किया है। व्रजबुलि में वर्णित शृंगार-लीलाओं के वर्ण्य विषय के संबंध में हम पहले कह चुके हैं और यह भी कह चुके हैं कि गौडीय वैष्णव संप्रदाय में इसके संबंध में जितने विस्तार से आलोचना हुई है उतनी अन्य किसी भक्ति साहित्य में नहीं। व्रजभाषा के कवियों ने भी शृंगार लीला का विशद वर्णन किया है। पर यह तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि व्रजबुलि साहित्य इस दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध है।

व्रजबुलि और व्रजभाषा में वर्णित विभिन्न लीलाएँ—

व्रजबुलि तथा व्रजभाषा दोनों में ही राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया गया है। बाल लीला, गोवर्धन-लीला, रास लीला, गोष्ठ विहार, नौका विलास, दान-लीला, वसन्त लीला, झूलन, होली, अभिषेक लीला आदि के सुन्दर वर्णनों से वैष्णव काव्य-साहित्य भरा पड़ा है। व्रजभाषा साहित्य में राधा-कृष्ण के वर्षाकालीन 'झूला' या 'हिंडोला' के पद और वसन्तोत्सव प्रसंग 'होरी' या 'होली' के पद प्रचुर मात्रा में लिखे गए। गौडीय वैष्णव साहित्य में इस प्रकार के पदों की संख्या बहुत कम है। ऐसा अनुमान करना गलत नहीं होगा कि 'हिंडोला' तथा 'होली' लीला विषयक पदों के लिए बंगीय वैष्णव साहित्य व्रजभाषा के कवियों का ही ऋणी है। आज भी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के गाँवों में सावन भादों के दिनों में स्त्रियाँ झूला झूलती हैं। होली उत्सव में रंगभरी पिचकारी और गुलाल की लाली की बहार से इन प्रदेशों में जैसा उद्दाम-मनोहर उत्सव होता है, उसके सामने बंगाल में यह उत्सव फीका ही होता है। वर्षा तथा वसन्त ऋतु की ये विशेषताएँ इन प्रदेशों में परंपरागत हैं।

राधाकृष्ण की अन्य लीलाओं के संबंध में निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि बंगीय वैष्णव-साहित्य में उनका जितना प्राचुर्य और वैचित्र्य है तथा जितना

वैविध्य है वह ब्रजभाषा के वैष्णव-साहित्य में नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य में दधि बेचन-लीला, दान-लीला, मान-लीला, निसानिन लीला, रासलीला, झूलन, अष्टयाम लीला का प्राधान्य है। श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में ब्रजभाषा के कवियो ने मूलत श्रीमद्भागवत का ही अनुसरण किया अतएव उनकी कवि-प्रतिभा तथा काव्य-कौशल भागवत् के ही घेरे में आबद्ध रह गए, इसीलिए उनमें लीला-वैचित्र्य इतना कम है।

भ्रमरगीत की परम्परा—

ब्रजभाषा के 'भ्रमर-गीत' की परम्परा इसकी अपनी है। उद्धव-संवाद के अन्तर्गत जिस मार्मिक व्यञ्जना का परिचय मिलता है वह अपूर्व है। बंगीय वैष्णव पदावली में यह बात नहीं मिलती। भ्रमर-गीत प्रसंग में जो मार्मिक व्यंजना ब्रजभाषा कवियों द्वारा बन पड़ी उस युक्तिविन्यास-वैभव तथा वाक्-चातुर्य का ब्रजबुलि साहित्य में बहुत बड़ा अभाव रह गया।

लीला वर्णन द्वारा भक्ति निवेदन—

इन लीलाओ के सम्बन्ध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि इन भक्त कवियो ने इन पदो में अपने हृदय का प्रेम व्यक्त किया है, उन्हें न बालकों के सूक्ष्म मनोविज्ञान का चित्रण करना था और न नायिका भेद का सांगोपांग विवेचन करना था। उनका एकमात्र उद्देश्य अपने अन्तर के भगवान् की लीला को प्रत्यक्ष करना था और उस नित्य लीला का द्रष्टा होना था। नन्द, यशोदा, गोप, गोपी सभी रूपो में उनके भक्त हृदय का प्रेम ही प्रकट हुआ है।

(ग) भाषा

ब्रजबुलि में ब्रजभाषा के शब्द—

पिछले अध्यायो में ब्रजभाषा और ब्रजबुलि की भाषागत विशेषताओं और विकास पर प्रकाश डालने की चेष्टा हमने की है। यह हम देख चुके हैं कि सन् ईसवी की चौदहवीं, पन्द्रहवी शताब्दी में उत्तर भारत में एक सामान्य-काव्य भाषा का व्यवहार होता था। इस सम्बन्ध में हमने अवहट्ठ की भी चर्चा की है और पूर्वी तथा पश्चिमी अवहट्ठो की विशिष्टताओं पर भी विचार किया है। इस सामान्य काव्य भाषा के रूपो को ब्रजबुलि तथा ब्रजभाषा के पदो और शब्दो में सहज ही देखा जा सकता है। यहा पर ब्रजबुलि के कुछ पदो और शब्दो को प्रस्तुत करने जा रहे हैं जिनसे तत्कालीन सामान्य काव्यभाषा

का कुछ परिचय प्राप्त हो सकता है। ब्रजबुलि के बहुत से ऐसे पद हैं जिनमें ब्रजभाषा के शब्द आ गए हैं। ब्रजबुलि के पद-संग्रहों में ब्रजभाषा के सूरदास, श्रीभट्ट आदि जैसे भक्त कवियों के पद ज्यों के त्यों उद्धृत किए गए हैं।

निम्नलिखित ब्रजबुलि के पदों में ब्रजभाषा के शब्द आ गए हैं

सखि गागरि गरि काख तलि जलको जमुनाक चलि
देखो एक दूर बनि जमुना कूल आला
चरने पर दिया चरन खडेहु स जलद बरन
मेरि मन हेरि हरेन किए सेइ लाला
सखि नागर वर निय तले चूडाय पर चाद झले
मोहन मनि माल गले दोल्हि वोन माला
सखि पिघन कोटी-पीत बसन
मोली जिनि ज्योति दसन
जाको कहि जगत घोसन ताको कहि मारा
मन हम घर चलत तुरत वन को अहि
जलत मरत होगो नन्द लाला
बुझे अनुमान सुरत जिनको मोर चित मदान घर से नित
प्रान सकट मोझे डाला।
भनए द्विज गगाराम देखो एक जलद स्याम सहि जगपाला
जिनको पद विपद हरन तरनि भवसिन्धु तरन
पूजे ऐ कोमल चरन धोवे जम जाला सह धोवे जन जाला।[1]

निम्नलिखित दोहे रूप गोस्वामी के लिखे हुए हैं—

डहक बहक बहुत फिरेतेहे भक्ति ना जाने कोइ।
विन्दावन में भक्तिदाता रूप सनातन दोइ॥
रागानुगा भजन करो करो ब्रज कि रित
नन्दनन्दन पावगे त करो रूप सो प्रित।
नेहि नेहि ए दो दोहां एक रसके भूप
जाति कुल मय्यादा खोके भज सोनातन रूप॥१॥

[1] विश्वभारती—हस्तलिखित प्रति संख्यक २६९ (४)।

रूप रस के सरोवर ज्ञान भजन करो वाम करो कुण्ड बुड़
राधाकृष्ण ध्यान करो तो रूपानुगा होइ ।
मति फाटे मौन मिले मन फाटे सोना होय
ओछा हो हिति करे आखेर सब कुछ खोय ।
रूप रघुनाथ को भजन विने जो जिए जगत संसार
आत्मा ना मरत बनाया जेछे मालाकार ।
रूप ना सोवरे सोवंरे रघुनाय ॥
हेनी जनार सगे मोर नाहि साय
रूप रूप सब कोइ कहे मन में उपजय रग
रूप ना जानके रूप कहाय करे भजन का भंग ॥३॥
हरि के फिरे न पयउ द्रय लोभ फिरे सब देस
मन लाभ तु कहि ऊजर भयत उजर केस ।
साहेब सो सेवक बड़ा जानाया भगवान
छमुद्र वांघा रघुनाय कूद गेव हनुमान ॥४॥[१]

बंगला की वैष्णव-पदावली मे व्रजभाषा के पद—

डा० सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री आफ व्रजवुली' में कुछ, कवियो का उल्लेख किया है । इन कवियो मे कुछ तो व्रज के ही रहने वाले थे और कुछ वगाली कवि थे जिन्होने अपना वहुत अधिक समय वृन्दावन मे वास कर विताया था । डा० सेन ने निम्नलिखित कवियो तथा उनकी रचनाओ का उल्लेख किया है[२]

आगरवाली—

प्रिया मुख देखो श्याम नेहारि
कहि न जात आनन की शोभा रहि बिचारि बिचारि ॥

इन कवियो की रचनाओ के कुछ उदाहरण हम दे रहे है, उनके अलावा अन्य कवियो और जिन सग्रहो मे उनकी कविताए मिलती है उनके नाम नीचे दिये जा रहे है—

कवि	संग्रह
आगरवाली	पदकल्पतरु (पद सख्या २८८४)

[१] विश्वभारती हस्तलिखित-प्रति, सख्या ४९६ ।

[२] ए हिस्ट्री आफ व्रजवुलि लिटरेचर, पृ० ३७५-३७९ ।

कवि	संग्रह
कवलदास	कृष्ण पदामृत सिन्धु में एक पद मिलता है लेकिन पाठ अशुद्ध है।
कृष्णकान्त तनया	अप्रकाशित पदरत्नावली, ४८३। पदकल्पतरु २८८६।
कृष्णदास	पदकल्पतरु—चार पद। अप्रकाशित पद रत्नावली, ४६३। कृष्ण पदामृत सिन्धु ११३।
कृष्णानन्द	'अप्रकाशित पद रत्नावली ४८५ (यह पद 'पद रत्नाकर' से लिया गया है)। इसी कवि के एक बंगला और चार ब्रजबुलि के पद, 'पद रससार' से 'अप्रकाशित पद रत्नावली में उद्धत है।
गोपालभट्ट	पदकल्पतरु २९६६, १०८८ २८३८।
नन्ददास	'अप्रकाशित पदरत्नावली' में 'पद रससार' से लिए हुए पद ४३५ ४३६ ४३७, ४३८।
परमानन्द	पदकल्पतरु १५८५, २८५८, २८७१।
माधो	पदकल्पतरु २३६४, २३६५ २९६८ ३०३५।
रघुनाथ दास	पदकल्पतरु २३८७, २४६७, २८६९।
राम राय	पदकल्पतरु २८४४।
राय गदाधर	बंगीय साहित्य परिषद् हस्तलिखित प्रति, संख्या ९७८।
व्यास	भक्ति रत्नाकर' (पृ० ४७३) में दो पद, बंगीय साहित्य परिषद एक पद, हस्तलिखित प्रति, सं० ९७८।
शिवराम	पदकल्पतरु १५५७।
सुन्दर कवि	अप्रकाशित पदरत्नावली ४६४।

बंगीय साहित्य परिषद् की हस्तलिखित प्रति संख्या २०१ में श्रीभट्ट का निम्नलिखित पद आया है—

स्यामा स्याम सेज उठ भठे स परस दौ करत सिंगार।
इन पहरे ओभा-के मोतिन-के माला उन पहरे नओ से बहार॥

नट पटि पाग सोंआरत श्यामा अलक सुधाये नन्द-कुमार।
श्रीभट् कहे युगल-से दूती हामारि कुंजन में करत बिहार ॥[1]

सम्भवत. यह पद निम्बार्क संप्रदाय के 'श्रीभट्ट' का है।

सूरदास का निम्नलिखित पद पदकल्पतरु में संगृहीत है—

गोविन्द मुखारविंद निरखि मन विचारों।
चन्द्र कोटि भानु कोटि मदन कोटि ओयारों ॥
सुन्दर कपोल लोल पंकज दल-नयना।
अधर बिम्बु मधुर हास कुंदकलिक-दशना ॥
मणि-कुंडल मकराकृत अलक-भृंगु पुंजा।
केशर को तिलक बनो सोणे मणि गुंजा ॥
नव जलधर तड़िदम्बर गले बनमाला शोहे।
लीला-नट सूर के प्रभु रूपे जग-मन-मोहे ॥[2]

सूरदास के उपर्युक्त पद के अलावा और दो पद 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में आए है उनमें से एक निम्नलिखित है--

सभे मेलि झूलन जाइ हिंडोर।
बंशी-वट तट सब सखिभोरा
झूलत नन्द-किशोर ॥
सखि-गण सगहि चलु वृखभानु-सुता
बावत मृदग-मन्दिरा।
ताम्बुल करपुर हार मनोहर
भेटब पीतम प्यारा ॥
ललिता विशाखा सगीत गाओत
हरि-गुण-गान सब भोरा।
सूरदास प्रभु तुहारि दरश को
ढूंढ़त नयन-चकोरा ॥[3]

सूरदास का दूसरा पद जो 'अप्रकाशित पद रत्नावली' में आया है वह राधा के रूप का वर्णन है। लेकिन इसमें एक बात ध्यान देने की है कि ब्रजभाषा

---

[1] डा० सुकुमार सेन-ए हिस्ट्री आफ ब्रजबुलि लिटरेचर, पृ० ३७८ पर उद्धृत।

[2] पदकल्पतरु, पद सख्या १०८६।

[3] अप्रकाशित पद-रत्नावली, पद संख्या ४६६।

के पदों को लेते समय ब्रजबुलि के संग्रह-कर्ताओं ने अपने ढंग से उसमें परिवर्तन किए हैं। निम्नलिखित पद में यह बात देखने को मिलती है—

देखलु एकहिं अदभुत बाग।
युगल कदंल पर गजवर गौरल
तापर सिंह करत अनराग ॥ ध्रु ॥
तहिं पर सरवर ता पर गिरिवर
गिरि फूले कन्ज-पराग।
रसिक कपोत बसइ तहिं उपर
अरुण अमल फल लाग ॥
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव
ता पर शुक-मृग भाग।
युगल धनुक बसइ तहिं उपर
ता पर मणि धर नाग ॥
इहविध शोभा रहत निशि-वासर
कबहुँ ना करत तियाग।
सूरदास पहु रसिक शिरोमणि
याइहु सिंधु सोहाग ॥[1]

ब्रजबुलि की भाषागत विशेषताएँ और ब्रजभाषा—

ब्रजबुलि के व्याकरण और भाषागत विशेषताओं पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। अब ब्रजबुलि की कुछ विशेषताओं को देने जा रहे हैं जिनमें ब्रजभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। ब्रजबुलि के सर्वनाम के रूपों के साथ ब्रजभाषा के रूपों का साम्य है। ब्रजबुलि के हम हाम हम सब हमें, हमें हम सें, मुझे, मोर मझु मो हामक, हमा सञ्ज तुहु तोहे तासों तोर, ताहर तोह तोहारि तुहु सञ्जे, सो ताहे, ता सञ्जे ताव, ताक्र, ताह, तापर आदि ब्रजभाषा के ही अनुरूप हैं।

ब्रजबुलि में षष्ठी विभक्ति में 'कि' का प्रयोग होता है। यह ब्रजभाषा का ही प्रभाव है बस ब्रजबुलि में लिंग पर ध्यान नहीं दिया जाता। जैसे—

---

[1] अप्रकाशित पद रत्नावली, पद संख्या, ४६५।

आजु बनि नव अभिषेक गोविंद कि ।
परमानन्द प्रेम-सुख-कन्द कि ॥[1]

ब्रजबुलि का 'सो' ब्रजभाषा जैसा ही है—

'सो रस-जलधि माझे मणि-गेह ।'

ब्रजभाषा का 'गए' ब्रजबुलि मे 'गेव' हो गया है ।

'दूरे गेव मुरलि अलापन गीत ।'

ब्रजभाषा का कर्त्तृ-पद स्त्रीलिंग होने पर तिङन्त पद भी 'ई' युक्त होता है । मैथिली तथा बगला मे ऐसा नही है । ब्रजबुलि मे दोनो बाते देखने को मिलती है । वैसे प्राचीन मैथिली मे यह प्रवृत्ति है । जैसे विद्यापति की निम्नलिखित पक्तियाँ—

'गेलि कामिनी गजहु गामिनी ।'
'ततहि धावल दुहु लोचन रे
जतहि गेलि वर नारि ।'

ब्रजबुलि के कुछ शब्द—

ब्रजबुलि में बहुत से ऐसे शब्दो का प्रयोग हुआ है जो कभी कभी उच्चारण भेद से ब्रजभाषा के शब्दो से भिन्न प्रतीत होते है । बहुत-से शब्द ज्यो के त्यो उसी रूप मे व्यवहृत हुए है । उनमे से कुछ शब्द नीचे दिए जा रहे है—

पहु, रोयत, देइ, भोर, आन, लावनि (लावण्य), लहु, भाषनि, ढुलायत, नाचत, गायत, नहि, अथिर, चलइ, काहे, उपेखि, आइला, माझ, तुरिते, ऐछे (ऐसे), ऐछन, सगहि, प्रकटहि, विने (विना), को, देयव, माहा, वैठत, किये, होय, मोय, दुहु, वरिखये, जैछे (जैसे), ताहे, शोहे (सोहे), विहरे, कोर, चटकिनि, छाह, पेखलुं, जानसि, तुहुँ, झामर, कहये, अव, वोलव, ताकर, आगे, अभिलाषी, नेहारि, तोर, तोहे, माहा, निन्द, जारल, रोख, (रोष), बात, वहुत, वयनी, दुलह, आगोरलि, पहिल, हेरत, पियासे, छाति (छाती), छोडि, समुझिया, प्राण-सागाति, तव, तनिक, मोहे, निहारि, मोरि, ऊयल (उगा), दौ (दो), झुरये, तियासल, जीउ, निकसव, वनाइ, छोटि (छोटी), वयन, (वदन), खेह, पूछिए, सूववूब, खोय, लखई, भेटलु, सहइ, लेउ, लखइ, चित, आँखिते, पूछिये, एक वेरि, जेठ, हठ, इये, भेजल, साचि (सचित), विछुरल, आयल, वैठे, वैठये,

---

[1] पदकल्पतरु, सख्या १५८५ ।

दीठ मीठ (मीठा), उघारि गारि (गाली) उहवे, इनवे, वालाइते, दीपल (दीप), डराइ, भाय, मेहइ बाउरि वरी आनहि आवत, निवसइ बिछुरल, फुर, पुरे, दहत, भिगल दुवर रेह गोड बिसरन, ढरकत, जोय, रोय, तातल, रोपल, टुटल, कटारि (कटारी), चिवुग उमडि, कौन कामा, आवलि तेजह उवरि, तेजि (त्यागकर), समुझलुं, मोडमि पातियायब, टूटत गावयिलु, गोर भेल, फिरत, खोयल, घोर परतित (प्रतीति) विहाने। ढीट, तल्पइ (तडपते हैं), ढेरि (ढेरी), निचोरि (निचाड कर), मातियत, पियारि कउन (कौन), घोरि (घोलकर), कतहु (कहीं) टारल आदि।

(घ) छन्द और अलकार—

बगला की वैष्णव पदावली के छद—

बगला की वष्णव पदावली में प्रधानतया तीन श्रेणी के छन्द मिलते हैं (१) मात्रा-वृत्त छन्द (२) अक्षरवत्त छन्द (३) मात्रा-वत्त और अक्षर वृत्त मिश्रित छन्द।

शुद्ध मात्रा-वत्त छन्द मथिली और बगला की ब्रजबुलि पदावली में ही मिलता है लेकिन मथिली और ब्रजबुलि वण के लघु-गुरु विचार के सम्बन्ध में पर्याप्त स्वाधीनता है। प्राचीन हस्तलिखित मथिली और ब्रजबुलि की पोथियो में तो उच्चारण के अनुसार वण विन्यास पाया जाना है। लेकिन मुद्रित बगला पदावली ग्रथ में यह नहीं हो सका है। विद्यापति के किसी किसी पद में वण के लघु-गुरु व्यवहार की स्वाधीनता इतनी अधिक दीखती है कि उसको मात्रावृत्त छन्द न कहकर अक्षरवृत्त कहना ही ठीक होगा। निम्नलिखित पद में यह बात देखी जा सकती है—

सामर सुदर ए बाटे आएल
ते मोरि लागिल आखी।
आरति आवर साधि भले
सबे सखी-जन साखी॥
कहइ मो सखि कहइ मो।
कतए साहरि थाना।
बुरहु दुगुन एहि मये आवओ
पुनु दरसन आना।

कि मोरा जीवने कि मोर जौबने
कि मोरा चतुर पने ।
मदन-बाने मुरछलि अछ्यो
सहयों जीव अपने ।

इसे त्रिपदी छन्द की लघु-गुरु मात्रा और यति की रक्षा करके पढ़ना असंभव है। वर्णों के लघु-गुरु पर विचार न करके यदि बंगला लघु त्रिपदी के समान पढ़ा जाय तो दो-तीन स्थलों को छोड़कर कहीं रुकावट नहीं पड़ती। माजि, मो और बाने शब्दों में यथा क्रम 'मा-आ-जि', 'मो-ओ-र' और 'बा-आ-ने' और आवओ तथा अछ्यो के स्थान पर 'आव' और 'अछो' उच्चारण करने पर ही अक्षर औ यति-शुद्ध बंगला और लघु-त्रिपदी छन्द होता।

पदावली-साहित्य में व्यवहृत होने वाले छन्द निम्नलिखित हैं—

आठ, सोलह, और बारह मात्राओं की 'चतुष्पदी'। विषम चरणों में बारह और सम चरणों में सोलह मात्राओं वाला विषम चतुष्पदी छंद। अट्ठाइस, पच्चीस (३+४+३+४+३+४+४) तथा तेइस (३+३+३+३+३+३+५) मात्राओं की त्रिपदी।

सैंतालिस और इक्यावन मात्राओं की दीर्घ चतुष्पदी।

वर्णिक छंद या अक्षर वृत्त निम्नलिखित हैं—

चौदह अक्षरों वाला पयार छंद।
आठ, दस और ग्यारह अक्षरों वाला एकावली छंद।
छब्बीस अक्षरों वाला दीर्घ त्रिपदी छंद।
बीस अक्षरों वाला लघु त्रिपदी छंद।

इनके अलावा धामाली तथा और विभिन्न प्रकार के मिश्र छंदप्रयुक्त हुए हैं। मिश्र छंदों में मिश्र पचपदी, मिश्र पयार, मिश्र त्रिपदी आदि उल्लेख योग्य हैं।

मात्रिक और वर्णिक छंदों के कुछ उदाहरण निम्नोद्धृत हैं :

मात्रिक छन्द—

शुनइते चमकइ गृहपति-राव।
तुय मञ्जिर-रवे उनमति धाव ॥

यह सोलह मात्राओं वाला चतुष्पदी-छंद है।

विषम चतुष्पदी का उदाहरण—

कालियदमन दिन माह।
कालिन्द-कूल कदम्बक छाह॥
कत शत ब्रज-नव-बाला।
पेखलु जनु थिर बिजुरिक माला॥

तेइस मात्रा की त्रिपदी—

मन्द पवन कुंज भवन
कुसुम-गन्ध-माधुरी।
मदन राज नव समाज
भ्रमर भ्रमरि-चातुरी॥

चौदह अक्षर का पयार—

प्रति अंग कोन विधि निरमिल किसे।
देखिते देखिते कत अमिआ बरिषे॥
भलु भलु किया रूप देखिनु स्वपने।
खाइते शुइते मोर लागियाछे मने॥

ग्यारह अक्षरा वाली एकावली—

अपरूप तुआ मुरली धुनि।
लालसा बाढ़ल शवद शुनि॥
किरूपे ए रूप देखिया सेह।
उदवेगे धनि ना धरे देह॥

बीस अक्षरा वाली लघु त्रिपदी—

कदम्बेर बने थाके कोन जने
केमन शबद आसि।
एक आचम्बिते श्रवणर पथ
मरमे रहल पशि॥

धामाली छन्द का उदाहरण—

आर धुमाए आला सइ
गौर भावेर कथा।
कोनर भितर कुल-वधू
कान्दया आकुल तथा।

हलदि बाँटिते गोरी
बसिल जतने ।
हलदि-बरन गोरा चाँद
पड्या गेल मने ॥
किसेर राधन-किसेर बाड़न
किसेर हलदि बाँटा
आंखिर जले बुक भिजिल
भास्या गेल पाटा ॥

मिश्र त्रिपदी—

तखनि बलिलुं तोरे जाइस ना जमुना-तीरे
चाइस ना से कदम्बेर तले ।
तुमि एखन केन बा बोल शुन नागो बड़ि माइ
गा मोर केमन केमन करे ॥

बंगला की पदावली और ब्रजभाषा के पदों में अलंकार—

बगाल के पदावली-साहित्य मे नाना अर्थालकारो और शब्दालंकारो का प्रयोग हुआ है । अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि शब्दालकार तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक आदि अर्थालकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । इन अलकारो का प्रयोग अभ्यासपूर्वक नही किया गया है । वे अपने आप ही सहज भाव से आते गए है । ब्रजभापा के भक्त कवियो के लिये भी यही बात कही जा सकती है । सूरदास के पदो मे उपमाएं उत्प्रेक्षाएँ एक-पर-एक आती जाती है फिर भी लगता है कि जैसे भक्त कवि प्रयत्न करने पर भी, उन अलकारो की सहायता लेने पर भी जो कुछ कहना चाहता था वह नही कह सकता, जैसे उसमें अतृप्ति बनी ही रहती है ।

ब्रजभाषा के पदों के छंद—

ब्रजभापा के वैष्णव-कवियो ने अधिकाश गेय पदो की रचना की है । इस गेयता का ध्यान पद-रचना के समय उन्होंने बराबर रखा है । यही कारण है कि सब समय छद के नियमो का पालन करने का आग्रह नही दीख पडता । यति भग दोष तो प्राय. ही देखने को मिल जाता है लेकिन गाने में यह दोष नही रह जाता । विभिन्न रागो के पद इन भक्त कवियो ने लिखे है । इन पदो में टेक या ध्रुव जोड दिए गए है । सगीत को ध्यान मे रखकर ऐसा

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी :

अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम सस्करण स० २००७ वि० ।

अष्टछाप —सम्पादक पो० कण्ठमणि शास्त्री, प्रकाशक पो० कण्ठमणि शास्त्री, सचालक विद्याविभाग, काकरोली, द्वितीय सस्करण स० २००९ वि० ।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (भाग १, भाग २) —डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग । प्रथम सस्करण, स० २००४ वि० ।

अष्टछाप-परिचय : —प्रभुदयाल मीत्तल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा । द्वितीय सस्करण, सं २००६ वि० ।

असमिया साहित्य की रूपरेखा —लेखक विरचिकुमार वरुआ, अनुवादक अध्यापक कमल नारायण, राष्ट्रभापा प्रचार समिति, गुवाहाटी, आसाम ।

उत्तरी भारत की संत परंपरा :—परशुराम चतुर्वेदी, भारती भडार, प्रयाग, स० २००८ वि० ।

उद्धव-शतक : —जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रकाशक इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, १९५४ ई० ।

कविता-कौमुदी (भाग १) : —रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मदिर प्रयाग, छठा सस्करण, स० १९९० वि० ।

कीर्त्तन-संग्रह : —सकलन कर्ता, लल्लू भाई, छगनलाल देसाई, अहमदाबाद, सस्करण १९८४ वि० ।

कीर्त्तिलता और अवहट्ठ भाषा—शिवप्रसाद सिंह, प्रकाशक साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण सन् १९५५ ई० ।

कुंभनदास : —सम्पादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पो० कण्ठमणि शास्त्री, क० श्री गोकुलानद शर्मा, प्रकाशक पो० कण्ठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, काकरोली (राजस्थान), प्र० स० २०१० वि० ।

गोपी प्रेम — हनुमान प्रसाद पोद्दार मुद्रक तथा प्रकाशक, घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम सस्करण स० १९९१ वि० ।

गोविन्दस्वामी —सपादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पं० कण्ठमणि शास्त्री, क० गाकुलानद तल्ग प्रकाशक पं० कण्ठमणि शास्त्री, विद्याविभाग, काकरौली (राजस्थान) प्रथमावृत्ति स० २००८ वि० ।

घनानन्द-कवित्त —सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक सरस्वती मंदिर, जतनवर, बनारस । द्वितीय सस्करण स० २००७ वि० ।

चौरासी वष्णवन की वार्ता —प्रकाशक लक्ष्मी वकटेश्वर प्रेस, बम्बई । स० १९८५ वि० ।

छीतस्वामी —सम्पादक गो० श्री ब्रजभूषण शर्मा, पा० श्री कण्ठमणि शास्त्री, म० श्री गोकुलानद शर्मा, प्रकाशक पं० कण्ठमणि शास्त्री, विद्या विभाग काकरौली (राजस्थान) । प्रथम सस्करण स० २०१२ वि० ।

ढोला मारूरा दूहा —सम्पादक श्री रामसिंह श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी प्रकाशक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, स १९९१ वि० ।

तामिल और उसका साहित्य —श्री पूर्णसोमसुन्दरम् सम्पादक, क्षेमचन्द्र 'सुमन', राजकमल पब्लिकेशन लिमिटेड बम्बई द्वारा प्रकाशित ।

तुलसी-ग्रन्थावली (२) —सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल भगवानदीन, ब्रजरत्नदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, पहला सस्करण, स० १९८० वि० ।

देव-दर्शन —श्री हरदयालु सिंह प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग १९४१ ई० ।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—प्रथम खड : गोस्वामी हरिराय जी प्रणीत, सपादक, गो० श्री व्रजभूषण शर्मा तथा द्वारका दास परीख, प्रकाशक, शुद्धाद्वैत एकेडमी, काकरौली, प्रथम सस्करण, स० २००८ वि० ।

वही —द्वि० खण्ड-प्रथम सस्करण स० २००९ वि० ।

वही —तृतीय खण्ड-प्रथम सस्करण स० २०१० वि० ।

ध्रुवदास-ग्रन्थावली —सम्पादक तथा प्रकाशक रामकृष्ण वर्मा, भारतजीवन प्रेस, बनारस सिटी ।

नन्ददास (प्रथम और द्वि० भाग) —सम्पादक उमाशकर शुक्ल, प्रकाशक-प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग । प्रथम सस्करण सन् १९४२ ई० ।

नन्ददास-ग्रन्थावली —सम्पादक व्रजरत्नदास, प्रकाशक काशी नागरीप्रचारिणी सभा, स० २००६ वि ।

नवधा भक्ति : —जयदयाल गोयन्दका, मुद्रक और प्रकाशक-घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० १९९४ वि० ।

नागर समुच्चय : —नागरीदास कृत, प्रकाशक प० श्रीधर शिवलाल जी, ज्ञान सागर प्रेस, मुम्बई, सवत् १९९५ वि० ।

निम्बार्क माधुरी : —ब्रह्मचारि विहारी शरण, प्रकाशक वृन्दावन, स० १९९७ वि० ।

पंचमंजरी : —(रसमजरी, अनेकार्थ मजरी, मानमजरी या नाममाला, विरह मजरी तथा रूप मजरी) प्रकाशक बलदेवदास करसन दास कीर्त्तनियाँ, सरस्वती प्रेस, बम्बई, सस्करण स० १९७३ वि० ।

पुरानी हिन्दी : —चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम सस्करण सं० २००५ वि० ।

पुष्टिमार्गीय दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : —रामदास जी सम्पादित, प्रकाशक—लक्ष्मी वेक्टेश्वर प्रेस, बम्बई, स० १९८८ वि० ।

पृथ्वीराजरासो —चन्दबरदाई —सम्पादक मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या राधाकृष्णदास और श्यामसुन्दर दास, नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला, क्रमांक ४ १९०४ ई० ।

प्राचीन वार्ता रहस्य (१) —सम्पादक द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख, प्रकाशक श्रीविद्याविभाग काकरौली, प्रथमावृत्ति सं० २००० वि० ।

प्रेमलता अर्थात् श्रीहितहरिवंश जी रचित 'चौरासी पद' —आगरा अब्दुल उलाही प्रेस में छापा गया। सं० १९४५ वि० ।

प्रेमवाटिका —सम्पादक किशोरीलाल गोस्वामी काशी हरि प्रकाश यन्त्रालय में मुद्रित ।

बिहारी रत्नाकर —जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ग्रन्थागार प्रकाशन शिवाला' बनारस । नवीन संस्करण, १९५१ ई० ।

बुद्ध-चरित (काव्य) —सर एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया' के आधार पर रामचन्द्रशुक्ल कृत, प्रकाशक काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं १९९५ वि० ।

ब्रजभाषा —धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।

ब्रजभाषा का व्याकरण —पं० किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक हिमालय एजेन्सी कनखल (हरिद्वार) ।

ब्रजमाधुरीसार —सम्पादक वियोगी हरि, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग अष्टम संस्करण सं० २००६ वि० ।

ब्रजलोक संस्कृति —संपादक सत्येन्द्र, प्रकाशक ब्रज-साहित्य मंडल, मथुरा सूर जयन्ती सं० २००५ वि० ।

ब्रज विहार —नारायण स्वामी, प्रकाशक श्री कृष्णदास आत्मज सेठ खेमराज, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई सं० १९५० वि० ।

भक्त कवि व्यास जी —वासुदेव गोस्वामी, सम्पादक, प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम-संस्करण सं० २००९ वि० ।

भक्तनामावली : —ध्रुवदास कृत, सम्पादक राधाकृष्ण, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१ ई० ।

भक्तमाल : —भक्ति सुधास्वाद तिलक सहित, प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, दूसरी बार, सन् १९२६ ई० ।

भगवत रसिक की वाणी —वृन्दावन निवासी महन्त स्वामी भगवानदास जू की आज्ञानुसार लखनऊ गणेशगज निवासि केदारनाथ शालीग्राम वैश्य ने ब्राह्मण प्रेस नौबरा कानपुर में मुद्रित कराय प्रकाशित किया ।

भागवत सम्प्रदाय —बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण सं० २०१० वि० ।

भारत का धार्मिक इतिहास —पं० शिवशकर मिश्र, प्रकाशक—रिखब दास वाहिती, दुर्गाप्रेस, कलकत्ता ।

भारत की चित्रकला —रायकृष्णदास, भारतीय दर्पण ग्रन्थमाला, भारती भंडार, प्रयाग । सं० २००७ वि० ।

भारतवर्ष और वैष्णवता —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशक श्री वैष्णव साधु सुधारिणी सभा, मन्त्री भवन, बडोदा, १९१० ई० ।

भारतीय आर्यभाषा और हिंदी —डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, प्रकाशक, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।

भारतीय ईश्वरवाद —श्री पाण्डेय रामावतार शर्मा, सन् १९३६ ई० ।

भारतीय दर्शन —बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक—शारदा मन्दिर, २।१७ गणेश दीक्षित लेन, बनारस ।

भारतीय मूर्तिकला —रायकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९९६ वि० ।

भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)—सम्पादक ब्रजरत्नदास, प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा काशी सं० १९९१ वि०।

भ्रमरगीत-सार सम्पादक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक—गोपालदास सुन्दरदास साहित्य-सेवा-सदन, बनारस, चतुर्थ सस्करण सं० १९९० वि०।

मध्यकालीन धर्म-साधना —पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५२ ई०।

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—सावित्री सिन्हा, आत्मा राम ऍंड सन्स दिल्ली प्रथम सस्करण, १९५३ सन ई०।

मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी)—हरिहर निवास द्विवेदी, प्रकाशक—उन्नय द्विवेदी, विद्यामन्दिर प्रकाशन, प्रथम सस्करण सं० २०१२ वि०।

महावाणी —हरिव्यास देवाचार्य सम्पादक श्री निम्बार्क-माधुरी तथा श्री निम्बार्क मयूख, प्रकाशक ब्रह्मचारी बिहारी शरण, वृन्दावन सं० २००८ वि०।

मिश्रबन्धु विनोद (१) —गणेश बिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी, मिश्र, प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। तृतीय सस्करण सं० १९८२ वि०।

वही (२) —द्वि० वार, सं० १९८४ वि०।

वही (३) —द्वि० वृत्ति सं० १९८५ वि०।

मुगल बादशाहों की हिन्दी —चन्द्रबली पाण्डेय, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा संवत् १९९७ वि०।

मूल गोसाइं चरित —वेणीमाधवदास, प्रकाशक-गीता प्रेस गोरखपुर संवत १९९१ वि०।

युगल शतक —भट्ट देवाचार्य, प्रकाशक मं० पं० श्रीब्रज-बिहारी शरण मु० गुपटा, पा० मऊ जि० गया, वि० सं० २००९ वि०।

रसखान पदावली —संग्रहकर्ता श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी प्रकाशक—हिन्दी प्रेस प्रयाग।

रसिक गोविन्द और उनकी कविता —प० वटुकनाथ शर्मा तथा प० बलदेव उपाध्याय। प्रकाशक—बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी-सभा, स० १९८३ वि०।

राजस्थान का पिंगल साहित्य —प० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हितैषी पुस्तक भडार, उदयपुर, प्रथम सस्करण, सन् १९५२ ई०।

राजस्थानी भाषा और साहित्य— प० मोतीलाल मेनारिया, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

रामचरित मानस —तुलसीदास, सपादक श्री शभुनारायण चौबे, काशीनागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, प्रथम सस्करण, स० २००५ वि०।

रासविलास अर्थात् चौबीस छदम—श्रीवृन्दावन दास जी कृत, मथुरा में श्याम, काशी में लाला श्याम लाल के प्रवन्ध से छपा, स० १९४६ वि०।

रूपक रहस्य —श्यामसुन्दर दास, इडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, चतुर्थ सस्करण, स० २००८ वि०।

लघुरस कलिका (प्रथम भाग) —यह पुस्तक लखनऊ के समर हिन्द यत्रालय मे छपी, स० १९३५ वि०।

विद्यापति की पदावली —सकलन कर्ता रामवृक्ष बेनीपुरी, शोधक गगानन्द सिंह, पुस्तक भडार, पटना और लहरिया सराय।

विभूतिमयी ब्रजभाषा —श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाम महात्म्य कार्यालय (ब्रजसाहित्य ग्रन्थमाला)।

विरह लीला —कवि आनदघन कृत, सम्पादक काशी प्रसाद जायसवाल, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०७ ई०।

वैष्णवधर्म —परशुराम चतुर्वेदी, विवेक प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५३ सन् ई०।

शिवसिंह सरोज —शिवसिंह सेंगर द्वारा सगृहीत, स० १९४०।

श्रीराधा-सुधा-शतक	—रूप रचित, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका से उद्धृत होकर और ग्रन्थ के मुख्य सम्पादक श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु की आज्ञा लेकर और उन्हीं के द्वारा शुद्ध करके बाबू हमीर सिंह ने हरिप्रकाश यन्त्रालय में मुद्रित किया।
श्रीलाड़ सागर	—चाचा हित वृन्दावन दास प्रकाशक लाला जुगल किशोर काशीराम रोहतक मण्डी (पूर्व पंजाब) सं० २०११ वि०।
संगीत रागकल्पद्रुम	—संकलन कर्ता कृष्णानन्द व्यासदेव, सम्पादक नगेन्द्रनाथ वसु प्रकाशक बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता, १९१४, १९१६।
सम्प्रदाय प्रदीपालोक (सम्प्रदाय प्रदीप का भावानुवाद)	—अनुवादक पं० कण्ठमणि शास्त्री प्रकाशक विद्या विभाग, कांकरोली।
सरसमंजावली	—सहचरी शरण कृत, वृन्दावन निवासी महन्त स्वामी भगवनदास जी की आज्ञानुसार वैश्य नौघड़ा कानपुर ने डायमण्ड जुबली प्रेस में छपवाकर प्रकाशित किया, सन् १९०५ ई०।
सुजान रसखान	—किशोरीलाल गोस्वामी, सम्पादक आर्य पुस्तकालय आरा द्वारा संपादित काशी, भारत जीवन प्रेस में मुद्रित सन् १८९२ ई०।
सूरदास	—डा० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रकाशक हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय प्रयाग, परिवर्धित संस्करण, १९५० ई०।
सूर निर्णय	—द्वारका दास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक अग्रवाल प्रेस मथुरा, द्वितीय संस्करण सं० २००८ वि०।
सूर सागर (१)	—सम्पादक श्री नन्ददुलारे बाजपेयी, प्रकाशक काशी नागरीप्रचारिणी सभा, संस्करण सं० २००१।
वही (२)	— प्रथम संस्करण सं० २००७ वि०।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण दूसरा भाग।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ —प्रकाशक अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०।

शुक्ल (रविशंकर) अभिनंदन ग्रन्थ — प्रकाशक रामगोपाल माहेश्वरी, प्रधान मंत्री, मध्यप्रदेश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

हस्तलिखित ग्रन्थ और खोज रिपोर्टें—

छद्म षोडसी —श्री वृन्दावनदास कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ५७७। १८।

जुगलसत (युगल शतक) — श्री भट्ट, काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २७९१। १६९६।

तेरहो समय प्रबन्ध पद बन्ध (कृष्ण लीला) श्री वृन्दावनदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २८८०। १७६७।

वाणिया (सखी सम्प्रदाय के कवियो की स्फुट वाणियां) —काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ३७१।२६९।

राम-सागर —परशुराम कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ६८०।४९२।

हित-चौरासी —हित हरिवंश कृत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ७३०।५३०।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। खोज रिपोर्ट्स—काशी।

बंगला, आसामी, उड़िया :

अकिया-नाट (आसामी) —विरचि कुमार बड़ुआ

अचिन्त्यभेदाभेदवाद — श्री सुन्दरानन्द विद्याविनोद, गौड़ीय मठ, बागबाजार कलकत्ता से प्रकाशित, १३५७ बंगाब्द।

अप्रकाशित पद-रत्नावली —सम्पादक सतीशचन्द्रराय, प्रकाशक—श्री यतीनचन्द्र राय, एम० ए० साहाजादपुर पो० (पावना)।

क्षणदा गीतचिन्तामणि —विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्याकार गविशनाथ गोस्वामी प्रकाशक काशीनाथ राय वृन्दावन १३१५ बंगाब्द।

गौड़ीय वैष्णव तत्त्व – श्री शम्भुश्वर सान्याल, प्रकाशक श्री शम्भुश्वर सान्याल, ७ बालिगंज स्टेशन रोड, कलकत्ता १३५३ बंगाब्द।

गौड़ीय वैष्णव रसेर अलौकिकत्व—उमा राम, प्रकाशक मुरारीसाहा १६८ रमेशदत्त स्ट्रीट कलकत्ता १३५८ बंगाब्द।

गौड़ीय वैष्णव साहित्य —हरिदास प्रकाशक श्रीधाम नवद्वीप, हरिबोल कुटीर ४६२ चैतन्याब्द।

गौरपदतरंगिणी —सकलनकर्ता जगद्बंधु भद्र, प्रकाशक बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, १३१० बंगाब्द।

चण्डीदास पदावली —सम्पादित अक्षय चन्द्र सरकार, साधारणी जन्त्रे, श्री नन्दलाल वसु द्वारा मुद्रित और प्रकाशित चुचुड़ा, १२५८ बंगाब्द।

चण्डीदास पदावली —श्री हरेकृष्ण मुखोपाध्याय तथा श्री सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित प्रकाशक बंगीय साहित्य परिषद्, मन्दिर १३४१ बंगाब्द।

चिठि पत्रे समाज चित्र (२ भाग)—श्री पंचानन मंडल, प्रकाशक विश्वभारती ग्रन्थन विभाग ६।३ द्वारकानाथ ठाकुर लेन कलकत्ता १९५३ ई०।

चैतन्य चरितामृत (१) —कृष्णदास कविराज गोस्वामी सम्पादक राधागोविन्दनाथ संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करण भक्तिग्रन्थ प्रचार भण्डार ११ सुरेन ठाकुर रोड बालिगंज, कलकत्ता १३५५ बंगाब्द।

वही	(२)	—	वही	१३५६
वही	(३)	—	वही	१३५७
वही	(४)	—	वही	१३५९ ,,
वही भूमिका		—	वही	१३५५

चैतन्य भागवत —वृन्दावन दास, सम्पादक अतुल कृष्ण गोस्वामी, कलकत्ता ४१८ चैतन्याब्द ।

चैतन्य मंगल —जयानन्द, सम्पादक नगेन्द्रनाथ वसु, कालीदास नाग, प्रकाशक—बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, १९०५ ई० ।

चैतन्य मंगल —लोचनदास, भक्ति भूषण श्री मृणाल कान्ति घोष सम्पादित ।

झूलन गीति —श्रीवीरचन्द्र, नूतन हवेली ललित यन्त्र में मुद्रित, १३०७ त्रिपुराब्द ।

नेपाले बांगला नाटक —सम्पादक श्री ननीगोपाल बन्दोपाध्याय, प्रकाशक—रामकमल सिंह बंगीय-साहित्य-परिषद् मंदिर २४३।१ अपर सार्कुलार रोड कलकत्ता, १३२४ बंगाब्द ।

पंच माणिक्य —कालीप्रसन्न सेन गुप्त विद्याभूषण, प्रकाशित १३०७ त्रिपुराब्द में ।

पदकल्पतरु (१) —संकलन वैष्णवदास सम्पादक सतीशचन्द्र राय, प्रकाशक—बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता, १३२२ बंगाब्द ।

वही (२) — वही १३२५ बंगाब्द

वही (३) — वही १३३० „

वही (४) — वही १३३४ „

वही परिशिष्ट — वही १३३८ „

पदावली माधुर्य —श्री दीनेश चन्द्र सेन पब्लिशिंग हाउस, ६१ बड़बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता, १३५४ बंगाब्द ।

पदामृत माधुरी (चार खंड) —नवद्वीप ब्रजवासी तथा खगेन्द्रनाथ मित्र संकलित, प्रकाशक गुरुदास चट्टोपाध्याय कलकत्ता ।

पदामृत समुद्र राधामोहन द्वारा संकलित, प्रकाशक रामदेव मिश्र, द्वितीय संस्करण १३१५ बंगाब्द ।

प्राचीन गद्य पद्यादर्श (उड़िया) — संपादक राय साहेब आर्त्तवल्लभ महान्ति, प्रकाशक प्राची समिति, कटक, १९३२ ई० ।

वंगभाषा औ साहित्य - दिनेशचन्द्र सेन, प्रकाशक—गुरुदास चट्टोपा-

ध्याय एण्ड सन्स, कलकत्ता।
बंग साहित्य परिचय (खण्ड २)—दीनेशचन्द्र सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय १९१४ ईसवी।
बड़-गीत (आसामी) —श्री शङ्करदेव और माधवदेव द्वारा रचित, नूतन तारण, बरकट की कम्पनी के श्री गंगाधर बरुवर जी द्वारा प्रकाशित जोरहाट आसाम।
बलरामदास —सम्पादक श्री रमणीमोहन मल्लिक, कलिकाता १३०६ बंगाब्द।
बांगलाचरित ग्रंथे श्री चैतन्य —श्री गिरिजा शंकर राय चौधरी कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९४९ ई०।
बांगलार वैष्णव धर्म —महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित १९३९ सन् ई०।
बांगला साहित्येर इतिहास (प्रथम खंड) —श्री सुकुमार सेन प्रकाशक उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य माडर्न बुक एजेंसी कलकत्ता, द्वितीय संस्करण १९४८ ई०।
बांगालीर इतिहास (आदिपर्व)—नीहार रंजन राय, बुक एम्पोरियम कलकत्ता १३५६ बंगाब्द।
विद्यापति गोष्ठी ओ गीति त्रिगतिका —श्री सुकुमार सेन साहित्य सभा वर्धमान, १९६० ई०।
वैष्णव कविता श्री तपन मोहन चट्टोपाध्याय द्वारा संगृहीत और सम्पादित १३२८ बंगाब्द।
वैष्णव-पदावली (चयन) —सम्पादक [illegible] नाथ मित्र प्रकाशक कलकत्ता विश्वविद्यालय १९६१ ई०।
वैष्णवपदावली (वासुदेव घोष के पद) —[illegible] प्रकाशक बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता १३१० बंगाब्द।
वैष्णव वंदना —[illegible]।
वैष्णव महाजन पदावली —प्रकाशक श्री [illegible] वसुमती साहित्य मन्दिर कलकत्ता।

वैष्णव रस साहित्य —खगेन्द्रनाथ मित्र, प्रकाशक कमला बुक डिपो, कलकत्ता, १३५३ बंगाब्द।

वैष्णव साहित्य —सुशील कुमार चक्रवर्ती, कलकत्ता १३३२ बंगाब्द।

वैष्णवसाहित्य प्रवेशिका —श्री हिमांशु चन्द्र चौधरी, प्रकाशक जेनरल, प्रिन्टार्स एण्ड पब्लिशर्स लिमिटेड, ११९ धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता, १३५८ बंगाब्द।

भक्तिर प्राण —श्री भागवत कुमार गोस्वामी, प्रकाशक—चौ० बैनर्जी एण्ड कंपनी, २५ कर्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता।

भक्ति रत्नाकर —नरहरि चक्रवर्ती, सम्पादक रामनारायण विद्यारत्न, प्रकाशक—बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता।

भक्ति-रस —विमान प्रकाश गंगोपाध्याय, कलकत्ता ४ से प्रकाशित।

भागवत-धर्म (२ भाग) —श्री वृन्दा प्रसाद मल्लिक, प्रकाशक-तारादास भट्टाचार्य, नदीया प्रचार समिति, नवद्वीप १३२६ बंगाब्द।

भानुसिंहेर पदावली — रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रकाशक-श्री पुलिन विहारी सेन, विश्वभारती, ६।३ द्वारकानाथ ठाकुरलेन, कलकत्ता, १३५८ बंगाब्द।

भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय (१) —अक्षय कुमार दत्त, द्वितीय संस्करण, नूतन संस्कृत यंत्र, १८८८ ई०।

वही (२) —वही, द्वितीय संस्करण, संस्कृत प्रेस १३१४ बंगाब्द।

भारतीय मध्यजुगे साधनार धारा —श्री क्षितिमोहन सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित १९३० ई०।

भाषार इतिवृत्त —श्री सुकुमार सेन, प्रकाशक—वर्द्धमान साहित्य सभा, १९५० ई०।

मध्यजुगेर बांगला साहित्य —तुलसी प्रसाद वन्द्योपाध्याय, दास गुप्ता एण्ड कंपनी लिमिटेड, ५४-३ कलेज स्ट्रीट, कलकत्ता १२, १३५८ बंगाब्द।

बंगला पत्रिकाएँ -
उत्तरा
प्रदीप
प्रवासी
विश्वभारती पत्रिका
समालोचनी
साहित्य परिषत् पत्रिका
हस्तलिखित ग्रन्थ —
पदमेरुग्रन्थ (पदावली संग्रह-ग्रन्थ) —विश्वभारती में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ९५० ।
पद-संग्रह (पदावली संग्रह-ग्रन्थ) — विश्वभारती में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २३४६ ।
रूप गोस्वामी के ब्रजभाषा के दोहे —विश्वभारती में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ४९६ ।
द्विज गंगाराम का पद —विश्वभारती में सुरक्षित, हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या ७६९ ।
अन्य पदों के फुटकल संग्रह ।
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश--
अग्निपुराण —संपादक, पंचानन तर्करत्न, बंगवासी कार्यालय, कलकत्ता १३१४ बंगाब्द ।
अणुभाष्य (१, २) —बनारस संस्कृत सिरीज, प्रकाशक, ब्रजवासी दास एण्ड कंपनी बनारस, १९०७ ई० ।
अहिर्बुध्न्य-संहिता (पांचरात्र आगम) प्रथम भाग —सम्पादक एम०डी० रामानुजाचार्य, अड्यार लाईब्रेरी, अड्यार, मद्रास, १९१६ ई० ।
उज्ज्वलनीलमणि —श्री रूपगोस्वामी श्रीमत् पुरीदास महाशय द्वारा सम्पादित, श्री शचीनाथ राय द्वारा प्रकाशित, १९४६ ई० ।
कवीन्द्रवचनसमुच्चय —एफ० डब्ल्यु टामस द्वारा सम्पादित, एशियाटिक सोसायिटी द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता १९१२ ई० ।
गोपालतापनी उपनिषत् —सम्पादक और प्रकाशक श्री हरिदास दास ।

मेघदूत —महाकवि कालिदास, प्रकाशक-नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ १९१७ ई० ।

राधा सुधानिधि हितहरिवंश (संस्कृत में) हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन बाबा हितदास ने नाद ग्राम (जिला मथुरा ने किया) ।

लघुभागवतामृत —श्रीरूपगोस्वामी, श्री बलाई चाँद गोस्वामी तथा श्री अतुलकृष्ण गोस्वामी द्वारा सम्पादित, श्रीमहाप्रभु के श्रीमंदिर से प्रकाशित, कलकत्ता, १३०४ वंगाब्द ।

विष्णुपुराण —सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, सरस्वती प्रेस १८८२ ई० ।

वृहत्‌वह्मसंहिता —शंकर शास्त्री द्वारा संशोधित, प्रकाशक, आनन्दाश्रम, १९१२ ई० ।

वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी) —निम्बार्काचार्य रचित, श्री छबीलेलाल गोस्वामी कृत हिन्दी भाषा-टीका-सहित, तृतीयवार, श्रीसुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से छपा ।

शांडिल्य भक्ति सूत्र —व्याख्या, भक्ति-चन्द्रिका, सम्पादक महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालिज, बनारस ।

श्रीकृष्ण कर्णामृत —लीलाशुक विल्वमंगल ठाकुर, डा० सुशील कुमार दे द्वारा सम्पादित ।

श्रीभाष्य — दुर्गाचरण सांख्यवेदान्त तीर्थ द्वारा अनु० और सम्पादित, वंगीय साहित्य परिषत्, १३२२ वंगाब्द ।

श्रीमद् ब्रह्मसूत्रभाष्य —मध्वाचार्य, सम्पादक आर-राघवेन्द्राचार्य भाग १, मैसोर गवर्नमेंट ब्रान्च प्रेस १९११ ई० ।

श्री मद्‌भगवद्‌गीता —साधारण भाषा टीका सहित, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, बयालीसवां संस्करण सं० २००० वि० ।

श्री मद्‌भागवत महापुराण (दो खंड) —प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर, हिन्दी व्याख्या सहित, द्वितीय संस्करण, सं० २००८ वि० ।

प्राकृत व्याकरण —हेमचन्द्र, सपादक श्री० पी० एल० वैद्य, प्रकाशक मोतीलाल लाधाजी, १९६ भवानी पेठ, पूना १९२८ सन् ई० ।

उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण —दामोदरदास, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, स० २०१० वि० ।

कीर्तिलता —हरप्रसाद शास्त्री, बंगला संस्करण, १९२८ ई० ।

चर्यागीतिपदावली —सुकुमार सेन, प्रकाशक साहित्य सभा वर्द्धमान, १९५६ ई० ।

बौद्धगान ओ दोहा —महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, श्री गया कमल सिंह द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता १३२३ बंगाब्द ।

महापुराण —पुष्पदन्त, सम्पादक श्री० पी० एल० वैद्य, माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बम्बई । १९४१ ई० ।

वर्णरत्नाकर —ज्योतिरीश्वर, सुनीत कुमार चटर्जी द्वारा सम्पादित, रायल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित कलकत्ता, १९४० ई० ।

सन्देश रासक —कवि अब्दुल रहमान कृत, सपादक श्री जिन विजय मुनि तथा श्री हरिवल्लभ भायाणी, सिंघी जैन ग्रंथ माला (ग्रंथांक २२) प्रकाशक भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड, मुम्बई, वि० स० २००१ ।
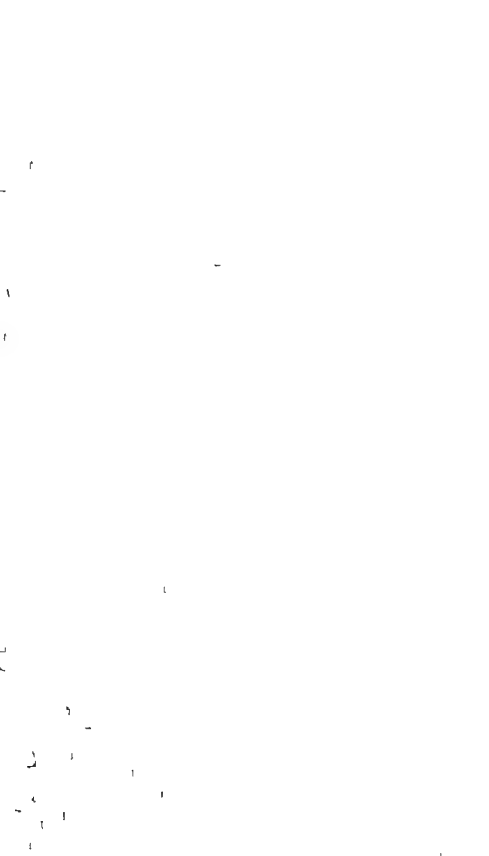
History of Classical Sanskrit Literature —Sri M Krishnamachariar, Oriental Book Agency, Poona, 1937

History of Sri Vaisnavas —Late Mr. T. A Gopinath Rao. Government Press, Madras, 1923.

Hymns of the Alwars —Edited by Hooper Oxford University Press, 1929

India Old and New —Hopkins, New York, 1902

Introduction to the Pāñcarātra and the Ahirbhudhnya Samhita —F Otto Schradar, Adyar Library, Adyar. Madras, 1916.

Krsna in Early Tamil Literature —V R Ramchandra Dikshitar. Indian Culture, Vol IV, 1937-38

Mathura —A District Memoir F. S Growse, Third Edition 1833.

Mirza Khan's Grammar of Brajbhaka —Maulana Ziauddin. Visva Bharati, Research Publication, 1935

Modern Religions Movements in India —J N Farquhar, The Macmillan Company, 1918.

Modern Vernacular Literature of Hindustan —G. A Gierson, Asiatic Society. 57 Park Street Calcutta, 1889

Obscure Religious Cults as Background of Bengali Litt —Sashi Bhushan Dasgupta, Calcutta University, 1948

Sri Vallabhacharya —Bhai Manilal C Parekh, Shri Bhagavata Dharma Mission, Harmony House, Rajkot, India, 1943.

Studies in Early Assamese Literature —Birinchi Kumar Barua, Sri K K Barooah, Nowgong, Assam 1953

Studies in Tamil Literature and History —V R Ramchandra Dikshitar, London, Luzac and Co, 46 Great Russell Street, W C T 1930

The Bhakti Cult in ancient India —Prof. Bhagabat Kumar Goswami Calcutta, 1922.

नामानुक्रमणिका

टि० = टिप्पणी

अ

अकीया वराट, ४२४
अतवाव लीला ३१६
अतल्कित १२
अघवासुर वघोपाख्यान नाम ४०२
अकवर १०४, १०५, १०९, ११०, १६९, २३०, २३२, २४५ २७३ २८१
अकवरी दरबार के हिंदी कवि, १०१ ११३ टि०, ११४ टि०
अकिंचन दास ४५५
अक्षयकुमारदत्त ३५ टि०, २३४ टि०
अच्युतानन्द ४३३ ४३४ टि०, ४३५ टि०, ४३७, ४३८, ४३९ टि०, ५९६।
अणवार संहिता ६३८
अणुभाष्य, १९२ १०८ टि०, २०६ टि०, २१३ टि० २१६ टि०।
अदियारक्कुलार ६१
अनन्त ५५८
अद्वैत प्रभु ३७६
अद्वैताचार्य ११८ ४३९, ४५३, ५०२ ५१०, ५९६।
अद्दहमाण ८६ १५५
अधर मुखर्जी ४५२ टि०
अनंत आचार्य ४३९ ५१०
अनंतदास ४३३ ४४०, ५१०
अनंत मोहाति ५९६
अनन्य निश्चयात्मक, ३४४, ३४५ टि०, ३४६ टि०।
अनन्य रसिकाभरण ३४४
अनादि पातन ४२६
अनुसंधान समिति, ४१० टि०
अनेकार्थ मंजरी २१३ टि० २७५
(दी) अपभ्रंश स्तवकस् अव रामशर्मा २९ टि०।
अप्रकाशित पदरत्नावली, ५०८ टि० ५१३ टि०, ५४५ ५५० ५५१, ५५९, ५७६ टि०, ५७७ टि०, ५७८, ५७९ टि०, ५८१ ५८२ ५८४, ५८५, ५८६ टि०, ६२१, ६२२ ६२३ टि०।
अभिनन्द ७४
अभिनव राघावानन्द ३९९
अभिराम ठाकुर ५९६
अमरकाय गीता ४३४
अमीर खुसरो १०४, १९५
अमीर सिंह गानू ३९२
अर्जुन ३१३
अर्जुन भजन ४२५
अथ कोइलि ४३७
अर्ली हिस्ट्री अव दी वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेंट, ४४३ टि० ४४६ टि०, ४५२ टि०, ४५३ टि०।

अर्ली हिस्ट्री अव् दी वैष्णव सेक्ट, १९ टि०, ५७ टि० ।
अलबेली अलि, ३६४, ३६५
अलाउद्दीन होसेनशाह ४४९
अवलोकितेश्वर स्तवराज ४०४
अविद्यावारी गीतस्तव ४०४
अश्वघोष ४३ टि०, ५९
अश्वमेध नाटक ४०६
अश्वनी चरित्र १०९ टि०
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, १६६, २१७ टि, २२२ टि, २२५ टि, २४३ टि, २४५ टि, २४६ टि, २५७ टि, २५८ टि, २६० टि, २६२ टि, २६३ टि, २६४ टि, २६५ टि, २६९ टि, २७३ टि, २७५, ५९१ टि, ५९३ टि, ६०१ टि, ६०२ टि, ६०५ टि, ६०६ टि ।
अष्टछाप, ३, ९४, २४३ टि, २४४ टि, २४५ टि०, २५९, २६० टि, २६५, २६६, २६७ टि, २६८, २६९ टि, २७० टि, २७३, २७४, २७८, २७९, २८२ टि, २८५, २९६, ४३३ टि ।
अष्टछाप की वार्ता २२२ टि, २७४, ५९७ टि ।
अष्टछाप परिचय, २२५ टि, २४३ टि, २४५ टि, २६३ टि २६४ टि, २६५ टि, २६८ टि, २६९ टि, २८१ टि, २८२, २८५ टि. २८६ टि, २८७ टि, २८८ टि, ६०१ टि ।
अष्ट देश भाषा ३२२
अष्टम स्कंध ४२६ टि
अष्टयाम १००, १७५, ३०८
अष्टरस ५५६
अष्टरस व्याख्या ५५६
अष्टविंशति तत्त्व ४५१
अष्ट सखान की वार्ता २७१ टि, ५३५
असमीया साहित्य मे वरगीत, ४१८ टि, ४२० टि ।
अहिर्बुधन्य संहिता ६ टि, ७ टि, ८टि.

आ

आइने अकबरी, २४३
आईन अकबरी की भाषा वचनिका, १७५
आगम प्रमाण, १९
आगर वाली, ६२०
आण्डाल, १३, १५, ६२
आत्माराम दास, ५११
आनन्द, ५७४
आनन्दघन, २९९, ३१८, ३१९, ३२०
आनन्द तीर्थ, २५
आनंददसा विनोद, ३५७ टि
आनद मोहन्ती ४३७
आनद रघुनन्दन १७५
आब्स्क्योर रेलिज्स कल्टस् ४४५
आर्केओलॉजिकल सर्वे अव् इण्डिया एनुअल रिपोर्ट् ९५ टि, ९६ टि
आर्त्तवल्लभ महन्ती ४३२ टि.
आवतर मलिक ४३८ टि.—और यशोवन्त की ८४ कलाएँ ४३८ टि.
आशवीर २३०, २३१
आशास्तव ३५२

आमचरन २९३, २९४, २९५
आसामें प्राप्त प्राचीन भापापुथिर विवरण ४२६ टि

इ

इट्रोडक्शन टु दी पाचरात्र एण्ड दी अहिबुधन्य सहिता ५ टि
इडियन एटिक्वेरी ७१ टि ८० टि ८९टि १५३टि १५८टि १६२टि १६४टि
वडिया, ओरड एड न्यू १८७
इसायक्लोपेडिया अव रलिजन्स एण्ड एथिक्स ३५टि १७८, १८७टि, २३४टि
इपीरियल गजेटियर अव इण्डिया ११७ टि
इलियाम शाह ४४८
इश्क चमन ३०० ३०१

ई

ईश्वर चद्र गुप्त ३८१
ईश्वर दास ४३७ टि ४३८ टि, ४३९ टि
ईश्वर पुरी २९, ३४ टि ११८
ईश्वर सहिता ५ टि

उ

उक्ति व्यक्ति प्रकरण १५७ १८० १८१
उज्ज्वल नीलमणि ४८ टि ४९ टि, ५० टि, ५१ टि ६९ १८६ ४८५ ४८५ टि, ४८७ ५३३, ६०३
उत्तर राम चरित ३७०
उत्तग १० टि ४२
उत्तरी भारत की सन्त परम्परा १८३
उदय ११७ टि, ३१३ टि, ३१४ टि ३१५ टि
उदय कहानी ४३४ टि, ४३५ टि, ४३७ टि, ४३८ टि, ४३९ टि
उद्धव दास ५३१ ५७५ ५७६
उद्धव दूत ५४२
उद्धव देवाचार्य ३०८
उद्धव शतक १७२
उद्धव सदेश ५४२
उद्धव सवाद ४२६ टि, ५४२
उद्धारण दत्त ५९६
उद्यातन सूरि १८०
उमापति ओझा ३८७
उमापति धर ७२,७३,७४ ४१०,४५२
उमाशकर शुक्ल २७५ टि, २७६ टि २७७ टि, २७८ टि
उमेश मिश्र १५६
उषा हरण नाटक ४०८
ऋग्वेद ६, १४
एकादश स्कन्ध ४२६ टि
एकादशी माहात्म्य, २५७
एनुअल रिपोर्ट ऑन दी सर्च फॉर हिंदी मैन्युस्क्रिप्ट्स फार दि इयर १९०८ ३३६ टि
एरियन १२
एशियाटिक सोसायटी ४०५ टि
ओकारनाथ ठाकुर, १०५ टि
ओड्डामि ३०
ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट अव बगाली लैग्वेज १५८ टि १५९ टि १५८ टि, १६४ ३८४ टि

क

कठमणि शास्त्री, २७९ टि, २८२, २८५

कमवध जात्रा, ८२६

कठोपनिषद् ४६३ टि

कबीर, १३५ टि, १६५, १६६, ३१६, ४१८

कमल नारायण, ४१८ टि, ४२० टि

कमलाकर पिल्लाइ, ५९६,

कमलाकान्त दास, ५८५

करुणामय दास, ५३६

कर्णपूर, ४९४ टि, ५०२, ५५८

कर्णानंद, ५३६ टि, ५४४ टि, ५४९,

कर्णानंद रस, ५३८

कर्न ह०, १८७,

कलानिधि, ४९३

कलिजुग रासो, ३२२

कवल दास, ६२१

कविता कौमुदी, १६९

कवितावली, १५१

कवि प्रिया की टीका, १७४

कवि रजन, ५२८, ५२९,

कविराज गोस्वामी, ४५४, ४६२, ५९८, ६०३ टि, ६०५

कवि वल्लभ, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३

कवि शेखर, ५२९,

कवि शेखर राय, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८

कवीन्द्र परमेश्वर, ४४१

कवीन्द्र वचन समुच्चय, ६८, ६९, ७०, ९०, ४४५

कान्ता कोटलि, ४३४

कान्हु दास, ४३०

कालिदास, ५३ टि, ५९, ५०२,

कालिदास नाथ, ५५१

कालिदास नाथ सगह ५५२ टि, ५५३

कालिय दमन, ८२४, ४३७

काव्य निर्णय, १५२

काव्य प्रकाश, ६८

काव्यानुशासन, ६९

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सर्च रिपोर्ट, ३०३ टि, ३०४ टि, ३२०, ३२१ टि.

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित वाणियाँ, ३२५ टि, ३२६ टि, ३२७, ३२९, ३४०, ३४१

काशी प्रसाद जायसवाल, ३१९ टि

(राजा) किशन सिंह, ३१३

किशोर दास, ५४१, ५४२, ५४३

किशोरीदास, ३३९, ३४०

किशोरी लाल गोस्वामी, २९१,

किशोरी शरण अली, ३५७, ३५८

कीर्त्तन गीत रत्नावली, ५५९, ५६०, ५७६, ५८१, ५८७

कीर्त्तन सग्रह, ५९७ टि

कीर्त्तना नद, ५४०, ५५१, ५६८ ५७६,

कीर्तिनाथ उपाध्याय, ३९९

कीर्तिलता, १५५, १५७, १५८, १७३, १८१, ४४६ टि,

कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, १५६ टि

कीन्ह देव २९३
कुज विहारी, ४०२,
कुतक, ६९
कुदनलाल साह, ३४१
कुभनदास, ०४ १६७ २३९ टि
२७०, २७१ २७२ टि २७३
२८५, ४९५, ४९७ ६०१
, पद सग्रह १९६ टि, २०१ टि
कुमार गुप्त, १२
कुल्शेखर अल्वार, १३ १७
कृपाराम १८६
कृष्ण इन अर्ली तमिल लिटरेचर, ६२ टि
कृष्ण कर्णामृत, ७७, ७८, ७९ ८०
४६४, ५३८,
कृष्णकान्त ५७५
कृष्णकान्त छाया ६२१
कृष्ण कान्त मजुमदार ५३६
कृष्ण चरित नाटक, ४०८
कृष्णदास ०३ ०४, १६७ २३९ टि,
२६५, २६६, २६७ २६८ २६९,
२७३, २८५, २८९ ५०५, ५०७
६०१ ६२१
कृष्णदास (बाला) ५९६
कृष्णदास कविराज ६६ ९४, ४२९
४३५ ४५५ ४८६, ४९८, ५००,
५३८ ६०८
कृष्णदास गोस्वामी ५०६
कृष्णदास यात्री २६०
कृष्ण देव, ४०६
कृष्णदेव राजाधाय ५९४
कृष्ण पदामृतसिन्धु ५४१ ५४२ टि
५६०, ५७६ ५८२ ६२१
कृष्ण मगल ४१० टि
कृष्ण शास्त्री २५ टि.
कृष्णा नद ४५१ ६२१
केलाग, १५९
केलिमाला ३२४
केशव काश्मीरी ३०३
केशवदास, १७०
केशव देव, ३०८
केशव भारती, २९, ३४
केनेडी, १८७ ४३२ टि
कोशासुर वधोपाख्यान नाटक, ४०८
क्षणदा गीत चिन्तामणि ४३० टि
५४५ ५५४, ५५५ टि ५६८
क्षिति मोहन सेन, २९ टि ६५० टि
क्षमेन्द्र ८६

ख

खगेन्द्रनाथ मित्र, १३७ ४४७ ४७१
५९० टि

ग

गगादास ५५८
गगा मगल ५०३,
गगावतरण १७२
गज निस्तारण गीता, ४३७
गणपतराव दूबे १०३ टि
गणपति रामचद्र राव प्रथम, ४३० ४३१
गणेश, ४०८ टि
(राजा) गणेश ६८८
गणेश विभूति टीका ४३४
गदाधर, २ ६, ५०६,
गदाधर दास ५८५
गदाधर दास मिश्र २०५ २०६
२०८

गदाधर पडित, ४३५
गदाधर भट्ट, १७६, १८४, ३६६, ३६७, ३६८
गयसुकुमार रास, १७५
गरुड स्तम्भ, १२
गल्लू गोस्वामी, ३७६
गार्मा द तार्मी, २७५
गाहा सत्तसई, ६७, ६८, ९०, ४४५, ४५४
गीत गोविन्द, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८ ७९, ८६, ९१, १००' १२०, १२६, १२७, १४३, १८३, १८४, ४०५, ४४४, ४४५, ४४६, ५५३, ५७५, ६०७,
गीत चन्द्रोदय, ५४३, ५६७,
गीत दिगम्बर, ४०५
गीत पचारिका, ४०३ टि
गीतार्थ सग्रह, १९,
गीतावली, १५१
गुप्तगीता, ४३४
गुमाना, ३२१
गुरु प्रणालिका, २३०
गुरुप्रसाद सेनगुप्त, ४१३
गुरु भक्ति गीता, ४३३ टि., ४३८
गुण मजरी दास, ३७६
गुर्जर काव्य सग्रह, १५७
गोकुल नाथ २२५, २४३, ६०६
गोकुलानद, ५८०
गोकुलानंद सेन, ५७६,
गोपाल, १०४, १५३
गोपाल आता, ४१८
गोपाल चरित, ५२९
गोपाल जी महाराज, ३१२
गोपाल चम्पू, १८४ टि.
गोपाल तापनी, ३१ टि., ४७७, ४७८
गोपालदास, ५५३—५५६,
गोपाल देव, ३०८
गोपाल प्रसाद शर्मा, ३४९
गोपाल भट्ट, ९०, ५५४, ६२१
गोपाल भट्ट गोस्वामी, ५९६
गोपाल विजय, ५२५, ५२९
गोपीचन्द्र नाटक, ४०५
गोपीनाथ ४९३
गोपीनाथ कविराज, म० म०, १०, ३२७ टि०, ११६ टि०, ३०७ टि०,
गोपीनाथ दुर्लभ ५८३
गोपीनाथ राव-टी० ए० १३ टि० २३ टि०,
गोपीनाथ विजय ५२९
गोपी प्रेम प्रकाश २९९
गोरखनाथ ४०८
गोरखोपाख्यान कथा ४०८
गोवर्धनदास ५७२, ५७३
गोवर्धनलीला, २५७, २७५
गोवर्द्धनाचार्य, ७२
गोविन्द, ४९६
गोविन्दगति, ५९४
गोविन्द घोष, ५०३, ५९५
गोविन्द्र चद्र टीका, ४३९
गोविंद दास, ५०६, ५५४, ५६४, ६०१, ६१२
गोविन्द दास आचार्य, ५१५

गोविंददास कविराज ४११, ४१२, ४९१, ५१२, ५१५ ५२५, ५२७, ५४४, ५४९ ५३०, ५५१, ५६०,
गोविंदगति, ५४९
गोविंद दास चक्रवर्ती, ५१५
गोविंद रति मजरी ५४५
गोविंद राम ५५८
गोविंद लीलामृत, ९३ ४२९ ४३९ टि०
गोविन्द विलास, ५३८
गोविंद सरन देव, ३२१
गोविंद स्वामी, ९४ १६७ २१८ टि० २३९ टि०, २८१, २८२, २८३, २८४ २८५ टि०, ५९५
गोविंदानद ५९५
गोविंदानद ठाकुर ५८१
गोस्वामी, ५७ टि०
गोस्वामी रणछाड, २९८
गोस्वामी विष्णुदास १०१, १०२
गौरविलासदास, ५४३
गौरगणोद्देश दीपिका ५०२
गौरचरित्र चितामणि ५५७
गौरपद तरंगिणी ४५३ टि०, ५३० टि०, ५५१, ५५९ ५७६
गौरीदास पडित ५९६
ग्राउस—एफ एम २३२ ३३७ ३४०
ग्रियर्सन सर ज० ज्यो० २५ टि० ३५ टि० ८९ टि०, १५४ १७७, १८७ २३४ टि०, ३८३
ग्रीष्म विहार ३००
ग्रामर अव दि हिन्दी लैंग्वेज १५९ टि०

घ

घन आनन्द १५२, १७०
घन आनन्द कवित्त, ३१८ टि० ३१९ टि०
घनराम चक्रवर्ती, ५६०
घनरामदास ५५९, ५६० ५६१, ५६२
घनश्यामदास ५४४, ५४५ ५४९, ५६८, ५६०, ५६१, ५६५
घनश्यामदास कविराज ५१५ ५६०,
घमड देव, ३०८
घुन्निया, ५०६

च

चण्डीदास, ९१, १२० १२१, १२३, १२६ १२७, १२८ १३२, १३४, १३५ १३८ १३९, १४६, १४८, १८३ १८४, ४००, ४१० ४२९, ४४५ ४४६ ४५४, ४५५ ४५८ ५०७, ५५७
चण्डीदास पदावली—१२७ टि०, १२८ टि०, १२९ १३० १३१ १३४ टि० १३६ टि०
चण्डी मगल— ५०३
चंद्रगुप्त द्वितीय १२
चंद्रधर शर्मा गुलेरी १५५ टि० १५७ १६१, १६२ १६३ १८३
चन्द्रमोहन घोष, १६४
चंद्रवमण ४४३
चंद्रशेखर ५८०, ५८१, ५८२,
चंद्र हास २७४ २७५
चम्पति राय ४३०, ४३३ टि

चक्रपाणि चौधरी ५५४
चतुर्भुज ५२५
चतुर्भुज दास १४, १६७, २३९, २७३, २८५, २८६, २८७, २८८, ५९५, ६०१
चतुर्भुज दास पदसंग्रह २०० टि, २०४ टि
चतुरंग तरंगिणी ४०५
चतुरदास २३२
चतुर्व्यूह ९
चतु श्लोक २२० टि., २५२, ५९१ टि
चर्यागीत पदावली ३८७ टि.
चान्द कवि ४३०, ४३१ टि
चिन्ता मणि १७०
चिठिपत्रे समाज चित्र ५६३ टि ५९३
चिरंजीव ५१५
चुन्नी लाल ३२०
चूडामणि ५७५
चोरखरा ४२५
चौबीस छद्म ३६१ टि
चौरासी वैष्णवन की वार्ता १७४, २४० टि, २४१, २४२, २४४ टि, २४६ टि, २५१, २६१ टि, २६६, २६७, २७३, टि, २८८, २८९टि. २९६, ५९५
चैतन्य ३४, १६७, १८४, १८६, १८७, १८८, २०१, ३६१, ३७६, ३८१, ५६८, ५६९
चैतन्य चरितामृत ४१ टि., ४२ टि, ६६, ७२ टि, ९४, ९८, ११८ टि, ११९, ४४७, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२ टि, ४६३ टि, ४६४, ४६५ टि, ४६६ ४६७, ४६८, ४६९, ४७० टि, ४७१, ४७२, ४७३ टि, ४७७, ४७८, ४८०, ४८१, ४८२ ४८५, ४८८, ४८९, ४९३, ४९६, ४९८, ४९९, ५०१, ५०२, ५०४ टि, ५३२, ५८९, ५९० टि, ५९२, टि, ५९३ टि, ५९८ टि, ५९९ टि, ६०३ टि, ६०४ टि, ६०५, ६०८ टि.
चैतन्य चन्द्रोदय कौमुदी ५५८
चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ४९४ टि, ५५८
चैतन्य तत्त्वसार ५५६
चैतन्य भागवत ९१ टि, ४५०, ४५३, ४९६, ५००, ५०१
चैतन्य मंगल ५०१, ६०४ टि.
चैतन्य देव १०, २९, ७४, ८०, ९०, ९४, ९८, १०१, ११२, ३६६, ४०९, ४११, ४२७, ४२८, ४२९, ४३२, ४३३, ४३५, ४३६, ४३८, ४४१, ४४२, ४४३, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५१, ५५४, ५६५, ५६६, ५८८, ५८९, ५९०, ५९३, ५९६, ५९८, ५९९, ६०४, ६११, ६१५
चैतन्य महाप्रभु ४६५, ४६९, ४८७, ४८८, ४८९, ४९१, ४९३, ४९६, ४९८, ५००, ५०२, ५०३, ५०९, ५२४, ५२७
(दी) चैतन्य मुवमेंट ४३२ टि.

छ

छन्द का जोड़ा ३१५

छन्द समुद्र, ५६७
छद्म लीला, ३६०
छप्पय गजग्राह को ३१५
छत्रसाल, १७०
छत्तिस गुप्तगीता ४३४
छीतस्वामी, ९४, १६७, २३९ २७०
२८०, २८१ टि०, ५९५, ६०१,
छीतस्वामी (पद संग्रह) १९३ टि०,
२०० टि०,
छटि खान ४४२,
छेम, १०९

ज

जम्बुवती ४२४ टि०
(राजा) जगत प्रकाश मल्ल ४०४
४०६
जगदबन्धु ५६२, ५६८ टि०
जगदानन्द ५६२ ५८० ५०४
जगदानन्द दास, ५५० ५५१, ५५२,
५५३
जगदानन्द पदावली ५५१,
जगन्नाथ ५६५
जगन्नाथदास ४३३ ४३४ ४३५
४२६ ४३०, ४४० ५९६
जगन्नाथदास रत्नाकर १७० १७२
जगन्नाथ चरितामृत ४३५
जगन्नाथ मिश्र ५५८,
जगन्नाथ वल्लभ, ०२ ४९५, ५५६
जगमोहन रामायण ४३४,
जनमेजय ४१३,
जनार्दन आफ कामरूप ४१० टि०
जनार्दन मिश्र २४५
जयज्योति मल्लदेव ४०३ ४०४
जयकान्त मिश्र ४१० टि०
जयगोपाल दास ५६१
जयदेव ७२, ७४, ७६, ७९, ८६ ९१,
१८३, १८५ २०१, २७५, ४००,
४०१, ४०५ ४२९ ४४४, ४४६,
४५२, ६०७,
जयदक्ष मल्ल, ४००
जयमती ४०४
जयरण मल्ल ४००
जयसिंह ५९४
जयस्थिति २०९ ४००,
जयानन्द ५९८,
जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी
१८७
जल्भेद २२१ टि०
जसरा खा और श्री कविरजन, ४९१
टि०
जसवत सिंह महाराज, २९८ २०१
जानकीराम दास ५२६
जाह्नवी ठकुरानी, ५५८,
जाह्नवी देवी ५०६, ५११,
जिनमित्र मल्ल देव ४०६
गियाउद्दीन, १५९ टि०
जीवगोस्वामी ११ ९१, ९७, १६८,
१८४, ३६६ ४५९, ५२५ ५६१
५८९ ५०६
जागरणा २५५
जुगलमान चरित्र २६०
जुगुल भक्ति विनोद, २००,
जुगुल रस माधुरी २०९,
जैमिनी संहिता ५६१
जोवरम १२

ज्ञानदास, १३३ टि०, १३४ टि०, ५०६, ५०७, ५१०, ५१२,
ज्ञानवीर, २३०
ज्ञानसागर, ४३२
ज्योतिरीश्वर ठाकुर, १५५, १५७, १८१,

झ

झुमरा ४२५,
झूलनगीति ४१४ टि०

ट

टाइम्स अव् एश्येंट उड़िया प्रोज एण्ड पोएट्री ४३१ टि.
टीका सर्वस्व, १५८
टेंकलड, २४, २५
ठाकुरदास, २३३
डॉक्ट्रिनज़ अव् निम्बार्क एण्ड ह्रिज़ फॉलोअर्स ३० टि
डूगरेन्द्र सिंह तोमर, १०१
ढोला मारूरा दूहा, १६५

त

तगारे ग व. १६२
तत्त्वदीप निबंध १९३ टि., १९४ टि., १९५ टि, १९६ टि, १९७ टि, २०६ टि, २०७ टि, २१२ टि., २१३ टि., २१५ टि, २१७ टि
तत्त्व निर्णय, २७ टि
तत्त्व सदर्भ, ४७० टि,
तत्त्वार्थ पंचक, ३०८
तमिल और उसका साहित्य, १४ टि,
तमिलवेद, १७
तरुणी रमण, ५५६, ५५७
तानसेन १०४, १०५, २३२, २८२, २९४,
तारकेश्वर भट्टाचार्य ४२६ टि.
तारादेवी, ३४९
तिथि लीला, ३१६
तिरुपत, १३
तिरुमगे आलवार, १३, १६,
तिरुमडिसै, १३, १४
तिलोत्तमा, ४३९
तुलसी, ३७, १५१, १६८, १८०
तुलसी ग्रंथावली, ३७० टि,
तुलसीदास, २७४, ३६९, ३७०, ४०५,
तुलाभिणा, ४३७
तेस्सीतोरी, लु पि, १५३, १५८, १६२, १६४
तैत्तरीय उपनिषद्, १९४ टि
तोण्डर डिप्पोलि, १३
त्रिविक्रम भट्ट, ७१
त्रिविध नामावली, २००
त्रैलोक्य मल्ल, ४००, ४०१, ४०३

द

दण्डात्मिका लीला, ५२५
दयाराम साहनी, ९५,
दयाल ५८३, ५८४
दशम स्कंध भागवत, २७५—भाषा, २५७,
दशरथ ओझा, १७५, १७६, १८८
दशावतार चरित, ८६, ८७,
दानकेलि कौमुदी, ५३८
दान लीला, २६९, ३५५,
दानलीला काव्य, ९१ टि
दानलीला चन्द्रामृत, ५३८

दामादर, ५१५
दामान्र चम्पति राय, ४३०
दामोन्रदास, २१४
दामोदरदाम हरमानी २८८, २८९
दामादर पण्डित १५७
दामोदर महाकवि ४९१
दास पोथी, ४३५
दास हस्तलिखित सग्रह, ५४५ ५५१, ५५३ टि ,
दिग्विजय विचार ५९४
दिव्य सिंह ५१५ ५४४
दीक्षित वे० एन० ९६ टि
दीनन्याल गुप्त १६६, २८३ २४५ २५७, २५८, २६२, २६१ २७२ २७५
दीनवन्धु ४३७ टि ५७८
दीनेशचन्द्र सेन १८७ ३८३
दृष्टिकूट के पद २५७
दव १५२, १७०, ३७८
देव दास, ३७५ टि
देव नद ३४९
देवकी नन्दन ४३५ ५०४ ५१२
देवकी नन्दन दास ४०७
देवकी नन्दन सिंह ५२५
देवेन्द्रनाथ वजवरुआ, ४२०, ४२१ टि
दसयारि ठाकुर ६१८, ४२१,
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता १७८ २०४ २०५ २७० २८० टि २११ २९२ २०४ २०५ टि
दोहन आनन्द २००
द्राविडार्पाविनर ८०
द्वारकादास पारीख, २५७ २८० २०३
द्विज माधव ५०३,
द्रोपदा का जोडा, ३१५
धनजय पडित ५९६
धनपति ४०८ टि
धमगुप्त ४००
धम मगल ५६०
धीरेन्द्र वर्मा १५२ टि १५९ टि १६६
पोथी ७२ ४४४ ४५२
ध्रुव चरित्र २६२
ध्रुवदास १७६ २३५ २३६, २३८, २५९, ३५५
ध्वन्या लोक ६८, ६९

न

नद ५७४
नन्द किशोर ५७७
नन्द कुमार ५६३
नन्ददास ७२ ९४ १६७ १७६ १८० १८८ १९३ टि, १९६ टि १९७ टि १९८ टि २०१ टि, २०२ टि २०६ टि २१२ टि, २१३ टि, २१७ टि २२१ टि २३९ टि २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ ५०५ ५९७, ६१०, ६२१ ६२०
नन्ददास ग्रथावली १९४ टि १९७ टि २०० टि २७० टि
नन्दलीला ३१६
नन्द दुलारे बाजपेयी २४६ टि
नन्दन लाल २१६
नन्दा बाबू ६००
नगेन्द्र गुप्त ५२७ ५३२

नगेन्द्र वसु ५६६
नटवर ५८५
ननी गोपाल वन्दोपाव्याय ४०० टि, ४०२ टि, ४०६, ४०८
नम्मालवार १३, १६, १७
नयना नंद ५७९, ५८०
नर परिचर्या टीका ४०३ टि
नरसिंह देव ४३१, ४३२
नरहरदास २३२
नरहरि १०९, ११०, ११३, ११४, ४५५, ५१०, ५६५
नरहरि चक्रवर्ती ५४३, ५४५, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८
नरहरिदास ३३४, ३३७, ३३८, ५४४
नरहरि सरकार ४९१, ४९७, ५३१
नरहरि सरकार ठाकुर ५६५
नरोत्तम ठाकुर ५३०, ५६६, ५६७
नरोत्तम दास १६८, १६९, ५१५, ५२४, ६११
नरोत्तम विलास ५६७
नर्मदेश्वर चतुर्वेदी १०३ टि
नल चम्पू ७१
नल दमयन्ती २५७
नव गुज्जरि ४३८
नवनीत जी की सेवानिधि १७४
नव भक्तिमाल ३४१ टि, ३४२ टि, ३४३ टि, ३६४ टि
नवरत्न ३५४
नवलदास ३३२, ३३५, ३३६, ३३७
नाग भद्र १२
नागर समुच्चय २८० टि
नागरीदास २३२, २७९, २९८, २९९, ३००, ३३३, ३३४, ३३६, ३३७, ३५२
नागलीला २५७
नाथमुनि १९, २०
नाथ लील ३१६
नाभादास १६८, १७५, २३१, २३२ टि, २३३, २३४, २४२, २४७, २५७, २५९, २९३ टि, २९४, ३०२, ३०६, ३२७, ३४८, ३६६, ३६७ टि, ३६९
नामनिधि लीला ३१६
नाम मजरी, २७५
नामवर सिंह १८०
नायिका रत्नमाला, ५८१, ५८२,
नारद पचरात्र, ४६८, ४८५,
नारद भक्तिसूत्र ३७ टि, २१६ टि.,
नारायणदास, ४१८, ४९१,
नारायणदेव, ३२१,
नारायण सिंह ४०३ टि,
नारायण स्वामी, ३७७,
नारायणी, ५००, ५०१,
नारायणीयोपाख्यान, ४, ५,
नासिकेतोपाख्यान, १७५,
निंवार्क, ३, २९, ३०, ३१, १७९, ३७३,
निंबार्क अष्टोत्तर, ३०८
निंवादित्य, ३०३,—दशश्लोकी, ५९२ टि,
निंवार्क मयूख, ३०८
निंवार्क माधुरी, ३०८
निजरूप लीला, ३१६
नित्य विहारी युगल ध्यान, ३४४

नित्यानद, ५५८ ५९६,
नित्यानद दास, ५११,
नित्यानन्द प्रभु ५००, ५०१, ५०४
  ५०६, ५११
निराकार सहिता, ४३८
निर्बोध मनरजन, ३४४
(श्री) निर्वाण लीला ३१६
निश्चयात्मक उत्तराध २४४
नीहार रजन राय ४४३ टि ४४४
  ४४५ टि, ४५० टि, ४५८ टि
नप वल्लनाथ, ५४, ५४४
नृसिह परिचर्य्या, ११६ ३०७
नेपाले बागला नाटक, ४०० टि ४०२
  टि ४०८ टि,
नेपाल भाषा नाटक, ३९८ टि ३०९
  टि, ४०१ टि, ४०२ टि ४०२
  टि, ४०४ टि ४०६ टि, ४०८
  टि,
नेवाज, १०६
नेहमजरी ३५५, ३५७ टि
नाटम आन दी पहाडपुर रिलीफ्ज ९६
  टि

प

पच मस्कार निरूपण, ३०२
पचानन मडल ५०३ टि,
पत्नी प्रमाद ८२४
पद कल्पतरु १४४ टि०, १४८ टि०
  ४१२, ४३०, ४२५, ४३७, टि०
  ४९३ टि० ४९४ ४९७ ४९८
  टि०, ४९९ टि०, ५०२ ५०४ टि०
  ५०५ टि० ५०६ टि० ५०७ टि०,
  ५०९ टि०, ५१० टि०, ५११ टि०
  ५१४ टि०, ५१७ टि०, ५१९,
  ५२० टि० ५२१ टि०, ५२२
  टि०, ५२३ टि०, ५२६ टि० ५२८
  ५२९ टि० ५३० टि० ५३१
  टि०, ५३२, ५३३, ५३४, ५३९
  ५३७ टि०, ५४०, ५४१ टि०
  ५४४ ५४५ ५४६ टि०, ५४७
  टि०, ५४८ टि०, ५४९ ५५० टि०
  ५५१, ५५४ ५५६ ५५९ ५६०,
  ५६३ ५६४, ५६५ टि०, ५६८
  ५७० टि० ५७१, ५७२ ५७३,
  ५७४ ५७५, ५७६ ५७९ ५८५
  टि० ६०९ ६११, ६१२ टि०,
  ६१२ टि०, ६१४ टि० ६१५
  टि० ६१६ टि० ६२०, ६२१,
  ६२२, ६२४ टि०,
पदचिन्ता मणिमाला– ४१५ टि०
पद प्रसग माला, २७०
पदरत्नाकर ५२७ टि० ५३३ ५४५
  ५८१, ५८५ ६२१
पदरत्नावली, ४१२ टि०
पदसमुद्र, ६१२
पदसग्रह– ८३० टि० ४२५
पदामृत समुद्र–५२० टि० ५६२ ५६२
  ५६४, ५६८
पद्धति प्रदीप ५६७,
पद्मपुराण, ५६ टि० ६५ ६६ ४७२
  टि०
पद्माकर १५२ १७०
पद्मावती ४३५
पद्मावती, ७२ ७३ टि०,
पद्मात्म गम्भ ८७० टि० ४७४ टि०

परमानन्द ४१२, ६२१,
परमानन्द 'औली, २५९,
परमानन्द दास, ९४, १६७, १९४ टि० १९७ टि०, १९८ टि०, २०२ टि०, २०५ टि०, २१७ टि०, २२१, २२२ टि०, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २७८, ५९४, ६००, ६०१, ६०५, ६१७,
परमानन्द सागर, २६२,
परमानन्द सारग, २५९,
परमेश्वर दास, ५९६,
परवृढाष्टक, २२५,
परशुराम, ११४, ११५, ११६, ३०३, ३१२, ३१३, ३१४, ३२१,
परशु राम चतुर्वेदी १८३
परशुराम देव ३०८
परशुराम सागर ११४, ११६, ११७ टि, ३१२ टि, ३१५ टि, ३१६ टि
पराकुरा मुनि १९
पवन दूत ४४४
पाखण्ड दलन ५५६
पाण्डव विजय नाटक ४००
पारिजात मगल ३८७
पारिजात हरण ५२५
(महाराज) प्रताप रुद्र देव ४३०
प्राकृत कल्प तरु ८९
प्राकृत पिंगल ८८
प्राकृत पैंगलम् १५३, १५५, १५७, १५८, १६२, १६३, १६४, ३८५, ३८६ टि.
प्राकृत व्याकरण ८५, ८६ टि १४५टि
प्राण प्यारी २५७
प्राचीन गद्य पद्यादर्श ४३० टि., ४३१ टि, ४३२ टि
पिंगल १५३
पिंगल ग्रथ ३२२
पिपरा गुचुआ ४२५
प्रियरजन सेन ४२९
प्रियादास १७४, २३४, ३०६, ३६१, ५९२
पीतम्बर दास ३३३, ३३४, ४१० टि, ४९०, ५५४, ५५६
(डा०) पी० एल० वैद्य २० टि
प्रीति चौवनी ३५५
प्रीति रस मजरी २९९
पुराण असमिया साहित्य ४२१ टि
पुरातन प्रवन्ध १५७, १६२, १६३
पुरानी राजस्थानी १५७
पुरानी हिन्दी १५५, टि, १५७, १६१, १६२, १६३, १८१
पुरुपोत्तम ठाकुर ४१८, ४२१
पुरुपोत्तम दास ५०४, ५०५
पुरुपोत्तम नाग ५९६
पुरोषत्तम सहस्र नाम २००
पुष्पदन्त ८०
पूदत्तात्वार १३
पूर्णानन्द ४५१
पूर्ण सोमसुन्दरम् १४ टि
पूरणदास ३१४ टि
पृथ्वी राज रासो ८६, १५७, १५८, १६५
पेयाल्वार १३

परियाऊवार १३, १४ १५, १६
प्रतापमल्ल देव ४०४ ४०५
प्रताप चन्द्र ४९३
प्रथम स्कन्ध ४२६ टि
प्रन्थ चिन्ता मणि १६२, १६३
प्रनाथ चन्द्र बागची ४०१ टि ४०२ टि ४०३ टि, ४०४ टि, ४०६ टि ४०८, ४४३
प्रबोध चन्द्रोदय १७६
प्रभात मुखर्जी ३८४ टि, ४२९ टि ४३२ टि, ४३४ टि, ४३७ टि, ४३८ टि, ४३९ टि
प्रभुदयाल मीतल १५१ टि २२५ टि, २४६, २५७ २६९ २८५
प्रमथ नाथ तर्क भूषण ४५२
प्रहलाद चरित २१५
प्रसान्न दास ४१५ टि ५३६
प्रेम दास ५५१, ५५८ ५५९, ५६६
प्रेम वाटिका २९१ २९३ टि
प्रेम भक्ति ४२०
प्रेमलता ३५५
प्रेम विलास ५०१ ५०२ ५११ ५१५ ५३६ टि
प्रेमावली ३५५
प्रेमरस रास २६०
प्रेमसत्त्व निरूपण २६१
पाद्दार अभिनन्दन ग्रंथ ९७ टि २६३ टि
पायूाअल्वार १२
फ
फागदास ५४८
फाग विलास २०१
फुन्दनलाल ३४१
फूल विराम २९९
ब
बंकिम चन्द्र ४००
बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ४१३ ४१४
बंग भाषा आ साहित्य ३८३ टि
बंग साहित्य परिचय ४५५
बदुकनाथ शर्मा ३२१
बडु चंडीदास ४१०, ४४६, ४९८
बद्री दास ३२०
बन विहार ३५५
बनी ठनी जी २०९
बयालाम लाल १७६
बलन्व उपाध्याय २३०, टि २३२
बलराम दास ४३३ ४३४, ४४०, ४७०, ५०६ ५११, ५१२, ५१४, ५१६ ५९६
बहादुर सिंह ५५८
बन्नी मोवारा १२
बाला साहित्येर इतिहास ३९० टि, ४०० टि ४२९ टि ४३६ टि, ४४३ टि, ४४४ टि ४४५ टि ४४७ टि, ४४९ टि ४५० टि ४५८ टि ४९१ टि, ५१० टि ५२५ टि ५२९ टि ५२८ टि ५५८ टि
बाउला अध्याय ४६४
बाण भट्ट ६७
बाणीकान्त शास्त्री ४२१
बाल शिल्प ऋषि ३३
बाल चरित ६९
बाल मुकुन्द ३२१

(श्री) बावनी लीला ३१६
बाहुबल्व देवाचार्य ३९८
बिल्व मगल ७७
बिहारिनिदास २२९, २३२, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३७
बिहारी १५२, १७०, ३७३
बिहारी रत्नाकर ३७४ टि
बिहारी लाल अग्रवाल ३४१
बिहारी सतसई १००,—की टीका १७४
(राजा) बीरबल २६६, २८०
बीरभूमि विवरण ५८० टि. ५८१
बुद्ध चरित ५३ टि ५९. १५१ टि. १५६ टि १६२
बुद्ध देव. ३८३
बेंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर १८७
बेनी माधवदास २६३
बैजू बावरा १०३ १०४ १०५
बैनर्जी-आर० डी० ९६ टि.
बोधायन १९
बौद्ध गान ओ दोहा १६१
बोहित देव ३०८
ब्यालीस बानी ३५५
ब्रज किशोर ५८५
ब्रज प्रेमानदी सागर ३६०
ब्रज विहार ३७७
ब्रज भारती १५१ टि २८९ टि
ब्रजभाषा १५२ टि., १५९ टि १६६
ब्रजभाषा के अप्रसिद्ध सुकवि २८९
ब्रजभाषा व्याकरण १६६
ब्रज माधुरी सार १७२, २३० टि, २३२. २३३ टि., ३७३ टि., ३७४ टि. ३७६ टि, ३७७ टि., ३७८ टि. ३७९ टि. ३८० टि.
ब्रजरत्नदास २७९
ब्रजराय—श्री गोस्वामी २९८
ब्रजलीला ३५५
ब्रजबिहारी शरण ३०२
ब्रजवासी दास १७६
ब्रज सुन्दर सान्याल ५१० टि
ब्रह्मगीता ४३७ ४३९
ब्रह्मचारी बिहारी शरण ३०६ टि, ३०७ टि.
ब्रह्मवीर २३०
ब्रह्म विवातत्त्व ज्ञान ४३८
ब्रह्म वैवर्त पुराण ६५. ६६. ११९
ब्रह्म शकुलि लेखन ४३८
ब्रह्म संहिता ७८. ८०, ४६२
ब्रह्म सूत्र १८. २९, ३०
ब्रह्माण्ड भूगोल ४३८

भ

भवरगीन, २७५, २७६
भक्त कवि व्यास जी, ३५३ टि, ३५४ टि, ३५५ टि.
भक्त नामावली, २५५, २५९
भक्त प्रार्थनावली, ३६०
भक्तमाल, १६८, २३१, २३२ टि, २३४ टि २४२, २४७, २५७, २५८, २५९, २६६, २७४, २९३, २९४, ३०१, ३०२, ३०६, ३०७, ३१५, ३२७, ३४८, ३४९, ३५३, ३५४, ३६६, ३६७ टि, ३६९, ५६३, ५९२ टि,—परटीका २६९

(दि) भक्तिकल्ट इन एन्शेंट इंडिया ५७ टि
भक्ति प्रदीप, ६२६
भक्ति मग दीपिका ३००
भक्ति रत्नाकर ९६, ४२६ ५००, ५१० टि, ५१५, ५२५, ५३०, ५५४ टि, ५६१, टि, ५६५ ५६६, ५६७, ५६९ टि ५७० टि, ६२१
भक्ति रत्नावली ४२६
भक्ति रसामृतसिंधु ४२ टि ४३ टि ४४ टि, ४५ टि, ४६ टि, ४७ टि, ४८ टि, ९२ टि, १२८ टि, २२२ २२३ टि, ४७७ ४७८ ४८० टि ४८२ टि, ४८३ टि, ४८४ टि ४८५
भक्ति वर्धिनी, २२१ टि
भक्ति सुधास्वाद तिलक, २५७ २५८
भगवद्गीता १८
भगवदतत्त्व दीपिका, २९५
भगवत मुदित भक्त, २२२
भगवत रसिक, २३२, ३४३ ३४४ ३४५, ३४६
भगवत् सन्भ, ५८९
भगवानदास, २३२
भगवानदास पुराण पढा– ४३५
भगवान कुंडलिया– ३५५
भजनानंदाष्टक २१०
भट्ट नारायण ६८
भवानन्द ४०३
भविष्य पुराण ११९
भागवत, ४, ११ १००, ४३७ टि १२८ टि, ६३९ टि —का अनुवाद ४३९–पुराण, ४२६ ५८८, ५९०
भागवत तत्त्वलीला ५१०
भागवत भाषा, २५७
भागवत भाषानुवाद– २६९
भागवत सम्प्रदाय २३० टि ३७३ टि ४३७ टि ६०२ टि
भागीरथ ४१८
भानुसिंह ४१३ ६१८—पदावली ४१६ टि, ४१८ टि, ४४१,
भारत की चित्रकला १०० टि
भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय ३५ टि, २३४ टि
भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी १५१ टि १५९ टि, १६० टि
भारतीय ईश्वरवाद २६ टि
भारतीय मध्ययुग साधनार धारा २९ टि, ४५० टि
भारतीय मूर्तिकला ९६ टि
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १७० १७१ १७२ १७६ ३६२
भावप्रकाश २६०, २६७
भावसंग्रह २४३ टि
भाषा नाममाणव ५५३
भाषा संगीत ६०६
भास, ६९
भास्कराचार्य, ३०
भिखारीदास, १५२ १५३
भीमसिंह २०३
भुवनदास ५७०
भूगर्भ गोस्वामी, ५०६,

भूपतीन्द्र मल्ल. ४००, ४०६. ४०७ ४०९
भूमि लोटोवा, ४२५.
भूषण, १७०
भैरवानन्द. ३९९. ४००,
भैरवा प्रादुर्भाव, ४०६.
भोगीलाल जयचन्द साडेसरा ०२
भोज, १८८,
भोजन व्यवहार, ४२५
भोज वर्मा देव, ७१. ४४४ ४४५,
भोरलीला. २९३,
भ्रमरगीत. ७३ २५५, २५७,
भ्रमरगीत सार २४० टि ३७२ टि.
भ्रमरदूत, ३८०

म

मकरध्वज कथा, १०२
मक्खन लाल, ३४१
मजलिस मडन, ३००
मणिक, ३९९.
मणि लाल पारेख-भाई, २२९ टि
मतिराम १००. १५२ १७०
मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मेम्वायर २३२ टि. ३२४ टि ३२५ टि, ३४० टि.
मथुराष्टक २२५
मदन गोपाल देव, ३०८,
मदन चरित, ४०४,
मदन चरित कथा नाटक, ४०८,
मदन मोहन, ५९४,
मदन राय, ५५४,
मदालसा हरण, ४०६,
मदुरइक्काचि, ५९,
मध्यकालीन साधना ८६ टि,
मध्यकालीन धर्म-साधना, ५२ टि.,
मध्यदेशीय भाषा. १०१ टि. १०२ टि १८५, १८६, १८८,
मयुर कवि, १३,
मध्वाचार्य, २५, २७, २३०, १७३,
मन शिक्षा, ३५५.
मनीन्द्रनाथ वसु, ४२६ टि. ४५८टि.
मलयगन्धिनी. ४०४,
महानुभावानुसारिणी. ५६३
महापुराण, ८०, ८१ टि, ८३ टि, ८५ टि,
महाभारत, ४, १३, ५३ टि ५८, ६० टि, १०० ११३, ४०६, ४७६,
महाभारत कथा, १०२,
महाभारत तात्पर्य निर्णय, २५ टि,
महामाया, ४३४, ५१५,
महावाणी, ११४, ११६, ३०६ टि, ३०७, ३०८, ३०९. ३१० टि, ३११ टि, ३१२, ६०८ टि..
महावाणी निवेदन. ११६ टि,
महीनाथ भट्ट, ३९९
महेश पण्डित, ५९६
माँगुडी मरुदणार, ५९ टि
माइकेल मधुसूदन. ४९०
माठर श्रुति, ४७७
माधव, ४९६
माधव आचार्य, ५०२, ५०३, ५०४,
माधव घोष. ५०३, ५९५,
माधव दास, ५०२, ५०३, ५०४

माधव देव, ३०८, ३८२ ४१८, ४२० ४२१, ४२४, ४२६ ४२७

माधव भट्ट, ९१ टि,

माधवानल, ४०६

माधवानल कामकदला, ४०८

माधवी दासी, ४३०,

माधवेन्द्रपुरी ११८, ४५२ ४५३

माधो ६२१

माधव मुग्ध मदन, ३०

मानमंजरी १०३ टि, ५९७ टि

मानरस लीला, ३५५,

मान लीला, २५७

मानसिंह राजा २७३

मानसोल्लास, १८५

मालती माधव, ३७९

मालाधर वसु, ११८, ४४७, ४४८, ४९८,

मिजार्थोनम ग्रामर आफ ब्रजभाखा, १५० टि

मिश्रबन्धु विनोद, १०९ टि ११६ २३३ २७१ ३०७ ३२१, ३३३ ३३८, ३३६ ३४० ३५८

मीरा १६८

मीराबाई २६६

मुतगियउत्तवारीख, २४३

मुनिआत अब्दुर फाए, २४२

मुंशीराम शर्मा, २४५,

मुकुन्दराम ४९१

मुकुन्द देव ३०८,

मुकुन्द माला, १७ ४३

मुकुन्ददास गोस्वामी, ५५७

मुकुन्दानद, ५५८ ५७६

मुकुट राय, ५३१

मुखपरवानगी भाटी भीम, ३१३

मुगल बादशाहों की हिन्दी, १०९ टि,

मुदित कुवलयाश्व, ६०४

मुनि जिनविजय, १६३

मुरलीधर, ५९४,

मुरारी ४३०,

मुर्शिद कुलीखां, ५६३

मुहम्मद तुगलक, ४४८

मुहम्मद शाह, ५१८

मूल गोसाइं चरित, ३७०

मृगुणि स्तुति, ४३४,

मृणालिनी, ४१४ टि,

मेगस्थनीज, १२,

मेघदूत, ५३ टि, ५९ टि

मेयोरा १२,

मेरुतुगाचार्य, १६३

मोतीराम, ३२१,

मोतीलाल मेनारिया, १५३ ३१५टि

य

यदुनन्दन ५१०

यदुनन्दनदास, ५३७ ५३८,

यदुपति दास, ४३१, ४३२ टि

यदु नन्दन कवि, ५४,

यमुनाष्टक ३५२

यशवत सिंह २९०

यशोराज खान ४०९, ४१० टि ४२८ ४९१ ४९२ ६०४

यशोराज ४३३ ४३८

यशोवन्त दासर चौरासी आज्ञा, ४३८,

यशोवन्त मल्लिक, ५९६,
यामुन मुनि— १९, २०,
युगल रस माधुरी, ३२२, ३२४ टि,
युगल शतक, ११४, ११५, ३०१, ३०२, ३०३ टि, ३०४ टि, ३०५ टि ३०६ टि, ३०८ टि, ३१३ टि-
योगेन्द्र नाथ दे, ५५८ टि.

र

रंग विहार, ३५५, ३५७ टि,
रघुनन्दन, ४५१, ४९१, ५२९, ५५०, ५५३,
रघुनन्दन गोस्वामी, ५२५, ५२८,
रघुनाथ चरित, ३१५,
रघुनाथ झा, ३९९,
रघुनाथ दास ६६१.
रघुनाथ दास गोस्वामी, ९०, ५३५, ५९६,
रघुनाथ भट्ट, ९०
रघुराम ४३९
रघुवर दयाल, ३४१
रणजीत मल्ल ४०७, ४०८, ४०९
रणमल्ल छंद, १५७,
रतिकान्त ठाकुर, ५५२
रति मंजरी, ३५५
रत्न सार, ५५७,
रमा चौधरी, ३० टि.
रमानाथ झा, ३९९
रविशंकर शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ २८७ टि,
रवीन्द्र नाथ ठाकुर ४१३, ४१६टि., ४१८ टि. ४४१, ४९०
रवीन्द्र नारायण ५६३
रस कदम्ब, ५३१ ५३२ ५३३, ५३८
रस कल्पवल्ली, ४९१, ५३३, ५५६
रस क्रीडा ४२४
रस खान १५२ १७०, २९०, ४२८ टि.
रस विहार ३५५
रस मंजरी २३५, ४१० टि, ४९१, ५४५ ५५४.
रस रत्नावली, ३५५
रस राज १००
रस विलास, १५३,
रसानंद लीला, ३५५
रसामृत सिंधु ६०३
रसिक गोविन्द, ३२० ३२१, ३२२, ३२३, ३२४,
रसिक गोविन्दानन्दघन, ३२० ३२१, ३२२
रसिक दास, २३२, ३३९, ३४०, ३४१, ५२८,
रसिक प्रिया की टीका, १५३
राग कल्पद्रुम, १०५, टि, १०६, टि, १०७ टि १०८ टि १०९ टि.,
राग तरंगिणी ४०५ टि.
राग रत्नाकर, २९२
राघव पण्डित ५९५.
राजकृष्ण राय, ४१३
राज वर्धन, ३९९
राजशेखर, १४० टि, १८०
राजस्थान का पिंगल साहित्य, १५३ टि,

राजस्थानी भाषा और साहित्य, ३१५ टि
राज वल्लभ, ५३१
राजसूय ६२६
राज प्रतापरुद्रदव, ४२८
राणा व्यास, २९६
राधा किशोर गोस्वामी ३५४
राधा कृष्ण रसकल्पवल्ली ५५४
राधा कृष्ण लीला रस कदम्ब ५३८
राधा चरण, ५५८
राधा चरण गोस्वामी ३४१, ३६४ ३७६
राधा तन्त्र ३५२
राधा प्रसाद, २३३
राधा मोहन ठाकुर ४३३, टि ५६२, ५६३, ५६४, ५६५ ५७६, ५९३,
राधा रस कलि कौतूहल, २५७
राधा वल्लभ ५३०, ५३१
राधा वल्लभ चक्रवर्ती, ५३३, ५३४ ५३५
राधा वल्लभदास ५३६
राधा सुधानिधि २३४ २३७ टि, ३५२
राधिका दास २३३, ३६७
रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, १०, १८ टि, २५ टि २०, ५७ टि,
राम गोपालदास ४०१, ५३३
राम चन्द्र कविराज, ५११, ५१५ ५१६ ५२०,
रामचन्द्र दीक्षितार, ६२ टि,
राम चन्द्र नामा ४०४
रामचन्द्र शुक्ल, १०४, १०५, १५१ टि, १५६ १६२, १७४ १७५, १७७, २४३ टि, ३५९, ३६९ टि,
राम चरण ठाकुर, ४१८, ४२१, ४२६,
राम चरित मानस, ३७, टि, १५१
राम चरित मानस की टीका १७४
राम चरित्र, ६०८,
राम दयालु गोस्वामी, ३७६
राम दास, ३१४
राम नरेश त्रिपाठी, १६९
राम भरत १७४
राम भद्र ४०१, ४०५
राम राय, ४९५ ४९६, ६२१,
राम शर्मा, ८९
राम सागर, ३१६ टि,
रामाक नाटिका, ४००
रामानन्द १६७, ४५१, ५९४,
रामानन्द राय ४९२, ४९३ ४०५, ४९६ ५९५
रामानन्द वसु ४९८ ४९९ ५०० ५१४
रामानन्द सगीत नाटक, ४९५
रामानुज, १७९
रामानुजाचाय, १५ १९, २० २२ २३, २४
रामायण ६० टि, १००
रामायण नाटक ४००, ४०८
रामायण सूचनिका ३२२
रामावि ठाकुर ५५८
रामावतार शर्मा पाण्डेय २६ टि,

राय कृष्णदास, ९६टि. ९८, १००टि.
राय गदाधर, ६२१
राय चौधरी, १९ टि, ५७ टि.
राय दामोदरदास. ४३० ४३२ टि.,
राय रामानन्द, ४२८. ४२९, ४३०
राय रामानन्देर भणिता युक्त पदावली, ४२९
रायशेखर, ५३८
राय साहब महन्ती, ४३१.
रास, ४३९, —के कवित्त, ३००
रास पञ्चाध्यायी. ६५, २२१ टि. २७५.
रास रस, ३६०,
रास रस लता, ३००
रास विलास, ३६१ टि.
रास सर्वस्व, ३५५
राहुल साकृत्यायन, १८१
रिपोर्ट आव् सर्च आव् हिंदी मन्युस्क्रिप्ट्स् ३२० टि, ३२१ टि,
(दी) रिलीजन्स अव् इण्डिया, १८७
रूप गोस्वामी ६६. ९०, ९२ १६८, १८४, १८६, ४४५, ४४९. ४५५, ४५९, ४८६, ५३३ ५३८, ५३९, ५४२, ५८९, ५९५, ५९६, ६१९
रुक्मिणी कान्त. ५८५
रुक्मिणी परिणय, ४०६
रुक्मिणी मगल, १०१ १०२. ११०. २७५,
रुक्मिणी विजय, ४२५
रूप मजरी, २७५
रूपक रहस्य, १७५ टि,
रैन रूपा रस, ३००

ल

लक्ष्मण द्विवेदी, २३५
लक्ष्मण सेन, ७२, ४४३. ४४४
लक्ष्मी पुराण ४३४
लघु भागवतामृत, ५२ टि, ५४, ४६२ टि. ४६३ टि.
लछिमन, ३२१. ३२२
ललित किशोरी. ३३२, ३३९ ३४०, ३४१. ३४२, ३४३.
ललित कुवलयान्वमदालसा नाटक ४०५
ललित प्रकाश, ३४७
ललित माधुरी. ३४१. ३४३,
ललित मोहनी दास. २३२.
ललित मोहनी. ३४७
ललिता. ३६४
लल्लू लाल. १५२. १७४, १७५
लस्कर परागल खान. ४४९.
लाडलीदास. २३८
लाड सागर. ३५२, ३५७. ३५९ टि, ३६० टि,
लापर गोपाल देव, ३०८
लाल चन्द्रिका टीका, १७४
लाल जी, १०९ टि,
लालमती देवी. ४०६
लाला जुगल किशोर काशी राम, ३५७ टि.
लाला बाबू, ३७७
लाला भक्त राम, २९२
लिंग्विस्टिक सर्वे अव् इण्डिया, १५४ टि,

लोचन, ४५५
लोचनदास ५०१, ५६८ ५९८

व

वंशी अलि, ३६४, ३६५,
वंशीधर, १५५,
वंश मणि आशा ४०४, ४०५,
वंशी लीलामृत, ५५१
वंशी वदन, ५५१,
वंशी शिक्षा, ५५१ ५५८,
वक्रोक्ति जीवित ६९,
वज्रगीति साधनमाला ३८७,
वड चन्द्र २४, २५
वनश्ववण ४२४,
वन जन प्रशंसा ३००,
वनमाल्यम देव- ७१,
वण रत्नाकर १५५ १५७ १५८ १७३, १८१,
बलदेव उपाध्याय ३०३ ३०८ ३२१ ३२२ ३३६ ३४० ३४ ६३७ टि,
बल्लभ- १०१ ११४ २४१ २४२ २४३ २६४ २४५ २५२ २६१, २६६ २८८, २८९ २९६ ६३३ टि
बल्लभ दास ५२९ ५३० ५३१
बल्लभाचार्य ३३, ३४ १६६ १६७, १७४, १७६ १८८, १९१ १९२ १९३, २००, २०२ २०६ २०७ २१० २१० २१३, २१८ २१९ २२०, २२१ २२२ २२३, २२५ २२६ २२७ २३९ टि, ५८८' ५९१, ५९३, ५९५, ५९७, ६०५, ६०६, ६१५
वल्लभ रसिक वानी, २३८,
श्री वल्लभाचार्य-लाइफ टीचिंग्स एंड मूवमेंट २२९ टि,
वल्लभीकाल, ५९४,
वाक्पति ७१,
वाणी नाथ ४९३
वार्तिक तिलक, २७५ टि, २९३, ३०६, ३४८,
वामन, ६८,
वासु देव, ३१४, ५१०
वासुदेव गोस्वामी, ५५५ टि,
वासुदेव घोष ४९६ ४९७, ४९८, ५०३ ५९५,
वासुदेवशरण अग्रवाल ९७, टि, १८५, १८६ १८८,
विट्ठल नाथ- ३६, १९६ १९८, २०१, २२५, २२६ २३९ २६६ २७३, २७८, २७९ २८०, २८२ २८५, २८६, २८९, २९०, २९१ २९३, २९४ २९६ २९७, ५९१ ६०६ ६१५
विट्ठल विपुल, २३०, २३२ २३७, २३८, २३९, ३३४,
विनय मायव ५३८
विद्यापति ९१, १३९, १४०, १४२ १४४, १४८, १४९ १५०, १५५ १५७, १७९, १८१, १८३, १८८, २०१ ३८३, ४०० ४०१, ४१०, ४१९, ४२०, ४२०,

४४६, ४५४, ४५५, ५१६, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५३२, ५३३, ५४४, ६११, ६२५,
विद्यापति-गोष्ठी, ३८७, ३८८, ३९८, ४०२, टि., ४०३ टि, ४०४ टि, ४०५ टि, ४०६ टि., ४०८ टि,
विद्यापति पदावली, ५२७ टि,
विद्यापति की पदावली, १४० टि., १४१ टि. १४२ टि, १४४ टि, १४५ टि, १४६, टि., १४७ टि, १४८ टि., १४९ टि, १५० टि.,
विद्याविलाप, ४०६,
विद्याविलाप नाटक, ४००,
विन्दु दास ५७१,
विनयपत्रिका— १५१,
विप्रमति— ३१६,
वियोगी-हरि, १७२, २३२, २९१, ३४१, ३४३, ३४७, ३४९, ३५५, ३५८, ३६२, ३६४, ३६६, ३७३, ३७४, ३७७,
विरह मजरी, २७५,
विरह लीला, ३१९ टि.,
विराट गीता, ४३४,
विलसन, २० टि,
विलाप कुसुमाजलि, ५३५,
विल्व मगल, ५३८,
विवर्त-विलास— ४५५,
विश्वनाथ चक्रवर्ती, ५६५,
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र— ३१८,
विश्वनाथ सिंह (महाराज), १७५,
विश्व लक्ष्मी, ४०६,
विश्व भारती पत्रिका, ३८१ टि. ३८२ टि,
विश्व मल्ल, ४००,
विष्णु पुराण, १९, ३७ टि., ३८ टि, ५२ टि, ५३ टि, ६४, ४६४ टि., ४७६,
विष्णु पुरी. ४१८,
विष्णु प्रिया देवी, ५०२, ५६८, ५७०,
विष्णु स्वामी, ३३, १९१,
विहार चन्द्रिका— २९९,
वीर चन्द्र (महाराज) ४१३, ४१४ टि,
वीर चन्द्रदेव वर्म्मन ५६७ टि,
वीर दास— २८९,
वीर नारायण, ४०१, ४०२,
(महाराज) वीरसिंह देव, ९९
वृजनार २९९,
वृद्ध चम्पति राय ४३०,
वृन्दावन दास, ९१ टि, १७६, ४१२, ४५०, ४५५, ५००, ५०१, ५०२, ५९८,
वृन्दावन देव, ३२१,
वृन्दावन शतक ३५२, ३५६ टि,
वृन्दावन-मत ३५५,
वृष्टि चिन्तामणि ४०४,
वृहदारण्यक ४६२ टि,
वेणी माधव दास दे, ५४५,
वेणी सहार, ६८, ६९,
वेदान्त सार गुप्त गीता, ४३४,
वेदान्त सूत्र, ४७३ टि.,
वेद परिक्रमा, ४३७,
वैद्य लीला ३५५,
वैष्णवी, ५३१,

वैष्णवीदास ५७५, ५७६,
वैष्ण पदावली (चयन) १३७ टि,
वैष्णव रसमाहित्य ४७१ टि ५९० टि,
वैष्णव वदन ४६९ ६३३ टि
वैष्णव वन्दना, ५०४
वैष्णव साहित्य प्रवशिका, ४४३ टि ४५० टि, ४५१ टि,
वैष्णविज्म शविज्म एण्ड— माइनर रिलिजस सिस्टमस १८ टि ५७ टि
व्यालीस चौपदी ४३८,
व्यास ३४९ ६२१
व्यास वाणी ३५४
श्री व्यास सुवन ३४९
व्याहला २५७
व्रज माधुरी सार १७६ टि, २९१ टि २९९ टि ३०० टि ३०१ टि, ३०३ टि, ३१९ टि, ३२० टि ३४१ टि, ३४२ टि ३४३ टि ३४४ टि, ३४७ टि, ३४९ टि, ३५० टि ३५५ टि ३५७ टि, ३५९ टि ३६० टि ३६२ टि ३६४ टि, ३६५ टि, ३६६ टि ३६७ टि ३६८ टि

श

शंकर देव, ३८२, ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२४ ४२६
शंकराचार्य ११ १८, १९ २५ ३० ३८ १७९ १८०, १०२
शत्रुघ्न १७६
शची माता ६१५
शत्रुजीत राजा, १००
शरण किशोर २२५ टि
शरण ७२
शशिभूषण दास गुप्त, ६२ टि ४४५ टि
शशि शेखर, ७०, ४१२, ५८१ ५८७
शाडिल्य ५, ३७
शाडिल्य भक्ति सूत्र ३७ टि, २१६ टि
शाडिल्य संहिता ५
शांति पर्व, ४, ५
शारदाचरण मैत्र, ५३२
शारीरक सूत्र, १०
शाङ्गधर पद्धति ९०
शालिग्राम ३२१
शिवचन्द्र शील ५९७ टि
शिवनन्दन ठाकुर १५६
शिवपार्वती महिमा सत्य, ४०५
शिव रहस्य, ५१० टि
शिवराम ६२१
शिव सर्वोदय, ४३०
शिवसिंह सरोज ३२१
शिवाजी १७०
शिवानन्द ५८५
शिवानंद सेन ५९५
शिल्पाधिकारम ६० ६१ ६२
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड १०३ टि
शून्यनाम सेन ४३९
शून्य संहिता ४३३ टि ४३० टि, ४३८
शूरसेन १२
शृङ्गार रस मंडन १७४

शृंगार शतक ३५६ टि.
शृंगार सुदामा चरित्र, ३१५
शेखर, ४५३
शेरशाह १०९, ११०
शौच निपेध लीला, ३१६
शौरीन्द्रमोहन गुप्त, ५२८, ५५४
श्याम सगाई, २७५
श्यामराय, ५५४
श्यामसुदरदास, १७५, १७६, २४३ टि
श्यामानद, ५६६
श्री आचार्य पाद, ३०८
श्री कर नन्दी, ४४९
श्रीकृष्ण कीर्तन, ९१, १२०, १२१, १२२ टि, १२३ टि, १२४ टि, १२५ टि, १२६, ४१०, ४११ टि, ४४६, ४४७,
श्रीकृष्ण गीतावली, ३६९, ३७० टि, ३७१ टि ३७२ टि
श्रीकृष्ण चरित, ३१५
श्रीकृष्ण जन्म, ४२५
श्रीकृष्ण दास, ३३६
श्रीकृष्ण मगल, ५०२, ५०३
श्रीकृष्ण रहस्य, ४२६
श्रीकृष्ण विजय, ११८, ११९ टि, १२०, ४४७, ४४८, ४९८
श्रीकृष्ण विलास, ५६०, ५६१,
श्री खण्डेर प्राचीन वैष्णव कवि, ५५४
श्री चैतन्य, ५५८
श्रीधर गोस्वामी, ५९४
श्रीधर पण्डित (खोला वेचा) ५९६,
श्रीधर स्वामी, २५९, ४५३,
श्रीधर टीका, ३३, १९१
श्रीनाथ भट्ट, ३९९
श्रीनिवास, ३०, ११८, ५६६
श्रीनिवास आचार्य, ५१५, ५३०, ५३३ ५३६, ५३७, ५४०, ५४४, ५४९ ५६१, ५६२
श्रीनिवास चरित, ५६७
श्रीनिवास मल्ल देव, ४०५
श्रीपति द्विवेदी, २९५
श्रीभट्ट, ११४, ११५, ११६, ११७, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०८, ३१५, ६१९, ६२१, ६२२,
श्री मद्भगवद्गीता, ५३, ५८, १९५, १९७ टि, २०६, ४६७ टि
श्री मद्भागवत्, ३९ टि, ४० टि, ४६, ५२ टि, ५३, ६३, ६५, ७७, ११९, १२१, १६८, १८०, १८४, १८८, १९२, २१६ टि, २१९ टि, २२०, २२३, ४६२ टि, ४६५ टि, ४६९ टि, ४७२ टि., ४७८, ४७९, ५०३, ६०० टि, ६०४, ६१८,
श्री राघार क्रम विकास दर्शने ओ साहित्ये, ६२ टि
श्रीराधा सुधा शतक, ३६२, ३६३ टि
श्रीराम विजय ४२५
श्रीवल्लभ, ५३०
श्रीवास, ५९६,
श्रेडर, ५ टि, ६, १०
श्लोक सार सग्रह, ४०३ टि,
श्वेत द्वीप, ५
श्वेताशर, ४६३ टि
षट् गोस्वामी, ५६६
षट् सदर्भ, ५८९

सिद्धान्त मुक्तावली, १९६ टि. १९७ टि, २१८ टि, २२३ टि, २२६ टि, २२७ टि, ३०८,
सिद्धान्त रहस्य, २२५ टि.,
सिद्धि त्रय, १९
सिद्धि नरसिह देव, ४०४, ४०५
सुंदर कवि, ६२१
सुदर ठाकुर, ५९६
सुंदर दास, ५४९, ५५०
सुदरानद ठाकुर, ५४९
सुकुमार सेन ९७ टि, ३८१, ३८२. ३८३, ३८४, ३८५ ३८७ टि, ३८८, ३८९, ३९९ टि, ४०२टि, ४०३ टि, ४०४ टि, ४०५ टि. ४०६ टि. ४०८ टि, ४१९ टि., ४२८ टि, ४२९, ४३६ टि. ४४४ टि, ४४७ टि, ४४९ टि. ४९१ टि,, ४९२ टि, ४९५, ५१० टि, ५२५ टि, ५२९. ५३६, ५४९, ५५८ टि. ५७०, ५७४, ५७५, ५७६ टि, ५७९, ६२०. ६२२।
सुजान ३१८
सुजान रसखान २९०, २९१, २९२टि, २९३ टि
सुदर्शन दास ४३८, ४३९
सुदामा चरित १६९. २७५
सुधा निधि ४९३
सुनदा ५१५
सुनीति कुमार चैटर्जी ९६, १५१ टि, १५३, १५६, १५७, १५८, १५९, १६४, ३८४ टि ३९८
सुबोधिनी टीका २०३ टि., २२०, ५९५
सुमोखन शुक्ल ३५३
सुभाषितावली ९०
सुल्तान बहादुर शाह १०४
सुशील कुमार दे ४४३, ४४६ टि., ४५२ टि, ४५३ टि.
सूक्ति मुक्तावली ९०
सूक्ति रत्नाकर ९०
सूरदास ३, ७१, ९४, १०१, ११४. १५१, १५९, १६७, १७७, १८२, १८३, १८४, १८५, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३. २५५, २५६, २५७, २७०, २७६, २७८, ३०६, ३३८ ३५८, ३६९, ३७२ टि., ५९४, ५९७, ६००, ६०१, ६०५, ६१०, ६११, ६१७, ६१९, ६२२, ६२८ ६२९
सूरदास के दृष्टकूट की टीका १७४
सूरदास के पद २५७
सूर निर्णय २४० टि २४२ टि, २४३ टि, २४६ टि, २४८ टि. २५७ टि.
सूर पचीसी २५७
सूर पूर्व ब्रजभापा १५७
सूर रामायण २५७
सूर शतक २५७
सूर सदर्भ २४६ टि.

सूर सागर ९९, १८३ टि, १९३ टि
१९४ टि, १९६ टि, १९७ टि,
१९८ टि, २०० टि, २०१ टि
२०२ टि, २०४ टि २०५ टि
२०६ टि, २०७ टि, २१४ टि
२१७ टि, २२१ टि, २४१,
२४५ २४९ टि, २५० टि
२५१ टि, २५२, २५३, २५४टि,
२५५ टि २५६ टि २५७ टि,
३७१ टि, ५८८ टि, ६०० टि,
६०१ टि ६१२ टि ६१३ टि
सूर सागर सार २५७
सूर साठी २५७
सूर सागवली १९४ टि, १९५ टि
१९६ टि, १९७ टि १९८ टि,
२०० टि २५७
सूर साहित्य १८७
सूर सौरभ २४२ टि, २४५ टि
सूयवरण-पारीक १६५
सूय वणन सम्राट ९७
सेनापति १५२ १७०
सेवक चन्द्रिका १७८
सेवर वानी २३८
सेवा फल २५७
सैयद इब्राहीम पिहानी २९१
सामनाथ महापात्र ४३८
स्टडीज इन तमिल लिटरेचर ६१ टि
स्वयभु दव ३०८
स्वयभू भट्टारक स्तोत्र ४०४
स्वगारोहण कथा १०२
स्याम सगाई १७६
स्वामिनी स्तोत्र २०१
स्वामिन्याष्टक २०१
स्वामी गोवधनदास ३२१
स्वामी हरिदास ३५ १६८

ह

हण्टर ११७ टि
हजारीप्रसाद द्विवेदी ५२ टि, ५९ टि,
८६ टि १७४ टि १७५ टि
१७९ १८० १८४, १८६ १८७,
२८६ टि
हठी ३६२, ३६३ ३६४
हनुमन्नाटक १७६
हरदलि ४०५
हरगौरी विवाह ४०३
हरप्रसाद शास्त्री ४४६
हरमेखला टीका ४०४
हापकिन्स १८७
हाल ६७
हाल सात वाहन ६७ ४४५
हरिगोमाद ५५८
हरिचरन दास १७४
हरिदास २३०, २३१, २३२, २३३ ३४७
(स्वामी) हरिदास ३२४, ३२५ ३२६
३२७
हरिदास दास ५६४, ५६७ टि
हरिप्रकाश यत्रालय ३६२
हरिभजन मणि मजरी २०५
हरिभक्त चन्द्रामृत ५३८
हरिभक्ति विलास ६०४ टि
हरि वल्लभ ५३० ५३१
हरि व्यास ११४, ११६ ११७ २२९
३०६ ३०७, ३०९ ३१२, ३१४
३१५ ३२१

हरिव्यास देव ५१२ टि, ६०२
हरिव्यास छब्बीसी ३१५
हरिराम व्यास ३०७
हरिराय २२१, २४२, २४३, २६७, ५९५, ६०६
हरिराम शुक्ल व्यास ११६, २३८, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५
(श्री) हरिलीला ३१६
हरिवंश ५३ टि., ६४, ११९
हरिवंश दास ५८४
हरिवंश का अनुवाद ४३८
हरिवंश टीका २५७
हरिवंश देव ३१३, ३१४, ३२१
हरिश्चन्द्र (ग्रंथ) १७२
हरिश्चन्द्र आख्यान ४२६ टि
हरिश्चन्द्र चंद्रिका ३६२
हरिश्चन्द्र नाटक ४०५
हरिश्चन्द्र भारतेन्दु ३७६
हरि सिंह राज ३७८, ३९८, ३९९
हरिहर निवास द्विवेदी १०१ टि, १०२ टि
हरे कृष्ण मुखोपाध्याय ५५४
हर्जरवर्म देव ७१
हर्ष चरित ६७
हलायुध ठाकुर ५९६
हिंडोरा लीला २६९
हित चौरासी ३५१ टि, ३५२
हिततरंगिणी १८६
(चाचा) हितदास ३५२ टि
(गोस्वामी) हितरूप ३५७
हितरूप किशोरी लाल १७४
(श्री) हितरूप चरितावली ३६०
(चाचा) हित वृन्दावन दास ३५२, ३५७, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२
हितसिंगार लाला ३५५
हित सुख सागर ३५२
हित हरिवंश ३५, १६८, १७६, २३३, २३४, २३५, २३७, २३८, ३४२, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५५, ३६२
हित हरिवंश चरित २३३
हितोपदेश १७५
हिन्दी काव्य धारा १८१
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग १८०
हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास १७५ टि, १७६, १८८
हिन्दी भाषा और साहित्य २४३ टि.
हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट्स ३०० टि
हिन्दी शब्द सागर १७७
हिन्दी साहित्य १७४, १७५, टि., १८४, १८६, २४६ टि
हिन्दी साहित्य की भूमिका ५९ टि
हिन्दी साहित्य का आदिकाल १७९, १८०
हिन्दी साहित्य का इतिहास १०४, १०५, १७४, १७५ टि., २४३टि, २५८ टि, २६९ टि
हिन्दुस्तानी १६५, ४१८ टि, ४२० टि.
हिन्दु रिलिजन्स २० टि
हिमांशुचन्द्र चौधरी ४४३ टि, ४५०टि, ४५१ टि
हिस्टारिकल ग्रामर आव अपभ्रंश १६२ टि.

शी हिस्ट्री आव आसामी लिटरेचर ४२१ टि
हिस्ट्री आव बंगाल ४४३ टि
हिस्ट्री आव ब्रजबुलि लिटरेचर ९७ टि
३८३ टि ४१९ टि, ४२८ टि
४९२ टि, ४९५ टि, ५४० टि
५५१ टि, ५७० टि ५७४ टि
५७५ टि, ५७६ टि ५७८ टि,
५७९ टि, ५८० टि, ५८३ टि
६२०, ६२२ टि
(दी) हिस्ट्री आफ मेडिवल वैष्णविज्म
इन उडिया ४२० टि, ४३२ टि,
४३४ टि, ४३७ टि ४३९ टि
हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर ४१० टि
(दी) हिस्ट्री आफ दी श्री वष्णवाज
१३ टि
हिस्ट्री आफ श्री वष्णवाज २३ टि
(दी) हिस्ट्री आफ मिडिएवल वष्णविज्म
इन उडिया ३८४ टि
होम्स आफ दि आल्वास ६२ टि
हागवती ५२५
हीरावली तत्त्व ५३८
हुमायू १०४ १०५ १००
हुलास लीला ३५५
(श्री युत) हुसन जगत भूषण ८१०
हुसन शाह ४०९ ४१० टि, ४९१
४०२
हूपर ६२ टि
हृदयराम १७६,
हृदयानन्द ५९४,
हृषीकेश देव ३०२,
हेतु उदय भागवत ४३०
हेमचन्द्र ६९ ८५ ८६ टि १४५
टि १५४ १६२
हेमराज ३१३
हेमलता देवी, ५३७
हेरावलीज १२
हेलियाडोरस १२